श्री :

प्रतिष्ठामौक्तिकम्

द्वितीयावृत्तिः

प्रतिष्ठप्रासादशिल्पविषयकसकलग्रन्थतत्त्वसमन्वितम् ।

(१) हिन्दीभाषायां शास्त्रार्थप्रकरणम् ।
(२) संस्कृतभाषायां सुविशदशास्त्रार्थप्रकरणम् ।
(३) विविधदेवतानामृक् - कृष्णयजुः - सामाथर्ववेदोपनिषदागम-तन्त्रपुराणनिर्दिष्टमन्त्रयन्त्रादिप्रकरणम् ।
(४) एकाद्यष्टोत्तरसहस्त्रान्तषोडशविधस्नपनप्रकरणम् ।
(५) प्रधानं प्रतिष्ठाविषयक सकलप्रयोग प्रकरणम् ।
(६) विविधमण्डलपीठयन्त्रादिदेवता प्रकरणम् ।
(७) स्वकृतविविधदेवतानीराजनादि प्रकरणम् ।

कर्ता-प्रकाशकश्च

पं० लक्ष्मीशंकर गौरीशंकर शुक्ल

(लब्धगुर्जरराज्यपण्डितसम्मानपत्रः)

व्याकरणाचार्यः काव्यतीर्थ-साहित्योत्तमा
न्यायमध्यमाद्यनेकपदवी समलङ्कृतः ।
निवृत्तवेदकर्म काण्डव्याकरणसाहित्यादिप्राध्यापकः ।
म० स० विश्व० सं० महाविद्यालयस्य ।
वटपत्तनस्थ संस्कृतविद्वत्सभाध्यक्ष : ।

विक्रमसंवत्सरः । २०५४

खिस्ताब्दः । १९९८

मूल्यम् - २५० रूप्यकाणि ।
मार्गव्ययः पृथक् ।

प्राप्तिस्थान :
हरगोविंद बकराका खाँचा, घंटीयाडा, बडौदा-३९० ००१. (गुजरात) भारत.
फोन : ०२६५-४१३५७३

ग्रन्थत्रयम् :

१	प्रतिष्ठेन्दुः (शास्त्रार्थप्रकरणम्) पण्डितराजत्र्यम्बकमाटेकृतः	प्रथमावृत्ति :- १०००	मूल्य रु. १२०
२	सहस्रकलशाभिषेकपद्धतिः वेदचतुष्टयमन्त्रसहिता	प्रथमावृत्ति :- १०००	
३	गणेशयागपूजापद्धतिः	प्रथमावृत्ति :- १०००	

सूचना : तीनो ग्रन्थ एक ही साथ बाइन्ड होने से साथमे लेने होंगे।

प्रकाशितान्यन्यानि पुस्तकानि :

१ मण्डपकुण्डसिद्धिः - संस्कृतपदार्थमञ्जूषाटीकागुर्जरभाषानुवाद १७४ मूल्यम् रु. ५०
आकृति सहिता कुण्डमण्डपविषयक ६४ ग्रन्थ तत्त्वसमेता
सन्- १९५० प्रकाशिता अवशिष्टाः १०० प्रतयः

२ मण्डपकुण्डसिद्धिः - अन्वयार्थसहिता हिन्दीभाषानुवाद १७४ मूल्यम् रु. ४०
आकृतिसहिता - मूल्यम् - ४० प्रति - २०००

मुद्रक : भावेश प्रिन्टरी
वेदमन्दिर के पास, बहुचराजी रोड, कारेलीबाग, बडौदा-३९० ०१८. (गुज.) भारत
फोन : ०२६५-४३१२८८

'प्रतिष्ठामौक्तिकम्' ग्रन्थकी द्वितीयावृत्तिविषयक भूमिका ।

मण्डपकुण्डसिद्धिः संस्कृतपदार्थमञ्जूषाटीका गुर्जरभाषानुवादसहिता स्वर्गस्थ पूज्यपाद गुरुवर्य-लक्ष्मीनाथ बदरीनाथ शास्त्रीजी भूतपूर्व संस्कृतमहाविद्यालयके प्रधानाध्यापक सन १९५० सालमें ग्रन्थ दुर्लभ हो जानेसे छात्रोंको टीकासहित ग्रन्थ पाँच साल तक लिखवा लिखवा कर पढाया बादमें उन्होंने नूतन ग्रन्थ बनाकर छपवानेकी आज्ञा दी. पहले तो मूलग्रन्थ अन्वय भाषानुवादसहित ग्रन्थ तैयार किया।

बादमें शारदाम्बाने आज्ञा दी की धीरे धीरे संस्कृत भाषाके हस्तलिखित ग्रन्थ नष्ट हो रहे हैं. जिनके पास थे वे देनेको तैयार नहीं थें. आखिरमें मनमें निश्चय हुवा कि जितने ग्रन्थ उपलब्ध हो सकें उन सबके प्रधानभूत अङ्ग इस ग्रन्थमें समाविष्ट किये जाय. भगवत्कृपासे मेरे घरमें ही ३५ हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध थे. और दूसरे ग्रन्थोंकी सहाय प्राच्यविद्या मन्दिर के प्रकाशित अप्रकाशित कुण्डमण्डपविषयक ग्रन्थोंकी तलाश करके उनमेंसे विशिष्ट तत्त्वोंके रहस्य एकत्र करके योग्य स्थानमें उन उन विषयोंका निवेश विचारपूर्वक किया और इन्जीनीयरींगके सूक्ष्म साधनोंसे नापके अनुसार १७४ आकृतियाँ बनाई. पहले हमनें उस संस्कृत विस्तृत टीकागत विषयोंका गुजराती भाषामें अनुवाद १६ श्लोक तक किया. हमारे मित्रने कहा भाई, यज्ञयागादिका प्रचुर प्रचार गुजरातमें ज्यादह है. इस लिए सारी टीकाका अनुवाद गुजरातीमें करो. हमनें सारे ग्रन्थका गुजराती अनुवाद किया. जिस कारणवश संस्कृतपदार्थ मञ्जूषाटीका होते पदभी सारे भारतमें उसका प्रचार हुवा नहीं.

हमारे पू. पिताजी भी ज्यादह तौरसे शिल्पशास्त्रानुसार मंदीरमें देवप्रतिष्ठाका ही कार्य करातें थे. 'न प्रतिष्ठासमो रिपुः' इस वाक्यको आगे रख कर उन्होंने यह कमानेका साधन नहीं. देवता पर पूर्ण श्रध्धा रख कर शास्त्रनिर्दिष्ट विधिके अनुसार कार्य करते रहो. लोभ मत रखो. बादमें पू. पिताजीने सामने बैठकर पढाया और उसमें जो गुरु-चाचिदांधी वे भी बतादीं, बाद हमने खोज खोजकर वास्तु शिल्पशास्त्र और प्रतिष्ठाके प्रसिद्ध अप्रसिद्ध ग्रन्थ देखना शुरु किया. उन सबमेंसे आवश्यक सिध्धान्त-तत्त्व एकत्रित किया. प्रतिष्ठामें भूमि वास्तुशास्त्र, धर्मशास्त्र, शिल्पशास्त्र वगैरहकी नितान्त आवश्यकता रहती है. कितनी अशक्य बातोंका रूपान्तर करना पडता है. बादमें ऐसा विचार हुवा कि ऐसा ग्रन्थ गुरु और शारदाम्बाकी कृपासे बनें जिससें कर्मकाण्ड प्रतिष्ठा विषयरूपअत्यंत विसंवाद दिखना था. उन सबका समावेश करने का प्रयत्न शास्त्रानुसार किया. हस्तलिखित प्रतिष्ठाविषयक करीब २०-२५ ग्रन्थ तो घरमें ही थे. और ग्रन्थोंकी सहाय प्राच्यविद्यामन्दिर म. स. विश्व. के ग्रन्थागारमें बैठकर तत्त्व संग्रहकी सूची बनाई. स्वराज्यके बाद अर्थ विज्ञान प्रधानयुगमें दिनप्रतिदिन संस्कृत भाषाका लोप होता चला. यह सोचकर प्रथम द्वितीय प्रकरण हिन्दी भाषामें ही लिखें. लेकिन भारतकी मूलजननी संस्कृतभाषा छोड न सका. फिर इच्छा हुई की प्रतिष्ठा सब वेदमें ही है. इस ग्रन्थका सब वेदवाले उपयोग कर सकें इस लिये मन्त्रप्रकरण लिख फिर मात्स्यादि वचनानुसार एकसे लेकर सहस्रकलशस्नपनविधि तकका स्नपनका प्रकरण वेदी कलशस्थान संख्या निवेशनक्रम वस्तुनिक्षेप का तृतीय प्रकरण मन्त्रप्रतीक निर्देशके साथ किया. चतुर्थप्रकरणमें विविधदेवताओंके सबवेदोंके मन्त्र तन्त्र पुराण गायत्री वगैरहका निवेश किया. आखिर पञ्चम प्रकरणमें

कम पढें हुवे लोगोंकी भी प्रयोगकी सुगमता हो इस उद्देश्यको सामने रखकर प्रतिष्ठा सम्बन्धी सब विषय और अन्य उपयोगी विषयोंका पञ्चम प्रकरणमें समावेश किया. षष्ट प्रकरणमें विविध मण्डलोंके देव पीठ मन्त्र देवताओंका प्रकरण रखा. अन्तिम ७ प्रकरणमें प्रचलित देवोंके स्वकृत नीराजन रख लियें. इस तरह ग्रन्थका स्वरूप कल्पनातीत हो गया. पाँच साल प्रेस कोपी तैयार करने और पाँच साल प्रकाशित करनेमें बीत गयें और चार प्रेस बदलने पडें. उससें मण्डपकुण्डसिद्धि अन्वय अर्थ और सब विषयहिन्दीभाषानुवाद सहित प्रकाशित कर दी.

गुरुकृपाका इतना सामर्थ्य के तीन सालमें २००० कोपी बीक कर खतम हो गयी हमारें दिमागमें शास्त्रके जितने तत्त्व थे वे सब जनता समक्ष रख दूं. आज तक देख रहा हूं कि किसीको पढना नहीं. गुरु करना नही. केवल धर्नाजनके लिये कर्म करना है नतो ईश्वर प्रति श्रद्धा है. न तो शास्त्र देखनेका समय है. पूछनेमें शर्म आती है पण्डितको हाजर रखनमें हिचकिचाहट करतें है. जैसे आयें वैसे देवप्रतिष्ठा करतें हैं. स्वयं दुःखी होते है. और यजमानका कल्याण होता नहीं

जलाधिवास प्रकरणमें घृतेनाभ्यज्या प्रतिमाओंको धी लगाने कहा है. और जलधारा करनेका कहा है. इस बारें में प्रथमावृत्ति-२ प्रकरणमें इस बहाने ब्राह्मण घी ले जातें हैं. इस बात पर कऊ ब्राह्मण बिफ्सन् हमारें पर क्रुद्ध हुवे हैं. हमारा वे लोग करतें हे. ऐसा उद्देश था ही नहीं. किन्तु जो घृताधिवास कोई ग्रन्थमें कहा ही नही हैं. ऐसा शास्त्रविरुद्ध कर्म करना ब्राह्मणदेवताओंके लिये शोभास्पद नहीं है. इतना ही आशय था. अगर उनको बूरा लगा हो तो मैं इस लिये उनकी क्षमा चाहता हूं.

गुरुकृपा या माँ सरस्वतीकी कृपाका फल कहो कि प्रतिष्ठामौक्तिकग्रन्थमें सब आवश्यक वस्तुओंका निवेश किया है. जिससे रूडिसे अनुसार किये जाने अनेक पदार्थोंका निराकरण अपने आप हो जातें हे पहले प्रकाशित २००० प्रतियाँ सालमें बिक गई और ओर्डरथी हमारे पास पेन्डींग होनेसे पूनः प्रकाशन करना आवश्यक हो गया. पुनः प्रकाशन मूल ग्रन्थकी त्रुटियाँ सुधारकर, सुंदर टिकाऊ कागज पर, ओफसेट प्रिन्टींग और कम्प्युटराईझ टाईप सेटींग करके प्रकाशित करते हुए में हर्ष अनुभव कर रहा हुं. कई लोगोंके सूचन था कि इस प्रकाशनके साथ अप्राप्य और भत ग्रन्थ जोडें. आज प्रतिष्ठामोक्तिकग्रन्थ अफ्रीका, अमरिका, फ्रांस, जर्मनी, फीजी, मोरेशियस इत्यादि देशोमें जहाँ भारतीय लोग रहतें है. वहाँ तक पहुँच गया. छठवा देवता प्रकरणमें प्रचलित सर्व यज्ञोंके यन्त्र आवरण देवता उपलब्ध होतें है. इससे किसीभी देवताका यज्ञ करना हो तो ३ और छठवे प्रकरणकी सहाय से वह कर्म संपन्न कर शकता हैं.

बीचमें 'प्रतिष्ठेन्दु' - पण्डित राजत्र्यम्बकमाटे महाराज कृत ग्रन्थका शास्त्रार्थ प्रकरण 'सहस्त्रकलशाभिषेकस्नपनपद्धति' - चारों वेदोंके मन्त्र सहित, और 'गणेशयागपूजापद्धति' भी प्रकाशित हो गई.

अन्तमें ऋक् यजु. साम आथर्वण विधान के कई अनुभूत सिद्ध तांत्रिक प्रयोग जोडने की इच्छा थीं. लेकिन मेरी उम्र ८२ साल हुई हैं. अब पहले जितना परिश्रम प्रुफ संशोधन करनेकी ताकत

भी रही नहीं आखिरमें महर्षि याज्ञवल्क्य प्रणीत यजुर्विधानके कुछ अंश प्रसिद्ध करने की ईच्छा है. क्योंकि तन्त्र शास्त्रका मूल वेद ही हैं. द्विषतां वधोऽसि योऽस्मान्द्वेष्टि यंच वयं द्विष्मः जहि शत्रून् शत्रूंश्रयतुजर्हंषाणः, शन्नः कुरु प्रजाभ्यः, इमा रुद्राय, मानस्तोके, दधतु श्रिय मुत्तमां तस्यैते स्वाहा, आनो भद्राः शिव सङ्कल्पमस्तु ऐसे व योऽस्मान् द्वेष्टि यंच वयं द्विष्मः ऐसे अनेक प्रकारके प्रतिबंध आपद् निवारक और कल्याणकारक, क्षेम वृष्टि धनधान्य देनेवाले अनेक प्रयोग वेदमें आते हैं. जिसमेंसे हमने कई प्रयोग करवायें हैं और वे सिद्ध हुवे है.

भगवान्के निःश्वसित रूप वेदोंमे ऐसे आभिचारिक मारण वशीकरणादि प्रयोगोंको औचित्य नहीं. किन्तु 'एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय' इस इच्छा होने पर प्रकृति लक्ष्मीमें अपनी इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्तिजुदा दी. फिर सोचा कि मेरी पैदा की हुई सृष्टि मेरे जैसी ही होगी सब राम राम करने लगे तो फिर संसारका खेल देखनेका मनोरंजन मिलेगा नहीं. इस वजहसे प्रकृतिके साथ अविद्या, माया, ममत्व जोड दिया. जो संसारके वैचित्र्यमें मूलभूत कारण है.

अस्तु प्रतिष्ठामौक्तिक पूर्ण छपने तक यजुर्विधान पूरा हो जाएगा तो आप विद्वानोंके करकमलोंमे रखेगें, अन्यथा दूसरा छोटासा भाग छपवायेगें. अगर भगवान्की ईच्छा होगी तो यह कार्य हो सकेगा. संस्कृत वेद तन्त्र उपनिषद् कर्मकाण्ड यह इतना बडा अगाध सागर है कि सब चीजे एकही ग्रन्थमें जुटाना मुश्किल हैं.

मत्स्यावतार की तरह हररोज मँहगाई बढती जा रही है. जिसके कारण प्रतिष्ठामौक्तिकका मूल्य बढानेंसें बाध्य हुवें है. हम कोई धनिक नही है. दैववशात् ग्रन्थ प्रकाशनमें जिन लोगोंने सहाय की है उन सबका भगवान् धन्य धान्य वंश सुख आरोग्य देकर कल्याण करें ऐसी प्रार्थना करके नई आवृत्तिमें भी मनुष्य सुलभ दोष रह गयें हों इस लिये विद्वान, पाठकोंकी क्षमा चाहता हूँ

आपका आजन्म विद्यार्थी

पं. लक्ष्मीशंकर गौरीशंकर शुक्ल

व्याकरणाचार्य साहित्य उत्तमा काव्यतीर्थ

महाराजा सयाजीराव विश्व संस्कृत महाविद्यालय

निवृत्त - वेदकर्मकाण्ड व्याकरणसाहित्यादि प्राध्यापकः

प्रतिष्ठामौक्तिकद्वितीयावृत्तिविषयकं निवेदनम् ।

मान्या विद्वद्वरेण्याः,

प्रतिष्ठामौक्तिक ग्रन्थस्य प्रथमावृत्तिः विदुषां याज्ञिकानां इयता वर्ष त्रयेण मितेन कालेन विदुषां मनोहारिणी भविष्यतीति मनसि मनागपि चिन्तितं नासीत् । मदीया मनीषा ईदृश्यासीद् यदद्यावधि ग्रन्थ सहस्रावलोकनेन मस्तिष्के यद्यत् संङ्गृहीत मासीत् तत्सर्वं विदुषां पुरः समुपस्थाप्य भगवत्याः शारदाया आनृण्यं भजेयं येन नितरामतिगहन धर्मशास्त्रनिगमागमवास्तुशास्त्रशिल्पशास्त्रादिनिगूढो विषयो विदुषां जिज्ञासूनां बिना परिश्रमं बुद्धिगतो भवेत् । परम्परया शास्त्रतत्त्वानि निगृह्य स्वान्त एव पाण्डित्येन समुल्लसतां विदुषां सकाशादनधीत्य यथाकथञ्चित् प्रतिष्ठादिकर्म कारयितॄणां याज्ञिकानां कर्मलोपजन्योदोषो गलग्रहो मा भूदित्येतावाम् संकल्पः यत् किञ्चित् दुरूहमासीत् तन्सर्वं सप्रमाणं शिशोर्मिष्टदुग्धपायनवत् पोषकमभवत् ।

नैकमपि दिनं तादृशमगच्छत् यस्मिन्नहति प्रतिष्ठामौक्तिकग्रन्थप्रेषणपत्रं नालभ्यत । एवं क्रमेण क्रमशो हीयमाणा पुस्तकसंख्या मां नितरामपीडयत् । अधुनाऽपि पञ्चशतमितानि पुस्तकप्रेषणादेशपत्राणि तथैव स्थितानि । परिस्थितिरियं मामाकुलमकरोत् । पुनः प्रकाशन योग्य संपदभावेऽपि साहसमकरवं पुनः प्रकाशनाय । प्रतिदिनमेधमाना महर्घता मां चिन्ताविष्टमकरोत् । आत्मनस्तु कामाय सर्वंप्रियं भवति । इति श्रुतिवाक्यानुरोधेन स्वसुखाय कोट्यधिकं धनं ददाना धनिकाः संस्कृतस्य संस्कृतशास्त्राणाञ्च संरक्षणाय कपर्दिकामपि दातुं नेहमानाः शन्ति बहवः । तथापि न वन्ध्या पृथिवीति वाक्यमन्वर्थयमानाः सन्ति विरला विद्यादानसाहाय्यकर्तारः । तादृशां महानुभावानां करावलम्बेन ग्रन्थोऽयं द्वितीयावृत्तिं प्रविष्ट अत्र विद्याप्रेम गुरुकृपा हि केवलं निदानम् । महर्घताडाकिनीग्रस्तकाले द्वितीयावृत्ति प्रकाशने निरुपायोऽहं मूल्य मवर्धयम् । एतस्यकोम्प्युटर द्वारा प्रकाशने परीक्षणे च गतस्य कालस्य मूल्यं न लप्स्यते । किन्तु विदुषां मनोमोद एव मे परमं धनम् । एनस्य प्रकाशने मम पुत्रः चि-परिमल कुमार शुक्लो महान्तं सहायमकरोदिति तस्य दीर्घायुष्यं धनमारोग्यं च कामये अस्मदिष्टः सिध्दिविनायक एतत्कार्यं पूर्तिमापादयदिति तच्चरणयोर्नामं नाभं मानुषसुलभत्रुटिवशाद् विदुषः साञ्जलिबन्धं क्षामं क्षामं बिरमामि सदाशिवः समेषां शिवं विदधात्विति शम्

भावत्को

पं. लक्ष्मीशंकर गौरीशंकर शुक्ल

श्री

प्रातः स्मरणीय वेदशास्त्रसम्पन्न पण्डितवर्य परमपूज्य

श्री महादेवमिश्र राजगुरुजी का जीवन परिचय

पण्डितकुलमूर्धन्य पूज्य गुरुमहाराज का जन्म पुण्यतम काशीनगरी में पण्डितसार्वभौम श्री शिवकुमार मिश्रजी के पवित्र कुल में विक्रम संवत् १९३१ आश्विन शुक्ल पूर्णिमा १५ के मंगलमय दिन में हुआ, काशीविश्वेश्वर भगवान् के पवित्र धाम वाराणसी में रह कर वेदव्याकरण साहित्य न्याय मीमांसा ज्योतिष तन्त्र आगम मन्त्रविद्या में अप्रतिम प्रतिभा नैपुण्य से अनेक पदवीयाँ प्राप्त की। बाद में योग्य सद्गुरु श्री विशुद्धानन्द सरस्वती स्वामी महाराज प्राप्त होने पर योग और तन्त्रविद्या की दीक्षा प्राप्त करके योगसिद्धि तपः सिद्धि और वाक्सिद्धि प्राप्त की। फिर योगियों और तान्त्रिकों के निवासरूप हिमालय की गोद में स्वामी महाराज के साथ रहकर तिब्बत में जाकर तपश्चर्या द्वारा अनेक तरह की प्रत्यक्ष सिद्धियाँ प्राप्त करके वाराणसी में रहने लगे।

सन् १९१० में बडौदा के विद्वान महाराजा श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड महाराज भारत वर्ष की यात्रा करते करते जब काशी पहुँचे, तब काशी के सुप्रसिद्ध विद्वानों का परिचय और सत्कार का पूरा भार अपनें कंधों पर लेकर श्री. गायकवाड महाराज को अपनी तपस्या मन्त्र और वाक्सिद्धि से प्रभावित किया। श्री गायकवाड महाराज ने जब अपनी ओर से सत्कार करने की इच्छा प्रगट की। तब गुरु महाराज ने कहा कि ब्राह्मण तो सारे जगत् के कल्याण की इच्छा से सिर्फ आशीर्वाद देता है। कुछ लेने की इच्छा रखता नहीं।

इस प्रसंग से महाराज सयाजीराव बडे प्रसन्न हुए और अपरिग्रह व्रत के आग्रही गुरु महाराज को अपने साथ ही लाकर राजमहल में पूज्यश्रीका निवास रखा। उसी ही समय से उन्होंने राजगुरु का स्थान शोभित किया। श्री. गायकवाड महाराज ने गुरुमहाराज को अपनी सेना में सैनिकों के धर्म, सदाचार, संस्कृति और कर्तव्यनिष्ठा के उपदेश के कार्य में योगदान देने की प्रार्थना की। इस समय में सैनिक, सेनापति इत्यादि सैन्यविभाग में अनेक प्रेतादि बाधा उपद्रव पीडा होती हुई देखकर पूज्य गुरुमहाराज ने अपने योग मन्त्र और तप के बल से उस पीडा को पन्द्रह ही दिन में दूर किया। और उस आत्मा ने प्रसन्न होकर गुरुमहाराज को प्रसाद के रूप में चन्दन की दो पादुकायें दी। जो बाद में चाँदी की फिर सुवर्ण की हो गई।

पूज्य गुरुमहाराज बाद में राजमहल छोडकर अनेक जगह निवास करते करते अन्त में राममन्दिरमें और फिर शिवबाग में निवास करने लगे।

किसी के पास से कुछ भी लेते न थे। अपरिग्रह व्रत का दृढता से पालन करने वाले गुरुमहाराज के चरणों में अनेक राजा, महाराजा, मन्त्रिगण, पण्डित, दीन हीन दुःखी सामान्यजन और भक्तजन हररोज कतारों में जमीन पर बैठकर उनके मुख से निकलती भविष्यवाणी सुनने की प्रतीक्षा करते थे। उस तरह गुरुमहाराज दीन हीन दुःखी आदमीयों को मन्त्रप्रभाव तपोबल और वाक्सिद्धि से दुःख, उपाधि, प्रेतपीडा रोगादि से मुक्त करके यावज्जीवन अनुग्रह करते रहे।

ब्राह्मण, पण्डित, वेद, सदाचार पर पूज्य गुरुमहाराज की बडी निष्ठा थी। वे कहते थे, ब्राह्मण होकर धनिकों के पास धन या सुख की याचना की उपेक्षा कभी न रखें। अपना सर ऊँचा रखकर विद्या, सदाचार और सद्भावना से जगत् के कल्याण के लिए कार्य करते रहें। सिद्धि खुद आप के पास आएगी। आप को उनके चरण छूने नहीं पडेंगे।

जो आधि व्याधि उपाधि वगैरह औषध नियम प्रयत्न द्रव्यदान परिश्रम से सिद्ध न होता था। वैसे कार्य गुरुमहाराज चुटकी में आशीर्वाद और मन्त्रसिद्धि से करके भक्तों को प्रसन्न करते थे। कभी कभी तो भक्तों के रोग भी योगसिद्धि से अपने पर ले लेते थे।

कुछ न लेने पर भी उनके चरणों में लक्ष्मी सदा लोटती रही। उसको हाथ लगाये बिना वे भक्तों को और दीन हीन पामर जनों को कृतकृत्य कर देते थे। और राजा को लेकर दीन तक आदमी जो चाहे, उसको मिल जाता था। गुरुमहाराज की ऐसी अनेक अनुभव परम्परा का वर्णन करना संभव नहीं है।

आजानुबाहु, दृष्टि में योग की सिद्धि, आशीर्वाद बरसाते हुए हाथ, सिद्धि से परिपूर्ण वाणी और सन्मार्ग का उपदेश, ये बातें आज भी दृष्टि से दूर होती नहीं।

पूज्य गुरुमहाराज का जन्मशताब्दी महोत्सव सन् १९७५ आश्विन शुक्ल १५ को धार्मिक कार्यक्रमों के साथ बडी धामधूम से मनाया गया। और गुजरात के एवं सुप्रसिद्ध वैदिक, कर्मकाण्डी और पण्डितों का राजोचित सत्कार किया गया। इसी तरह गुरुमहाराज के पुत्र पुत्री एवं परिवार के सभी मांगलिक प्रसंग भक्तजनों ने अपना प्रसंग मानकर हर्षोल्लास के साथ मनाये।

अपनी धर्मपत्नी का स्वर्गवास होने पर कई साल अकेले ही बिता दिए। भक्त के अनुग्रह के लिए उसका पक्षाघात का व्याधि योगसिद्धि से अपने पर लेने से परवश हो गये। उस दिन से जीवनपर्यन्त पूज्य मोटी बहन (कान्ताबहन जीने गुरुजी को अपने पितातुल्य मानकर श्रद्धा और भक्ति से सेवा की। जिनके फलस्वरूप अपने पास जो कुछ देने योग्य सिद्धियाँ थी, वे सब पू. मोटी बहनजी को आशीर्वाद सह दे दीं।

अन्त में पूज्य सद्गुरु पं० महादेव शर्मा राजगुरु महाराज कालनिर्दिष्ट समय आनेपर वि. संवत् २०३६ वैशाख कृष्ण ५, ता. १६-५-१९७९ को १०५ वर्ष पूर्ण आयु भोगकर एक ही दिन की

सामान्य बिमारी के बाद ब्रह्मलीन हो गये।

बडौदा संस्कृत महाविद्यालय में अध्ययन काल से लेकर जीवन पर्यन्त मेरे पर पूज्य गुरु महाराज की अमृतपूर्ण दृष्टि और अनुग्रह रहा, जिसका ऋण अनेक जन्म तक भी वापस करने में मैं अपने को असमर्थ मानता हूँ। "गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः" इस तरह उनके चरणों में प्रणाम करके बिना कुछ मांगे सब कामना पूर्ण होती रही, और आज भी उनकी वह अनुग्रहपूर्ण दृष्टि हृदय से दूर होती नहीं है।

अपने पर किए गए अनुग्रह को स्मृति में रखते हुए भक्तजन आज भी पू० गुरुमहाराज का जन्मदिन, निर्वाणदिन, गुरुपूर्णिमा और महाशिवरात्रि के उत्सव पूर्ण श्रद्धा और उदारता से मनाते हैं। एवं पू० गुरुमहाराज की पादुका को प्रणाम करके अपने आप को कृतकृत्य मानते हैं।

पूज्य शारदाम्बा और गुरुमहाराज की कृपा से आज तक जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसको पण्डित और सामान्य जन के उपकार के लिए अक्षरदेह पुस्तक रूपसे प्रस्तुत करूँ ऐसी पाँच साल पहले प्रेरणा हुई। उसके फलस्वरूप शिल्प प्रासाद, शिखर, दृष्टि, सिंहासन इत्यादि गहन विषय और शास्त्रार्थ से भरे हुए कठिनतम विषयों का तात्पर्य निकाल कर, चार वेद, उपनिषद्, पुराण, आगम, तन्त्र, शिल्पशास्त्र प्रयोगादियुक्त सप्रमाण "प्रतिष्ठामौक्तिकम्" ग्रन्थलेखन का प्रारम्भ किया और गुरुमहाराज की कृपा से पूर्ण हुआ। उसके साथ 'अष्टोत्तरसहस्रकलशाभिषेक पद्धति', 'मण्डप कुण्डसिद्धि', 'संस्कृतपदार्थमञ्जूषा टीकासङ्कलित विषय समेत हिन्दी भाषा भाषानुवादसहिता', ये दो पुस्तकें भी अनायास लिखकर पूर्ण हो गई। जिसमें 'मण्डपकुण्डसिद्धि हिन्दी भाषानुवाद-सहिता' प्रकाशित हो चुकी है।

"प्रतिष्ठामौक्तिकम्" इतना बडा ग्रन्थ मुझ जैसे 'यदृच्छालाभसन्तुष्टः' मनुष्य को वर्तमान आर्थिक परिस्थिति में प्रकाशित करना बिलकुल असंभव था। उसका प्रकाशन व्यय मेरी आर्थिक मर्यादा से कोसों दूर था। इस दुविधा में पूज्य गुरुमहाराज की 'देहि मे कराबलम्बम्' ऐसे शुद्ध भाव से चित्त में प्रार्थना की। पूज्य गुरुमहाराज ने भक्तों के हृदयों में प्रेरणा की और अनायास नाम का लोभ छोडकर भक्त दाताओं ने बिना शर्त उदारता से सहायता की। एवं और उदारचरित संस्कृत प्रेमी सद्गृहस्थों ने गङ्गा के प्रवाह की तरह इस प्रकाशन कार्य में योगदान दिया। इससे हृदय में इतना बडा बोझ उठाने की आशंका दूर हो गई।

६० से अधिक ग्रन्थ और शिल्पशास्त्र एवं वेद, उपनिषद्, तन्त्र आगम पुराणादि स्थित अनेक ग्रन्थों का परिशीलनपूर्वक शास्त्रशुद्ध विषयों का प्रतिपादन करते करते इस ग्रन्थ के आलेखन में पाँच साल बीत गये। फिर तत्त्वावधानपूर्वक ग्रन्थ की प्रेस कॉपी तैयार हो गई।

प्रेसवालों ने पहले एक ही साल में प्रकाशित करने का वादा करके काम हाथ में लिया।

लेकिन संस्कृत भाषा और ऋग्वेद कृष्ण यजुर्वेद, शुक्ल यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के स्वरसहित मन्त्रों को देखते ही वे घबडा गये। और समय की मर्यादा का पालन न कर सके। लगातार उनके पीछे घूमते घूमते तीन साल बीत गये। मैं भी वार्धक्य के कारण थक गया। और मन में आशंका हुई कि, यह कार्य पूर्ण होगा या नहीं।

वेद के मन्त्र और स्वरों के देखते हुए ही कम्पोझीटर इधर उधर करने लगे। इसी वजह से ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में तीन प्रेस बदलने पडे। चारों ओर से घिरा हुआ में उद्विग्न हो गया। अन्त में गुरुमहाराज की अन्तःकरण में श्रद्धापूर्वक प्रार्थना की और प्रार्थना के फलस्वरूप यह "प्रतिष्ठामौक्तिकम्" ग्रन्थ विद्धजनों के करकमलों में सादर कर रहा हूं।

वर्तमान युग में ज्ञान का एवं विशेष करके वेद शास्त्र और संस्कृत भाषा का दिनप्रतिदिन ह्रास होता जा रहा है। कम्पोझीटरों को कितनी बार सूचना देने पर भी शुद्ध किये बिना ही छाप देते हैं। इस कारण से प्रकाशन में अशुद्धियाँ रह गई है। मुझे विवश होकर उन अशुद्धियों को शुद्धिपत्रक में दिखानी पडी है।

पूज्य गुरुमहाराज की कृपादृष्टि से आठ साल से वाराणसी में काशीविश्वेश्वर न्यास परिषद के सभ्य के नाते भगवान् विश्वेश्वर की यत्किञ्चित् सेवा का अवसर मिला है। इस से गङ्गास्नान, विश्वेश्वर के दर्शन और सेवा का लाभ मिलता है।

अन्त में पूज्य मोटी बहन की प्रेरणा से, गुरुमहाराज के शुभ आशीर्वाद से वेदशास्त्रप्रेमी आर्यसंस्कृतिसंरक्षण के पुरस्कर्ता भक्तजन और उदार दाताओं के करावलम्बन से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। मैं उन सबका आजन्म ऋणी हूं।

विद्धजनों से प्रार्थना है कि मनुष्य सुलभ दोष की क्षमा देकर गुणग्राही दृष्टि से इस ग्रन्थ को अपनाएँ।

पूज्य गुरुमहाराज और भगवान् काशीविश्वेश्वर, भक्तजनों का एवं उदारचरित दाताओं का सर्व प्रकार से मङ्गल करें। और आर्यसंस्कृति के संरक्षण एवं भगवदाराधना में उन सब को प्रेरणा देते रहे। यह ही प्रार्थना है।

गुरुचरणानुरागी,
पण्डित लक्ष्मीशंकर गौरीशंकर शुक्ल
ठि० घंटियाडा, वडोदरा-१. (गुजरात) भारत

श्री भूँयात्

॥ प्रास्ताविकम् ॥

सर्वव्यापकरूपाय नानारूपधराय च ।
अमूर्त्ताय समूर्त्ताय नमस्ते परमात्मने ॥

इह जगति बुध्ध्याद्यष्टगुणैर्भावनाख्यसंस्कारविशिष्टस्यात्मनो नित्यद्रव्यत्वेन स्वीकारान्मायाऽवृतस्य जीवस्य देहसंयोगवियोगरूपव्यापारद्वयस्यैव परिणामरूपपूर्वजन्मपरजन्मत्वेन परिगणनादनेकजन्म परिभ्रमणशीलजीवात्मनि सदसत्कर्मद्रुमफलभोक्तृत्वं समापतति । तत्रापि मानवजन्म परमात्मनो विशिष्टानुग्रहेण मध्यसोपानसमारूढमूर्ध्वमारोढुमन्धतमसं वा स्वकर्मणा गन्तुं प्रभवति । जगति नाम रूपगुणक्रियारहितं किञ्चिद् द्रव्यं नोपलभ्यते ।

यथाऽन्धः पथि चलन्नपि पुरः पश्चादूर्ध्वमधो वा द्रष्टुं न कल्पते, तथा मानवोऽपि जीवनं यापयन् मया कुत्र गन्तव्यमिति निश्चयरहित इतस्ततो बम्भ्रम्यमाणः गन्तव्यं लक्ष्यस्थानं न पश्यति नाप्नोति च । मानवेतरजीवानां तु कर्मभोगमात्रपारवश्याज्जीवनयापनं स्वोदरपूरणं प्रजोत्पादनञ्च विहाय नान्या गतिः ।

एवं स्थावरजङ्गमसृष्टौ कणशोऽणुशश्च व्याप्तः सर्वव्यापकश्चेतनारूपः परमात्मा नित्यं सन्निहितोऽप्यकर्मण्यानां भावनारहितानां सुदूरतरः । जन्मजन्मान्तरार्जितसुकृतनिचयवतां योगिनां स परमात्मा स्वान्तस्थोऽमूर्तो विभुश्च विलसति । पुनः पुण्यसंस्कारवतां संसारिणां मायामहोदधिमग्नानां मनुष्याणां कृते साक्षात्कर्तुमशक्य इति तदुपायत्वेन सर्वधर्मेषु सूर्याचन्द्रमसौ ज्योतिर्वह्निश्चित्रं शैली लौही मृन्मयी वा प्रतिमा वेदिका च इत्यादीन्यनेकानि सावयवानि निराकृतीनि वा प्रतीकानि भगवदाराधनाय स्वीकृतानीति भगवतो नानारूपधरत्वं मूर्त्तत्वञ्च ।

अत एव 'भगवद्गीतायां' यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्' शतपथब्राह्मणे 'तं यथा यथोपासते तदेव तद् भवति, तद्धैनान् भूत्वाऽवति' इत्यादीनि वचनानि परमात्मनः प्रकृतेश्च सम्बन्धाद् विविधाकार रूपवाहनवर्णायुधादिसहितानि समूर्त्तानि शालिग्रामशिवलिङ्गादीन्यमूर्त्तानि च विविधानि स्वरूपाणि स्वाभिलषितानि समुपास्यन्ते जनैः ।

मनुष्यजन्मन उपरितनपदावाप्त्यै परमात्मनश्चिदंशरूपं स्वान्तस्थं तत्तद् देवताराधनाभ्यामिः क्रामं क्रामं स्वेष्टदेवताप्रतिमायां स्थिरीकृत्य परमाह्लादमनुभवति जनः ।

एवमपश्यतः परमात्मा कुत्रापि न, सम्यक् पश्यतः स्वान्तस्थः स पुरः प्रतिमायां पूर्णरूपेण प्रकाशते, शोधयति चाधिकारिभक्तस्य चेतोमलम्, विभ्राजति च मानसे सन्ततम् । एतदभिप्रायेण मया

मङ्गलाचरणे 'स्वान्तस्थचित्कलांशस्य पुरो बिम्बे निवेशनम् । शास्त्रनिर्दिष्टविधिना प्रतिष्ठा कीर्तिता बुधैः' इत्युक्तम् ।

अनेकजन्मयोगसिद्धा योगिन उपासकाश्च स्वात्मन्येव परमात्मानुभवाह्लादोदधौ निमग्नाः सन्तः सर्वत्र स्वान्तरचक्षुषा परमात्मानं स्वेष्टा देवताश्च पश्यन्ति । तथाऽपि लोकसङ्ग्रहाय तत्तद्देवतापूजनादिकं कुर्वन्ति ।

सामान्यमनुजानां कृते 'यज देवपूजा सङ्गतिकरण दानेषु' इति धात्वर्थवैशद्येन त्रीणि सोपानानि परमात्मप्राप्तये समापतन्ति । तत्र पूजायां प्रतीकमावश्यकं चित्तस्थैर्यायेति लघ्वी बृहती वा प्रतिष्ठिता प्रतिमाऽवश्यकी भवति । तदनु सन्ततसमाराधनेन सञ्जाते मनोदार्ढ्ये गुरुपरम्पराप्राप्तोपासनया स्वाभीष्टदेवतया साकं सङ्गतिकरणं भवति । तत्र साधनत्रयं यन्त्रमन्त्रतन्त्ररूपं प्रधानभूतम् । अस्मिन् सङ्गतिकरणरूपद्वितीयसोपाने सिध्धे तृतीयं सोपानं दानरूपं न ममेत्युक्त्या पुनः पुनः संसाधितेन मनसा परमात्मने स्वेष्टदेवतायै वा स्वात्मसमर्पणेन सायुज्यमुक्तिरूपं संसिध्यति । सर्वधर्मेषु स्वल्पेन महता वा विधिना इदमेव जीवनस्य परमकर्तव्यं स्वीकृतमिति नास्ति शङ्कालेशः । ये खलु नास्तिकाः 'परमात्मा नास्तीति' महताऽऽक्रोशेन प्रथयन्ति ते जानन्तु नाम यद् यया जिह्वया प्रतिषेधं कुर्वन्ति, येन कर्णेन च प्रतिषेधं शृण्वन्ति, तज्जिह्वाश्रोत्रगता चिच्छक्तिर्न स्वीया किन्तु परमात्मगतैवेति जानन्तु सुधियो निश्चप्रचम् ।

इदं परमात्मसन्निधानरूपं कर्म शक्तस्य साधनसापेक्षमशक्तस्य च साधननिरपेक्षमिति मार्गभेदेऽपि राजमार्गमेवावतरतीति शास्त्रैर्विविधस्वरूपा वैदिकास्तान्त्रिका आगमोक्ताश्च पन्थानः प्रवर्तिताः सन्ति । तेषु यस्य यस्मिन् यावानधिकारः सोऽध्वा समाश्रयणीयः ।

याज्ञिकेषु भूयसः कालादेका किंवदन्ती प्रचलति 'यो वास्तुशान्तिं जन्माष्टमीव्रतोद्यापनं, प्रतिष्ठाकर्म, श्राद्धप्रयोगश्च यथाविधि सम्पादयितुं कल्पते, स एव याज्ञिक' इति । कारणश्चात्रैतेषां विषयाणामनेक श्रुतिस्मृतितन्त्रागमपुराणशिल्प ज्यौतिषादिविषयकानुकूलप्रतिकूलवचनजालनिगडबन्धः । एतेष्वपि प्रतिष्ठाविधिष्वागमादिभिः प्रतिपदं विविधक्रियामन्त्रादिनिर्देशात् पुनश्च शिल्पशास्त्रस्य प्रतिष्ठायां शेखरायितत्वात् विद्वांसमप्याकुलीकरोति, सकलमपि विकलं करोति कर्तारं वचनवृन्दम् । तत्र निर्धारितास्पसमये भागत्यागलक्षणाकाण्डानुसमयाश्रयणमन्तरा श्रद्धावतश्चिकीर्षोर्याज्ञिकस्य नान्यः पन्था विद्यते ।

तत्र प्रतिष्ठाप्रकारविषये हिन्दीभाषाशास्त्रार्थप्रकरणे सुप्रतिपादितमिति नात्र चर्वितं पुनश्चर्व्यते पूर्वजन्मजन्मान्तरसञ्चितवशाद् दैवयोगाद्वा यावज्जीवं शास्त्रार्थ संभृतं प्रत्यक्षकृतिकठिनमनेकविकल्पाक्रान्तं प्रतिष्ठाविधानं शिरसि पतितं भगवतैवाद्य यावन्निर्वाहितं निर्वाहयिष्यति चेति दृढिष्ठा श्रद्धा । 'न प्रतिष्ठासमो रिपुः' इतिवचनमेव बिडालो मूषकमिव गले गृह्णाति याज्ञिकनिकरम् । अस्माद् भयाद् भगवति वेदे शास्त्रे कर्मणि च निष्पापा निर्दोषा कृतिपरायणता श्रद्धा चेत्यायुधद्वयं कारयितारं तारयितुमलमिति मे विश्वासः ।

साप्तपदीनसख्यवत् परम्परया प्रवहति वेदशास्त्रनिर्झरे निमज्जता मया पितृचरणानां सकाशाद् वटपत्तनस्थराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयेऽन्तरा वाराणस्यां पुनश्च वटपत्तने शारदाम्बानुग्रहप्राप्त बुद्धिमेधासाहाय्येन प्रातःस्मरणीय तत्तच्छास्त्र शेवधिरूपपण्डितवर्याणां चरणौ निषेव्य गिरिनिकुञ्जगतपादपसुगन्धिसुमनिर्गच्छन्मधुनिर्झरपायिलोलुपमधुकरवृत्तिमाश्रयता यत्किञ्चिन्मधु समासादितं स्वतोषाय परोपकाराय च तदेवात्रोपस्थापितम् ।

यावज्जीवमध्ययनाध्यापनपरम्परां समाश्रयन्नहमेतस्माद् बहु बहु समाप्नवम् । भगवद्दत्तात्रेयवदनेकगुरुचरणसंसेवनेन च मया लक्षकोटिमुद्राधिकं ज्ञानधनं क्रोडीकृतं तदानृण्यं संशोधयितुं जन्मशतमपि नालमिति मन्ये । एवमद्वात्रिंशद्वर्षाणि यावद् विविधशास्त्राध्यापनेन 'वंशो द्विधा विद्यया जन्मना च' इति वसिष्ठोक्तवचनेन जन्मद्वयमपि संसाधितमत्र भगवत्कृपैव निदानम् ।

अध्यापकपदान्निवृत्तस्य मे दिनानि कथं यास्यन्तीति शिरःसमारूढा चिन्ता स्वेष्टदेवताब्रह्मेश्वरप्रासादादिनिर्माणे हायनत्रयमपारयत् । अध्ययनकाले वर्षद्वयं यावद् वाराणस्यां वसता मया गङ्गास्नानं विश्वेश्वरदर्शनं च कृतम्, तत्फलपरिपाकरूपं काशीविश्वनाथन्यासपरिषत्सभ्यपदमष्टवर्षेभ्यः पूर्वं प्राप्तम्, तेन च पुनः पुनः काशीविश्वेश्वरसेवावसरः प्रवर्तते ।

स्वातन्त्र्यप्राप्त्यनन्तरं विज्ञानभौतिकयुगप्रवर्तने भारतीयसंस्कृतिजीवातुभूतवेदशास्त्राध्ययनपरम्पराऽर्थसञ्चयमात्रव्यापारप्रवृत्तैर्भारतीयैर्वेदाः शास्त्राणि संस्कृतिः सदाचारः संस्कृतभाषा च पाषाणैर्बद्धा मोहमहोदधितलं प्रापिता प्रतिक्षणमक्षीयत । ईदृश्यवसरे धर्मादिवार्त्तायाः का कथा ।

यथाकथञ्चित् स्वैरं धर्माचरणं यज्ञपुराणश्रावणादिकं कर्मकाण्डं च स्वोदरपूरकधनार्जनव्यापारत्वेन मन्वानैर्याज्ञिकपौराणिकादिभिरवशिष्टं धर्मादिरहस्यमपि समूलमुत्सादितमिति खेदमावहति चेतः ।

वेदधर्मादिरहस्यं समुच्छिद्यमानमवलोकयता शारदाम्बानुग्रहाद् यज्ज्ञानं मया प्राप्तं तत् क्षरेऽस्मिन् देहेऽक्षरस्वारूप्यं प्राप्नुयादिति सुगभीरकठिनतमप्रतिष्ठाप्रयोगविषयकशास्त्रार्थशिल्प पुराणवेदचतुष्टयागमतन्त्र ज्यौतिष धर्मशास्त्र शिल्पादि विषयान्नीरक्षीरविवेकेनालोच्यालोच्य सप्रमाणः प्रतिष्ठामौक्तिकग्रन्थः प्रतिष्ठाविषयक विविधपद्धतिनिचयानुरोधेन पञ्चभिर्वर्षैः समपाद्यत । ग्रन्थेऽस्मिन् प्राधान्येन समावेशिता ग्रन्था अधो निर्दिश्यन्ते ।

मत्स्यपुराणम्,	मानसोल्लासः,	प्रासादमण्डनम्,	बृहद्वास्तुमाला,
अग्निपुराणम्,	अपराजितपृच्छा,	प्रासादमञ्जरी,	ईश्वरसंहिता,
राजधर्मकौस्तुभः,	काश्यपशिल्पम्,	राजवल्लभः,	वैखानससंहिता,
शारदातिलकम्,	नारदपञ्चरात्रम्,	विष्णुधर्मोत्तरम्,	भविष्योत्तरम्,
मेरुतन्त्रम्,	पूर्त्तकमलाकरः,	प्रतिष्ठेन्दुः,	उत्सर्गमयूखः,
मन्त्रमहार्णवः,	प्रतिष्ठामयूखः,	प्रतिष्ठेन्दुशेखरः	वासिष्ठीहवनपद्धति,

तत्त्वसागरसंहिता, प्रतिष्ठासारदीपिका, प्रतिष्ठापद्मनाभः, रुद्रकल्पद्रुमः,
श्रीतत्त्वार्णवः, प्रतिष्ठामार्तण्डः, प्रतिष्ठाहेमाद्रिः, शान्तिसारः,
मन्त्रप्रकाश :, प्रतिष्ठोल्लासः, प्रतिष्ठासरणिः, मार्कण्डेयपुराणम्,
अहिर्बुध्न्यसंहिता, प्रतिष्ठोद्योतः, द्वैतनिर्णयः, हयशीर्षपञ्चरात्रम्
आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टम्, प्रतिष्ठापद्धतिकल्पलता, प्रतिष्ठाकमलाकरः, प्रतिष्ठारत्नमाला
धर्मसिन्धुः, प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहः, रुद्रयामलम्, प्रतिष्ठाप्रकाशः,
निर्णयसिन्धुः, प्रतिष्ठावासुदेवी, प्रतिष्ठातिलकम्, प्रतिष्ठामहोदधिः,
पुरुषार्थचिन्तामणिः, प्रतिष्ठात्रिविक्रमी, प्रतिष्ठाभास्करः, रूपमण्डनम्,
कृत्यसारसमुच्चयः, प्रतिष्ठाचन्द्रोदयः, प्रतिष्ठाकौमुदी, साम्बपुराणम्,
मदनमहार्णवः, श्रीतत्त्वनिधिः, मातृकाविलासः, मन्त्रमहोदधिः,

एवमेतानन्यांश्च बहून् ग्रन्थानाश्रित्य परस्परविरुद्धवचनसत्त्वेऽपि प्रत्यक्षकृतिसाध्यत्वं बहुसम्मतत्वं कृतिसुगमत्वञ्चालोच्य यथायथं तत्तद्ग्रन्थाभिप्रायेण रचितेयं प्रतिष्ठामौक्तिकावली ।

एवं पञ्चवर्षाणि यावद् विविधग्रन्थप्रामाण्यान्यालोकमालोकं ग्रन्थः समाप्तिं प्रापितः । 'अनुक्तमन्यतो ग्राह्यम्, यत्र साक्षादुपदेशाभावस्तत्रातिदेशो ग्राह्यः' इति न्यायद्वयेन चतुर्दशपञ्चदशषोडशस्नपनप्रकाराः संकलिताः ।

ग्रन्थलेखनसमाप्त्यनन्तरं प्रतिक्षणमेधमानमत्स्यभगवत्स्वरूपमिव महार्घतारूपवेतालताण्डवे समेधमाने कथं प्रकाशनीयोऽयं ग्रन्थ इति मानसक्षोभिणी चिन्ता समुदभवत् । 'अस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च' इति कालिदासोक्तेर्मयि सत्त्वेऽपि ग्रन्थप्रकाशनसमर्थं श्रीसामर्थ्यं नासीदिति प्रतिजाने । किन्तु शारदाम्बा भगवती स्वसखीं श्रियं सम्मान्य पण्डितराजगुरुश्रीमन्महादेव सद्गुरुहृदयं प्रविश्य तद्भक्तान्, ग्रन्थप्रकाशने साहाय्यदानाय प्रैरयदिति क्रमेण प्रकाशनकार्यं प्रारभत । तदनु सरस्वतीसमुपासकैः प्राचीनवेदधर्मसंरक्षणैकव्रतैर-नेकैर्दातृवर्यैरियं ज्ञानगङ्गासरिदर्थदानेन प्रवाहिता सती प्रकाशनपथमारोहत् ।

कालबलेन प्रतिपलं विलयं गच्छत्सु वेदशास्त्रसंस्कृतिसंस्कृतभाषाज्ञानेषु बहुशः प्रार्थिता अपि वेदस्वरचिह्नभाषाशुद्धिभीता प्रकाशनयन्त्राध्यक्षा मुद्रणाय मुखं विपर्यवर्तयन् । यथाकथञ्चिद् दैववशादेकेन वर्षाभ्यन्तरे ग्रन्थप्रकाशनकार्यं स्वीकृतमपि न पारितम् । तदनु सार्धवर्षे गतेऽन्यो यन्त्राध्यक्षोऽङ्गीकृत्यापि शुद्धवेदस्वचिह्नमुद्रणगर्ते पतितः किञ्चिदकरोत् कार्यं वर्षत्रयान्ते । साहाय्यकर्तृदानभाराक्रान्तः किमुत्तरं दास्यामीति भृशमुद्विग्नश्चान्ते कॉम्प्युटरयन्त्रद्वारा प्रकाशनकार्यं समापयितुं साहसमकरवम् । भगवत्कृपया सद्गुर्वनुग्रहेण च महत् कष्टमनुभूयापि ग्रन्थः प्रकाशित इति सन्तोषमावहामि । वर्षत्रयाभ्यन्तरे द्वि चत्वारिंशद्वर्षेभ्यः पूर्वं प्रकाशितः 'मण्डपकुण्डसिद्धिः संस्कृतपदार्थमञ्जूषाटीकासहिता गुर्जरभाषानुवाद सहिता च' अयं ग्रन्थः हिन्दीभाषिविद्वदनुरोधेन 'मण्डपकुण्डसिद्धिः पदार्थमञ्जूषासंकलितविषयाकृति-दिसमेतहिन्दीभाषानुवादसहिता' पुनः प्रकाशिता । दृश्यते प्रयागे त्रिवेणीसङ्गमे गङ्गायमुनाप्रवाहौ प्रत्यक्षौ

सरस्वती प्रवाहश्चान्तर्लीनः, एवमेव प्रकाशितेऽस्मिंन्निबन्धे यन्त्राध्यक्षैः प्रसह्य प्रवाहत्रयं संयोजितम्, आदौ गङ्गा मध्ये सरस्वती, अन्ते च यमुना-इति विद्वद्भिः क्षन्तव्यं प्रकाशनवैचित्र्यम् । एकेन प्रकाशकेन 'ब्राह्मण, स्वगृहच्छत्रं विक्रीयाप्येतत् कार्यं साधयितुमशक्यम्' इत्युपहसितः स्वात्मनाऽपात्रपे । किन्तु भगवच्चरणगतस्य न किञ्चित् कृत्यमवशिष्यतीति पूज्यपादराजगुरुमहादेवमिश्रसद्गुरुशुभाशीस्ततिभूषितया श्रीमत्या कान्ताबहेन (मोटीबहेन) जगन्नाथ त्रिवेदी महाभागया वरदहस्तो मच्छिरसि निहितः । भक्तैश्च सद्य एवोदारसाहाय्येन कार्यारम्भे प्रेरणा दत्ता । तदनु परमोदारचरितैः पण्डितैर्धनिकैश्छात्रैश्च दानगङ्गाप्रवाहः पुरः प्रावर्त्यत, इदमेव शारदाम्बासद्गुरुसमुपासनाफलम् ।

अस्मिन् महति विवादग्रस्तविषयावलीढे महाग्रन्थनिर्माणे येभ्यो गुरुभ्यो मधुकर इव सारस्वतीं माधुकरीं भिक्षामलभे, तेषां सद्गुरूणां सरस्वतीसरिदवगाहनसीकरपानानृण्यप्रदर्शनमन्तरा ग्रन्थनिर्माणमशक्यमिति प्रणतिशुभाशीस्ततिनिवेदनमेव श्रेयान् पन्थाः ।

१ पितृचरणा गौरीशङ्कर शुक्लाः ।
२ पू. बालकृष्ण मुलहेरकर घनपाठिनः ।
३ पू. साकरलाल यज्ञेश्वर दवे शास्त्रिणः ।
४ पं. विठ्ठलराम लल्लुराम दवे शास्त्रिणः ।
५ साक्षात्सरस्वतीरूपाः श्रीधरपदे शास्त्रिणः ।
६ पू. लक्ष्मीनाथ बदरीनाथ शास्त्रिणः ।
७ पं. नर्मदाशङ्कर मनसुखराम शास्त्रिणः ।
८ पं. मोहनलाल रणछोडजी जोशी शास्त्रिणः ।
९ पं. दत्तात्रेय काशीनाथ बेलणकर शास्त्रिणः ।
१० पं. बालकृष्ण पञ्चोली शास्त्रिणः । (काशी)
११ पं. बालकृष्ण मिश्र महाभागाः । (काशी)
१२ पण्डित पञ्चानन बदरीनाथ काशीनाथ शास्त्रिणः ।
१३ पं. हरिशंकर ओंकारजी शास्त्रिणः । (बुरहानपुर)
१४ पण्डितसार्वभौम-स्वामिभगवदाचार्याः (अमदाबाद)
१५ राजगुरु-पण्डित-महादेवमिश्र सद्गुरवः ।
१६ प्रातः स्मरणीय-श्रीमद्रङ्गावधूताध्यात्मगुरवः ।
१७ पं. मूळशंकर माणेकलाल याज्ञिक महाभागाः ।
१७ पं. दिगम्बर गणेश आप्टे महाभागाः ।
१८ पं. शोभितमिश्र महोदयाः ।

एते चान्ये च बहवः सरस्वतीपादसुमसौगन्ध्येन मामन्वभूषयन् ।

जगति केवलः परमात्मा सर्वज्ञो ज्ञानाधिकरणत्वात्, जीवस्तु तदंशभूतोऽल्पज्ञ एवेत्यात्मानमकिञ्चिज्ज्ञं मन्वानः सर्वज्ञम्मन्यान् पण्डितान् दोषज्ञसंज्ञान्वर्थकरणाय त्रुटिसंशोधनाय साञ्जलिबन्धं प्रार्थये ।

दोषाणां मानवसहजत्वात्, यन्त्रालयस्थाक्षररिपुसीसकाक्षरसंयोजकानां पुनः संशोधनालस्याद्, योजिताक्षरेषु यन्त्रभारेणाक्षरभङ्गाच्च काश्चन त्रुटयः स्युरेवेति तद्दूरीकरणाय विज्ञान् मानये ।

तृप्ति प्रकाशनेन १ तः २१६ पृष्ठानि, भारतीप्रकाशकेन २१७ तः २५२ अन्तेच १ तः २४, मध्येच अहमदाबादस्थ श्री प्रकाशभाईभट्टमहाभागैः कॉम्प्युटरद्वारा २५३ तः प्रयोगप्रकरणं सम्पूर्णम्, मण्डलाकृतयः आदिमो भागश्च शीघ्रं प्रकाशित इति समेषामुपकारभरमावहामि ।

मध्यमभागसंशोधनं अहमदाबादस्थ प्राध्यापकवर्य श्रीमत् परमानन्द दवेमहाभागैः मत्सुहृद्वर्यैः स्वकार्यं मत्वा कार्यबाहुल्यसत्त्वेऽप्यङ्गीकृत्य सम्पादितमिति उपकारपरम्परां मय्यनुभवामि । मत्पुत्रेण दुहित्रा मातुलेयाङ्गजेन च सहकारो दत्तस्तदर्थं तेषां दीर्घमायुरारोग्यं कामये ।

एतत्प्रकाशनानन्तरं परमात्मानुग्रहतत्त्वे 'सहस्रकलशाभिषेकपद्धतिः' प्रतिष्ठेन्दुः, संस्कारसुधा, शान्तिसुधा, व्रतसुधा चेति ग्रन्थपञ्चक प्रकाशनं चिकीर्षितम्, प्रकाशने शारदाम्बानुग्रहः, जीवनसत्त्वञ्च प्रधानम् ।

ग्रन्थप्रकाशने ये केचन धनश्रमसूचनयातायातदानैरारादुपकारकाः सन्निपत्योपकारकाश्च सन्ति, तेभ्यः सर्वेभ्यः परमात्मा दीर्घमायुरारोग्यमैश्वर्यं सुखं शान्तिमभ्युदयञ्च दद्यादिति भगवत्सद्गुरुपण्डितवर्यान् नामं नामं विरमामि ।

यदत्र दूषणं मे तत्, ऋषीणाममृतं पुनः ।
पायं पायं परानन्दं प्राप्नुयुर्याज्ञिकाश्चिरम् ॥

विदुषां वशंवदः
पण्डित लक्ष्मीशङ्कर शुक्लः
व्याकरणाचार्यः, साहित्योत्तमा, काव्यतीर्थः
म०स० विश्व० संस्कृतमहाविद्यालयस्य
निवृत्तवेदकर्मकाण्डव्याकरणसाहित्यादि प्राध्यापकः,
काशीविश्वनाथन्यासपरिषत्सभ्यश्च ।
लब्धगुर्जरराज्यसम्मानपत्रः ।

श्रीः

विद्वद्वरेण्यानां सम्मतयः ।

भगवद्विभूतिमद्देवहूतिकर्दमकपिलमुनित्सवतारपूततम-गुर्जरमण्डलविभूषाभूषितसिद्धक्षेत्र (पुर) स्थविद्वच्छेवधिरूपौदीच्यद्विजकुलाद्रिशेखरायमाणे परम्परासम्प्राप्त वेदशास्त्रादिनिचयसंरक्षणैकव्रतान्वये सम्भूतानां सद्धर्माचरणसन्निष्ठनिगमागमश्रौतस्मार्तद्यनेकविषयपारङ्गतानां वेदाचार्यकाव्यपुराणवेदमीमांसा तीर्थाद्यनेकपदवीविभूषितानां निजविद्यातेजोबलसम्प्राप्तगुर्जरराज्यप्रदत्तसम्मानपत्रकमण्डितानां वेदशास्त्रसम्पन्न श्रीमद्भाईशङ्करात्मजपण्डितवर्यनरहरिशास्त्रिमहाभागानां सम्मतिः ।

श्रीः शरणम्

सर्वयज्ञेष्वतिगहनप्रतिष्ठाप्रयोगप्रयोजकग्रन्थोऽयमद्यावधि प्रकाशितेषु वासुदेवी त्रिविक्रमीदर्पण पद्मनाभप्रतिष्ठेन्दुशेखरप्रकाशमयूखमहोदधिप्रभृतिषु प्राचीनपण्डितवरेण्यविरचितेषु श्रौतस्मार्तपुराण-तन्त्रागमोपनिषदादिपारावारमथनद्वारा विद्वद्वरेण्यैः स्वीयभूरिपरिश्रमेण सङ्ग्रथितः प्रभाते सूररश्मिः कमलमिव विशिष्टया श्रिया संयोजयति । वपुर्भूषकवासोऽलङ्कारलावण्यवत् प्रतिष्ठादिसर्वकर्मजात शास्त्रार्थप्रमाण प्रधानकार्य परिपूरकालभ्यानुपमसर्वविषयशास्त्रार्थसंकलनसत्कर्मपथप्रदर्शकप्रियतरप्रतिष्ठा महामूल्यमौक्तिकालङ्कृतशिरोधार्यमुकुटविषयगुणगुम्फितमौक्तिकालङ्कृत प्रतिष्ठामौक्तिकाख्यं ग्रन्थरत्नं याज्ञिकानां सर्वदोपकारकं भविष्यति ।

वेदव्याकरण साहित्यन्यायवेदान्त मीमांसाशास्त्रज्ञैः शुक्लोपाह्व श्रीलक्ष्मीशङ्कर शास्त्रिवरैः सर्वशास्त्रीयप्रमाण पथप्रदर्शक ग्रन्थराजोऽयं प्रकाशितः, येन मोमुद्यते मे चेतो विदुषाञ्च । यत्र स्नपनहोमदेवतास्थाननिवेशनदृष्टिनिरूपणादिविलिष्ट विषयाणां सारल्येन कथमप्यप्रकाट्यविषयाणां ज्ञानं यथा स्यात्तथा प्रयतितं दृश्यते ।

ग्रन्थेऽस्मिन् सप्तधा विषया विभक्ता वर्तन्ते । ते च यथा

प्रतिष्ठामौक्तिके दृष्टा विषया मुनिसंज्ञकाः । शिल्पशास्त्रादिविषया भाषया प्रथमे कृताः ॥१॥
नेत्रसंज्ञप्रकरणे सर्वशास्त्रार्थसङ्गतिः । तृतीये सर्वदेवानां मन्त्रा वेदागमस्थिताः ॥२॥
तुरीये सन्ति मन्त्रा ये कलशद्रव्यबोधकाः । एकादितः सहस्रान्ताः कलशाः संप्रकीर्तिताः ॥३॥
इषुप्रकरणे साङ्गाः प्रयोगाः परिकीर्तिताः । रसप्रकरणे सन्ति नानादेवाः पृथक् पृथक् ॥४॥
षड्विधाश्चैव योगिन्यश्चतुर्धा क्षेत्रपालकाः । गणेशरामकृष्णादियन्त्राणि दैवतानि च ॥५॥
सप्तमे मण्डलान्येवं पृथङ्नीराजनादिकम् । प्रतिष्ठामौक्तिकं लब्ध्वा लसन्तु सुधियश्चिरम् ॥६॥

एतेषां विषयाणामामूलचूलं परिज्ञानाय महताऽयासेन प्रकाशितो महानिबन्धरूपो ग्रन्थराजोऽयं सर्वेषां प्रतिष्ठाकर्मणि महान्तमुपकारं विधास्यति, विदुषां हृदि तत्तत्कर्मपरिज्ञानेन मानसोल्लासं जनयिष्यति चेति शम् ।

मुमदन्तु वेदविज्ञाः कर्मकाण्डपरायणाः । प्रतिष्ठामौक्तिकं धृत्वा लसन्तु ज्ञानतेजसा ॥

विद्वद्वशंवदः पं० नरहरिशास्त्री
वेदाचार्य काव्यपुराण वेदमीमांसातीर्थः
लब्धगुर्जरराज्य सन्मानपत्रः सिद्धपुरम् (उत्तर गुजरात)

श्रीः

वाराणसीस्थ श्रीवल्लभराम सालिग्राम साङ्गवेदविद्यालयोपाध्यक्षाणां निगमागमपारावारपारङ्गतानां स्वाचारपूतानां सन्ततविद्योपासनदाननिरतानां सनातनवैदिकधर्मभारतीयसंस्कृतिसंरक्षणैकव्रतानां धर्मधुरन्धरपण्डितराज - राजेश्वरशास्त्रिद्राविडमहाभाग तनूजानां श्रीमतां विश्वेश्वरशास्त्रि गणेश्वरशास्त्रिद्राविड महोदयानां काशीविश्वेश्वरानुग्रहसंवलितशुभाशीस्ततिसन्तानितं सम्मतिपत्रम् ।

श्रीगुरुः शरणम्

भगवदनुग्रहेण विद्वद्वरेण्यानां श्रीमतां लक्ष्मीशङ्कर गौरीशङ्कर शुक्ल महाभागानां 'प्रतिष्ठामौक्तिक' ग्रन्थः प्रकाशितो भवतीति सर्वेषां विदुषां मोदावहम् । श्रीमन्तः शुक्लमहाभागा विविधागमज्ञाः प्रयोगज्ञाश्च सन्ति ।

'अन्या जगद्धितमयी मनसः प्रवृत्तिरन्यैव काऽपि रचना वचनावलीनाम् ।
लोकोत्तरा कृतिरिहाकृतिरार्त्तहृद्या विद्यावतां सकलमेव गिरां दवीयः ॥'

इत्यभियुक्तोक्त्यनुसारं लोकानामुपकाराय श्रीमद्भिः शुक्लमहाभागैर्महता परिश्रमेण विविधागमप्रयोगग्रन्थालोडनविमर्शनपूर्वकं 'प्रतिष्ठामौक्तिक' ग्रन्थो रचितः । अस्मिन् ग्रन्थे बहवो विषयास्तादृशाः सङ्गृहीताः सन्ति, येऽन्यत्र सहजतया नोपलब्धुं शक्यन्ते । वेदशास्त्राध्ययनादिह्रासवशात् साम्प्रत मागमोक्तविषयाणां परिज्ञानं मूलग्रन्थतो दुष्करं संवृत्तमिति तज्ज्ञानं स्वल्पप्रयासेन जिज्ञासूनां भवत्वित्येतदर्थं शुक्लमहाभागैर्हिन्दीभाषायां तद्विवरणं चात्र प्रस्तुतं वर्तते । अतोऽयं ग्रन्थो विदुषामिव सामान्यजनानामपि कृते उपकारको विद्यते । तस्मादेष सर्वैः सङ्ग्राह्यः प्रचारणीयश्च ।

श्री शुक्लमहाभागानां दीर्घायुष्ट्वाय नैरुज्याय च भगवन्तं श्री काशीविश्वेश्वरं प्रार्थयावहे ।

पं० विश्वेश्वरशास्त्री द्राविडः ।
२०४८ तमे वैक्रमेऽब्दे — पं० गणेश्वरशास्त्री द्राविडः ।

श्रीः

विनीतविद्यासौजन्यसिन्धूनामनुकरणीयचरितानां विद्यावयोवृद्धानां वेदव्याकरणन्यायमीमांसावेदान्त साहित्यादिशास्त्रमहोदधिबुध्नगतभासुरतत्त्वमौक्तिकमालाभास्वतां प्रातःस्मरणीयानां वन्दनीयचरणानां श्रीमतां पण्डितवरेण्य-श्रील नरहरिशास्त्रि थत्ते महाभागानां 'एम.ए व्याकरणाचार्य काव्यतीर्थाद्यनेकपदवीसमलङ्कृतानां ग्वालियरसंस्कृतकॉलेजनिवृत्तप्राध्यापकानां फतेपुरस्थ चमडिया संस्कृतकॉलेजनिवृत्तप्रधानाचार्याणां सम्प्रति स्वीयविद्यासूरतेजसा वटपत्तनं विभूषयतां साशीस्ततिसम्मतिपत्रम् ।

'मान्यवर्यैः प्राच्यपाश्चात्योभयविद्यापारावारपारीणैः, गुर्जरप्रदेशशासनालब्धसम्मानैः, व्याकरणाचार्यप्रभृतिनैकविधोपाधिसमलङ्कृतैः श्रीमद्भिर्याज्ञिकशिरोमणि लक्ष्मीशङ्कर शुक्लशास्त्रिमहाभागैर्विरचितं' प्रतिष्ठामौक्तिकाख्यं महाग्रन्थं सम्यगवालोकयम् । ग्रन्थस्यास्य मुख्यतया प्रतिष्ठाप्रयोगप्रतिपादकत्वसत्त्वेऽपि प्रसङ्गोपात्तानामन्येषामपि धार्मिकप्रयोगाणां साङ्गोपाङ्गः साधारो विचारो ग्रन्थेऽस्मिन् दरीदृश्यते । किञ्च ग्रन्थोऽयं प्रामुख्येन माध्यन्दिनप्रयोगमनुसरन्नपि बह्वृचादिसकल वैदिककर्मप्रयोगचर्चां कुर्वन् समेषामुपकारीति निःशङ्कं मन्ये ।

ऋक् - कृष्णयजुः - शुक्लयजुः सामाथर्वेत्यादीनां सम्प्रति लभ्यानां सकलानां वेदानां सस्वरसङ्केता मन्त्राः शास्त्रिप्रवरैर्बृहच्छ्रममवलम्ब्य तत्र तत्र ग्रन्थे विनिर्दिष्टा इति बहूपकृतवन्तस्ते वैदिकयाज्ञिकान् ।

अथ साम्प्रतं पुष्कला धनाढ्या महानुभावा धर्मकृते स्वीयधनमुपयुज्येतेति महामन्दिराणि निर्माय तत्र स्वेष्टदेवतामूर्त्तीः स्थापयन्ति । तेषां मन्दिराणां सूर्याचन्द्रमसौ यावत्संरक्षणस्यापि प्रयतनं कुर्युश्चेत्परं वरमिति सयुक्ति साधारं प्रतिपादितमत्र ग्रन्थे । अपि चैतर्हि प्रायेण यजमानाः केचिद्याज्ञिकाश्च गीर्वाणवाणीं यथावन्न विदन्तीति तेषां कृते ग्रन्थस्य प्रथमप्रकरणे शास्त्रिवर्या हिन्दीभाषायां सुस्पष्टं शास्त्रार्थं विलिख्य बहूपाकृतवन्तस्तानिति वक्तुं नाशक्यम् । सोऽयमपूर्वो ग्रन्थो न केवले भारतवर्षेऽपि तु विदेशेष्वपि विज्ञैः समादृतः सुस्वागतं लभेतेत्याशासे । इत्थमेव च शास्त्रिमहानुभावा मानसं शारीरं स्वास्थ्यं वहन्तः शतञ्च शरदां जीवन्तः क्रमेणेतरेषामपि धार्मिकप्रयोगाणां प्रकाशनं कुर्वन्तो धार्मिकजनाननुगृह्णन्त्विति कारुणिकं परमेशमभ्यर्थये । शम् ।

पण्डित नरहरिशास्त्री थत्ते ऋग्वेदी
एम.ए व्याकरणाचार्य-काव्यतीर्थ
पूर्वप्रोफेसर, संस्कृतकॉलेज, लश्कर-ग्वालियर
पूर्व प्रिन्सीपाल, चमडिया संस्कृतकॉलेज, फतेपुर, जयपुर

ए-१७ शारदानगर सोसायटी,
निझामपुरा, बडोदरा-२. (गुजरात)
फोन नं. २३६२७

श्रीः

संस्कृतिसदाचारसदन्वयशालिनां प्राच्यप्रतीच्योभयविद्यामहोदधिपारङ्गतानां वेद-न्याय व्याकरण-साहित्य-मीमांसा-वेदान्तादिनिखिलविद्याशिरोमणीनां नानाविषयकोत्कृष्टज्ञानसंभृतग्रन्थलेखादिभिः प्रदर्शितगभीरतत्त्वावगाहिवैदुष्याणां सौजन्यौदार्यादिगुणगरिमविमलस्वान्तानां सन्ततविविधविद्यापरिशीलनैकव्रतानां राष्ट्रपतिप्रत्तसम्मानविभूषितानां महाराजसयाजिरावविश्वविद्यालयीय संस्कृतविनयविभागप्राच्यविद्यामन्दिराध्यक्षाणां सम्प्रति निवृत्तानामपि विद्यादानेऽहर्निशं प्रवृत्तानां पण्डितकुलमूर्धन्यानां स्वदेशपरदेशेषु विद्याविख्यातयशसां श्रीमतां डोक्टर-प्रोफेसर-अरुणोदय नटवरलाल जानीमहोदयानां M.A.,PHD. D.LITT. महामहोपाध्यायाद्यनेक पदवीसमलङ्कृतानां प्रतिष्ठामौक्तिकग्रन्थविषयकोऽभिप्रायः ।

'न केवलं वटपत्तनस्यापि तु समग्रगुर्जरप्रान्तस्य कर्मकाण्डविषये रत्नभूतैः न्यायव्याकरणसाहित्यतन्त्राद्यनेकशास्त्रेषु कृतभूरिपरिश्रमैः वटपत्तनस्थ संस्कृत महाविद्यालयस्य निवृत्तप्राध्यापकैः वटपनस्थविद्वत्सभाया अध्यक्षैः सम्प्राप्तगुर्जरराज्यसम्मानैः पण्डितवर्य श्रीलक्ष्मीशङ्करशुक्लमहाभागैर्विरचितः प्रतिष्ठामौक्तिकाख्यो ग्रन्थो मया सबहुमानं विलोकितः ।

ग्रन्थेऽस्मिन् प्रथमे प्रकरणे हिन्दीभाषायां प्रतिष्ठाशिल्पादिविषयकः शास्त्रार्थः संदब्धोऽस्ति । द्वितीयप्रकरणे बहुशः स एवं विषयः संस्कृतभाषायां निबद्धोऽस्ति । तृतीये प्रकरणे विविधदेवतानां मन्त्राः यन्त्राणि च दत्तानि सन्ति । चतुर्थप्रकरणे षोडश स्नपनविधयः संगृहीताः सन्ति । पञ्चमे प्रकरणे प्रतिष्ठाप्रयोगः साङ्गोपाङ्गं लिखितोऽस्ति । षष्ठे प्रकरणे विविधग्रन्थेषूदितानां योगिन्यादीनां नामान्येकत्र संगृहीतानि संदृश्यन्ते । अन्तिमे सप्तमे प्रकरणेऽनेकेषां देवानां नीराजनानां सङ्ग्रहः समुपलभ्यते ।

एवमस्मिन् ग्रन्थे प्रतिष्ठासम्बन्धिनः समस्ता विषयाः सप्रयोगमिदम्प्रथमतया दरीदृश्यन्ते । अतोऽयं ग्रन्थः प्रतिष्ठाविषयकः सर्वसङ्ग्रहः (ENCYCLOPEDIA) भवितेति निश्चप्रचम् ।

इदानीन्तनानां याज्ञिकानां कर्मकाण्डविषयकं ज्ञानं दिने दिने ह्रासतामुपैति । केवलं धनार्जन प्रसक्तास्ते न जिज्ञासवः । नापि च तद्विषयकान् ग्रन्थानवलोकयन्ति । तेषां कृते ग्रन्थोऽयं न मार्गदर्शकोऽपि त्वाशीर्वादरूपोऽपि भविष्यतीत्यत्र नास्ति मनागपि शङ्कावकाशः ।

ग्रन्थोऽयं श्रीलक्ष्मीशङ्करमहाभागानां कीर्तिरूपो भूत्वा भविष्यत्कालीनानां याज्ञिकानां महते उपकाराय भूयादित्याशास्य विरमामि ।

राष्ट्रपतिसम्मानितः
अरुणोदयो नटवरलालात्मजो जानीत्युपाह्वः
एम.ए PHD. D.LITT. महामहोपाध्यायः ।

वटपत्तनम् ।

श्री :

॥ प्रतिष्ठामौक्तिकम् ॥

अनुक्रमणिका

श्री :

॥ प्रतिष्ठामौक्तिकम् ॥

विषयसूची

(२) संस्कृत शास्त्रार्थप्रकरणम्।

(३) विविधदेवतावैदिकतान्त्रिकपौराण-गायत्रीमन्त्रयन्त्रादिप्रकरणम् ।

(४) चतुर्थं स्नपनप्रकरणम् ।

(५) प्रतिष्ठामौक्तिकग्रन्थे प्रयोगानुक्रमणिका

(६) षष्ठं देवता प्रकरणम्

(७) सप्तमंनीराजनादि प्रकरणम् ।

श्री :

ग्रन्थकर्तृवंशवर्णनम् ।

श्रीमद्गर्गकुलोद्भवः श्रुतिमतां मूर्ध्नि स्थितो द्विजः
श्रीगौडद्विज भूषणो मतिमतां मान्यः स्वकर्मस्थितः ।
नानाशास्त्रविचक्षणः परमदृक् श्रीवासुदेवः सुधीः
शुक्लोभूसुरवन्दितः समभवत् पुण्यैकराशिः पुरा ॥ १ ॥

प्रेमानन्द इतीशसाधनपरस्तत्सूनुराज्ञापरः
विद्यावारिधिपारगो निजतपःपूतोऽभवत् कर्मठः ।
दुर्गाशङ्कर इत्यनन्यमहता भातो निजैः सत्कृतैः
गौरीशङ्कर शुक्लनामतनयं प्राप्नोत् तपोराजितम् । ॥ २ ॥

न्यायव्याकरणादिवेदनिपुणं देवप्रतिष्ठाकरम्
सम्प्राप्योत्तमकीर्तिमाप रुचिरां कर्मण्यतां निश्रुतम् ।
साङ्गोपाङ्गविधीन् मखेषु विदधच्छास्त्रोपदिष्टान् मुदा
दानस्वाचरणैस्तपोभिरभवद् वन्द्यो जनानां सुधीः ॥ ३ ॥

गौरीशङ्करतातपादनिरतो विद्वद्गणाच्छेवधिम् ।
विद्यानां विविधागमेषु निहितं गृह्णन् पदाम्जाननः ।
लक्ष्मीशङ्करनामकोऽहमधुना वन्दे गुरूणां गणम् ।
येषां ज्ञाननिधिं परञ्चविरलं विद्यालयेऽध्यापयम् ॥ ४ ॥

श्रीमत्सयाजीनृपवाहिते शुभे बटोदरे शास्त्रमहोदधिप्लवे ।
विद्यालयेऽधीत्य सुदीर्घकालं छात्रान् नुविद्यान् व्यदधां क्रमेण ॥ ५ ॥

शाकरलाल श्रीधरविठ्ठललक्ष्मीनाथ गुरुवृन्दम् ।
नत्वा गुर्वनुकम्पितचेता विद्यां मुदा व्यतरम् ॥६॥

दुर्ज्ञेये विविधागमोक्तवचनैः प्रासादशिल्पादिभिः
गूढे तत्त्वविशोधनैकनिलये दिव्ये प्रतिष्ठाविधौ ।
देवत्वप्रतिपादकैः सुविधिभिः संशीतिमीदृग्व्याकुले
यावद्बुद्धिबलोदयं व्यरचयं ग्रन्थं सुतत्त्वान्वितम् ॥ ७ ॥

प्राचीनशिल्पविविधागमगूढमूला न्यालोचयन् स्थिरधियाऽचिनवं समुद्रात् ।
मुक्ताफलानि रुचिराणि परिश्रमेण आसाद्य स्थविरतं खलु पञ्चवर्षैः ॥ ८ ॥

आद्ये देशगिरा ततः सुरगिरा सिद्धान्तराशिं पुनः
रामे वेदपुराणतन्त्रगदितान् मन्त्रांस्तुरीये ततः ।
अर्चाशोधकषोडशस्नपनकं द्रव्यैः सुमन्त्रैर्युतम्
भागे पाण्डवके प्रयोगनिचयं प्रातिष्ठिकं प्रोक्तवान् ॥ ९ ॥

षष्ठेऽनेकगुरोस्ततो मुनिमिते नीराजनान्यालिखम्
स्वल्पायासयुतं समुद्धतरणं सिद्धान्ततत्त्वान्वितम् ।
मुक्ताहार महामहोविलसितं ग्रन्थं प्रतिष्ठापनम्
अल्पप्राज्ञजनोपकारसुलभं न्यस्याम्यहं चित्पुरः ॥ १० ॥

श्रीमहादेवरङ्गावधूतसद्गुरुपादयोः ।
समर्पये विरचितं प्रतिष्ठामौक्तिकं शुभम् ॥ ११ ॥

मण्डलानि

१८ कोष्ठात्मकं सर्वतो भद्रम् ।
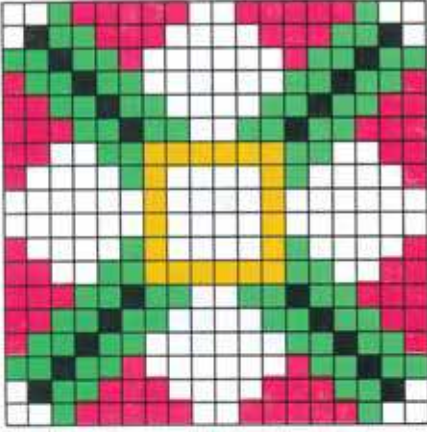
१७ कोष्ठं चतुर्लिंगतो भद्रम् ।

२३ कोष्ठं अष्टलि ङ्गतो भद्रम् ।
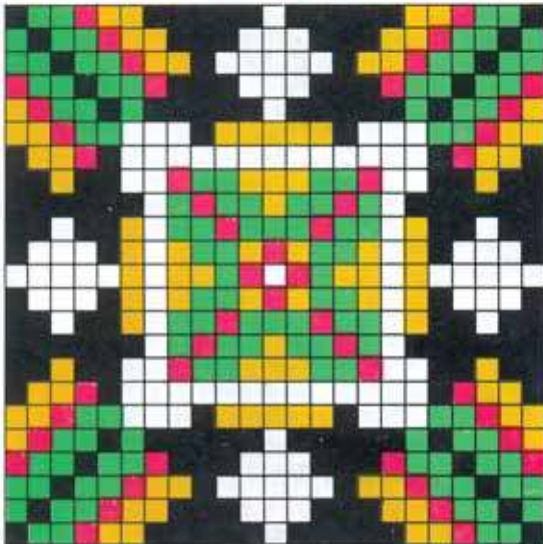
१२ कोष्ठं तान्त्रिकं सर्वतो भद्रम् ।
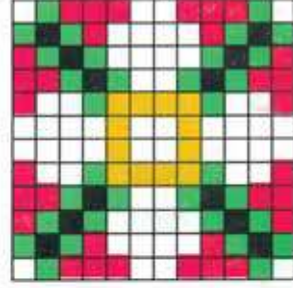
८ कोष्ठं वास्तुमण्डलं
प्रासादमण्डनीय वर्णम् ।

९ कोष्ठं वास्तुमण्डलं
सिद्धान्तशेखरीय वर्णम् ।

१२ कोष्ठं एक लिङ्गतोभद्रम् ।

सर्वमण्डलेषु

सत्त्वरजस्तमः परिधयोभिन्नाः ।

४८ कोष्ठं व्दादषलिङ्गतो भद्रम् ।

३९ कोष्ठं व्दादशलिङ्गतो भद्रम् ।
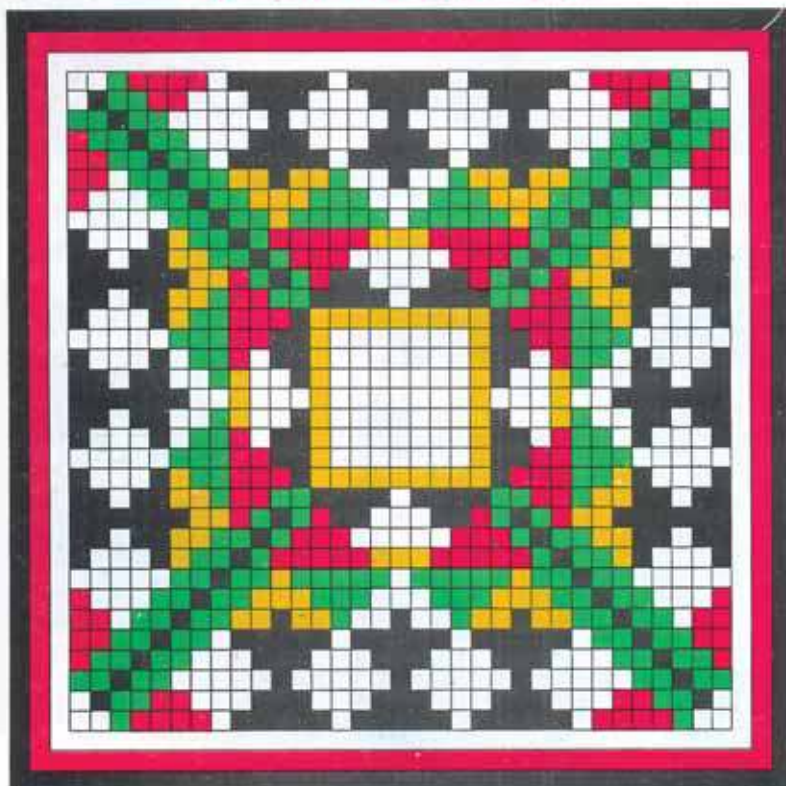
बृहज् ज्यौतिषार्णवे भद्रमार्तण्डे राममुद्राङ्कितं ५६ कोष्ठात्मकं रामभद्रमण्डलम् ।

वारुणमण्डलम् ।

प्रातः स्मरणीय सद्‌गुरु पं. श्री महादेव शर्मा राजगुरु
जिन राजगुरुके आर्शीवादसे मैं इस ग्रन्थके प्रकाशनमें सफल हुआ।
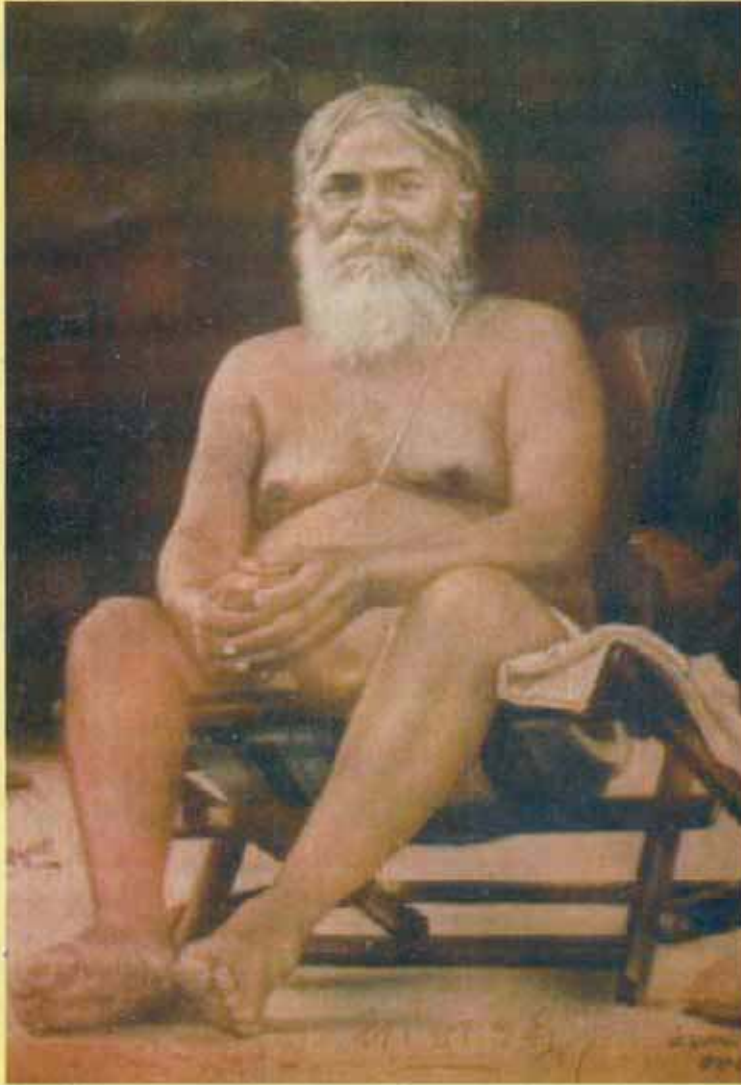
प.पू. सद्‌गुरु रंग अवधूत महाराज – नारेश्वर
जिनके आर्शीवाद जीवनभर सदैव मेरे साथ रहें है।
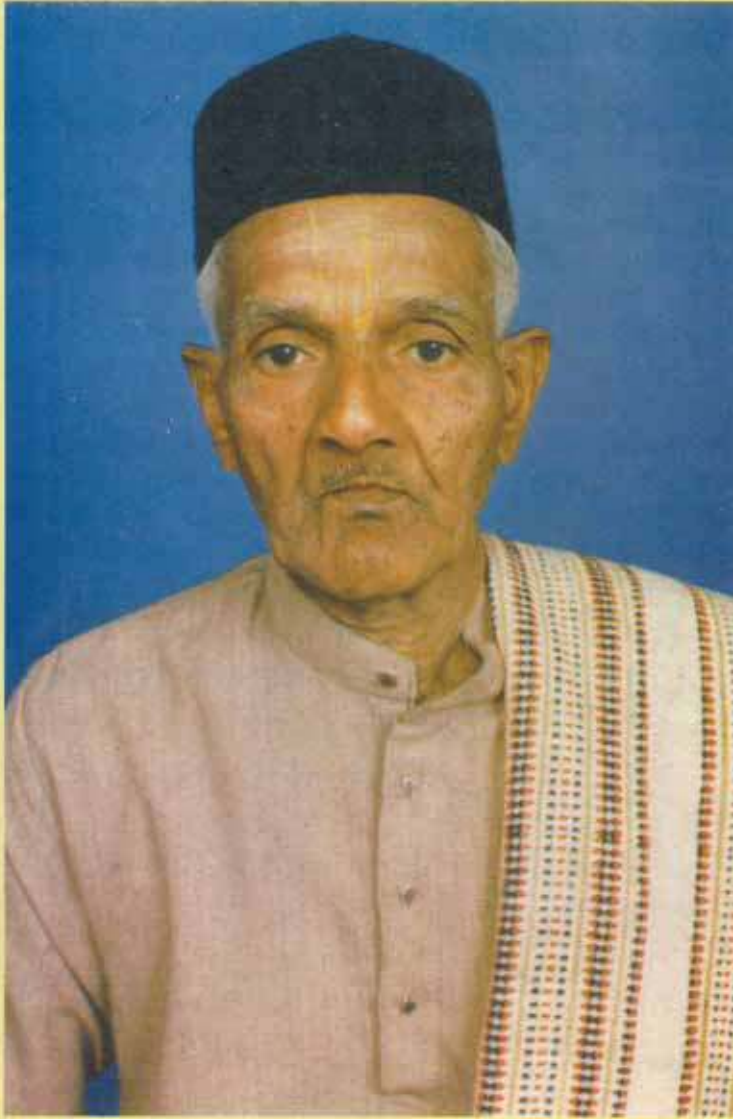
ग्रन्थ कर्ता :

पं. लक्ष्मीशंकर गौरीशंकर शुक्ल

सावली–महाराज श्री पूज्यपाद सद्धर्म
प्रेरक तपोनिष्ठ
पू. श्री स्वामीजी महाराजना
स्मरणार्थे भीमनाथ महादेव–सावली

परम पूज्य पिताश्री अक्षरनिवासी
अंबालाल चतुरभाई चोकसी के पुण्य
स्मरणमें उनके पुत्र नरेन्द, रमाकान्त, हरीश,
अश्विन अंबालाल चोकसी
नारायण ज्वेलर्स–वडोदरा द्वारा सहाय

अन्य सहायक

१. संतराम मंदीर–नडीयाद
२. रा. रा. जोशी जनार्दनभाई, बीपीनभाई, दिलीपभाई
३. पू. पादश्री पण्डित–गणेश्वरशास्त्री द्राविड–वाराणसी
४. रा. रा. श्री महेशभाई चुनीलाल शुक्ले–चांणोद निवासी, धनपाठी सोमनाथशास्त्री तथा इन्दुप्रसाद रमणीकलाल शूक्लना स्मरणार्थे

श्रीर्भूयात्

१ प्रतिष्ठामौक्तिके हिन्दीभाषायां प्रतिष्ठाशिल्पादिविषयशास्त्रार्थप्रकरणम् ।

ब्रह्मेश्वरं महालक्ष्मीं पितरौ सद्गुरूंस्तथा ।
नत्वा तन्वे चित्प्रमोदं प्रतिष्ठामौक्तिकं शुभम् ॥१॥
स्वान्तस्थचित्कलांशस्य पुरो बिम्बे निवेशनम् ।
शास्त्रनिर्दिष्टविधिना प्रतिष्ठा कीर्तिता बुधैः ॥२॥

सर्वव्यापक परमात्माकी हृदयमें रही हुई चैतन्य शक्तिके अंशका सामने रही हुई प्रतिमामें शास्त्रमें बताये हुए विधिसे स्थापन करना उसको विद्वान लोग प्रतिष्ठा कहतें है ।

१ प्रतिष्ठाके प्रकार

प्रतिष्ठाके चल और स्थिर दो प्रकार होते हैं । अङ्गुष्ठके प्रथमपर्वसे लेकर वितस्ति (वेंत) तककी द्वादशअंगुलकी प्रतिमा घरमें स्थापन करना उचित है । और उस मूर्तिकी चलप्रतिष्ठा करना योग्य है । द्वादशांगुल(९) नौ इंचसे लेकर बडी प्रतिमा की स्थिरप्रतिष्ठा करनी चाहिए ।

प्रासाद (मन्दिर) भगवान्का शरीर है । और उसमें प्रतिष्ठित प्रतिमाको प्राण बताया है । इस लिए प्रासाद और प्रतिमामें शिल्पशास्त्रके अनुसार किसी भी प्रकारका दोष होना, यह गाँव नगर भक्त और देशके लिए हानिकारक है ।

प्रतिष्ठासारदीपिकामें प्रतिष्ठा के पाँच प्रकार बतायें है ।

१. ब्रह्मशिलायोगे प्रतिष्ठा-नूतनप्रासादमें नूतन सिंहासन पर नूतन ब्रह्मशिला कूर्मशिला पिण्डिका पर नूतन प्रतिमाका विधिवत् स्थापन करना ।

२. पीठे निवेशनं स्थापनम्-पुराने या नूतन प्रासाद में पीठ (पिण्डिका) पर अखिण्डित पुरानी या नयी प्रतिमाका स्थापन करना ।

३. भिन्नपीठे स्थितस्थापनम्-जीर्णप्रासादपिण्डिका नूतन करनेके लिए चालन की हुई प्रतिमाका नयी प्रासादपिण्डिकापर फिरसे स्थापन (पुनःप्रतिष्ठा) करना ।

४. उत्थापनम् - प्रतिमा जीर्ण, शीर्ण, खण्डित, भग्न, उत्तमाङ्ग और मध्यमांग में हुई हो तो उसका जीर्णोद्धार विधिसे विसर्जन करना ।

५. आस्थापनम्-स्थिर प्रतिमा किसी कारणवश स्वस्थान भ्रष्ट चलित हो जाने पर उस प्रतिमाका अखण्डित होने पर उसी स्थान पर फिरसे विधिपूर्वक स्थापन करना ।

इस तरह प्रतिष्ठाके पाँच प्रकार बतायें है ।

२ प्रतिमाके प्रकार

मात्स्ये-सौवर्णी राजती वाऽपि ताम्री रत्नमयी तथा । शैली दारुमयी वाऽपि लोहसङ्गमयी तथा ।। अंगुष्ठपर्वादारभ्यवितस्तिं यावदेव तु । गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ।। कालिकासङ्ग्रहे-लौगाक्षिः-गृहे चलार्चा विज्ञेया प्रासादे स्थिरसंज्ञिका । इत्येते कथिता मार्गा मुनिभिः कर्मवादिभिः ।।

प्रतिमा-१ सोने की २ चांदी की ३ तांबे की ४ नीलम स्फटीक माणिक्य हीरादि रत्नकी ५ दृढ शिला (पत्थर की) ६ सीसम इत्यादि दृढ काष्ठ की ७ पञ्चधातू के रस से बनायी हुई अखण्डमूर्ति । इस तरह सात प्रकारकी होती है । घर में वितस्तिपर्यन्त चलमूर्ति और प्रासाद में वितस्तिसे बडी एकादशताल पर्यन्तकी प्रतिमाकी स्थिरप्रतिष्ठा करनी चाहिए ।

इसके उपरांत सूर्य, अग्नि, दीप चित्र, स्थण्डिल और वेदी पर भी देवताकी पूजाका विधान है । (मिश्र इजिप्त) भारत और पारसी लोग सूर्य, अग्नि, दीप और चित्र में देवता का पूजन करतें है । इसमें प्रतिष्ठा और स्नानादि उपचारसें पूजन की आवश्यकता नहीं, केवल ध्यान आवाहनादि शक्य उपचार ही होतें है । यवन लोग स्थण्डिल को मानते हैं । रोमन और रोमन केथोलिक क्रिश्चीअन ऑल्टर (वेदी) पर ही धार्मिक विधि करतें है ।

घरमें देवका स्थान ईशानकोणमें चाहिए । वहाँ देव प्राङ्मुख या प्रत्यङ्मुख रखना । स्वयं पूजक पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर पूजा करें ।

३ प्रासादके लिए भूमि

नदीतीर, तडागतीर, वन, उपवन, पहाडकी ऊपर या नीचे, गाँव, नगर या बडे शहरमें रमणीय भूमि और जहाँ प्रासादकर्ता यजमानका चित्त प्रसन्न हो, वहाँ प्रासाद (मन्दिर) बनाना चाहिए ।

४ प्रासादकी भूपरीक्षा एव शल्यशुद्धि

जिस भूमिमें एक हाथ गाडने के बाद उसमें पानी जल्दी जाता न रहें या उसी गढ्ढेसे निकाली हुई मिट्टी उसमें डालने के बाद बच जाय और पुष्पों का सुगन्ध, रमणीय वातावरण हो वह भूमि प्रासाद के योग्य है। उस भूमिका गन्ध, लोहू (रक्त) मांस, पूय, मूत्र पुरीषादि युक्त होना न चाहिए, बादमें जितनी प्रासादकी जगह हो उसमें केश भस्म, धानका भूसा, पत्थर, हड्डी और कोई भी प्राणीका अस्थिपञ्जर न होना आवश्यक है। इस लिए सब जमीन आवश्यक पहिये तक खोदकर साफ कर देना जरूरी है।

५ प्रासादमें वेधका परित्याग

मन्दिरमें स्थलमें दिक्साधन या होका (ध्रुव) यन्त्रसे शुद्ध पश्चिम पूर्व उत्तर दक्षिण चारों दिशा और चार कोण तय करके मन्दिरका निर्माण करना। पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण मध्यसूत्र कोणमें न जाना चाहिए। वर्तमान कालमें विना दिशा के विचार किये मन चाहे वैसे प्राचीन शिल्पशास्त्रके विरुद्ध मन्दिरका निर्माण करतें है। उसकी लम्बाई चौडाई का गुणाकार करके आठसे भागनेसे १, ३ या ५ अंगुल शेष रहना चाहिए। २, ४, ६, ० शेष रहने पर उस भूमिमें मान बढाना या कम करना चाहिए। प्राचीन शिल्पी ९ फुट १ ईंच जैसे एकी संख्याका माप लेते है।

प्रासादके प्रधान द्वारके सामने, राजमार्ग, कोण पेड, कुँआ, बावडी और स्तम्भका वेध अनिष्टकारक है। इसलिए इन चीजोंका बेध, देख लेना आवश्यक है। मन्दिर या घरके आगे मार्ग या भीतके पीछे या जितना मन्दिर या घर ऊँचा हो उससे दुगनी भूमि छोडनेके बाद मार्गादिक वेध लगता नही।

६ प्रासादका प्रधान द्वार और दिशा विचार

शिल्पशास्त्रमें विष्णुकी प्रतिमा गाँवकी ओर दृष्टिवाली और शिवकी प्रतिमा गाँव के बाहर दृष्टिवाली बतायी है। सामान्य तोरसे पूर्व या पश्चिमाभिमुख या उत्तराभिमुख प्रासाद करना सर्वसम्मत है। उसमें भी पूर्व या पश्चिम का प्राधान्य है। उग्रदेवताओंका प्रासाद दक्षिणाभिमुख होता है।

राजवल्लभे-पूर्वापरान्यदेवानां कुर्यात्तो दक्षिणोत्तरम्। ब्रह्मविष्णुशिवानाञ्च गृहं पूर्वापराङ्मुखम्॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रार्कौ गुहः इन्द्रश्च देवताः। पूर्वापरमुखाश्चैते सर्वदा शुभकारकाः॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रार्कौ पुरं हन्ति पराङ्मुखाः। शिवो जिनो हरिर्धाता शुभाः सर्व दिशामुखाः॥ विघ्नेशो भैरवश्चण्डी नकुलीशो ग्रहस्तथा॥ मातरो धनदश्चैव शुभा दक्षिण दिङ्मुखाः॥ नैर्ऋत्याभिमुखः कार्यो हनुमान् वानरेश्वरः। अन्ये विदिङ्मुखा देवा न कर्तव्याः कदाचन॥

इन वचनोंसे किसी देवता का प्रासाद पूर्व या पश्चिमाभिमुख होना श्रेष्ठ है । ऐसा सम्भव न हो तो उत्तराभिमुख प्रासाद भी हो सकता है । उग्रदेवता, गणेश, भैरव, चण्डी, नकुलीश, ग्रह, अनेक देवीयाँ और कुबेरका प्रासाद दक्षिणाभिमुख होना है । ब्रह्मा, विष्णु, जैन तीर्थंकर और शिवजीके प्रासाद चारों दिशामें मुखवाले हो सकतें है । पूर्व पश्चिम या उत्तराभिमुख हो तो अच्छा ही है । हनुमान्का प्रासाद नैर्ऋत्य माने दक्षिणामुख करना उचित है । ये सब प्रासादके मुख्य द्वार शुद्ध दिशा में आने चाहिए ।

वर्तमान युगमें घर या मन्दिरका द्वार वर्तुलादि यथेष्ट प्रासाद करके कोणमें या शुद्ध पूर्वादि दिशा छोडकर बनातें है । यह बात शिल्पशास्त्रमें मन्दिर या मकानमें, कोण बेध स्तंभवेध, द्वारवेध, सूत्रबेध, दिग्वेध ऐसे अनेक प्रकारके दोष रहतें है । देवमन्दिरोंमें अष्टकोण, सप्तकोण, षट्कोण वृत्त और चाहे वैसी मनमानी गर्भगृह, बाहर के आकार और शिखरमें आकृति बना देतें है । शिखरमें भी दिशामें ही कोण ला देतें है । वह हानिकारक है । बाहर और गर्भगृहमें चतुरस्र आकार रखना अभीष्ट है । वर्तुलादि गर्भगृहमें अन्य परिवार देवताओंकी दृष्टि दिशाके बदले कोणमें चली जाती है । और सामनेकी मूर्त्तिका दृष्टिसाम्य होता नहीं । इस वजहसे और-वेधके कारण उस मन्दिरसे यजमान, गाँव और भक्तोंका अभ्युदय होता नही है ।

७ प्रासादकी दिशा और ध्वजस्थान

जिस दिशामें प्रासादका मुख्य द्वार होता है । वह उस प्रासादकी पूर्व दिशा होती है । उसी ही के अनुसार दक्षिण पश्चिम उत्तर की कल्पना करनी चाहिए । मन्दिरकी दिशाके अनुसार मन्दिर के शिखर पर नैर्ऋत्य कोणमें ध्वजस्थान होना चाहिए । क्योंकि ध्वज के वायुसे नैर्ऋत्यमें रहनेवाले भूत प्रेत पिशाचादि उस मन्दिरमें प्रवेश कर सकते नहीं । अन्य ग्रन्थमें अग्नि, वायव्य या ईशान कोण भी ध्वजके लिए बताया है ।

८ प्रासादका स्वरूप

शिल्पशास्त्रमें छोटेसे लेकर बडे बडे मेरुप्रासाद तक के स्वरूप बतायें है । इसमें एकमुख द्विमुख त्रिमुख और चतुर्मुख प्रासाद भी बतायें है । इसमें गर्भगृह, अग्रमण्डप, सभामण्डप, नृत्यमण्डप वगैरह अनेक प्रकार कहें है । चतुरस्र, द्वादशास्र, षोडशास्र, विंशत्यस्र वगैरह विविध प्रकार कहें है । और परिक्रमा, गोपुर, तोरण द्वार वगैरहका वर्णन किया है । प्राचीन शिल्पकलामें द्रविड, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, ओरिसा, बंगाल, बिहार, नेपाल, उत्तरप्रदेश, सिंध पंजाब, हिमाचल प्रदेश, भूतान, तिब्बत, शिल्पसंस्कृतिके अनुरूप शिखरभागके भिन्न स्वरूप होतें है । प्रासादका स्वरूप और शिलास्थापनसे लेकर शिखरान्त भागका निर्माण शिल्पशास्त्रमें कहे हुए नियमानुसार परंपरागत शिल्पीकी सलाहके अनुसार करना चाहिए । विस्तारके भयसे वह प्रकरण यहाँ पूरा बताया नहीं ।

९ शिलास्थापन

ज्योतिर्विद् की आज्ञानुसार और शिल्पमें बताये, ऋण धनादि देखकर शुभ उक्त मास तिथि बार नक्षत्र चन्द्रादिकके आनुकूल्यमें भूमिशुद्धि भूमिपूजन करके प्रासादके गर्भगृहका भित्तिके और परिक्रमाके मान अनुसार पूरा गड्ढा खोदकर पत्थर की बनाई हुई शिलाओंका स्थापन करना चाहिए। गणेशपूजनादिनान्दीश्राद्धान्त कर्म ऋत्विग्वरण दिग्रक्षण पञ्चगव्यकरण भूमिपूजन अग्निस्थापन, चतुःषष्टि ६४ या शत १०० पद के वास्तुमण्डल देवतावाहन पूजन के बाद कलशपर वास्तु ध्रुव और जिस देवताका मन्दिर बनाना हो, उनकी प्रतिमाका पूजन, ग्रहस्थापना-शिलास्थापन विधिमें बताया हुआ होम पूर्णाहूति प्रणीताविमोकान्त कर्म करने के बाद गर्भगृहकी भूमि पर शिलास्थापन करना चाहिए। वितस्ति या हस्तमात्र पत्थरकी शिला १ पूर्व-वज्र २ अग्नि-शक्ति, ३ दक्षिण-दण्ड, ४ नैर्ऋत्य-खड्ग, ५ पश्चिम-पाश, ६ वायव्य-अंकुश, ७ उत्तरा-गदा ८ ईशान-त्रिशूल, ये अष्टदिशाधिपतिके आयुधके चिह्नवाली चाहिए। मध्यमें कूर्मशिला प्रासादमञ्जरीमें बताये हुए आकारकी करना, इन शिलाओंका प्रथम ३० कलशोंमे स्नपन, शुद्धि वगैरह करनेके बाद गर्भगृह में आठ दिशा और मध्य में कलशमें दधि दूर्वा सर्षप हरिद्रा पञ्चरत्न डालकर नाग-द्रव्य वगैरह खड्डे में रखकर उसके पर शिला रखके इन नामों से १ नन्दा, २ भद्रा, ३ जया, ४ पूर्णा, ५ अजिता, ६ अपराजिता, ७ शुक्रा, ८ सौभागिनी, ९ मध्य-कूर्मशिला, नामसे पूजा, वस्त्र बलिदान करके स्थापन करनेके बाद प्रासादका प्रारम्भ करना चाहिए। शिलास्थापन विधिका संपूर्ण प्रयोग, प्रयोगप्रकरणमें आगे लिखा जाएगा।

१० द्वार विचार

एकहस्ते च प्रासादे द्वारञ्च षोडशाङ्गुलम्। इयं वृद्धिः प्रकर्तव्या यावद्धस्तचतुष्टयम्॥ वेदाङ्गुला भवेद् वृद्धिर्यावच्च दशहस्तकम्। हस्तविंशतिमाने च हस्ते हस्ते त्रयोऽङ्गुलाः॥ द्व्यङ्गुला च भवेद्यावत् प्रासादे त्रिंशहस्तके। अङ्गुलैका ततो वृद्धिर्यावत् पञ्चाशहस्तकम्॥ उत्तममुदयार्धेन मध्यं पादाधिकं तथा। कनिष्ठं चाधिकं चात्र विस्तारे द्वारमेव च॥

एक हस्त गर्भगृहवाले प्रासादमें १६ अङ्गुल ऊँचा द्वार करना। चार हस्त तकके प्रासादमें क्रमसे २ हस्तमें २० अं. ३ ह. में २४ अं. ४ ह-में २८ अङ्गुल ऊँचा करना, बादमें पाँच हस्तमें दस हस्त तकके प्रासादमें क्रममें ५ हस्तमें ३२ अं. ६ ह ३६ अं. ७ हस्तमें ३० अं. ८ हस्तमें ४४ अं. ९ ह में ४८ अं और १० ह में ५२ अं. का द्वार ऊँचा चाहिए। ग्यारहसे लेकर २० हस्त तकके प्रासादमें एक एक हाथकी वृद्धिमें तीन-तीन अंगुलकी वृद्धि, इकीससे लेकर तीस हाथ तक दो-दो अंगुलकी वृद्धि और एकतीस से ५० पचास ह- तक एक-एक अंगुलकी वृद्धि आवश्यक है।

द्वारका विस्तार जितना ऊँचा हो उससे आधा उत्तम है। विस्तार चतुर्थांशसे अधिक हो तो मध्यम और उससे भी अधिक विस्तार कनिष्ठ माना गया है।

सूचना :- प्रासाद, गर्भगृह, द्वार वगैरहमें पूर्णमान लेनेसे आय आता नहीं, इसलिए जो लम्बाई शेष रहे उसे ध्वजादि आय कहतें है। हस्तमें अंगुल और अंगुलके क्षेत्रमें यवादि शेष रहे वैसा माप लेना चाहिए। जैसे पाँच फूटसे द्वारमें पाँच फूट एक इंच इस तरह सभी मानोमें एकी अंगुलादि वृद्धि आवश्यक है।

द्वार	उच्च	विस्तार	द्वार	उच्च	विस्तार	द्वार	उच्च	विस्तार
१ हृ.	१६ अं.	८ अं	१३ हृ.	६१	३०॥	२५ हृ.	९२	४६
२ हृ.	२०	१०	१४ हृ.	६४	३२	२६ हृ.	९४	४७
३ हृ.	२४	१२	१५ हृ.	६७	३३ ॥	२७ हृ.	९६	४८
४ हृ.	२८	१४	१६ हृ.	७०	३५	२८ हृ.	९८	४९
५ हृ.	३२	१६	१७ हृ.	७३	३६ ॥	२९ हृ.	१००	५०
६ हृ.	३६	१८	१८ हृ.	७६	३८	३० हृ.	१०२	५१
७ हृ.	४०	२०	१९ हृ.	७९	३९ ॥	३१ हृ.	१०३	५१॥
८ हृ.	४४	२२	२० हृ.	८२	४१	३२ हृ.	१०४	५२
९ हृ.	४८	२४	२१ हृ.	८४	४२	३३ हृ.	१०५	५२॥
१० हृ.	५२	२६	२२ हृ.	८६	४३	३४ हृ.	१०६	५३
११ हृ.	५६	२८	२३ हृ.	८८	४४	३५ हृ.	१०७	५३॥
१२ हृ.	५८	२९	२४ हृ.	९०	४५	३६ हृ.	१०८	५४
३७ हृ.	१०९	५४॥	४५ हृ.	११७	५८॥			
३८ हृ.	११०	५५	४६ हृ.	११८	५९			
३९ हृ.	१११	५५॥	४७ हृ.	११९	५९॥			
४० हृ.	११२	५६	४८ हृ.	१२०	६०			
४१ हृ.	११३	५६॥	४९ हृ.	१२१	६०॥			
४२ हृ.	११४	५७	५० हृ.	१२२	६१			
४३ हृ.	११५	५७॥						
४४ हृ.	११६	५८						

एक अंगुल माने के पौना ईंच और एक हस्त-२४ के सामान्यतः १८ ईंच मान होता है। अन्य ग्रन्थोंमें द्वारकी ऊँचाई और चौडाईमें औरभी माप मिलते है।

११ सिंहासन विचार

शिल्पशास्त्रमें निर्दिष्ट स्थानके अनुसार स्थाप्य देवताकी प्रतिमाओंकी चौडाईका विचार करके सिंहासन बनानेका कहा है। प्राचीन कालमें एक प्रासादमें एक सिंहासन पर एक ही प्रतिमाका स्थापन किया जाता था। क्योंकि एक मकान का एक ही मालिक हो सकता है। जैसे डाकोरमें

रणछोडराय, द्वारिकामें द्वारकाधीश, पंढरपुरमें विठ्ठलनाथ अकेले ही है, लक्ष्मी, रुक्मिणी, सत्यभामा वगैरहके अलग मन्दिर पाये जातें है ।

समयके परिवर्तन अनुसार उसमें परिवर्तन होने लगा । लक्ष्मीनारायण, राम लक्ष्मण, सीता, विठ्ठलनाथ, रुक्मिणी, सत्यभामा, ब्रह्मा, सावित्री, शिव, पार्वतीकी प्रतिमाओंका स्थापन होने लगा ।

वर्तमान युगमें तो एक ही जगह अनेक देवताओंकी स्थापनाका प्रचार चल पडा है । मानो ये देवताप्रतिमाओंका म्युझियम प्रदर्शनी बनने लगी है । इन सब वर्तमान मन्दिरोंमें शिल्पशास्त्रानुसार प्रासाद, सिंहासन, दृष्टि दिशा कुछ मिलता नहीं । परिणामस्वरूप प्रतिष्ठा करनेवाला यजमान और करानेवाले ब्राह्मण दुःखी और पापभागी होते हैं । मन्दिरके विषयमें (मोडर्न आर्कीटेक्ट) नया शिल्प दिशा द्वार कोण दृष्टिविधादिका भान न होनेसे प्राचीन परंपराको नष्ट करके दुःखी करता है ।

सिंहासन

सिंहासन दोनों द्वादशाखाके अंदर और उत्तराङ्ग द्वारके ऊपरके काष्ठसे ऊँचा न जाना चाहिए । प्राचीन ग्रन्थोमें दो भाग सिंहासन, एक भाग प्रतिमा और प्रतिमाके ऊपर एक भाग खाली रखनेका कहा है । उससे ज्यादह ३॥ साडेतीन भागसे ऊपर तो कभी भी मूर्ति आनी चाहिए नहीं । केवल भैरव, पिशाच, वेताल, हरसिद्धि, राक्षस वगैरह अत्यन्त उग्र देवताओंकी दृष्टि ३॥ भाग से ऊपर आ सकती है ।

१२ गर्भगृह

मन्दिरोंमें गर्भगृह का मान समचतुरस्र होना नितान्त आवश्यक है । कहीं कहीं लम्बचतुरस्र ▭ भी गर्भगृह पाये जातें है । वर्तमान युगमें पाश्चात्य शिल्पशास्त्रानुसार शुद्धदिशारहित, वर्तुल, अष्टकोण, त्रिकोण, पद्माकार गर्भगृह करतें है । मन्दिर का कोण भी द्वारमें और चारों दिशामें आतें है । यह कोणविद्ध प्रासाद अशास्त्रीय है । गर्भगृहमें स्थापित किये जाने वाली मूर्तिओंकी दृष्टि भी परस्पर कोणमें आती है । शुद्ध दिशामें नही । ऐसे मन्दिरमें प्रतिमाओंकी स्थापना यजमान और ब्राह्मणको पापभागी करती हैं और दुःखोंकी परंपरा पैदा करती है । इसलिए गर्भगृहका समचतुरस्र होना नितान्त आवश्यक है ।

१३ सिंहासन पर देवताओंकी स्थापना

मन्दिरका जो मुख्य द्वार है वह उसकी पूर्व दिशा है । उसके अनुसार क्रमसे अन्य दिशाएं निश्चित करनी चाहिए । गर्भगृह का जो समचतुरस्रभाग है, उसका पूर्वपश्चिम भागका सूत्रका माप लेकर उसके ठीक मध्य में शिवलिंगका स्थापना करना चाहिए । चारों कोण और दिशाओं के सूत्रोंकी मध्यसन्धि शिवलिंगके ऊपरके भाग में बरोबर आनी चाहिए । जलाधारी (पिण्डिका) का नाल

(जल) गिरनेका भाग पूर्व या उत्तर में ही होना चाहिए। पिण्डिका वर्तुल, चतुरस्र, अष्टास्र, पद्माकार हो सकती है।

प्रथम प्रकार : मध्यसे पश्चिमकी भींत तक जितनी जगह हो उसके समान २८ अट्ठाईस भाग करके उन उन भागोंमें उन उन देवताओंकी मध्यसूत्रमें स्थापना करनी चाहिए। जिसका क्रम आगे बताएंगे।

दूसरा प्रकार : मध्यसूत्रसे पीछेकी भींतपर्यन्त क्रमसे पाँच भाग करके प्रथम भागमें यक्ष वगैरह देवता २ भाग में सब देवता ३ भाग में ब्रह्मा-विष्णु-जिन ४ गण, भैरव, क्षेत्रपाल, यक्ष, हनुमान ५ भाग में प्रतिमारूप शिव।

तीसरा प्रकार : मध्यसूत्रमें पीछेकी भींत पर्यन्त समान सात भाग करके १ प्रथम ब्राह्मस्थानमें शिवलिङ्ग २ द्वितीय-प्राजापत्यस्थानमें हरि-ब्रह्मा सूर्य ३ तृतीय-सौम्यस्थानमें-स्कन्द-गौरी-लक्ष्मी-दुर्गा-गणपति ४ चतुर्थ ऐन्द्रस्थानमें मातृ-दुर्गा-लोकपाल-वायु-ग्रह ५ पञ्चम गान्धर्वस्थानमें मुनिनाग-सिद्ध-विद्याधर वगैरह ६ षष्ठ राक्षसस्थानमें यक्ष-राक्षस वगैरह और ७ सप्तम पिशाचस्थानमें पिशाच-भूत-वेताल भैरव वगैरह देवोंका स्थापन करना।

चतुर्थ प्रकार : मध्यसूत्रसे पीछेकी भींत पर्यन्त क्रमसे १ ब्रह्मपदमें शिवलिङ्ग २ द्वितीय देवपदमें पञ्चमांशमें केशवादि २४ स्थित प्रतिमा, वाराह, नृसिंह सूर्य-वैकुण्ठ त्रैलोक्यमोहन-त्रिविक्रम-श्रीधर-स्कन्द ३ तृतीय मनुष्यपदके पञ्चमांशमें केशवादि २४ बैठी हुई प्रतिमा गण, गणपतिग्रह-मातृ-भैरव-क्षेत्रपाल-यक्ष हनुमान और ४ चतुर्थ पैशाचपदमें दुर्गा-गणेश-मातृ-यक्षराक्षस-वेताल पिशाच-राक्षसादि देवोंका स्थापन करना।

इन चारों प्रकारोंमें प्रथम प्रकार सुव्यवस्थित और उचित है। प्रतिमाकी पिण्डिका (चौकी) का पूर्वपश्चिम और उत्तरदक्षिण मध्यसूत्र उस भागके आना चाहिए। जैसे विष्णुके लिए नवम भाग कहा है। तो ८॥ भागमें उत्तरदक्षिण सूत्र आना चाहिए। चाहे चौकीका पीछेका भाग दशम भागमें और अगला भाग अष्टम भागमें आता हो तो भी हर्जा नहीं। शिव-पार्वती, राम, लक्ष्मण सीता, लक्ष्मीनारायण-राधाकृष्ण, विठ्ठलनाथ वगैरह मूर्तिओंकी चौकीका पूर्वपश्चिम मध्यसूत्र उस भागमें ठीक आना चाहिए। जहाँ राधाकृष्ण, सीताराम, लक्ष्मीनारायण आदि युगलमूर्तिमें देवीकी मूर्ति देवकी अपेक्षामें पतली होनेसे जो देवमूर्तिकी पूर्वपश्चिम चौकीका पूर्वपश्चिम मध्यबिन्दु हो। उस ही सूत्रमें देवीकी मूर्तिका स्थापन करना। ऐसा करनेसे देवकी चौकीका अग्रभागसे देवीकी चौकीका अग्रभाग कुछ पीछे रहेगा।

द्वारका मध्यसूत्र और सिंहासनका मध्यसूत्र एक होना चाहिए। हमेंशा राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण, सीताराम, शिवपार्वती वगैरह युगलमूर्तिमें देवके वामभागमें और अपने दहिने भागमें सीता-राधा-

लक्ष्मी-पार्वतीका स्थापन करना चाहिए ।

युगलमूर्तिमें द्वारका मध्यसूत्र और सिंहासनका मध्यसूत्र एक करनेके बाद सिंहासनके पूर्वपश्चिम मध्यसूत्रसे दक्षिण और उत्तरकी ओर चार-चार या शृंगार सुविधासे हो सके इसलिए पाँच-छ, सात-आठ इंच जगह छोडकर अपेक्षाके अनुसार युगलमूर्तिकी स्थापना करनी चाहिए । लक्ष्मण राम सीता इन तीन मूर्तिओंमें राम मध्य सूत्र पर और रामकी चौकीकी दोनों ओर मूर्तिका प्रभाग देखते हुवे चारसे आठ या दस इंच जगह छोडकर उत्तरदक्षिण मध्यसूत्रमें स्थापन करना योग्य है । जिससे शृङ्गारादिक करनेमें सुविधा रहे ।

ऐसा करनेके समय यह ख्याल रखना नितान्त आवश्यक है कि लक्ष्मण और सीताकी दृष्टि द्वारसे बाहर निकल जाय । द्वार शाखाका दृष्टिमें अवरोध न हो ।

विशेष सूचना-मूर्ति आ जानेके बाद मूर्तिओंकी चौकीकी लम्बाई चौडाई, उँचाई तीनका माप लेना, बादमें चौकीकी ऊपरमें नेत्रमध्य और शिखाग्रका माप लें । प्रधानमूर्तिकी दृष्टि द्वारके जो भागमें नियमानुसार आती हो, वहाँ द्वारकी शाखाके ऊपर चिह्न करें । दृष्टिसे चौकीके ऊपरका भाग तकका माप, दृष्टिके चिह्नसे नीचे काटकर द्वारशाखाके ऊपर सिंहासनकी ऊँचाईका माप लेकर उतना ऊँचा सिंहासन होना चाहिए । सिंहासनका उत्तर दक्षिण भाग दोनों द्वारशाखाके बाहर न जाना चाहिए । प्रतिमाके पीछे कमसे कम पाँच सात, नव या ग्यारह इंच जगह छोडनी चाहिए । प्रतिमाके आगे भोगमूर्ति और भोगपात्र रह सके इतनी नव, ग्यारह, तेरह या पन्द्रह इंच जगह रहनी चाहिए । उस सिंहासनके आगे पूर्व भागमें १० या १२ इंचके दो सोपान या पहियें बनाने चाहिए । जिसके ऊपर अन्य चल मूर्तियाँ और पूजा सामग्री रह सकें ।

आवश्यक सूचना-प्रतिमा आ जाने के बाद ही सिंहासन ऊपर बताये हुए प्रकारके अनुसार बनाना आवश्यक है । एकसे ज्यादह मूर्तिओंमें प्रधानदेवकी दृष्टि ही द्वारशाखा पर मिलानी चाहिए । परिवार देवताकी नहीं । गर्भगृहमें परिवार देव आमने सामने समकक्षमें समान दृष्टिवाले रखने चाहिए । परिवार देवताओंकी दृष्टि प्रधान देवताकी दृष्टिसे ऊपर जानी न चाहिए ।

१५ वाहनस्थापन

प्रधान देव-देवी गर्भगृहके भीतर और परिवार देवता द्वारके बाहरके भागमें रखना शास्त्रसम्मत है । विष्णुका वाहन गरुड, ब्रह्माका हंस, गणेशका मूषक, स्कन्दका मयूर, देवीका सिंह, गङ्गादिनदीका मकर, रामका दास हनुमान या गरुड, शिवजीका वृषभ इनकी स्थापना बाहरके सभामण्डपमें द्वारके मध्यसूत्र ऊपर उचित स्थलमें चौकी बनाकर करनी चाहिए । उन वाहनोंकी दृष्टि प्रधान देवताके पैर,

जानु (घुंटनी) या कटी तक होनी चाहिए । कटि भागसे ऊपर कभी भी दृष्टि न जानी चाहिए । प्राचीन कालमें प्रधान प्रासादमें बीलकुल बाहर चौकी बनाकर वाहनकी स्थापना समसूत्र पर देखी जाती है । और वह सर्वथा शास्त्रशुद्ध है ।

अपवाद-प्राचीन शिवालयोंमें जहाँ भूमिके नीचे शिवलिङ्ग और पार्वतीकी स्थापना है, वहाँ वाहन वृषभकी दृष्टिका मेल होता नहीं ।

१५. देवदृष्टिसाधन

द्वारका उदुम्बर (उमरा) और उत्तराङ्ग (ऊपरका काष्ठ) और दोनों द्वारशाखा, इनके बीचकी जो खाली जगह है, उसको द्वार कहते है । द्वारके ऊपर जो कमानका भाग है । वह द्वारका भाग गिना जाता नहीं । वह द्वार एकशाख, द्विशाख, त्रिशाख, चतुःशाख, पञ्चशाख एसे पाँच स्तंभ होना, इसको शाखा कहते हैं । वैसे ही उपरके भागमें भी शाखाँए हो तो हर्जा नही । देवकी दृष्टिसाधनमें प्रायः सर्वसम्मत चार प्रकार शिल्प शास्त्रमें बतायें है ।

दृष्टिसाधन प्रथम प्रकार : उदुम्बरसे लेकर उत्तराङ्ग तककी द्वारकी ऊँचाईके नीचेसे लेकर ऊपर तक क्रमसे चौसठ समान भाग करके पीछे बताये हुए चित्रके अनुसार उन उन देवताओंकी दृष्टि उन उन भागके मध्यमें आयें ऐसी व्यवस्था सोचकर सिंहासनकी ऊँचाई या लाघव (छोटापन) होता है । उन चौसठ भागोंमें दुगने याने २, ४, ६, ८ । इस तरह बीस भाग छोड दिए हैं । एकी संख्याके १, ३, ५ से ६३ भाग कर दृष्टि साधनमें लिए जाते हैं । प्रतिमाकी चौकी (पिण्डिका) सिंहासनके ऊपर प्रतिमाके हिसाबसे कुछ ज्यादा लम्बे चौडे खड्डे (गड्ढे) करना चाहिए । चौकीका पाव इंच या आधा इंच सिंहासनके ऊपर रहे, इस तरह प्रतिमा रखनी चाहिए । प्रतिमा रखनेके स्थान नीचे सुवर्ण, रत्न, धान्य, धातु वगैरह रखनेके लिए थोडे गहरे खड्डे करने चाहिए ।

सिंहासनके ऊपर स्नान वगैरह जल उत्तर या पूर्वमें गिरें एसी रचना करना आवश्यक है । प्रतिमाके शिखाग्रके ऊपर ११, १३, १५ इंच या इससे ज्यादह खुली रखनी चाहिए । जिससे शृङ्गार मुकुटादिक धारण करानेकी सुविधा हो सके । फिर भी सिंहासनका ऊपरका भाग द्वारके उत्तराङ्गके ऊपर न जाय, वैसा ख्याल रखें ।

दृष्टिसाधनके प्रथम प्रकारमें २५ भाग तक किसीभी देवकी दृष्टि न आनी चाहिए ।

दृष्टिसाधन-दुसरा प्रकार : उदुम्बरसे उत्तराङ्ग तक ऊँचाईके समान पाँच भाग करके नीचेसे क्रमसे १ पृथिवी २ जल ३ तेज ४ वायु ५ आकाश वैसे ऐसे पाँच करके 'दृष्टिस्तेजसिदातव्या वास्तुशास्त्रविशारदैः' इस शिल्पशास्त्रवचनानुसार तृतीय तेजोभागमें दृष्टि होनी चाहिए । यह प्रकार

प्रतिष्ठाके पूर्व जहाँ सिंहासन तैयार हो और तोडफोड करना शक्य न हो, वहाँ लेना चाहिए। क्योंकि तृतीय भागकी दृष्टि दर्शनेच्छु भक्तकी दृष्टिसे भगवानकी दृष्टि नीची होती है। शिवालयमें पार्वतीकी दृष्टिके लिये यह प्रकार अनुकूल है। गत्यन्तर न होनेपर यह प्रकार लिया जाता है।

दृष्टिसाधन तीसरा प्रकार : द्वारके उदुम्बरसे उत्तराङ्ग तक ऊँचाईके समान आठ भाग करके पहले दो भाग छोडकर तृतीय भागमें सोये हुवे शेषशायी-भगवान् सुप्त प्रतिमा, चण्डिका, रुद्र, क्षेत्रपाल, चतुर्थ भागमें जलशायी भगवान् शेषनाग, गरुड, मातृगण, पञ्चम भागमें बैठी हुई चण्डिका, महिषमर्दिनी रुद्र, गणेश, यक्ष, षष्ठभागमें ब्रह्मा-सावित्री-दुर्वासा-अगस्त्य-लक्ष्मीनारायण शिव-पार्वती-नारद, सप्तमभागमें महिषमर्दिनी-स्थित, सूर्य-गणेश-स्कन्द ब्रह्मा सरस्वती और अष्टम भागमें भैरव-वेताल-राक्षस पिशाच हरसिद्धि शुक्राचार्यकी दृष्टि होनी चाहिए।

दृष्टिसाधन चतुर्थ प्रकार : द्वारके उदुम्बरसे उत्तराङ्ग ऊँचाईके समान नव भाग करके ऊपर का नौआ भाग छोडकर पहले तीन प्रकारोंमें बताये गये देवताओंकी शेष आठ भागोंमें बतायी दृष्टिका साधन करना चाहिए। शिल्पशास्त्रमें अन्य प्रकार भी उपलब्ध है। उनमेंसे पहला बताया हुआ प्रकार ही सर्वथा उचित माना है। अष्टभागके पञ्चमें उग्रदेवता अष्टम भागमें और बाकी देवताओंका शास्त्रानुसार दृष्टि साधन करना योग्य है।

१६ प्रतिमाका मान

घरमें वितस्ति (वेत) से अधिक ऊँची प्रतिमाका स्थापन करना योग्य नहीं। और वह मूर्ति चल चाहिए। क्योंकि रहने के मकानमें देवमर्यादाका पूर्ण पालन असंभव है। एक हस्तके प्रासादमें ग्यारह ११ अंगुल ऊँची और बादमें चार हस्त तकके प्रासादमें दस अंगुलकी वृद्धि माने इक्कीस अंगुल (१५॥ इंच) तककी प्रतिमा, पाँच हाथसे लेकर दस हस्त तकके प्रासादमें क्रमसे दो अंगुलकी वृद्धि ६ ह. २३ अं, ७ ह. ८ ह. २७ अं, ९ ह. २९ अं., १० ह. ३१ अं. की मूर्ति हो सकती है। ज्यादह बडी हो जाय तो उक्तमानका दशम भाग कम कर देना। इस तरह ग्यारहसे लेकर ५० हस्त तक क्रमसे ३२ अंगुलसे लेकर ७१ इकत्तर अंगुलि ५३। इंच तककी मूर्ति हो सकती है। शिल्पशास्त्रके अन्य ग्रन्थानुसार एकादश ताल याने ११० अं. ८२॥ इंचसे ऊँची मूर्ति करना योग्य नहीं।

मन्दिरमें दृढ, रेतगर्तसे रहित किसी भी रंगके एक ही पत्थरसे प्रतिमा बनानी चाहिए। या सोना, चांदी, तांबा या पीतल या पञ्चधातुकी अक्षुण्ण मूर्ति चाहिए। सुधा (मसाला) से सन्धित मूर्तिकी प्रतिष्ठा हो सकती नही। स्फटिक, हीरक, माणिक्य, पद्मरागादि अक्षुण्ण मणिसे भी मूर्ति हो सकती है। मिट्टीकी, चित्रित, आलिखित मूर्तिमें प्रतिष्ठाके सकल अंग उपपन्न होतें नहीं।

१७ गर्भगृहमें देवतास्थापनका स्थान और प्रकार

२ प्र.	३ प्र.		१ प्रकार	४ प्र.
			२८ -	
५	७		२७ - भूतानि	४
हर	पैशाच		२६ - पिशाच	पिशाच
	———		२५ - राक्षस	पद
———	६		२४ - दैत्य	
४	राक्षस		२३ - घोर	
भैरव			२२ - भृगु	
क्षेत्रपाल			२१ - हनुमान्	———
यक्ष	———		२० - यक्ष	
हनुमान्			१९ - क्षेत्रपाल	३
भृगु	५		१८ - भैरव	मनुष्य
———	गान्धर्व		१७ - गणाः	पद
३			१६ - मातृ	
ब्रह्मा	———		१५ - ग्रहाः	
विष्णु	४		१४ - गणपति	
जिन	ऐन्द्र		१३ - दुर्गा	———
———			१२ - भास्कर-पितामह चन्द्र-सूर्य-ऋषि	२
२	———		११ - अग्नि	देवपद
अखिल	३		१० - विश्वेदेवा	
देवताः	सौम्य		९ - जनार्दन-विष्णुरूपाणि-हरि-शंभु-उमा	
———	———	वाराह-जलशायी	८ - वासुदेव	
१	२	वेद-सरस्वती-हरिहर	७ - पितामह-मिश्रमूर्ति-दत्तात्रेय	
यक्षादि	प्राजा		६ - स्कन्द	
	प्रत्य		५ - रुद्र	
	———		४ - सावित्री	
	१		३ - नकुलीश	———
	ब्राह्म		२ - हिरण्यगर्भ	१
			१ - शिवलिङ्ग	ब्रह्मपद

सूचना : गर्भगृहमें चार दिशा और चार कोणके सूत्रोंकी मध्यसन्धिमें ही शिवलिङ्गका स्थापन होता है ।

१ प्रथम प्रकारमें उन उन देवताओंका स्थापन स्थाननिर्देश स्पष्ट है ।

२ द्वितीय प्रकारमें १ यक्षादि २ सर्वदेवता ३ ब्रह्मविष्णुजिनादि ४ प्रथम प्रकारके १८ से २२ तकके देवता । ५ भागमें हर और प्रथम प्रकारके २३ से २७ तकके देवता ।

३ तृतीय प्रकार ७ खण्ड १ ब्राह्म-शिव २ प्राजापत्य-हरि-ब्रह्मा-सूर्य ३ सौम्य-स्कन्द-गौरी-लक्ष्मी-दुर्गा-गणेश ४ ऐन्द्र-मातृ-दुर्गा-लोकपाल-मारुत-ग्रह ५ गान्धर्व-मुनि-नाग-सिद्धविद्याधरादि-यक्ष-राक्षसादि ७ पिशाचादि ।

४ चतुर्थ प्रकार : १ खण्ड-ब्रह्मपद-शिव २ देवपद-वराह-नृसिंह-सूर्य-पञ्चमांशमें केशवादि स्थित प्रतिमा ३ मनुष्यपद-पञ्चमांशमें केशवादि बैठी मूर्ति ४ पिशाचपदमें दुर्गा-विनायक-मातृ-यक्ष-राक्षसादि । सूचना-प्रथम प्रकारके ३॥ भाग ब्रह्मपदमें ओर शेष तीन भाग क्रमसे ३॥ से ११॥, ११॥ से १९॥ और १९॥ से २८ तक देव-मनुष्य-पैशाचपदमें जाते हैं ।

५ 'कुड्यलग्नास्तु मातरः' इस वचनके अनुसार सब देवीओंकी प्रतिमा भीतसे लगी हुई रक्खी जा सकती है । शिवालयमें पार्वतीके सिवा पैशाच स्थान होनेसे उसके उक्त स्थानमें ही अन्य देवीओंका स्थापन शुभावह है ।

१८ द्वारमें देवदृष्टिसाधननिर्णय

२ प्रकार	१ प्रथम प्रकारः		३ प्रकारः	४ प्रकारः
	६४	-		
५	६३	वेताल	८	९
आकाश	६२	-		
	६१	भैरव		
	६०	-		
	५९	चण्डिका		
	५८	-		
	५७	शुक्राचार्य		
	५६	-		
	५५	ब्रह्मा-विष्णु-जिन-सूर्य		८
	५४	-	७	
	५३	हरसिद्धि		
२ प्रकार.	१ प्रथम प्रकारः		३ प्रकारः	४ प्रकारः
	५२	-		
	५१	उपनिष्ट ब्रह्मा		
	५०	-		

	क्र.	नाम		
	४९	गणपति-सरस्वती		
	४८	-	६	७
	४७	ब्रह्मा		
	४६	-		
	४५	लक्ष्मीनारायण		
	४४	-		
	४३	दुर्वासा-अगस्त्य-नारद		
	४२	-		
	४१	-ब्रह्मासावित्री		
	४०	-	५	
३	३९	बुद्ध		
तेज	३८	-		
	३७	उमा-रुद्र		
	३६	-		
	३५	वराह-भृङ्ग		
	३४	-		५
	३३	कुबेर		
	३२	-		
	३१	मातृगण	४	
	३०	-		
	२९	गरुड		
	२८	-		
	२७	जलशेषशायी		४
२	२६	-		
जलः	२५	शेषनाग		
	२४	-		
	२३	व्यक्त	३	
	२२	-		
	२१	व्यक्ताव्यक्त		
	२०	-		३
	१९	अव्यक्त		
	१८	-		
	१७	शान्ति		
	१६	-	२	
	१५	प्राज्ञ		
	१४	-		
	१३	विज्ञ		२

१	१२	-		
पृथिवी	११	लक्ष्मतत्त्व		
	१०	-		
	९	आयुस्तत्त्व		
	८	-		
	७	अष्टितत्त्व	१	
	६	-		
	५	तत्त्व		१
	४	-		
	३	सृष्टितत्त्व		
	२	-		
	१	आदितत्त्व		

इस दृष्टिसाधनके चारों प्रकारोंका समन्वय पहले किया गया है।

१९ प्रतिमाका स्वरूप निर्णय।

प्रतिमाओंका स्वरूप, वर्ण, आयुध, विस्तार, ऊँचाई वगैरह वर्णन, रूपमण्डन, काश्यपशिल्प, अपराजितपृच्छा, मानसोल्लास, राजवल्लभ, इकोनोग्राफी ऑफ इन्डीआ, श्रीतत्त्वनिधि वगैरह अनेक शिल्पशास्त्रमें कहा गया है। उन ग्रन्थोंसे भी अधिकतम सब तरहकी मूर्तिओंका ध्यान, आयुध, वर्ण, वाहन वगैरहका परिपूर्ण वर्णन श्रीतत्त्वनिधिमें मिलता है। द्विभुज, चतुर्भुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज, द्वादशभुज, चतुर्दशभुज, षोडशभुज और अष्टादशभुज तकका मिलता है। उन हस्तोंमें आयुधोंकी परिगणना देवताके दाहिने भागके भुजसे लेकर ऊपरतक फिर वामभागमें ऊपरसे लेकर नीचे तक 'दक्षिणाधः करक्रमात्' इस सप्तशतीरहस्यके वचनानुसार प्रदक्षिणा क्रमसे शास्त्रसिद्ध है। कई ग्रन्थोंमें दक्षिण और वामहस्तमें नीचेसे लेकर ऊपर तक या ऊपरसे लेकर नीचे तकके आयुधोंका निवेशन मिलता है। श्रीतत्त्वनिधिमें सब योगिनी क्षेत्रपाल भैरव, नदीयाँ, वेद, गीता, धर्मशास्त्र, उपनिषद्, ककारादि वर्ण, वगैरह अनेक तरहकी देवताओंका स्वरूप, भुज वर्ण, आयुधादिका वर्णन विशिष्ट रूपसे उपलब्ध है। उन सब देवताओंका वर्णन इस ग्रन्थमें करना असम्भव है।

प्राचीन शिल्पशास्त्रके अनुसार शिल्पिओंके पास जो पुस्तकें और प्राचीनपरंपरा विद्यमान थी। उस परंपराका वर्तमानयुगमें क्रमसे लोप होता जा रहा है। और मनमानी नई देवताओंका स्वरूप शास्त्र विरुद्ध बनाया जाता है। रामदेवपीर, भाथुजी, बळियादेव वगैरहका प्राचीन ग्रन्थोंमें वर्णन मिलता नहीं है। फिर शास्त्रानभिज्ञ लोकोंके दुराग्रहवश उन मूर्तिओंके मन्दिर बनाये जाते है और ब्राह्मण जैसे तेसे प्रतिष्ठाके नामसे धनार्जन करतें हैं।

२० संतोकी प्रतिमा

वर्तमानयुगमें जलाराम, रामानन्द, कबीर, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, पुनित महाराज प्रभृति उन उन देशमें पैदा हुवे आचार्य, संत, सिद्धोंकी प्रतिमा बनाकर मन्दिरोंमें उनकी प्रतिष्ठाका आग्रह भक्तलोग करतें है । और ब्राह्मण धनलोभसे प्रतिष्ठाका स्वांग रचतें है । लेकिन ऐसी प्रतिष्ठा करानेवाले ब्राह्मणोंसे पूछा जाय कि जलाधिवास, कुटीर होम, स्नपन, स्थाप्यदेवता होम, तत्त्वन्यास, प्राणप्रतिष्ठामें इन सन्तोंके लिए कौन सा शास्त्रविहित मन्त्र आपने लिया तो वहाँ वे लोग चूप हो जाते हैं । केवल चित्रकी तरह बिना कुछ विधि किये उन संतोकी प्रतिमा मुख्य प्रासादको छोडकर और जगह बैठा दें तो कोई आपत्ति नहीं है । 'मा भूत् पूजाविरामोऽस्मिन् ।' इस नियमके अनुसार अगर प्रतिमा बैठा दिया तो प्रातः, मध्याह्न, सायंकालमें, पूजा भोग, नीराजनादि करना अवश्य प्राप्त होता है । और न करनेसे प्रतिमाकी स्थापना करनेवाला दोषका भागी होता है । वर्तमानयुगमें अनेक तीर्थक्षेत्रोमें सन्तोंद्वारा प्रतिमाओंका म्युझियम बनाया जाता है उन देवताओंकी न तो पूजा नीराजनादि होता है, न तो सुचारूरूपसे स्वच्छताभी रख्खी जाती है । इतना धन हिन्दु धर्मकी रक्षा, उन्नति और गरीबोंकी प्रगतिमें खर्च किया जाय तो वास्तवमें वे लोग संस्कृतिके प्रेमवाले हैं, ऐसा समाजकी समझमें आएगा ।

२१ शिवालय

ज्योतिर्लिङ्ग और स्वयंभू अनादिसिद्ध शिवालय और शिवलिङ्ग को छोडकर नए शिवालयमें प्रासादके सभी नियम लगतें है । शिवालयमें गर्भगृहमें मध्यमें पिण्डिका सहित शिवलिङ्ग द्वारके सामने भित्तिमें पार्वती (गौरी) बहिर्गृहमें गणेश और कार्तिकेय और सामने नन्दी ऐसी स्थिति ११वीं शताब्दी तक थी । कई देशों में कुंवारी कन्यासे कार्तिकेयकी पूजा हो सकती नहीं, ऐसा लोकाचार और पुराणकथाके अनुसार कार्तिकेय की जगह शिवपुराणके अनुसार शिवजीका गण वीरभद्रके अवताररूप हनुमानजीको बताया है । उस बातको लेकर कार्तिकेय की जगह हनुमान्जीकी स्थापनाका प्रसार हो गया और कार्तिकेयका शिवालयसे स्थान निकल गया । इस बातमें शास्त्र कितना संमत है वह ख्यालमें आता नहीं । इसी तरह नन्दीके आगे कूर्मको विष्णुका अवतार मानकर शिव-पार्वती और शिव-नन्दीके बीच अन्तरागमन दोषकी निवृत्तिके लिए कूर्मकी प्रतिष्ठा की जाती है । ऐसा हमारा मन्तव्य है । प्रमाण उपलब्ध नहीं है ।

२२ शिव-विष्णुका अभेद ।

पञ्चवक्त्र शिवके स्वरूपमें १ पश्चिमवक्त्र-सद्योजात-ब्रह्मा २ दक्षिणवक्त्र-अघोर-कालाग्निरुद्र-अग्निस्वरूप ३ उत्तरवक्त्र-वामदेव-विष्णुस्वरूप ४ पूर्ववक्त्र-तत्पुरुष-सूर्यस्वरूप ५ ऊर्ध्ववक्त्र-ईशानव्यापक

परब्रह्म। ऐसी भावनासे पूजा होती है। ऐसे ही विष्णुकी पाँच मूर्तिमें १ वासुदेव २ संकर्षण ३ प्रद्युम्न ४ अनिरुद्ध और ५ प्रधान विष्णु माना गया है। इन पाँच मूर्तिओंमें संकर्षणको रूद्रस्वरूप माना गया है। पञ्चव्यूहपक्षमें संकर्षणादिकी पूजा समय बिल्वपत्र-दूर्वा-तुलसी-पुष्प-धतूरके फूल वगैरह अर्पण किया जाता है। वैसे ही शिवपूजाके समय-वामदेवको विष्णु मानकर तुलसीदल, पीतपुष्पादि अर्पण किये जाते हैं। एक ही मूर्तिमें हरिहरके स्वरूपमें आधा भाग विष्णुका और आधा भाग शिवका स्वरूप लेकर उसके अनुसार स्वरूपकी रचना और आयुधादि निवेश है। वैसे ही प्रकृति-पुरुषको एकरूप मानकर अर्धनारीश्वर-लक्ष्मीनारायणका एक ही मूर्तिमें समावेश शिल्पशास्त्रमें किया है। तत्त्वन्यासमें-जगत्के सभी तत्त्वोंका सब मूर्तिओंमें न्यास करनेके बाद उन उन देवताओंकी विशिष्ट कला तत्त्व मन्त्राक्षर और सूक्तोंका न्यास बताया है। इन बातोंकी पुष्टि शतपथ ब्राह्मणमें मिलती है। जैसे-ब्रह्म एतद्धि सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति, ब्रह्म एतद्धि सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति, ब्रह्म एतद्धि, सर्वाणि नामानि बिभर्ति, तं यथा यथा उपासते, तदेव तद्भवति तद्धैनान् भूत्वाऽवति। यह औपनिषद सिद्धान्त सब देवताओंके एकही परमात्माका स्वरूप बताता है। सामान्य कोटिके मानवोंके लिए इष्ट देवताओंकी उपासनामें सिद्ध होकर अन्तमें परमात्म भावकी प्राप्ति वगैरह बतायी हैं। श्रीमद् भगवद्गीता-यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति। तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् । ऐसा भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमुखसे कहा है। शालिग्राम यह निर्गुण विष्णुका स्वरूप और शिवलिङ्ग निर्गुण शिवका स्वरूप बताया है। यह की सनातन वैदिक धर्म और संस्कृतिकी समन्वय पद्धतिका परम लक्ष्य है।

२३ रामकृष्णका देवतात्त्व

''धाता यथा पूर्वकल्पयत् ।'' इस श्रुति वचनके आधारसे अनन्तकालसे इस पृथ्वीके ऊपर सत्ययुगसे कलियुग तक हर एक कल्पमें विष्णु भगवान् मत्स्यादि रूपसे अवतार लेते हैं। इसी बातको लेकर तन्त्र आगम उपनिषदोंमें उन उन देवताओंके मन्त्र चले आते हैं और कल्पान्त चलते रहेंगे। राम-कृष्ण-बुद्धको मनुष्य मान कर वर्तमान युगके सन्तोंको देवता मानकर उनकी मूर्तिकी प्रासादमें प्रतिष्ठा करना सर्वथा अनुचित और शास्त्र एवं धर्म विरुद्ध है। क्योंकि इनके लिए वेद आगम तन्त्र पुराणोंमें कोई मन्त्र ही बताया नही है।

२४ शिवलिङ्गका स्थिरत्व और चालन

शिवलिङ्गके चालनके विषयमें समाज और पण्डितोंमें रूढ मान्यता हो गई है कि शिवलिङ्गका चालन हो ही सकता नहीं। हिन्दु समाजकी इस रूढ मान्यताके अवसरको लेकर शक हूण आन्ध्र, यवन, म्लेच्छ जैसे परदेशीय आक्रमणकारोंने भारतवर्षके अनेक मंदिर और प्रतिमाकों नष्ट भ्रष्ट और खंडित करके हमारी प्राचीन संस्कृति पर प्राचीन कालमें कुठाराघात किया और आज भी वह प्रणाली

उन आततायीओंके हाथसे चल रही है । सोमनाथ, काशीविश्वनाथ वगैरह कोटिशः स्थानोंका नाश किया और उन मन्दिर और प्रतिमाओंके रक्षणके लिए लाखों हिन्दुओंने अपने प्राण न्योछावर कर दिए ।

भविष्योत्तर पुराण मध्यम पर्व अ. ९ श्लोक ७४-७५ नीचे दिए गये हैं - सुस्थितं दुःस्थितं वाऽपि शिवलिङ्गं न चालयेत् । चालनाद्रौरवं याति न स्वर्गं न च स्वर्गभाक् ॥७४॥ उत्सन्नगरग्रामे स्थानत्यागे च विप्लवे । पुनःसंस्थानधर्मेण स्थापयेदविचारयन् ॥७५॥ इन दो प्रमाणोंमेंसे 'सुस्थितं दुःस्थितं वाऽपि शिवलिङ्गं न चालयेत्' इतने अर्ध श्लोकको सामने रखकर प्रतिष्ठामयूख धर्मसिन्धु निर्णयसिन्धु प्रभृति अनेक निबंधकारोंने यह वचनका स्वयंभू अनादिसिद्ध, महापुरुष प्रतिष्ठापित लिङ्गके चालनके निषेधमें ही उपयोग बताया । लेकिन रूढपण्डित और समाजने 'न चालयेत् ।' इतना भाग पकडकर आततायीका आक्रमण होने दिया और महामूल्य प्राणोंका बलिदान दे दिया । आततायी गर्व करने लगे कि हमने हिन्दु संस्कृतिका नाश किया ।

'सर्वान् बलकृतानर्थानकृतान् मनुरब्रवीत् ।' यह मनुवचन और 'केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कार्यो धर्मनिर्णयः ।' इन दो वचन और भविष्योत्तरके दूसरे वचनकी ओर देखा भी नहीं । परिणामस्वरूप हमारी संस्कृतिके प्रतीक रूप अनेक मन्दिर उद्ध्वस्त हो गए और उन मंदिरोंकी कलाका भी साथमें नाश हुवा ।

'उत्सन्ननगरग्रामे स्थानत्यागे च विप्लवे । पुनः संस्थानधर्मेण स्थापयेदविचारयन् ॥' इस वचन पर खूब सावधानीसे गौर करना आवश्यक है । प्राचीन शिवालय या मन्दिर है । लेकिन उस मन्दिरकी पूजा करनेवाले शहर या गाँववाले उस स्थानको छोडकर चले जाय, अपने स्थानसे प्रतिमा कहीं भी तितरबितर पडी हो, राष्ट्रमें दंगा, आततायी म्लेच्छोंका आक्रमण या दुर्भिक्षमें महामारी जैसी बडी आपत्तिओंमें उस प्रतिमाका चालन करके और सुरक्षित स्थानमें पुनः प्रतिष्ठा करनेमें कोई पाप नहीं, लेकिन अधिकतम पुण्य होता है ।

हम देखतें हैं कि शिवालय नष्ट हो गया है । शिवलिङ्ग इधर ऊधर अपवित्र स्थानमें पडा है । कुत्ते वगैरह प्राणी उसके पर मलमूत्रादिका त्याग करते हैं । ऐसी अवस्थामें हिन्दु होकर 'शिवलिङ्गं न चालयेत् ।' इस पूँछको पकडकर बैठ जाना, यह भारतीय संस्कृतिका विनाशक चिह्न है ।

भारतमें ऐसे अनेक स्थान आज मौजूद है, जहाँ चारों ओर मुसलमान, ख्रिस्ती वगैरह बस्तीसे घिरे पडे है । जैसे काश्मीरके श्रीनगरमें श्री का धाम, काल्टीमें शंकराचार्यकी जन्मभूमि, वैसे अनेक स्थानोंकी दुर्दशा होने पर भी हाथ जोडकर बैठ रहना महापाप और हिन्दु धर्मका कलंक है ।

वर्तमान समयमें जनकल्याण और दुर्भिक्षकी निवृत्तिके लिए सरदार सरोवर-नर्मदा बन्धका

निर्माण हो रहा है। उसमें शूलपाणीश्वरका पुराणप्रसिद्ध प्राचीनतम शिवालय डूब जाता है। वहाँकी बस्तीका स्थलान्तर होगा, और पूजा करनेवाला कोई वहाँ रहेगा नहीं। इस अवस्थामें शूलपाणीश्वर शिवालयकी सभी मूर्तियोंका चालन करके नया मन्दिर बनाकर उसमें सब मूर्तिओंकी पुनःप्रतिष्ठा भविष्योत्तर पुराण मध्यमपर्व अ-९श्लो-७५ के अनुसार सर्वथा शास्त्रसम्मत है।

पाकिस्तान छोडकर भारतमें आये हुवे अनेक हिन्दु लोग वहाँसे अधिकांश प्रतिमाओंको उठा कर भारतमें पुनःप्रतिष्ठित करनेके अनेक उदाहरण आज मौजुद हैं।

इतने बिवरणका तात्पर्य यही है कि - 'न चालयेत्' इस सिद्धान्तको रूढ न मानकर उत्सन्न० इस बचनके अनुसार श्लोकमें बताये हुए और तत्समान निमित्तोंमें शिवलिङ्ग या प्रतिमाका चालन करके दूसरी जगह प्रतिष्ठा करना शास्त्रसंमत है।

२५ केशवादि मूर्तिओंका स्वरूप

१ देवतानाम	२ स्थिति	३ बर्ण	४ वाहन	५ भुज	६ आयुध दक्षिण हस्त ऊपरके क्रमसे	७ आयुध वामहस्त नीचेसे ऊपर	८ विशेष
१ केशव	स्थित	श्वेत	गरुड	४	शंख	पद्म	
		कृष्ण			चक्र	गदा	
२ नारायण	,,	,,	,,	४	पद्म	शंख	
					गदा	चक्र	
३ माधव	,,	,,	,,	४	चक्र	गदा	
					शंख	पद्म	
४ गोविंद	,,	,,	,,	४	गदा	चक्र	
					पद्म	शंख	
५ विष्णु	,,	,,	,,	४	पद्म	गदा	
					शंख	चक्र	
६ मधूसूदन	,,	,,	,,	४	शंख	चक्र	
					पद्म	गदा	
७ त्रिविक्रम	,,	,,	,,	४	गदा	पद्म	
					चक्र	शंख	
८ वामन	,,	,,	,,	४	शंख	गदा	
					चक्र	पद्म	
९ श्रीधर	,,	,,	,,	४	चक्र	पद्म	
					गदा	शंख	

१० हृषीकेश	''	''	''	४	चक्र	गदा
					पद्म	शंख
११ पद्मनाभ	''	''	''	४	पद्म	शंख
					चक्र	गदा
१२ दामोदर	''	''	''	४	शंख	पद्म
					गदा	चक्र
१३ संकर्षण	''	''	''	४	शंख	गदा
					पद्म	चक्र
१४ वासुदेव	''	''	''	४	चक्र	शंख
					गदा	पद्म
१५ प्रद्युम्न	''	''	''	४	शंख	चक्र
					गदा	पद्म
१६ अनिरुद्ध	''	''	''	४	गदा	चक्र
					शंख	पद्म
१७ पुरुषोत्तम	''	''	''	४	पद्म	चक्र
					शंख	गदा
१८ अधोक्षज	''	''	''	४	गदा	पद्म
					शंख	चक्र
१९ नरसिंह	''	''	''	४	पद्म	चक्र
					गदा	शंख
२० अच्युत	''	''	''	४	पद्म	गदा
					चक्र	शंख
२१ जनार्दन	''	''	''	४	चक्र	पद्म
					शंख	गदा
२२ उपेन्द्र	''	''	''	४	गदा	शंख
					चक्र	पद्म
२३ हरि	''	''	''	४	चक्र	शंख
					पद्म	गदा
२४ श्रीकृष्ण	''	''	''	४	गदा	शंख
					पद्म	चक्र

केशवादि २४ मूर्तिओंका आयुधभेद बोपदेवने निर्णय सिन्धुमें बताया है।

१　　४
　✕
२　　३

दाहिने ऊपरके हाथके क्रमसे १ प्रथम दाहिना ऊपरका हाथ २ दाहिना नीचेका हाथ ३ बाँया (वांम) नीचेका हाथ ४ बाँया (वाम) ऊपरका हाथ, ऐसे आयुधोंके निवेश भेदसे मूर्तिभेद बताया है।

२६ अन्य देवतामूर्तिस्वरूप

१ अष्टभुजा दुर्गा	सिंहस्कन्ध स्थिता	श्वेत कृष्ण रक्त	सिंह	८	४ खेट ३ असि २ दर १ चक्र	५ विशिख ६ चाप ७ गुण ८ तर्जनी	त्रिनेत्रा
२ दशभुजा महाकाली		कृष्णा			५ चाप ४ इषु ३ गदा २ चक्र १ खड्ग	६ परिघ ७ शूल ८ भुशुण्डी ९ शिरः १० शंख	त्रिनेत्रा दशपाद
३ अष्टादशभुजा महालक्ष्मी	महिषमर्दिनी सिंहारूढा कमलासना च		रक्तवर्णा	१८ भुजा	९ दण्ड ८ कुण्डिका ७ धनु ६ पद्म ५ कुलिश ४ इषु ३ गदा २ परशु १ अक्षस्रक्	१० शक्ति ११ असि १२ चर्म १३ शंख १४ घंटा १५ सुरापात्र १६ शूल १७ पाश १८ चक्र	नीचेसे ऊपरके क्रममें
४ अष्टभुजा महासरस्वती	मयूरवाहना हंसवाहना		श्वेत वर्ण	८	४ शंख ३ हल २ शूल १ घंटा	५ मुसलाम् ६ चक्र ७ धनुः ८ बाण	त्रिनेत्रा
५ गौरी	स्थिता		श्वेतवर्ण		१ अक्षमाला २ कमण्डलु	३ त्रिशूल ४ गणेश	
६ लक्ष्मी	कमलासना		रक्तवर्णा	४	२ कमल १ वर	३ कमल ४ अभय	चतुर्हस्तिभि रभिषिच्यमाना
७ चतुर्भुजा महालक्ष्मी	कमलासना वृषभ-सिंहयुक्ता		श्वेता रक्ता		२ गदा १ मातुलिंग	३ खेट ४ पानपात्र	शिरसि पिण्डिका लिङ्गं तदुपरि नागः

इस तरह पुराण-तन्त्र-शिल्पशास्त्र-काश्यपशिल्प-अपराजितपृच्छा मानसोल्लास आगमग्रन्थ श्रीतत्त्वनिधि वगैरहमें अनेक देवताओंके स्वरूप वर्ण-वाहन-हस्त-पाद-नेत्र-आयुधादिकका सांगोपांग वर्णन किया है। इन सबका वर्णन करते नया ग्रन्थ ही बन जाय। विस्तारभयसे दिङ्मात्र प्रदर्शन किया है। आवश्यक होने पर उन उन ग्रन्थोंको देख लेना उचित होगा।

२७ ध्वजनिरूपण

ध्वजमें ध्वजदण्ड और कपडेका ध्वज या पताका दो प्रकार बतायें है। ध्वजका स्थान प्रतिष्ठात्रिविक्रममें प्रासादके प्रधान सम्मुख द्वारके पूर्वदिशा मानकर उसके हिसाबसे नैर्ऋत्य वायव्य या ईशान भागमें रखनेका कहा है । ध्वजनिवेशनका फल भूतप्रेतपिशाचराक्षसादिका प्रासादमें प्रवेशको रोकना बताया है । इस लिए प्रासादकी नैर्ऋत्य दिशामें ही ध्वजका स्थान रखना उचित है ।

द्वारके सम्मुख खडे होकर बायें हाथ पर प्रासादके शिखरका पीछेका कोण हो वह नैर्ऋत्य कोण होता है । ध्वजका निर्माण लकडेसे करनेका कहा है । लेकिन बारिशके कारण कई सालों बाद लकडा खराब हो जानेसे उस गोल ध्वजदण्डको सुवर्ण चांदी तांबा या पीतलके गोल स्तम्भमें ठीक बैठा देना उचित है । ध्वजके लिए बाँस, अंजन, मधुक, शिंशपा, खादिरका लकडा लेना चाहिए । प्रासादके गर्भगृहका जितना माप हो इतना लम्बा रखना उत्तम है । लम्बाईकी दशम भागसे कम मध्यम और पाँचवें भागसे कम अधम बताया है ।

अन्य ग्रन्थोमें ६, ८, ९, १०, १२, १४ हाथ लम्बा भी बताया है । उस लकडेको धातुके गोल ध्वजमें फीट कर देना चाहिए । उस ध्वजकी ऊपर पाटली लकडी या धातुकी बनानी चाहिए । वह पाटली ध्वजकी लंबाईके छठवें भागसे लंबी और लंबाईकी आधी चौडाईवाली करना । उसकी चारों ओर पीतलकी छोटी घंटीयाँ और ऊपरके भागमें छोटा शिखरका आकार करें और चौडाईके तीसरे भाग जितनी ऊँची करनी चाहिए ।

कपडेके ध्वजके बारेमें मतभेद है । बहुतसे ग्रन्थ ध्वजको त्रिकोणाकार बताते हैं । कोई ग्रन्थ लम्ब चतुरस्र पताका को ध्वज कहते है । जैनमन्दिरोमें पताकाकार ध्वज किया जाता है । हिन्दु मन्दिरोंमें त्रिकोणाकार ध्वज बनाया जाता है । उस ध्वजमें प्रधान देवताका मुख्य वाहनका चित्र करना चाहिए । दक्षिण भारतमें मन्दिरके बायें सामने या दाहिने हाथ गरुडध्वज धातु या लकडीका बाहरके भागमें लगाते है ।

कपडेकी लंबाई प्रासादगर्भगृहके मानसे दुगनी, डेढी, समान और चौडाई दो या तीन हाथकी कही है । या ध्वजदण्डके आधे भाग जितना लम्बा कहा है । वर्णके क्रमसे ब्राह्मणको श्वेत, क्षत्रियको लाल, वैश्यको पीला और शूद्रको कृष्ण वर्णका करनेका कहा है । लेकिन ध्वजमें तीन या पाँच वर्ण रखना उचित है ।

ध्वजदण्डको रखनेके लिए प्रासादके ऊपरके भागमें पत्थरके दो या तीन आधार रखना आवश्यक है । और शिखरके अग्रसे ध्वजदण्डका आधा भाग ऊपर रहना चाहिए । ध्वजके कपडेको बांधनेके लिए दण्डमें हूक लगाना योग्य है ।

यह ध्वजका कपडा, पाटोत्सव, वत्सरारंभ या पर्वके दिनमें कि फट जानेपर बदलना होगा। उस ध्वजके एक, तीन या पाँच अग्र चाहिए।

ध्वजदण्डकी प्रतिष्ठा प्रतिष्ठाके दिन, महास्नपनके बाद, कलशप्रतिष्ठाके दिन या छ या बारह मासके बाद भी की सकती हैं।

२८ कलश (शिखर) प्रमाण

बास्तुशास्त्रमें २७ सत्ताईस अंगुल ऊँचा, मध्यमें १३॥ अंगुल विस्तार और मूलभागमें आठ अंगुल विस्तारवाला नीचेके भागमें चूडाके युक्त पत्थरका कलश बनाना चाहिए। उसके नीचे ८ या १६ पत्र और आमलसारेके ऊपर १६ या ३२ पत्रका पद्मपत्रका आकार करना चाहिए। उसके ऊपर सोना, चांदी, तांबा या पीतलका ढक्कन करना चाहिए।

२९ शिखर प्रासादरहित मन्दिर

यवनोंकि आक्रमणके कालमें ग्यारहवीं शताब्दी बाद बने हुवे कई मन्दिर वैष्णव रामानुज, कबीर रामानन्दादि सम्प्रदायोंमें यवनोंके आक्रमणके भयसे मकानमें ही अलग भागमें गर्भगृह बनाकर प्रतिमाओंका स्थापनका तरीका चलने लगा। उसमें भी आक्रमणके समय मूर्ति ऊठाकर अन्यत्र ली जा सके इसलिए चलप्रतिष्ठा करके चलमूर्तियोंका स्थापनका दौर चला। जहाँ स्थिरप्रतिष्ठा होती है, वहाँ भी उत्सवादिके लिए छोटी भोगमूर्ति रक्खी जाती है। जिसका शय्या भोग वगैरहमें उपयोग हो सके।

उग्र देवताओंका प्रधानप्रासादमें स्थापनका निषेध :- नरसिंह, बराह, भैरव, राक्षस, पिशाचादि उग्र देवताओंका मुख्य प्रासादमें प्रतिष्ठाका निषेध है। उनके लिए छोटे स्थानमें स्थापन शास्त्रविहित है।

३० जीर्णोद्धारके कारण

वैखानस समूर्तार्चाधिकरण संहितामें प्रतिमामें उत्तमाङ्ग मध्यमाङ्ग और हीनाङ्ग तीन प्रकार बतायें है। मस्तक, शिखाग्र, भाल, नासिका, नेत्र, कर्ण, चिबुक, हस्त, पादादिके भंगमें उसका विसर्जन आवश्यक है। हस्तांगुलि पादांगुलि कर्ण नासिका मुखाग्रादि मध्यमांग कहे गये है। उनके भी भंङ्ग या अतिशय जीर्णता होने पर जीर्णोद्धारपूर्वक विसर्जन कहा गया है। नखाग्र, अंलकार माला आयुधादिके भंगमें हीनांग कहे गये हैं। ऐसी प्रतिमाका विसर्जन करना आवश्यक नहीं। लेपादिकसे उन हीनांगोका संधान करके प्रोक्षणविधि करना।

चालन विधि

मन्दिरमें प्रतिमाँए खण्डित न हो, और प्रासाद गिर गया हो जीर्णशीर्ण हो गया हो तो उन प्रतिमाओंका शास्त्रविहित चालनविधि सुमुहूर्तमें करना चाहिए । प्रतिमाओंमें निवेशित सब तत्त्वोंको प्रतिमाको जलभरी आचमनीका स्पर्श करके एक जलपात्रमें-अकारं जले न्यसामि-इस तरह बोलकर छोडना चाहिए । हरएक प्रतिमाके लिए अलग अलग जलपात्र लेकर ढके उस बंध जलपात्रके ऊपर उस देवताका नाम लिखना चाहिए ।

प्रासाद और पिण्डिका भी तोडकर नए बनानेका हो तब प्रासाद और पिण्डिकाका भी चालन विधि करके प्रासाद और पिण्डिकाके सब तत्त्व अक्षत लेकर प्रासाद और पिण्डिकाका स्पर्श करके अलग अलग छूरी या खड्गके ऊपर-खड्गे न्यसामि-ऐसा बोलकर चढाना चाहिए। फिर उन मूर्तिओंको विधिपूर्वक नया मन्दिर तैयार हो जाय तब तक उठाकर सुरक्षित स्थानमें रखखी जाय। और नित्य पूजा भोग उत्सव चलते रहें । उन मूर्तिओंके साथ तत्त्वके कलश और खड्ग सुरक्षित रखना चाहिए ।

नया मन्दिरका निर्माण हो जाने पर पुनः प्रतिष्ठाके समय कलशमेंसे जल लेकर 'अकारं प्रतिमायां प्रतिन्यसामि-ऐसा बोलकर पुनः तत्त्वोंका प्रतिमामें पुनर्न्यास करना होगा, प्रासाद पिण्डिका स्नपन अधिवासनके बाद छूरी या खड्गसे सब तत्त्वोंका प्रतिन्यास प्रासाद और पिण्डिकामें करें । कलशमें जो शेष रहे उस जलको प्रतिष्ठाके बाद प्रतिमाके मस्तक पर चढा देना ।

प्रतिमा छोटी हो लेकिन अखंडित हो तो करनेवाला जीर्णोद्धार या विसर्जन बडी प्रतिमा बैठानेके लिए करने शास्त्रविरुद्ध है । और ऐसा करनेवाला पापका भागी होता है । प्रतिष्ठाके समय 'यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च॰' ऐसा कहनेके बाद अपनी मनमानी या धनिकताके मदमें अखण्डित प्रतिमाको उठाकर विसर्जन करना यजमानके लिए विनाशकारी होता है ।

यद्यपि शास्त्रमें मूर्ति खण्डित होने पर, नई मूर्ति गुरु शुक्रका अस्त मलमासादि निषिद्ध काल होने पर एक मासके अंदर प्रतिष्ठा करनेको कहा है । फिर भी नई मूर्तिकी चिरकाल स्थिति और जनकल्याणकारिता सामने रखकर शास्त्रविहित शुभमुहूर्तमें ही प्रतिष्ठा करना शुभकारी है ।

२१ प्रतिष्ठाका काल

मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन विहित है । गुजरातमें धनुः संक्रान्ति और मीन संक्रान्तिको देशाचारसे वर्ज्य किया है । अन्य देशोंमें विशेष करके नर्मदाके दक्षिण भागमें मार्गशीर्षमें धनसंक्रान्ति और फाल्गुनमें मीनसंक्रान्ति होने पर भी शुभकार्य करते हैं । और पौष चैत्रमें मकर और मेषसंक्रान्ति होने पर भी सारे पौष और चैत्रको

निषिद्ध मानते हैं। ज्योतिःशास्त्रानुसार चैत्रको प्रतिष्ठाके लिये अनिष्ट माना गया है लेकिन विष्णुधर्मोत्तरमें चैत्रको प्रशस्त माना है।

विष्णुके लिए मार्गशीर्ष, चैत्र; श्रावण, आश्विन प्रशस्त बतायें हैं। शिवके विषयमें मार्गशीर्ष पौष, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भाद्रपद आश्विन मास लिया जाता है। देवीकी प्रतिष्ठामें आश्विनको उत्तम बताया है। उत्तरायण सर्वश्रेष्ठ कहा है। फिरभी दक्षिणायनमें मातृ भैरव वराह नृसिंहादिककी प्रतिष्ठा हो सकती है। उसी तरह जहाँ धनार्क मीनार्कको मानते हैं, वहाँ मार्गशीर्षमें धनार्कके पहले पौषमें मकरके सूर्यमें, फाल्गुनमें मीनार्कके पहले और चैत्रमें मेष संक्रान्ति में प्रतिष्ठा हो सकती है।

हेमाद्रिके मतमें विष्णुसे भिन्न देवताके लिए मार्गशीर्ष पौषका लेना और श्रावण और आश्विनका निषेध है। उसी तरह शिवके भिन्न देवताके लिए माघ, श्रावण, भाद्रपदका निषेध है। प्रायः आषाढको सर्व वर्ज करते हैं। उसमें भी अत्यंत आवश्यकता होने पर शुक्ल एकादशीके पूर्वमें कर लेना उचित है। भाद्रपदका कृष्ण पक्ष सर्व ग्रन्थोंमें वर्जित है।

यह चान्द्रमासके लिए वर्णन किया। जहाँ पूर्णिमांत मास मानते हैं वहाँ उस हिसाबसे मासादिकका ग्रह करना योग्य है। सौर मानके हिसाबसे निषेध और विधि संक्रान्तिके विधान अनुसार होता है। (प्रतिष्ठाकाल) पक्ष-शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षकी पञ्चमी तक उत्तम और कृष्णपक्षकी दशमी तक मध्यम काल है। कृष्णपक्षकी एकादशीसे अमावास्या तक निषिद्ध काल है।

तिथि - शुक्लपक्ष - २-३-५-६-७-८-१०-११-१२-१३-१५
कृष्णपक्ष - १-२-३-४-५-६-७-८-१०

अपवाद-गणेशको चतुर्थी-शिवको अष्टमी-दुर्गाको नवमी विहित है फिर भी अच्छी तिथि मिले तो दोष नहीं है। रामनवमी-विजयादशमी अक्षयतृतीया-वसंतपंचमी-जन्माष्टमी-शिवरात्री, ये जन्मोत्सव और उत्तम दिन होने पर भी उन दिनोंमें प्रतिष्ठा करना उचित नहीं। उसमें भी उग्रनक्षत्र, विरुद्ध चन्द्रमा मंगलवार हो तो हानिकारक होता है। क्षय और वृद्धि तिथि सर्वथा वर्ज्य है।

वार : सोम, बुध, गुरु, शुक्र, उत्तम, शनि, रवि, मध्यम, भौम वर्ज्य है।
नक्षत्र : अश्विनी, रोहिणी, मृगशीर्ष, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद, रेवती।

शिवके लिए आर्द्रा, स्कन्दके लिए कृत्तिका, सर्पके लिए आश्लेषा, देवीके लिए ज्येष्ठा मूल पूर्वाषाढा ले सकते है। फिर भी स्थिर और शुभ नक्षत्र हो तो अच्छा है। वज्र परिघ, गंड, एति

गंडादि योग, व्यतीपात, वैधृति, मृत्यु, यमघंट, विष्टिका त्याग करना ।

चन्द्र : मुख्य कर्ता या गाँवके नामसे ४-८-१२ चन्द्रको छोड देना ।
समय : 'पूर्वाह्णो वै देवानाम् । इस श्रुति वचनसे दुपहर बारह बजे तक, ज्यादहमें दुपहर २ बजे तक प्रतिष्ठा हो जानी चाहिए ।

वर्ज्य काल : गुरु शुक्रका अस्त, उदयके बाद तीन दिन बाल्य दोष और अस्तके पहले तीन दिन वार्धक्य दोष । सूर्य या चन्द्र ग्रहणके पूर्ण ग्रासके पहले तीन और बादके तीन दिन छोड देना । खण्डग्रासमें पहला और पीछेका एक एक दिन छोडना । संक्रान्ति दिन और मल मास या क्षयमास, क्षयपक्ष छोड देना, शुभ कार्यमें कर्ताके माता पिताकी मृत्युतिथि छोड देना ।

विष्टि-भद्रा : जहाँ सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्तपर्यन्त ३० घटी १२ घण्टे विष्टि हो वह शुभ कार्यमें वर्ज्य है । किन्तु रात्रिमें आरम्भ हुई विष्टि दिनमें समाप्त होती हो, या दिनमें आरम्भ हुई विष्टि रात्रिमें समाप्त होती हो, उस विष्टिका दोष नही है । जिस नक्षत्रमें ग्रहण हुआ हो वह नक्षत्र छ मास पर्यन्त शुभकार्यमें छोड देना चाहिए ।

३२ लग्नशुद्धि

एक दिनमें २४ घण्टेमें सूर्यके द्वादश लग्न होते हैं, उन लग्नोमें मेष-कर्क-तुला-मकर चर लग्न है । वृषभ-सिंह-वृश्चिक-कुम्भ स्थिर लग्न है । मिथुन-कन्या-धन-मीन-द्विस्वभाव लग्न हैं । प्रतिष्ठाके दिन दुपहर १२ या २ बजे तक स्थिरलग्नके स्थिरांश या चर किंवा द्विस्वभाव लग्नमें स्थिरनवमांशमें अचल प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए । हर एक लग्नमें नवराशिका नवमांश होता है ।

मेष-सिंह-धन लग्नमें क्रमसे मेष-वृषभ-मिथुन-कर्क-सिंह-कन्या-तुला-वृश्चिक धन राशिके नवमांश होते है । उसमें वृषभ-सिंह-वृश्चिक स्थिर नवमांश है । वृषभ-सिंह-वृश्चिक-कुंभ स्थिर लग्नमें, वृषभमें मकरसे लेकर कन्या राशि तकके नवमांश, सिंह लग्नमें मेष से धन तक, वृश्चिकमें कर्कसे मीन तक और कुंभ लग्नमें तुलासे मिथुन तकके नवमांशमें से चर या स्थिर नवमांश लेना चाहिए । मिथुन-कन्या-धन-मीन यह द्विस्वभाव लग्नमें क्रमसे मिथुनमें तुलासे मिथुन तक, कन्यामें मकरसे कन्या तक, धनमें मेषसे धन तक और मीनमें कर्कसे मीन तकके नवमांशमें स्थिर नवमांश लेना योग्य है ।

प्रतिष्ठाके समयकी लग्नकुण्डलीमें लग्नमें पापग्रहयुक्त चन्द्र, या पापग्रह और लग्नका स्वामी अष्टम या द्वादशमें होना अशुभ है । तृतीय पञ्चम, नवम एकादश या प्रथम चतुर्थ सप्तम दशम यह केन्द्रस्थानोंमें चंद्र, बुध, गुरु, शुक्रका होना उत्तम है । बुध बहुधा सूर्यके साथ ही रहता है । और वह मध्यम है ।

मंगल, शनि, राहु, केतु ये पापग्रह षष्ठस्थानमें हो तो अच्छा है। कभी कभी शुभग्रहसे साथ पाप ग्रहभी रहते हैं। उनकी ३-५-९-११-१-४-७-१० स्थानमें स्थिति मध्यम फलदायक है। हिन्दु ज्योतिषमें तारा को, जैनोंमें चोघडिया और दक्षिणमें राहुगुलिकको मानतें हैं।

वर्तमान पञ्चांगोंमें हररोजका लग्नमें, सूर्य, विष्णु, महादेव कन्यालग्नमें कृष्ण या विष्णु, कुंभ लग्नमें ब्रह्मा, द्विस्वभाव मिथुन, कन्या, धन, मीन लग्नमें देवीयोंकी, चर-मेष-कर्क-तुला-मकर-लग्नमें योगिनी वगैरह क्षुद्र देवता और स्थिर-वृषभ-सिंह-वृश्चिक-कुंभ लग्नमें सब देवताओंकी प्राणप्रतिष्ठाका मूहुर्त शुभ है।

सिद्धान्तरूपमें -स्थिरलग्नमें स्थिर नवमांशमें और चर या द्विस्वभाव लग्नमें स्थिर नवमांशमें प्राणप्रतिष्ठा करना यजमान और जगतके लिए कल्याणकारक है।

मुहूर्तचिन्तामणिमें सामान्यतः लग्नशुद्धि इस तरह बतायी है। अष्टम और द्वादशस्थानमें शुभ या पाप ग्रह न चाहिए। जन्मराशिसे या जन्म लग्नसे १-३-६-१०-११ स्थानमें शुभग्रह हो या शुभग्रहसे युक्त या दृष्ट हो और चन्द्र ३-६-१०-११ स्थानमें हो, सब मंगलकर्मोका करना प्रशस्त है। उपनयन, विवाह, वास्तुगृहप्रवेश और देवप्रतिष्ठामें लग्न शुद्धि देखना नितान्त आवश्यक है।

लग्न और नवमांश

	मेष	वृषभ	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मीन
क.मि.	१-४३	१-५९	२-१६	२-१३	२-८	२-६	२-११	२-१४	२-६	१-४९	१-३६	१-३४
	मेषादि	मकरादि	तुलादि	कर्का	मे	म	तु	क	मे	म	तु	कर्कादि
मि.से.					१४	१४	१४	१४	१४			
	१०-५०	१२-२४	१४-१६	१५-०	१९	२	१७	५४	४१	१३-४	११-५	१०-२४
	१०-५८	१२-३७	१४-२५	१४-५९	२५	१	२१	५३	३६	१२-५०	११-४	१०-२३
	११-४	१२-५०	१४-३४	१४-५५	२१	१	२५	५८	२४	१२-३९	१०-५७	१०-२२
	११-१५	१३-४	१४-४२	१४-५३	१७	३	२९	५९	१६	१२-२५	१०-५०	१०-२४
	११-२४	१३-१७	१४-४५	१४-५०	१३	३	३४	५८	७	१२-१२	१०-४४	१०-२५
	११-३६	१३-२९	१४-५१	१४-४६	११	५	३८	५७	१३-५३	११-५९	१०-३८	१०-२४
	११-४७	१३-४२	१४-५६	१४-४३	७	७	४३	५४	४४	११-४७	१०-३३	१०-३०
	११-५९	१३-५४	१४-५७	१४-३९	५	१०	४७	५१	२९	११-३६	१०-२९	१०-३०
	१२-११	१४-५	१४-५९	१४-३४	१३	३	५०	४८	१८	११-२५	१०-२४	१०-४०

सूचना : लग्नका समय कलाक और मिनिटमें है। नवमांशका समय मिनिट और सेकन्डमें है।

३३ चल और अचल प्रतिष्ठा

प्रतिष्ठा दो प्रकारकी होती है। चल और अचल प्रतिष्ठा। वितस्ति पर्यन्तकी मूर्तिकी घरमें चल प्रतिष्ठा होती है। वितस्तिसे अधिकमानकी प्रतिमाकी प्रासाद मन्दिर या हवेलीमें अचल प्रतिष्ठा करना योग्य है। बडी मूर्तिकी चल प्रतिष्ठा करने पर मूर्तिभंगकी संभावना होती है।

१ नये मंदिरमें नये सिंहासन पर नई मूर्तिकी सप्रासाद प्रतिष्ठा होती है। उसमें प्रासादाङ्ग वास्तुशांति होम बलिदान निक्षेपान्त विधि प्रासादस्नपन, प्रासादतत्त्वन्यास, प्रासादाधिवासनका विधि करना आवश्यक है।

२ पुराने मन्दिरमें कुछ दुरस्ती करनेके बाद पुरानी मूर्तिका भंग हो जाने पर नई मूर्तिकी प्रतिष्ठा करनेमें प्रासादाङ्ग कोई विधि करनेकी आवश्यकता नहीं। केवल प्रासादका प्रोक्षण करके शुद्धि करना आवश्यक है।

३ प्रासाद भङ्ग हो जाने पर उस मन्दिरको नया बनाना हो तो मन्दिरमें रही हुई मूर्ति अखण्डित हो तो चालन विधि करके मूर्तिके सब तत्त्व जलपात्रमें और प्रासाद तथा पिण्डिकाके सब तत्त्व विधिपूर्वक खड्ग या छूरीमें ले लेना ओर नये मंदिरमें उन मूर्ति और प्रासाद पिण्डिकाकी प्रतिष्ठाके समय प्रासादमें प्रासादके, पिण्डिकाके, पिण्डिकामें और प्रतिमाके सब तत्त्व सुरक्षित जलमेंसे और खड्ग छूरीमेंसे प्रतिमा-प्रासाद पिण्डिकाके सब तत्त्वोंका पुनर्न्यास करना आवश्यक है। नये मंदिरमें प्रतिष्ठा होने तक अन्य सुरक्षित स्थलमें प्रतिमाके पास जलपात्र खड्ग, सुरक्षित रखना चाहिए, और प्रतिदिन पूजा भोग नीराजन होना चाहिए।

३४ प्रतिष्ठा प्रयोगकी दिनमर्यादा

प्रतिष्ठाका प्रयोग, एक, दो, तीन, पाँच, सात दिन तक हो सकता है। एक दिनकी प्रतिष्ठामें प्रासाद और प्रतिमाके सब मुख्य विधि उत्पन्न हो सकते नहीं और प्रतिष्ठा पूर्वाह्नमें होना असम्भव है। अनन्य गति होने पर एक दिनमें करनेमें कर्मवैगुण्य होता है। सावधानीसे सब अंगोका संक्षेपमें समापन करके प्रतिष्ठा करें तो दोष नहीं।

प्रासाद पुराना हो और प्रतिमा अखण्डित और चलित हो तो दो दिनमें कार्य सम्पन्न हो सकता है। क्योंकि उसमें प्रासादाङ्गभूत विधिकी आवश्यकता होती नहीं है।

तीन दिनमें सप्रासाद प्रतिष्ठा सांगोपांग सम्पन्न हो सकती है, किन्तु प्रासाद और प्रतिष्ठांग अधिवास, स्नपन, होम, न्यास, धान्याधिवासादि कर्म प्रतिनिधि या ब्राह्मण द्वारा एक ही साथ संपन्न

करना आवश्यक है ।

पाँच या सात दिनोंमें आरामसे प्रतिष्ठा और प्रासादका सब विधि सुचारुरूपसे कर सकते हैं ।

भविष्यपुराणमें कोई भी शुभ कार्य एक, तीन, पाँच, सात, नौ, ग्यारह ऐसी एकी संख्याके दिनोंमें करनेका कहा है । व्रतोद्यापनादि विधि जहाँ पूर्वदिन उपवास और दूसरे दिन पारणा हो यह विधि दो दिनमें करना । जिस व्रतकी चर्तुथी प्रदोष सोमवारादिकी पारणा उसी दिन रात्रीमें होती हो, वह व्रतोद्यापनका प्रयोग स्थापन होमादिसहित एकही दिनमें होता है ।

३५ प्रतिष्ठा मण्डप

प्रतिष्ठाके विधिके लिए, सोलह, अठारह, बीस, बाईस, चौवीस हस्त, प्रभृति मानका यथाविधि मण्डप करना, प्रतिष्ठाके मण्डपकी उत्तर दिशामें उसके आधे मापका स्नपन मंडप और उसमें एक या दो हाथकी दो या तीन वेदियाँ १२ अं. उच्च बनायें । प्राचीन युगमें एक ही मंदिरमें एक ही भगवानकी प्रतिष्ठा होती थी । वर्तमान युगमें प्रधानदेवताके परिवारमें हो या न हो ऐसी अनेक मूर्तियाँ प्रदर्शनीकी तरह रक्खी जाती है । उसमें दृष्टि और स्थानका मेल आता नहीं है । ज्यादह मूर्तियाँ होने पर हरएक के लिए स्नपनमें तीन तीन स्नपनवेदी बनाना असंभव है । जनता शास्त्रको पूरी तरह माननेको तैयार नहीं, फिर आचार्यको अङ्गोपसंहारन्यायसे सब प्रतिमाओंका विधि साथमें ही करना पडता हैं ।

कुण्ड : प्रतिष्ठामें एक, पाँच या नव कुण्ड हो सकते हैं । एक, पाँच या नव कुण्ड एक एक हस्तका ही करना पडेगा । एक कुण्डमेंभी दशसहस्र आहुति होती नहीं । इसलिए एक हस्तका कुण्ड करना चाहिए । अयुत व्याहृति होम करें तो दो हस्तका कुण्ड हो सकता है । इसी तरह पञ्च या नव कुण्डमें लक्षव्याहृति होम करें तो दो हस्तका कुण्ड हो सकता है ।

नये प्रासादमें वास्तुशान्ति कुण्ड या स्थण्डिल पर करनी चाहिए । कुटीर होम अलग स्थण्डिल पर करना होगा । वैसे ही जीर्णोद्धार पूर्वक प्रतिष्ठा हो तो उसके लिए अलग स्थण्डिल करना चाहिए । मण्डपांग वास्तु बल्यन्त ही करनी, क्योंकि उसका होमक्रम और प्रतिष्ठांग होम क्रम भिन्न भिन्न है ।

पीठ : 'प्रतिष्ठाङ्गभूत मण्डपमें चारों कोणसे दोनो ओर १८, २१ या २४ अंगुल छोडकर उन चिह्नोंसे समानसूत्र डालकर पूर्वमें ३४ अं-लम्बा चौडा और २४ अंगुल ऊँचा प्रधानपीठ, ईशानमें ग्रहपीठ ३४ अं लम्बा चौडा १२ या २४ अं. ऊँचा या २४ अंगुल लम्बा चौडा और १२ या २४ अं. ऊँचा करना । वैसे ही वायव्यमें ३४ अं. लम्बा चौडा और १२ अं. ऊँचा स्नान (अभिषेक) पीठ करना । आग्नेय कोणमें दक्षिणकी ओर गणपति पीठ, उत्तरकी ओर योगिनी पीठ, नैर्ऋत्यमें वास्तुपीठ, वायव्यमें दक्षिणकी ओर क्षेत्रपाल या भैरव पीठ २४ अं. लम्बा-चौडा १२ या २४ अं. ऊँचा, इतने

पीठ करने चाहिए । छायामण्डपमें पूर्वमें दक्षिणसे लेकर उत्तर तक क्रमसे गणपति पीठ, योगिनी, मध्यमें प्रधानपीठ, उसकी उत्तरमें क्षेत्रपाल या भैरवपीठ और ग्रहपीठ क्रमसे करने चाहिए। छायामण्डपमें वास्तुपीठ एवं स्थापनकी आवश्यकता नहीं । एक पाँच या नवकुण्डमें मध्यवेदी करें तो उस पीठके पूर्वार्धमें मण्डल करें । जिससे प्रतिमाका शय्याधिवासकी जगह रहें । स्नपनमण्डपमें भी पूर्वार्धके भागमें तीन वेदी करें । जिससे कलशोंका आसादन हो सकें ।

३६ सर्वप्रायश्चित्तविचार

'प्रायश्चित्तविकारः स्यात् चित्तं तस्य विशोधनम्' मनके विकारोंको दूर कर यज्ञमें कार्यका अधिकार प्राप्त हो इसलिए स्वयं कर्ता या प्रतिनिधिभूत कर्ताको प्रायश्चित्त करनेका शास्त्रमें बताया हैं । यज्ञके आरम्भके तीन दो या एक दिन पहले प्रायश्चित्त करना चाहिए । इस प्रायश्चित्त विधिके पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग करने पडते हैं । महापातकव्यतिरिक्त कायिकादि पापोंकी निवृत्तिपूर्वक देह मनको शुद्ध करनेके लिए देवकर्ममें प्रायश्चित्त करना पडता है ।

इस प्रायश्चित्तमें प्राजापत्य या कृछ व्रत मुख्य है । तीन दिन सुबह एक बार २८ ग्रासपरिमित हविष्यान्न, दूसरे तीन दिन सायं एकबार २२ ग्रास, तीसरे दिन २४ ग्रास या अयाचित अन्न और चौथे तीन दिन उपवास, ऐसे बारह दिनका एक प्राजापत्य या कृच्छ्र कहते हैं । ऐसा तीन वख्त करनेसे १२ दिनका प्राजापत्य होता है ।

इस तरह १२ दिनका प्राजापत्य सन्तत करनेसे एक सालमें ३० प्राजापत्य अब्द प्रायश्चित्त होता है । देढ सालमें ४५ प्राजापत्य सार्धाब्द, तीन सालमें ९० नब्बे प्राजापत्य-त्र्यब्द, ७ सालमें १८० प्राजापत्य षडब्द और बारह सालमें ३६० तीनसो साठ प्राजापत्य-द्वादशाब्द प्रायश्चित्तमें होता है । प्रायश्चित्त मरणके पूर्व और मङ्गल कार्यके पूर्व देह मनकी शुद्धि और कर्ममें अधिकार प्राप्तिके लिए करतें हैं । मङ्गल कार्याङ्ग प्रायश्चित्तमें 'अभ्युदयार्थे प्रायश्चित्ते वपनाभावः' इस वचनके अनुसार वपनकी आवश्यता नहीं । मरणके पूर्व प्रायश्चित्तमें वपन (मुंडन) आवश्यक है ।

इस प्राजापत्यके शास्त्रमें अनेक प्रत्याम्नाय (प्रकारान्तर) बतायें हैं । एक प्राजापत्यके बदलेमें १. दस हजार गायत्री जप २. गायत्री या व्याहृतिकी एक हजार तिलाहुति ३. दो सो प्राणायाम ४. बारह ब्राह्मण भोजन ५. स्नान करनेके बाद बिना शरीर पोंछे बाल सुख जाने पर फिरसे स्नान ऐसे बारह स्नान ६. वेदपारायण ७. तीर्थकी एक योजन यात्रा ८. बारह हजार सूर्यनमस्कार ९. १३२ एकसो बत्तीस प्राणायाम १०, दूध देती गौ ११. गौके बदसे सुवर्ण या रजत निष्क-उसका आधा उसका भी आधा द्रव्य देना इन सब प्रकारोंमें गोनिष्क्रय द्रव्य ही प्रायश्चित्तके रूपमें देतें हैं ।

शास्त्रमें 'द्वात्रिंशत्पणिका गावः' बत्तीस दब्बू याने एक रुपया एक गायकी कीमत बताई हैं। वर्तमान युगमें २००० दो हजार, बाईससोंसे कम दाममें गौ मिलती नहीं। ऐसी दुरवस्थामें अब्द, ३० रु. सार्धाब्द ४५ रु. त्र्यब्द ९० रु. षडब्द १८० द्वादशाब्दमें ३६० रु.। इसका द्विगुण या चतुर्गुण द्रव्य देकर पापके भारसे छूटनेकी चेष्टा करते हैं। यह आत्मवञ्चना है। इसकी अपेक्षा ३, ११ या १५ प्राजापत्यका संकल्प करना उचित है।

कर्ममें अधिकारार्थ यागारंभके दिनके पूर्व किसी भी रिक्ता ४-९-१४ तिथिमें, अगले दिन या प्रतिष्ठाके दिन प्रातः कालमें पर्षद्-सभ्य अनुवादकका पूजन प्रायश्चितकी आज्ञा वपन हेमाद्रिदशविधस्नान सत्येशपूजन-आद्य गोमिथुन-विष्णुश्राद्ध-व्याहृति होम-पञ्चगव्य होम पञ्चगव्यप्राशनप्रायश्चित्तद्रव्य संकल्प-उत्तरांग गोमिथुन-विष्णु श्राद्ध व्याहृति होम दानानि सर्व प्रायश्चित्तका विधि करना, इतना असंभव होने पर १, ३, ११, १५ प्राजापत्य गोनिष्क्रयका संकल्प करनेसे भी अधिकार प्राप्त होगा।

३७ मण्डलविधि

गणेशमातृकाका मण्डल लाल कपडेपर गेहूँसे, वसोर्धारा ईंट पर वास्तुमण्डल मण्डपमें चतुःषष्टिपद और प्रासादमें चतुः षष्टिपद या शतपद वास्तुमण्डल पंचवर्ण, सफेद, लाल, पीला, हरा, काला, और मिश्रवर्ण वाले तण्डुलसे, ग्रहोंका मण्डल उक्त वर्णवाले तण्डुलसे, काशीखण्डमें यज्ञविघ्नध्वंसके लिए आग्नेयकोणमें सफेद, वस्त्र पर ६४ योगिनीका मण्डल पञ्चवर्ण तण्डुलसे और पञ्चवर्ण तण्डुलसे देवी और रुद्रप्रधान कर्मोंमें यज्ञविघ्नविध्वंसनार्थ ६४ भैरवका और अन्य देवत प्रधान कर्मोंमें ५१ क्षेत्रपालका पञ्चवर्ण तण्डुलसे मण्डल पूरना चाहिए। सबमें श्वेत वस्त्र पर मण्डल पूरना। त्रद्धिनीका श्वेत वस्त्र पर धान (व्रीहि) या पञ्चवर्ण तण्डुलसे मण्डप पूरना चाहिए। प्रधानका रुद्रदेवत कर्ममें एकलिङ्गतोभद्र, चतुर्लिङ्गतोभद्र, अष्टलिङ्गतोभद्र या द्वादशलिङ्गतोभद्र पूरना चाहिए। विष्णु, गणेश सूर्य, देवी और अन्य देवताके यागमें सर्वतोभद्र पूरना चाहिए। और भी मण्डलके प्रकार बृहज्ज्योतिषार्णवमें बताये हैं। प्रतिष्ठाका विधि जलाशयविधिका अतिदेश होनेसे प्रतिष्ठेन्दुमें प्रधान पीठके लिए वारुणमंडल पूरनेका कहा है। सभी मण्डलमें सर्वतोभद्रके ५६ देवता होते ही है। उसके अलावा अन्य देवताओंका स्थापन भी ग्रन्थोंमें कहा है। इस मण्डलके लिए कहीं चार या दो हाथका पीठ भी करनेका कहा है।

मण्डलका रहस्य

मण्डल यह ब्रह्माण्डका प्रतीक है। सत्त्वगुण-श्वेत, रजोगुण-लाल, तमोगुण-काला, सत्त्वरजमिश्र-पीला, रजस्तमयुक्त हरा रङ्ग होता है। मध्यमें ब्रह्म कर्णिकामें गङ्गादि नदी सप्तसागर, कर्णिकाके नीचे मेरु और अन्य भागोंमें उस उस गुण युक्त देवताओंका निवेश है।

३८ द्रव्योत्सर्ग

कर्मके तीन प्रकार होते हैं। १. नित्य २.नैमित्तिक ३. काम्य। १ संध्यादि षट्कर्म संस्कार, अग्निहोत्रसाध्य नित्यकर्म कहे जातें हैं। २. किसी भी निमित्त उत्पन्न होने पर किये जानेवाले शान्त्यादिकर्म नैमित्तिक कहें जाते हैं। ३ काम्य कर्मके दो प्रकार है, व्रत और उद्यापन वगैरह इष्टकर्म कहें जातें हैं। और समाजोपकारक वापी, कुआँ, तालाब, सरोवर, नहर, धर्मशाला, पाठशाला, बगीचा, पेड लगाना और मन्दिर बनाकर उसमें देवमूर्तिकी प्रतिष्ठा करना ये सब पूर्त कर्म कहे जातें हैं। सामान्यतः समाजोपकारक कार्य चाहे एक आदमी करें या अनेक लोगोंकी सहायसे किया जाय, उन पर धन या साहित्य देने पर भी उनका स्वामित्व होता नही हैं। दानके अनुरूप फल मिलता हैं।

'प्रधानं स्वामी फलयोगात्' एक आदमी ही मंदिर बनवायें और मूर्तिकी मंदिरमें प्रतिष्ठा करें तो उसको संपूर्ण फल मिलता हैं। फिर भी वाव, कुआँ, तालाब, सरोवर, धर्मशाला, मंदिर इत्यादिकका उत्सर्ग करके समाजको अर्पण करना पडता हैं। उत्सर्ग करने पर उस धनीका उसके पर स्वामित्व रहता नहीं। प्रायः मंदिर बनानेमें अनेक लोगोंकी साहाय्य ली जाती हैं। साहाय्य करनेवाले गाँव या शहरके सब लोग प्रतिष्ठाका विधि एक ही कर्म होनेकी वजहसे कर सकते नहीं। इस लिए वे सब यजमान लोग अपनी ओरसे एक सपत्नीक सदाचारी शुद्ध ब्राह्मणको या अपने पुरोहितको अपने प्रतिनिधिके नाते चुन लेतें हैं, और उसको कर्म संपादनके लिये अपेक्षित धन या उसका कुछ हिस्सा सोंप देतें हैं। उसको द्रव्योत्सर्ग कहतें हैं। यह बात पूर्तकमलाकरमें बताई हैं। एक ही खर्च करनेवाला उपनीत ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अधिकारी यजमान हो तो उसको स्वयं कर्म करनेका अधिकार होनेसे प्रतिनिधिवरण और द्रव्योत्सर्ग करनेकी आवश्यकता नहीं। द्रव्योत्सर्गका प्रयोग आगे कहा जाएगा।

३९ प्रतिष्ठा प्रयोगका क्रम

सामान्यतः तीन दिनकी प्रतिष्ठाका कार्य सामने रखकर क्रम लिखतें हैं। पाँच, सात, नव दिनकी प्रतिष्ठामें अधिवासके एक तीन या पाँच दिन होते हैं। उसका विशिष्ट विधि आगे बताया जाएगा।

सब यजमानोंको साथमें बैठाकर प्रथम गणपतिपूजन कराके प्रैषात्मक पुण्याहवाचन समय हो तो करके 'समस्त ग्रामजन भक्तजन देशजन कल्याणाय सूर्याचन्द्रमसी यावत् प्रासादे मासु च देवकलासान्निध्यहेतवे सग्रहमखां सप्रासादां (अमुक) दिनसाध्यामचलप्रतिष्ठां कर्तुम् अस्मत्प्रतिनिधित्वेन अमुकगोत्रममुकशर्माणं सपत्नीकं ब्राह्मणं त्वामहं वृणे।' ऐसा कहकर एक सुपारीको गन्धपुष्प करके

प्रतिनिधि ब्राह्मणके हाथमें दे देना, बादमें एक पात्रमें सब या कुछ भाग द्रव्यका रखकर उस पर गन्धपुष्प चढाकर हाथ लगाकर 'प्रतिष्ठाकर्मसम्पादनाय एतावद् अपेक्षितं अपेक्षिष्यमाणं चाधिकं द्रव्यं तुभ्यमहं सम्प्रददे' ऐसा कहकर ब्राह्मणको द्रव्य दे देना। यजमानोंको आशीर्वाद देकर विदा देना। प्ररोचनार्थ स्नपन, प्रासादस्नपन, प्राणप्रतिष्ठा और प्रातः सात उन यजमानोंसे पूजा आरती करवाना।

प्रथम दिन
प्रतिनिधि द्वारा

प्रायश्चित्त
प्रधानसंकल्प
अङ्गसंकल्प
गणेशपूजन
मातृकापूजन
वैश्वदेवसंकल्प
वसोर्धारा
आयुष्यमंत्रजप
नांदीश्राद्ध
ऋत्विग्वरण
मधुपर्कार्चन
स्वस्तिपुण्याहवाचन
अभिषेक वर्धिनीपूजन
मण्डप पूजन-प्रवेश
दिग्रक्षण-पञ्चगव्यप्रोक्षण
देवावाहनम्-रक्षोऽपसारणम्
मण्डपेशान्यां भूमौ कलशे
नवग्रहपूजनम् मण्डपपरितः दुग्धधारा जलधारा

प्रथम दिन
मण्डपाङ्गं गणपति पूजनम्
मण्डपाङ्गं वास्तुपूजनं बल्यन्तम्

कुण्डपूजनम्अग्निस्थापनम्
मण्डलदेवता-प्रधानदेवता
स्थापनपूजने
ग्रहस्थापनम् योगिनी भैरव स्थापनम्

कुशकण्डिका-आधाराज्य
भागहोमः अग्निब्रह्म पूजनम्।
त्यागसंकल्पः ग्रहहोम
जवाधिवासः कुटीरहोमः जले प्रतिमाधिवासः
सायं स्थापित देवता पूजन
नीराजनादि।

द्वितीयदिन प्रातः
स्थापितदेवतापूजन
जलयात्रा
प्रासादवास्तुशान्तिःनिक्षेपान्ता
दुपहर

तृतीयादिन प्रातः
स्थापितदेवतापूजन
नूतनप्रासादे दिग्होमः संस्रवग्रहणम्
मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालस्थाप्यदेवताहोमः,

स्नपनकलशासादनं	देवप्रबोधनम्, अर्घ्यदानम्, प्रासादनयनम् ।
स्नपनविधिः	
मण्डपेशय्याधान्याधिवासः	मङ्गलाष्टकादि, स्वस्थानेषु देवता
कुण्डेशान्यां कलशोपरि	स्थिरीकरणम्, दृष्टिसाधनम्
मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालावाहन	संस्काराङ्गव्याहृति-१२८ होम,
तत्त्वन्यासहोमः	सुमुहूर्ते प्राणप्रतिष्ठा, प्रार्थना
शान्तिकपौष्टिकहोमः	१०८ अघोर होमः, शिवप्रतिष्ठा होमः
मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालहोमः	महापूजन-नीराजनादि-स्थापित
स्थाप्यदेवताहोमः	देवताहोम, व्याहृतिहोमः
व्याहृतिहोमः । मूर्धानमितिपूर्णाहुतिः	अपराह्णे
प्रासादस्नपनम्	पूजास्विष्टादिपूर्णाहुतिवसोर्धारा
प्रासादतत्त्वन्यासः	प्रणीताविमोकान्तम्
प्रासादपिण्डिकाधिवासनम्	प्रासादोत्सर्गसंकल्पः, सद्यश्चतुर्थी
	कर्माङ्गहरिद्रादिलेपनं, कङ्कणमोचनम्
तत्त्वन्यासः, निद्रावाहनम् ।	नीराजनप्रार्थना दानसंकल्पादि
स्थापितदेवतासायंपूजनम् ।	उत्तराभिषेक :
नीराजनाद्याशीर्वादान्तम्	ब्राह्मणसत्कारः आशीर्वादः अग्नि
	मण्डपदेवताविसर्जनम्, कर्मसमाप्तिः

सूचना : स्नपनके बाद जितने दिनका अधिवास हो उतने दिन हररोज स्थापित देवतापूजन, शान्तिकपौष्टिकहोम, मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालहोम, स्थाप्यदेवताहोम, व्याहृतिहोम, तत्त्वन्यासहोम, तत्त्वन्यास, सायं पूजानीराजनाद्याशीर्वादान्तं, इतना विधि अवश्य करें ।

कर्मविवरण : कर्मका पूर्वांग, प्रधानांग और उत्तरांग ऐसे तीन विभाग होतें हैं । गणेशपूजनादि नान्दीश्राद्धान्तको पूर्वाङ्ग कहते हैं । ऋत्विग्वरणके बाद दिग्रक्षणसे व्याहृति होमान्त कर्म प्रधानांग है । और उत्तरपूजनसे विसर्जनान्त कर्म उत्तरांग कहा जाता है ।

४० गणेशपूजन, पुण्याहवाचन

गणेशपूजन : पूरा कर्म निर्विघ्नतासे परिपूर्ण हो इस हेतुसे प्रारम्भमें किया जानेवाला गणेशपूजन काम्य है । अतिजल्दी होने पर कर्मांग न होनेसे न करें, केवल स्मरणमात्र करें, तो चल सकता है । ऋग्वेदीयोंमें 'ऋद्धिबुद्धिसहित गणपति, कृष्णयजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेदमें 'गणेशाम्बिकाभ्यां नमः' ऐसे गणेशाम्बिकाका पूजन और शुक्लयजुर्वेदमें 'सिद्धिबुद्धिसहित' गणपतिका पूजन होता है । यह पूजन कर्मबहिर्भूत है ।

पुण्याहवाचन : आजका दिन बडा शुभ है और यजमानको कल्याण, समृद्धि तथा सर्व प्रकारका मंगल और लक्ष्मी कर्मप्रभावसे प्राप्त हो ऐसा ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेना, इसको पुण्याहवाचन कहते हैं।

'प्रयोक्तुः कर्मणामादावन्ते चोदयदिद्धये' इस वचनसे यजमानको कर्मका पूर्ण फल मिले इसलिए कर्मके प्रारंभमें, अन्तमें और वचनमें 'च' शब्दके सामर्थ्यसे मध्यमें भी पुण्याहवाचन होता है। और यह काम्य है। और कर्मबहिर्भूत है। कर्मका प्रारंभ मातृकापूजनसे होता है। इसके पूर्व पुण्याहवाचन कर्मका आदिभूत हुआ यज्ञादि कर्ममें ऋत्विग्वरण मधुपर्कके बाद पुण्याहवाचन कर्मके मध्यमें हुआ। समयके अनुसार कन्यादानके बाद तथा अन्य कर्मोंमें समाप्ति बाद पुण्याहवाचन अन्तमें गिना जाता है। समयके अनुसार याज्ञिक इस प्रयोगको भी तीन तरह करते हैं। प्रथम प्रयोग कलशस्थापनादि अभिषेकान्त पूर्ण, द्वितीय प्रयोग कलशस्थापन-ब्राह्मणपूजन, 'यं कृत्वा० पुण्यं पुण्याहंवाचयिष्ये' यहाँ तक करके बीचका भद्रं कर्णेभिः ४ द्रविणोदाः ४ व्रत० शांतिरस्तु-२१ वाक्य तिथिकरण० स्वामी महासेनः प्रीयताम् यहाँ तक विधि छोडकर पञ्चप्रैष-पुण्याह-कल्याण-ऋद्धिस्वस्तिश्रीरस्तु यहाँ तक करतें हैं। इसमें अभिषेक होता नहीं। तृतीय प्रकार-पुण्याहकालान् वाचयिष्ये-यहाँसे पञ्चप्रैपात्मक केवल पुण्याहवाचन करतें हैं इसमें भी अभिषेक नहीं।

ऋग्वेद, कृष्णयजुर्वेद-सामवेद-अथर्ववेदमें पुण्याह-ऋद्धि स्वस्ति तीन ही प्रैषसे पुण्याहवाचन होता है। केवल शुक्ल यजुर्वेदमें समग्र पञ्च प्रैपात्मक पुण्याहवाचन-पुण्याह-कल्याण-ऋद्धि-स्वस्ति-श्रीरस्तु। इन पञ्च प्रैषोंसे होता है। पुण्याहवाचनके अन्तमें धाता, सविता, प्रजापति इत्यादि कर्मांग दैवत अलग अलग होतें हैं। उनका उच्चार करना। शुक्लयजुर्वेदमें एक और अन्य शाखाओंमें दो कलश पुण्याहवाचनमें लेतें हैं। अभिषेकके बाद यजमानदंपतीका सुवासिनी द्वारा 'अनाधृष्टा' इस मन्त्रसे नीराजनका दाक्षिणात्योंमें कुलाचार है। कर्ममें उपयुक्त जितने कलशोंकी आवश्यकता हो, उनका विधिपूर्वक साधन पुण्याहवाचनके कलशके साधनके साथ ही कर देना, जिससे बारबार कलश साधन करना न पडे। वैसे ही सब मूर्त्तिओंका अध्न्युत्तारण प्राणप्रतिष्ठा गणेशपूजनके पूर्व ही करना।

४१ मातृकापूजन

उपनयन, चौल, केशान्त, सीमन्त, विवाह इन पाँच कर्मोमें गणेशपूजन, अविघ्नमातृका, मण्डपमातृका, सगणेशगौर्यादिमातृका, द्वारमातृका, स्थल मातृका, जीवमातृका, जलमातृका इत्यादि ६४ मातृकाका आवाहन दाक्षिणात्योंमें शूर्पमें करते हैं। अन्य वैदिक, तान्त्रिक, स्मार्त, पुराणोक्त कर्मोमें सगणेशगौर्यादि मातृका, ब्राह्म्यादि मातृका, ऋग्वेद कृष्णयजुर्वेद अथर्ववेदमें घरके बाहर करते हैं। ६४ मातृकाका स्थापन करते नहीं। वैसे ही शुक्लयजुर्वेद, काण्वशाखा, सामवेदियोंमें सगणेशगौर्यादि मातृका और श्र्यादि ५ या सात वसोर्धाराका स्थापन बाहर करनेका आचार है। उपनयनादि पञ्चकर्मोमें घरमें गणेशपूजनादि नांदीश्राद्धन्त और मण्डपमें नन्दिन्यादि मण्डप मातृकाका स्थापन करना।

मातृकापूजन, नांदीश्राद्धके अंगभूत होनेसे जिस कर्ममें नांदीश्राद्ध होता है। वहाँ ही मातृकापूजन करना शास्त्रसंमत है । मृतकके उद्देशसे मासिकनिवृत्तिके पूर्व कोई याग, उद्यापनादि कर्म उसका पुत्रादिक अधिकारी करें तो वहाँ मातृकापूजन और नान्दीश्राद्ध होता नहीं । मासिकनिवृत्ति हो गई हो तो मातृकापूजन नान्दीश्राद्ध हो सकता है ।

वैश्वदेवसंकल्प : शुभ कर्म करनेवाले यजमानके घर अपने स्नान, संध्या, अग्निहोत्र, पूजा, ब्रह्मयज्ञ, तिलरहित तर्पण और निर्णोजनान्त वैश्वदेव करनेके बाद शुभ कर्मका प्रारम्भ होता है । पितृयज्ञ, मनुष्य यज्ञ (ब्रह्मचारी संन्यासी, अतिथिको भोजन) गोग्रासादि और भोजन रह जाता है। भोजन कर्मसमाप्ति बाद होता है। नान्दीश्राद्ध हो जाने के बाद पूर्णाहुति कर्मसमाप्ति देवकोत्थापम होने तक जितने दिन लगें, वहाँ तक 'नोदाहरेत् स्वधाकारं० इत्यादि वचनसे यजमान तर्पण वैश्वदेव देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ कर सकता नहीं । इसलिये वैश्वदेव संकल्प करना पडता है ।

अग्निहोत्रमें जितने दिन बिना अग्निहोत्रके बीतें इतने दिनों तक गिन कर हर एक दिनके हिसाबसे दही, चावल या यवकी चार आहुति पर्याप्त दधि, चावल या यवका दान करना पडता है । इस वस्तुको लेकर अतिदेशके रूपमें वैश्वदेवका फल देवकोत्थापन पर्यन्त प्राप्त हो । वैश्वदेव न करनेका दोष न लगे । इसलिये घृतयुक्त तण्डुलदान करना और वैश्वदेव संकल्प शुक्लयजुर्वेदमें रेणुकारिकानुसार किया जाता है । अन्य वेदोंमें इसका विधान मिलता नहीं । वसोर्धारापूजन, शुक्लयजुर्वेद काण्वशाखा सामवेदियोंमें किया जाता है। इसी तरह आयुष्यमन्त्रजप भी शुक्ल यजुर्वेदके प्रयोगग्रन्थोमें कहा है ।

४२ नान्दीश्राद्ध

मंगलकार्यमें विश्वदेव और पितृओंके आशीर्वाद प्राप्त हो । और आकस्मिक आशौचादि संकट आनेसे शुभ कार्यमें बाधा न हो इस उद्देशसे नांदीश्राद्धका विधान है । प्रतिष्ठाकर्ममें एक ही यजमान हो तो वह खुद या वृतप्रतिनिधि-यजमानके पितृओंके उद्देशसे नांदीश्राद्ध करें । अनेक यजमान होने पर सकृदेव भवेच्छ्राद्धम्० नांदीश्राद्ध एक ही होगा । इस वचनके आधारसे शास्त्रकी अनवस्था न हो, इस लिए प्रतिनिधिभूत ब्राह्मण अपने पितृओंको लेकर नांदीश्राद्ध करेगा । प्रतिनिधि जीवत्पितृक हो तो पिताके पितृओंको लेकर नांदीश्राद्ध करेगा । ऋग्वेद और कृष्णयजुर्वेदमें १ विश्वेदेवा २ मातृपितामहीप्रपितामही ३ पितृपितामहप्रपितामह ४ मातामह प्रमातामह वृद्धप्रमातामह सपत्नीक, ऐसे चार दूर्वाचट रखकर सांकल्पिक नांदीश्राद्ध करते हैं । इन चारोंमेसे २, ३, ४ सुपारी पर जो आय, माता, पिता या मातामह विद्यमान हो, इस पार्वणका लोप करना । प्रतिनिधि या यजमान जीवत्पितृक हो तो पिताके सब पार्वण लेना ।

शुक्लयजुर्वेदमें षड्दैवत्य नांदीश्राद्ध होनेसे १ विश्वदेवा, २ पितृ-पार्वण सपत्नीक ३ मातामह पार्वण सपत्नीक, ऐसे तीन दूर्वाचट रखकर सांकल्पिक श्राद्ध करना। पिता विद्यमान होने पर पिताके दोनों पार्वण लेना। माता या मातामही-इन तीनोंमेंसे एक भी जीवन्त हो तो सपत्नीक-शब्दका उच्चारण न करना। व्युत्क्रममरणमें पिता न हो और पितामह हो तो-पितृप्रपितामहवृद्ध प्रपितामह-उच्चार करना। मातामह न हो, और प्रमातामह हो तो-मातामहवृद्धप्रमातामहतत्पितरः ऐसा उच्चार करना।

कोकिल मतानुसारी काण्वशाखीय और सामवेदीय यजमानको १ विश्वदेवा २ पितृपितामहप्रपितामह ३ मातृमातामह प्रमातामह ऐसा उच्चार करना। सामवेदीय और नागरब्राह्मणोंमें सांगोपांग सपिण्डक नान्दीश्राद्ध होता है। और गुड, दधि, बदर, अक्षतमिश्रपिण्ड दिये जाते हैं।

अथर्ववेदमें पहले तीन पितृ अश्रुमुख गिने जाते हैं। इसलिए १ विश्वदेवा २ वृद्धप्रपितामहतत्पितृतत्पितामहाः ३ वृद्धप्रमातामहस्य पितृपितामहप्रपितामहाः ऐसा उच्चार करना।

एक ही अपुत्र विधवा दानदायी यजमान स्त्री हो तो प्रतिनिधि ब्राह्मण १ विश्वदेवा २ यजमानायाः भर्तृतत्पितृतत्पितामहाः ३ यजमानायाः पितृपितामहप्रपितामहाः ऐसा उच्चार करना। या तंत्रशास्त्रके मतानुसार नान्दीश्राद्ध फल प्राप्त होनेके लिए एक पयस्विनी गौ अथवा गोनिष्क्रयका द्रव्यदान करें।

नांदीश्राद्ध मङ्गलकार्यांगभूत होनेसे पूर्वाभिमुख बैठकर सव्यसे नाम गोत्र वस्वादिरूपका उच्चार किये बिना संकल्पसे श्राद्ध करना। दर्भ या दूर्वाबटूकी जगह ब्राह्मण भी बैठा सकते है।

पिण्डप्रदान और ब्राह्मण भोजनके अभावसे विश्वदेवा २ पितृपार्वण ३ मातामह ब्राह्मण ३ ऐसे आठ ब्राह्मणको द्विगुण आमान्न या चौगुना आमान्नका निष्क्रय देना होता है।

पहले तिथ्यादिक सह निश्चित हो जाने पर बीचमें किसीके मरण जन्म आशौचादि आनेकी संभावना पर, निश्चित मुहूर्तसे पहले यज्ञमें इक्कीस दिनमें, विवाहमें दस दिन पहले, चौलमें तीन दिन पहले और उपनयनमें छ दिन पहले नान्दीश्राद्धान्त कर्म कर लेनेसे जननाशौच या मरणाशौचका बाध लगता नहीं।

श्रौत स्मार्त अग्निहोत्राङ्गभूत यज्ञमें, वरण हो जानेके बाद, व्रत और सत्रमें संकल्प होने के बाद, विवाहादि मंगल कर्ममें नांदीश्राद्ध हो जाने के बाद और श्राद्धमें रसोई तैयार हो तो कर्ताको जननाशौच या मरणाशौच आ जाने पर कर्म पूर्ण हो तब तक आशौचका दोष लगता नहीं।

इस तरह सभी मंगल कर्मोंमें नांदीश्राद्ध अवश्य करना चाहिए।

४३ ऋत्विग्वरण और ऋत्विजोंका कार्य और प्रकार

यज्ञमें काम करानेवाला कुलपरंपराप्राप्त आचार्य होता है । अनेक यजमान और उनके भिन्न भिन्न पुरोहित होने पर पढा हुआ कर्मका ज्ञाता आचार्य हो सकता है । कौनसा कर्म ठीक हुआ या न हुआ, और ठीक न होने पर शास्त्रानुरूप कर्मकी जाँच रखनेवाला ब्रह्मा होता है । कुलाचार्य अनपढ होने पर ब्रह्माको ही सब कार्य करना पडता हैं । लेकिन आचार्य संबंधी दानका अधिकारी कुलाचार्य होता है ।

पञ्चकुण्डी या नवकुण्डी यज्ञमें आचार्यकुण्डको छोडकर अन्य कुण्डोंमें यजमानके प्रतिनिधिरूप अन्य उपाचार्य (कुण्डाचार्य) और उपब्रह्माका वरण कर्म करनेके लिए करना ।

पूरा कर्म निर्विघ्न हो जाय इसलिए गणेश मन्त्रका जप करनेवाला और ज्योतिर्विद् ब्राह्मणका गाणपत्य नातेसे वरण करना ।

कर्मके विषयमें शास्त्रार्थ उठने पर शास्त्रके तत्त्वको जाननेवाले और शास्त्रानुरूप समाधान करनेवाले एक दो या अधिक विद्वानको सदस्य बनाना ।

हर एक दिशामें पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर द्वार पर होम के समय उन उन वेदोंके कहे गये सूक्तोंका जप करनेवाले चार या आठ वैदिकोंका द्वारपाल के नाते वरण करना ।

जलाधिवाससे लेकर मूर्तिप्रतिष्ठा होने तक मूर्त्तिका रक्षण करनेवाले और ठीक जगह रखनेवाले विद्वान ४ या आठ ब्राह्मणका मूर्तिपके नाते वरण करना ।

होममें उपयुक्त ब्राह्मणोंको होता या ऋत्विक् और जप करनेवालोंका जापकके नाते वरण करना । इन सब ब्राह्मणोंका साहित्य देना, आसादनी और परिचर्याके लिए दो या चार परिचारक रखना ।

कर्मका समय और हिसाब सामने रख कर, एवं यजमानकी द्रव्यशक्तिका विचार करके यज्ञमें ब्राह्मणोंका वरण करना इष्ट है । महापातकी व्यभिचारी व्यङ्गादि शास्त्रनिषिद्ध ब्राह्मणोंको वर्ज्य करना ।

४४ मधुपर्क विचार, पुण्याहवाचन

पारस्कर गृह्यसूत्रमें आचार्य एवं ऋत्विजोंका मधुपर्क करनेका कहा है । उस सूत्रके भाष्यमें सोमयागके लिए वृत ब्राह्मणोंका मधुपर्क करनेका कहा है । कलियुगमें गवालम्भका निषेध और

लोकविद्विष्ट होनेसे गवालम्भके बदले (बछडेका) उत्सर्ग ही करना इष्ट है ।

स्मृति पुराण एवं तन्त्रमें ब्राह्मणोंका मधुपर्क करनेके वचन होनेसे शतचण्डी, विष्णुयाग, महारुद्रादि बडे यज्ञोंमें मधुपर्क होता है ।

यह मधुपर्क विधि यजमानकी शाखानुसार करना ऐसा एक मत है । अर्च्यशाखया मधुपर्कः इत्यन्ये' इस वचनके अनुसार यज्ञमें अनेक शाखाके ब्राह्मण होनेसे ब्राह्मणकी शाखानुसार मधुपर्क करना यह दूसरा पक्ष है । क्योंकि तत्तद्वस्तुके प्रतिग्रहणमें ब्राह्मण अपनी शाखानुसार ही मन्त्र पढेगा । दूसरी ओर यजमान एवं ब्राह्मणकी शाखामें क्रम और मन्त्रभेदसे कर्मवैगुण्य होगा । ऐसी विप्रतिपत्तिमें यजमानशाखानुसार मधुपर्क करना ही उचित है ।

अर्घबन्धका विधि कृताकृत है । मधुपर्कके बाद ब्राह्मणपूजन गोनिष्क्रय, वस्त्र यज्ञोपवीत उपानह जलपात्र छत्र मुद्रिका पूजापात्रादि या उसके प्रत्याम्नायरूप वस्त्र पात्र या दक्षिणा दे देना । पहले पुण्याहवाचन न किया हो तो मधुपर्कके बाद कर लेना ।

४५ वर्धिनीपूजा, मण्डपपूजा, मण्डपप्रवेश ।

स्मार्त अग्निहोत्रमें यज्ञवेदीकी भूमिके ईशानकोणमें खड्डा करके मणिकपात्रम् (मिट्टीका चौडा शराव) जलभर कर रक्खा जाता है । कर्ममें उपयुक्त जल उसमेंसे ही लिया जाता है । श्राद्धमें भी ईशानमें तिलोदकपात्र रक्खा जाता है । उस जलसे ही सब कार्य होता है । वैसे ही यज्ञादि मङ्गलकार्यमें 'कर्मार्थं पूरयाम्यहम्' इस उक्तिसे तांबा पितल या मिट्टीका बडा कलश जल भरके सफेद वस्त्र पर धान (व्रीही) का अष्टदल करके रक्खा जाता है । उसको वर्धिनीकलश कहते हैं । और उस पर ब्रह्मादि २७ देवताका आवाहन पूजन होता है । जो देवता 'कलशस्य मुखे०' इन श्लोकोंमें बताये गये है । वर्धिनीकलशपूजनके बाद यजमानपत्नी सुवासिनी कलशको हाथमें लेकर सुवासिनीको आगे रख कर यजमान और ब्राह्मण समेत मण्डपकी प्रदक्षिणा करते हुवे 'उद्गातेव शकुने० यह शाकुन्तसूक्त, ऋचंवाचं- द्यौः शान्तिः० अथ साम गायति०' शच इन्द्राग्नी- इनमेंसे शान्तिसूक्तका पाठ करते हुवे मण्डपके पश्चिमद्वारके आकर कलश रखना । मण्डप हो वहाँ गणपतिपूजनसे वर्धिनीपूजन तकका कर्म मण्डपके बाहर होता है ।

मण्डपपूजा : वर्तमानयुगमें मण्डप और कुण्डका भूभाग यथोक्तमानके अनुसार करते हैं । स्तम्भ, द्वार आच्छादन, कलशनिधान, शंखचक्रादि या त्रिशूलादि कीलक शिखर शास्त्रविहित काष्ठ और मानयुक्त बनाते नहीं । उक्तमानसे करनेमें किराये पर लाई हुई लकडी द्रव्यके हिसाबसे काटना असंभव है । इस लिए मण्डपके ऊपरके, आच्छादनादिकको उक्तमण्डप कहा जाता नहीं । इसलिए मण्डपपूजा करते नहीं । क्योंकि तोरणद्वार कीलक फलक कलशादि होता ही नहीं ।

फिर भी अतिदेशसे मण्डपपूजा करनी हो तो ग्रन्थोमें बतायें अनुसार मण्डपपूजा करना । इसमें दोष नहीं । जहाँ छोटे कर्मोंमें या मानयुक्त स्थलका अभाव होता है । केवल मध्यमें कुण्ड और दक्षिणसे उत्तर तक वेदियाँ बनाकर बिना मान आच्छादन किया जाता है । वहाँ गणेशपूजनादि ऋत्विग्वरणान्त विधि मण्डपमें ही करना । वर्धिनीपूजन, मण्डपप्रवेश, मण्डपांग गणेशपूजन, मण्डपांग वास्तुपूजनकी आवश्यकता नहीं ।

मण्डपप्रवेश : उक्त मण्डप होने पर मण्डपपूजा करके, अन्यथा 'मण्डपदेवताभ्यो नमः' इतना कह कर द्वार पर गन्धपुष्पादि चढा कर भूमिपूजन, अर्घ, बलिदान, प्रार्थना, करके यजमानपत्नी कलश लेकर पतिके साथ मण्डपप्रवेश करके आग्नेय या ईशान कोणमें कलशको चौकी पर रखना । प्रतिदिन उसमें से ही जल कर्मके लिए लेना ।

बादमें कुण्ड या मण्डपके पश्चिमद्वार पर खडे होकर सरसों हाथमें लेकर 'कृणुष्व पाजः० रक्षोहणं० देवयागं करोम्यहम्' दिग्रक्षण भूमिताडन उदकोपस्पर्श करके कांस्यपात्रमें पञ्चगव्य विधिपूर्वक यजमान तैयार करके कुण्ड मण्डप वेद्यादि यज्ञोपकरणोंका प्रोक्षण करें ।

मण्डपके ईशानमें ग्रहपीठके नीचे कलश पर केवल नवग्रहका संक्षिप्त पूजन विसर्जन करके उस कलशके जलमें दूध डालकर मण्डपके ईशान कोणसे बाहरसे प्रदक्षिणा क्रमसे ईशान पर्यन्त जल दुग्धकी धारा, कृणुष्व पाजः० रक्षोहणं० पुनन्तुमा० राक्षोघ्न० पावमान सूक्त पढते हुए करना । साथमें त्रिगुण सूत्रसे मण्डपको नीचेसे वेष्टन करना ।

४६ मण्डपाङ्ग गणेशपूजन, वास्तुपूजन

बादमें मंडपांग गणेशपूजन और नैर्ऋत्यकोणमें चतुःषष्टिपद मण्डलपर मण्डलदेवता आवाहनपूजन और कलश पर केवल वास्तुपुरुष (ध्रुव नहीं) आवाहन पूजन करके बलिदान करना । होमकी ईच्छा होतो नैर्ऋत्य कोणमें अलग स्थण्डिल पर होम करना, इहदति० यह षडाहुतीका क्रमभेद होनेसे प्रधानकुण्डमें होम करना अनुचित है ।

४७ जपप्रधान और होमप्रधान कर्म

शतचण्डी, सहस्रचण्डी, लक्षचण्डी यह देवीयाग, विष्णुसहस्र स्तोत्रके हजार पाठ सहित विष्णुयागादि, जहाँ जप करके उसके दशांशसे हवन होता है । वे कर्म जपप्रधान कहें जाते हैं । इन कर्मोंमें वास्तुपूजनके बाद मण्डल देवता, पीठ, यन्त्रदेवता, प्रधान देवताका स्थापन करनेके बाद अग्निस्थापन होता है । सहस्र या अयुत पुरुषसूक्तसे होमात्मक विष्णुयाग, लघुरुद्र, महारुद्र, अतिरुद्र, प्रतिष्ठा और अन्य होमप्रधान कर्ममें पहले अग्निस्थापन, बादमें मंडल पीठ यन्त्रप्रधान देवता स्थापन पूजन करना चाहिए ।

स्मृति, पुराण आगमादि निर्दिष्ट लौकिक कर्मोंमें ग्रहयज्ञको प्रकृति मानके अग्निस्थापन के बाद ग्रहस्थापन करके प्रधानादि देवताका स्थापन पद्मनाभमें कहा है। महारुद्रादि रुद्रयजनमें भी पहले ग्रहस्थापन बादमें प्रधानस्थापन होता है। ऋग्वेदियोंमें प्रधानस्थापनके बाद अग्निस्थापन करते हैं।

४८ देवतावाहन, रक्षोऽपसारण, भूपरिग्रह, भूम्यादिपूजन

हाथमें पुष्प लेकर ॐ स्वस्ति न इन्द्रो० दधातु-देव आयान्तु, ऐसा बोलकर देवोंका आवाहन करना, यातुधाना अपयान्तु, अध्यवोच० परासुव, राक्षसोंको दूर करना और जमीन पर दाहिने हाथका प्रादेश रखकर, विष्णो देवयजनं रक्ष-ऐसा बोलना। याज्ञिक 'रक्षस्व' ऐसा बोलते हैं। उसको आर्षप्रयोग मानना। बादमें कुण्ड या स्थण्डिलके नीचे पश्चिममें दक्षिणोत्तर क्रमसे, भूमि, कूर्म, अनन्त, वराह-चार देवताओंका सुपारी पर आवाहन-पूजन करना।

४९ कुण्ड देवता पूजन, पञ्चभूसंस्कार, अग्निस्थापन

होमके लिए एक पाँच या नवकुण्ड करते हैं, कुण्ड यह प्रकृति माने शरीरका स्वरूप है। उस कुण्डमें स्थापित अग्नि तेजोमय परमात्मा और शरीरमें रहनेवाले जठराग्निका स्वरूप है। कुण्डके खात, कण्ठ, मेखला, योनि, नाभि यह पाँच अङ्ग है। योनि पर मृन्मय लिङ्ग और मिट्टीके गोलकद्वय स्त्रीपुरुषरूप संसारका द्योतक है। कितने लोग इसको बीभत्स मानते हैं। ऐसा मानने पर तो सारा संसार बीभत्स हो जाएगा। जो वस्तु जीव मात्रकी उत्पत्तिका मूल कारण है। उन्हींका प्रकृतिस्वरूप कुण्डमें निवेश है। इसमें बीभत्सताका कोई सवाल ही नहीं उठता।

कुण्ड करनेकी अनुकूलता न होने पर स्थण्डिल बनाते हैं। उसमें भी दो प्रकार है। समेखल स्थण्डिल, मेखलारहित केवल स्थण्डिल। समेखल स्थण्डिलमें भी दो प्रकार है। कण्ठ, नाभि, योनिरहित केवल तीन दो या एक मेखलायुक्त कुण्डमानानुसार होता है। मेखलासे गर्त होनेकी वजहसे वहाँ खात, कण्ठ, नाभि, योनि यहभी कर सकते हैं। ऐसा अन्य ग्रन्थकार कहते हैं।

विवाहादि संस्कार और शान्त्यादि छोटे कर्मोंमें केवल रत्नि, अरत्नि या हस्तमात्र मेखलादिरहित चार या एक अंगुल ऊँचा चतुरस्र स्थण्डिल करते हैं। कुण्ड और समेखल स्थण्डिलकी तरह दस हाथ तकका भी स्थण्डिल भुजमानानुसार होता हैं। विधान पारिजातमें एक हाथसे दस हाथके स्थण्डिल विविध उच्चतायुक्त दो या एक मेखलावाले बताये हैं।

कुण्डके मध्यमें विश्वकर्मा, ऊपरकी मेखलापर विष्णु, द्वितीय पर ब्रह्मा, तृतीय पर रुद्र, योनि पर दुर्गादियजनमें गौरी, विष्णुयजनमें लक्ष्मी, कण्ठ पर कण्ठ, नाभि पर नाभि और कण्ठके भीतर नैर्ऋत्यमें वास्तुपुरुषका आवाहन पूजन करना। एक मेखला पर विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, दो मेखलामें

प्रथम पर विष्णु, द्वितीय पर ब्रह्मा-रुद्रका स्थापन होगा । ऊपरके क्रमसे श्वेत, रक्त, कृष्ण, पीत, हरित वर्णकी पाँच मेखला पर क्रमसे विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य, इन्द्रका आवाहन करना ।

परशुरामकारिकामें ऊपरसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यह क्रम बताया है । एक पाँच नव सभी कुण्डोंमें इस तरह पूजन करना ।

पञ्चभूसंस्कार : पारस्कर गृह्यसूत्रकाण्ड १ कण्डिका-१में यह संस्कार भूमिके ही है । क्योंकि भूसंस्कार ऐसा शब्द है । ऐसा भाष्यकार कहते हैं । दूसरा भाष्यकार अग्नि स्थापनके लिये हैं, ऐसा कहता है । किन्तु अग्निस्थापनके लिए ही भूसंस्कारकी आवश्यकता है । इस लिए भूसंस्कारपूर्वक अग्न्यर्थक संस्कार ऐसा समन्वय करना उचित है । परिसमूहन दर्भाग्रसे, उपलेपन हस्ताग्रसे उल्लेखन वज्र या यज्ञियकाष्ठके अग्रसे, उद्धरण और अभ्युक्षण भी हस्ताग्रसे होता है । प्राचीन कालमें स्रुवोंमें भी आगे छोटासा अग्र रहता था । उससे उल्लेखन हो सकता है ।

अग्निस्थापन : अग्निके विषयमें दो पक्ष है । आरणेय पक्ष, आहरण पक्ष । शमीयुक्त पीपलके पेडकी ऊपरकी पूर्व या उत्तरकी शाखाकी सूखी लकडीसे अरणि बनाकर उससे पैदा हुआ अग्नि आरणेय कहा जाता है । वह उत्तम अग्नि है । सूर्यकान्त मणि (दूरबीन) काच पर सूर्यकिरण गिरनेसे पैदा हुआ अग्नि मध्यम है । और यह अग्नि शुद्ध एवं जल्दी उत्पन्न होता है ।

दूसरा आहरणपक्ष है । बहुत पशु रखनेवाले अग्निहोत्री वैश्यके पशुओंका खाद पकानेके लिए खड्डेमें जो अग्नि रहता है, वह अनेक पीढिओंसे जलता रहता है । उस अग्निको लाकर स्थापन करना, या अनेक यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणके घरसे, ब्राह्मणके चुल्हेसे, भटीयारकी भट्टीसे, जहाँसे बहुत अन्न पकाया जाता हैं । वहाँ चुल्हेसे अग्नि लाकर कुण्ड या स्थण्डिल पर स्थापन करना यह आहरण पक्ष है, यह आहरण पक्ष शुक्ल यजुर्वेदियोंका संमत है । फिर भी सूर्यकान्त मणिसे विना परिश्रम अग्नि जलदी उत्पन्न होता है और शुद्ध है ।

अग्निस्थापनमें एकाग्नि पक्ष और भिन्नाग्नि पक्ष दो पक्ष है । अग्नि उत्पन्न करके पहले आचार्यकुण्डमें स्थापन करके आचार्यकुण्डमेंसे अग्नि निकालकर क्रमसे पूर्वादिकुण्डमें स्थापन करना एकाग्निपक्ष है । बाहर अग्नि तैयार करके उसका विभाग करके आचार्य पूर्वादि क्रमसे कुण्डमें अग्निका स्थापन करना यह भिन्नाग्निपक्ष है । ये दोनों पक्ष कुण्डकल्पलतामें बतायें हैं । दोनों पक्षमें कोई फर्क नहीं है । आयतनभेदसे हर एक कुण्डमें पञ्चभूसंस्कार, कुशकण्डिका, ब्रह्मा प्रणीता प्रोक्षणी, पात्रहविषूसंस्कार आघाराज्यभागादि प्रणीताविमोकान्त कर्म समान तौरसे करना पडता है । आयतन भेद होने पर भी एकही प्रधान कर्मके अङ्गभूत कर्म सब कुण्डोमें होता है । उससे एकाग्नि पक्ष या भिन्नाग्नि पक्षमें कोई फर्क नहीं ।

कितने प्रतिष्ठा ग्रन्थोंमें पूर्व कुण्डमें ऋग्वेद, दक्षिणमें यजुर्वेद, पश्चिममें सामवेद, उत्तरमें अथर्ववेदके क्रमसे पंचभूसंस्कारादि प्रणीता विमोकान्त कर्म करनेका कहा है। आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशानके कुण्डके लिए कोई स्पष्टता नही है। हर एक वेदमें पञ्चभूसंस्कार, स्थालीपाकतन्त्र आधारादि प्रणीताविमोकान्त तन्त्र भिन्न भिन्न होनेसे यजमानकी शाखानुसार किये जानेवाले प्रधानकर्मके साथ इनकी एकवाक्यता होगी नहीं, यह कर्मवैगुण्य दोष आता है।

वस्तुतः पूर्वादि कुण्डोंमें आज्यमध्वादि द्रव्योंकी आठ आठ आहुति देनेका कहा है। यह ही बात शास्त्र और शिष्टसंमत है। इसलिए सब कुण्डोंमें यजमानशाखानुसार ही सब अग्नितंत्र करना उचित है।

रेणुकारिकामें इस अग्नि जो ताम्रपात्र कांस्यपात्र या मृत्तिकापात्र संपुटमें रखखा है। उसमेंसे आम माने कच्चा और क्रव्याद माने मरनेके बाद शरीरको जलानेवाला जो अग्निका भाग, उन दो भागोंको 'हुं फट्' मन्त्रसे नैर्ऋत्यमें निकालकर तीन बार कुण्ड या स्थण्डिल पर घुमाकर आत्मसंमुख अग्निका स्थापन करना। खाली पात्रमें जल और अक्षत डाल कर ठंडा करना। बादमें अग्निका ध्यान और पूजन करें। नैवेद्य बाहर वायव्य कोणमें रखें।अग्नि, यज्ञोपवीत, दीप, अनन्त नागादिककी प्रतिष्ठा होती नहीं।

भिन्न भिन्न कर्मोंमें अग्निके अलग अलग नाम होतें हैं। सीमन्तमें मंगल, अन्नप्राशनमें शुचि, चौलमें सभ्य, उपनयनमें जातवेदस्, वेदारम्भमें समुद्भव, केशान्तमें सभ्य, समावर्तनमें वीतिहोत्र, विवाहमें योजक, चतुर्थीकर्ममें साक्षी, शान्तिकर्ममें वरद, दुर्गायागमें शतमङ्गल, वृषोत्सर्ग नीलोद्वाहमें रुद्र, वैश्वदेवमें पावक, रुद्रयागमें मृड या शतमङ्गल, विष्णुयजनमें नारायण, वास्तु और पौष्टिक, व्रतोद्यापन, प्रतिष्ठादिकमें बलवर्धन, शरीरदाहमें क्रव्याद, वैश्वदेवमें पावक ऐसे भिन्न कर्मोंमें अग्निकी भिन्न भिन्न नामसे पूजा होती हैं।

५० प्रधानस्थापन

पहले उक्तमण्डलकी देवताओंका आवाहन पूजन करना। कोई पद्धतिमें ब्रह्मादिका पायस बलिदान भी कहा है। मध्यमें पूर्णपात्र सहित कलश पर सुवर्णादि सिंहासन पर या पूर्णपात्र पर ही पीठ देवताका आवाहन पूजन करना। बादमें सुवर्ण रजत ताम्रादि यन्त्र पर या रेशमी वस्त्र पर चन्दनसे यन्त्र बनाकर उसके ऊपर यन्त्र देवताका आवाहन-पूजन करना। प्रतिष्ठामें पीठ यन्त्र देवताका आवाहन-पूजन होता नहीं।

'यन्त्यते बध्यते देवता अस्मिन् इति यन्त्रम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार यन्त्र, देवताका शरीर है। बिन्दु हृदयमें विराजमान चैतन्यका प्रतीक है। इसके पर प्रधान देवताका आवाहन होता है। उसके

पर हृदयका त्रिकोण, उसके पर षट्कोण वायुमण्डल, सारे शरीरके आठ कोने अष्टपत्र और मस्तिष्कमें रहे हुए सहस्रदल कमलमें दस बारह, सोलह आदि पत्र होते हैं। शरीरकी त्वचाका आवरण भूपुर हैं। तात्पर्य कि यन्त्रदेवताका स्वरूप हैं। इसलिए पहले पीठ देवता फिर यन्त्र देवताका आवाहन-पूजन करनेका याज्ञिकोंका सम्प्रदाय है। तन्त्रमें पहले यन्त्र बादमें पीठ देवताका आवाहन पूजन करते हैं। उपरि निर्दिष्ट मतसे यह तान्त्रिक क्रम उचित नहीं भाता।

यन्त्र होनेपर प्रतिमाकी आवश्यकता नहीं। किन्तु ध्यानमें स्वरूपका ध्यान पूजन ठीक हो सकता है। इसलिए सुवर्ण रजतादि प्रतिमामें प्रधान देवताका (यन्त्र) सपरिवार पूजन करते हैं। प्रतिष्ठामें मूर्त्तिओंका स्थापन करना है। इसलिए पद्धतिकारोंने प्रधान देवताकी प्रतिमाका स्थापन बताया नहीं। लेकिन मूर्त्तिप्रतिष्ठा होने तक याग कर्ममें प्रधान देवताका पूजन होता रहे इस उद्देशसे प्रतिष्ठात्रिविक्रममें प्रधान देवताकी प्रतिमाका स्थापन पूजन कहा है। श्रौत स्मार्त अग्निहोत्र साध्यकर्मोंमें 'मन्त्रमयी देवता' इस सिद्धान्तको मानकर किसी देवताका स्थापन मण्डलादि होता नहीं।

स्मृति पुराण, तन्त्रादि निर्दिष्ट कर्मोंमें मण्डल, पीठ, यन्त्र, प्रधानदेवताका पूजन कहा है। इसलिए करनेमें कोई दोष नहीं।

५१ ग्रहस्थापन, ग्रहयज्ञके प्रकार

शास्त्रमें ग्रहमख, अयुत होम, लक्षहोम, कोटिहोम तीन प्रकारके कहे हैं। 'ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस मन्त्रसे दस हजार आहुति अयुतहोम, एक लाख आहुति लक्षहोम, एक करोड आहुति कोटिहोम होता है। इसका तात्पर्य यही है कि व्याहृतिहोम प्रधान कर्म है। ग्रहयज्ञ उसका अङ्गभूत कर्म है। व्याहृतिहोम, धान (डांगर) जौ, समिध तिल या आज्य इनमेंसे एक द्रव्यसे होता है।

ग्रहयज्ञ याज्ञवल्क्योक्त मात्स्योक्त आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टोक्त, वसिष्ठोक्त, चार तरहका है। रुद्रकल्पद्रुमकारने ग्रहयज्ञ शान्तिकर्म होनेसे अलग करना चाहिए, ऐसा लिखा है। मत्स्यपुराणमें श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत्' इस वचन श्रीकामत्वसे पौष्टिकत्व और शान्तिकामत्वसे शान्तिकत्व बताता हैं। सब पद्धतिकारोंने श्रीकामत्वरूप पौष्टिकत्व लेकर सभी कर्म सग्रहमख बताकर ग्रहयज्ञका लौकिक कर्मोंमें प्रकृतिरूपत्व सिद्ध कर दिया है। केवल उपनयन विवाहादि नित्यकर्मोंमें 'स्वस्तिवाचनग्रहयज्ञाभ्युदयिकानि कृत्वा' ऐसा बताकर ग्रहयज्ञको शान्तिकर्म मानकर अलग करनेका कहा है।

ग्रह देवता : याज्ञवल्क्य और दिनकर भट्टका मत है। कि केवल नवग्रहोंकी पूजा करना। ऐसा छोटे कर्मोंमें होता है। जहाँ होम कृताकृत हो, करना हो तो केवल आज्यसे एक एक आहुति दी जाती है। मात्स्य, आश्वलायनपरिशिष्ट वसिष्ठ पद्धतिमें ग्रहमण्डलमें अधिक देवता है।

नवग्रह, नव अधिदेवता, नव प्रत्यधिदेवता, पाँच या सात सादुगुण्य देवता, इन्द्रादि दशदिक्पाल मिलकर ४२ या ४४ देवता बतायें हैं। 'ईशानमें कलश रखकर 'तत्त्वायामीति वरुणमावाह्य संपूज्य तत्र साङ्गं रुद्रं जपेत्। ऐसा सब पद्धतिकारोंने वरुणका आवाहन पूजन और उस कलशका सांग रुद्रजपसे अभिमन्त्रण लिखा है। फिर भी सब याज्ञिक उसमें रुद्रका आवाहन करके रुद्रकलश नामसे व्यवहार करते हैं।

५२ अयुत लक्ष कोटिहोम

प्रयोगदर्पणमें अयुतहोम, लक्षहोम कोटिहोममें ग्रहदेवतासे अधिक शेषादि मनुष्यान्त ५२ देवताका कहें हुवे स्थानों पर अक्षतपुञ्ज पर आवाहन लिखा है। इससे सारा नक्षत्र चक्र और कालचक्रका भी समावेश है। सारे ब्रह्माण्डकी पूजा हो वह आशय प्रतीत होता है। फिर भी ग्रहमण्डलके ४२ या ४४ देवताओंके होमके लिए समित्, चरु, तिल, आज्य चार द्रव्य बतायें हैं। शेषादि मनुष्यान्त देवता के लिये मण्डलदेवताहोमक्रममें केवल एक एक आज्याहुति कही है। इससे इसका भिन्नत्व स्वयंसिद्ध है।

अयुतहोममें पूर्वमें मध्यवेदी पर कलश पर - ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, जनार्दनका पूजन लक्षहोममें- ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, जनार्दन, गरुड और कोटिहोममें, भविष्यपुराणमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वसु, ग्रह, मरुद्, वायु, लोकपालका आवाहन है।

यवयुक्त घृताक्त तिल तीनो होममें प्रधान हविर्द्रव्य है। उसके अभावमें व्रीहि, यव, समिद्, आज्यमेंसे कोई एक लिया जाता है।

अयुत, लक्ष, कोटिहोममें क्रमसे एकहस्त, ३६ अं. या ४८ अंगुलकी समचतुरस्र एकवेदी होती है। प्रयोगदर्पणमें 'अत्र प्रधानं प्रजापतिं घृताक्ततिलद्रव्येण (अयुत-जलक्ष-कोटि) संख्यया यक्ष्ये' ऐसा स्पष्ट कहनेसे समस्त व्याहृतिका प्रजापति ही प्रधानदेवता है। अग्नि वायु सूर्य नहीं।

५३ ग्रहोंकी आकृति, स्थान, वर्ण, मुख

सूर्य-	वृत्त क्षि. १२ अं.	वर्ण-रक्त	स्थान-मध्य	मुख-पूर्व
चन्द्र-	चतुरस्र २४	वर्ण-श्वेत	अग्नि	पश्चिम
भौम-	त्रिकोण-३	रक्त	दक्षिण	दक्षिण
बुध-	बाणाकार-४	पीत	ईशान	उत्तर
गुरु-	पद्दिश-६	पीत	उत्तर	उत्तर

शुक्र-	पञ्चकोण-९	श्वेत	पूर्व	पूर्व
शनि-	धनुराकार-२	कृष्ण	पश्चिम	पश्चिम
राहु-	शूर्पाकार-१२	कृष्ण	नैर्ऋत्य	दक्षिण
केतु-	ध्वजाकार-६	पञ्चवर्ण	वायव्य	दक्षिण

५४ ग्रहोंकी दिशाके हिसाबसे दक्षिणोत्तरकी कल्पना करके स्थापन

नवग्रहोंमें जिस ग्रहका जिस दिशामें मुख हो वह उसकी पूर्व है । उस हिसाबसे ग्रहोंके दायें हाथ अधिदेवता और बायें हाथ प्रत्यधिदेवताका स्थापन होता है । आश्लेषा नक्षत्र योगादि शान्तिमें प्रधान देवताकी पश्चिम यह पूर्व मान कर इस हिसाबसे दक्षिण उत्तरमें देवता स्थापन होता है ।

इस प्रमाणसे 'पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची' यह सिद्धान्त होता है । तन्त्रमें भी प्रधान दुर्गादि देवताकी पश्चिम यह पूर्व होती है । विशेषार्घमें देवताका आवाहन होता है । इस बातको प्रमाणभूत मान कर शुद्ध उत्तरसे शुद्ध दक्षिण तक पङ्क्तिमें पात्रोंकी स्थापना होती है । अन्यथा अदक्संस्था लेकर दक्षिणसे उत्तरकी ओर क्रमसे पात्रोंका आसादन होना चाहिए । लेकिन तान्त्रिक लोग ऐसा करतें नहीं ।

५५ पूज्य और पूजकके मध्यमें प्राची मानकर देवीयागमें पात्रासादन और प्रतिष्ठामें प्राङ्मुखत्वका प्रतिपादन

प्रतिष्ठामें भी पहले प्रासाद प्रकरणमें प्रासादका मुख्य द्वार जिस दिशामें हो उसको ही पूर्व दिशा मानना ऐसा कह गयें हैं । उपकार्य और उपकरणका प्रत्यक्ष सम्बन्ध होना चाहिए । प्रतिष्ठामें स्नपन प्रकरणमें 'प्राङ्मुखं देवं स्थापयेत्' ऐसा निबंधकारोंनें कहा है । कलश उपकरण (स्नानके साधन) रूप है । उपकार्य देवता है । इनका पारस्परिक अप्रतिरुद्ध सम्बन्ध चाहिए । भोजन करते समय हमारा भोजनपात्र सामने रहता है, पीछे नहीं । इससे हमारी पश्चिम वह देवताकी पूर्व दिशा है । अगर हम 'प्राङ्मुखं' इसका अर्थ शुद्ध पूर्व दिशा मानें तो देवताके पीछे कलशासादन होगा । और प्रयोगमें 'प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा भूत्वा देवं स्तुवीत' इस पङ्क्तिकी उपपत्ति देव शुद्ध प्राङ्मुख हो और यजमान भी प्राङ्मुख हो तो स्तुतिमें बाधा ही होगी । मन्दिरमें और घरकी पूजामें भी हमें देवताके सामने रहकर पूजा स्तुति करते हैं । इससे स्तुतिक्रिया शास्त्रानुसार सिद्ध होती है । प्रतिष्ठोद्योतमें 'प्रत्यङ्मुखं' जो लिखा है वह शुद्ध पश्चिम दिशा ही देवकी पूर्व दिशा है । इस बातका तात्पर्यरूप है ।

कलशोंका आसादन प्राक्संस्थ-पङ्क्तियोंमें उदक्संस्था क्रमसे याज्ञिक लोग करतें हैं । कलश पश्चिममें उसके आगे मध्यमें देवकी पूर्व दिशा उसके आगे देवता हमारे सम्मुख होतें है । कितने

शास्त्रका तात्पर्य ठीक न समझने वाले-हठाग्रही याज्ञिक 'प्राङ्मुख' इसका तात्पर्य समझते नहीं। उनके लिए ऊपर लिखी हुई सब बातें अनुत्तरित हो जाती हैं।

प्रतिष्ठामें स्नपन प्रकरणमें हम इस बातको दुहरायेंगे नहीं। ग्रहोंके अधि-प्रत्यधिदेवता स्थापनके प्रकरणसे यह बात शास्त्रशुद्ध हो जाती है।

ग्रहपूजा : प्रयोग दर्पणमें हर एक ग्रहके लिए धातु, गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य बलिदानादि अलग अलग बतायें हैं। द्रव्यशक्ति, समग्र प्राप्य साधनका विचार करके ग्रहपूजन करना। सामान्य ग्रहयज्ञमें षोडशोपचार या पञ्चोपचार पूजन होता है।

५६ योगिनी क्षेत्रपाल या भैरव पूजन

काशीखण्डमें यज्ञसम्बन्धि विघ्नोंको दूर करनेके लिए योगिनी और क्षेत्रपाल या भैरवपूजन करनेका कहा है। दुर्गाप्रभृतिदेवीओंके पूजनमें, योगिनी और भैरव इसके परिवारमें अन्तर्भूत होनेसे अवश्य करना चाहिए। ब्रह्मरूप परमात्माका योगसाधनमें सहायभूत नाडिओंकी शक्तिको योगिनी कहते है। मण्डपमें आग्नेयकोणमें श्वेत या रक्त वस्त्र पर चतुरस्त्र या त्रिकोणात्मक मण्डल पञ्चवर्ण चावलमें पूरा जाता है। उसमें देवीभिन्न यागोंमें प्रथम महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती तीन देवताका आवाहन करके योगिनी-६४ देवताओंका आवाहन पूजन करना। उसमें १ त्रिश्चदुर्गादि २ गजाननादि ३ दिव्ययोगिन्यादि ४ जयादि ५ रुक्षकर्ण्यादि ६ अघोरादि ऐसे अनेक प्रकार स्मार्तप्रभुमें बतायें हैं। अन्तमें पूर्वादि क्रमसे आठ दिशामें इन्द्राण्यादि-राजराजेश्वरी पर्यन्त ८ देवता मिलकर ७२ देवताओंका आवाहन पूजन करना, मण्डल देवताके होमके समयमें एक एक आज्याहुति देना या दश दश घृताक्ततिलाहुति देना।

क्षेत्रपाल : क्षेत्र माने शरीरका रक्षण करनेवाले मरुतोंका जो समुदाय उन्हें क्षेत्रपाल कहतें हैं। वायव्यमें श्वेतवस्त्रपर पञ्चवर्ण तण्डुलसे अष्टदल बनाकर प्रत्येक दलमें छः छः और उत्तरमें और ईशानमें सात सात देवताओंका और मध्यमें परमात्मारूप क्षेत्रपालका कलश पर मूर्तिमें आवाहन करके पूजनादि करना, कोई ग्रन्थमें ४९, अन्यमें ५० और दूसरेमें ५२ देवता भी कहे हैं। होमके समय एक एक आज्याहुति या घृताक्त तिलाहुति दस दस देना। क्षेत्रपालका स्थापन देवीसे भिन्न यागोमें होता है।

भैरव : शरीरकी तामस शक्तिओंको भैरव कहते हैं। श्रीमद्भैरवादि ६४ देवता हैं। उनके पूजनसे तमोगुणका नाश होकर सब मंगल प्राप्त होते हैं। उनका देवीपरिवारमें समावेश होनेसे देवीयागमें ही भैरवका पूजनका याज्ञिक सम्प्रदाय है। उनका स्थापन वायव्यमें क्षेत्रपालके ही स्थान पर श्वेतवस्त्र पर पञ्चवर्णतण्डुलमें अष्टदलमें प्रत्येकमें ८-८ के हिसाबसे आवाहन पूजन होता है।

मध्यमें कलश पर मूर्तिमें समष्टिरूप 'ॐ श्रीमद्भैरवादि देवताभ्यो नमः' ऐसे पूजन होता है। होम एक एक आज्याहुति या घृताक्त तिलाहुति दस दस लेकर होता है। योगिनी क्षेत्रपाल भैरव पूजन कृताकृत है।

५७ कुशकण्डिका, स्थालीपाकतन्त्र

होमके पूर्व पात्र और हविर्द्रव्यके संस्कारके लिए कुशकण्डिका या स्थालीपाकतन्त्र करना नितान्त आवश्यक है, उसके किए बिना होमका प्रारम्भ होता नही। प्रायः याज्ञिक लोग यह विधि समझने और करनेमें कठिन होनेसे करते नहीं, और असंस्कृतपात्रसे असंस्कृत हविर्द्रव्यका होम करके पापमे भागी होते है।

हर एक वेदमें स्थालीपाकतन्त्र अलग अलग होता है। शिवाग्नि तन्त्र या अन्य देवत यागमें तान्त्रिक विधिसे स्थालीपाकतन्त्र करते है। शिवाग्नितन्त्रकी योजना ऋग्वेद स्थालीपाकतन्त्रके क्रमको सामने रखकर की गई है। आजतक कोई भी कर्म वैदिक और तान्त्रिक दोनो विधिका गठन करके किया जाता है। उसमें वैदिकका प्राधान्य है। तान्त्रिकका गौणत्व है। तान्त्रिक विधिका सूत्रोक्त स्थालीपाकतन्त्र (कुशकण्डिका) के साथ अनेक जगह क्रम और क्रियाका विरोध आता है। जैसे आज्य और स्रुवके संस्कार हुवे बिना अग्निकी सात जिह्वाहुति देनेसे 'न असंस्कृतं हविर्जुहुयात्' इस वैदिकवाक्यसे विरोध है। पहले ही स्विष्टकृत् की आहुति देनेसे 'हुतशेषेण स्विष्टकृत' इस कात्यायन वचनका विरोध आता है। पूर्णाहुति होने पर आवरण देवताका होम बीलकुल असंगत है। संस्रवप्राशनादि कर्म हो जाने पर आवरण देवताकी आहुतिका संस्रव प्राशन कैसे होगा ? पूर्णाहुतिमें भी 'अन्यदाज्यं संस्कृत्य स्रुक्स्रुवौ प्रपत्य सम्मार्ज्य उद्वास्य उत्पूय अवेक्ष्य, अपद्रव्यं निरस्यं' लिखा है। पूर्णाहुति वसोर्धाराके बाद फिर दूसरा आज्यका संस्कार कैसे होगा ? हुतशेषसे स्विष्टकृत् और नवाहुतिमें ही हविर्द्रव्य पूर्ण हो जाता है। ऐसे पञ्चभूसंस्कारसे लेकर प्रणीताविमोक होने तक वैदिक विधिसे तन्त्रविधिकी अनुपपत्ति होती है। इसलिए वैदिक कर्मके प्राधान्यमें तान्त्रिक स्थालीपाकतन्त्र सर्वथा त्याज्य है।

कर्मके प्रारम्भसे लेकर समाप्ति तक शुद्ध तन्त्र या आगमके अनुसार सब विधि करें तो हर्जा नहीं। लेकिन तन्त्र और आगमको भी वैदिक विधिको छोडकर अपना स्वतन्त्र कोई राह नहीं।

वैदिक परंपराको सामने रखकर तान्त्रिक स्थालीपाकतन्त्रको लेना सर्वथा वेदविरुद्ध है। इसलिए वैदिक विधिसे ही स्थालीपाकतन्त्र या कुशकण्डिका करनेसे वेदका विरोध और कर्मवैगुण्य दोनों दोष अपने आप दूर हो जाते हैं। कोई ग्रन्थोंमें वैदिक मन्त्रोंसे कुशकण्डिका लिखी है। वह 'श्रौताग्नि, स्मार्ताग्निसाध्य कर्मोमें ही होती है। पारस्कर गृह्य का. १ क. १ में 'एष एव विधिर्यत्र

क्वचिद्धोमः' ऐसा कहनेसे पात्र हविर्द्रव्य का संस्कारार्थक विधि (क्रिया) मात्र है। मन्त्र नहीं ऐसा भाष्यमें स्पष्ट लिखा है । दक्षिणतो ब्रह्मासनम् - इत्यादि वाक्य क्रियास्मरणके लिए बोलनेमें कोई दोष नहीं ।

५८ होमका पूर्वतन्त्र

'दक्षिणतो ब्रह्मासनम्' यहाँसे लेकर 'प्रोक्षण्याः प्रत्युपवनम्' यहाँ तक कुशकण्डिका कही जाती है, 'कुशानां कण्डिका उपयुज्यन्ते यस्यां क्रियायां सा कुशकण्डिका (नाम्नी क्रिया) यह कुशकण्डिका शब्दकी व्युत्पत्ति है। वास्तुशान्ति और विवाहोत्तर चतुर्थीकर्ममें उदपात्रका स्थापन है य वह ब्रह्मासनास्तरणके बाद और प्रणीता प्रणयनके पहले प्रणीताकी जगह छोडकर प्रणीताकी उत्तरमें उदपात्रका स्थापन करना चाहिए ।

'हविष्पात्रस्वाम्यृत्विजां पूर्वं याथातथ्यम्' इस कात्यायन श्रौतसूत्रसे अग्निके पास हविर्द्रव्य, उसके नीचे पात्र फिर यजमान, बादमें ऋत्विज् यह क्रम है। कुशकण्डिकामें जहाँ अन्तरा क्रिया होती है। वहाँ इतरथावृत्ति माने खाली हाथ फिरसे अप्रदक्षिण क्रमसे घुमाना पडता है। पर्यग्निकरण और पर्युक्षण दो जगह इतरथावृत्ति करनी पडती है ।

'उपयमनकुशानादाय (सोपयमनकुशं सव्यहस्तं हृदये निधाय) तिष्ठन् समिधोऽभ्याधाय, प्रोक्षण्युदकशेषेण सपवित्रहस्तेनाग्नेः प्रदक्षिणवत् पर्युक्षणम्, इतरथावृत्तिः पवित्रयोः प्रणीतासुनिधानम्, दक्षिणं जान्वाच्य, ब्रह्मणा प्रकोष्ठे कुशेन अन्वारब्धः यजमानः स्रुवेण आघारावाज्यभागौ जुहुयात् ।

उपयमनकुश वामहस्तमें लेकर उस हस्तको हृदय पर रखकर खडे होकर तीन समिधा पात्रासादनमें रखी हुई लेकर खडे खडे कुछ भी बोले विना दायें हाथसे अग्निमें डालकर बैठकर प्रोक्षणीमेंसे दो पवित्र सहित जल लेकर अग्निकी चारों ओर प्रदक्षिण क्रमसे जल सिंचना। अन्तरा क्रिया होनेसे इतरथावृत्ति करके, दोनों पवित्र प्रणीतापात्रमें रखकर दक्षिणजानुको प्रसारित करके ब्रह्मासे कोनी और काँडेके मध्यभाग प्रकोष्ठमें दर्भसे स्पर्श किया हुवा यजमान दो आघार और दो आज्यभागकी आहुतिका आज्यसे होम करें ।

ऊपरके क्रमसे 'तिष्ठन् समिधोऽभ्याधाय' खडे खडे तीन समिधाका प्रक्षेप अग्निमें करनेका कहा है। 'तिष्ठान् समिधः सर्वत्र' इस श्रौतसूत्रके वचनसे समित् प्रक्षेप खडे खडे करना। यह क्रिया मात्र है मन्त्र नहीं। इसलिए कुछ बोलनेका नहीं। कितने याज्ञिक लोग 'तिष्ठन्, समिधोऽभ्याधाय स्वाहा' ऐसा बोलकर अपने अज्ञानकी पराकाष्ठा दिखाते है ।

शास्त्रमें प्रौढपाद और प्रशस्तपाद होकर यजमानको बैठनेका निषेध है। दक्षिण और महाराष्ट्रमें

सपत्नीक यजमान खडो पाऊं ही कर्म समाप्ति होने तक बैठते है । और सब बिधि अन्तर्जानु दोनो हाथ घुटनेके बीच ही रखकर करते है । 'दक्षिणं जानु आच्य आ उपसर्गपूर्वक अञ्चु गतौ' इस धातुका 'आच्य' ऐसा रूप है । खडे पाँउ बैठा यजमान दक्षिण जानुको दक्षिणकी ओर फैलाकर आधार आज्यभागका होम करें ऐसा अर्थ होता है । दक्षिणं जानु निपात्य' ऐसा पद्धतिओंमें लिखा नही है । फिर भी याज्ञिक रूढि दाहिने घुटनेंको ऊँचा करके ऐसी चली आती है । वह विचारणीय है ।

५९　आधाराज्यभागका प्रकृति पुरुषत्व

आधाराज्यभाग होमका पूर्वतन्त्र और नवाहुति स्विष्टकृत् यह उत्तरतन्त्र है। इन चौदह आहुतिओंमें यजमानके दाहिने प्रकोष्ठको ब्रह्माको कुशसे अवश्य अन्वारम्भ (स्पर्श) करना चाहिए ।

'आध्रियते अनेन इत्याधारः' इस व्युत्पत्तिसे अग्निको प्रदीप्त करनेके लिए नैर्ऋत्यसे ईशान तक और और वायव्यसे अग्निकोण तक धारा करते प्रजापति और इन्द्रकी आहुति देनी चाहिए। आज्यभागमें आज्यमें दो धर्म है । दीप करनेसे जलता है । और घबडाहट होने पर शर्करायुक्त आज्य चाटनेसे शान्ति होती है। इस लिए अग्नि और सोम आज्यभागके देवता है। यह दोनों आहुति मध्यमें अग्निके प्रज्वलित भागमें दी जाती है ।

हम पहले ही बता चुके हैं कि कुण्ड या स्थण्डिल प्रकृति माने शरीरका स्वरूप हैं । उसमें प्रज्वलित अग्नि तेजोमय परमात्मा (जठराग्नि) स्वरूप हैं। इस प्रकृतिपुरुषसंयोगरूप यज्ञकर्ममें आधार और आज्य भागरूप आहुति शरीरके प्रधानतत्त्वकी द्योतक है । इस बातकी पुष्टि हरिवंशमें स्पष्ट कही हैं ।

'मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः, इन्द्र आत्मा स्मृतो बुधैः । अग्निन् पित्तं कफ्च सोमः अग्निषोमात्मकं जगत् ।' दस इन्द्रियरूप प्रजाका पति मन है। 'इद् परमैश्वर्ये' इस धातुसे बना इन्द्र शरीरमें वायुरूप (परमात्मा) का द्योतक हैं। ज्वर पित्तप्रकोपसे आता है। वह अग्नि पित्तरूप हैं। और कफ शरीरमें शैत्य बढाता है इस कफ सोमरूप हैं । इसी तरह सारा जगत् मन प्राणसे युक्त अग्निषोमात्मक है ।

यज्ञ कोई फसानेकी चीज नहीं हैं। लेकिन प्रकृतिपुरुषरूप परमात्माका ही यजन है। यह बात हरिवंशके वचनसे सिद्ध होती हैं । प्रजापति मनोरूप होनेसे मनसा मनमें बोलकर आहुति दी जाती हैं । 'सर्वत्र उपांशुः प्राजापत्यः' यह श्रौतसूत्रके वचनसे प्रजापति देवताका होम मनमें ही बोलकर किया जाता है ।

इस तरह पूर्वतन्त्र करके अग्नि तथा ब्रह्माकी पूजा की जाती है। कारिका और पुराण वचनप्राप्त अग्निका पूजन गन्धपुष्प अग्निके ऊपर और वायव्यमें नैवेद्य रख कर पञ्चोपचार पूजा करना । कितने

लोग घीकी पाँच आहुति नैवेद्यके रूपसे देतें हैं । यह आतिदेशिक है । ब्रह्मासन पर ब्रह्माकी 'अणिमाद्यष्टशक्तिसहितब्रह्मणे नमः' बोलकर पूजन करना ।

६० प्रधानहोम, वराहुति, त्यागसंकल्प, त्याग और संस्रवका भेद

'गणाधिपतये देया प्रथमा तु वराहुतिः' इस कालिकापुराणके वचनसे ॐ गणानान्त्वा० धं स्वाहा-इदं गणपतये न ममः' ऐसी सर्वविघ्नोपशमनार्थ गणपतिको प्रथम आज्याहुति देनेका आचार है । प्रयोगदर्पणादि ग्रन्थोंमें अन्वाधानमें गणपतिका उल्लेख नहीं । इस लिए कृताकृत हैं ।

होमके समय 'इदं सोमाय न मम' इस तरह तद् तद् देवताका ऊह कर 'यह होमद्रव्य मेरा नहीं, तेरा ही तुझे अर्पण करता हूँ' यह ममत्वका त्याग अवश्य करना चाहिए, अन्यथा देवता हविर्द्रव्यका स्वीकार करतें नहीं । आज्य, क्षीर, दधि, मधु, तेल ऐसे द्रवद्रव्यका होम, स्रुवसे होता हैं । द्रवद्रव्यमें देवताके उद्देशसे स्रुवमें लिए हुए द्रव्यका देवतामन्त्र या नामसे होम करनेके बाद स्रुव या स्रुचमें बचे हुवे बिन्दुओंका प्रोक्षणीपात्रमें 'इदं न मम' बोलकर डालना, यह संस्रव कहा जाता है। दोनो पदार्थ एक ही साथ होते है। फिर भी 'न मम' बोलना यह त्याग और स्रुवादिलग्न द्रव्यका प्रोक्षणीमें डालना यह संस्रव है । पायस, तिल, यव, व्रीहि, समिधा, सिद्धोदन फलादिकका हाथसे होममें 'इदं न मम' त्याग बोलना चाहिए । संस्रव नहीं ।

ब्राह्मण द्वारा होम हो तो भी 'इदं न मम' यह त्याग बोलनेका अधिकार प्रथम यजमानको उसकी अनुपस्थितिमें पत्नीको या पुत्रको या ऋत्विज्को क्रमसे होता है ।

स्मृति, पुराण, तन्त्र आगमादिनिर्दिष्ट कर्मोमें अनेक होता और अनेक हविर्द्रव्य होतें हैं । त्याग और संस्रवका अविच्छिन्न सम्बन्ध हैं । संस्रवका प्रोक्षणीमें प्रक्षेप हैं । एकसे अधिक द्रव द्रव्य होने पर सभी ब्राह्मण एक ही समय त्याग बोलकर संस्रव प्रक्षेप कर सकते नहीं । इस लिए 'यजमान स्वयं प्रधान होम तन्त्रमें जितने हविर्द्रव्योंका होम हो' सबको सामने रख कर एक ही बार त्यागका संकल्प कर देता है ।

त्याग संकल्प :- इदं सम्पादितं समिच्चरुतिलाज्यादिहविर्द्रव्यं, तेन या या यक्ष्यमाणदेवताः ताभ्यः ताभ्यः, मया परित्यक्तम्, न मम, यथादैवतमस्तु' ऐसा समुच्चय रूपसे त्याग कर देता है । जिससे होम ब्राह्मण द्वारा होनेपर यजमानको या ऋत्विज्को बारबार त्याग बोलना न पड़े । और स्रव प्रक्षेप करना न पड़े । यह त्याग संकल्पका उद्देश है । श्रौत, स्मार्त, अग्निहोत्रादि कर्मोमें ऐसा त्याग और संस्रवका समुच्चय होता नहीं ।

होताको प्राङ्मुख या उदङ्मुख बैठना चाहिए । और प्रधान देवता और अग्निको बीचमें व्यवधान

होना न चाहिए। हर एक द्रव्य आहुतिके समय कितना लेना यह बात कारिकाओंमें बताई हैं। स्वस्थ चित्तसे शुद्ध उच्चार करते हुवे आरम्भमें प्रणव - ॐ गणानान्त्वा० सिगर्भंवे स्वाहा, बोलकर आहुति देना। स्वाहा यह लौकिकपदके योगमें मन्त्रान्तमें रहे हुवे 'म्' का 'ङ्गु' उच्चार होता नहीं।

६१ ग्रहहोम, अयुतादिहोम

'ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस प्रजापतिदेवताके मन्त्रसे घृताक्ततिलकी दस हजार, लाख या कोटि आहुति देना यह अयुतहोम, लक्षहोम, कोटिहोमरूप ग्रहमुख होता है। यह बात हम पहले बता चुके है। तीनोंका अङ्गभूत ग्रहहोम है। शुक्लयजुर्वेदमें ग्रहहोम समिध्, चरु, तिल, आज्य इन चार द्रव्योंसे होता है। हर एक ग्रह और उसके अधिदेवता प्रत्याधिदेवताकी अलग अलग समिधा होती है। साद्गुण्य देवता और इन्द्रादि दशदिक्पालकी पलाश या उदुम्बरकी समिधा होती है। समिधा सूखी, स्वयं गिरी हुई, दश अंगुल लम्बी, समान छाल और पर्णके सहित चाहिए। समिधा घृताक्त किंवा दहीं, शहद और घृत त्रिमध्वक्त चाहिए। आज्य, गौ, भैंस, बकरी, तिलका तेल, सर्षपका तेल, जंगली तिलका तेल पूर्वके अभावमें उपरोक्त लेना चाहिए। तिल सफेद, काले या भूखरे ले सकते हैं।

ग्रहहोममें चार क्रम प्रचलित है। ग्रह-१००८ अधि-प्रत्यधि-प्रत्येक-१०८ गणेशादिदिक्पालान्तको हर एकको २८। २ क्रम-ग्रह-१०८ अधिप्रत्यधि-२८ गणेशादि-१७ देवता, प्रत्येक-८। ३ क्रम-९ ग्रह-२८, २ अधि-प्रत्यधि-१८को ८, गणेशादि १७ देवता प्रत्येकको-४। ४ क्रम ९ ग्रहको ८, अधिप्रत्यधि-१८को ४ गणेशादि १७ देवता प्रत्येकको-५। समाप्युत्सर्ग प्रयोगमें इन्द्रादि १० दिक्पालकी एक एक आहुति कही है। इन विधानसे पहले तीन क्रममें १० दिक्पालको क्रमसे १४, ४, २ ऐसा भी हो सकता है। सूर्यको आक (अर्क) चन्द्रको पलाश-भौमको खदिर, बुधको अपामार्ग, गुरुको पीपल, शुक्रको उदुम्बर, शनिको शमी, राहुको त्रिपत्र दूर्वा, केतुको त्रिपत्र कुश। यह समिधाएँ नवग्रह उनके अधि-प्रत्यधि देवताओंको लगती है। उक्त समिधा न मिले तो 'समिदर्थे यवाः प्रोक्ताः' यह कारिका वचनसे यवका होम होता है। प्रत्येकके लिए समित् चरु, तिल, आज्य चार हविर्द्रव्य है।

६२ पञ्चकुण्डी, नवकुण्डीमें ग्रहहोम व्यवस्था

एक कुण्डमें ग्रहहोम उसमें ही होता है। १ पंचकुण्डी पक्षमें १००८ पक्षमें हर एक कुण्ड पर २० ब्राह्मण बैठायें और ४० बार नवग्रहके प्रत्येक मन्त्रसे आहुति दें। अन्तमें आचार्यकुण्ड पर ८ आठ ब्राह्मण चार बार मन्त्र बोले, अधिप्रत्यधिमें हर एक कुण्डमें हर एक देवताको चार चार आहुति देकर आचार्यकुण्डमें १६ ब्राह्मण २ आहुति दें। गणेशादि १७ देवताओंमें-हर एक ब्राह्मण - एक एक आहुति और आचार्यकुण्डमें १२ ब्राह्मण एक एक आहुति दें। नवकुण्डीपक्षमें हर एक कुण्ड पर

२० बीस ब्राह्मण बैठाकर १२ बार मन्त्र बोलके आचार्यकुण्डमें २० ब्राह्मण-३ बार और १२ ब्राह्मण एक बार और अन्तमें १२ ब्राह्मण एक बार होम करें। गणेशादि १७ देवताओंको हर एक कुण्डमें १२ ब्राह्मण ३ बार और आचार्यकुण्डमें ४ ब्राह्मण एक बार होम करें। पञ्चकुण्डी नवकुण्डी पक्षमें २८-८-४-या ८-४-२ का पक्षकी आहुति विभागकी उपपत्ति होती नहीं। इस लिए २८-८-४ या ८-४-२ ये तीसरे चौथे पक्षमें आचार्यकुण्डमें ही आठ या सोलह ब्राह्मण बैठाकर होम करें।

पंचकुण्डी पक्षमें १०८-२८-८ के पक्षमें हर एक कुण्ड पर आठ आठ ब्राह्मणको बैठाकर १० बार मन्त्र बोलकर अन्तमें आचार्यकुण्डमें आठ ब्राह्मणचार बार होम करें। अधिप्रत्यधिको हर एक मन्त्र २ बार, आचार्यकुण्डमें आठ आठ ब्राह्मण चार बार होम करें। गणेशादि १७ देवताओंमें हर एक कुण्ड पर चार ब्राह्मण एक एक आहुति देकर आचार्यकुण्डमें चार ब्राह्मण तीन तीन आहुति अधिक दें। इस तरह मन्त्रके विभागका मार्गदर्शन किया है। वस्तुतः १००८-१०८-२८ इस पक्षमें ही ग्रहहोमका समुचित विभाग हो सकता है।

६२ ग्रहहोममें चारों पक्षोमें आहुति संख्या

तीन दिनकी प्रतिष्ठाके कार्यमें ग्रहहोममें २८-८-४ आहुतिका पक्ष ही अनुकूल होगा। अब ग्रहहोमके चारों पक्षमें आहुतिसंख्या।

			आ.	हवि.	
१	प्रथम पक्ष	ग्रह- ९	१००८	९०७२ x ४ =	३६२८८
		अधिप्रत्यधि- १८	१०८	१९४४ x ४ =	७७७६
	गणेशादि दिक्पालान्त-१७२८४७६		४	=	१९०४
					४५९६८ आहुतिसंख्या
२	द्वितीय पक्ष	ग्रह- ९	१०८	९७२ x ४ =	३८८८
		अधिप्रत्यधि- १८	२८	५०४ x ४ =	२०१६
		गणेशादि- १७	४	१३६ x ४ =	५४४
					६४४८ आहुतिसंख्या
३	तृतीय पक्ष	ग्रह- ९	२८	२५२ x ४ =	१००८
		अधिप्रत्यधि- १८	८	१४४ x ४ =	५७६
		गणेशादि- १७	४	६८ x ४ =	२७२
					१८५६ आहुतिसंख्या

४	चतुर्थ पक्ष	ग्रह- ९	८	७२ x ४ =	२८८	
		अधिप्रत्यधि- १८	४	७२ x ४ =	२८८	
		गणेशादि- १७	२	३४ x ४ =	१३६	
					७१२	आहुतिसंख्या

प्रायः उपनयन विवाहादि संस्कारमें चतुर्थ पक्ष ८-४-२ आहुति क्रमसे ग्रहयज्ञ होता है । वास्तु, नवचण्डी, शतचण्डी, महारुद्र, प्रतिष्ठा, विष्णुयागमें तृतीय पक्ष २८-८-४ क्रमसे करते हैं । जहाँ हुतद्रव्य पूरा मिले, ब्राह्मण संख्या अधिक हो और पाँच या सात, नौ, ग्यारह दिनका प्रयोग हो, वहाँ प्रथम पक्ष १००८-१०८-१८ या दूसरा पक्ष १०८-२८-८ इस क्रमसे ग्रह होम करते हैं । प्रत्येक कुण्डमें प्रथम पक्षकी आहुतिका विभाग नवकुण्डी पक्षमें ही हो सकता है । पञ्चकुण्डी या नवकुण्डीमें प्रत्येक कुण्डमें होम प्रथम या द्वितीय पक्षमें ही हो सकता है । एक दिन या दो दिनकी प्रतिष्ठामें वर्धिनी, मण्डप प्रवेश, मण्डपांग गणेश, वास्तु पूजन छोड देना, ग्रहहोम केवल चतुर्थ पक्ष ८-४-२ आहुतिसे करें ।

ग्रह होमान्त कर्म होनेके बाद या उसके साथमें ही प्रतिष्ठांगभूत कर्म करना ।

६४ कुटीर होम, कंकणबंधन, जलाधिवास

प्रतिमाके लिए रेत, छिद्र, ग्रंथि, रेखा रहित काला, सफेद, पीला भूरा, लाल, हरा अत्यन्त दृढ पत्थरकी शिला पवित्र स्थानमें रही हुई निकालनी चाहिए । बादमें शुभमुहूर्तमें शिल्पीको शिलाका पूजन करके मानके अनुसार प्रतिमा निर्माण करना चाहिए । शिल्पशास्त्रमें मूर्तिके इष्ट मानके अनुसार पादसे मुकुट हस्त आयुध अलंकारादिकका विभाग करके प्रतिमाका निर्माण पवित्र अवस्थामें करना चाहिए । प्रतिमा संपूर्ण अखण्डित निर्मित हो जाने पर प्राचीन आगमोंमें उस प्रतिमाका बड़े जलाशय, नदी, ह्रद, तालाव सरोवरके जलमें शिलाकी उष्णता शमन हो जाय, बालु, छिद्र रेखा हो तो परीक्षा हो जाय, और कोई तूटा हुवा अवयव जलमें जोड दिया हो तो वह भी पकडा जाय । इस हेतुसे एक मास, सात-पाँच-तीन या एकरात्रि जलमें रखनेका विधान है । प्रतिमा सुपरीक्षित दोषरहित हो तो एक प्रहर या गौका दूध निकाले इतना समय जलमें रखनेका कहा है । इसको जलाधिवास कहा हैं ।

कुटीरहोम : प्रासादनिर्माण पूर्व शुभमुहूर्तमें भूमिपूजन, खातपूजन, शिलान्यास होता है । वैसे ही शुभमुहूर्तमें शिलाकी परीक्षा करनेके बाद लाकर एक कुटीर बनाकर शुभमुहूर्तमें शिल्पी द्वारा शिलाकी पूजा करके प्रतिमा प्रारम्भ करना चाहिए । प्रतिमा निर्माणमें अनेक जीवजन्तुका नाश होता है । प्रतिमा पिण्डिकाके मानमें कुछ भी कभी जास्ती, अपवित्र स्थान, अपवित्र व्यक्तिका स्पर्श और अयोग्य कालमें प्रतिमाका निर्माण होने पर गाँव नगर और देशमें अनेक दुर्निमित्त उत्पन्न होते हैं । इन सब दोषोंको दूर करनेके लिए कुटीरहोम किया जाता हैं ।

वर्तमान युगमें हम जयपुर इत्यादि स्थानोंसे तैयार प्रतिमा लाते हैं। प्रतिष्ठाके समय जहाँ जिस कुटीरमें प्रतिमा बनी, वहाँ जाकर कुटीर होम करना असंभव है। इसलिए प्रतिष्ठामें ग्रहहोमान्त कर्म होनेके बाद या ऋत्विग्वरणके बाद मण्डपके बाहर स्थण्डिल बनाकर अग्निस्थापन करके कुटीरहोम या शान्तिहोम करते हैं।

पद्धतिकारोंने आघाराज्यभाग होने पर आज्य या तिलसे स्थाप्यदेवताके मन्त्रसे २०० आहुति देनेका लिखा है। दोसो आहुति देनेका प्रतिमा और पिण्डिका दोनोंके उद्देशसे कहा है। प्रासादमें जितनी प्रतिमाओंका स्थापन करना हो। उनके सबके उद्देशसे दोसो दोसो आहुति आज्य या तिलसे देनेका लिखा है। इस होमके संकल्पमें 'शान्तिहोमं करिष्ये' ऐसा लिखा है। इसलिए इस होमका दूसरा नाम शान्तिहोम कहा है। प्रतिष्ठावासुदेव्यादि पद्धतिओंमें स्थाप्यदेवताकी २०० आहुतिसे अलग पापभक्षण मंत्र २, परंमृत्यो० १०८, ३ अघोरेभ्यो० १०८, ४ त्र्यम्बकं यजामहे-१०८, ५ यद्ग्रामे यदरण्ये० यजामहे स्वाहा-१०८ इन चार मन्त्रोंसे आज्य या तिलसे १०८ या २८ आहुति देनेका बताया है। आज्यहोममें प्रथम नवाहुति बादमें स्विष्टकृत्, तिलाहुतिमें प्रथम स्विष्टकृद् बादमें नवाहुति-मूर्धानं दिवो- मन्त्रसे पूर्णाहुति संस्रवप्राशनादि प्रणीताविमोकान्त कर्म करना। संस्रवको सुरक्षित रखना। इसको कुटीरहोम या शान्ति होम कहते हैं। और सर्व उपद्रवके शान्त्यर्थ इसका शान्तिहोम यह नाम उचित भी है।

जलाधिवास : प्रतिष्ठाके प्रारंभके दिन सुबह ही सब प्रतिमाओंको सुरक्षित वाहनमें सावधानीसे रख कर सारे गाँव शहरको प्रदक्षिणा क्रमसे घुमा कर मण्डपके बाहर सावधानतासे रखना। शाकुन्त सूक्त या आनोभद्रा० यह भद्रसूक्तका पाठ करके गणेशस्मरण प्रैषात्मक पुण्याहवाचन भूतशुद्धि-पञ्चगव्यसे भूमि प्रतिमादिक प्रोक्षण करके अग्न्युत्तारण करना; अग्न्युत्तारणमें मूर्त्तिओंको आज्य लगा कर जलधारा मन्त्रपूर्वक करनेका कहा है। याज्ञिक लोग किसी छोटी शिवलिङ्गादि मूर्त्तिको घृताधिवासके नामसे घी के पात्रमें रख देते हैं। और बादमें घी ले जाते हैं। जलधारा करते नहीं। इसमें केवल घी ले जानेका उद्देश है। ग्रन्थोंमें मूर्त्तिओंको थोडा घी लगाना घृताभ्यंजन कहा है। घृताधिवास-घीमें डुबा देनेका कहा नहीं है।

बादमें प्रतिमाकी प्रार्थना करके संमार्जन मृत्तिकादि द्रव्योंसे स्नपन करके प्रतिमाके संरक्षणके हेतुसे कौतुकबन्धन कहा है। उन मूर्तिओंके हिसाबसे लम्बा सफेद ऊनी धागा लेकर जलपात्रमें हरिद्राक्त करके रख कर सूत्र पर सूक्तोंसे जल छोडते हुवे अभिमन्त्रण करके बादमें हर एक मूर्तिके दक्षिण हस्तमें ॐ यदा बध्नन्० इस मन्त्रसे प्रतिष्ठा होनेके बाद छुट सके इस तरह रक्षासूत्रबन्धन करनेका है। बादमें धान्यराशिपर बडा जलपात्र रख कर उसमें जलमातृका-जीवमातृकादि-बाहर वायव्यमें क्षेत्रपाल पूजन, बलिदान, जलमें गङ्गादि, नदी, मानसादि सर, सप्तसमुद्रका आवाहन पूजन करके पात्रकी दक्षिण दिशामें दो जलपात्र रखकर ब्रह्मा सुदर्शनका पूजन करना। जलपात्रमें

पञ्चामृत, २८ दर्भके कूर्च पर विष्णु या शिवका ध्यान करके प्रतिमाओंको शुद्धपूर्वमें मस्तक रहे इस तरह रख देना । वस्त्रसे आच्छादित करके उन उन देवताओंके सूक्त, मूलमन्त्र, गायत्री अघोरादि मन्त्रोंका पाठ करना । एक प्रज्वलित अखण्ड दीप आगे रखना । कई ग्रन्थोंने इसको कृताकृत बताया है । लेकिन रेत कचा पत्थर, छिद्र, सांध, मसालोंसे जुडा भाग इनकी परीक्षा और शान्ति जलाधिवाससे होती है । इसलिए करना आवश्यक है । अखंडित चालितमूर्तिकी पुनःप्रतिष्ठामें जलाधिवास करना आवश्यक नहीं । क्योंकि पहले प्रतिष्ठाके समय जलाधिवास हो गया है । अत्यन्त शीघ्रतामें, स्थाप्य देवता होम, अग्न्युत्तारण, तीर्थ आवाहनपूर्वक जलाधिवास कर लेना । पात्रमें मूर्ति न रह सके और बडी होनेसे जगहसे उठाना असम्भव हो तो, सतत जलधारा मूर्ति पर करना ।

तीन दिनकी प्रतिष्ठाके उपलक्षमें यह विधि प्रथम दिन साध्य बताया । सायंकालमें स्थापित देवतापूजन, नीराजन आशीर्वादादि करके प्रथम दिनका कर्म समाप्त करना ।

द्वितीयदिन : द्वितीय दिनमें प्रातःकाल स्थापित देवताओंका पूजन स्थापनक्रमानुसार या एकतन्त्रसे करना चाहिए । बादमें जलयात्रा और प्रासादवास्तुशांति प्रातःकालमें करना ।

६५ जलयात्रा

यज्ञमें पवित्र सुस्नात ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्वारा जल, पुष्प, समित्, कुश दूर्वा, तुलसी, बिल्वपत्रादि लानेका कहा है । वर्तमान युगमें बडे नगरोंमें ऐसा करना असम्भव होनेसे जो वस्तु जहाँसे मिले उसको ॐ आपोहिष्ठा-३ मन्त्रसे प्रोक्षण करके शुद्धि कर लेना उचित है ।

यज्ञ या प्रतिष्ठादिकमें स्नपनादिकके लिए अधिक शुद्धजलकी अपेक्षा रहती है । वह जल बाव, कूँआ, तालाव, सरोवर या नदीसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य-सुवासिनी और कुमारिका द्वारा पूजा करके लानेका शिष्टाचार है । जलपात्र, आम्रपल्लव, सुपारी, नारीयल, दक्षिणादि द्रव्य लेकर यजमान ब्राह्मण सुवासिनी कुमारिकाके साथ जलाशय जाता है । जलाशयके पास तटपर श्वेत वस्त्र पर अक्षतपुञ्ज पर पहले भूमिपूजन करके जलमातृकादि देवता वरुणादिका आवाहन पूजन होता हैं । जलमें चार दर्भसे चतुरस्त्र स्थण्डिल जैसा बना कर आज्यसे 'ॐ अद्भ्यः स्वाहा०' इत्यादि बारह आहुति देकर जलमें वरुणकी पूजा, पंचामृतप्रक्षेप, नारियलसे अर्घ देकर कलश भरके स्थापन पर रखकर कलशोंकी पूजा करके अपना अपना जलभरा कलश लेनेके बाद देवता विसर्जन करके प्रदक्षिणाक्रमसे चलते यज्ञमण्डपकी ओर ब्राह्मण वेदघोष करते हुए और औरतें गाती हुई आती हैं । मार्गमें यजमान चत्वर (चार रास्ते) पर सुपारी परक्षेत्रपालका पूजन बलिदान पिष्टदीपसे करता हैं । यज्ञमण्डपके द्वारके पास आने पर 'ॐ अनाधृष्टा' इस मन्त्रसे पूजा नीराजन करके जलको सुरक्षित बडे पात्रमें भर देना चाहिए । आगमोंमें जो जलानयनविधि कहा है । उसका यह जलयात्रा आतिदेशिक स्वरूप हैं । अत्यल्प काल और

जलाशय पासमें न हो तो यह विधि कृताकृत हैं । इसका प्रयोग प्रतिष्ठासङ्ग्रहमें भी बताया हैं ।

६६ प्रासादवास्तु

प्रासादके गर्भगृहके बाहर बाह्यमण्डपमें या सभामण्डप एकहस्तका समेखल स्थण्डिल या मेखला रहित स्थण्डिल करना । प्रासादाङ्गभूत वास्तुमण्डल चतुःषष्टिपद या शतपद वास्तुमण्डल शास्त्रमें कहे हुवे वर्णवाले तण्डुलसे पूरना चाहिए । अशादातिलक, प्रासादमण्डनटीका सिद्धान्तशेखर शिल्पशास्त्रादि ग्रन्थोंमें उन उन देवताओंके अलग अलग वर्ण बतायें हैं । जलाशय, वापी, कूप, सरोवर, धर्मशाला इत्यादिमें सहस्रपदवास्तु भी होता है । प्रतिष्ठा कर्म जलाशयका अतिदेश होनेसे उसमें भी सहस्रपद, वास्तु हो सकता हैं । जीर्णगृहमें ४९ पद, प्रासादमें ६४ पद या शतपद, मण्डपमें ६४ पद, घरमें ८१ और अन्य कर्ममें १९६ पद, २५६ पद, प्रतिष्ठाप्रासादमें ६४ पद १०० शतपद या १००० सहस्रपद होता हैं ।

एकाशीतिपदमें वास्तुमें यजमान या अन्य ब्राह्मण को बैठा कर, गणेश स्मरण ऋत्विग्वरण, शालाकर्म दिग्रक्षण पञ्चगव्यकरण, भूम्यादिपूजन, अग्निस्थापन, प्रधानवास्तुमण्डलदेवतास्थापन, वास्तुपुरुष, ध्रुवआवाहन पूजन, बलिदान, कुशकण्डिका, 'पवित्रयोः प्रणीतासु निधानम्' इसके बाद 'इहरत्यादि छ आज्याहुति, आघाराज्यभाग, अग्निपूजन, स्थालीपाककी षडाहुति, चराहुति बाद त्यागसंकल्प, प्रधानदेवताका होम करना । राजधर्मकौस्तुभमें प्रधानवास्तुपुरुषको- ॐ वास्तोष्पते० इस मन्त्रसे '१ सिद्धोदन, २ मध (शहद) ३ आज्य, ४ यव, ५ कृष्णातिल, ६ क्षीरवृक्षसमिद्' यह छ द्रव्यसे १०८ आहुति देनेका कहा है । आश्वलायन गृह्यपरिशिष्टमें १ समिध्, २ चरु, ३ तिल, ४ आज्य चार हविर्द्रव्य बतायें हैं । बादमें 'वास्तोष्पते' यह चार अलग मन्त्रसे और ॐ ध्रुवासि० इस मन्त्रसे एक एक बिल्वफलहोम करनेका कहा हैं । ॐ ध्रुवासि० इस मन्त्रसे १ चरु, २ तिल, ३ आज्य तीन द्रव्यसे प्रत्येकसे १०८ आहुति देना । आज्य या तिलसे ॐ अघोरेभ्यो० मन्त्रसे १०८ आहुति देना । वास्तुमण्डलदेवताओंको १ समिधु, २ चरु, ३ तिल, ४ आज्य चार द्रव्योंसे ब्रह्मादि दित्यन्त या शिख्यादि ब्रह्मान्त ४५ देवताओंको आठ आठ, चरक्यादि ८ देवताओंको चार चार, इन्द्रादि-क्षितिरूपान्त २० देवताओंको दो दो आहुति देना । कितने लोग मण्डलदेवताओंको एक एक आहुति देतें हैं । घृताक्त तिलसे १०८ या २८ समस्त व्याहृतिहोम, काम्यलक्ष्मीहोम, पूजा स्विष्टादिप्रणीताविमोकान्त कर्म, सार्वभौतिक बलि, वास्तुनिक्षेप, भित्त्यलंकरण, दिगुपस्थान, क्षीरजलधारा, सूत्रवेष्टन ध्वजपताकादि करके वास्तुशांतिका कर्म समाप्त करना । वास्तुदेवता बलिदानमें मांसका निर्देश हैं । लेकिन कलियुगमें सुरा मांसका निषेध होनेसे पायस, माष, चणकपूरिकादि अन्नसे बलिदान करना । इस तरह प्रासादाङ्ग वास्तुशांति समाप्त करना ।

६७ वास्तुशांतिके प्रकार

वास्तुशान्तिके चार प्रकार हैं ।

१ प्रथम प्रकार :

पारस्कर गृह्यसूत्रके अनुसार शुभदिनमें गणेशपूजनादिनान्दीश्राद्धान्त कर्म, ऋत्विग्वरण शालाकर्म दिग्रक्षण पञ्चगव्यकरण, भूम्यादिपूजन, पञ्चभूसंस्कारपूर्वक अग्निस्थापन, ब्रह्मासनादि प्रोक्षण्युत्पवनान्त कर्म करके घरसे बाहर निकलकर ब्रह्माकी आज्ञासे 'ॐ ऋतं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये ।' इस मन्त्रसे पत्नीपुरःसर प्रवेश करके 'उपयमनकुशानादाय० पवित्रयोः प्रणीकासु निधानम्' इतना करके आज्यसे- १ इहरति० २ उपसृजन्० ३ वास्तोष्पते प्रति० ४ वास्तोष्पते प्रतरणो० ५ वास्तोष्पते शग्मया० ६ अमीवहा वास्तोष्पते० यह छ मन्त्रसे आहुति देकर प्रणीताके उत्तरमें रखे हुए उदपात्रमें संस्रव डालना । बादमें आघाराज्य भाग-४ आहुति आज्यसे देकर अग्निपूजनके बाद आज्यसुक्त स्थालीपाकसे १ ॐ अग्निमिन्द्रं० इत्यादि छ आहुति देना, संस्रव उदपात्रमें डालना ।

बादमें स्विष्टकृत् नवाहुति, संस्रवप्राशनादि प्रणीता विमोकान्त कर्म करके, उदपात्रजल, गोमय, दधि, दूर्वा, सर्षप हरिद्रादि द्रव्य कांस्य पात्रमें लेकर ॐ श्रीर्यशश्च० इन चार मन्त्रोंसे मकानकी पूर्वादिक्रमसे चारों भींतको दंपती दोनो हाथसे छाप लगाकर, उस द्रव्यसे बैठक रसोईघर वगैरह सब जगहका प्रोक्षण करना, बादमें मकानके बाहर निकलकर पूर्वादिक्रमसे चारों दिशाकी मन्त्रोंसे प्रार्थना करके मकानकी चारों ओर राक्षोघ्नसूक्त और पवमान मन्त्र बोलते हुए जलधारा पयोधारा ईशानादि प्रदक्षिण क्रमसे करना । अन्तमें घरको ध्वजापताकादिसे सुशोभित करके कर्म समाप्त करना । यह सूत्रोक्त प्रथम प्रकार बताया । श्रौतस्मार्त अग्निहोत्रमें 'मन्त्रमयी देवता' इस सिद्धान्तको लेकर, वास्तुमण्डल, देवतापूजन बलि छ या चार द्रव्योंसे होम, अघोर होम, ध्रुवहोम, सार्वभौतिक बलि वास्तुनिक्षेपादि कुछ कर्म करनेका नहीं ।

२ परिशिष्टोक्त द्वितीय प्रकार

आश्वलायन गृह्यसूत्र परिशिष्टमें वर्तमान वास्तुशांतिका पूरा प्रयोग बताया हैं । अन्य ग्रन्थोंमें वास्तुनिक्षेप, वास्तुकुक्षि, आग्नेय पद, या आकाश पदमें करनेका कहा है । गृह्यपरिशिष्टमें ऐशानकोणमें वास्तु निक्षेप कहा हैं । कहीं कहीं पुराणतन्त्र शिल्पशास्त्रमें बताये प्रयोगसे फर्क होता हैं । यह आश्वलायन गृह्यपरिशिष्टोक्त द्वितीय प्रकार कहा । तन्त्र, शिल्पशास्त्रादिमें बल्यन्त वास्तुपूजन कहा हैं ।

३ तृतीय प्रकार

यज्ञादिगत अस्थायी मण्डपोंमें केवल वास्तुमण्डल देवता स्थापन पूजन, बलिदान और देवताओंकी

एक एक आज्याहुति प्रधानकुण्डमें स्थापकक्रमसे देनेकी कही है। वास्तुशान्तिमें पहले षड़ाहुति बादमें आधाराज्य भाग यह क्रम भेद होनेसे याज्ञिक यज्ञके कुण्डमें वास्तुमण्डल देवताका होम करते नहीं और शालाकर्म भित्यलंकरण, गृहप्रवेश, निक्षेप दिगुपस्थानादि कर्म और ध्रुवका स्थापन करते नहीं।

४ चतुर्थ प्रकार

यज्ञादिमें मण्डपमें नैर्ऋत्य कोणमें केवल ६४ चतुःषष्टि पद वास्तुमण्डल पर देवतावाहन, प्रधानवास्तुपूजन, बलिदान, यह बल्यन्त वास्तुपूजन करते हैं। होम नहीं करते। जहाँ छायामण्डप हो, वहीं वास्तुपूजनकी आवश्यकता नहीं। यज्ञादि कर्म अस्थायी होनेसे यहाँ ध्रुवका स्थापन पूजन होम होता नहीं।

वर्तमान युगमें मकान, बंगला में बड़ा खर्च करने पर भी वास्तुशान्ति करनेमें हिचकिचाते हैं। और ब्राह्मणको लक्ष्मीहोम करनेको कहते हैं। चैत्र शुक्ल-८ वसन्त नवरात्रमें या आश्विन शुक्ल ८ को शारद नवरात्रमें नवार्ण मन्त्रसे जो १०८-२८ तिलाहुति या आज्याहुति देवीके उद्देश्यसे दी जाती है उसको लक्ष्मीहोम कहते हैं। सिरदर्दमें उदरपीडाका औषध लेने जैसी बातें हैं। लक्ष्मीहोममें वास्तुका पूजन, होमका नाम तक नहीं। लेकिन धर्ममें कम श्रद्धा रखनेवाले दरिद्र धनिक लोक लक्ष्मीहोम करके अपनेको कृतार्थ मानते हैं। ब्राह्मण यजमान हाथसे चला जाएगा, इस डरसे लक्ष्मीहोम करा देते हैं। उससे यजमानको वास्तुशान्ति फलरूप पूर्ण सुख या शान्ति मिलती नहीं और दुःखी रहते हैं।

इस तरह प्रासादाङ्ग वास्तु प्रासादमें शालाकर्मादि निक्षेपान्त भित्यलंकरण, दिगुपस्थानादि सम्पूर्ण वास्तुशान्ति करना समुचित है।

६८ स्नपनविधिका उद्देश और मण्डप

प्रतिमाओंका निर्माण, अयोग्य स्थान, अनुक्तशिला, प्रतिषिद्ध स्पर्श, निर्माणके प्रारम्भमें अविहितमुहूर्त, अनेकजन्तुवधजन्य प्रायश्चित्तादि सब दोषोंको दूर कर प्रतिमाकी शुद्धि और देवकलाका सान्निध्य लानेके लिए स्नपनविधिकी आवश्यकता होती है। प्रतिष्ठामें स्नपनविधिका ही प्राधान्य है। क्योंकि यह विधि देश-काल-स्पर्शादिजन्य अशुचित्वको दूर करके वेदमन्त्रपूर्वक स्नपनविधिसे प्रतिमाओंमें देवकलाका सन्निधान लाता है।

प्रधान यज्ञमण्डपसे आधे मापका उत्तरमें स्नपनमण्डप करनेका कहा गया है। उसके मध्यमें हस्त मात्र दो या तीन वेदी ४ या १२ अंगुलउच्च करनेका लिखा है। शास्त्रमें जो कलशका मान दिखाया है। इसके अनुसार अष्टहस्त स्नपनमण्डपमें कलशोंका निवेशन हो ही नहीं सकता। स्नपनमण्डपके

मध्यमें वेदी करें तो मयूखोक्त कलशोंका निवेशन असम्भव हैं । इसलिए स्नपनमण्डपके मध्यसे पूर्वार्धके मध्यमें या उसके अर्धमें पूर्वकी और स्नानवेदी करना उचित हैं । और कलशोंका मध्य या अधम प्रमाण लेना पडेगा । उन वेदीयों पर देवको देवकी दिशाके अभिप्रायसे प्राङ्मुख याने प्रत्यङ्मुख रखना होगा ।

वर्तमान युगमें बिना सोचे अनेक मूर्तियोंका उस देवताके परिवारमें न होने पर भी मन्दिरमें स्थापना करते हैं । बडी बडी मूर्तियाँ होनेसे एक वेदीसे दूसरी वेदी पर ले जाना भी असम्भव हैं । इस दशामें स्नपनमण्डप करते ही नहीं । प्रधानमण्डपकी उत्तरमें छायामण्डप करके वेदिकात्रय बनाकर एक बडे लकडीके दोले पर सब मूर्तियाँ रख कर एकाद मूर्तिको वेदी पर फिराते हैं ।

जलाधिवास कृताकृत होनेसे जलाधिवासके समय कुटीरहोम न किया हो तो स्नपनविधिके पूर्व कुटीरहोम कर देना । जलाधिवासमें कङ्कणबन्धन न किया हो तो स्नपनविधिमें कङ्कणबन्धन कर देना ।

स्नपनमण्डपकी जगहको सोचकर ग्रहण करना । वर्तमान युगमें पीत्तल तांबा या मिट्टीका छोटा कलश रखते हैं ।

६९　स्नपनके प्रकार

प्रतिष्ठाके ग्रन्थ, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, ईश्वरसंहितादि अनेक ग्रन्थोंमें स्नपन कलशोंकी एकसे लेकर अष्टोत्तर सहस्र कलश तक संख्या मिलती हैं । उन प्रकारोंमेंसे १, ४, १२, १६, २४, ३०, ३६, ४८, ५६, ६४, ८४, ९०, १०९, १२५, २५१, ५०१, १००८ ऐसी विभिन्न संख्या, कलशमें और उसके निक्षेपणीय द्रव्यकी योजना कहीं हैं । इन पक्षोंमें एक एक पक्षका दूसरो दूसरे पक्षोंका समन्वय करके कलशकी संख्या उत्पन्न होती हैं । १२५, २५१, ५०१ इन तीन पक्षोंमें पूर्वोक्त कलशोंमें निक्षेपणीय, मृत्तिका, कषाय, सर्वौषध्यादि द्रव्योंको अलग, अलग करके प्रत्येकमें शुद्धोदक कलश जोडकर संख्या उत्पन्न की जाती हैं । और द्रव्यलिङ्गक या देवतालिङ्गक मन्त्रोंसे स्नपन होता हैं । ये सब प्रकार प्रयोगप्रकरणमें सुविस्तृत रूपसे निरूपित किये जाएंगे ।

७०　नेत्रोन्मीलनका रहस्य

प्राचीन कालमें कुटीरमें सारी मूर्ति तैयार हो जाती थी । सिर्फ नेत्रका भाग तैयार करनेका बाकी रखते थे । प्रथम वेदीका स्नपन हो जाने पर दो वेदी हो तो द्वितीय वेदी पर और तीन वेदी हो तो मध्यवेदी पर देवकी दिशाके अभिप्रायसे यजमानके सामने प्राङ्मुख और शुद्ध दिशाके आशयसे प्रत्यङ्मुख रख कर नेत्रोन्मीलन करनेका हैं । सुवर्ण या कांस्य पात्रमें शहद, घी मिलाकर सुवर्ण या रजतशलाका या दर्भसे देवके दक्षिणनेत्रकी कनीनिका चक्षु और चक्षुपुटद्वय बताने वाली रेखाएँ ॐ

चित्रंदेवाना- वरुणस्याग्नेः । इस आधे मन्त्रसे और ॐ आकृष्णेन पश्यन्- यह पूरा मन्त्र पढ कर आलिखित करनी । बादमें वामनेत्रमें भी इसी तरह मन्त्रावृत्तिसे नेत्रादिक रेखा करनी चाहिए । 'भेदे मन्त्रावृत्तिः' स्थानभेद क्रियाभेद होने पर मन्त्रावृत्ति आवश्यक है । यह कात्यायनका मत है । जितनी प्रतिमाएँ हो उन सबका इसी तहर नेत्रोन्मीलन करना चाहिए । बादमें प्रयोगमें लिखा है कि 'ततः शिल्पी लोहेन उल्लिखेत्' बादमें जिस तरह रेखाएँ बनी हो उस तरह शिल्पी लोहेके टंकणसे नेत्रका भाग तैयार करें । नेत्रोन्मीलनके समय भक्ष्यभोज्यादि सामग्री सामने रखना और कोई भी मनुष्य नेत्रके सामने खडा न हो ।

यहाँ शिल्पीको लोहसे नेत्रका भाग तैयार करनेमें कुछ गडबड हो जाय । कोई भाग तुट जाय । तो बडी आपत्ति हो जाय । इस हिसाबसे प्रतिष्ठाके पूर्व ही प्रतिमाका नेत्रका भाग तैयार किया जाता है । स्नपनविधिमें केवल नेत्रोन्मीलनका संस्कारमात्र होता है ।

स्नपनविधिका उद्देश प्रतिमाकी उन उन पदार्थोंसे वैदिक मन्त्रोंसे शुद्धि करना, इतना ही है । इसलिए इसको अर्चाशुद्धि कहते हैं । धान्याधिवासमें उस प्रतिमामें चराचर जगत्के सब तत्त्व और वेद, तन्त्रागमादिन्यास, जीवन्यासादि होता है ।

नेत्रोन्मीलनमें लोकवञ्चना : कई सम्प्रदायके संत, साधु, महात्मा, आचार्यादि लोग अपनी प्रतिष्ठा और महत्त्व बढानेके लिए नेत्रोन्मीलनके समय सामने अरीसा रख कर वह फुट जाना चाहिए । क्योंकि प्रतिमामें जीवत्व आ गया है । तत्त्वन्यास जीवन्यासादि हुए बिना प्रतिमामें चैतन्य शक्तिका पूर्ण आविर्भाव होता ही नहीं । अगर चैतन्य शक्तिका आविर्भाव हो गया तो 'शिल्पी लोहेन उल्लिखेत्' इस बातका संभव कैसे होगा ?

वस्तुतः महात्मा लोग नेत्रोन्मीलनके समय पतला अरीसा लातें हैं । नेत्रोन्मीलनके समय आगेसे या पीछेसे अंगुष्ठका जोरसे दबाव करतें हैं , जिससे अरीसा तूटता है । इस बातको महात्मा लोग अपनी तपश्चर्या या मन्त्रसिद्धिके नामसे चिल्लातें हैं ।

दूसरी बात-बन्ध काच पर फोस्फरस लगा देतें हैं । नेत्रोन्मीलनके समय तुर्त बाहर निकाल कर प्रतिमाके सामने धर देतें हैं । बाहरकी हवा लगनेसे फोस्फरस तुर्त काच तोड देता है । इसको अपनी सिद्धि मान कर कूद उठतें हैं । ऐसा हि हो तो फिर तत्त्वन्यास होम प्राणप्रतिष्ठादि विधि करनेकी आवश्यकता ही नहीं ।

वास्तवमें नेत्रोन्मीलनके समय काच तोडना यह बडी वञ्चना है । ऐसे समय काच बदल लेनेसे महात्माओंकी पोल खुल जाती है ।

स्नपनविधिके अन्तमें मन्त्रोंसे पूजा बतलायी है । उसमें क्रमभेद बताया है । लेकिन

'पाठक्रमादर्थक्रमो बलीयान्' इस न्यायसे उपचार क्रमके अनुसार पूजा होती हैं । अन्तमें सामिधेनी कल्पके अनुसार पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचासे स्तुति होती हैं । प्रत्येक ऋचाके अन्तमें रहे हुवे स्वरका लोप करके 'ओम्' त्रिमात्र प्रणव लगाया जाता हैं । आरम्भमें 'ॐ हिं ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ सहस्रशीर्षा० द्दगुलोम्-पुरुष० हतोम्० इस तरह षोडश ऋचाका पाठ एकश्रुतिसे करके अन्तमें 'यज्ञेन्० देवोम्' इस ऋचाका अधिक दो बार पाठ करके स्नपनविधिका कर्म समाप्त करना ।

७१ तत्त्वन्यास, मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालावाहन, होम, प्रासादस्नपन

स्नपनविधिके पूर्ण होनेके बाद प्रतिमाओंको मण्डपकी प्रदक्षिणा करवा कर पश्चिमद्वारके सामने लाकर अर्घ्य देकर सर्वतोभद्रमण्डलके आगे रक्खी हुई शय्यामें प्रतिमाओंको प्राक्शिरस या दक्षिणशिरस धान्यमें सुलाना होगा । इसके बाद तुर्तही कलश पर मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालावाहन करके तीन काम एकही साथ करने पडते हैं। १ मूर्तिओंके होमपूर्वक तत्त्वन्यास, २ प्रासादस्नपन, प्रासाद पिण्डिकाधिवासन और ३ होम ।

होमका आरंभ होनेके पूर्व चराचर जगत्के सब तत्त्वोंका, मन्त्रोंका और तत्तद् देवताओंके सूक्त, या मन्त्रादिका प्रतिमाओंमें देवकलाकी प्राप्ति और अभिवृद्धिके लिये न्यास करना पडता हैं । प्रतिष्ठेन्दुमें न्यासप्रकरणमें कहे हुवे मन्त्रोंको ॐ अकाराय स्वाहा - इस तरह तिल यव या पञ्चामृत तीनमेंसे एक द्रव्यसे प्रत्येकको १२ आहुति देनेका लिखा हैं । अन्य पद्धतिकारोंने आज्य एक एक आहुति, घृताक्त तिलमिश्रित यवसे या यवसे आहुति देनेका कहा हैं । किन्तु इतने ब्राह्मण और समयके अभावमें पृथक् तत्त्व के होमके बदले ॐ पराय विष्ण्वात्मने स्वाहा, विष्णुके लिए, शिवपरिवारमें 'पराय शिवात्मने स्वाह' देवीमें 'पराय शक्त्यात्मने स्वाहा' इनमेंसे प्रधानदेवतानुसार मन्त्र लेकर १००८ या १०८ आहुति देना ।

७२ शान्तिकलशस्थापन, मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालावाहन

एक कुण्ड हो तो कुण्डके ईशानमें जलभरा एक कलश रखना । उसको शान्तिकलश कहते हैं । उसके साथ जलभरे कलश पर पूर्ण पात्र रखके उसके ऊपर-मूर्ति-मूर्तिपति लोकपालका आवाहन पूजन करना । मूर्ति मानें सृष्टिमें परमात्माका व्यापक स्वरूप आठ प्रकारका होता हैं । और उन मूर्तिओंके अधिपति भवादि आठ देवता हैं । बादमें इन्द्रसे ईशान तकके आठ दिक्पालोंका आवाहन होता हैं । यह नीचे लिखा हैं ।

	मूर्ति	मूर्त्यधिपति	लोकपाल	
१	पृथिवी	शिव (शर्व)	इन्द्र	प्रकृतिके मूलभूत आठ स्वरूप हैं ।
२	अग्नि	पशुपति	अग्नि	पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश,

३	यजमान	उग्र	यम	सूर्य, चन्द्र, यजमान (आत्मा)
४	अर्क	रुद्र	निऋति	इन मूल तत्त्वोंके शिवादि (शर्वादि)
५	जल	भव	वरुण	जो आठ देवता कहें हैं । शिप्रतिष्ठा
६	वायु	ईशान	वायु	विषयक ही हैं । ऐसा मानकर अन्य
७	सोम	महादेव	सोम	देवताओंकी प्रतिष्ठामें मूर्तिपति अलग
८	आकाश	भीम	ईशान	बतायें हैं ।

कोई भी देवता हो पृथिव्यादि मूलतत्त्वोंमें फर्क नहीं पडता । शिवादी (शर्वादि) मूर्तिपति रूढिसे शिवके ही नाम हैं । तथापि परमात्मा एक ही होनेसे कार्यानुसार उनके ब्रह्मा, विष्णु, शिव ऐसे स्वरूप भेद माने हैं । शिवादि पदोंका रूढिका अर्थ जोडकर व्युत्पत्तिजन्य-शिव-कल्याणकारक, पशुपति-जीवमात्रका स्वामी उग्र-दण्ड देनेवाला, रुद्र-दुःखको दूर करनेवाला, भव-उत्पत्तिकारक, ईशान-चराचर विश्वका स्वामी, महादेव अजन्मा सर्वदेवताओंका अधिष्ठाता, भीम-संहारकर्ता-यह वस्तु लेकर प्रायः पद्धतिकारोंने सर्व देवताओंकी प्रतिष्ठामें ऊपर लिखे हुवे मूर्ति-मूर्तिपति लोकपालोंका स्वीकार किया है ।

७३ देवभेदसे मूर्त्ति-मूर्त्तिपति भेद और पञ्चकुण्डी नवकुण्डीमें मूर्त्तिमूर्त्तिपतिकी स्थापन व्यवस्था

लेकिन आगम-तन्त्रादि प्रमाणोंसे अन्य पद्धतिकारोंने मूर्ति और मूर्तिपतिमें फर्क बताया है । जैसे प्रतिष्ठामयूखमें 'वैष्णवेतु पञ्चैव मूर्त्तयः' ऐसा कह कर पूर्वमें १ पृथिवीमूर्ति-वासुदेव, दक्षिणमें २ जलमूर्ति-संकर्षण, पश्चिममें ३ अग्निमूर्ति-प्रद्युम्न, उत्तरमें ४ वायुमूर्ति-अनिरुद्ध, मध्यमें ५ आकाशमूर्ति-नारायण ऐसे पाँच मूर्ति-मूर्तिपति बतायें हैं । लोकपाल तो आठ ही रहेगें । प्रत्येकमें दो दो दिक्पाल मध्यमें कोई नहीं, इस तरह व्यवस्था होगी । इसी तरह शिवप्रतिष्ठामें भी पञ्चमूर्त्तिके पक्षमें १ पृथिवी-ब्रह्मा, २ जल-विष्णु, ३ तेज-महेश्वर, ४ वायु-सदाशिव, ५ आकाश ईशान यह मूर्ति-मूर्तिपति बतायें हैं । लोकपाल तो आठ ही होंगे ।

इसी तरह गणेशकी प्रतिष्ठामें १ सुमुख २ एकदन्त ३ कपिल, ४ गजकर्ण ५ लम्बोदर ६ विकट ७ विघ्ननाश ८ गणाधिप यह आठ मूर्तिपति कहें हैं । विष्णुप्रतिष्ठामें १ विष्णु २ मधुसूदन ३ त्रिविक्रम ४ वामन ५ श्रीधर ६ हृषीकेश ७ पद्मनाभ ८ दामोदर यह आठ मूर्तिपति हैं । सूर्यप्रतिष्ठामें १ विकर्तन २ विवस्वान् ३ मार्तण्ड ४ भास्कर ५ रवि ६ लोकप्रकाशक ७ श्रीमत् ८ लोकचक्षुः यह आठ मूर्तिपति हैं । देवीप्रतिष्ठामें १ आर्या २ दाक्षायणी ३ गिरिजा ४ मेनकात्मजा ५ शर्वाणी, ६ भवानी, ७ मृडानी, ८ अम्बिका यह आठ मूर्तिपति है । भैरव, हनुमान् आदि अन्य

देवताओंमें उनके नामसे आठ मूर्त्तिकी कल्पना कर देना। और होमके समय तत्तदेवताके लिङ्गमन्त्रोंसे होम करना।

पञ्चकुण्डी पक्षमें पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर कुण्डोंकी ईशानमें शान्तिकलशके साथ रक्खें हुये कलश पर क्रमसे दो दो मूर्त्ति-मूर्त्तिपति लोकपालका आवाहन और होमके समय होम करना, आचार्यकुण्डमें मूर्त्ति-मूर्त्तिपति लोकपालका आवाहन होता नहीं।

नवकुण्डी पक्षमें पूर्वादि क्रमसे ईशान तक आठ कुण्डोंकी ईशानमें शान्तिकलशके साथ रक्खें कलश पर क्रमसे एक एक मूर्त्ति-मूर्त्तिपति लोकपालका आवाहन एवं होमके समय होम करना। आचार्यकुण्डमें आवाहन एवं होम होता नहीं।

वस्तुतः सृष्टिके मूलभूत तत्त्वोंके साथ उसके बताये हुवे शिवादि देवताओंको छोडकर साम्प्रदायिकताके आधार पर अन्य मूर्त्तिपति और उसके मन्त्रोंसे होम करना सर्वग्रन्थ सम्मत नहीं।

'तं यथा यथा उपासते तदेव तद् भवति, तद्धैनान् भूत्वाऽवति' इस श्रुतिवचनके आधार पर प्रथम पक्ष-पृथिव्यादि मूर्त्ति-शिवादि (शर्वादि) मूर्त्तिपति-इन्द्रादि लोकपालका पक्ष ही लेना योग्य है। वर्तमानयुगमें अनेक देव-देवीयाँ, उनके मूर्त्तिपति और तत्तदेवतालिङ्गक मन्त्र मिलना असम्भव होनेसे प्रथम पक्ष लेना सर्वस्वीकृत है।

७४ शान्तिक पौष्टिकहोम

जलाधिवासमें किये जानेवाला शान्तिहोम या कुटीरहोम और प्रधानहोम प्रकरणमें किये जानेवाला शान्तिकपौष्टिक होम निमित्तभेदसे अलग अलग है। शान्तिहोम या कुटीरहोम प्रतिमानिर्माणमें प्राणीवध, दुष्टकालादिजन्यदुर्निमित्तादि दोषके उपशमनके लिये किया जाता है। शान्तिकपौष्टिकहोम प्रतिमा, प्रासाद, यजमान, भक्तजन देशजनका सूर्याचन्द्रमसौ यावत् शान्ति और पुष्टिके लिए किया जाता है। इस लिए करना अभीष्ट है। प्रतिष्ठावासुदेवी और अन्य पद्धतिकारोंने शान्तिहोमसे ही गतार्थता मानी है। दिनकर भट्टजीने तो ग्रहमन्त्रोंसे ही होम करनेसे शान्तिकपौष्टिकहोमकी फल प्राप्ति कही है।

शान्तिकपौष्टिक होमके विषयमें मत्स्यपुराणके ये वचन हैं - ''मात्स्ये-शिरःस्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत्। शान्तिकैः पौष्टिकैस्तद्वन्मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः ॥ पलाशोदुम्बराश्वत्थास्त्वपामार्गः शमी तथा। हुत्वा सहस्रमेकैकं देवपादौ तु संस्पृशेत् ॥ ततो होमसहस्रेण हुत्वा चाथ ततस्तथा। नाभिमध्यं तथा वक्षः शिरश्चाप्यालभेद् बुधः ॥' इन वचनोंसे पलाश, उदुम्बर, पीपल, शमी, अपामार्ग, इन पाँच समिधोंसे क्रमसे सहस्र, सहस्र, होम करके पाद, नाभि, हृदय, स्कन्ध, शिरको स्पर्श

करनेका तात्पर्य निकलता है। शान्तिक मन्त्रोंसे पाँच सहस्र और पौष्टिक मन्त्रोंसे पाँच हजार मिल कर दस हजार आहुति होगी। मध्य वेदीके पक्षमें एक कुण्डके पक्षमें देवका शिरःस्थान मानकर ईशानमें किये हुवे एक कुण्डमें शान्तिपौष्टिक होम होगा। पञ्चकुण्डी या नवकुण्डी पक्षमें भी आचार्यकुण्डमें ही शान्तिपौष्टिक होम करनेका प्रायः सभी पद्धतिकारोंने मान्य किया है।

शान्तिपौष्टिक होमके विषयमें प्रतिष्ठामयूखकार कहतें हैं। "तत आचार्यः पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमिधां प्रत्येकंद्वादशसहस्र-षट्सहस्र-त्रिसहस्र-अष्टोत्तरसहस्रं अष्टोत्तरशतं वा कुण्डसमीपे संस्थाप्य हिरण्यगर्भ० इति मन्त्रेणाभिमन्त्र्य शान्तिकैः पौष्टिकैश्च मन्त्रैर्यथाविभागं सऋत्विग् जुहुयात्।" इस पङ्क्तिमें 'अष्टोसहस्रमष्टशतं वा' ऐसा भी पाठ है। इस पाठका अष्टाधिक सहस्रमष्टाधिकशतं ऐसा ही तात्पर्य हैं।

इस पङ्क्तिके विषयमें बहुत समयसे विवाद चलता आ रहा है। और न कोई इस विषयमें संगति कर सकतें हैं। १ प्रथम विवाद- ५४० समिधा रखनेका कहा है। शान्तिक मन्त्रोंसे प्रत्येक समिधाकी ५४ आहुति और पौष्टिक मन्त्रोंसे प्रत्येक समिधाकी ५४ आहुति दी जाय। २ दूसरा विवाद- इस पङ्क्तिका 'यथाविभागं-इस पदको शान्तिकैः पौष्टिकैश्च' इस पदके साथ जोडकर मन्त्रोंका विभाग करना चाहिए।

३ तीसरा विवाद- शान्तिकैः च पौष्टिकैः यहाँ चकारसे वाक्यभेद होता है। और बहुवचन होनेसे मन्त्रविभाग हो सकता नहीं। 'यथा विभागं' यह क्रियाविशेषणका विभागसे साथ सम्बन्ध होगा।

इन तीनों पक्षोंका विचार करनेके पहले निर्दिष्ट पङ्क्तिका मीमांसाकी दृष्टिसे विचार करें। १ कः जुहुयात् - १ आचार्यः २ कीदृग् आचार्यः २ सऋत्विग् आचार्यः ३ किं जुहुयात् ३ पञ्चसमिधामष्टशतं जुहुयात्। ४ केन जुहुयात् ४ शान्तिकैः मन्त्रैः जुहुयात् पौष्टिकैश्च मन्त्रैर्जुहुयात्। चकाराद् वाक्यभेदः। ५ कथं जुहुयात्। ५ सत्विंग् आचार्यः यथाविभागं जुहुयात्।

१ हर एक वेदमें शान्तिसूक्त और पौष्टिक सूक्त हैं। ऋग्वेद, कृष्णयजुर्वेद, शुक्लयजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदमें शान्तिक और पौष्टिक अनेक मन्त्र, अध्याय और सूक्त भरे पडें हैं। क्या इन सब मन्त्रोंसे होम करनेका ग्रन्थकारका अभिप्राय है ? २ शान्तिकैः और पौष्टिकैः इधर बहुवचन होनेसे तीन और इससे अधिक संख्याकी व्याकरणदृष्टिसे प्राप्ति नहीं होती ? ३ अगर मन्त्रविभाग ही अभीष्ट होता तो पण्डितकुलशिरोमणि मयूखकार इस पंक्तिमें 'प्रत्यृचं' इतना लिखना क्यों छोड देतें ? ४ जिन पद्धतिकारोंने शान्तिकमें चार या पाँच और पौष्टिकमें चार या अधिक मन्त्र बतायें हैं, उनका समाधान मन्त्रविभाग पक्षमें कैसे होगा ?

१ प्रथम पक्ष समाधान : मयूखकी पंक्तिसे प्रथम तो ५४० समिधोंसे शान्तिक और पौष्टिक

मन्त्रसे आहुति प्राप्त होती है । इससे शान्तिक २७० पौष्टिक २७० मिलकर ५४० आहुति होगी । लेकिन होम जपादि विषयमें क्रमसे ८-२८-१०८-१००८, ३०००, ६०००, १२०००० यह क्रम प्रतिष्ठामें उपलब्ध हैं । 'चकाराद् वाक्यभेदः' इस न्यायसे शान्तिक और पौष्टिक होमोंमें हरएक समिधाकी १०८-१०८ संख्या उपपन्न होगी । ५४ आहुतिका क्रम किसी भी ग्रन्थमें उपलब्ध नहीं हैं । इस बातका साधक प्रमाण नित्याचार प्रदीपमें प्रतिष्ठाप्रकरणमें मिलता हैं । 'गृह्योक्तविधिना आज्यभागान्ते पलाशोदुम्बराश्वत्थापामार्गशमीसमिधां प्रत्येकं शतद्वयेन सह होमः । इन्द्रादित्यादिकैः शान्तिकैः त्र्यम्बकमित्यादिपौष्टिकैर्हुत्वा देवस्य पादस्पर्शनम्'- यहाँ भी 'प्रत्युचं' ऐसा कहा नहीं, और शान्तिक एवं पौष्टिक दोनोंमें पाँचो समिधाका १०८-१०८ पक्ष सिद्ध होता हैं ।

२ **द्वितीय पक्ष समाधान :** शान्तिकके तीन १ शन्नो वात० २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नो देवी० और पौष्टिक मन्त्र- १ पुष्टिर्नरण्वान्० २ गयस्फानो अमीवहा० ३ गयस्फानः प्रतरण० ४ शिवो नामासि० ५ त्र्यम्बकं मुतः स्वाहा - इन आठ मन्त्रोंमें मन्त्रविभाग पक्ष उपपन्न नहीं होता ।

इसी तरह प्रतिष्ठात्रिविक्रममें भी मन्त्रसंख्या इस तरह हैं । शान्तिक - १ शन्नो वात० २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नो देवी० ४ द्यौः शान्तिः० । पौष्टिक- १ पुष्टिर्नरण्वान्० २ गयस्फानः० ३ त्र्यम्बकं० मामुतः - यह सात मन्त्रमें भी मन्भविभाग उपपन्न होता नहीं ।

३ **तीसरा मत :** शान्तिकैः च पौष्टिकैः यहाँ बहुवचन होनेसे और 'प्रत्यृचं' ऐसी पंक्तिमें स्पष्टता न होनेसे शान्तिकमन्त्रसमुदायके अन्तमें और पौष्टिकमन्त्रसमुदायके अन्तमें स्वाहा लगा कर होम करना शास्त्रसिद्ध हैं । मन्त्रविभाग सात आठ मन्त्रोंके पक्षमें उपपन्न होता नहीं । 'यथाविभागं' इस पदका ऋत्विग्विभागके साथ सम्बन्ध जोडनेसे कोई अनुपपत्ति नहीं हैं । इस लिए तृतीय पक्षका स्वीकार ही करना सर्वसम्मत हैं ।

वर्तमानयुगमें एक प्रासादमें अनेक मूर्त्तिओंकी प्रतिष्ठा होती हैं । बडे नगरोंमें समिधाओंका मिलना बीलकुल असम्भव होता हैं । इस वजहसे याज्ञिक लोग 'समिदर्थे यवाः प्रोक्ताः' इस कारिका वचनके अनुसार समिधोंके अभावमें यव या यवमिश्रित तिलका होम करतें हैं । प्रतिष्ठा यह पूर्तकर्म होनेसे यह प्रायः सामाजिक कार्य होता हैं । 'यशोऽर्थे धर्मसेवनम्' इस उक्तिके अनुसार कई धनी लोग नामके मोहसे मन्दिर बनाने और प्रतिमाएँ लानेमें सुशोभित करनेके लिएभी मनमाना ५-१०-१५ लाख रुपयें खर्च कर देतें है । 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' इस वाक्यके अनुसार बाहरके दिखावेके लिए मनमाना खर्च करतें है । लेकिन जब प्रतिष्ठाविधिकी बात आती है तब कार्यकर्ताओंको मनःसङ्कोच होता है । इस मनोदशासे प्रतिष्ठाका कार्य जो प्रधानविधि हैं । वह गौण हो जाता है । कमसे कम खर्चमें हो जाय ऐसा प्रयास करतें हैं । प्रतिष्ठा ही एक ऐसा कर्म हैं, जिसमें दस हजारसे लेकर दस करोड रुपये तक खर्च हो सकता हैं । धर्म और शास्त्रमें अनास्थावाले केवल कीर्तिलोभी

यजमान कम खर्चमें करानेवाले प्रतिष्ठाविधि शिल्पशास्त्रादिको नहीं जाननेवाले मनचाहे अनपड ब्राह्मणोंको बुलाकर विना मुहूर्त कमसे कम खर्च और समयमें प्रतिष्ठा करा लेतें हैं । और अन्यथा क्रिया अयथा क्रियाके दोषके भागी यजमान और ब्राह्मण होतें हैं ।

प्रतिष्ठाप्रकरणमें 'आचार्याय सहस्रं गावो दक्षिणा, तदर्धं ब्रह्मणे' इत्यादि क्रम दिखाया हैं । लेकिन इतना विद्वान् का सत्कार करनेवाला यजमान आजतक किसी आचार्यको मिला नहीं । मिलेगा भी नहीं ।

उपर्युक्त विषयकी चर्चा वर्तमान प्रकरणमें करनी इस लिए आवश्यक हुई, क्योंकि ग्रन्थोंमें १२ हजार, ६ हजार, ३ हजार, एक हजार आहुतियाँ लिखी हैं । इस संख्याके अनुरूप हवन करनेमें कमसे कम १५०, १२५, १००, ७५ या ५० ब्राह्मणकी आवश्यकता पडेगी । और इस लिए इतनी द्रव्यसामग्रीकी भी अपेक्षा रहेगी ।

प्रतिष्ठाविधिमें सामग्रीका अभाव, द्रव्यकी कृपणता, ब्राह्मणकी विधिहीनता, अनुक्त लक्षणवाली प्रतिमाकी प्रतिष्ठासे गुणके बजाय कितने महादोष होतें हैं । यह बात इन वचनसे सिद्ध होती हैं । 'हन्त्यर्थहीना कर्तारं मन्त्रहीनं तु ऋत्विजम् । स्त्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः' द्रव्यकी कृपणता यजमानका, अनपड ब्राह्मणोंसे मन्त्ररहित प्रतिष्ठा ब्राह्मणका, और अयोग्य प्रतिमा यजमानकी स्त्रीका नाश करती हैं । प्रतिष्ठा समान कोई शत्रु नहीं ।

इस वचनका अनपढ और कोन्ट्रेक्ट रखनेवाले आचार्य ब्राह्मणको, एवं द्रव्यकी कृपणता करनेवाले मनचाही मूर्ति बैठानेवाले यजमानोंको पूरा ख्याल रखना चाहिए ।

७५ पञ्चकुण्डी, नवकुण्डी पक्षमें होमकी व्यवस्था

यद्यपि पद्धतिकारोंने शान्तिक पौष्टिक होम आचार्यकुण्डमें करनेका कहा है । फिर भी पाँच और नवकुण्डमें होमकी व्यवस्था हो सकती हैं ।

शान्तिक पौष्टिक होममें पञ्चकुण्डीमें प्रत्येक कुण्ड पर पलाशादि पाँच समिध, लेकर पाँच ब्राह्मण बैठाना । इस तरह २५ ब्राह्मणको बिठाकर शान्तिकमन्त्रोंसे २१ बार पड कर होम करनेके बाद आचार्यकुण्डमें तीन आहुति ज्यादह देनेसे ५४० आहुति होगी । इसी तरह पौष्टिकमन्त्रोंकी २१ बार आहुति और आचार्यकुण्डमें ३ अधिक आहुति देनेसे पौष्टिक होमकी ५४० आहुति सम्पन्न होगी ।

नवकुण्डी पक्षमें प्रत्येक कुण्ड पर पाँच पाँच ब्राह्मण बैठायें और शान्तिकमन्त्रोंकी १२ बारह आहुतिसे ५४० आहुति होगी । इसी तरह पौष्टिक होममें भी १२ बार होम करनेसे ५४० आहुति होगी ।

समिधाके अभावमें यवसे एक कुण्ड पक्षमें १८ ब्राह्मणको बैठाकर ३० बार शान्तिकमन्त्रोंसे और ३० बार पौष्टिकमन्त्रोंसे होम करना। १२ ब्राह्मण बैठे हो तो शान्तिक-४५ बार और पौष्टिक-४५ बार होम करें। ९ ब्राह्मण हो तो शान्तिक-६० बार पौष्टिकका-६० बार होम करें। प्राय: वर्तमान समयमें एक कुण्डकी प्रतिष्ठामें यह ही पक्ष सुगम है।

मूर्त्ति-मूर्त्तिपति-लोकपालहोम : मूर्त्ति-मूर्त्तिपति-लोकपालके होममें प्रतिष्ठेन्दुमें १ पलाश, २ उदुम्बर, ३ अश्वत्थ, ४ शमी, ५ अपामार्ग - यह पाँच ही द्रव्य कहें है। निर्णयसिन्धुमें १ से ५ पलाशादि पाँच समित् ६ तिल, ७ आज्य - यह सात द्रव्य बतायें हैं। तिलकी जगह चरु लेना कहा हैं। नारद पञ्चरात्रमें तिल या आज्य दोनोंमेंसे एक ही हविर्द्रव्य लेनेका कहा है।

संख्याके विषयमें संग्रहमें १००८, १०८, २८ या ८ आहुतिका क्रम कर्म और समय एवं द्रव्यकी अनुकूलता देखकर लेनेका कहा है। तीन, पाँच, सात रात्रिके अधिवासनमें हम १००८ संख्या ले सकते हैं। सात द्रव्यके पक्षमें २८का क्रम लेना उचित है। एक द्रव्यके पक्षमें मूर्त्ति-मूर्त्तिपति-लोकपाल-२४ देवताओंका १०८ आहुतिका क्रम लेना उचित है।

स्नपनके बाद देवका शय्याधिवास होने पर ही शान्तिक पौष्टिकादि सब होम होते हैं। तीन दिनकी प्रतिष्ठामें दूसरे दिन स्नपनके बाद धान्याधिवास होने पर एक द्रव्यसे १०८ आहुति ही देना अनुकूल होता है। एक या दो दिनकी प्रतिष्ठामें २८ या ८ का पक्ष लेना उचित हैं।

पञ्चकुण्डी - नवकुण्डी पक्षमें मूर्त्ति मूर्त्तिपति लोकपाल होमकी व्यवस्था-पञ्चकुण्डी पक्षमें पूर्व कुण्डमें १ पृथिवी २ शिव (शर्व) ३ इन्द्र ४ अग्नि ५ पशुपति ६ अग्नि यह छ देवताका होम १०८-२८-८ आहुतिसे करना। दक्षिण कुण्डमें १ यजमान २ उग्र ३ यम ४ अर्क ५ रुद्र ६ निर्ऋति यह छ देवता, पश्चिम कुण्डमें १ जल २ भव ३ वरुण ४ वायु ५ ईशान ६ वायु यह छ देवता, उत्तर कुण्डमें १ सोम, २ महादेव ३ सोम ४ आकाश ५ भीम ६ ईशान इन छ देवताका होम करना। ईशानके आचार्य कुण्डमें मूर्त्ति-मूर्त्तिपति-लोकपालका होम होता नहीं।

नवकुण्डी पक्षमें पूर्वकुण्डमें १ पृथ्वी २ शिव (शर्व) ३ इन्द्र तीन देवता, आग्नेय कुण्डमें १ अग्नि २ पशुपति ३ अग्नि, दक्षिण कुण्डमें १ यजमान २ उग्र ३ यम, नैर्ऋत्य कुण्डमें १ अर्क २ रुद्र ३ निर्ऋति, पश्चिम कुण्डमें १ जल २ भव ३ वरुण, वायव्य कुण्डमें १ वायु २ ईशान ३ वायु। उत्तर कुण्डमें १ सोम २ महादेव ३ सोम, ईशान कुण्डमें १ आकाश २ भीम ३ ईशान इन तीन देवताओंका होम होगा। आचार्य कुण्ड-पूर्व ईशान मध्यके कुण्डमें मूर्त्ति-मूर्त्तिपति लोकपालका होम होता नहीं।

आचार्यको पञ्चकुण्डी नवकुण्डी पक्षमें उन उन कुण्डपर बैठे हुवे कुण्डाचार्योंको उन उन

देवताके मन्त्र और आहुति संख्या कागज पर लिखकर सावधानीसे देनी पडेगी। जिससे कर्म, क्रम, मन्त्र, संख्याका व्यत्यास न हो।

७६ पञ्चकुण्डी, नवकुण्डीमें विशिष्ट होम

पूर्वकुण्डमें स्थाप्यदेवता मन्त्रसे पलाशसमिधुसे १०८-२८ या ८ आहुतिका होम करें। अथवा ॐ अग्निमीळे० इस मन्त्रसे आज्यकी ८ आहुति दें। दक्षिणकुण्डमें स्थाप्यदेवता मन्त्रसे १०८-२८ या ८ पलाशसमिधुकी आहुति दें। अथवा ॐ इषेत्वा० इस मन्त्रसे दहींसे ८ आहुति दें। पश्चिम कुण्डमें स्थाप्य देवता मन्त्रसे पलाशसमिधुकी १०८, २८ या ८ आहुति दें अथवा ॐ अग्न आयाहि० मन्त्रसे दुधकी ८ आहुति दें। उत्तरकुण्डमें स्थाप्य देवता मन्त्रसे पलाशसमिधुकी १०८, २८ या ८ आहुति दें अथवा मधु (शहद) की ॐ शन्नो देवी० मन्त्रसे आठ आहुति दें। नवकुण्डी पक्षमें अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान और आचार्यकुण्डमें स्थाप्यदेवता मन्त्रसे १०८, २८, या ८ आहुति दें। अथवा आग्नेय कुण्डमें घी की ॐ वौषट्-इस मन्त्रसे ८ आहुति, नैर्ऋत्य कुण्डमें दहींसे ॐ तत्सवितु० मन्त्रसे ८ आहुति, वायव्य कुण्डमें दुधसे ॐ जातवेदसे० इस मन्त्रकी ८ आहुति, ईशान कुण्डमें शहदसे ॐ ब्रह्मजज्ञानं० इस मन्त्रसे ८ आहुति और आचार्य कुण्डमें घी, दहीं, दुध, शहद मिलाकर ॐ मूर्धानं० मन्त्रसे ८ आहुति देना। एक कुण्ड पक्षमें वेदादि होमकी आवश्यकता नहीं।

स्थाप्य देवता होम : प्रासादमें जिन देवोंकी प्रतिष्ठा करना हो उनके मन्त्रसे आज्य या घृताक्ततिलसे १००८ या १०८ आहुति देना। प्रधान देवकी पिण्डिका (बैठक) चौकी वह देवताकी पत्नी होती है। इससे विष्णु प्रतिष्ठामें ॐ इदं विष्णु० ॐ श्रीश्चते० इन दो मन्त्रोंसे १०८-१०८ आहुति देना। शिव प्रतिष्ठामें ॐ त्र्यम्बकं० ॐ अम्बे अम्बिके० दो मन्त्रसे १०८-१०८ आहुति देना। सपरिवार राम, लक्ष्मण, सीता, राधाकृष्ण, शिव-पार्वती, ब्रह्मा, सावित्री इन युग्मोंमें पिण्डिकाका अलग ॐ श्रीश्चते० या ॐ आयंगी० इस मन्त्रसे होम करना पडेगा। इस तरह प्रासादमें कितने देवताओंकी प्रतिष्ठा करनेकी हैं ? इसकी सूची बनाकर उनके लिङ्गोक्त मन्त्रसे हवन करना। यह स्थाप्य देवता होम १२ ब्राह्मण बैठाकर ९ बार या १८ ब्राह्मण बैठाकर ६ बार या ९ नव ब्राह्मण बैठाकर १२ बार करना होगा।

मन्त्रत्व विचार : वीर मित्रोदयमें चार प्रकारके मन्त्र बतायें हैं। १ वैदिक मन्त्र २ तन्त्रोक्त या आगमोक्त मन्त्र ३ पुराणोक्त मन्त्र ४ नाम मन्त्र यह चार मन्त्रसे भिन्न मनमाने किसीभी मन्त्रसे शास्त्रविहित कर्मोंमें होम हो सकता नहीं। वर्तमान साम्प्रदायिक लोग मनमाने मन्त्रका होम करनेका ब्राह्मणको कहतें हैं। और धनलोभी ब्राह्मण साम्प्रदायिकोंकी आज्ञानुसार होम करते हैं। ऐसा शास्त्र विरुद्ध कर्म करनेसे यजमान और ब्राह्मण दोषभागी होतें हैं।

मनुष्यकृत ग्रन्थोंका चाहे वे बडे आचार्य क्यों न हो ? होम हो सकता नहीं । भगवान् शङ्कराचार्यके चतुःषष्ट्युपचार त्रिपुरसुन्दरी स्तोत्रके श्लोकोंको भी मन्त्रत्व शास्त्रसे प्राप्त होता नहीं हैं । ऐसा करने पर हर एक सम्प्रदायके लोग अपने मन्त्र, साखी, दोहा, पद्य, छन्द, स्तोत्र इत्यादिका होम करनेको कहें तो फिर शास्त्रकी अनवस्था हो जाएगी ।

'वचनात्प्रवृत्तिर्वचनान्निवृत्तिः' इस न्यायसे शास्त्रसम्मत मार्गका आश्रय करना योग्य होगा । भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध हयग्रीव, दत्तात्रेयादि प्रत्येक कल्पमें अवतीर्ण होतें हैं और उनका देवतात्व सर्वशास्त्र सम्मत हैं ।

वर्तमान युगमें रामदेव पीर, भाथुजी, जलाराम, पुनित महाराज, रामकृष्ण परमहंस इत्यादि सन्त महात्माओंकी प्रतिमा प्रासादमें रखतें हैं । लेकिन प्रतिष्ठा होमादिके लिए शास्त्रसम्मत वचन उपलब्ध न होनेसे प्रतिष्ठाका विधि होता नहीं । केवल दर्शन प्रतिमाके रूपमें बिना विधि रख देना ही उचित हैं ।

७७ शिव परिवारमें हनुमानजी, सती माता

ग्याहरवी शताब्दीके पूर्व प्राचीन शिवालयोंमें शिव, गौरी, गणेश, स्कन्द, वृषभ, कूर्मकी प्रतिमाओंकी स्थापना होती थी । लेकिन स्कन्दकी पूजा कुमारिकासे होती नहीं । ऐसी कई देशोंमें प्रथा पडने पर स्कन्दकी जगह हनुमान्‌की स्थापना होने लगीं । अभी भी कई मन्दिरोंमें हनुमान्‌की प्रतिमा प्रासादके बाहर दक्षिणाभिमुख उपलब्ध होती हैं ।

वर्तमान युगमें शिवपुराणके अनुसार महादेव शिवजीका गण वीरभद्रके अवताररूप हनुमान्‌की प्रतिष्ठा शिवके गणके रूपमें होती हैं । इसी तरह शिवालयमें सतीकी स्थापना होती हैं यह ठीक नहीं हैं । किन्तु देहत्यागके बाद गौरीका रूप लेकर परिवाररूप गणेश, स्कन्दकी जननी और शिव पत्नीके रूपमें प्रतिष्ठा होती हैं । यह बात ही शास्त्रपुराण सिद्ध हैं । सतीकी स्थापना करना उचित नहीं ।

प्रासादस्थित प्रतिमाओंसे भिन्न प्रधान देवताका वाहन प्रासादका शिखर कलश और ध्वजका होम ही कर देना उचित हैं ।

उन उन देवताओंके लिए विशिष्ट मन्त्रोंका आगे मन्त्रपरिशिष्टमें हम निर्देश करेंगे ।

७८ व्याहृति होम

प्रतिष्ठा विधिके दूसरे दिन होम प्रकरणमें व्याहृति होम अन्तमें होता है । 'मात्स्ये-शान्तिकैः पौष्टिकैश्चैव मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः, इस वचनके अनुसार और मत्स्यपुराणमें कहे हुवे मूर्त्ति मूर्त्यधिपति

लोकपाल एवं स्थाप्यदेवताका होम और व्याहृति होम यह क्रम है। व्याहृति होममें १ तिल २ यव ३ व्रीहि ४ चरु ५ आज्य इन पाँच द्रव्यसे, या केवल तिलसे ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा- इस समस्तव्याहृतिसे १००८ आहुति देना। वर्तमान समयमें उक्त द्रव्य और आवश्यक ब्राह्मण संख्याके अभावसे शान्तिक पौष्टिकादि व्याहृति होमान्त सभी होम तिलद्रव्यसे ही होते हैं। 'शतान्ते वा सहस्रान्ते पूर्णाहुतिमथाचरेत्' इस वचनसे होमके अन्तमें चतुर्गृहीत आज्य स्रुचिमें रखकर सुपारी रखकर ॐ मूर्धानं दिवो० देवाः स्वाहा- इतना बोलकर आहुति देना। 'इदं मृडाग्नये न मम' इतना बोलकर संस्रव प्रोक्षणी या शान्तिकुम्भमें देना।

७९ शान्तिकपौष्टिकादि होम विभाग

पद्धतिकारोंने शान्तिक पौष्टिकादि व्याहृतिहोमान्त एक कुण्डमें करनेका कहा है। पञ्चकुण्डी नवकुण्डी पक्षमें मूर्त्ति, मूर्त्तिपति, लोकपालहोम, पञ्चकुण्डी नवकुण्डीका विशिष्ट होम उन उन कुण्डोंमें करनेका कहा हैं। फिर भी हम सब कुण्डोंमें एकाग्नि पक्षसे समान होम संख्या करना चाहे तो पञ्चकुण्डी पक्षमें प्रत्येक कुण्डपर तिलद्रव्यके पक्षमें पाँच ब्राह्मण बैठाकर शान्तिक मन्त्र २१ बार बोलकर अन्तमें आचार्य कुण्डमें पाँच ब्राह्मण ३ आहुति ज्यादा दें। इसी तरह पौष्टिक मन्त्रोंसे २५ ब्राह्मण २१ बार आहुति देकर आचार्य कुण्डके पाँच ब्राह्मण ३ आहुति ज्यादा दें।

नवकुण्डी पक्षमें प्रत्येक कुण्ड पर चार चार ब्राह्मण बैठाकर १५ बार शान्तिक और १५ बार पौष्टिकसे तिल या समिधाका होम करें।

मूर्त्ति-मूर्त्तिपति लोकपालमें पञ्चकुण्डी पक्षमें प्रत्येक कुण्ड पर पाँच पाँच ब्राह्मण बैठाकर प्रत्येक मन्त्रसे चार चार आहुति और आचार्यकुण्डमें अन्तमें चार ब्राह्मण दो दो आहुति दें। इस तरह २४ देवताका होम करें। नवकुण्डीपक्षमें प्रत्येक कुण्ड पर तीन तीन ब्राह्मण बैठाकर हर एक मन्त्रसे तिल द्रव्यसे चार चार आहुति दें, यह ही क्रम स्थाप्य देवतामें लेना।

व्याहृति होममें पञ्चकुण्डीपक्षमें हर एक कुण्ड पर दो दो ब्राह्मण बैठाकर एक मालासे होम करें। नवकुण्डीपक्षमें हर एक कुण्ड पर एक और आचार्यकुण्ड पर दो ब्राह्मण बैठाकर होम करें। हर एक कुण्डमें अन्तमें पूर्णाहुति देना। हुतशेष द्रव्य अलग रखें।

यद्यपि पद्धतिकारोंने प्रधानकी अपेक्षासे परिवार देवताओंकी होमकी कम संख्या लिखी है। फिर भी होमका उद्देश प्रतिमामें चैतन्य लानेका होता है। प्रधान या परिवार प्रतिमामें चैतन्य समान तौरसे रहनेसे उसकी होम संख्यामें भेद करना उचित नहीं।

सब होम हो जाने पर आचार्य ॐ विश्वतश्चक्षु० इस मन्त्रसे प्रतिमाके पादसे मस्तक पर्यन्त हस्तसे स्पर्श करें और देवके दक्षिण कर्णमें 'कृतममुं होमं देवाय निवेदयामि' ऐसा निवेदन करें।

८० सामान्यतः प्रतिष्ठामें आहुति संख्या

सामान्यतः प्रतिष्ठामें प्रधान होम संख्या इस तरह होती हैं। अष्टोत्तर शतपक्षसे अन्य पक्ष लेनेमें इससे भी आहुति बढ सकती हैं। एक कुण्ड दो हस्तका किया हो तो १०,००० दस हजार अन्तिम व्याहृति होम करनेमें हर्जा नही। ग्रहाहुतिमें २८-८-४ के पक्षमें दस हजार आहुतिकी अपेक्षा नहीं।

तत्त्वन्यासाङ्ग होम	१०८
शान्तिकपौष्टिक होम	१०८०
मूर्त्ति-मूर्त्तिपति लोकपाल २४x१०८	२५९२
प्रत्येक स्थाप्य देवता-कलश-ध्वज	१०८०
पिण्डिका शिवमें	
व्याहृति होम	१००८
षोडशसंस्काराङ्ग होम व्याहृति	१२८
शिवप्रतिष्ठाङ्ग होम	७
अघोर होम	१०८
सर्वतोभद्र	५६
योगिनी	७२
भैरव	६४
व्याहृति होम	१००८
प्रासाददिक् होम	१७६
आधाराज्यभाग चराहुति	१०
स्विष्टकृत् नवाहुति	
	७५०२
ग्रहहोमाहुति २८ के पक्षमें	१८५६
	९६५८
प्रतिष्ठादिन मूर्त्यादि स्थाप्य शिव	९५२
२८ पक्ष २८	
	१०३१०

प्रतिष्ठाके दिन

मूर्त्ति-मूर्त्यादि होम	स्थाप्य देवता शिव
२४x२८=६७२	१०x२८०

८१ प्रसाद स्नपन

प्रतिमाओंका स्नपन होनेके बाद शिखरकी पूजा प्रतिष्ठा करके शिल्पी द्वारा प्रासाद पर स्थिर कर देना चाहिए। पद्धतिओंमें 'सशिखरं प्रासादं स्नपयेत्। ऐसा लिखा हैं। प्रासाद यह प्रतिमाका शरीर हैं और शिखर शरीरका मस्तक हैं। इस लिए शिखर बैठानेके बाद ही प्रासाद स्नपन हो सकता हैं।

जहाँ शिखरका भंग हुआ हो और केवल शिखरकी ही प्रतिष्ठा करनी हो, वहाँ शिखर बादमें बैठानेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं ।

स्नपनके बाद पाँच ब्राह्मणोंको प्रासादके आगे कलशमें निक्षेपकी सब सामग्री लेकर भेज देना । प्रासादके आगेके भागमें धान (व्रीहि) राशि करके नव नव कलश आठ दिशा और मध्यमें रखकर ॐ मही द्यौः इत्यादि वरुणावाहन तक विधिसे ८१ इकासी कलशोंको सिद्धकर उन नव नवकके मध्यमें ग्रन्थनिर्दिष्ट वस्तु निक्षेप तीर्थावाहन करके मन्दिरके भीतर सिंहासन पिण्डिका परिवार देवताके स्थान ऊपर थोडेसे जलसे प्रोक्षण करके शिखर तक आदमीओंकी पंक्ति लगाकर उक्त क्रमानुसार प्रासाद स्नपनका उन उन मन्त्रोंसे आरंभ करना ।

प्रासाद स्नपनमें क्रमभेदका खंडन : प्रासाद स्नपनमें वस्तुनिक्षेपमें मध्यमपूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रम पद्धतिकारोंने लिया हैं । बादमें प्रत्येक नवकके मध्यकलशके स्नपनमें दिशाका व्युत्क्रम बताया हैं । और बादमें अवशिष्ट आठ आठ कलशके स्नपनमें मध्यम पूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रमका स्वीकार किया हैं । यहाँ क्रमभंग होता हैं ।

पारस्कर (कात्यायन) गृह्यसूत्र-का-१ कण्डिका-३ में अर्घ्यको एकविष्टर देनेके बाद 'पादयोरन्यं विष्टर आसीनाय' ऐसा कहकर तुर्त ही द्वितीय विष्टर देनेका कहा हैं । किन्तु भाष्यकारोंने जब तक पादप्रक्षालन न हो तब तक पादके नीचे रखनेका द्वितीय विष्टरदान असंगत बताकर 'विरोधेऽर्थस्तत्पर त्वात्' इस मीमांसा सूत्रसे पाठक्रमार्थक्रमयोर्विरोधे अर्थक्रमो बलीयान् । पाठक्रमस्य क्रियापरत्वात् । इस तरह सूत्रकारके मतका खण्डन किया हैं । यहाँ भी द्रव्यनिक्षेप प्रादक्षिण्य क्रमसे, मध्यकलश स्नपन व्युत्क्रमसे, और शेषकलश मध्यम पूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रमसे पद्धतिकारोंने बताया हैं । वस्तुतः मध्यकलश स्नपन व्युत्क्रमसे होता हो तो शेषकलश स्नपन भी उसी क्रमसे होना चाहिए । किन्तु ऐसा नहीं हैं । इसलिए 'विरोधेऽर्थस्तत्परत्वात्, तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते, और संदंशन्यायसे मध्यकलशस्नपन ही मध्यपूर्वादि क्रमसे करें तो कोई शास्त्रबाध और अर्थक्रम विरोध होगा नहीं । एवं शास्त्र सम्मत भी होगा । इसलिए हमने विरोध परिहारको सामने रखकर द्रव्य निक्षेप, मध्यकलश स्नपन, शेष कलशस्नपनमें मध्यम पूर्वादि प्रादक्षिण क्रमका ही प्रयोगमें स्वीकार किया हैं । जिससे पण्डितोंका दण्डादण्डि दूर हो जाय और शास्त्रानुग्रह होगा ।

प्रासाद स्नपनमें हर एक नवकके मध्यकलशसे कहे हुवे मन्त्रोंसे स्नपनके बाद मध्यपूर्वादि ईशानान्त नव कोष्ठोमेंसे अवशिष्ट आठ कलशको पूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रमसे लेकर ॐ इदमापः० प्रभृति आठ मन्त्रोंसे स्नपन करना । इदमापः० यह क्रमबद्ध सूक्त न होनेसे नित्य स्नान विधिमें जो अपूदैवत्य मन्त्र कहें हैं । उन आठ मन्त्रोंसे आवृत्ति करते करते स्नपन पूर्ण करना । पारस्कर गृह्यसूत्रपरिशिष्टमें नित्य स्नानविधि सूत्रमें 'इदमापो, हविष्मतीर्देवीराधः (अ-६-१७ कार्षिरसि-६-२८) इति द्वाभ्यामपो

देवा द्रुपदादिव शन्नोदेवीरपा ९ रसम्' यह वाक्य अवशिष्ट आठ कलशके स्नपनमें प्रमाणभूत हैं । प्रासादकी मरम्मत की हो या समयके अभावमें, एवं एक दिनकी प्रतिष्ठामें ॐ दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम्-इस मन्त्रसे एक ही बडे कलशसे सशिखर प्रासादका स्नपन करना ।

बादमें प्रासादका शुद्ध जलसे स्नपन करके शिखरके पूजनके बाद प्रासादमें प्रधानदेवता सूक्त या मन्त्रसे प्रधान देवताका पुरुष रूपसे ध्यान करके पृथिव्यादि सोममण्डलान्त प्रतिष्ठासारदीपिकामें कहे हुवे ६४ तत्त्वोंका आवाहन करके गन्धपुष्पादिसे प्रासादका पूजन करना ।

प्रासादतत्त्व होम कृताकृत हैं । करना हो तो १ समिद् २ यव ३ तिल ४ आज्य इन चार द्रव्योंसे अथवा तिल या आज्यसे प्रत्येक द्रव्यकी आठ आठ या एक एक आहुति देना । अन्तमें प्रासादका भगवान्‌के शरीर रूप नीचेसे ऊपर तक ॐ पादौ पादशिलास्तस्य० नव श्लोकोंसे और पुरुषसूक्तसे ध्यान करना । इस तरह प्रासादका अधिवासन करना ।

८२ पिण्डिकाधिवासन

भगवान्‌का सिंहासनके ऊपर जहाँ स्थापन करनेका हैं, वहाँ भीतर सोना या चांदीका कूर्म नाग और पञ्चरत्नादि रख्खें । देवताकी चौकी के अनुसार एकही पत्थरकी तीन परिधिवाली पत्थरकी बनायी हुई चौकीमें नीचेकी परिधिको कूर्मशिला, दूसरी परिधिको ब्रह्मशिला और ऊपरकी तीसरी परिधिको पिण्डिका कहते हैं ।

जितने देवोंका मन्दिरमें स्थापन करना हो उन सबकी स्थापनशिलारूप पिण्डिकामें धान्य धातु-रत्न आदि रखनेके लिए मध्यमें खड्डा रखना । बादमें मध, घी लगाकर स्नपनके अवशिष्ट जलसे प्रोक्षण करके ॐ श्रीश्चते० इस मन्त्रसे प्रक्षालन करके वस्त्रसे ढककर पिण्डिका तत्त्वोंका न्यास करके गन्धपुष्पसे पूजन करके अधिवासन करना । प्रतिष्ठाके पहले दिन पिण्डिका स्थिर करनेका हो तो उसी समय पिण्डिकाकी प्रतिष्ठा कर देना, प्रतिष्ठाके दिन प्रधान देवताकी प्रतिष्ठाके पूर्वभी पिण्डिकाप्रतिष्ठा धातु-रत्नादि डालकर हो सकती हैं ।

एक दिन साध्यप्रतिष्ठामें जलसे प्रक्षालन करके तत्त्वोंका न्यास वस्तुनिक्षेप प्रतिष्ठा तुर्त ही कर देना ।

८३ धान्याधिवास, तत्त्वन्यास होम तत्त्वन्यास, निद्रावाहन, देवताशयन

धान्याधिवास, तत्त्वन्यासहोम, तत्त्वन्यास निद्रावाहन, देवताशयन, स्नपनके बाद तीन कार्य एकही साथ करने पडते हैं । एक ओर प्रासाद स्नपन प्रासाद पिण्डिकाधिवासन चलेगा । दूसरी ओर

शान्तिकपौष्टिकादि व्याहृति होमान्त होम कर्म होगा। तीसरी ओर तत्त्वन्यास निद्रावाहन देवताशयनका कर्म होगा।

मण्डपमें सर्वतोभद्र या वारुणमण्डलके आगे बडा सुदृढ पलंग या जमीन पर पाट वगैरह रखकर उसके पर गादी चद्दर, उपधान (तकीया) रखकर चावल या गेहुं उसके पर डालकर प्रतिमाओंका प्राक्‌शिरस्क सुलाना। मस्तक प्रदेशमें जलसे भरा निद्रा कलश और खाद्य सूखे मेवेसे भरा दूसरा कलश रखना। साथमें शय्यामें छत्र, वितान, घण्टा आदर्श चामर व्यजनादि सामग्री रखना।

स्नपनके बाद मूर्तिओंको मण्डपकी प्रदक्षिणा क्रमसे शाकुन्त या भद्रसूक्त पढते हुवे घुमा कर पश्चिम द्वारमें अर्घ्यपूजन करके धान्यकी शय्यापर सुलाना। ऊपर धान्य डालके चद्दर रजाईसे प्रतिमाओंको ढककर चारों ओर भस्म दर्भ तिल प्रदक्षिण क्रमसे डालकर तत्त्वन्यास विधिका प्रारंभ करना। तत्त्वन्यासके पहले प्रधान होमके पूर्वही प्रत्येक तत्त्वके नामसे या ॐ पराय शिवात्मने स्वाहा, पराय शक्त्यात्मने स्वाहा, पराय विष्णुवात्मने स्वाहा, पराय रामात्मने स्वाहा, इत्यादमेंसे जो प्रधान देवता हो उनके नामसे १०८ तिलाहुति देनेसे न्यासका अधिकार प्राप्त होता हैं।

तत्त्वन्यास : सपत्नीक यजमान या प्रतिनिधिरूप ब्राह्मणको बलि पूजासामग्रीके साथ प्रतिमाओंके पास उदङ्‌मुख या प्राङ्‌मुख बैठाकर तत्त्वन्यास विधिका प्रारंभ करना। आरम्भमें शिवप्रतिष्ठामें भवादि आठ मूर्तिओंका और विष्णुप्रतिष्ठामें विष्ण्वादि आठ देवताका पूर्वादि क्रमसे आवाहन करके पूजन करना। बादमें देवके मस्तक प्रदेशमें जलपूरित निद्राकलश और खाद्यादिपूरित द्वितीय कलश रखके यथा सम्भव छत्र चामरादि मन्त्रसे रखकर दिक्‌पाल और पूर्वादिदिग्वासि देवताओंको दो बलि देकर तत्त्वन्यास करना।

कितने ब्राह्मण पलंग रखतें हैं। लेकिन धान्याधिवासमें धान्य और बडी मूर्तियाँ हो तो वजनके हिसाबसे पलंगका तूटना और प्रतिमा गिरनेसे तूटनेका संभव होता है इसलिए सोच विचार करके प्रतिमाओंका शयन कराना योग्य हैं। मजबूत लकडेकी बैठक पर ही शय्याधिवास कराना उचित हैं।

तत्त्वन्यासमें प्रतिमाओंके उन उन अंगोका स्पर्श करके न्यास होता हैं। लेकिन अनेक मूर्तियाँहो ऊपरसे आच्छादित हो और ब्राह्मणकी कमी हो तो प्रत्येक मूर्तिका अंगस्पर्शपूर्वक न्यास करना असंभव हैं। इसलिए अक्षतसे न्यास करना।

चराचर विश्वके जितने तत्त्व होतें हैं। इन सबका न्यास प्रतिमामें होता हैं। इस वजहसे अनेक प्रतिमायें हो फिर भी इनके परमात्माका व्यापक रूपका निवेश तत्त्वन्याससे किया जाता हैं। यह बातको सामने रखकर सर्वसाधारणन्यास और इन इन देवताओंके विशिष्ट मन्त्र या सूक्त से न्यास होता हैं।

प्रतिष्ठेन्दुमें हेमाद्रिवचनानुसार १ प्रणवन्यास २ व्याहृतिन्यास ३ मातृका (अकारादि) वर्णन्यास ४ ग्रहनक्षत्रादिन्यास ५ कालन्यास ६ वर्णन्यास जलन्यास ८ वेदषडङ्गदिन्यास ९ वैराजन्यास १० देवतान्यास ११ क्रतुन्यास १२ गुणन्यास १३ आयुधन्यास १४ शक्तिन्यास १५ वेदमन्त्रन्यास १६ जीवन्यास - ये षोडशन्यास प्रत्येक मूर्तिके लिए सर्वसाधारण बतायें हैं । फिर भी १३ आयुधन्यास १४ शक्तिन्यास १५ मन्त्रन्यास इन तीन न्यासोंमें शिव, विष्णु, देवी, गणेश, लक्ष्मी, सूर्यादि प्रतिमामें उन उन देवताओंके आयुध शक्ति और मन्त्राक्षरोंके न्यास करना उचित है। अन्य पद्धतिकारोंने देवी सूर्य गणेशादिके अलग न्यास कहें हैं । पुरुषसूक्तसे सर्वसाधारण पुरुषरूप परमात्मा समझकर सब देवोंमें हो सकता हैं। इसी तरह देवीमें श्रीसूक्त, देवीसूक्त, देव्यथर्वशीर्ष, गणेशमें गणेशाथर्वशीर्ष, शिवमें रौद्राध्याय या नमस्ते० १६ मन्त्र, शिवाथर्वशीर्ष, सूर्यमें विभ्राड् १७ मन्त्र सूर्याथर्वशीर्ष सौरसूक्त, हनुमान्‌में नमस्ते० १६ मन्त्र, इत्यादि पूर्ण सावधानीसे जप करना चाहिए । इन वैदिक मन्त्रोंकी जगह तान्त्रिक आगमोक्त या उन उन देवताओंकी गायत्रीका भी जप हो सकता है । बादमें सर्व प्रतिमाओंमें जीवन्यास करना ।

एक दिनकी प्रतिष्ठामें इतना करना सम्भव न हो तो ॐ पुरुषात्मने नमः इत्यादि २९ तत्त्वोंका न्यास कर देना ।

तत्त्वन्यास हो जाने पर निद्राकलशमें मन्त्रोंसे निद्राका आवाहन पूजन करके दिक्पाल, मातृ, क्षेत्रपालको सदीप तीन बलि देना, बादमें 'मण्डलशय्योरन्तरे न गन्तव्यम् सुखशायी भव, ऐसे दो प्रैष देकर तत्त्वन्यासका विधि पूर्ण करना । मण्डल और शय्याके बीच न जायें और भगवन् आरामसे सो जाइये ऐसी प्रार्थना करना ।

तीन दिनकी प्रतिष्ठामें यहाँ दूसरे दिनका कर्म पूरा होता है । बादमें स्थापित देवता पूजन नीराजन आशीर्वादादि करके द्वितीय दिनका कर्म समाप्त करना ।

८४ होमकालिक सूक्तजप

१ पूर्वद्वारमें दो या एक ऋग्वेदी द्वारपाल १ रात्रिसूक्त-रात्री व्यख्यदायती० २ रौद्र-इमारुद्राय० ३ पावमान-स्वादिष्ठया मदिष्ठया० ४ सुमङ्गल-कनिक्रदज्जनुषं० ५ पुरुषसूक्त-सहस्रशीर्षा० इन सूक्तोंका होम पूर्ण होने तक जप करते रहना ।

२ दक्षिण द्वारमें यजुर्वेदके सूक्त- १ इन्द्रसूक्त-आशुः शिशानो० १२ या १७ २ रौद्रसूक्त नमस्ते० ६६ ३ सोमसूक्त-आप्यायस्व ५ कूष्माण्ड-यद्देवा देवहेडनं ३ अग्निसूक्त-समास्त्वा-९, ४ सौरसूक्त-विभ्राड्-१७ कृष्णयजुर्वेद-१ आशुः शिशान :- १२, २ इमारुद्रायधन्वने-६ ३ सोमोधेनुं०

६, ४ यद्देवा देवहेडनं० ४ अनुवाक-जातवेदसे यस्त्वा हृदा० अनुवाक-सूर्यो देवी० ६ मन्त्र पढते रहना ।

३ पश्चिम द्वारमें सामवेदके सूक्त १ वैराज सोममिन्द्रमिदं तु त्वा० । २ पुरुषसूक्त-सहस्रशीर्षा० । ३ सौपर्ण-उद्धदेदूमिश्रुता मधम्० ३ साम । ४ रुद्रसंहिता-आवोराजानः ५ शैशव० उत्राते जात० ६ पञ्चनिधन० ६ गायत्र-तत्सवितु० साम । ७ ज्येष्ठसाम-मूर्धानन्दिवः० । ८ वामदेव्य-कयानश्चित्र० । ८ बृहत्साम-त्वामिद्धि हवामहे० । ९ सोम्य-सोमव्रतं० सन्ते पयांसि० । ९ रौरव० पुनानः सोमा० । १० रथन्तर-अभित्वा शूर नोनुं० । ११ गवां व्रतं० ते मन्वते० अग्निमीळे० सामगानत्रय । १२ त्रिकर्ण-विभ्राड्बृहद्द्० । १३ राक्षोघ्न० अग्ने रक्षमाणः० अग्ने मुख्याहि० गानम् १४ यशः बृहदिन्द्राय० गानम् ।

४ उत्तर द्वारमें अथर्ववेद १ शान्तिक-शन्न इन्द्राग्नी० इत्यादि । २ पौष्टिकजपेरन्० इत्यादि । यह सूक्त पाठ मात्स्योक्त कहा । प्रतिष्ठामयूखमें इससे भिन्न बताया है । १ ऋग्वेदमें १ श्रीसूक्त २ पवमान ३ सोमसूक्त ४ सुमङ्गल ५ पुरुषसूक्त ६ रुद्रसूक्त ७ वामदेव्य० । २ यजुर्वेदमें १ आनोभद्रा १० । २ आशुः शिशानो-१२ या १७ ३ यद्देवा० ३ । ३ पुनन्तुमा० ८ । ४ अभिधा असि० ७ । ५ दीर्घायुस्त्व १ । ६ आप्यायस्व ५ । ७ नमोस्तु-सर्पेभ्यो ३ । ८ आकृष्णेन १ । ९ नमः शम्भवाय० । १० अग्निंदूतं १ । ११ त्रातारमिन्द्र० १ । १२ सोम ह राजान० १ । १३ अन्नपते० १ । १४ महाँ इन्द्रो० १ । १५ ऋचंवाचं० २४ । ३ सामवेद १ इन्द्राय साम० २ अहमस्मि प्रतमजा० । ३ स्वादिष्ठया० । ४ गायन्ति त्वा० ५ कस्मानून्० ६ कतमस्यामृतानाम्० । ४ अथर्ववेद १ अथर्वाङ्गिरस० २ अथर्वशिरस० ३ शान्तिसूक्त, चारों वेदके ब्राह्मण होने पर यथासम्भव इन सूक्तोंका जप करना । चार वेदके ब्राह्मण न हो तो स्वशाखाके सूक्तोंका जप द्वारपाल करें ।

८५ अधिवासन

प्रतिमाओंको जल शय्या और धानमें सात, पाँच, तीन एकरात्रि, प्रहरमात्र या गौका दुध निकालें इतने समय तक वास कराना, सुला रखना । इसको अधिवासन कहते हैं । हयशीर्ष पञ्चरात्र आगमादिकमें अधिवासके प्रकार बतायें हैं । १ जलाधिवास २ गन्धाधिवास ३ पुष्पाधिवास ४ धान्याधिवास ५ फलाधिवास ६ ओषध्यधिवास ७ शय्याधिवास इस तरह सात प्रकारके अधिवास होतें हैं । इनमेंसे जलाधिवास धान्याधिवास शय्याधिवास ये तीन अधिवास सब पद्धतिकारोंने कहें हैं । गन्ध पुष्प फल ओषधि यह चार अधिवासकी सङ्गति करनी होगी ।

जलाधिवास प्रथम ही हो जाता है । स्नपनके बाद शय्याधिवास, धान्याधिवास एक ही साथ होतें हैं । अधिवासमें तत्त्वन्यासके बाद निद्रादेवीका आवाहन होता है । बादमें 'मण्डलशय्ययोरन्तरे

न गन्तव्यम्, सुखशायी भव' यह दो प्रैष दिए जाते हैं। यह अधिवास सात, पाँच, तीन, एकरात्रि, प्रहरमात्र गोदोहन समय मात्रका होता हैं। एक दिनकी प्रतिष्ठामें तुर्त भगवान्को जगाने पडते हैं। जागनेके बाद दूसरे दिन सुबह अर्घ्य स्तुति पूजनादिकके बाद प्रासादकी प्रदक्षिणा करके प्रासादके प्रधान द्वार पर प्रतिमाको ले जानेका हैं।

ऊपर कहे हुवे गन्ध, पुष्प, फल, औषधिका अधिवास अलग अलग करें तो भगवान्की निद्राका भंग होगा और उन उन वस्तुओंमें रखनेके बाद रोज निद्राका आवाहन करना पडेगा। इससे औचित्यभंग होता हैं। समन्वय पद्धतिसे विचार किया जाय तो शय्याधिवास धान्याधिवासके साथ ही फल पुष्प गन्ध औषधि शय्यामें तत्तन्मन्त्रसे साथमें ही रख्खी जाय और अन्तमें निद्राका आवाहन करें और अपेक्षित कर्मानुसार एक तीन या पाँच रात्रि अधिवास करनेसे शास्त्रसङ्गति होगी।

अधिवासनमें कर्तव्य : जितने दिन अधिवास रखना हो, उतने दिन रोज प्रातः स्थापितदेवता पूजन, ब्राह्मण पूजनके बाद, शान्तिकपौष्टिकहोम, मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालहोम, स्थाप्यदेवता होम, व्याहृति होम, तत्त्वन्यास प्रतिमालंभन और होमनिवेदन इतना कर्म करना पडेगा। सायंकालमें पूजन नीराजनादिक विधि करना। यह बात प्रतिष्ठावासुदेवीमें स्पष्ट कही हैं। 'अनेकदिननिर्वर्त्येऽप्यधि-वासनकर्मणि। होमानष्टौ सहस्राणि विदधीरन् पृथक् पृथक्' इस वचनानुसार यथासंभव प्रत्येक होम १००८ या १०८ संख्यासे करना। बारह हजार, छ हजार, तीन हजार या १०८ ऋत्विक् संपत्ति और होम द्रव्यकी संपत्ति हो तो हो सकता हैं। 'अष्टौ सहस्राणि' इसका तात्पर्य ८ और हजार मिलकर १००८ की संख्या सब ग्रन्थकारोंने स्वीकृत की हैं। इतना न हो सके तो १०८ या २८ संख्यासे भी होम द्रव्य और ब्राह्मणकी कमीमें हो सकता हैं।

८६ प्रतिष्ठादिनका विधि, प्रासाददिक्होम

प्रतिष्ठाके मुहूर्तके दिन प्रातःकालमें प्रतिष्ठाके मुहूर्तकी लग्न शुद्धिके इष्टसमयके २ या तीन घण्टे पहले स्थापित देवताओंका पूजन संक्षेपसे और पूरा समय हो तो विस्तारसे कर लेना। नया प्रासाद हो तो प्रासादके बाहर आठों दिशामें वितस्ति या अरत्निमात्र ईंटोंसे स्थण्डिल करके पञ्चभूसंस्कार पूर्वक अग्निस्थापन, कुशकण्डिका, आघाराज्यभागकी ४ आहुति, प्रधान देवताका वैदिक मन्त्र, मूलमन्त्र या गायत्रीसे आज्यसे २८ या ८ आहुति देकर, संस्रव ईशानमें संस्राव कलशमें डालकर फिर नवाहुति स्विष्टकृत् आज्यसे देकर कर्मसमाप्ति करके आठों दिशाओंके ईशान कलशजल एक पात्रमें भर कर प्रतिमाके समीप रख देना। अगले दिन पिण्डिकाधिवासन न किया हो तो ब्राह्मणोंके साथ पिण्डिकाधिवासन कर लेना। प्रासादकी आठों दिशामें स्थण्डिल करना संभव न हो तो प्रासादके अग्रभागमें एक ही स्थण्डिल करके आघाराज्यभाग ४ का संस्रव प्रोक्षणीमें, प्रधान देवताकी २२४ या ६४ आहुति आज्यकी देकर ईशानमें रख्खे हुए संस्रव कलशमें डालना। क्योंकि उसका उपयोग

देवप्रबोधनमें होता है। नवाहुति स्विष्टकृत्‌का संस्रव प्रोक्षणीमें देकर कर्म समाप्त करना।

प्रासाद पुराना हो तो स्थण्डिल पर होमकी आवश्यकता नहीं। कलशमें जल भरकर देवतामन्त्रसे ८, २८ या १०८ बार अभिमन्त्रण करके जल देवताके समीप रक्खें।

बादमें आज्य या तिलसे स्थाप्यदेवता मन्त्रोंसे और मूर्त्तिमूर्त्यधिपति लोकपाल २४ देवताओंकी २८ या ८ आहुति देकर ॐ मूर्धानं० इससे पूर्णाहूति कर लें। प्रतिष्ठामें गर्भाधानादि १५ या १६ संस्कार सिद्धयर्थ घृताक्ततिलकी समस्त व्याहृतिसे १२० या १२८ आहुति दे देना।

८७ देवप्रबोधन, प्रासादप्रवेश

संपातकलशको लेकर उसमें सब तीर्थोंका ध्यान करके प्रतिमाके मस्तक पर उस जलका सेचन 'ॐ नृसिंहाय हुं फट्' इस मंत्रसे करके, राक्षोघ्न मन्त्रोंसे सर्षपविकिरण करके दिग्बन्धन कर देना। बादमें शंख घंटा वाद्यादि नादसे ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते० प्रबुध्यस्व महाभाग० मन्त्रोंसे आच्छादन हटाकर देवको जगाना, पात्रमें गन्धपुष्प जल भक्ष्यभोज्यादि सामग्री लेकर देवको अर्घ्य देना। पुरुषसूक्त या देवतासूक्तसे भगवान्‌की प्रार्थना करके साफ करके (नए वस्त्र पहनाकर) गन्धपुष्पादिसे पूजन करके गन्ध, पुष्प, दुध, तिल यव सर्षप कुशाग्र जल पात्रमें रखकर ॐ धामन्ते० इस मन्त्रसे उत्तरार्घ्य देना। बादमें सावधानीसे प्रतिमाओंको उठाकर ॐ रथे तिष्ठन्० इस मन्त्रसे रथादिमें रखकर प्रासादकी प्रदक्षिणा करके प्रासादके मुख्य द्वार समीप द्वार सन्मुख प्रतिमाओंको रखकर अन्तःपट बीचमें रखकर मङ्गलाष्टक पढना। प्रासादकी प्रदक्षिणाके समय शाकुन्तसूक्त, भद्रसूक्त या द्यौः शान्ति० मन्त्र पढना। मङ्गलाष्टक हो जाने पर देवको अर्घ्य और मधुपर्क करना। बादमें मूर्त्तिओंको उनके स्थानके पास रख देना। पहले न किया हो तो सुवर्णादि धातु, नवरत्न, धान्य गेरु इत्यादि धातु, गन्ध सुवर्ण रजतमुद्रादि निक्षेप पिण्डिकाके गर्तमें कर देना।

८८ शिवलिङ्गका आकाश मार्गसे प्रवेशका खण्डन

शिल्पशास्त्रमें सर्व व्यापक परब्रह्मका निरवयवरूप शिवलिङ्गको मानकर शिखरसे या शिखरके भागमें छिद्र रखकर वहाँसे गर्भगृहमें शिवलिङ्गका प्रवेश बताया है। शिखरसे प्रवेशके पक्षमें शिखरकी फिरसे प्रतिष्ठा करनी पडेगी, और प्रासादस्नपनमें 'सशिखरं प्रासादं स्नपयेत्' यह बात जो कही है उसका बाध होगा। खूब बडा भारी शिवलिङ्ग हो तो उसको उतारनेमें भी आपत्तिका सम्भव है। लिङ्गको उपलक्षण मानकर अन्य प्रतिमाओंको भी सर्वव्यापक परब्रह्मके विभिन्न रूप मानकर आकाशमार्गसे गर्भगृहमें उतारना प्राप्त होता है। ऐसा करनेसे ऊपर जो बाध दिखाया वह लगता है। इसलिए यह मत एकदेशीय है।

सब पद्धतिकारोंने 'द्वारसम्मुखं लिङ्ग (बिम्बं) कृत्वा प्रवेशयेत्' यह विधान ही स्वीकृत किया है। इससे 'बहुसम्मतत्वादुपेक्षणीयम्' इस न्याय से आकाश मार्गसे प्रतिमाका प्रवेश यह मत उपेक्षणीय है।

८९ प्रतिमास्थापन, दृष्टिसाधन

प्रतिमाओंको उनके स्थापन करनेकी जगहके बाहर हर एक प्रतिमाको सावधानीसे सुरक्षित रक्खें। बादमें शिल्पी द्वारा हर एक प्रतिमाके स्थानमें ऊँचाई, चौडाई, दृष्टि, मध्यसूत्र वगैरहका पहलेसे ही चिह्न किए हो, इस जगह जितना अपेक्षित हो उतना सीमेन्ट रेती वगैरह माल रखके शिल्पी प्रतिमाओंको स्थिर करें। और मध्यसूत्र, पूर्वपश्चिम सूत्र और उत्तरदक्षिण मध्यसूत्र पर ठीक रक्खें। केवल, ओलंबा इत्यादिसे प्रतिमाओंकी द्वारमें ऊर्ध्व या अधोदृष्टि न आए, समदृष्टि आए। इस तरह स्थिर करना। द्वारशाखा ऊपर जहाँ दृष्टिका चिह्न किया हो उसके साथ लेवलसे दृष्टि मिला लें।

लक्ष्मीनारायणमें नारायणकी, शिवपार्वतीमें शिवकी, राधाकृष्णमें कृष्णकी, राम लक्ष्मण सीतामें रामकी दृष्टि द्वार शाखा पर मिला दें। एकही देवता हो तो उसकी दृष्टि द्वारशाखा पर मिला दें। सिंहासन पर युगल मूर्तिमें देवीकी स्थापना, देवके वाम भागमें होती है। विठ्ठलनाथको दो पत्नी होनेसे मध्यमें विठ्ठलनाथ और बायें दाहिने भागमें रुक्मिणी सत्यभामाकी स्थापना करना। एकसे ज्यादह मूर्तिओंमें आयुधादिककी टक्कर न लगें, और सुविधासे शृङ्गारादि हो सके, इसका पूर्ण विचार करके बीचमें अन्तर रखना। राधा कृष्ण, लक्ष्मण राम सीता, लक्ष्मी नारायणादि प्रतिमाओंमें राधा, सीता, लक्ष्मी पार्वती, प्रभृति देवीओंकी प्रतिमा और उसकी चौकी छोटी होनेसे चौकीको दक्षिणोत्तर मध्यसूत्रके समान सूत्रमें रखना। व्याघ्र या सिंहवाहिनी अम्बिका दुर्गाका मुख चौकीके मध्यसूत्रसे उत्तरकी ओर रहता है। वहाँ चौकीका मध्यसूत्र और सिंहासनका मध्यसूत्र समसूत्रमें रखना ऐसे ही वक्र मूर्त्तिओंमें समझ लेना।

९० प्राणप्रतिष्ठा, जीवन्यास,

न्यास प्रकरणमें पद्धतिकारोंने जीवन्यासका विधि बताया है। वह जीवन्यास तान्त्रिक स्वयं सिद्ध योगी मूलाधार चक्रसे योगप्रक्रिया द्वारा प्राणका संचालन करके प्रतिमामें जीवरूप चैतन्यका अंशका निवेश कर सकता है। अपने जैसे सांसारिक योगकी प्रक्रियासे अनभिज्ञ लोगको तो प्राणप्रतिष्ठाका शास्त्र निर्दिष्ट मार्ग ही सुकर है। चाहे योगी हो कि संसारी भगवान्‌की प्रतिमामें भगवदंशरूप भावनामें कोई फर्क नही पडता।

शिल्पी द्वारा सब प्रतिमाओंका सुव्यवस्थित रूपसे स्थापन हो जाने पर प्रत्येक प्रतिमाके पास

सुवर्णशलाका या दर्भशलाका गाड देना ।

प्रातः कालमें स्थापित देवता पूजन संक्षेपमें किया हो और प्रतिमाओंको स्थिर करनेमें शिल्पीको समय लगें । इतने समयमें स्थापित देवता पूजन यथा समय करा देना । इष्ट लग्न शुद्धिके पन्द्रह या २० मिनिट पहले यजमान और चारों वेदोंके ब्राह्मणको साथ लेकर प्राणप्रतिष्ठा विधिका प्रारंभ करें । हर एक प्रतिमाके पास विधिज्ञ एक एक ब्राह्मण रक्खें । प्राणप्रतिष्ठाका पूर्वविधि न्यासादिक हो जाने पर इष्टलग्न शुद्धिके स्थिर नवमांशमें चारों वेदोंके मन्त्रोंसे प्राणप्रतिष्ठा करके ध्रुवत्वके मन्त्र पढकर उन उन देवताओंके सूक्त, आगमोक्त, तान्त्रिक, गायत्री या नाममंत्र देवके दक्षिण कर्णमें पढकर चरणसे मस्तक तक स्पर्श करके गर्भाधानादि संस्कारके लिए ऋग्वेदी १५ और यजुर्वेदी १६ प्रणवका जप कर भगवान्की ॐ नमस्ते अस्त्वसंगाय० इत्यादि श्लोकोंसे प्रार्थना करें ।

प्रतिमाके नीचे यन्त्र रखना हो तो देवस्नपनके साथ उसकी शुद्धि करके तत्त्वन्यासके समय यन्त्रमें आवरण देवताका आवाहन करके पहले यन्त्र रखके उसके पर भगवान्की स्थापना करें । यन्त्रमें मध्य त्रिकोण पट्कोणका अग्र अपनी ओर आयें ऐसे रखना ।

९१ महापूजा

प्रासादमें प्रतिष्ठापित देवताओंकी प्रत्येक पासमें यजमान या ब्राह्मणको सब पूजा साहित्य लेकर बैठाकर विधिपूर्वक महापूजा करना । अभिषेकके समय तत्तद् देवतासूक्त मन्त्र पुरुषसूक्त देवीमें श्रीसूक्तका पाठ करना । स्नपन समयमें अवशिष्ट जल शांतिकलश, संपातकलशोंके जलसे अभिषेक करना । और पुनः प्रतिष्ठा हो तो चालनके समय जो देवतातत्त्व पात्रमें संगृहीत किए हैं, उन तत्त्वोंके कलशोंमेंसे जल लेकर उन उन चलित प्रतिमा पर ॐ अकारं पुनर्न्यसामि० इत्यादि वाक्य बोलकर या 'सर्वतत्त्वात्मकं अमुकदेवं प्रतिमायां पुनर्न्यसामि' इतना बोलकर कलशका सब जल प्रतिमा पर चढा देना । खड्ग या छुरीमें प्रासाद या पिण्डिकाके जो तत्त्व रक्खें हैं, उनका हाथमें अक्षत लेकर छुरी या खड्गको स्पर्श करके 'सर्वतत्त्वात्मकं प्रासादं, सर्वतत्त्वसहितां पिण्डिकां पुनर्न्यसामि' ऐसा बोलकर अक्षत पिण्डिका पर डाल दें । बादमें नैवेद्य नीराजन राजोपचारादि सर्व पूजा समाप्त करके प्रार्थना नमस्कारादि करके मण्डपमें आए ।

९२ अघोर होम, प्रतिष्ठा होम

'शतेन स्थापयेद् देवं सहस्रेण विचालयेत्' इस वचनसे प्राणप्रतिष्ठाके बाद ॐ अघोरभ्यो० इस मन्त्रसे तिलकी १०८ आहुति दें । बादमें आज्यसे प्रतिष्ठा होमकी ७ आहुति शिवप्रतिष्ठामें देनेका प्रतिष्ठा मयूखमें कहा हैं । अन्य ग्रन्थोंमें ९ नव आहुति देनेका कहा हैं । अति देश लेकर अन्य देवकी

प्रतिष्ठामें भी यह आहुति देना योग्य नहीं । क्योंकि 'शिवाय' इससे शिवप्रतिष्ठामें ही यह विशिष्ट होम प्राप्त होता हैं ।

स्थापित देवता होम : मातृका स्थापन नान्दीश्राद्धाङ्गभूत होनेसे मातृकाका होम होता नहीं । जहाँ नान्दीश्राद्ध होता हैं, वहाँही मातृकास्थापन होता हैं । यह बात हम पहले कह गये हैं । श्रौत स्मार्ताग्निहोत्रसे भिन्न तन्त्र आगम पुराण स्मृत्यादि निर्दिष्ट सर्व कर्मोंमें ग्रहयज्ञ प्रकृतिरूप हैं । इसलिए सब शान्तिक पौष्टिक कर्मोंमें ग्रहहोम पहले होता हैं । ग्रहयज्ञमें भी शेषादि मनुष्यान्त देवता एकदेशीय और कृताकृत होनेसे उनको केवल एक एक आज्यकी आहुति ही जाती हैं । शेषादि मनुष्यान्त देवताओंकी आहुति स्थापित देवताके होमके बाद ही जाती हैं । प्रधान देवताके आवाहन क्रममें प्रथम मण्डल देवता पीठ देवता यन्त्र देवताके स्थापनके बाद प्रधानदेवता स्थापन पूजन होता हैं । लेकिन लौकिक न्यायसे प्रधान राजाके आनेके पहले सब सेना परिवार आ जाता हैं । किन्तु भोजन पहले राजा कर लेता हैं, बादमें सेनादिपरिवार भोजन पाता हैं । इस तरह प्रधानका होम हो जानेके बाद मण्डल पीठ यन्त्र देवताका होम होता हैं । और प्रधानकी अपेक्षा होम संख्या कम होती हैं ।

'होमे स्वाहान्तिमाः प्रोक्ताः पूजायाश्च नमोऽन्तकाः' इस वचनसे नाम मन्त्रमें विषयभेद होता हैं । प्रणवादिचतुर्थ्यन्त देवताके नाम बाद पूजामें अन्तमें नमः पद लगाना और होममें नमः पदकी जगह स्वाहा लगाना, ऐसा निष्कर्ष निकलता हैं । संस्कार रत्नमालामें अनन्त देवने मंडल पीठयन्त्र योगिनी भैरव क्षेत्रपालादिके होममें ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा' ऐसा क्रम दिखाया हैं । लेकिन आघाराज्य भागादि होममें भी प्रणवादि चतुर्थ्यन्त देवताके नामके बाद स्वाहाकार लगाया हैं । अर्धजरतीय न्यायसे एकही विषयमें दो भिन्न पक्षका स्वीकार करना उचित नहीं । इस बातका खण्डन प्रतिष्ठेन्दु ग्रन्थमें मन्त्रप्रकाशका वचन देकर किया हैं । और ॐ ब्रह्मणे स्वाहा' यह ही क्रमका स्वीकार किया हैं ।

स्थापित देवताओंका होम आवाहन क्रमसे एक एक घृताहुति या घृताक्त तिलकी दस दस आहुति देकर होता हैं । योगिनी भैरव क्षेत्रपालका स्थापन जैसे काम्य हैं । वैसे होम ही काम्य हैं । स्थापन किया हो तो होम अवश्य करना । इस तरह नवग्रहोंका फलहोम, लक्ष्मी प्राप्त्यर्थ 'सदसस्पति० चार मन्त्रोंसे कमलबीज, कच्चे फल, दूर्वा, दहीं, हलदी मिलाकर चार आहुति या श्रीसूक्तके प्रत्येक मन्त्रसे-१ आज्याहुति ऐसे १५ आहुति, शत्रुनाशार्थ ॐ सजोषा इन्द्र० या सर्वाबाधा० वैरिविनाशनं नमः इससे सर्षप होम, शान्तिपुष्टिके लिए गुग्गुलसे ॐ त्र्यम्बकं मृतात् स्वाहा' या 'मृत्युञ्जय० कर्मबन्धनैः नमः' यह आहुति देना । सर्षप होम आभिचारिक और गुग्गुल होम रुद्रका होनेसे दोनोंमें उदकोपस्पर्श करना आवश्यक हैं । इस तरह ग्रहफल होम, लक्ष्मीहोम, सर्षपहोम, गुग्गुल होम आगन्तुक हैं, काम्य हैं । अन्वाधानमें इनका ग्रहण न होनेसे कृताकृत हैं ।

९३ व्याहृति होमका प्रायश्चित्तार्थकत्वका खण्डन और प्रधान होमत्वसाधन

ईश्वरनें 'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय' इस इच्छाके अनुसार प्रकृतिकी सहायसे पहले जलमेंसे पृथ्वी बाहर निकालकर शब्दब्रह्मकी उत्पत्ति की। प्रथम ॐ प्रणव, बादमें भूः भुवः स्वः, अपनी इच्छा क्रिया ज्ञानशक्तिसे पृथ्वी अन्तरिक्ष स्वर्ग उत्पन्न किया। ॐ भूः भुवः स्वः इसको व्याहृति कहतें हैं। ईश्वरका प्रथम व्याहृति माने उच्चार हैं। सात व्याहृति होनेसे 'भूर्भुव स्वः' इन प्रथम तीन उच्चारको महाव्याहृति कहतें हैं। बादमें गायत्रीमन्त्र और चारों वेदोंको उत्पन्न किया।

त्रिविध ग्रहयज्ञ, अयुत होम, लक्ष होम, कोटि होम इनमें प्रधानमंत्र ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा- इस मन्त्रसे दस हजार, लाख या कोटि आहुति दी जाती हैं। इससे तात्पर्य यह निकला कि व्याहृति होम प्रधान होम हैं। ग्रहहोम इसका अङ्गभूत होम हैं।

सब शान्तिक पौष्टिक कर्मोंकी ग्रहयज्ञ प्रकृति हैं और ग्रहहोम भी प्रधान व्याहृति होमका अङ्गभूत हैं। प्रायः सभी पद्धतिकारोंने व्याहृति होमको न्यूनातिरिक्तादि होमकालिक समस्त दोषोंके लिए बताया हैं। अगर व्याहृति होम प्रायश्चित्तार्थ हो तो, नवाहुतिमें 'महाव्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तं प्राजापत्यं स्विष्टकृच्च' पारस्कर गृह्यसूत्र काण्ड-१ क-५में महाव्याहृति, सर्वप्रायश्चित प्रजापति- ये नवाहुति जो होमकालिक दोष परिहारार्थक है, उन आहुति देनेकी कोई आवश्यकता रहेगी नहीं। अग्न्युपघातादि प्रायश्चित्तमें भी महाव्याहृति सर्व प्रायश्चित्तके मन्त्रोंसे ही आहुति देनेका ऋग्वेदीय ब्रह्मकर्मसमुच्चयमें विनियोग वाक्यमें स्पष्ट उल्लेख किया हैं।

इससे यह बात सिद्ध होती हैं कि ग्रहयज्ञका प्रधान होम व्याहृति होम हैं। सामान्य कर्मोंमे हम दस हजार आहुति न दे सकें तो अन्ततः १००८, १०८ या २८की संख्यासे 'महदल्पव्यवस्थया' इस वचनसे प्रधानहोमके रूपमें व्याहृतिहोम करतें हैं। व्याहृतिहोमको प्रायश्चित्तार्थ मानना और कहना यह केवल अन्ध परम्परा मात्र हैं। यह व्याहृतिहोम घृताक्त तिल, यह व्रीहि (धान्य) समिध्- इन द्रव्योंमेंसे किसी भी एक द्रव्यसे हो सकता हैं।

व्याहृतिहोम 'ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा' समस्त व्याहृतिसे होता हैं। समस्त व्याहृतिका देव प्रजापति हैं। पुराणोक्त कर्मोंमें 'अग्निवायुसूर्येभ्यो नमः' ऐसा बोलकर व्याहृतिहोम करना शास्त्रविरुद्ध हैं। 'प्रजापतये नमः' ऐसा बोलकर शास्त्रसंमत हैं। पूर्वोत्तराङ्गसर्वप्रायश्चित्तमें व्यस्त माने अलग अलग १ ॐ भूः स्वाहा-इदमग्नये० २ ॐ भुवः स्वाहा-इदं वायवे० ३ ॐ स्वः स्वाहा-इदं सूर्याय० समस्त ४ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा-इदं प्रजापतये। इन चार आहुति सात बार देनेसे २८ आहुति, २७ बार देनेसे १०८, २५२ बार देनेसे १००८ आहुति होती हैं। संस्कारोमें कालातिक्रममें अनादिष्ट प्रायश्चित १ भूः २ भुवः ३ स्वः ४ भूर्भुवः स्वः ५ त्वन्नो अग्ने० ६ सत्वन्नो अग्ने० ७ अयाश्चाग्ने० ८ ये ते शतं० ९ उदुत्तमं० यह केवल नवाहुति दी जाती हैं। आघाराज्यभाग स्विष्टकृत् की आहुति दी जाती नहीं हैं।

९४ उत्तरतन्त्र

ऋत्विग्वरणके बाद दिग्रक्षणसे लेकर व्याहृतिहोम पर्यन्त कर्म प्रधानकर्म कहा जाता है। संस्कारादिक सभी नित्यकर्मोंको छोडकर शान्तिक पौष्टिकादि सर्व होमयुक्त कर्मोंमें उत्तरतन्त्रके नाते यह क्रम बताया है। 'पूजा स्विष्टं नवाहुत्यो बलिः पूर्णाहुतिस्तथा। संस्रवादिविमोकान्तं होमशेषसमापनम् ॥ श्रेयः संपाद्य दानं च अभिषेको विसर्जनम् ॥ उत्तरतन्त्रमें पहले अग्निपूजनपूर्वक स्थापितदेवतापूजन, स्विष्टकृद्धोम, नवाहुति, बलिदान, पूर्णाहुति (वसोर्धारा) संस्रवप्राशनादि प्रणीताविमोकान्त होमशेष कर्मकी समाप्ति, श्रेयोदान, आचार्यादिकको दक्षिणादानादि, यजमानका उत्तराभिषेक अग्नि स्थापितदेवताविसर्जन, (सत्कार आशीर्वादादि) और कर्मकी समाप्ति यह क्रम होता है।

अग्निस्थापितदेवतापूजन : होमप्रधान कर्ममें अग्निस्थापनके बाद प्रधानादि देवता स्थापन होता है, जपप्रधान कर्ममें यद्यपि प्रधानदेवताके स्थापन बाद अग्निस्थापन होता है। तथापि जपके दशांश होमके सिवा कर्मसाद्गुण्य होता नहीं। इसलिए होमप्रधान या जपप्रधान कर्ममें भी उत्तरतन्त्रमें अग्निपूजन प्रथम करना चाहिए। इस पूजनमें अग्निका मृडाग्नि नामसे पूजन होता है। सांगोपांग होम करनेसे संपूर्णतया कल्याणकारी अग्नि प्रसन्न होनेसे मृडाग्निके नामसे पूजन करना उचित है। अग्निपूजनके बाद ब्रह्माका भी पूजन तन्त्रमें कहा है। बादमें शान्तिकपौष्टिकादि कर्मोंमें, गणेश, मातृका, मण्डलपीठयन्त्रदेवतासमेत प्रधान, ग्रहदेवता, योगिनी, भैरव या क्षेत्रपालोंका आवाहन क्रमसे पञ्चोपचार पूजन करना।

स्विष्टकृत्, नवाहुति : जहाँ केवल आज्यका होम हो वहाँ प्रथम नवाहुति बादमें स्विष्टकृत्की आहुति देना। जैसे चौल, उपनयन, वेदारम्भ केशान्त समावर्तन विवाहहोममें पहले नवाहुति बादमें स्विष्टकृत् होता है। सीमन्तोन्नयन, अन्नप्राशन, विवाहाङ्गचरुप्राशनमें पहले स्विष्टकृत् बादमें नवाहुति देना। इस बातमें पारस्कर गृह्यसूत्रकाण्ड-१ कण्डिका-५ 'प्राङ् महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविः' आज्यके अलावा और कोई भी हविर्द्रव्य कर्ममें हो तो, पहले स्विष्टकृद् बादमें नवाहुति देना, ऐसा स्पष्ट कहा है।

९५ स्विष्टकृत् विषयमें विचार

वीरमित्रोदयमें इस विषयका विचार किया है। 'मन्त्रमयी देवता' इस सिद्धान्तको मानकर आज्य, तिल, यव, व्रीहि, पायस, सिद्धोदन, क्षीर, मधु, दधि आदि होमद्रव्य जिस देवताके उद्देशसे स्रुव या हाथमें लिया, उस द्रव्यमेंसे मन्त्र बोलते बोलते कुछ अंश अनायास पात्रमें गिर जाता है। ऐसे गिरे हुए समग्र हुत द्रव्यके ऊपर रुद्रका अधिकार हो जाता है। समिध् फलादि द्रव्य जिसमेंसे गिरनेका सम्भव नहीं, वह द्रव्य स्विष्टकृत्में लिया जाता नहीं।

'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' यह आहुति कल्याणकारी अग्निरूप शिवकी आहुति हैं । इसलिए आहुतिके बाद 'रौद्रत्वादुदकोपस्पर्शः' यह आहुति रुद्रकी होनेसे उदकोपस्पर्श करना चाहिए । ऐसा पद्धतिकारोंने लिखा हैं । दक्ष प्रजापतिनें यह रुद्रभागरूप स्विष्टकृत्की आहुति नहीं दी, यह ही बात उसके विनाशके कारणरूप हुई ।

'द्विर्द्विरवय जुहोति, हुतशेषेण स्विष्टकृत्' जितने समित् फलसे भिन्न हुतद्रव्य पात्रमें बचे हो, उनमेंसे दो दो आहुतिपर्याप्त हविर्द्रव्य स्रुचीमें डालकर, 'सोपयमनकुशं सव्यहस्तं हृदये निधाय, दक्षिणं जान्वाच्य, ब्रह्मणा प्रकोष्ठे अन्वारब्धः यजमानः स्विष्टकृद्धोमं कुर्यात्' यह ही क्रम आघाराज्यभाग, नवाहुतिमें भी लगता हैं । 'भूरादिनवसु स्विष्टकृते चाद्यचतुष्टये । अन्वारम्भः प्रकर्तव्यः सोऽन्वारम्भः कुशेन वै ॥' यह इस बातमें प्रमाण हैं । आघारादि १४ आहुतिमें ब्रह्मा यजमानकी दाहिनी कोनी और कलाईके मध्यभाग 'मणिबन्धादूर्ध्वभागः कूर्परादधोभागः प्रकोष्ठः' प्रकोष्ठको दर्भसे अवश्य स्पर्श करें । पञ्चकुण्डी नवकुण्डीमें भी कुण्डाचार्यके प्रकोष्ठका कुण्डब्रह्मा दर्भसे स्पर्श करें ।

अनेकदिनसाध्यकर्ममें स्विष्टकृत् विचार : प्रतिष्ठापद्धतिकल्पलतामें स्विष्टकृत् होमके विषयमें विचार किया हैं । प्रथम दिनमें ही स्विष्टकृत्की आहुति दे देना, यह कात्यायन आश्वलायन और प्रतिष्ठोद्योतकार दिनकर भट्टका मत हैं, प्रथम दिन और अन्त्यदिन दोनों दिन स्विष्टकृत्का होम करना यह भी कात्यायनका मत हैं । अन्तिम दिन ही स्विष्टकृद् होम करना, यह प्रतिष्ठावासुदेवीका मत हैं ।

इस विप्रतिपत्ति (संशय) के बारेमें विचार करना आवश्यक हैं । 'हुतशेषेण स्विष्टकृत्'इस वचनसे होमसे बचे हुवे द्रव्यसे स्विष्टकृत् करना ऐसा तात्पर्य निकलता हैं । प्रथमदिन ही स्विष्टकृत् कर लें तो दूसरे तीसरे चौथे पाँचवे दिनोंमें होमसे जो शेष बचे उसका क्या करना ? अन्तिम दिन ही स्विष्टकृ करें तो मध्यके २, ३, ४ दिनोंके हुतशेषका क्या करना ? प्रतिदिन अगर स्विष्टकृत्का हुतशेषत्व और नवाहुतिका प्रायश्चित्तार्थकत्व दोनेंका जो अविच्छिन्न सम्बन्ध हैं । उसका क्या होगा ?

पहले इस बातका विचार कर लेना आवश्यक हैं । 'नासंस्कृतं हविर्जुहुयात्' इस निगमसे पहले दिन प्रोक्षण प्रत्युत्पवन अपद्रव्य निरसनादि संस्कार हो गया और उसका होम भी हो गया । लेकिन दूसरे तीसरे चौथे पाँचवे दिन होमके लिए जो आज्य पायस तिलादि हविर्द्रव्य लिया । उनका संस्कार कहाँ होता हैं ? पायसादि पक्व हविर्द्रव्य तो पर्युषित हो जाय इसलिए नित्य नवीन बनाना पडता हैं । नवाहुतिमें आज्य खतम हो जाता हैं । इसलिए तो पद्धतिकारोंने पूर्णाहुतिके समय दूसरा आज्य लेकर 'आज्यमग्नावधिश्रित्य, स्रुक्स्रुवौ प्रतप्य, संमार्गकुशैः सम्मृज्य, प्रोक्ष्य, अधो निधाय आज्यमुद्वास्य, उत्पूय, अवेक्ष्य, अपद्रव्यं निरस्य पूर्णाहुतिं जुहुयात्' ऐसा शुद्ध आज्यका पुनःसंस्कार बताया ।

इन सब बातोंका पूर्ण विचार करने पर यह तात्पर्य निकलता हैं कि अनेक दिन साध्य कर्मोंमें समित् फलादिभिन्न होम करनेके बाद प्रथम दिन जो शेष हविर्द्रव्य चरु, पायस, तिल आज्यादि बचे,

उसमेंसे ही दो दो आहुति पर्याप्त हविर्द्रव्य घृतप्लुत करके एक पात्रमें अलग रख दें। दूसरे तीसरे, चौथे, पाँचवे दिन जो हविर्द्रव्य लिया जाय, उसका प्रत्येकका प्रोक्षण, आज्य स्रुक्स्रुवादि संस्कार, उद्वासन, अवेक्षण, अपद्रव्य निरसन करके होम करें। सायंकाल होम समाप्त होने पर दो दो आहुति पर्याप्त हवि घृतप्लुत करके पात्रमें डालें। वैसा प्रतिदिन करके अन्तिम दिन सब हुतशेषद्रव्य स्रुचीमें डालकर स्विष्टकृद् होम करें। बादमें प्रायश्चित्तार्थ नवाहुति होम करें। चरु, पायसादि पर्युषित न हो जाए, इसलिए घृतप्लुत करना आवश्यक है।

ऐसा करनेसे हुतशेषत्व भी आएगा और नवाहुतिका अविच्छिन्न सम्बन्ध बना रहेगा। इन सब बातोंको सोच कर याज्ञिक सम्प्रदाय अन्तिम दिनमें ही स्विष्टकृद् नवाहुति देता है। प्रथम बीचके दिनमें भी और अन्तिम दिनोंमें प्रतिदिन स्विष्टकृद् होम करें तो कोई बाधा नहीं।

'शतान्ते वा सहस्रान्ते पूर्णाहुतिमथाचरेत्' इस वचनका संख्याके साथ सम्बन्ध है। हुतशेषद्रव्यके साथ सम्बन्ध नहीं। इसलिए कर्ममध्यमें संख्या विषयक पूर्णाहुति 'ॐ मूर्धानं' मन्त्रसे आज्यसे पूर्णाहुति करने पर भी अन्तमें की जानेवाली पूर्णाहुतिका बाध होगा नहीं।

९६ बलिदान

शान्तिक पौष्टिकादि कर्मोंमें नवाहुतिके बाद बलिदानका क्रम आता है। इसमें प्रथम दिक्पालोंको बादमें स्थापित देवताओंको क्रमसे बलिदान होता है। दिक्पालोंका बलिदान आचार्यकुण्डकी दशोंदिशामें रखना यह एक मत है। हर एक कुण्डमें रखना यह दूसरा मत है। एक कुण्डमें कुण्डकी ही दिशाओंमें बलिदान देना। पञ्च या नवकुण्डमें मण्डपकी ही दिशाओंमें बलि रखना। 'प्रधानहस्वामी फलयोगात्' कर्मफलभोक्ता यजमान ही मुख्य है। इस वचनसे आयु क्षेम शान्ति पुष्टि कल्याण अभ्युदयादि फल यजमानको ही मिलेगा। इसलिए एकसे अधिक कुण्डोंमें मण्डपकी दशों दिशामें दिक्पाल बलिदान देना उचित है। उपनयन विवाहादि सामान्य कर्मांग ग्रहशान्तिमें दिक्पाल बलिदान एकतन्त्रसे या अलग अलग होता है। अन्य कर्मोंमें दिक्पाल बलिदानके बाद स्थापितदेवताओंको प्रत्येक स्थापनके पास एक बलि रखके उस स्थापनके सभी देवताओंको एक तन्त्रसे बलि दिया जाता है। अन्तमें भूतप्रेतादिजन्य पीडा निवृत्तिके लिए क्षेत्रपालको चार रास्ते पर या मण्डपकी उत्तरमें बाहर कूष्माण्डका बलि दिया जाता है। देवीयागमें कूष्माण्डको पशुरूप मानकर आधा देवीके पास और अवशिष्ट आधा भाग चत्वरमें या मण्डपके बाहर उत्तरमें क्षेत्रपालको बलिदान देते हैं।

बलिदान देवतातुष्ट्यर्थ होता है। प्राचीन कालमें यह बलिदान मांससे होता रहा। जब समाज धर्मके नाम अनेक पशुओंका बलिदान देने लगा और पशुओंकी कमी होती चली, तब भगवान् बुद्धने 'अहिंसा परमो धर्मः' इस बातको आगे रखकर श्रौत स्मार्ताग्निहोत्रमें होती हुई हिंसाका जोरोंसे

विरोध किया। हिन्दु सनातन बैदिक धर्मकी यह बिशिष्टता हैं कि किसी भी धर्ममें कोई अच्छी बात मिल जाए, तो धर्ममें उस बातका स्वीकार करके उसका पर्याय खोज लेतें हैं। 'यज्ञिया हिंसा हिंसा न भवति' इस सिद्धान्त होनेपर भी भारतवर्षमें १५०० साल तर बौद्धोंका राज्य और प्रजा पर इतना प्रभाव बढ गया। जिससे श्रौतस्मार्ताग्निहोत्रमें विहित हिंसा भी बन्ध हो गई। और पिष्टपशुका व्यवहार चला।

कोई भी धर्म सिद्धान्त समाजके सामने रखता हैं। उसका पालन स्वयं ही न करें तो टोकता नहीं। बौद्ध धर्मके अहिंसाके सिद्धान्तसे हिन्दुधर्ममें हिंसा बन्द हो गई। लेकिन बौद्धोंने यज्ञविहित हिंसाका जोरोंसे निषेध किया। किन्तु भोजनमें हिंसा चालू रख्खी। नेपाल, भूतान, तिब्बत, विहार, बंगाल, उडिया, कनौज, पंजाब, कश्मीर प्रभृति सारे भारतमें मत्स्य मांस ही बौद्ध खाते रहें। अहिंसाको धर्मका सिद्धान्त बताकर नित्यजीवनमें हिंसा करनेवाले, वचन विरुद्ध आचरण करनेवाले बौद्धोंका धर्म भारतसे गायब हो गया। यह हिन्दू धर्मका प्रभाव हैं।

तत्त्वतः विचार करें तो मानव पशुपक्ष्यादि हिंसाके बिना जी सकते ही नहीं। धान, गेहुं इत्यादि उद्भिज्ज सृष्टि हैं। उनमें सुषुप्त चैतन्य रहता हैं। दूध, दहीं, घी, प्राणिजन्य हैं। प्राणिओंके शरीरमें रक्तसे भी ऊपरका विकार दूध हैं। वैसे ही आम, अनार वगैरह फल भी सुषुप्त चैतन्य वाले ही पदार्थ हैं। लेकिन गौंको मार कर, या पेडको काटकर हम दूध फलादिका उपयोग करते नहीं। धान्यमें चैतन्य लेकर हम न खाए, तो फिर जीवको जीनेका कोई साधन ही रहीं रहेगा। इसलिए यह अपरिहार्य हिंसा हैं। और उसके प्रायश्चित्तार्थ ही तो हम नित्य नैमित्तिक धर्म करतें हैं।

इतना विचार इसलिए किया कि किसी भी प्रकारकी हिंसाके बिना जीवका जीवन अशक्य हैं। 'जीवो जीवस्य जीवनम्' यह सिद्धान्त इस बातका समर्थन करता हैं।

बैदिक धर्ममें मांसकी जगह उडीद (माष), दूधका पायस, पूरिकादि अन्न, पिष्टके दीप बनाकर माषभक्त पायसादि बलिदानका स्वीकार कर लिया। जीव या आत्माका पोषण यह धर्म दोनोंमें समान रूपमें हैं। किन्तु प्राणी पश्वादिकी प्रत्यक्ष हिंसासे अलग होकर धर्मका रक्षण किया।

देवी और क्षेत्रपालको छागबलि देनेका तन्त्रोंमें कहा हैं। उसकी जगह कूष्माण्डका बलि देनेका हैं। पुरुषार्थचिन्तामणि आदिमें छागके पर्यायरूप क्रमसे कूष्माण्ड, तुम्बी, ईख, खरबूज बताया हैं। देवी भिन्न यागोंमें पूरे कूष्माण्डका खड्गसे बलि चत्त्वरमें क्षेत्रपालको देतें हैं।

क्षेत्रपालका बलि दुर्ब्राह्मण द्वारा चत्त्वरमें रखनेका कहा हैं। जिस ब्राह्मणका तीन पीढीसे उपनयन और वेदाध्ययन न हुआ हो, उसको दुर्ब्राह्मण कहतें हैं। क्षेत्रपाल बलिके बाद हाथ पैर धोकर मण्डपमें आकर आचमन प्राणायाम करना।

९७ पूर्णाहुति, वसोर्धारा विषयक विवरण

शान्तिपौष्टिक कर्मोंमें पूर्णाहुति होती है। संस्कारादि नित्यकर्मोंमें पूर्णाहुति होती नहीं। पूर्व, प्रधान उत्तराङ्ग सब होम समाप्त होने पर जो पूर्ण-अन्तिम आहुति दी जाती है। उसको पूर्णाहुति कहते हैं। स्मार्ताग्निहोत्रमें 'कर्मापवर्गसमित्प्रक्षेपः' कर्म पूर्ण हो जानेकी द्योतक एक समिधा अग्निमें डाली जाती है। आतिदेशिकरूपसे यही बात सामान्य शान्तिकादि कर्मोंमें ली जाती है।

'हुतशेषेण स्विष्टकृत्' नवाहुतिमें संस्कृत आज्य समाप्त हो जाता है। इसलिए आज्यपात्रमेंसे शुद्ध आज्य आज्यस्थालीमें लेकर "आज्यस्थाल्यामाज्यं निरूप्य अग्नौ अधिश्रित्य स्रुक्स्रुवौ प्रतप्य संमार्गकुशैः संमार्ज्य अभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य आज्यमुद्वास्य उत्पूय अवेक्ष्य अपद्रव्यं निरस्य' इतने संस्कार करके पूर्णाहुति और वसोर्धारा करनी चाहिए। अब पूर्णाहुति वसोर्धारा खडे रह कर ही करनी चाहिए। इस बारेमें सोचें।

'तिष्ठन् समिधः सर्वत्रः यह वचन कात्यायन श्रौतसूत्रके परिभाषा प्रकरणमें कहा है। समिध्का होम खडे रह कर सब जगह करें। यह श्रुतिमत है। 'लाजहोमं समिद्धोमं मूर्ध्निहोमं तथैव च। पूर्णाहुतिं वसोर्धारां तिष्ठन्नेव हि कारयेत्' इस कारिका वचनका तात्पर्य हैं कि 'विवाहहोममें कन्या खडी रह कर स्वयं मन्त्र बोलकर लाजहोम करें. गृह्यसूत्रमें 'सहहतेन तिष्ठती' ऐसा कहा है। उपनयनमें समिदाधानमें ब्रह्मचारी 'उत्तिष्ठन् समिधमादधाति' खडे रह कर समिधाका ॐ अग्नये समिध० इस मन्त्रसे होम करें। विनायकशान्तिमें यजमानके मस्तक पर दर्भ रखकर सरसोंके तेलसे छ आहुति खडे रहकर करें। पूर्णाहुति वसोधारा भी खडे रहकर करनी चाहिए। यह कारिकाका तात्पर्य है।

अग्निपुराणमें 'दद्यादुत्थाय पूर्णां वै नोपविश्य कदाचन' खडे रहकर पूर्णाहुति करनेका कहा है। निधाय, तदुपरि अधोमुखं स्रुवं निधाय धृत्वोभयपाणिभ्यां यजमानस्तिष्ठेत्' इस वाक्यमें 'ससमिद् नारिकेलं' यह समिधा कर्मापवर्गसमिध्का अतिदेश हैं। इसलिए 'तिष्ठन् समिधः सर्वत्र' यह वाक्य खडे रहकर पूर्णाहुति करनेमें समर्थक है।

महार्णव वगैरह ग्रन्थोंमें पूर्णाहुतिके मन्त्रोंका १ मूर्धानं दिवः २ पुनस्त्वादित्या० ३ पूर्णादर्वि० ४ सप्तते अग्ने० ५ समुद्रादूर्मि० तन्त ऊर्मिम् १० यह क्रम लेकर इसके अनुसार त्याग 'इदमग्नये वैश्वानराय वसुरुद्रादित्येभ्यः शतक्रतवे सप्तवते अग्नये अद्भ्यश्च न मम' इस तरहसे बोलनेको कहा है। ऋग्वेदमें भी यह ही क्रम लिया है। किन्तु यजुर्वेद पद्धतिकारोंने मन्त्रक्रम १ समुद्रादूर्मि० तन्त ऊर्मिम् १० पुनस्त्वा० ११ मूर्धानं, १२ सप्तते १३ पूर्णादर्वि० १४ अथप्रातः (ब्रा०) १५ लेकर पूर्णाहुति करनेका कहा है। त्याग वचन 'इदमग्नये' यह ऊपर बताया ही बोलते हैं। यह त्यागवाक्य मन्त्रक्रमसे उपपन्न होता नहीं। मन्त्रक्रमानुसार १ इदमद्भ्यो वसुरुद्रादित्येभ्योऽग्नये वैश्वानराय सप्तवते

अग्नये शतक्रतवे च न मम-इस तरहका त्यागवाक्य होना चाहिए । लेकिन यजुर्वेदयाज्ञिकसम्प्रदायने इस बारेमें विचार किया नहीं । और महार्णवोक्त त्यागवाक्य ही बोलनेका जारी रख्खा । 'अद्भ्यश्च' चकारसे वाक्यभेद मानें तो भी महार्णवोक्त क्रमानुसार १ समुद्रादूर्म्मि० १०, ११ मूर्धानंदिवो० १२ पुनस्त्वा० १३ पूर्णादर्वि० १४ सप्तते अग्ने० १५ अथ प्रात० शतक्रतो स्वाहा । इस मन्त्रोंका क्रमभेद स्वीकार करनेसे महार्णवोक्त त्यागवाक्य उपपन्न होगा ।

इतने मन्त्र बोलनेका शक्य न हो तो केवल- मूर्धानं० या पूर्णादर्वि० इस दोनोंमेसे एक या दोनों मन्त्रसे पूर्णाहुति हो सकती हैं । पुराणोक्त कर्ममें- शक्रादिस्तुति० या अग्निसूक्त पुराणोक्त बोलतें हैं ।

वसोर्धारा : 'वसोर्धारा' यह अलुक्समासिक पद हैं । कितने लोग वसु शब्दका घृत ऐसा अर्थ मानकर वसोर्धारा माने घृतकी धारा ऐसा कहतें हैं । वस्तुतः 'वसुर्वै यज्ञः' यज्ञ सम्भन्धिंनी धारा ऐसा अर्थ श्रुतिवचनसे निकलता हैं । धारा साकाङ्क्ष हैं । और यज्ञके साथ सम्बन्ध होनेसे आज्यपदका उपक्षेप करके 'यज्ञसम्बन्धिनी घृतधारा' ऐसा तात्पर्य निकलता हैं ।

९८ वसोर्धाराका उद्देश और रुद्रकलशमें संस्रवका खण्डन

पूर्णाहुतिसंकल्पके समय 'एकोनपञ्चाशद्मरुद्गणानां प्रीतये वसोर्धारासमन्वितं पूर्णाहूतिहोमं करिष्ये' । ऐसा याज्ञिक लोग बोलते हैं । उसमें पूर्णाहूतिका प्राधान्य होनेसे प्राथम्य और बादमें वसोर्धाराका क्रम आता हैं । दितिमें रहे हुए कश्यप मुनिके गर्भके इन्द्रने शत्रुभय मिटानेके लिए वज्रसे सात टुकडे किए । फिर भी न मरनेसे हरएक टुकडेके सात सात टुकडे किए । फिरभी जब न मरे तब दितिकी प्रार्थनासे उन उनचास पुत्रोंको देवत्व प्राप्त हुवा । वसोर्धारा उन उनचास मरुद्गणोंके प्रीत्यर्थ दी जाती हैं । यह होम नहीं, धारा है । क्योंकि 'अहुतादो मरुतः' इस श्रुतिवाक्य वसोर्धाराहोम न होनेका स्पष्ट कहता हैं । होम हो तो त्यागकी प्राप्ति होती हैं । शुक्रज्योति० इत्यादि ४९ मरुतोंके नाम बोले जातें हैं ।

तांबेका सछिद्र घीसे भरा हुआ कुम्भ कुण्डमध्यमें ऊपर भागमें लटकाकर छिद्रसे सन्तत आज्यकी धारा अग्निमें मन्त्रपाठ सहित गिरतींहैं । अगर बाहुमात्र देड हस्त या अन्य ग्रन्थके प्रमाणसे चार हाथ लम्बी कच्चे उदुम्बरके काष्ठकी बनी हुई स्रुचीमें मध्यमें घी बह सके ऐसे छिद्रवाली आगेके भागमें स्रुचीके आकारवाली प्रणालमें घीकी सन्तत धारा गिरती रहें और साथमें वसोर्धारामन्त्रपाठ होता रहे, इसको वसोर्धारा कहतें हैं । मत्स्यपुराणमें चित्तिंजुहोमि या शुक्रज्योति० घृतम्मिमिक्षे १० वसोः पवित्रमसि शतधारं० इसके बाद यथासम्भव अग्निसूक्त-समात्वा० ९ विष्णुसूक्त-विष्णोर्नुकं० ६ रुद्रसूक्त नमस्ते-१६ या ६६ इन्दुसूक्त-आप्यायस्व० ५ वाजश्च० महावैश्वानरसाम-ज्येष्ठसाम और अन्य वेदोंके सूक्तोंका घृतकी मात्रा देखकर पाठ करें । अन्तमें-अथातो वसोर्धारां जुहोति० यत्कर्मणा०

इन ब्राह्मण मन्त्रोंका पाठ करके वसोर्धारा पूर्ण करें ।

कितने याज्ञिकलोग वसोर्धाराके अन्तमें 'इदमग्नये न मम' 'ईशान्यां रुद्रकलशे त्यागः' ऐसा बोलते हैं और करतें हैं । लेकिन श्रुतिवचन 'अहुतादो मरुतः' इस आधारसे यह धारा हैं । होम नहीं । होम न होनेसे त्याग और संस्रव भी नहीं । वस्तुतः वसोर्धारा हो जाने पर महार्णवे चिन्तामणीहोमान्ते प्रासयेदग्नौ स्रुचं तामाज्यलिप्तिकाम्- इस वचनसे उदुम्बर काष्ठकी आज्यलिप्त स्रुचिको अग्निमें ही डालनेका कहा हैं । फिर त्याग और संस्रवकी प्राप्ति ही नहीं । इससे 'इदमग्नये न मम, रुद्रकलशे त्यागः' ऐसा किसी पद्धतिकारने लिखा हो तो वह बात शास्त्रविरुद्ध हैं ।

पुराणोक्तकर्मोंमें- नमो देव्यै० विश्वेश्वरीं० नारायणी स्तुति० विष्णुसहस्रनाम जितं ते० सहस्रोर्बङ्घ्रि० इत्यादि सूक्तोंका पाठ वसोर्धारामें होता हैं ।

९९ भस्मधारणम्, होमसंकल्पः

वसोर्धारा हो जाने पर स्रुव या स्रुचीसे कुण्डके अग्निके ईशान कोणसे भस्म लेकर श्रद्धां मेधां० त्र्यायुषं० इस मन्त्रसे भस्म धारण करना । होमके प्रारंभमें वराहुतिके बाद त्याग संकल्प किया था । क्योंकि अनेक ऋत्विज्, अनेक द्रव्य होनेसे एक ही साथ सब ऋत्विज् त्यागका उच्चार और संस्रवका प्रक्षेप कर सकतें नहीं । इसी तरह भस्म धारणके बाद होमसंकल्प होता हैं कि आधारसे लेकर पूर्णाहुतिपर्यन्त जिन जिन देवताओंको जिन जिन द्रव्योंसे जितनी जितनी संख्यासे होम किया । वे सब देवता प्रसन्न हो । नित्य संस्कारादिकर्मोंमें त्यागसंकल्प और होमसंकल्पकी आवश्यकता नहीं । कारणकि होमके समय ही प्रत्येक आहुतिके बाद त्याग और संस्रव होता हैं ।

संस्रवप्राशनविषयक विचार : द्रवद्रव्यका स्रुवसे होम करनेके बाद स्रुवबिलमें कुछ अंश बचा हो उसका प्रक्षेप प्रोक्षणीमें होता हैं । उसको संस्रव कहते हैं । कात्यायनश्रौतसूत्रमें 'हुत्वा हुत्वाऽवत्तस्य शेषप्राशनम् । स्रुवादिसे गृहीत द्रव्यकी प्रत्येक आहुति देने बाद पात्र शेष हविका प्रोक्षणीमें प्रक्षेप और अन्तमें उसका प्राशन होता हैं । 'पारस्कर गृह्यसूत्रका-१ कं-२में बर्हिर्हुत्वा प्राश्नाति० आवसथ्याधानमें कुण्डकी चारों ओर परिस्तरणरूप जो दर्भ रख्खें हैं । उसका अग्निमें प्रक्षेप करनेके बाद संस्रव प्राशन करें । इन भाष्यकारोंने परिस्तरणार्थ बर्हि (दर्भ)का अग्निमें होम स्मार्ताग्निहोत्रसाध्य कर्मोंमें ही होता हैं । अन्य कर्मोंमें नहीं ऐसा कहा हैं । तथापि पद्धतिकारोंने आतिदेशिक धर्म मानकर 'परिस्तरणान्यग्नौ विसृज्य' ऐसा लिखा हैं । वह भाष्यविरुद्ध हैं ।

वास्तुशान्तिमें 'इहरति०' इन छ आज्याहुतिका संस्रव प्रणीताकी उत्तरमें रख्खें उदपात्रमें डालनेका कहा हैं । इसी तरह- अग्नये इन्द्राय० इत्यादि स्थालीपाकसे दी जानेवाली छ आहुतिओंका

संस्रव 'एतासां षडाहुतीनामुदपात्रे त्यागः' ऐसा पद्धतिमें लिखा हुवा होनेसे उदपात्रमें डालतें हैं। स्थालीपाकहोम होनेसे संस्रवकी यहाँ प्राप्ति ही नहीं। त्यागमात्र बोलना उचित हैं। पद्धतिमें लिखी हुई पङ्क्तिकी सङ्गतिके लिए स्रुवमें आज्यके साथ स्थालीपाककी आहुति देकर उदपात्रमें संस्रव याज्ञिकलोग डालतें हैं। गृह्यसूत्रके हिसाबसे ऐसा स्रुवसे आहुति देनेका तात्पर्य निकलता नहीं। इन १२ आहुतिके संस्रवका प्राशन नहीं, लेकिन भित्त्यलंकरण और प्रोक्षणमें प्रतिपत्ति (उपयोग) हैं। संस्रवका प्राशन शास्त्रविहित हैं। विवाहहोममें अभ्यातान होममें यम और पितरः (पितृ)की आहुतिका संस्रव दक्षिणके उदपात्रमें, रुद्रका संस्रव ईशानमें उदपात्रमें, सुगन्नुपन्थां० इस यमकी आहुतिका दक्षिणके उदपात्रमें, परं मृत्यो० इसका संस्रव-अग्निमें या जमीन पर डालनेका पद्धतिमें कहा हैं। यह पाँचो आहुति उग्र देवताकी होनेसे विवाह जैसे अत्यन्त मङ्गल कार्यमें प्राशन न हो यही तात्पर्य निकलता हैं। लेकिन ग्रहहोममें, विष्णुयाग देवीयाग रुद्रयागादिमें तो अनेक उग्र देवता होनेपर भी संस्रवकी प्राप्ति होती हैं। तो उन कर्मोंमें संस्रव प्राशन कैसे होगा ? यह विचारणीय विषय हैं। इसलिए याज्ञिकलोग आघ्राण (सूंघना) यह भक्षण समान हैं। ऐसा समझकर आघ्राण करातें हैं। यह बात शास्त्रसम्मत हैं कि नहीं। इसका निर्णय विद्वान लोग खुद ही कर लें।

विवाहाङ्ग चतुर्थीकर्ममें भी-अग्ने प्रायश्चित्ते० इन छ आहुतिका प्रणीताकी उत्तरमें रक्खे हुवे उदपात्रमें संस्रव 'हुत्वा हुत्वैतासामाहुतीनामुदपात्रे सस्रवान् समवनीय, तत एनां मूर्धन्यभिषिञ्चति, याते पतिघ्नी०' पारस्कर गृह्यसूत्रके इस वचनसे डालकर उस जलसे वधूके मस्तरपर अभिषेक होता हैं। यह संस्रवकी प्रतिपत्ति हुई। तात्पर्य यह हैं कि प्रोक्षणीमें डाले हुवे संस्रवका यजमान अवश्य प्राशन करके बादमें आचमन करें। प्राशनमें कोई मन्त्र नहीं। क्रिया मात्र हैं।

१०० पवित्राभ्यां मुखमार्जनम्, अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम् पश्चिमे प्रणीताविमोकः।

अन्तमें प्रणीतामें रक्खे हुवे दो पवित्रसे बिना मन्त्र यजमानके मुखपर मार्जन करना। बादमें पवित्रकी ग्रन्थि छोडकर विनामन्त्र अग्निमेंडाल दें। फिर ब्रह्माको पूर्णपात्रका दान करें। २५६ मुट्ठी या १६ कीलों ८ या चार कीलो चावलसे भरा हुवा ताम्रमय पूर्णपात्रका दक्षिणासहित संकल्प करके ब्रह्माको दें। अन्तमें प्रणीताको लेकर प्रदक्षिण क्रमसे घुमाकर पश्चिममें प्रणीताका जल भूमि पर डालकर 'आपः शिवा०' इस मन्त्रसे सपत्नीक यजमानके मस्तरपर प्रोक्षण करें। यहाँ सारे होमतंत्रकी समाप्ति हो गई। शिवाग्नितन्त्रमें होमसंकल्पके पूर्व अग्निमेंसे देवताका अपने हृदयमें विसर्जन करके अग्निजिह्वा हिरण्यादि देवताओंकी ३३ आज्याहुति करनेके बाद होम संकल्पसे प्रणीता विमोकान्त कर्म करनेका कहा हैं। पूर्णाहूति वसोर्धारामें ही आज्य खतम हो गया। फिर इन आहुतिओंके लिए वैदिक कर्मानुसार फिर आज्यसंस्कार करना प्राप्त होगा। अग्निमेंसे देवताओंके

विसर्जनके बाद भी आहुति देना उचित नहीं। अगर ये आहुति व्याहृतिहोमके पूर्व दी जाय सुसंगत होगा, अन्यथा वैदिक क्रमसे विरोध आता हैं। इसलिए न देना ही उचित हैं।

कितने याज्ञिक वसोर्धारा होनेके बाद स्थापितदेवतापूजननीराजनमन्त्रपुष्पाञ्जलिप्रार्थना-क्षमापनान्त कर्म करते हैं। बादमें होमसंकल्पादि प्रणीताविमोकान्त कर्म करना भूल जाते हैं। इसलिए प्रणीता विमोकान्त हो जानेके बाद ही नीराजनादि क्षमापनान्त कर्म करना योग्य हैं।

१०१ प्रासादोत्सर्ग

यह प्रासादोत्सर्ग माने सब धार्मिक जनताके लिए दानका संकल्प प्राणप्रतिष्ठाके बाद महापूजाके अन्तमें भी किया जा सकता हैं। या प्रणीताविमोकान्त कर्म हो जाने पर प्रासादके पास उत्तराभिमुख बैठकर साक्षतदर्भ हिरण्यादियुक्त जल लेकर- अद्य० पू० तिथौ मम सकुटुम्बस्य भक्तजनानाञ्च समस्तपूर्वजोद्धारपूर्वकं ब्रह्मलोकनिवासहेतवे, इमं शिलेष्टकापाषाणद्वारगोपुरादिसहितं अमुकदैवतं प्रासादं सूर्याचन्द्रमसौ यावत् सर्वभूतेभ्यः अहमुत्सृजामि न मम। ऐसा बोलकर भगवानके चरणोंमें या प्रासादसोपान पर जल छोड दें। इस प्रासादोत्सर्गका उद्देश, चाहे कोट्यधिपति यजमान अपने पूरे खर्चसे मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा करें तो भी वह मन्दिरका मालिक हो सकता नहीं। धर्मशास्त्रकी मर्यादामें सारे समाजको समर्पित करता हैं। केवल शिवालयमें कर्ता अपना नाम जोड सकता हैं। दूसरी देवताओंमें भी अमुक नारायण इत्यादि यजमानका नाम जोडा जाता हैं।

१०२ श्रेयोदानकी व्यावहारिकता

यजमान पहले कर्मका प्रधान संकल्प करता हैं। पूरा कर्म अपने आप करनेमें असमर्थ होनेसे 'इस कर्म करनेके लिए मैं तेरा वरण करता हूँ' ऐसा बोलकर अपने प्रतिनिधिरूपमें ब्राह्मणका वरण करता हैं। ब्राह्मण 'वृतोऽस्मि' इतना बोलकर प्रातिनिध्यका स्वीकार करता हैं। उस कर्मसम्पादनके फलरूप दक्षिणा लेता हैं। इससे ब्राह्मण कर्मजन्य फलका भोक्ता हो ही सकता नहीं। किन्तु उसको सौंपे हुए कर्ममें अगर स्वयं वैगुण्य करें तो ब्राह्मण दोषभागी होता हैं।

'प्रधानऽस्वामी, फलयोगात्, कर्मजन्य फलका भोक्ता होनेसे धनखर्च करने वाला यजमान ही मुख्य हैं।' 'शतपथ ब्राह्मण' कहता हैं कि 'दक्षिणापरिक्रीतोऽध्वर्युः यजमानार्थं कर्म करोति' 'यज्ञे यां वै काञ्चन ऋत्विज आशिषमाशासते सा यजमानस्यैव' दक्षिणासे बिका हुआ ब्राह्मण यजमानके लिए कर्म करता हैं। यज्ञमें ब्राह्मण देवताओंसे जो कुछ आशीर्वाद मांगते हैं। वह आशीर्वाद यजमानको ही मिलता हैं।

प्राचीन युगमें सब द्विज वेदवेदांग कर्म प्रक्रिया पढे हुए होनेसे सब मन्त्रोच्चार पूजन प्रैष होमत्यागादि यजमान करतें थे । ब्राह्मणको केवल प्रतिप्रैष समुचित क्रियाकलाप ही करनेका रहता था । वर्तमानयुगमें सभी कर्मकाण्ड मन्त्रोच्चार प्रैष प्रतिप्रैषादि ब्राह्मणको ही करना पडता हैं । यजमान मन्त्रजप अनुष्ठान ब्राह्मणको करनेका सौंप देता हैं । मन्त्रमें 'तन्नो अस्तु' मानस्तोके० 'मृत्योर्मुक्षीय मा' इत्यादि 'मुझे, हमको, हमारा' ऐसा बोलने पर भी मन्त्रजन्यफल ब्राह्मणको मिलता नहीं ।

इतने सब विवरणका यह ही तात्पर्य है कि कर्मजन्यफल भोक्ता स्वयं यजमान ही होनेसे श्रेयोदान करनेकी आवश्यकता नहीं । दूर रहने वाले स्वयं आकर संकल्प करनेमें असमर्थ यजमानका नाम लेकर संकल्पपूर्वक जपादि अनुष्ठान करके समाप्तिमें कर्मजन्यफलरूप श्रेयका दान यजमानको करें तो उसमें कोई प्रतारणा (वञ्चना) नहीं हैं । कर्मके कालमें अनुपस्थित यजमानको इष्टसंकल्प सिद्धिका श्रेयोदानसे संतोष होगा । यह व्यवहार मात्र हैं । हम पहले ही कह गए हैं कि पैसे लेकर कर्म न करनेवाला ब्राह्मण दोषका भागी हैं । यजमानको पूर्ण फल मिलेगा । वैसे ही ब्राह्मणके पास पूरा काम करवा कर पूर्ण दक्षिणा नहीं देनेवाले यजमानको भी कर्मका पूर्ण फल मिलता नहीं ।

१०३ दानादि संकल्प

भारत वर्षकी प्राचीन समयमें इतनी समृद्धि थी कि देवकार्यमें दक्षिणाके रूपमें हिरण्य ही दिया जाता था । परदेशीयोंके पुनः पुनः आक्रमणके बह समृद्धि नष्ट होती चली और अब वर्तमान युगमें छपा हुवा सरकारका कागज ही सोना चांदी रत्नादिरूपमें परिवर्तित हो गया । इतना अच्छा है कि उस सरकारी छपे हुवे कागजसे सोना चांदी रत्नादि मिल सकता हैं । प्राचीन कालमें बाह्यभोगकी सामग्री कम थी । देहातों में दुध दहीं घी शाकपत्रादि सबके घरमें सुलभ होनेसे उसके लेनेमें द्रव्यका उपयोग ही न था । वस्त्रादि भी स्वयं बुन कर पहनतें थें । अब विज्ञान युगमें भौतिक सुखोंकी सामग्री जुटानेमें ही द्रव्य निकल जाता हैं । और धान तेल घी दूध शाकादिके कण कण प्राप्तिके लिए हम मारें धूमतें हैं ।

प्रतिष्ठाप्रकरणमें दक्षिणाका विचार किया हैं । और उसमें न्यूनाधिक्यका क्रम बताया हैं । भविष्यपुराण-बौधायनने-आचार्यको, गोसहस्रं दक्षिणा तदर्धं तदर्धं गोशतं वा- इत्यादि क्रम बताया हैं । आचार्यकी अपेक्षा आधी ब्रह्मा उसका आधा ऋत्विजोंको, आधा जापकको, उसका आधा सदस्यको ऐसा एक क्रम हैं । कल्पतरुमें आचार्य, ब्रह्मा, सदस्योंकी समान दक्षिणा बताई हैं । कर्मसाद्गुण्यके लिए आचार्यको गजाश्वरथादिदशमहादान निष्क्रय, चरुपात्र, तिलपात्र छायापात्रादि दान या उसका निष्क्रय देनेका कहा हैं । ब्रह्माको वृषभ पूर्णपात्र आज्यस्थाल्यादिका दान कहा हैं ।

वर्तमान समयमें न कोई यजमान सहस्र गाय, गज अश्व, रथादि दे सकता हैं । अगर दें तो

उनका पालनपोषण करनेकी रखनेकी आचार्यकी ताकत नहीं । इसलिए 'विधिवशाद् प्राप्तेन संतुष्यताम्' शङ्कराचार्य भगवान्‌के वचन अनुसार कर्मश्रमके योग्य सत्कार मिल जाय । इससे आचार्य और ब्राह्मणको संतोष मानना पडेगा । प्राचीन कालमें सारा समाज अन्न वस्त्र योगक्षेमके द्वारा ब्राह्मणकी आजीविका चलाता था । उससे उसको जीवनकी कोई चिन्ता न थी । इस अवस्थामें 'यदृच्छालाभसंतुष्टः' इस वचनको सामने रखकर चारों वेद, षडंग, शास्त्र पुराणादिका अध्ययन करके समाजको धर्ममार्गमें प्रवृत्त और संस्कारी बनानेका कार्य ब्राह्मण करते रहे । धीरे धीरे क्षत्रिय वैश्यादिने वेदशास्त्राध्ययनका त्याग किया । अर्थकामको ही सामने रखकर ब्राह्मणोंकी उपेक्षा की ।

ब्राह्मण निरालम्ब हो गए । और उन्होंने भी क्रमसे वेदशास्त्र पुराणादिका अध्ययन करना छोड दिया, वेद और संस्कृत भाषासे दूर होकर आजीविकाके लिए अन्य व्यापार करने लगे । इसके ही फलस्वरूप हमको इतने सब शास्त्रोंके गूढ रहस्यको हिन्दीमें लिखनेको बाध्य होना पडा है ।

अस्तु-यजमान :- मम सकुटुम्बस्य समस्तग्रामजनभक्तजनदेशजनकल्याणाय कृतस्य सग्रहमखसप्रासाद (दिन-त्रय-दिनपञ्चक) साध्याचलप्रतिष्ठाकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थमाचार्याय गोनिष्क्रयं॰ ब्रह्मणे वृषभनिष्क्रयं॰ आचार्याय दशमहादाननिष्क्रयं॰ मण्डपनिष्क्रयं॰ आचार्यादिभ्यो यथोत्साहं दक्षिणां॰ ब्राह्मणेभ्यो भूयसीं॰ आचार्याय तिलपात्रं चरुस्थालीं घृतपात्रं सोपस्करपीठदानं॰ ब्रह्मणे आज्यपात्रं॰ कर्मसाद्गुण्यार्थं यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं॰ इत्यादि सङ्कल्प करके ब्राह्मणोंका दक्षिणादिसे सत्कार करें ।

'हविरुच्छिष्टं दक्षिणा' श्रौतस्मार्ताग्निहोत्रमें पात्रासादनमें 'स्रुवः, स्रुक्, आज्यम्, तण्डुलाः, उपकल्पनीयानि पूर्णपात्रं, वरो वा, वरोऽभिलषितं द्रव्यम्' इस तरह आज्यस्थालीमें अपेक्षित आज्य, डालकर आज्यपात्रमें जो शुद्ध आज्य, तण्डुल, यव, तिलादि हविर्द्रव्य बचा हो, वह आचार्यको दे देना । अन्य भी वस्तुका शक्ति और भक्तिके अनुसार दान ब्राह्मणोंको देना ।

१०४ उत्तराभिषेक विचार

दक्षिणादि पूर्ण हो जाने पर सपत्नीक, सहकुटुम्ब यजमानको मण्डपके वायव्य भागमें स्नानपीठ पर पत्नीको वाम भागमें दाहिने हाथ यजमानको बैठाना, मण्डपमें जितने कलशोंका स्थापन किया हो, उनमेंसे एक पात्रमें जल लेकर उत्तरकी ओर मुँह रखकर चार वेदोंके ब्राह्मण दूर्वा आमके पत्तेसे कहे हुए मन्त्रोंसे यजमान पर अभिषेक करें । अभिषेकके समय सपत्नीक यजमानको नए कोरे वस्त्र धारण करने चाहिए । अभिषेकके बाद स्नान करके दूसरे कपडे धारण करें और स्नान वस्त्र आचार्यको दे दें, अभिषेक करनेवाले ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दें । कई ब्राह्मण देवतास्थापनके कलशोंमें आज्य सकर धान्यादि भरकर रख देते हैं, ऐसा करना ब्राह्मणोंके लिए निन्द्य है । क्योंकि कलशोंके जलसे ही उत्तराभिषेक होता है ।

१०४ महास्नान, चतुर्थीकर्म, कंकण मोचन

प्रतिष्ठाका कार्य पूर्णतया सम्पन्न होने पर दूसरे दिन १, ०८, ५०१, २५१ या १०८ कलशोंसे महास्नान और चतुर्थी कर्मका विस्तृत प्रयोग कहा हैं । लेकिन ऐसा करना संभव न हो तो इसी समय भगवान्‌की प्रतिमाओंको १ मध (शहद) २ हलदी, सरसोंका आटा ३ चन्दन, जवका आटा ४ मनशिल, कांगका आटा लगाकर स्नानादि निवेदन करा । और जलाधिवासमें न किया हो तो स्नपन विधिमें ॐ यदाबध्न० इस मन्त्रसे जो ऊर्णासूत्र प्रतिमा रक्षणार्थ बांधा था । उसको ॐ मुञ्चन्तु मा शपथ्या० इस मन्त्रसे छोड देना ।

१०६ अग्नि-देवताविसर्जन-कर्मसमाप्ति

अग्निका विसर्जन करके आचारसे परिस्तरणके दर्भको अग्निमें डालना । परिस्तरणके ऊपरकी मेखला पर जो हविर्द्रव्य गिरा हो, उसको अग्निमें डाल देना । परिस्तरणके बाहरगिरे हुवे हविर्द्रव्यका जलमें प्रक्षेप करना ।

देवताओंकी स्थिति मनमें रहती हैं । अन्तरिक्षमें देवताका जो व्यापक स्वरूप हैं । उसका हम मनमें ध्यान करतें हैं । हृदयकी मूर्त्तिका प्रतिमापूगीफलादिमें निवेश करके कर्म करतें हैं । कर्म समाप्त हो जाने पर ही देवताओंको फिरसे हृदयमें बैठाकर व्यापक स्वरूपमें लीन कर देतें हैं । मण्डपमें स्थापित देवताका ॐ यान्तु देवगणा० उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते० इस मन्त्रसे विसर्जन करतें हैं । बादमें यजमानको आशीर्वाद सत्कारादि करना ।

ब्राह्मणभोजन : शतपथ ब्राह्मणमें 'का ते तृप्तिरिति ? ब्राह्मणस्यैव तृप्तिमनुतृप्येयमिति' तस्मात् सꣳस्थिते यज्ञे ब्राह्मणं तर्पयीत वै ब्रूयात् यज्ञमेवैतत् तर्पयति' अग्निको देवताओंने पूछा कि तूं कैसे तृप्त होगा ? तब अग्निने उत्तर दिया कि, मैं ब्राह्मणकी तृप्तिसे ही तृप्त होता हूं । इस लिए यज्ञ पूर्ण होने पर ब्राह्मणको तृप्त करनेसे यज्ञरूप विष्णुको ही यजमान तृप्त करता हैं । प्रतिष्ठाके विषयमें मत्स्यपुराण कहता हैं कि १०००, ५०० १०८, ५० या ३० ब्राह्मणको यथाशक्ति भोजन कराने कर्म सम्पन्न होता हैं ।

कर्मब्रह्मार्पण-कर्मसमाप्ति : अन्तमें-इदं कर्म० तत्सद्‌ब्रह्मार्पणमस्तु । विष्णवे नमः ३ बार बोलनेसे कर्म परिपूर्ण होगा । अन्तमें पवित्र त्याग कर्मांग आचमन प्राणायाम करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करना ।

१०७ चण्डप्रतिष्ठा, ध्वजप्रतिष्ठा, कलशप्रतिष्ठादि विचार

शिवकी प्रतिष्ठामें गर्भगृहमें उत्तरमें या ईशानमें प्रणालके भागसे दूर चतुर्बाहु, त्रिनेत्र, चतुर्मुख, द्वादशनेत्रादि वर्णित चण्डकी प्रतिष्ठाकरें । या प्रासादभित्तिके बाहर उत्तर या ईशानमें करें । ध्वज कलशादिकी अलग प्रतिष्ठा करनी हो तो उनका विधि पद्धतिओंमें बताया है । इस ग्रन्थमें भी हम विशिष्ट प्रतिष्ठा विधिओंका संक्षेपमें निरूपण प्रयोग प्रकरणमें करेंगे ।

प्रतिष्ठा हो जाने पर ही दिनसे 'मा भूत् पूजाविरामोऽस्मिन्' एक दिन भी पूजा रहनी न चाहिए । इसलिए प्रातर्मध्याह्न सायंकालमें पूजानैवेद्य नीराजनादि अविच्छिन्न चलता रहे । इस लिए यजमानको मन्दिरकी व्यवस्था सुसम्पन्न रूपसे चलती रहे ऐसा बंदोबस्त करना आवश्यक हैं ।

१०८ पाटोत्सव

प्रतिवर्ष प्रतिष्ठाके दिनमें, उत्सवोंमें अपवित्र स्पर्श हो जाने पर देवकलाह्रासनिवृत्तिपूर्वक देवताकलाकी अभिवृद्धिके लिए उन उन देवताओंके १०८, २८ या ८ सूक्तोंसे महाभिषेक, महापूजादि करना । अन्तमें प्रतिमाके मस्तकपर पट्टबन्ध बाँधना इसको पाटोत्सव कहतें हैं ।

इति श्रीवटपत्तनवासि श्रीगुरु द्विजकुलभूषण शुक्लगौरीशङ्करात्मजपण्डितलक्ष्मीशङ्करविरचिते प्रतिष्ठामौक्तिके हिन्दीभाषायां प्रतिष्ठाशिल्पादिविषयकं प्रथमं प्रकरणम् ।

२ प्रतिष्ठामौक्तिके प्रतिष्ठाप्रयोगशिल्पादिविषयकं द्वितीयं प्रकरणम् ।

१ सर्वदेवप्रतिष्ठायां ग्राह्यवर्ज्यकालनिर्णयः ।

प्रतिष्ठेन्दौ :- उत्तरायणे माघफाल्गुनचैत्रवैशाखज्येष्ठेषु शुक्लपक्षे द्वितीयातृतीयापञ्चमीसप्तमीदशमी त्रयोदशीपौर्णमासीषु तिथिषु अश्विनीरोहिणीमृगशीर्षपुष्योत्तराफाल्गुनी हस्तस्वात्यनुराधा ज्येष्ठामूल पूर्वाषाढोत्तराषाढाश्रवणोत्तराभाद्रपदारेवती-नक्षत्रेषु सोमबुधगुरुशुक्रवासरेषु, मत्स्यपुराणानुरोधेन मुहूर्तमुक्तम् । नारदवसिष्ठाभ्यां चैत्रो निषिद्धः । आषाढश्रावणभाद्रपदेष्वपि लिङ्गस्थापनं निर्दिष्टम् । विष्णुस्थापने मार्गशीर्षचैत्रश्रावणाश्विनमासा अपि प्रशस्ताः । विष्णुधर्मोत्तरे सर्वदेवानधिकृत्य फाल्गुनचैत्रवैशाखज्येष्ठाषाढमार्गशीर्षपौषमासा निर्दिष्टाः । हेमाद्रिमते विष्णोः श्रावणाश्विनौ विहितौ मार्गशीर्षपौषौ निन्दितौ एवं शिवस्य माघश्रावणभाद्रपदा विहिताः । देवीपुराणे माघाश्विनौ विहितौ । वारेषु भौमं वर्जयित्वा सर्वे ग्राह्याः । तिथिषु चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यो वर्जनीयाः । तथापि गणेशस्य चतुर्थी नागानां पञ्चमी शिवस्याष्टमी दुर्गायाश्च नवमी ग्रहणीया । वैखानसे मातृभैरववराहनृसिंह त्रिविक्रम दुर्गाणां दक्षिणायने स्थापनं निर्दिष्टम् ।

सामान्यतो वर्ज्यः कालः क्षयवृद्धिरूपे तिथी क्षयमासः, क्षयपक्षः, अधिकमासः, गुरुशुक्रास्त, दिनानि गुरुशुक्रोदयात् परं दिनत्रयमेकं वा बाल्यम् गुरुशुक्रास्तात् पूर्वं दिनत्रयमेकं वा वार्धक्यम्, सिंहस्थो गुरुः चक्रातिचारी गुरुः संक्रान्तिदिनम् अपरपक्षः मातापित्रोः क्षयाहः महाराष्ट्रे मकरस्थोऽपि पौषः मेषस्थोऽपि चैत्रः, देशाचाराद् गुर्जरेषु धनुरर्कदिनानि मीनार्कदिनानि च, सर्वोऽपि वैधृतिर्व्यतीपातश्च । परिघवज्र गण्डातिगण्डमृत्युयोगादिषूक्ता घट्यो वर्ज्याः । सूर्यचन्द्रयोः खग्रासग्रहणे पूर्वं दिनत्रयम् परञ्च दिनत्रयम्, खण्डग्रासे ग्रस्तोदये ग्रस्तास्ते च ग्रहणे पूर्वमेकं परं चैकं दिनम्, पक्षान्तरम् इत्यादिर्निषिद्धः कालः प्रतिष्ठायां वर्ज्यः ।

शुक्लपक्षे द्वितीयामारभ्य कृष्णपक्षे पञ्चमी वा दशमीं यावच्छुभे दिने प्रतिष्ठा प्रशस्यते । नक्षत्रेषु उपर्युक्तनक्षत्रभिन्नचित्रा-पुनर्वसुधनिष्ठाशततारकानक्षत्राण्यपि वसिष्ठसंहितायां प्रोक्तानि । मुहूर्तगणपतौ भानुभौमवासरौ निषिद्धौ । सामान्यतो भौमं विहाय सर्वे वासराः शुभदाः । शुभे लग्ने शुभग्रहनिरीक्षितलग्नशुद्धौ प्रतिष्ठा कर्तव्या ।

२ प्रायश्चित्तविधानम् ३ अपत्नीकाधिकारवर्णनम् । ४ पूर्वाङ्गविचारः । ५ यजमानशाखया कर्ममधुपर्कप्रतिपादनम् ।

प्रतिष्ठादिनात् पूर्वं प्रायश्चित्तं कुर्यात् प्रतिष्ठेन्दौ व्यासः-श्रीकामः पुष्टिकामश्च स्वर्गकामस्तथैव च । देवताराधनपरस्तथा कृच्छ्रं समाचरेत् ।। वैदिकानि च सर्वाणि यानि काम्यानि कानिचित् । सिध्यन्ति

सर्वकर्माणि कृच्छ्रकर्तुर्न संशयः ॥ इति । पत्नीसत्त्वे कर्मणि पत्न्या पत्युर्दक्षिणप्रकोष्ठेऽन्वारम्भः । पूर्तव्रतादीनां दर्शपूर्णमासादिवत् सहाधिकारत्वाभावात् । तेनापत्नीकस्याप्यधिकारः सिद्धः, इति प्रतिष्ठेन्दौ । गणेशपूजनविषये पद्मपुराणे-नार्चितो हि गणाध्यक्षो यत्रादौ यत् सुरोत्तम । तस्माद् विघ्नं समुत्पन्नं तत् क्रोधजमिदं खलु ॥ स्वस्तिवाचने गृह्यपरिशिष्टे-अथ स्वस्तिवाचनमृद्धिपूर्तेषु, ऋद्धिर्विवाहान्ताः संस्काराः, प्रतिष्ठोद्यापने पूर्ते । इदमादौ मध्ये चान्ते वा भवति । कात्यायनः-कर्मादिषु च सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः । पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥ याजुषाणां वसोर्धारापूजनमधिकम् । सर्वत्राचार्यो यजमानसमशाखीय एव । पञ्चकुण्ड्यां नवकुण्ड्यां वा चतुर्दिक्कुण्डेषु होतृब्रह्मव्यतिरिक्ता द्वारपाला ऋग्यजुःसामाथर्वशाखीयाः सूक्तजपार्थं ग्राह्याः । अग्नितन्त्रं तु सर्वेषु कुण्डेषु यजमानशाखयैव भवतीति प्रतिष्ठेन्दौ । यजमानशाखात्वयोनैव मधुपर्के दानप्रतिग्रहाविति जयन्तोक्तेः ।

६ वर्धिनीपूजा, मण्डपप्रवेशः ।

प्रतिष्ठामार्तण्डे तु यथोक्तलक्षणमण्डपाभावे कृत्रिमण्डपे द्वारचतुष्टयं परिकल्प्य प्रतिद्वारं सोदकं कलशद्वयं मन्त्रवत् प्रतिष्ठाप्य दिक्षु विदिक्षु इन्द्रादिदशदिक्पालानावाह्य पूजयेदिति केचित् इत्युक्तम् ।

वर्धिनीकलशप्रयोजनं कर्मार्थकजलग्रहणार्थम् । यथा स्मार्ताग्निहोत्र ईशान्यां मणिकावधानं श्राद्धे चैशान्यां तिलोदकपात्रम् तद्वत् शान्तिकपौष्टिकादियागेषु कलशदेवताः सम्पूज्याः । मण्डपं प्रविश्यैशान्यां ग्रहपीठाद् दक्षिणतो वर्धिनीकलशस्यापनम् । कुत्रचिदाग्नेय्यामपि वर्धिनीकलशस्थापनमुक्तम् ।

प्रतिष्ठामयूखे वर्धिनीपूजा, मण्डपतोरणकलशादिपूजा चोक्ता । ईशानपूर्वयोर्मध्ये अनन्तः-। निर्ऋतिपश्चिममध्ये ब्रह्मा-इति यजुर्वेदापेक्षया व्युत्क्रमः । आगमोक्तप्रकारेण वर्द्धिनीकलशदेवताः सम्पूज्य-आनोभद्राः ०कनिक्रदज्जनुषं० इत्यादि पठन् मण्डपप्रादक्षिण्येन साचार्यो यजमानः पश्चिमद्वारे समागत्य मण्डपपूजां भूमिपूजनबलिप्रार्थनादिकं कृत्वा मण्डपं प्रविशेत् । होमद्रव्यं पूर्वद्वारेण । दानद्रव्यं दक्षिणेन । प्रतिष्ठासम्भारान् उत्तरेण । मण्डपे राक्षोघ्नसूक्तेन सर्षपादिविकिरणम् । पञ्चगव्येन प्रोक्षणम् । स्वस्तिन इन्द्रो० इति पुष्पैर्देवावाहनम् । यातुधानापसारणम् । प्रादेशेन भूपरिग्रहः । आचाराद् मण्डपाङ्गगणपतिपूजा । मण्डपे नैर्ऋत्यां वास्तुपीठे चतुःषष्टिपदमण्डले देवतावाहनपूजने । बल्यन्तं वास्तुपूजनम् । अस्थिरत्वान्नात्र ध्रुवपूजनं नापि वास्तुनिक्षेपः ।

यद्यपि सर्वैः पद्धतिकृद्भिर्मण्डपद्वारतोरणपूजाकलशनिधानध्वजपताकोच्छ्रयणदिक्पाल पूजनबलिदानादिसहिता मण्डपपूजा प्रोक्ता, तथापि वर्तमानकाले कुण्डपीठमण्डपान् याज्ञिका यथोक्तमानेन कुर्वन्ति, पुनश्च द्वारतोरणमध्यबहिः स्तम्भान्तरावलिकानिधायथोक्तध्वजपताकाशिखराच्छादनादिकं मानहीनं यथोक्तलक्षणहीनं कृत्वाऽच्छादनरूपं मण्डपं कुर्वन्तीति मण्डपद्वारतोरणदिपूजनविधिं नैव कुर्वन्ति । अत्र हेतुस्तु यथोक्तमानलक्षणद्वारतोरणस्तम्भकलशशूलशंखादिकीलकवलिका शिखरध्वजपताकादीनां सम्पादने यजमानानां द्रव्यशक्त्यभाव एव ।

७ जलाधिवासविषये ।

मात्स्येऽनुक्तत्वात् त्रिविक्रममयूखपूर्तकमलाकरदिनकरादिभिर्जलाधिवासो नोक्तः । वासुदेव्यां महामण्डपस्य पश्चिमतश्चतुर्हस्तं षड्ढस्तं वा जलाधिवासमण्डपं कुर्यादित्युक्तम् । अयश्च मण्डपप्रतिष्ठायाः, प्राक् पश्चाद्वा बहिः कार्यः कल्पतरौ-मार्कण्डेयपुराणे-वासयेत् पञ्चरात्रं तु सप्तरात्रमथापि वा । त्रिरात्रमेकरात्रं वा याममात्रमथापि वा । कालो गोदोहमात्रं तु नद्यादौ विमले ह्रदे । अधिवास्य जले देवमेवं पार्थिवपुङ्गव-इति वचनात् सप्तपञ्चत्र्येकदिनप्रहरगोदोहनकालान्यतमपक्षेण जलाधिवासो भवति । नद्याद्यभावे जलद्रोण्यां जलभाण्डे वा कार्यः । बौधायनेन संक्षिप्तो जलाधिवास उक्तः समागतायां निशायां कपिलापञ्चगव्येन हिरण्ययवदूर्वाङ्कुराश्वत्थपलाशपर्णेन सुवर्णोपधानं प्रतिकृतिं कृत्वाऽभिषिञ्चत्यापोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इति चतसृभिः पवमानः सुवर्जन-इत्येकेनानुवाकेन व्याहृतिभिः पुष्पफलाक्षतमिश्रयवदूर्वाङ्कुरान् पादयोर्निक्षिपति-इदं विष्णुर्विचक्रम इति प्रतिसरं बध्नाति रक्षोहणं वाजिनमित्यथैनं नदीतडागह्रदनिर्झरसरस्तीर्थानामन्यतमेष्वहतवाससा कुशगन्धमाल्यमाच्छायाधिश्रित्यावतेहेड उदुत्तममिति । जलाधिवासात्पूर्वमग्न्युत्तारणं कार्यम् । सद्यः प्रोक्ष्य पुष्पफलयवदूर्वाङ्कुरान् पादयोर्निक्षिप्य 'रक्षोहणं० यदाबध्नन्०' इति दक्षिणहस्ते कङ्कणं बद्ध्वा जलेऽधिवासयेत् । अयं च कृताकृतः । अकरणे स्नपनविधौ कङ्कणं बध्नीयात् ।

८ मण्डलमध्यवेदीपीठादिमानविवरणम् ।

प्रतिष्ठेन्दौ जलाशयोत्सर्गातिदेशाद् वारुणमण्डलं पञ्चवर्णैस्तण्डुलैर्यथोक्तं विरचयेत् । तत्त्वसागरसंहितायां देवताभेदेन मण्डलभेदो निर्दिष्टः । वारुणमण्डलकरणे 'यत्तत् स्यात् सर्वतोभद्रं सर्वदेवप्रियं सदा' इति तत्त्वसागरसंहितावचनात् 'मण्डलं सर्वतोभद्रमेतन् साधारणं स्मृतम्' इति शारदातिलकोक्त्या सर्वतोभद्रमण्डलं प्राप्नोति । बृहज्ज्योतिषार्णवे भद्रमार्तण्डाध्याये सर्वतोभद्रमण्डलेऽप्यनेके प्रकाराः प्रदर्शिताः, पुनश्च देवताविशेषानुरोधेन मण्डलान्तराणि निर्दिष्टानि तानि ततोऽवगन्तव्यानि । केचिच्छैवप्रतिष्ठायां एकचतुरष्टद्वादशलिङ्गतोभद्रान्यतममण्डलमाद्रियन्ते तत्रापि न काचिद्धानिः । लिङ्गतोभद्रेष्वपि ब्रह्मादिसर्वतोभद्रदेवतावाहनानन्तरं विशिष्टदेवतावाहनं निरुक्तम् । एककुण्डे, पञ्चकुण्ड्यां वा मध्यवेदीसत्त्वे तदुपरि तण्डुलैर्हस्तचतुष्टयहस्तद्वय हस्तमात्रमण्डलानि प्राच्यां प्रधानवेदी चतुस्त्रिंशदङ्गुलायामविस्तरा हस्तमात्रोन्नता च कार्येति निष्कर्षः ।

९ मण्डपाङ्गवास्तुपूजनविवरणं, वास्तुविषये पक्षचतुष्टयवर्णनञ्च ।

प्र०न्दौ मण्डपे चतुःषष्टिपदं वास्तुमण्डलम् । तत्र शिख्यादिक्रमो ब्रह्मादिक्रमो वा । देवतानां त्रिषष्टिसंख्या । शारदातिलके पायसान्नेनैव बलिं हरेत् कलियुगे मांसादिनिषेधात् इत्युक्तम् । आग्नेये तु

बलिविशेषमभिधाय-यजेद् वा सकलं वास्तुं कुशादध्यक्षतैर्जलैः - इति पायसाभावे बलिदानमुक्तम् । प्रतिष्ठोल्लासे मण्डपाङ्गत्वास्तुपूजने होमः कृताकृतः इत्युक्तम् । तत्र प्रधानवास्तुहोमे मात्स्ये १ यव २ कृष्णतिल ३ क्षीरवृक्षसमिध् ४ पलाश ५ खदिर ६ अपामार्ग ७ उदुम्बरसमिद्-इति सप्त द्रव्याणि, राजधर्मकौस्तुभे १ सिद्धौदन २ मधु ३ आज्य ४ यव ५ कृष्णतिल ६ क्षीरवृक्षसमित् - इति षड्द्रव्याणि, गृह्यपरिशिष्टे - वास्तोष्पते० इति चतसृभिः केवलेन चरुणा, १ समित् २ तिल ३ पायस ४ आज्य - इति द्रव्यचतुष्टयेन वा प्रतिद्रव्यं प्रत्यृचं, सप्तवारं सप्तविंशतिवारं द्विपञ्चाशदुत्तरशतद्वयवारं वा होम उक्तः शिख्यादिपिलिपिच्छान्तः समित्तिलपायसाज्यैः केवलाज्येन वा हुत्वा-इत्युक्तम् । अत्र, संख्याऽनुक्तौ शिख्यादि ४५ देवतानामष्टौ चरक्याद्यष्टानां चतस्रः, इन्द्रादीनां द्वे अथवा सर्वासामेकैकाज्याहुतिर्वेति बोध्यम् । आश्वलायनमात्स्यसंमतः शिख्यादिक्रमः, शारदातिलकसंमतो ब्रह्मादिक्रमः ।

एवं वास्तुपूजने पक्षचतुष्टयम्-पारस्करगृह्यसूत्रोक्तं, वास्तुस्थापनपूजनरहितं शालाकर्म, स्थालीपाकहोमभित्त्यलंकरणप्रोक्षणदिगुपस्थानप्रवेशगृहालङ्करणपयोधारान्तमेकम् । द्वितीयं-परिशिष्टायुक्तं शालाकर्मादिवास्तुप्रतिमानिक्षेपान्तम् । तृतीयं वास्तुनिक्षेपरहित पूजाहोमबलिदानादिसहितं मात्स्योक्तम् । चतुर्थम्-शारदातिलकायुक्तं पूजाबलिदानमात्रम् । अत्र मण्डपे वास्तुपूजनं पूजाबलिदानरूपम्, प्रासादे पुनः शालाकर्मादिसकलाङ्गसहितं निक्षेपान्तं वास्तुकर्मेति विवेकः ।

१० रेखाधिक्ये रेखादेवतानामविचारः ।

रेखादेवताविषये प्रतिष्ठोल्लासे-जीर्णगृहवास्तुपूजने एकोनपञ्चाशत्पदात्मकमण्डले चतुःषष्टिपदमण्डलोक्तपश्चिमपूर्वदक्षिणोत्तरनवमरेखादेवतयोर्नन्दाविभवयोरष्टमरेखायां द्विरावृत्तिः कार्या । एकाशीतिपदतदधिकपदमण्डलेषु च दशमरेखादेवतयोः सुरथा-इडानाम्योः पुनःपुनरावृत्त्या रेखादेवतासंख्या पूरणीयेत्युक्तम् । स्तोमवृद्धौ प्रयाजवृद्धौ सामिधेनीवृद्धौ च यथाऽन्त्यस्याभ्यासेन संख्या पूर्यते तद्वदित्यत्र प्रमाणभूतम् ।

११ कुण्डदेवतास्थापनम् । अग्निस्थापनम् ।

एककुण्डे पञ्चकुण्ड्यां वा कुण्डमध्ये विश्वकर्माणमुपरिमेखलातोऽधः क्रमेण विष्णुब्रह्मरुद्रान् परशुरामकारिकामतेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् योन्यां वैष्णवे लक्ष्मीं शैवे गौरीम्, कण्ठे कण्ठम्, नाभौ नाभिं, कुण्डनैर्ऋत्येऽन्तर्वास्तुपुरुषञ्चावाह्य संपूजयेत् । समेखले स्थण्डिले 'तत्स्थानापन्नस्तद्धर्मांल्लभते' इति न्यायेन विश्वकर्मविष्णुब्रह्ममहेश्वरान् योनिसत्त्वे लक्ष्मीं गौरीं वा कण्ठनाभी नैर्ऋते वास्तुपुरुषञ्चावाह्य पूजयेत् ।

१२ पञ्चकुण्ड्यां, नवकुण्ड्याञ्च, विशिष्टहोमं विहाय सर्वं स्थालीपाकतन्त्रं यजमानशाखया कार्यम् ।

यद्यपि पूर्वाग्निकुण्डयोर्ऋग्वेदपद्धत्या दक्षिणनैर्ऋतकुण्डयोर्यजुर्वेदतन्त्रेण पश्चिमवायव्यकुण्डयोः सामवेदतन्त्रेण उत्तरैशानकुण्डयोरथर्ववेदतन्त्रेण आचार्यकुण्डे च यजमानशाखातन्त्रेण पञ्चभूसंस्कारा अग्निस्थापनं स्थालीपाकतन्त्रमुत्तरतन्त्रञ्च मयूखादिषूक्तम्, तथापि सर्वेषु वेदेषु पञ्चभूसंस्काराग्निप्रणयन स्थालीपाततन्त्रोत्तरतन्त्राणां प्रतिशाखं भिन्नत्वाद् यजमानशाखयाऽखिलं कर्म, होतारश्च यजमानशाखीयाः सूक्तजापका द्वारपालकाश्च वेदचतुष्टयस्य इत्युक्त्या सर्वं सुस्थम् । केवलं तेषु तेषु कुण्डेषु वेदसम्बन्धिविशिष्टहोमकरणे न दोषः । एककुण्डकरणपक्षे त्वयं पक्षो नैव स्थानमाप्नोति ।

१३ आरणेयाहरणपक्षयोः प्रतिपादनम् । एकाग्निभिन्नाग्निपक्षयोरेकवाक्यता प्रतिपादनम् ।

अग्निसमुत्पादने पक्षद्वयम् । आरणेयपक्ष आहरणपक्षश्च । तत्रारणेयपक्षस्य श्रौतस्मार्ताग्निहोत्रमात्रविषयत्वम् अग्निहोत्रिणामपि सुतसंस्कारनित्यनैमित्तिकेष्टापूर्तादिकर्मसु आहरणपक्ष एव स्वीकृतः । स्मृतितन्त्रपुराणादिषु श्रौतातिदेशमादाय अरणिमन्थनसमुत्पन्नस्याग्नेरुत्तमत्वम् सूर्यातपेन सूर्यकान्तमणिजन्यस्य मध्यमत्वम् आहृतस्याग्नेरधमत्वञ्च निर्दिष्टम् । अरणिमन्थनेन वह्निसमुत्पत्तौ चिकीर्षितायां अरण्यादिकमानीय सम्पूज्य विधिनाऽग्निं प्रज्वाल्य स्थापयेत् । आहरणपक्षे वैश्यस्य बहुपशोर्गृहाद् भ्राष्ट्रगृहाद् अम्बरीषगृहात् बहुपाकाद् बहुयाजिनो ब्राह्मणस्य गृहान्महानसाद्वा अग्न्यानयनम् । इति पारस्करगृह्यसूत्रभाष्ये ।

एकाधिककुण्डविषयेऽपि पक्षद्वयम्, एकाग्निपक्षः भिन्नाग्निपक्षश्च । अग्निं समुत्पाद्य पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमाचार्यकुण्डेऽग्निं संस्थाप्य तस्माज्ज्वलितमग्निमुद्धृत्य पञ्चभूसंस्कारसंस्कृतेषु पूर्वादिक्रमेण आचार्यकुण्डाग्निमुद्धृत्य सर्वेषु कुण्डेष्वग्निस्थापनमित्येकाग्निपक्षः । एकं महान्तमग्निमुत्पाद्य समानीय वा पञ्चभूसंस्कारसंस्कृतेषु आचार्यपूर्वादिक्रमेण पृथक्पृथगग्निस्थापनमिति भिन्नाग्निपक्षः । अत्र पञ्चभूसंस्कारविषये पारस्करगृह्यसूत्रे प्रथमकाण्डप्रथमकण्डिकाभाष्येषु भूसंस्कारपदप्राधान्यमादाय भूसंस्कारत्वम् अग्न्यर्थत्वञ्च प्रतिपादितम् । होमे चिकीर्षिते भूसंस्काराणां विहितत्वात् 'यत्र कचिद्धोमः' इत्युपसंहाराच्च पञ्चभूसंस्काराणामग्न्यर्थत्वं स्वतः सिद्धम् ।

एवं प्रधानसंकल्पे निर्दिष्टस्य कर्मणः प्राधान्यात् कुण्डानाञ्च प्रधानकर्मसाधनीभूतत्वादेकाग्नि-भिन्नाग्निपक्षयोर्न कश्चिद् विरोधः, यतश्च दक्षिणतो ब्रह्मासनादिप्रणीताविमोकान्तस्याग्नितन्त्रस्य प्रतिकुण्डमवश्यंकर्तव्यत्वेन विधानम् । एकाग्निपक्षे तु आचार्यभिन्नकुण्डेष्वग्नितन्त्रं प्राप्नोति न वेति

सुधियः स्वयमेव विदांकुर्वन्तु । तेन एकाग्निभिन्नाग्निपक्षयोः समं बलीयस्त्वम् सर्वत्राग्नितन्त्रस्य सामान्यत्वात् साध्यरूपप्रधानकर्मापेक्षया साधनरूपाग्न्यायतनानां गौणत्वात् ।

१४ तत्तत्कर्मस्वग्निनामविचारः, अग्निनैवेद्यविचारश्च ।

प्रतिष्ठायाः पूर्त्तकर्मत्वाद् बलवर्धननामाग्निपूजनम्, कुटीरहोमस्य शान्तिहोमत्वात् तत्र वरदनामाग्निः । प्रासादाङ्गवास्तुकरणे वास्तुशान्तिरित्यभिधाने सत्यपि पूर्तकर्मत्वाद् बलवर्धननामाग्निपूजनम् । अग्नेः पूजनं गन्धपुष्पादिना मध्ये, नैवेद्यं तु बहिर्वायव्यामिति गृह्यकारिकावचनात् । केचिन् नैवेद्यरूपेण मध्ये पञ्च प्राणाहुतीर्जुह्वति, तदपरे न सहन्ते कारिकाविरोधात् । किन्तु संहितायां यत्र स्वाहा पदं समायाति तत्र तत्र श्रौते कर्मणि होमस्य इष्टत्वात् ' द्वाविंशे तेजोसीत्यध्याये' प्राणो यज्ञेन कल्पता ९स्वाहा इत्यादिना पञ्चप्राणानामपि देवतात्वमुपलक्ष्य होमदर्शनादतिदेशमादाय प्राणाग्निहोत्रवदग्नौ नैवेद्यरूपेण पञ्चाहुतिप्रदानं नासमञ्जसमिति भाति ।

१५ मण्डलदेवताप्रधानदेवताप्रतिमास्थापनसमर्थनम् ।

जलाशयातिदेशमादाय वारुणमण्डले वारुणमण्डलदेवतानामावाहनं पूजनञ्च । सर्वतोभद्रमण्डलस्य सर्वमण्डलानां प्रकृतिरूपत्वेन प्राक् प्रतिपादितत्वात् तस्मिन् कृते सति ब्रह्मादिदेवतानां वैदिकैर्नाममन्त्रैर्वाऽऽवाहनं पूजनञ्च कर्तव्यम् । कैश्चित् पद्धतिकृद्भिः पूजनानन्तरं पायसादिना बलिदानमप्युक्तम् । भविष्योत्तरे देवतानामावाहनं पूगीफलाक्षतपुञ्जप्रतिमान्यतमेषु कार्यमिति प्रतिष्ठेन्दावुक्तम् । ब्रह्मयामले स्थापनं यस्य देवस्य क्रियते पद्मलोचन । कृत्वा तस्य तनूं हैमीं मण्डले सम्प्रपूजयेत्-इति प्रतिष्ठेन्दौ त्रिविक्रम्याञ्च प्रधानदेवतानां सुवर्णप्रतिमास्वावाहनं प्रोक्तम् । युक्ततरं चैतत् । पीठयन्त्रमण्डलस्थापितदेवताहोमविषयेऽग्नौ स्थापितदेवताहोमप्रकरणे विवरणं करिष्यते ।

१६ ग्रहयज्ञस्य प्रकृतित्वेन परिगणनम् ।

स्मृतिपुराणतन्त्रागमादिनिर्दिष्टकर्मसु ग्रहयज्ञस्य प्रकृतित्वेन परिगणनं सर्वसम्मतम् । एतदभिप्रेत्य कैश्चित् पद्धतिकारैर्ग्रहमण्डलदेवतावाहनं पूर्वं ततः प्रधानदेवतावाहनमिति प्रतिपादितम् । तच्च विचारसहम्, ग्रहयज्ञस्य प्रकृतित्वेन प्रधानदेवतायाः प्राधान्यात् तदङ्गत्वेन ग्रहयज्ञस्य स्वीकाराच्च । रुद्रकल्पद्रुमे तु ग्रहयज्ञस्य शान्तिकर्मत्वात् पौष्टिकनित्यकर्मभ्यां सह समुच्चयो नेष्ट इति प्रतिपादितम् । तेषां मते ग्रहयज्ञं स्वातन्त्र्येण सम्पाद्य ततः पौष्टिकं कर्म विधेयमिति, निर्गच्छति । किन्तु श्रौतस्मार्तभिन्नसकलकर्मणां प्रकृतित्वेन ग्रहयज्ञस्य निर्वचनात् संग्रहमखप्रधानकर्मकरणे न काचिदापत्तिः ।

१७ ग्रहयज्ञस्य चतुर्विधत्वम् ।

स ग्रहमखो याज्ञवल्क्योक्तः मात्स्योक्तः परिशिष्टोक्तः वसिष्ठोक्तश्चेति, चतुर्धा समुपलभ्यते । तस्यायुतलक्षकोटिसंख्याकव्याहृतिहोमान्यतमत्वं प्रयोगदर्पणे निर्दिष्टम् । तत्र ग्रहाणामाकृतिवर्णस्थान-वस्त्रगन्धमाल्यधूपनैवेद्यबल्यादिभेदो ग्रन्थान्तरेभ्यो बोध्यः, विस्तरभिया नात्र वर्ण्यते ।

तत्र मण्डपस्यैशान्यां चतुस्त्रिंशचतुर्विंशत्यङ्गुलविस्तृतायतं द्वादशचतुर्विंशत्यन्यतराङ्गुलोच्छ्रितं त्रिवप्रं ग्रहपीठं कार्यम् । रुद्रयजने तु मण्डपैशान्यां पूर्वं ग्रहवेदी ततो रुद्रवेदीति विशेषः । तत्रापि परशुराममतेन पञ्चकुण्डीनवकुण्डीपक्षयोर्मध्यवेदीकरणं तत्र च प्रधानरुद्रस्थापनं कार्यम् । एतल्लघुरुद्रमहारुद्रातिरुद्रयाग-विषयकं ज्ञेयम्, न तु प्रतिष्ठाविषयकमिति तात्पर्यम् ।

१८ देवतास्थापने मतान्तराणि ईशानकलशे वरुणावाहनं, वसिष्ठपद्धतौ वरुणस्य रुद्रस्य चावाहनम् ।

देवताविषये मतान्तराणि । केवलं नवग्रहा इति दिनकरो याज्ञवल्क्यश्च, नवग्रहाः नवाधिदेवताः नवप्रत्यधिदेवताः गणेशदुर्गावाय्वाकाशाश्विनः पञ्च साद्गुण्यदेवताः अष्टौ दश वा लोकपालाः इति चत्वारिंशत् द्विचत्वारिंशद्वा देवताः, शौनकेन-क्षेत्रस्य पतिना क्षेत्रपालं भूजोत्तरे न्यसेत् । इति क्षेत्रपालावाहनं हेमाद्रिणा च वास्तोष्पतेरावाहनमप्युक्तम्-इति सप्त क्रतुसंरक्षकदेवता भवन्ति । शान्तिसारादौ प्रयोगदर्पणे च शेषादिमनुष्यान्तदेवतानामावाहनमुक्तम्, किन्तु समिदाज्यचरुतिलरूपाणि चत्वारि ग्रहयज्ञविहितानि हवींषि विहाय, शेषादिमनुष्यान्तदेवतानां दश दश घृताक्ततिलाहुतय एकैकाज्याहुतिर्वा प्रतिदैवतमुक्तेति, स्पष्टो भेदः । दिक्पालेषु ऋग्वेदिनां प्रथमोऽनन्तः ततो ब्रह्मेति विशेषः । यजुर्वेदिनां तु ब्रह्माऽनन्तश्चेति क्रमः । ग्रहमण्डले सर्वासु पद्धतिष्वैशान्यां कलशे तत्त्वायामीति सतीर्थवरुणावाहनं कलशे च साङ्गरुद्रजपो विहितः । किन्तु वासिष्ठग्रहशान्तौ 'असंख्यातेति संपूज्यो रुद्रो रुद्रघटाम्भसि ॥२३८॥ इत्युक्तत्वाद् ईशानकलशे रुद्रावाहने न किञ्चिदसंगतम् । गरुत्मतो मध्ये सुपर्णोऽसीत्यावाहनं चोक्तम् ।

स्थालीपाकतन्त्रं सम्पाद्याज्यभागान्तं कृत्वाऽग्निब्रह्माणौ सम्पूज्य गणपतये वराहुतिं दत्त्वा त्यागसंकल्पः कार्यः । पद्धतिकृद्भिरन्वाधाने वराहुतेरुल्लेखाभावान्न देयेति बहुसम्मतम् । प्रतिष्ठामार्तण्डे अन्वाधानेऽपि वराहुत्युल्लेखो दृश्यते । तेन करणे न दोष इति तात्पर्यम् । इयं वराहुतिराचार्यकुण्ड एव नान्यत्र । एवं त्यागसंकल्पोऽपि यजमानकर्तृक एव आचार्यकुण्डे नान्यत्र ।

१९ ग्रहहोमे पक्षचतुष्टयवर्णनम्, स्विष्टकृद्विचारश्च ।

होमे तु पक्षचतुष्टयम्-ग्रहाणाम् १००८ अधिप्रत्यधिदेवतानां १०८ विनायकादिदिक्पालान्तसप्तदश-देवतानां २८ इत्येकः, द्वितीयपक्षे १०८-२८-८ अयं क्रमः, तृतीयपक्षे- २८-८-४ अयं क्रमः, चतुर्थे

सामान्यसंस्काराङ्गग्रहयज्ञे- ८-४-२ अयं क्रमः, समाप्त्युत्सर्गे तु क्रतुसंरक्षकसप्तदेवताहुति संख्यापेक्षया इन्द्रादिदिक्पालानामर्धसंख्या विहितेति भेदः । होमान्ते समिद्रहितं हुतावशिष्टं द्रव्य माहुतिद्वयपरिमितं घृतप्लुतं कृत्वा पूर्णाहुतिदिनान्तं पात्रान्तरे रक्षेत् ।

२० कुटीरहोमस्य प्रयोजनम्, तस्य च मण्डपाद्बहिः सम्पादनम् ।

२१ जलाधिवासः

प्रतिमानिर्माणात् प्रागागमोक्तप्रकारेण शिलापरीक्षां कृत्वा शुभे मुहूर्ते तां प्रासादभूमिसमीपमानीय प्रतिमानिर्माणार्थमेकं कुटीरं कुर्यात् । तस्मिन् शिल्पिद्वारा यतोक्तलक्षणां प्रतिमां रचयितुमारभेत । प्रतिमानिर्माणेऽशुचिदेशकालस्पर्शादिना प्राणिवधादिना च दुर्निमित्तान्युत्पद्येरन् । तेन प्रतिमानिर्माणजन्यसकलदोषपरिहारार्थं कुटीरहोमो निर्दिष्टः । अयमेव शान्तिहोमत्वेन परिगणितः । वर्तमानयुगे जयपुरवङ्गोत्कलान्ध्रद्रविडमद्रकर्नाटककेरलादिदेशेषु शिल्पिभिः प्रतिमा निर्मीयन्ते । ता वयं द्रव्येण क्रीत्वाऽनयामः । एवमन्यत्र प्रतिमानिर्मितौ शान्तिहोमनिमित्तीभूतसकलदोषसम्भवादवश्यं कुटीरहोमः कार्यः । निर्माणकुटी त्वन्यत्र स्थितेति तत्र गमनासम्भवाद् याज्ञिकाः कुटीं निर्माय प्रतिमाश्च तत्रानीय होमं कुर्वन्ति तन्न विचारसहम् ।

अत एवं प्रधानमण्डपादन्यत्र चतुर्हस्तं षड्ढस्तं मूर्त्यपेक्षया तदधिकं वा मण्डपं विधाय स्थण्डिले कुटीरहोमं तत्रैव च जलाधिवासं कुर्वन्ति विज्ञाः । एतद्युक्ततरम् ।

प्रतिष्ठापद्मनाभादिपद्धतिषु शान्तिहोमे देवमन्त्रेणाज्याहुतिशतद्वयं जुहुयादित्युक्तम् । आज्याभावे तिलैर्वा होमो भवति । सर्वत्र देवमन्त्रेण शताहुतिहोमः शान्तिहोमे तु शतद्वयाहुतिविधानं पिण्डिकां देवञ्चोद्दिश्य विहितमिति तात्पर्यम् । प्रतिष्ठावासुदेव्यां त्रैविक्रम्यां हेमाद्रौ मार्तण्डादिषु च पापभक्षणमन्त्रैरपि शान्तिहोमे होमः कार्य इति प्रतिपादितम् । प्राणिवधादिदोषसकलदुर्निमित्तोपशमनार्थकत्वेन पापभक्षणमन्त्रैर्होमो नितरामावश्यक इति भाति । स्थाप्यदेवतामन्त्रेण आज्येन तिलैर्वा शतद्वयं हुत्वा १ ॐ परंमृत्यो० २ अघोरेभ्यो० ३ त्र्यम्बकं यजामहे० ४ यद्ग्रामे० इति मन्त्रचतुष्टयेन प्रत्येकं १०८ वा २८ आहुतयो होतव्याः । ततः स्विष्टकृदादि ।

अयं कुटीरहोमो जलाधिवासेऽग्न्युत्तारणानन्तरं वासुदेव्यामुक्तः । केचिदादौ कुटीरहोमं कृत्वा जलाधिवासविधिं सम्पादयन्ति । तत्र जलाधिवासविषये प्रागुक्तमनुसन्धेयम् ।

२२ योगिनीभैरव-क्षेत्रपालान्यतरस्थापनविचारः ।

ग्रहस्थापनानन्तरं योगिनीनां भैरवक्षेत्रपालान्यतरयोश्च यज्ञसम्बन्धिसकलविघ्नोपशान्तये स्थापनं काशीखण्डे निरुक्तम् । तत्र मण्डपे आग्नेय्यां पीठे योगिन्यः वायव्यां पीठे च भैरवक्षेत्रपालान्यतर

स्थापनं कार्यम् । देवीयागे योगिन्यो भैरवाश्च । अन्यदेवताकयागेषु योगिनीनां क्षेत्रपालानाञ्च स्थापनम् । योगिन्यो नाम शरीरे विद्यमानप्रधानद्वासप्ततिनाड्यधिष्ठात्र्यः परमात्मसम्बन्धयोगकारणीभूता देवताः । तत्र योगिनीनामनेकविधत्वम् । क्षेत्रं नाम शरीरं तत्पालका एकोनपञ्चाशन्मरुतो वायुरूपाः समष्टिरूपश्चैक इति मिलित्वा पञ्चाशत् क्षेत्रपालाः । कुत्रचिदेकपञ्चाशत् अन्यत्र च द्विपञ्चाशत् परिगणिताः । भैरवा नाम प्रसह्य दोषोपशमनपूर्वकं शरीरयजमानक्षेमकारकाः चतुःषष्टिसंख्याकाः । इदं योगिनीक्षेत्रपालभैरवस्थापनं शान्तौ देवीयागे चावश्यं कार्यम् । भैरवस्थापनमपि तथा । पौष्टिकादिषु कृताकृतम् । अकरणे न दोषः बहुसम्मतत्वात् । करणे तु 'गुणविशेषे फलविशेषः' इति कात्यायनोक्तो फलविशेषो भवत्येव । होमकाल एकैका आज्याहुतिः दश दश घृताक्ततिलाहुतयो वा ।

२३ जलयात्राप्रयोजनम्, कृताकृतत्वञ्च ।

आगमादिषु यज्ञार्थं देवताप्रासादादिस्नपनाद्यर्थं नदीरूपतडागह्रदवापीनिर्झरान्यतमस्थानाज्जला हरणं प्रोक्तम् । इदमेव जलयात्रापदेन व्यवह्रियते । इयं प्रथमदिने प्रतिमादीनां रथादिना ग्रामनगरादिप्रादक्षिण्येन यात्रया सह, द्वितीयदिने स्वातन्त्र्येण वा भवति । इदं जलानयनं पतिपुत्रवतीभिर्द्विजसुवासिनीभिः द्विजकुमारिकाभिश्च सुस्नानालङ्कृताभिः कार्यम् । ब्राह्मणैर्नागरिकैश्च वेदमन्त्रगीतवाद्यादि घोषपुरःसरं आम्रपल्लवपूगीफलदूर्वादक्षिणानारिकेलादिसमेतान् कलशानादाय प्रादक्षिण्येन जलाशयं गत्वा जलाशये भूमिपूजनं जलसम्भृतकलशपूजनं जलमातृकाक्षेत्रपालपूजनबलिहोमादि कृत्वा जले ॐ अद्भ्यः स्वाहेति द्वादशाज्याहुतीर्हुत्वा यथोक्तं कर्म निर्वर्त्य सुवासिनीपुरःसरं ब्राह्मणा नागरिकाश्च गीतवाद्यादिघोषेण सर्वे मण्डपद्वारसमीपमागच्छेयुः । तत्र सुवासिनीकुमारिकाशिरःस्थितान् कलशान् यजमानो गन्धपुष्पाक्षतादिभिः संपूज्य ॐ अनाधृष्टा० इति मन्त्रेण नीराज्य शुद्धपात्रे तज्जलं क्षिप्त्वा यज्ञकार्यार्थं संरक्षेत् । तेन जलेन च स्नपनादिकं कार्यम् । प्रतिष्ठातिलके जलयात्राविधायकानि वचनानि विधिश्च सङ्गृहीतः किन्तु तत्र मूलग्रन्थानुल्लेखात् कारिकाणाञ्चात्यशुद्धत्वात्तानि वचांसि नाद्रियन्ते शिष्टाः । इयं जलयात्रा कृताकृता । आचारात् सति समये कार्या, अकरणे न दोषः ।

२४ प्रासादाङ्गवास्तुपूजनविचारः, वर्णविषये मतान्तराणि, निक्षेपान्तवास्तुकरणवर्णनम् ।

विषयेऽस्मिन् मण्डपाङ्गवास्तुपूजनमनुरुध्य भूरि विवेचनं कृतम् । तत्र मण्डपाङ्गवास्तुपूजनस्य मण्डपरूपायतनस्य यज्ञकालमात्रव्याप्तत्वात् तदनु तदनावश्यकत्वाद् बल्यन्तं वास्तुपूजनं प्रोक्तम् । प्रासादस्य प्रतिमायाश्च सूर्याचन्द्रमसौ यावत् स्थितिमत्त्वात् तत्र सर्वाङ्गसंयुतं, निक्षेपान्तं वास्तुशान्तिकर्म कर्तव्यम् । प्रासादे चतुःषष्टिपदं शतपदं वा वास्तुमण्डलं कर्तव्यम् । शतपदमण्डलं एकादश्यां रेखायां सुरया-इडानाम्न्योर्दशमरेखादेवतयोरावृत्तिः कर्तव्येति पूर्वमेवोक्तम् ।

दिनत्रयसाध्ये प्रतिष्ठाकर्मणि द्वितीयस्मिन्नहनि प्रातः स्थापितदेवतापूजनानन्तरं स्नपनार्थं जलानयनरूपं जलयात्राकर्म एकतः, अपरत्र प्रासादाङ्गवास्तुशान्तिकर्म स्वयं ब्राह्मणद्वारा वा कार्यम् । गर्भगृहाद् बहिः स्थण्डिलं गणेशस्मरणब्राह्मणवरणशालाकर्मदिग्रक्षणपञ्चगव्यकरणभूम्यादिपूजनाग्नि-स्थापनवास्तुमण्डलदेवतास्थापनप्रधानवास्तुपुरुषध्रुवस्थापनपूजनबलिदानकुशकण्डिकाषडाहुत्या-धाराज्यभागाग्निपूजनस्थालीपाकहोमप्रधानहोमव्याहृतिहोमोत्तरतन्त्रप्रणीताविमोकान्तकर्मसार्वभौतिक-बलिदानवास्तुमूर्त्तिनिक्षेपभित्त्यलंकरणदिगुपस्थानध्वजनिवेशत्रिसूत्रवेष्टनपयोधारान्तं समग्रं वास्तुशान्तिकर्म संपादनीयम् । 'पौष्टिकत्वाद् बलवर्धननामाग्निः । प्रोक्षण्युत्पवनान्ते प्रवेशाभावः वर्द्धिनीकलशपूजनस्य च गृहप्रवेशस्याभावः दिगुपस्थानान्ते प्रवेशाभावश्चेति विशेषः । वास्तुमूर्त्तिनिक्षेप आग्नेय परिशिष्टवचनादैशान्यां वा गर्ते गर्भगृहे कार्यः । शेषं सर्वं समानम् । मण्डलदेवतास्तु वास्तुशान्त्युक्ता भिन्नमण्डलसत्त्वेऽपि समाना एव बोध्याः । मण्डले तत्तत्कोष्ठगतदेवतानां वर्णभेदे प्रासादमण्डनशारदातिलकसिद्धान्त-शेखरशिल्पग्रन्थेषु परस्परं विरोधो दृश्यते ।

२५ स्नपनमण्डपवेदिकाविरचनम् । एकस्मिन् प्रासाद एकस्या एव प्रतिमायाः स्थापनञ्च

प्रतिष्ठायां स्नपनमण्डपः प्रधानषोडशहस्तमानस्यार्धेन तदर्धेन वोत्तरे निर्मातव्य इति प्रायः सर्वासु पद्धतिषु निर्दिष्टम् । तेनाष्टहस्तश्चतुर्हस्तो वा स्नपनमण्डपः प्राप्नोति । अस्मिन् मण्डपे वेदिकाद्वयं वेदिकात्रयं वा कर्तव्यम् । दक्षिणवेदी, मध्यवेदी, उत्तरवेदी च, दक्षिणोत्तरवेद्यौ वा । हेमाद्रौ वेदीनां चतुर्हस्तद्विहस्तै-कहस्तमानमुत्तममध्यमकनिष्ठत्वेन कथितम् । तत्राष्टहस्तस्नपनमण्डपे चतुर्हस्तवेदिकात्रयकरणं नोपपद्यते । उक्तमानरहितछायामण्डपकरणे तु नासङ्गतिः । एवं चतुर्हस्तमण्डपे, द्विहस्तमितवेदीत्रयकरणमपि न सङ्गच्छते । अत्रापि, छायामण्डप एवाश्रयणीयः, तत्र वेदिकात्रये निधीयमानस्य भद्रपीठस्य एकहस्तविस्तारायामौ अष्टाङ्गुलोच्छ्रायश्चेत्येकः पक्षः, पञ्चाशत् षट्त्रिंशत् त्रिंशदन्यतमौ विस्तरायामौ चतुरष्टद्वादशचतुर्विंशत्यन्यतममानमित उच्छ्रयश्च प्रतिपादितः ।

अत्र वेदिकानां स्नपनमण्डपमध्यभागे करणे विहितमानमितकलशानां समावेशो न सम्भवतीति मण्डपप्राङ्मध्यसूत्रयोर्मध्यभाग उदक्संस्थं वेदीत्रयं करणीयमिति सम्प्राप्तम् ।

प्राक्काले ह्येकस्मिन् प्रासाद एकस्यैव देवस्य स्थापनं भवति स्म, यथा गृहस्यैक एव स्वामी भवितुमर्हति नानेके । एवं डाकोरनगरे द्वारिकायां पण्ढरपुरे चान्यत्र च भगवान् स्वयमेव विराजते लक्ष्मीरपि न । वर्तमानयुगे ह्येकस्मिन् प्रासादे मन्दिरे वा प्रदर्शनरूपेणानेकाः परस्परविरुद्धा अपि देवता द्वारदृष्टिस्थानस्थापनदेशवेधाद्यविचार्यैव शिल्पशास्त्रं दूरं विधाय यथाकथञ्चिदविधिना स्थाप्यन्ते तेन सुखापेक्षया दुःखबाहुल्यमेव स्थापकानां भक्तजनानां देशजनानाञ्च शिरसि समापतति ।

एवं शिल्पशास्त्रे प्रधानद्वारस्योदुम्बरादुपरितनकाष्ठं यावद् उच्चताया भागचतुष्टयं कृत्वाऽधस्तन भागद्वयोच्चं सिंहासनं तृतीयभागमिता प्रतिमा चतुर्थो भागश्च रिक्त इति नियम आसीत्। पुनश्च प्रासादमानेन प्रतिमोच्चता द्वारविस्तारोच्छ्रायौ च शिल्पशास्त्रे स्पष्टं निगदितौ । किन्तु वर्तमानयुगे शिल्पशास्त्रनियमानवगणय्य पुरुषोच्छ्रायपरिमिता महत्यः प्रतिमा वेधदृष्टियथोचितस्थानाद्यविचार्य स्थाप्यन्ते । ईदृक्स्थले सिंहासनद्वारादिविहितमानस्य सङ्गतिरेव न भवतीति महती आपद्। शिल्पशास्त्रमजानाना वर्तमानाः शिल्पिनोऽपि यथाकथञ्चित् प्रासादगर्भगृहद्वारशिखरादि कुर्वन्तीति भवन्ति सर्वे दुःखभाजः ।

अस्तु, बृहतीनां प्रतिमानामुपर्युक्तमानमितासु वेदिकासु समावेशः वेधा वेधन्तरनयनञ्च सर्वथाऽसंभवि । पुनश्चैकाधिकप्रतिमासत्त्वे प्रतिदैवतं किं वेदिकात्रयं कर्तव्यमिति विचारणीयो विषयः । एवं करणे स्नपनमण्डपोक्तं मानमपि निराकृतं भवति ।

२६ स्नपनकलशस्वरूपमाने ।

विष्णुधर्मोत्तरे सौवर्णराजतताम्रमृन्मृयान्यतमकलशा यात्रोद्वाहप्रतिष्ठाभिषेककादिषु वर्णिताः । तेषां मानं मध्ये पञ्चदशाङ्गुलव्यासमिताः मूले द्वादशाङ्गुलव्यासाः मुखेऽष्टाङ्गुलव्यासा उच्छ्रयश्च षोडशाङ्गुलमितः ईदृशं कलशमानं निगदितम् । मयूखोक्तस्नपनसम्पादनाय यथोक्ताष्टहस्तस्नपनमण्डपे ईदृक्कलशानां समावेश एव अशक्यः । पुनश्च दीर्घपृथुलप्रतिमाबहुत्वे तु कलशासादनं खपुष्पायितमेव स्यात् । तेन लघुमानाः कलशाः स्नपने ग्राह्या इति प्रसह्य स्वीकरणीयं कर्मसम्पादनाय ।

एवं वर्तमानयुगे देवतानां बाहुल्यं दैर्घ्यं स्थौल्यं कलशानां पृथुत्वं मण्डपस्य लाघवमित्यादि सर्वं सुविचार्य हस्तमितं वेदिकात्रयं तदग्रतो भद्रपीठरूपदीर्घविस्तृतकाष्ठपट्टनिधानम्, अल्पीयसां कलशानामासादनं परिवर्तनोत्तोलनशक्यप्रतिमाया वेदिकात्रये क्रमेण निधानं च 'सिद्धस्य गतिश्चिन्तनीया' इति न्यायेन साधनापेक्षया साध्यरूपकर्मणो बलीयस्त्वमालोच्य छायामण्डप एव स्नपनविधिं सम्पादयन्ति याज्ञिकाः ।

२७ स्नपने देवस्य प्राङ्मुखत्वोपपत्तिः ।

प्रायः सर्वासु प्रतिष्ठापद्धतिषु भद्रपीठे 'देवं प्राङ्मुखं स्थापयेत्' इति लिखितम्। एतत्तात्पर्यमजानाना रूढा याज्ञिकाः पीठे शुद्धप्राङ्मुखं देवं स्थापयन्ति तन्न विचारसहम् । 'पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची' इति सर्वसम्मतः सिद्धान्तः । सर्वत्र पूजकपूज्ययोः साम्मुख्यं नितरामावश्यकम् । अस्मद्गृहेष्वपि देवाः प्रत्यङ्मुखा वयं पूजकाश्च प्राङ्मुखाः । अत्र मध्ये प्राचीं प्रकल्प्य पूज्यपूजकयोः प्राङ्मुखत्वं स्वतः सिध्यति । प्रयोगेषु देवस्य दक्षिण उत्तरे च इत्यत्र शुद्धां प्रतीचीं प्राचीत्वेन प्रकल्प्य तासां देवतानां स्थापनं भवतीति याज्ञिकानां सुविदितम् । यन्त्रेष्वपि स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन

इत्युक्तत्वान्मध्यत्रिकोणषट्कोणाग्राणि स्वसम्मुखं क्रियन्ते । तस्मादग्राच्च प्रादक्षिण्येन देवतानिवेशो भवति । ग्रहमण्डलेऽपि विभिन्नदिङ्मुखानां ग्रहाणामुक्तां दिशां प्राचीत्वेन संगृह्य दक्षिणवामयोरधिप्रत्यधिदेवतानां स्थापनं क्रियते । देव्या वामे योगिनीनां दक्षिणे च भैरवाणां स्थापनं पूज्यपूजकमध्यगतां प्राचीं स्वीकृत्य भवति । पीठानां देवतासम्बन्धेऽपि तेषां देवतात्वाभावात् दक्षिणत उदगन्तं क्रमेणोदक् संस्थं पीठानि क्रियन्ते । पुनश्च देव्यादियागेषु पात्रासादने कलशे विशेषार्घे वा देव्यावाहनस्य कथितत्वात् पात्राधिष्ठिता देवी प्राङ्मुखस्थितानामस्माकं मध्ये प्राचीं प्रकल्प्य प्राङ्मुखत्वं प्रत्यङ्मुखत्वेऽपि लभते । अन्यथा पात्राणां शुद्धोदीचीमारभ्य शुद्धदक्षिणान्तं स्थापने सर्वसम्मत उदक्संस्थाक्रमो व्याहन्येत ।

उपकार्योपकरणयोः सम्बन्धः सम्मुख एव भवति, यथा भोजनकालेऽस्माकं पुरतो भोजनपात्रं तिष्ठति । स्नपनकरणे 'प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा भूत्वा देवं स्तुवीत' इत्युक्तम् । अत्र यदि देवः शुद्धप्राङ्मुखः स्तोताऽपि प्राङ्मुखः तदा स्तुतिरेव नोपपद्यते, मन्दिरेष्वपि वयं सर्वदा देवसम्मुखा भूत्वैव वन्दामहे । एवमत्र स्नपनोपकार्यो देवः उपकरणभूताश्च कलशाः, तयोर्मध्ये प्राची इति सिद्धान्तं स्वीकुर्मः । तेन कलशानां पङ्क्तयः क्रमेण प्राक्संस्थाः कलशाश्चोदक्संस्था इति याज्ञिकानां शास्त्रसम्मतः क्रमः । प्राङ्मुखं इति पदमादाय शुद्धप्राचीग्रहणाग्रहिभिरुपरि निर्दिष्टानां विप्रतिपत्तीनामुत्तरमवश्यं देयम् । एवं शास्त्रतात्पर्यावबोधहीना देवं शुद्धप्राङ्मुखं स्थापयन्तो याज्ञिका भ्रान्ता एव । यतः कलशान् देवस्य पश्चादानीय पुरतः स्नपनं कुर्वाणाः स्नपनक्रियायामपि व्युत्क्रमं कुर्वन्ति ।

यन्त्रविषये तन्त्रादिषु मध्ये प्राचीं प्रकल्प्य देवतास्थापनं सङ्गच्छते, केवलं दिक्पालानां स्थापनं तत्तद्दिगधिपतित्वेन वैशिष्ट्यात् स्वस्वदिक्षु स्थापनमुक्तं तत् समुचितमेव । प्रतिष्ठाद्योते 'प्रत्यङ्मुखं, इति यदुक्तं तत्तु शास्त्रतात्पर्यनिर्गलितार्थरूपेण शुद्धां प्रतीचीमवलम्ब्य प्रोक्तमिति सर्वं सुस्थम् । तेन प्राङ्मुखपदविवादो मूढधीभिरुत्पादितो व्युत्सन्न इति सुधीभिर्बोध्यम् ।

२८ नेत्रोन्मीलनम् । दृष्टिपातेन आदर्शभङ्गरूपप्रपञ्चखण्डनम् ।

प्राचीनकाले शिल्पिनं स्वगृहमाहूय प्रतिमानिर्माणार्थं कुटीरं निर्माय स्वेष्टां यथोक्तलक्षणमाना-युधादिसम्पन्नां प्रतिमां भक्त्या निर्मापयन्ति स्म । वर्तमानयुगे विविधाः प्रतिमा जयपुरादिनगरेषु निर्मीयन्ते, ततश्चास्माभिर्द्रव्येण क्रीत्वा स्वगृहमानीयन्ते । आसु प्रतिमासु नेत्रादिकं सर्वं सुसम्पादितं भवति । स्नपनकाले केवलो नेत्रोन्मीलनरूपः संस्कारो विधीयते ।

इदं नेत्रोन्मीलनं स्वयंभुवि बाणलिङ्गे चललिङ्गे सरिदुत्पन्ने रत्नजे लोहजे च न कार्यम् इति प्रतिष्ठाकौमुद्यां मात्स्ये प्रतिपादितम् 'स्वयम्भुवि बाणलिङ्गे चललिङ्गे सरिद्भवे । रत्नजे, लोहजे लिङ्गे लक्षणोद्धरणं न हि । गन्धाक्तेन सुपुष्पेण चाङ्कयेन्नेत्रमण्डलम्' इति । सावयवासु विभिन्नप्रतिमासु

नेत्राणि कल्पितान्येव भवन्ति । निराकारे लिङ्गे तु कुत्र नेत्रोन्मीलनं कार्यमिति विचारे सामान्यतो मूलादग्रान्तं दैर्ध्यस्याष्टौ भागान् विधाय चतुर्थपञ्चमभागयोर्मध्ये समान्तरे कनीनिकाद्वयं अधश्चोपरिनेत्रपुटद्वयं तदुपरि पञ्चमभागान्ते भ्रूरेखाद्वयं सुवर्णकांस्यान्यतरपात्रस्थितमधुसर्पिर्भ्यां सुवर्णशलाकयोभयपार्श्वतोऽङ्कयेत् । स्वयंभूबाणलिङ्गादिषु गन्धेन पुष्पेण सुवर्णशलाकया वा नेत्राकारं कुर्यात् । अत्र 'सव्यं वा अग्रे मानुषे' इति श्रुतिवचनाद् देवाना प्रथमं दक्षिणं ततो वामं नेत्रं चित्रन्देवानामित्यर्धर्चेन नेत्रं विरचय्य आकृष्णेन इति मन्त्रेण पुटद्वयं कुर्यात् ।

अत्र नेत्रोन्मीलने स्वात्मानं सिद्धमहापुरुषत्वेन प्रतिपादयितुमिच्छन्तो देवतापुरतः कृशमादर्शं संरक्ष्य पश्चादङ्गुष्ठबलेन उपरिभागे फास्फरसनामकौषधिलापनेन वा काचं स्फोटयन्ति प्रत्यक्षञ्च दैवतं प्रतिमासु सन्निहितं स्वतपोबलेनेति भक्तानां प्रतारणं कुर्वन्ति । वस्तुतस्तु स्नपनविधिरर्चाशुद्ध्यर्थं क्रियते ततः शय्याधिवासतत्त्वन्यासादिकं संपाद्यापरेऽह्नि प्राणप्रतिष्ठा सुमुहूर्ते क्रियते । यद्यत्र नेत्रोन्मीलनकाल एव देवत्वं समापद्येत तर्ह्यग्रेतनाधिवासनतत्त्वन्यासप्राणप्रतिष्ठादि पद्धतिषूक्तं सकलं कर्म निरर्थकं भवेत् । पुनश्च पद्धतिषु 'शिल्पी लोहेनोल्लिखेत्' इत्युक्तिः प्रत्यक्षदेवत्वे कथं सङ्गच्छेत । लोहेनोल्लेखनेन तु देवस्य पीडा भवेत् । लोहेनोल्लेखनविधेरिदं तात्पर्यं, यत् शिल्पिना समग्रायां प्रतिमायां निष्पादितायामपि नेत्रभागोऽवशेषणीयः । नेत्रपुटद्वयकनीनिकारेखासम्पादनानन्तरमेव समग्रनेत्रविरचनं कर्तव्यम् । 'न कश्चित् पुरतस्तिष्ठेद्' इत्यस्याप्ययमेवाशयो यद् रेखाकर्ता सम्यक् सम्मुखं स्थितः सन् रेखाः कुर्यात् । व्यवधायकोऽन्यः, कश्चित् सम्मुखं न तिष्ठेत् ।

वर्तमानयुगे नेत्रे विरचिते एव स्तः, इति मन्त्रद्वारा नेत्रोन्मीलनरूपं संस्कारमात्रं कर्तव्यम् । ये खलु महात्मानः स्वमाहात्म्यं प्रथयितुमादर्शं युक्त्या भेदयन्ति तज्जनानां प्रतारणामात्रमिति बहुधाऽनुभूतम् । यदि तेषां हस्ते स्थूलो दृढ आदर्शो दीयेत स्वयमेव पलायेरन् । देवस्य दृष्टिपातेनादर्शो यदि भज्येत तर्हि भक्तेषु दृष्टिपातेन सद्यो मरणमेव भवेत्, एवं स्वात्मनाऽसन्तः महापुरुषत्वेनात्मानं सन्तं प्रथयन्तो दूरत एव वन्द्याः ।

२९ स्नपनभेदाः । स्नपने षोडशपक्षप्रतिपादनं विवरणञ्च ।

अयं स्नपनविधिः प्रतिमानिर्माणे अशुचिदेशकालपतितादिस्पर्शजन्यदोषनिवृत्त्यर्थमर्चाशुद्ध्यर्थं देवकलासान्निध्यहेतवे प्रतिमानां शुचित्वसंपादनाय च क्रियते । तत्र स्नपनमण्डपप्रकरणेऽकरणे वा एका द्वयं त्रेदीत्रयं वा क्रियते । तत्र वेदीमानादि प्रागुक्तम् । एवं प्रतिष्ठायामेकदिनसाध्यायांकर्मसंकोचो भवति । प्रासादप्रतिष्ठारहिते जीर्णादिदोषदुष्टानां प्रतिमानामुद्धारपूर्वकं प्रासादसत्त्वे नूतनप्रतिमाप्रतिष्ठाकर्म सर्वाङ्गोपसंहारकं दिनद्वयेन शक्यते । सप्रासादनूतनप्रतिमाप्रतिष्ठाविधिः पुनर्दिनत्रयेण साङ्गोपाङ्गं सम्पादयितुं शक्यते । तत्र स्नपनविधि मुद्दिश्य वयमनेकप्रकारान् प्रदर्शयामः ।

१ प्रथमः पक्षः - देवस्य नेत्रोन्मीलनं कृत्वा भद्रपीठे निवेश्यैकेन महता गन्धसर्वौषधिमृत्तिकापञ्च-रत्नपञ्चपल्लवहिरण्यादिसहितेन कलशेन ॐ दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम्-इत्येकेन मन्त्रेण देवतामूलमन्त्रेण गायत्र्या सूक्तेन वा देवं संस्नाप्य संपूजयेत् ।

२ द्वितीयः पक्षः - ४ कलशात्मकः । भद्रपीठपरितश्चतुर्दिक्षु चतुरः समुद्रसंज्ञितान् संस्थाप्य तैः ॐ समुद्रज्येष्ठाः इति चतसृभिर्ऋग्भिर्वा ॐ इमम्मे० इत्यादि चतुर्भिर्मन्त्रैः संस्नाप्य पूजयेत् ।

३ तृतीयः पक्षः - ८ अष्टकलशात्मकः - भद्रपीठपरितः पूर्वादिक्रमेण १ मृत्तिकाः २ पञ्चपल्लवान् ३ कुशान् ४ शान्त्युदकं ५ प्रस्रवणोदकं ६ यवान् ७ पुष्पाणि ८ फलानि प्रक्षिप्य तत्तन्मन्त्रैः स्नपयेत् ।

४ चतुर्थः पक्षः - १६ षोडशकलशात्मकः द्वितीयतृतीयपक्षौ संभूयान्ते सुवासिनीधृतकलशचतुष्टयेन च स्नपयेत् ।

५ पञ्चमः पक्षः - २४ कलशात्मकः । अत्र वेदीद्वयम्-दक्षिणवेदीपरितश्चतुरः समुद्रसंज्ञितान् कलशान् ४ उत्तरवेद्यां च १८ अष्टादशकलशान् संस्थाप्य स्नपयेत्, अयं पक्षः प्रतिष्ठावासुदेव्युक्तः स इत्थम् - १ पाद्य २ अर्घ्य ३ आचमनीय ४ पञ्चगव्य ५ दधि ६ यवपिष्ट ७ मधु ८ कषाय ९ पुण्योदक १० मण्युदक ११ फल १२ सुवर्ण १३ यवाक्षत १४ व्रीहि १५ घृत १६ मधु १७ पञ्चामृत १८ देवसूक्ताभिमन्त्रिताः कलशाः । उत्तरवेदी पुरतः - १ द्वादशमृत्तिका २ पञ्चपल्लव ३ धान्य ४ गन्धपुष्पफलैः । अयमेव पक्षो लतायां स्वीकृतः । ततः शान्तिकलशेन सुवासिनीकलशेन च स्नपयेत् ।

६ षष्ठः पक्षः - २५ कलशात्मकः शङ्करोक्तीनद्वैतनिर्णये-वेदीद्वयं दक्षिणवेद्यां भद्रपीठे चतुर्दिक्षु १ मृद् २ कषाय ३ धान्य ४ गन्धादिकैः उत्तरवेद्याः पश्चाद् - १ गोमूत्र २ गोमय ३ पयः ४ दधि ५ घृत ६ मधु ७ शर्करा ८ भस्मकलशाः ८ शुद्धजलकलशाः तदुपरि ४ समुद्रकलशाः तदुपरि तीर्थोदककलशः एवं पञ्चविंशतिकलशैः स्नपयेत् ।

७ सप्तमः पक्षः - ३६ कलशात्मकः - एकावेदी, वेद्याः पश्चात् प्रथमपङ्क्तौ १ मृत्तिका २ कषाय ३ गोमूत्र ४ गोमय ५ गन्धोदक ६ पञ्चगव्यपूरिताः षट् । द्वितीयपङ्क्तौ पृथक् पृथक् १ पयः २ दधि ३ घृतम् ४ मधु ५ शर्करायुताः पञ्च । तृतीयपङ्क्तौ ५ शुद्धजलकलशाः । चतुर्थपङ्क्तौ -१ फल २ रत्न ३ वृषशृङ्गोदक ४ सप्तधान्य ५ तीर्थजल ६ गन्धोदक पूरिताः । पञ्चमपङ्क्तौ ४ सुवासिनीकलशाः । ततो वेदीपरितः पूर्वादिदिक्षु क्रमेण १ क्षारोदक २ क्षीरोदक ३ दध्युदक ४ घृतोदक ५ इक्षुरसोदक ६ सुरोदक ७ स्वादूदक ८ गर्भोदकयुताः । एवं चतुस्त्रिंशत्कलशाः शान्तिकलशौ च इति ३६ कलशाः । ८ अष्टमः पक्षः - ४८ कलशात्मकः जयरामोक्तपद्धतौ - दक्षिणवेदी, उत्तरवेदी च । दक्षिणवेद्याः पश्चात् - ५ गोमूत्र-गोमय-क्षीर-दधि - घृतकलशाः कुशोदकसहिताः पञ्चगव्यकलशाः, तदुपरि १ दुग्ध २ दधि ३ घृत ४ मधु ५ शर्करायुताः पञ्चामृतकलशाः, १ संस्रवकलशः २ उष्णोदकम्

४ दक्षिणवेदीपरितश्चतुर्दिक्षु १ मृत् २ कषाय ३ धान्य ४ गन्धोदकपूरिताः । उत्तरवेद्याः पश्चात् १० कलशाः १ मृद् २ गोमय ३ गोमूत्र ४ भस्म ५ पञ्चगव्य ६ दुग्ध ७ दधि ८ घृत ९ मधु १० शर्करायुता दश । तदुपरि २, १ सहस्रच्छिद्र २ पुरुषसूक्ताभिमन्त्रितौ । तदुपरि ८, १ मधु २ घृत ३ दुग्ध ४ नारिकेलजल ५ इक्षुरस ६ औषधीक्वाथ ७ तीर्थोदक ८ शुद्धोदकपूरिताः । तदुपरि ४ सुवासिनीकलशाः । वेदीपरितः ८ कलशाः १ मृत्तिका २ पञ्चपल्लव ३ कुश ४ शान्त्युदक ५ प्रस्रवणोदक ६ यव ७ पुष्प ८ फलादि कलशाः । एवमष्टाचत्वारिंशत्कलशैस्तत्तन्मन्त्रैः स्नपयेत् ।

नवमः पक्षः - ६४ कलशात्मकः - एकावेदी । निर्णयसिन्ध्वनुसारेण धर्मसिन्धावुक्तः - भद्रपीठात् पश्चिमे - १२ मृत्तिकाकलशाः - १ गज २ अश्व ३ रथ्या ४ अरण्य ५ वराहोत्खात ६ वल्मीक ७ पर्वतनदीसङ्गम ८ ह्रद ९ राजद्वार १० अग्निहोत्र ११ गोष्ठ १२ चतुष्पथ स्थानानीता मृत्तिकाः । तदुपरि १२ शुद्धकलशाः । तदुपरि-१पञ्चगव्यकलशः । तदुपरि ५ पृथक् पञ्चामृतकलशाः । ५ शुद्धोदककलशाः । तदुपरि ८ देवसूक्तमन्त्रान्यतराभिमन्त्रिता गन्धोदककलशाः । तदुपरि-१ उष्णोदकं २ सम्पातोदकम् । तदुपरि ४ सपल्लवकलशाः । तदुपरि ४ समुद्रकलशाः । वेदीपरितः अष्टौ ८ - १ मृत्तिका २ पुष्करपर्णशमीविकङ्कताश्मन्तकत्वचः पल्लवाश्च ३ धान्य ४ रत्न ५ फलपुष्प ६ कुशदूर्वारोचनाः ७ सम्पातोदक ८ सर्वौषधीकलशाः । अन्तिमपङ्क्तौ - ३, १ कषाय २ पञ्चरत्नोदक ३ तीर्थोदकयुताः । एवं ६४ चतुःषष्टिकलशाः ।

१० दशमः पक्षः प्रतिष्ठामयूखोक्तः ९० नवतिकलशात्मकः । तत्र वेदीत्रयम्-दक्षिणवेदी, मध्यवेदी उत्तरवेदी च । दक्षिणवेद्याः पश्चात् प्रथमपङ्क्तौ १ मृत्तिका २ कषाय ३ गोमूत्र ४ गोमय ५ भस्म ६ गन्धोदकपूरिताः षट् । तदुपरि ५ गन्धोदकपूरिताः १ अन्त्यस्तीर्थोदकपूरितः स्थपतिसंज्ञक एवं द्वादश । मध्यवेद्याः पश्चात् प्रथमवेदीवत् स्थपतिकलशरहिता ११ एकादशकलशाः । ततः उत्तरवेद्याः परितः पूर्वादिक्रमेण १ क्षार २ क्षीर ३ दधि ४ घृत ५ सुरा (गुडमिश्रितदुग्धम्) ६ इक्षुरस ७ स्वादु ८ गर्भोदकयुता अष्टकलशाः । उत्तरवेद्याः पश्चादधस्ताद् उपरितनक्रमेण उदक् संस्थं कलशानासादयेत् । प्रथमपङ्क्तौ १० दशकलशाः - १ मृत्तिका २ गोमय ३ गोमूत्र ४ भस्म ५ मीलितपञ्चगव्य ६ क्षीर ७ दधि ८ सर्पिः ९ मधु १० शर्करायुताः । तदुपरि १० गन्धोदककलशाः । अन्ये चत्वारः समुद्रसंज्ञकाः ४ भिन्नाः । तदुपरि तृतीयपङ्क्तौ ५ पृथक् पञ्चामृतम्, तत्पुरतः ५ शुद्धोदककलशाः तत्पुरतः ५ पञ्चसु कषायः, तत्पुरतः १० दश क्रमेण - १ पुष्प २ फल ३ सुवर्ण ४ गोशृङ्गोदक ५ धान्य ६ सहस्रछिद्र ७ सर्वौषधी ८ पञ्चपल्लव ९ दूर्वा १० नवरत्नोदकपूरिताः । तत्पुरतः १० दशलोकपालकलशेषु क्रमेण १ कदम्ब २ शाल्मलि ३ जम्बू ४ अशोक ५ प्लक्ष ६ चूत ७ वट ८ बिल्व ९ नागवल्ली १० पलाशपल्लवान् क्षिपेत् । इति संकलनेन १२, ११, ८, १०,१४, ५, ५, ५, १०, १० = ९० नवतिकलशानासादयेत् । अन्यांश्च लौकिकान् दश कलशानासादयेत् । पञ्चमपक्षे अयमेव वासुदेव्युक्तो मयूखोक्तश्च स्नपनविधिः प्रतिष्ठोल्लासे स्वीकृतः । वासुदेव्युक्ते समुद्र - ४ कलशान् विहाय

अष्टादशकलशयोजनेन १०८ अष्टोत्तरशतकलशाः । ११ एकादशः पक्षस्त्रिविक्रमोक्तः ६४ कलशात्मकः । दक्षिणवेदी उत्तरवेदी चेति द्वयम् । प्रथमवेद्यां मयूखवत् १३ कलशाः उत्तरवेद्याः परितो मयूखवत्-८, प्रथमपङ्क्तौ १० द्वितीयपङ्क्तौ १४ शुद्धकलशद्वयं २, ५ पञ्चामृत ५ शुद्ध ५ कषायकलशाः । तत्पुरतः - १ ओषधी २ पुष्प ३ शान्ति ४ फल ५ सुवर्ण ६ गोशृङ्ग ७ धान्य ८ सहस्रधार ९ सर्वौषधी १० पञ्चपल्लव ११ रत्न १२ तीर्थोदककलशाः १३ । तत्पुरतः १० लोकपालकलशाः ८३ कलशाः ततो मङ्गलकलशाः १६-८-४-१ इति भेदो मयूखापेक्षया ।

१२ द्वादशः पक्षः प्रतिष्ठाहेमाद्री-८४ कलशात्मकः । एका वेदी, भद्रपीठचतुर्दिक्षु सुवासिनीकलशाश्चत्वारः सपल्लवाः । सप्रणवव्याहृतिभिः प्रथमेन शुद्धोदकेन २ व्रीहितोयेन ३ पञ्चगव्येन ४ शुद्धोदकेन ।

भद्रपीठादधस्तात् प्राक्संस्थं पङ्क्तयः उदक्संस्थं कलशासादनम् । प्रथमपङ्क्तौ ४ शुद्धजलकलशाः १ इदमापः २ आपोदेवी ३ इमम्मे गङ्गे ४ तत्त्वायामि । द्वितीयपङ्क्तौ १० कलशाः १ सर्वौषधी २ अष्टपल्लव-मृत्तिका ३ वल्मीकमृदा ४ पर्वतमृदा ५ नदीमृदा ६ गोशृङ्गोदकेन ७ क्षेत्रमृदा ८ सीरमृदा ९ सरोमृदा १० समुद्रज्येष्ठा-शुद्धोदकेन । तृतीयपङ्क्तौ ९ कलशाः १ गोमय २ गोमूत्र ३ भस्म ४ पञ्चगव्य ५ दुग्ध ६ दधि ७ घृत ८ मधु ९ शर्करायुताः । चतुर्थपङ्क्तौ - ९ शुद्धोदककलशाः । पञ्चमपङ्क्तौ - ७ कलशाः - १ सर्षपजल २ तीर्थजल ३ अघमर्षण ४ हिरण्योदक ५ कुशोदक ६ सुखोष्णजल ७ उष्णोदककलशाः । षष्ठपङ्क्तौ १० कलशाः - ५ पृथक् पञ्चामृतम् ५ पृथक्शुद्धजलम् । सप्तमपङ्क्तौ - २ कलशौ १ गन्धोदकम् २ कषायः । अष्टपङ्क्तौ - ८ कलशाः - १ पुष्प २ फल ३ हिरण्य ४ गोशृङ्ग ५ धान्य ६ सहस्रधार ७ तीर्थजल ८ काशीकुश० स्थपतिकलशाः । वेदीपरितः पूर्वादिक्रमेण ८ कलशाः - १ क्षार २ क्षीर ३ दधि ४ घृत ५ सुरा ६ इक्षुरस ७ स्वादुजल ८ नारिकेलोदकयुताः । नवमपङ्क्तौ - १० कदम्बादिपल्लवयुता लोकपालकलशाः । दशमपङ्क्तौ - ७ कलशाः - १ देवसूक्ताभिमन्त्रिताः । ४, १०, ९, ९, ७, १०, २, ८,८, १०, ७ = ८४ ॥ अन्ये लौकिकाः ।

१३ त्रयोदशः पक्षः प्रतिष्ठासारदीपिकायाम् - १३० कलशात्मकः । मयूखोक्तं वेदीत्रयम् । मयूखोक्ताः दक्षिणवेद्याः पश्चाद् द्वादश । मध्यवेद्याः पश्चाद् एकादश । उत्तरवेद्याः पश्चाद् नवपञ्चाशद्, अष्टदिक्षु अष्टौ इति नवतिकलशाः ९० । इयान् विशेषः, दक्षिणवेद्याश्चतुर्दिक्षु १ मृत्तिका २ कषाय ३ धान्य ४ गन्धोदकपूरिताः ४ चत्वार कलशाः, ततो दक्षिणवेद्यष्टदिक्षु पूर्वादिक्रमेण ८ अष्टौकलशाः १ क्षीर २ जल ३ रत्नोदक ४ सुवर्णोदक ५ गन्धोदक ६ फलोदक ७ पुष्पोदक ८ व्रीह्युदकयुताः । दक्षिणवेद्याः पश्चान्मयूखोक्तद्वादशकलशानां पुरतः ८ अष्टौ कलशाः । १ आमलकी २ हरीतकी ३ गुडूची ४ बिभीतक ५ कुमारी ६ व्याघ्री - ७ वानरी ८ मधूकौषधियुक्ताः । दक्षिणवेद्या ईशान्यां षोडशदलं पद्मं तत्र प्रतिपत्र

गन्धोदककलशाः, मध्ये चत्वारः देवगायत्र्याऽभिषेकार्थम् । एवं विंशतिकलशाः । मध्यवेद्यामुत्तरवेद्याञ्च मयूखोक्ताः । इत्थम् - ९०, ४, ८, ८, २० = १३० त्रिंशदुत्तरशतकलशाः ।

प्रतिष्ठामार्तण्डे तु सारदीपिकोक्त १३० कलशेभ्यः अधिकाः कलशाः दक्षिणवेद्याः पश्चात् । १ तीर्थोदक २ उदकशान्त्यभिमन्त्रितकलशाः, ततः १ गन्धोदक २ कषाय ३ ओषध्यष्टक ४ सितपुष्प ५ फल ६ हिरण्य ७ धान्य ८ सर्वौषधी ९ पल्लव १० रत्नोदक ११ दूर्वोदकयुता एकादश । उत्तरवेद्याः पश्चात् १ मङ्गलकलशः २ सुवासिनीकलशश्च । एवं पञ्चदश संभूय १४५ पञ्चचत्वारिंशदुत्तरशतकलशाः ।

१४ चतुर्दशः पक्षः - २५० कलशात्मकः संकलितः । वेदीत्रयम् । तत्र दक्षिणवेद्याः पश्चात् ७ मृत्तिका ७ शुद्धोदक ५ कषाय ५ शुद्ध ४ गोमूत्र - गोमय - भस्म - गन्धोदक ४ शुद्ध १ स्थपति एवं ३३ कलशाः , मध्यवेद्याः पश्चादेवं स्थपतिकलशं विहाय ३२ कलशाः । उत्तरवेद्याः पश्चात् १२ मृत्तिका ३ गोमूत्र-गोमय-भस्म ४ समुद्र ५ पञ्चामृत १० पुष्प ५ कषाय १० फल १० धान्य १० सर्वौषधी १० पल्लव ५ तीर्थकलशाः ८=१६ ततः प्रासादस्नपनोक्तानि प्रतिदिशं मध्ये च तत्तद्वस्तुनिःक्षेपसहितानि नव नवकानि - इति ८१ कलशाः । अन्ते सुवासिनीकलशाश्चत्वारः ४ निवेशनीयाः । तत्र संकलनम् - ३३, ३२, ८४, १६, ८१, ४ = २५० कलशाः ।

१५ पञ्चदशः पक्षः - ५०० कलशात्मकः संकलितः । वेदीत्रयम् । दक्षिणवेद्याः पश्चात् १२ मृत्तिका १२ शुद्ध १० कषाय १० शुद्ध ४ गोमूत्र-गोमय-भस्म-गन्धोदक ४ शुद्ध १ स्थपतिकलशः एवं ५३ त्रिपञ्चाशत् कलशाः । मध्यवेद्याः पश्चात् स्थपतिरहिताः ५२ द्विपञ्चाशत् । उत्तरवेद्याः पश्चात् १२ मृत्तिका १२ शुद्ध ३ गोमूत्र-गोमय-भस्म ३ शुद्ध ५ पञ्चगव्य ५ शुद्ध ५ पञ्चामृत ५ शुद्ध १० पुष्प १० फल १० कषाय ४ समुद्र १२ धान्य १० सर्वौषधी १० पल्लव ५ सुवर्णगोशृङ्ग-सहस्रधार-दूर्वा - नवरत्न ५ शुद्ध ८ वेदीपरितः = १३४ कलशाः । ततः प्रासादस्नपनवत् पञ्चपञ्चानां पञ्च पङ्क्तयः मध्ये दिक्षु च, एवं प्रतिकोष्ठं पञ्चविंशतिः, तासु मध्यनवके सहस्रकलशपक्षे वक्ष्यमाणानि वस्तूनि, इतरेषु गन्धोदकम् - मध्यनवकस्नपने तत्तन्मन्त्राः मध्येऽष्टदिक्षु च प्रधानदिक्पालसूक्तानि मन्त्रान् वा पठेत् - इति २२५ कलशाः । ८ तीर्थोदक ४ मङ्गल२४ शान्त्यध्यायेन ऋचंवाचं० इति । संकलान् ५३, ५२, १३४, २२५, ८, ४, २४ = ५०० कलशाः ।

१६ षोडशः पक्षः - १००८ कलशात्मकः । भद्रपीठात् पश्चिमे प्रासादस्नपनवन्मध्येऽष्टदिक्षु च नव कोष्ठानि भवन्ति । तत्र मध्ये नव कलशान् संस्थाप्य तत्र मध्यमपूर्वादिक्रमेण १ नवरत्नानि २ यवाः ३ व्रीहयः ४ तिलाः ५ नीवाराः ६ श्यामाकाः ७ कुलित्थाः ८ मुद्गखण्डानि ९ सिद्धार्थाः (सर्षपाः प्रक्षेप्याः । तत्रैव दशदिक्षु १० दिक्पालकलशाः । ततः पूर्वाद्यष्टदिक्षु एकादशकलशानामेकादश पङ्क्तयः कलशानां स्थाप्याः । प्रतिकोष्ठं मध्यनवके विशिष्टवस्तुप्रक्षेपः शेषेषु गन्धोदकम् । पूर्वकोष्ठमध्यनवके १ घृत २ पलाशकषाय ३ अश्वत्थकषाय ४ न्यग्रोधक० ५ आम्रक० ६ बिल्वक० ७ उदुम्बरक० ८

जम्बूक० ९ शमीकषायान् क्षिपेत् । आग्नेयकोष्ठमध्यनवके १ मधु २ गङ्गाजल ३ गोशृङ्गोदक ४ मृत्तिका ५ गिरिमृ० ६ गजस्थानमृ० ७ तीर्थमृ० ८ वराहोद्धृतमृ० ९ सौराष्ट्रीसप्तमृत्तिका- निक्षिपेत् । दक्षिणकोष्ठगतमध्यनवके १ तिलतैल २ नारिङ्ग ३ जम्बीर ४ खर्जूर ५ द्राक्षा ६ श्रीफल ७ पूगीफल ८ दाडिम ९ पनसफलानि प्रास्येत् । नैर्ऋत्यकोष्ठगतमध्यनवके १ श्रीफलक्षीर २ कुङ्कुम ३ नागपुष्प ४ चम्पक ५ मालती ६ मल्लिका ७ पुन्नाग ८ करवीर ९ उत्पलानि पुष्पाणि निदध्यात् । पश्चिम० नवके १ कदलीजल २ वृष्टि ३ हिम ४ निर्झर ५ गङ्गा ६ सप्तसागर ७ सरसी ८ सङ्गम ९ वापीजलानि निक्षेपणीयानि । वायव्य० नवके १ दधि २ सहदेवी ३ कुमारी ४ सिंही ५ व्याघ्री ६ अमृता ७ विष्णुपर्णी ८ शतशिवा ९ वचा - ओषधीः क्षिपेत् । उत्तर० नवके-१ इक्षुरस २ ताम्बूल ३ एला ४ कुष्ठ ५ उशीर ६ श्वेतचन्दन ७ रक्तचन्दन ८ कस्तूरी ९ कृष्णागरुसुगन्धिद्रव्याणि । ईशान०नवके - १ गर्भोदक २ चन्द्रतार ३ रौप्य ४ लोह ५ सीसक ६ ताम्र ७ सुवर्ण ८ पञ्चरत्न ९ रीतिकानि । नवकोष्ठोत्तरतः - ४ लौकिकाः १० मृत्तिका - गोमय - गोमूत्र - भस्म - गन्धोदकपयो - दधि - घृत-मधु-शर्कराकलशाः १ शीतोदकं २ उष्णोदकमिति । संकलनम्, मध्यकोष्ठे ९९ अष्टकोष्ठेषु ९६८ लौकिक - ४ मृत्तिकादि -१० कषाय ५ शीतोष्णोदके २ = १००८ कलशाः, एतस्य, पक्षस्य विधिः स्वतन्त्रग्रन्थे वक्ष्यते । एतेषु षोडशपक्षेषु पद्धत्यन्तरनिर्दिष्टपक्षान्तरेषु च आग्नेय-मात्स्य परिशिष्टपञ्चरात्रागमेश्वरसंहितादिग्रन्था मूलत्वेन बोध्या इति शम् ।

३० मण्डपप्रवेशनं, प्रतिमानां शय्याधिवासश्च ।

स्नपनान्ते सामिधेनीकल्पेन पुरुषसूक्तेन देवतास्तुत्यन्ते प्रतिमा उत्थाप्य मण्डपप्रादक्षिण्येन शाकुन्तसूक्तेन भद्रसूक्तेन वा पश्चिमद्वारि समानीयार्घं मधुपर्कञ्च दत्त्वा सर्वतोभद्रमण्डलात् पश्चिमतः - पूर्वास्तृतायां शय्यायां धान्यसंभृतायां देवं प्राक्शिरसं मतान्तरेण दक्षिणशिरसं वा निधाय शिरोदेशे खाद्यपूरितं निद्राकलशं जलपूरितं शान्तिकलशञ्च स्थापयेत् । तत्र वितानादर्शछत्रचामरव्यजनोपधाना-दिसामग्रीं गन्धपुष्पफलौषधीश्च यथासंभवं संस्थाप्य धान्यवस्त्राच्छादनादिभिराच्छादयेत् । भस्मदर्भतिलैः शय्यापरितः प्राकारत्रयं कुर्यात् । अयमेव शय्याधिवासः ।

३१ तत्त्वन्यासविचारः, हयग्रीवपञ्चरात्रोक्तसप्ताधिवाससङ्गतिः, निद्रावाहनादिविचारश्च ।

'तं यथा यथोपासते तदेव तद्भवति तद्धैनान् भूत्वाऽवति' इति शतपथश्रुत्या तत्तद् विभिन्नगुणशक्तिसमालम्बनेन चराचरजगति विभिन्नरूपकालतत्त्वयागमन्त्राद्याश्रयेण अनेकरूपैर्भासमानस्य परमात्मनस्तच्छक्तीनाञ्च विविधरूपाश्रयसत्त्वेऽपि तासु तासु प्रतिमासु सर्वसाधारणानां तत्त्वानां न्यासं कृत्वा तत्तद्देवतानां विशिष्टतत्त्वमन्त्राक्षरमन्त्रसूक्तकलादिन्यासः क्रियते । अनेन न्यासकर्मणा प्रतिमासु

चराचरजगत्स्थितसकलतत्त्वानां प्रादुर्भावेन देवताकलाः समाविष्टा भवन्ति ।

तत्त्वन्यासकर्मणः प्रारम्भात् पूर्वं तत्त्वानामाप्यायनार्थं अकारादिसर्वतत्त्वानि ॐ अकाराय स्वाहा-इत्याद्युच्चार्य प्रतितत्त्वं द्वादशं दश अष्टौ वा तिलैः यवैः पञ्चामृतेन एभ्य एकतमेन द्रव्येण होमं कुर्यात् । एतावदशक्तौ प्रतितत्त्वमेकैकामाज्याहुतिं जुहुयात् । किन्त्वनेकप्रतिमासत्त्वे प्रतिदिवतं होमसम्पादनासम्भवे प्रधानदेवतामुद्दिश्य घृताक्ततिलैः ॐ पराय विष्ण्वात्मने स्वाहा ॐ पराय शिवात्मने स्वाहा ॐ पराय शक्त्यात्मने स्वाहा ॐ पराय गणेशात्मने स्वाहा । इत्याद्यूहेनाष्टोत्तरशताहुतीर्जुहुयात् । एवं तत्त्वाप्यायकहोमानन्तरमेव तत्त्वन्यासाधिकारः । सर्वथाऽशक्तौ २८ वा ८ आहुतिहोमस्ततो न्यासाः । ते च न्यासा अक्षतप्रक्षेपेण प्रतिमायास्तत्तदङ्गालम्भनेन वा भवन्ति । किन्तु प्रतिमानामाच्छादितत्वात् प्रतिप्रतिमं तत्तदङ्गस्पर्शासम्भवादक्षतप्रक्षेप एव सुकरः पन्थाः । प्रतिष्ठाहेमाद्रौ क्रमेण १ प्रणवाक्षर २ व्याहृतित्रय ३ अकारादिमातृका (वर्ण) ४ ग्रहादि ५ काल ६ ब्राह्मणादिवर्ण ७ तोय ८ वेद ९ वैराज १० देवता ११ क्रतु १२ गुण १३ आयुध १४ शक्ति १५ मन्त्र १६ जीव इत्येते न्यासाः सर्वसाधारणाः परिगणिताः । अत्रापि १३ आयुध १४ शक्ति १५ मन्त्रन्यासेषु तत्तद्देवतानां आयुधानां शक्तीनां मन्त्राक्षराणां न्यासाः कार्याः । षोडशजीवन्यासानन्तरं दुर्गा-सूर्य-गणेश-देवी-रुद्रादिप्रतिमासु तेषां मन्त्रकलासूक्तगायत्र्यादिविशिष्टा न्यासाः कार्याः । एवं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते रामभद्राय ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे-इत्यादीनां प्रत्यक्षरं तत्तद्देवताकलापरिवारदेवतादीनाञ्चापि यथासम्भवं न्यासः कार्यः । ततः परं वैष्णवे सहस्रशीर्षेति पुरुषसूक्तम्, देव्यां श्रीसूक्तं देव्यथर्वशीर्षं गणेशस्य गणेशाथर्वशीर्षं सूर्यस्य विभ्राड् १७ रुद्रस्य-नमस्ते १६ वा ६६ हनुमतो वीरभद्रावतारत्वात् नमस्ते-१६ दत्तात्रेयस्य पुरुषसूक्तम् भैरवादीनाञ्च तत्तन्मन्त्रं तत्तद्गायत्रीं वा पठेत् । अथवा देवसाधारणं पुरुषसूक्तं देवीसाधारणं श्रीसूक्तञ्च पठेत्, सकलदेवतासु प्रकृतिपुरुषयोरेव साधारण्यात् । परमात्मन एव विशिष्टकार्यसम्पादनाय विशिष्टरूपधारणे सामर्थ्याच्च ।

एतावदशक्तौ एकदिनसाध्यप्रतिष्ठायां ॐ पुरुषात्मने नमः इत्यादीनि एकोनत्रिंशत्तत्त्वानि विन्यसेत् । प्रतिष्ठायां प्रतिमासु प्रत्यक्षं योगप्रक्रियया जीवन्यासस्तु योगिमात्रविषयः, अस्मादृशां सांसारिकाणां योगप्रक्रियाज्ञानस्य सर्वथाऽसम्भवात् तत्तत्तत्त्वोच्चारणेनाक्षतप्रक्षेपेण संतोषः सम्पाद्यः । प्रतिष्ठावासुदेव्यां जीवन्यासाकरणे प्राणप्रतिष्ठाकरणं प्रोक्तम्, तत्तु न समीचीनम् । न्यासानां प्राणप्रतिष्ठायाश्च भिन्नत्वेन प्रतिष्ठाया एवं प्राधान्याच्च प्राणप्रतिष्ठाविधिरवश्यं कर्तव्यः ।

एवं न्यासविधिं कृत्वा कलशे निद्रामावाह्य संपूज्य दिक्पालमातृक्षेत्रपालेभ्यो बलित्रयं दत्त्वा 'मण्डलशय्ययोरन्तरे न गन्तव्यम्' 'सुखशायी भव' इति प्रैषद्वयं दत्त्वा न्यासविधिः समापनीयः । अयं शय्याधिवासः पञ्चरात्रं त्रिरात्रमेकरात्रं याममात्रं गोदोहनमात्रं वा भवति ।

हयग्रीवपञ्चरात्रे- १ जल २ गन्ध ३ पुष्प ४ धान्य ५ फल ६ ओषधी ७ शय्या - इति

सप्ताधिवासाः प्रोक्ता । तेभ्यो जल-धान्य-शय्याधिवासास्तु पद्धतिषु संकलिता एव । अवशिष्टा गन्धपुष्पफलौषधीरूपाश्चत्वारोऽधिवासाः कथं सम्पादनीया इति विचारणामर्हति । अधिवासशब्देन पञ्च-त्र्येकदिनयामगोदोहनमात्रकालानां प्राप्तिर्भवति । शय्याधिवासान्ते 'सुखशायी भव' इति प्रार्थनानन्तरं प्रबोधनस्य अनौचित्यात् गन्धपुष्पफलौषध्यधिवासानां शय्याधिवासनात् प्राक्पठनाच्च धान्यनिक्षेपेण सह गन्धपुष्पफलौषधीरपि तत्र स्थापयित्वा शय्याधिवासकरणे शास्त्रसङ्गतिः सम्प्रदाय श्चोभयं रक्षितं भवति ।

३२ प्रासादस्नपनम् । प्रासादाधिवासनम् ।
३३ अष्टोत्तरसहस्रकलशस्नपनविवरणम् ।

प्रासादाग्रे, उत्तर ऐशान्यां वा व्रीहिराशिं कृत्वा मध्येऽष्टादिक्षु च नव नव कलशान् स्थापयेत् । एवमेकाशीतिकलशान् संस्थाप्य नवनवकमध्यकलशेषु तानि तान्युक्तानि द्रव्याणि निक्षिप्य महीद्यौरित्यादिविधिना कलशान् साधयेत् । अत्र मूलं मात्स्य आग्नेये च । अष्टोत्तरसहस्रकलशस्नपने त्वर्चाशुद्धये इमानि नव नवकान्येव प्रकृतिभूतानि । प्रासादस्नपने नवनवकेषु मध्यकलश एव विशिष्टद्रव्यप्रक्षेपः अष्टोत्तरसहस्रकलशेषु मध्ये नवदशाष्टदिक्षु चैकादश पङ्क्तयोभवन्ति, तत्र मध्यगतनवकलशेषु प्रतिकोष्ठं भिन्नभिन्नद्रव्यनिक्षेपः इतरेषु गन्धोदकम् । एवं प्रतिकोष्ठं एकविंशत्युत्तरशतकलशाः संभूय ९६८ कलशा भवन्ति । तदुपरि पार्श्वे वा ४ लौकिकलशाः १० मृत्तिकादिदश ९ कषायकलशाः २ शीतोष्णोदककलशौ मध्यमकोष्ठे केवलं नव दश च दिक्पालकलशाः इति संभूयाष्टोत्तरसहस्रसंख्योपपद्यते । प्रसङ्गादत्र निर्दिष्टमपीदं प्रासादार्चाशुद्ध्यर्थमेव करणीयम् ।

शय्यायां प्रतिमानां स्थापनानन्तरं कुण्डे शान्तिकपौष्टिकादिहोमः तत्त्वन्यासशय्याधिवासौ अन्यत्र च प्रासादस्नपनाधिवासने एतत् कार्यत्रयं ब्राह्मणद्वारा स्वयञ्च सम्पादनीयम्, अन्यथा कालातिक्रमसंभवः ।

३४ एकाशीतिकलशस्नपने कलशासादने मध्यकलशस्नपने अवशिष्टाष्टकलशस्नपने च क्रमव्युत्क्रमसंक्रमाणां सङ्गतिः ।

अस्तु, प्रासादस्नपने विचार्यते, एकाशीतिकलशेषु तत्तत्कोष्ठगतमध्यकलशेषु विशिष्टद्रव्यप्रक्षेपो मध्यपूर्वादिप्रादक्षिण्येन मध्यकलशैः स्नपनं दिग्व्युत्क्रमेण निर्दिष्टम् । पुनश्चावशिष्टाष्टकलशेषु मध्यमपूर्वादिप्रादक्षिण्यक्रमः पद्धतिकृद्भिः स्वीकृतः । इदमसङ्गतम् । पूर्वं प्रादक्षिण्यक्रमः स्नपने दिग्व्युत्क्रमः शेषेषु पुनः प्रादक्षिण्यक्रमः इत्यर्धजरतीयम् तन्मध्यपतितस्तुग्रहणेन गृह्यते, इति न्यायेन संदंशन्यायेन च नवनवकमध्यकलशैरपि मध्यमपूर्वादिप्रादक्षिण्यक्रमेणैव स्नपनं भवितुमर्हति ।

यथा भगवता कात्यायनेन पारस्करगृह्यसूत्रे काण्ड-१-क-३ मधुपर्कप्रकरणे 'एनमभ्युपविशति, पादयोरन्यं विष्टर आसीनाय इति सूत्रेण प्रथमविष्टरदानानन्तरं द्वितीयविष्टरदानं निर्दिष्टम् । अत्र

सर्वैर्भाष्यकृद्भिः विरोधेऽर्थस्तत्परत्वात् पाठक्रमादर्थक्रमयोः परस्परं विरोधे पाठक्रमादर्थक्रमो बलीयान् पाठक्रमस्य अर्थक्रमपरत्वात्' इति सम्यग्विचार्य पादप्रक्षालनानन्तरमेव द्वितीयविष्टरदानं सिद्धान्तितम् । एवमेव प्रासादस्नपने मध्यकलशैर्व्युत्क्रमेण स्नपने कृते अवशिष्टाष्टकलशैरपि व्युत्क्रमेण स्नपनकथन मुचितम् । किन्तु तथा न कृतम् । अवशिष्टाष्टकलशैः स्नपने मध्यपूर्वादिप्रादक्षिण्यक्रमः संगृहीत इत्यनौचित्यात् मध्यकलशैः स्नपनेऽपि प्रादक्षिण्यक्रमस्वीकारेण सर्वं सुस्थम् । एतादृशी व्यवस्था च प्रयोगे प्रदर्शयिष्यते ।

३५ इदमाप इत्याद्यवशिष्टाष्टकलशस्नपनमन्त्रेषु मूलपरिशोधनम् ।

अवशिष्टाष्टकलशस्नपने भगवता पारस्करेण परिशिष्टगतनित्यस्नानविधिसूत्रे 'इदमापो हविष्मतीर्देवीराप इति द्वाभ्यामणोदेवी द्रुपदादिव शचोदेवीरपाऽ रसम्' इति विधानान्मन्त्राष्टकं प्रयोगकृद्भिः देवीरापो० अ-६ मं-२७ कार्षिरसि० अ-६ मं २८ एतौ द्वौ गृह्येते । एवं करणेन पण्डितानां भूयसः कालात् प्रचलितो गजग्राहः शाम्यति, व्युत्क्रमनिरासः शास्त्रानुग्रहश्च सिध्यतीत्यलं प्रपञ्चेन ।

एकदिनसाध्यप्रतिष्ठायां समयाभावे ब्राह्मणसंपदभावे वा एकं महान्तं कलशमादाय तत्र पञ्चगव्य मृत्तिकापञ्चामृतकषायपल्लवौषध्यादिकं प्रक्षिप्य ॐ दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम् । इति मन्त्रेण सशिखरं प्रासादं स्नपयेत् ।

प्रासादाभ्यन्तरे स्नपनकलशावशिष्टेन पात्रान्तरसङ्गृहीतेन जलेन पञ्चगव्यमृदादिना संप्रोक्ष्य आसनोपस्थानादीनि प्रोक्ष्य गर्भगृहाभ्यन्तरे श्रीकण्ठादिसोममण्डलान्तानि पञ्चपष्टितत्वान्यक्षतैरावाह्य प्रासादं गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य प्रासादसम्मुखो भूत्वा पुरुषसूक्तेन ॐ पादौ पादशिलास्तस्य० वाहनं चाग्रमण्डपे-इत्यन्तैः श्लोकैश्च पुरुषरूपं प्रासादं स्तुवीत । प्रासादतत्त्वहोमचिकीर्षायां प्रतितत्त्वं समिद्व्रतिलाज्याहुतिभिरष्टाष्टसंख्याऽचार्यकुण्डे जुहुयात्, एकैकाज्याहुत्या वा नाममन्त्रैर्होमः । इदमेव प्रासादाधिवासनम् ।

शिल्पिनः प्रासादशिखरस्थापनात्पूर्वमामलसारकगर्ते रजतमयं प्रासादपुरुषं संपूज्य स्थापयन्ति । स्नपनदिने शिखरस्यापि यदि स्नपनं कृतं चेत् स्नपनानन्तरं शिल्पिद्वारा शिखरं प्रासादस्योपरि स्थिरीकृत्य ततः प्रासादस्नपनाधिवासने कुर्यादिति विशेषः ।

३६ मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालावाहनम् । सर्वदेवताप्रतिष्ठास्वेतासां प्राधान्यप्रतिपादनम् ।

स्नपनं सम्पाद्य प्रतिमानां मण्डपे शय्यायां स्थापनानन्तरं होमारम्भात् पूर्वं कुण्डादीशान्यां जलपूर्णं कलशद्वयं स्थापयेत् । तत्रैकः शान्तिकलशः अपरस्मिन् पूगीफलं निधाय तत्र

चतुर्विंशतिमूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालानावाहयेत् । पञ्चकुण्ड्यां तु आचार्यकुण्डं विहाय पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरकुण्डानामैशान्यां कलशद्वयं निधायैककलशे क्रमेण मूर्त्तिद्वयं मूर्त्तिपतिद्वयं लोकपालद्वयञ्चावाहयेत् । नवकुण्ड्यां पुनराचार्यकुण्डं परित्यज्य पूर्वाद्यष्टकुण्डैशान्यां कलशाष्टकम् । तत्रैकस्मिन् क्रमेण मूर्तिं मूर्त्तिपतिं लोकपालञ्चावाहयेत् । पञ्चकुण्डनवकुण्डीपक्षयोस्तु आचार्यकुण्डैशान्यां कलशद्वयस्थापनस्यानावश्यकत्वं स्वतः सिद्धम् । एककुण्डपक्षे पुनर्मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालानामावाहनमैशान्यां कार्यमेव ।

तत्र १ पृथिवी २ अग्नि ३ यजमान ४ अर्क ५ जल ६ वायु ७ सोम ८ आकाशरूपा अष्टौ मूर्त्तयो विश्वस्य जगतः प्रकृतिभूताः सन्ति । पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतानि सूर्याचन्द्रमसौ आत्मवाचको यजमानश्चेत्येषां प्रकृतिमूलतत्त्वरूपेण न कश्चिद् विवादः । शर्व-पशुपति-उग्र-रुद्र-ईशान-भव-महादेव-भीमरूपा अष्टौ मूर्त्तिपतयः । शर्वाद्यधिपतीन् दृष्ट्वा केचित् सम्प्रदायाग्रहिणो बिभ्यति । प्रकृत्यधिष्ठितपरमात्मन एकत्वाद् गुणत्रयभेदेन ब्रह्मविष्णुशिवरूपत्वकल्पनात् सम्प्रदायाग्रहस्यावकाश एव नास्ति । शर्वः कल्याणकारी पशुपतिर्जीवमात्राधिपतिः उग्रः दण्डकृत् रुद्रो दुःखहारी भव उत्पादकः ईशानः सर्वशक्तिमान् महादेवः परं ब्रह्म भीमश्च प्रलयकारी इति परमात्मकार्यवाचिशर्वादिशब्दानां यौगिकार्थमादाय पद्धतिकृद्भिः प्रायः सर्वत्र शर्वादय एवं मूर्त्तिपतयः स्वीकृताः सन्ति । अत्र शर्वशिवयोरेकार्थत्वाद् विकल्पः ।

३७ शैववैष्णवयोः पञ्चमूर्त्तिवर्णनम्, लोकपालानामेकत्वञ्च ।

एवं सत्यपि तन्त्रागमादीननुरुध्य 'वैष्णवे पञ्चैव मूर्त्तयः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशरूपाः तासां पतयः वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरूद्धनारायणरूपाः पञ्च, एवं शैवेऽपि पञ्चमूर्त्तिपक्षे ब्रह्मविष्णुरूद्रेश्वरसदाशिवा इति पञ्च मूर्त्तिपा इति त्रैविक्रम्यां निर्दिष्टम् । मयूखप्रयोगदर्पणादिष्वप्येवमुक्तम् । एवमेव गणेशस्य देव्याः सूर्यस्य हनुमतः इत्याद्यनेकदेवतानां मूर्त्तिमूर्त्तिपतयः कुत्रचिदुक्ताः अन्यत्र च कल्पनीयाः स्युः । पुनश्च सर्वासु पद्धतिषु 'लोकपालास्तु सर्वत्र पूजनीयाः । इत्युक्तम् । पञ्चमूर्त्तिस्वीकारपक्षे लोकपालानां का स्थितिरिति त एव प्रष्टव्याः । चतसृषु मूर्त्तिषु लोकपालद्वयम् पञ्चम्यां तु न इति कैश्चित् समाधानं कृतम् ।

किन्तु तन्त्रपुराणागमशास्त्रस्मृत्यादिष्वनेकदेवतानां निर्देशात् प्रत्येकं मूर्त्तिमूर्त्तिपतिकल्पनेऽनवस्थाप्रसङ्गः शास्त्रप्रत्यक्षवचनानुपलब्धिश्च शिरसि समापतति । एतदपेक्षया पृथिव्याद्यष्टमूर्त्तीनां यौगिकमर्थमादाय शर्वादि-मूर्त्तिपतीनां लोकपालानाञ्च समावेशः इति सर्वं शास्त्रसङ्गत्या चारुतया समुपपद्यत इति पद्धतिकृद्भिर्मनसा इदं निश्चित्य पृथिव्याद्यष्टमूर्त्तिशर्वाद्यष्टमूर्त्तिपति-इन्द्राद्यष्टलोकपालरूपः प्रधानपक्ष एव स्वीकृत इत्यलं विस्तरेण ।

३८ शान्तिकपौष्टिकहोमे मन्त्रनिरूपणम्, 'यथाविभागं' इति मयूखवचनस्य मन्त्रविभागपक्षखण्डनम् ऋत्विग्विभागेन होमवचनोपपादनञ्च ।

मात्स्ये-शिरःस्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत् । शान्तिकैः पौष्टिकैस्तद्वन्मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः । पलाशोदुम्बराश्वत्थास्त्वपामार्गः शमी तथा । हुत्वा सहस्रमेकैकं देवपादौ तु संस्पृशेद् । ततो होमसहस्रेण हुत्वाऽथैव ततस्तथा । नाभिमध्यं तथा वक्षः शिरश्चाप्यालभेत् पुनः इति शान्तिपौष्टिकादिहोमविषये मूलवचनानि । शान्तिकानि पौष्टिकानि च सूक्तानि सर्वेषु वेदेषु प्रसिद्धानि । इमानि सूक्तानि राज्याभिषेकप्रकरण ऐन्द्रीशान्तौ प्रयुज्यन्ते । तत्र तत्र वेदेषु शान्तिकसूक्तानां बहुत्वात् सूक्तान्ते मन्त्रान्ते वा होम इति विचिकित्सा जागर्त्येव, प्रत्युत सूक्तान्ते वा होम इति साक्षादुपदेशाभावाद् बहुवचननिर्देशेन त्र्यधिकसंख्यायाः प्रथमोपस्थितत्वात् पद्धतिकृद्भिस्त्रयस्तदधिका वा मन्त्रा लिङ्गत्वेन स्वीकृताः सन्ति । इमे मन्त्रा एव ग्राह्या इति प्रत्यक्षवचनाभावाल्लिङ्गोक्त मन्त्राश्च गृह्यन्ते ।

प्रतिष्ठावासुदेव्यादिषु कासुचित् पद्धतिषु शान्तिकपौष्टिकहोम एव नोक्तः । दिनकरभट्टैः शान्तिकैरित्यस्य नवग्रहमन्त्रैरिति समाहितम् । पौष्टिकविषये मौनमेव समालम्बितम् । केचिच्छान्तिकपौष्टिकहोमविषये विवदन्ते यज्जलाधिवासप्रकरणे अघोरेभ्य इत्यस्य सर्वशान्त्यर्थत्वात् परंमृत्यो इति मन्त्रस्य सकलदुर्निमित्तोपशमनार्थत्वाद् यद्ग्राम इत्यस्य पापभक्षकत्वात् त्र्यम्बकमित्यस्य पुष्ट्यर्थत्वात् जलाधिवासोक्तशान्तिहोमेनैव गतार्थत्वान्नात्र प्रधानहोमे शान्तिकपौष्टिकहोमस्यावश्यकत्वमिति, अत्र विचारणीयम्, जलाधिवासाङ्गकुटीरहोमापरपर्यायशान्तिहोमस्य प्रतिमानिर्माणेऽशुचिदेशकालस्पर्शादिजन्यदुर्निमित्तदुर्भिक्षाद्युपशामकत्वं प्राणिवधादिजन्यदोषपरिहारकत्वञ्च संकल्प एव निर्दिष्टम्, प्रधानहोमे शान्तिकपौष्टिकहोमस्य प्रासादप्रतिमासंपादकसकलभक्तजनानां सूर्याचन्द्रमसौ यावत् प्रासादस्य तद्गतप्रतिमानाञ्च सकललोकशान्तिकृत्त्वपुष्टिकृत्त्वमुद्दिश्यानुष्ठानान्निमित्तभेदः स्वयमेव सिद्धः । तेन शान्तिहोमेन शान्तिकपौष्टिकहोमजन्यफलावाप्तिर्नैव सिध्यति । एवं शान्तिहोमशान्तिकपौष्टिकहोमयोर्निमित्तभेदात् फलभेदाच्च पार्थक्यं शास्त्रसिद्धम् ।

एतदेवाभिप्रेत्य मयूखत्रिविक्रमपद्मनाभसंग्रहतिलकादिषु शान्तिकपौष्टिकहोमः स्वीकृतः । अत्र मयूखस्था पङ्क्तिः 'तत आचार्यः क्रमेण पलाशोदुम्बराश्वत्थसम्यपामार्गसमिधां प्रत्येकं द्वादशषट्त्रि-अष्टसहस्राष्टशतान्यतमसंख्या हिरण्यगर्भ० इति कुण्डसमीपे संस्थाप्य शान्तिकैः पौष्टिकैश्च मन्त्रैर्यथाविभागं सऋत्विग्जुहुयात्, इति अनया पङ्क्त्या पलाशादिपञ्चविधसमिद्भिः प्रत्येकं १ द्वादशसहस्र २ षट्सहस्र ३ त्रिसहस्र ४ अष्टोत्तरसहस्र ५ अष्टोत्तरशत-एभ्योऽन्यतमसंख्यया शान्तिकैः पौष्टिकैश्च मन्त्रैर्होमो विहितः । अस्यां पङ्क्तौ 'यथाविभागं' एतस्य क्रियाविशेषणस्य मन्त्रैः साकं सम्बन्धं संयोज्य भूयसः कालाद् विवादः प्रचलति यथा पूर्वं स्नपने 'प्राङ्मुखं देवं स्थापयेद्' इति पदेनोदपादि ।

वाक्यार्थबोधं पुरस्कृत्येमां पङ्क्तिं विवेचयामः । स इत्थम् - जुहुयात् कः ? आचार्यः, कीदृग् आचार्यः ? सऋत्विक्, किं जुहुयात् ? प्रत्येकं समिधामष्टशतम्, केन जुहुयात् ? शान्तिकैः जुहुयात् च पौष्टिकैः जुहुयात्, कथं जुहुयात् ? यथाविभागम् । अनेन वाक्यार्थबोधविचारेण मीमांसारीत्या 'यथाविभागं' इति पदस्य मन्त्रविभागेन सह सम्बन्धः कथञ्चनापि न सिध्यति । अन्यथा पण्डितकुलशेखरीभूतो मयूखकारः 'प्रत्यृचम्' इति कथं न ब्रूयात् ? । पुनश्चान्यासु पद्धतिषु यत्र शान्तिकमन्त्रेषु चत्वारस्तदधिका वा पौष्टिकमन्त्रेषु चत्वारस्तदधिका वा मन्त्राः कथिताः तत्र मन्त्रविभागपक्षः कथमुपपद्येत । बहुवचनोपदेशाद् 'प्रत्यृचम्' इति स्पष्टमनुक्तत्वाच्च मन्त्रविभागेन होमोऽनर्गल एव । एवं 'यथाविभागं' सऋत्विगाचार्यो जुहुयात् इति तात्पर्यं पुरस्कृत्य पलाशसमिद्भिरष्टोत्तरशतहोमपक्षे षड्ऋत्विजोऽष्टादशवारं नव ऋत्विजो द्वादशवारं द्वादश ऋत्विजो नववारं अष्टादश ऋत्विजश्च षड्वारं शान्तिकमन्त्राणामन्ते स्वाहापदमुक्त्वा ऋत्विजो होमं कुर्युः । एवं प्रतिसमिधं मन्त्रावृत्त्या शान्तिकहोमः कार्यः । एवमेव पौष्टिकमन्त्राणामन्ते स्वाहापदयोजनेन पौष्टिकहोमः सम्पादनीयः मयूखपङ्क्त्या शान्तिकैर्जुहुयात् पौष्टिकैश्च जुहुयात्, चकारेण वाक्यभेदादिति सुधीभिरूह्यम् । एवमष्टोत्तरशतपक्षे अशीत्युत्तरसहस्राहुतयो भवन्ति । अयमत्र निष्कर्षः - षड् द्विजाः शान्तिकैः ९० वारं पौष्टिकैश्च ९० वारम्, नव ब्राह्मणाः ६० + ६० वारम् द्वादश विप्राः ४५+४५ वारम् अष्टादश भूसुराः ३०+३० वारम् । एवं १०८० शान्तिकपौष्टिकाहुतयो भवन्ति ।

पुनरेतन्मयूखोक्तपङ्क्तिविषये केचिच्छङ्कन्ते, यत् पङ्क्तौ पलाशादिसमिधां प्रत्येकमष्टशतं स्थापितम् तेन चत्वारिंशदुत्तरपञ्चशताहुतयः स्युः इति, अत्र विषये शान्तिकैश्चतुःपञ्चाशदाहुतयः पौष्टिकैश्च चतुःपञ्चाशदाहुतय एव भवन्ति । विचार्यतां तावत्, होमसंख्याप्रकरणे कुत्रापि चतुः पञ्चाशत्संख्या न निर्दिष्टा । अष्टोत्तरशताष्टाविंशत्यष्टान्यतमसंख्याया एव महदल्पव्यवस्थया स्वीकारः, न चतुःपञ्चाशत्संख्यास्वीकृतिः । एतद्विवरणसमर्थनं कृत्यसारसमुच्चये (नित्याचारप्रदीपे) निर्दिष्टं 'यथागृह्योक्तविधिना आज्यभागान्ते पलाशोदुम्बराश्वत्थापामार्गशमीनां समिधां प्रत्येकं शतद्वयेन सह होमः । इन्द्रादित्यादिकैः शान्तिकैः त्र्यम्बकमित्यादिपौष्टिकैर्हुत्वा देवस्य पादस्पर्शनम् । पुनर्हुत्वा नाभिस्पर्शनम् पुनर्हुत्वा वक्षः स्पर्शनम् । पुनर्हुत्वा वक्त्रस्पर्शनम् । पुनर्हुत्वा शिरः स्पर्शनम् । एतावता ग्रन्थसन्दर्भेण शतद्वयेन 'इति स्पष्टनिर्देशेन शान्तिकैरष्टोत्तरशतहोमः पौष्टिकैश्चाष्टोत्तरशतहोमः प्रतिसमिधं 'इति सप्रमाणमुपपन्नम् । एतेन चतुःपञ्चाशत्संख्यया होमवादिनो निरस्ताः ।

२९ विविधपद्धतिषु मन्त्रभेदनिरूपणम्, कुत्रच्छान्तिकपौष्टिकोमर्निर्देशाभावश्च ।

यद्यपि ऋग्वेदे 'शम इन्द्राग्नी०' इति पञ्चदशर्चं शान्तिसूक्तम्, शुक्लयजुर्वेदे 'ऋचं वाचं० २४ शान्त्यध्यायः सामवेदे शान्तिलिङ्गका मन्त्राः अथर्ववेदे पुनरनेकानि शान्तिकसूक्तानि पौष्टिकसूक्तानि च

सन्ति ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदेषु लिङ्गदेवतान्यायेन पौष्टिका अनेके मन्त्रा उपलभ्यन्ते, तथापि तेषां सूक्तानां प्रतिष्ठाकर्मणि समावेशासम्भवादनवस्थाप्रसङ्गाच्च 'शान्तिकैः पौष्टिकैः' इति बहुवचनोपदेशाद् द्व्यधिकसंख्यायाः प्रथमोपस्थितत्वात् प्रायः सर्वैः पद्धतिकृद्भिर्द्व्यधिका मन्त्राः शान्तिकपौष्टिकहोमयोर्निरुक्ताः ।

यथा १ ऋग्वेदे मयूखकृता १ शन्नो वातः० २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नो देवी० शान्तिकाः ३
पौष्टिकाः १ पुष्टिर्नरण्वान्० २ वास्तोष्पते० ३ अमीवहा० ४ त्र्यम्बकं यजामहे० ४
प्रतिष्ठात्रिविक्रमपद्धतौ-शान्तिकाः १ शन्नोवात० २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नोदेवी० ४ द्यौः शान्ति० ४
पौष्टिकाः-१ इह पुष्टिं० (सौत्रः) पुष्टिर्नरण्वा० ३ गयस्फानो अमीवहा०
४ अयमग्निः पुरीष्यो० ५ त्र्यम्बकं० ५
प्रतिष्ठासङ्ग्रहे शान्तिकाः० १ शन्नो वातः २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नो देवी० ३
पौष्टिकाः १ पुष्टिर्नरण्वान्० २ गयस्फानो अमीवहा० ३ गयस्फानः प्रतरण०
४ शिवो नामासि० ५ त्र्यम्बकं ५
प्रतिष्ठासारदीपिकायां शान्तिकाः १ शन्नो वातः २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नो देवी० ३
पौष्टिकाः १ पुष्टिर्नरण्वान्० २ गयस्फानो अमीवहा० ३ त्र्यम्बकं० ३
प्रयोगदर्पणे पद्मनाभीये शान्तिकाः १ शन्नो वातः २ अहानिशं० ३ शन्नो देवी० ४ द्यौः शान्ति०४
पौष्टिकाः १ अयमग्नि० २ गयस्फानः प्रतरण० ३ इह पुष्टिं० ४ त्र्यम्बकं० ४
प्रतिष्ठाप्रभौ शान्तिकाः १ शन्नो वातः० २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नो देवी० ३
पौष्टिकाः १ अयमग्निः पुरीष्यो० २ याते धामानि हविषा० ३ त्र्यम्बकं० ३

प्रतिष्ठावासुदेव्यादिपद्धतिषु शान्तिकपौष्टिकहोमविषये मौनमेव समालम्बितम् । प्रतिष्ठेन्दौ मात्स्यवचनान्यनूद्यापि नाधिकः प्रकाशः कृत इत्याश्चर्यम् ।

उपरिलिखितभिन्नपद्धतिनिर्दिष्टमन्त्रसंख्यासमालोचनेन, मन्त्रविभागपक्षो, न समर्थनमाप्नोति । एवं ऋत्विग्विभागमादायैव मन्त्रसमुदायान्ते स्वाहापदं संयोज्य शान्तिकपौष्टिकहोमकरणपक्षः, श्रेयान् । एकाधिककुण्डपक्षेऽयं होम आचार्यकुण्ड एव करणीय इति प्रतिपादितम् । तथापि पञ्चकुण्ड्यां प्रतिकुण्डं समित्पञ्चकमादाय पञ्च पञ्च ऋत्विज उपवेश्य शान्तिकैरेकविंशतिवारम्, आचार्यकुण्डे च त्रिवारमधिकहोमेन विभागपक्षः सिध्यति । एवमेव पौष्टिकैरपि होमः । नवकुण्ड्यां पुनः प्रतिकुण्डं पञ्च पञ्च ऋत्विज उपवेश्य द्वादशवारं शान्तिकैः पौष्टिकैश्च द्वादशवारं होमः कार्यः । इति शान्तिकपौष्टिकहोमयोरपि समानतन्त्रत्वेन एकाधिकपञ्चनवकुण्डपक्षयोर्विभागः सिध्यतीति स्वीकरणीयमेव ।

प्रतिवेदं शान्तिकपौष्टिकमन्त्राणां बाहुल्यात् के ग्राह्याः ? के न ग्राह्याः ? विषयेऽस्मिन् पद्धतिकारा एव प्रमाणम् ।

४० मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालहोमविचारः ।

यद्यपि 'शिरःस्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत्' इति मात्स्यवचनेनानुवादप्राप्तं समित्पञ्चकमेव मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालहोमे प्राप्नोति तथापि निर्णयसिन्धुकृता 'समित्पञ्चकं तिलाज्ये च, तिलस्थाने चरुर्वेति द्रव्यसप्तकमुक्तम् । किन्तु नारदपञ्चरात्रे तिलघृतयोरन्यतरदेकमेव वा इति कथनादावशयकऋत्विक्संख्यानुपलम्भात् सौकर्याच्च तिलैरव होमः सम्भवति कुर्वन्ति च याज्ञिकास्तिलहोमम् । होमसंख्या स्कान्दे संग्रहे प्रतिष्ठाशिरोमणौ च अष्टोत्तरसहस्र-अष्टोत्तरशत-अष्टाविंशति-अष्टान्यतमसंख्याप्रतिदैवतं महदल्पव्यवस्थया ग्राह्या । मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालहोमे मन्त्राः स्वशाखोक्ता लिङ्गमन्त्रास्तदभावेऽन्यशाखोक्तमन्त्रग्रहणेऽपि न कश्चिद् दोषः, सर्वस्य वेदस्यैकत्वात् गृह्यसूत्रादिषु परशाखीयलुप्तशाखीयमन्त्राणां समाम्नानादन्यशाखीयमन्त्रैर्होमादिकरणे शाखारण्डत्वादिशङ्का परास्ता ।

४१ पञ्चकुण्डीनवकुण्डीपक्षयोर्मूर्त्तिमूर्त्यधिपतिलोकपालहोमविभागव्यवस्था ।

इत्थं पञ्चकुण्डीपक्ष आचार्यकुण्डं विहाय पूर्वकुण्डे १ पृथिवी २ शर्व ३ इन्द्र १ अग्नि २ पशुपति ३ अग्नि मूर्त्तिद्वयपतिद्वयलोकपालमन्त्रैर्होमः । दक्षिणकुण्डे-१यजमान २ उग्र ३ यम १ अर्क २ रुद्र ३ निर्ऋति - इति द्वयम् । पश्चिमकुण्डे १ जल २ भव ३ वरुण, १ वायु २ ईशान ३ वायु, इति द्वयम् । उत्तरकुण्डे च १ सोम २ महादेव ३ सोम, १ आकाश २ भीम ३ ईशान - इति द्वयम् । मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालानां द्वयं द्वयं निर्दिष्टसंख्यया तिलैर्होतव्यम् ।

नवकुण्डीपक्षे पुनराचार्यकुण्डं विहाय पूर्वकुण्डे - १ पृथिवी २ शर्व ३ इन्द्र, आग्नेये - १ अग्नि २ पशुपति ३ अग्नि, दक्षिणे-१यजमान २ उग्र ३ यम, नैर्ऋते-१अर्क २ रुद्र ३ निर्ऋति, पश्चिमे-१ जल २ भव ३ वरुण, वायव्ये-१ वायु २ ईशान ३ वायु, उत्तरे १ सोम २ महादेव ३ सोम, ईशाने १ आकाश २ भीम ३ ईशान, इत्येताः प्रतिकुण्डं एकैकास्तिलैर्होतव्याः ।

इयं व्यवस्था यद्यपि सर्वदेवप्रतिष्ठासामान्या तथापि तत्तद्देवताप्राधान्यं पुरस्कुर्वद्भिस्तासां तासां मूर्त्तीनां मूर्त्तिपतीनाञ्च तत्तद्देवताकलिङ्गमन्त्रा ग्राह्याः । लोकपालेषु न कश्चिद् विशेषः । वैष्णवे शैवे च पञ्चमूर्त्तिस्वीकारपक्षे तत्तन्मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलिङ्गकैर्मन्त्रैर्होमः । अष्टमूर्त्तिपक्षस्वीकारे गणेशदेवीविष्णुसूर्यादीनां मूर्त्तयः पृथिव्यादय एव । मूर्त्तिपतीनां पुनस्तत्तद्देवतालिङ्गकैरष्टमन्त्रैर्होमः कार्यः । एतन्मूर्त्तिपतिभेदविषयक विवरणं प्रयोगे प्रकटीकरिष्यामः ।

४२ स्थाप्यदेवताहोमः । पिण्डिकायाश्च देवपत्नीलिङ्गकमन्त्रेण होमः ।

स्थाप्यदेवता उद्दिश्य प्रतिष्ठावासुदेव्यां १ पलाश २ उदुम्बर ३ अश्वत्थ ४ अपामार्ग ५ शमी

समित् ६ चरु ७ तिल आज्यरूपं द्रव्याष्टकं १००८ वा १०८ संख्यया होतव्यमित्युक्तम् । निर्णयसिन्धौ पञ्चसमिधः चरुः आज्यम् चरुस्थाने तिलान् वेति द्रव्यसप्तकेन होम उक्तः । नारदपञ्चरात्रे तिला आज्यं वेत्येकमेव द्रव्यमुक्तम् । सामान्यतो याज्ञिकाः सौकर्यार्थं घृताक्ततिलैरेव होमं कुर्वन्ति ।

अत्र स्थाप्यदेवताहोमे तत्तल्लिङ्गकस्य वैदिकमन्त्रस्य होमः । वीरमित्रोदये मन्त्राणां चातुर्विध्यमुक्तम् १ वैदिकाः २ पौराणाः ३ तन्त्रागमोक्ताः ४ नाममन्त्राश्च । एतांश्चतुरो विहाय अस्मादृशै रचितैःसंस्कृतैः प्राकृतैर्वा मन्त्रैर्होमो भवितुं नार्हत्येव शास्त्रानुक्तत्वात् । विषयेऽस्मिन् केचिद् वदन्ति यद्रामकृष्णादीनां मनुष्यत्वात् कथं तेषां देवतात्वमिति ? अत्रोत्तरम्, इमे न मनुष्याः किन्तु प्रतिकल्पं धर्मरक्षार्थमवतरन्तो देवा एव, पुनश्च ऋषिभिः प्राचीनैर्वेदतन्त्रागमेषु तानुद्दिश्य मन्त्राणां निर्देशात्तेषां देवतात्वमप्रतिहतम् । येन केनचिदाचार्येण भक्तेन सज्जनेन वा संस्कृते प्राकृते कृतानां पद्यानां स्तोत्राणां नाम्नां वा होमे तु शास्त्रविधानानवस्थाप्रसङ्गः प्राप्नुयात् । तेन शास्त्रं स्वमहिम्ना दूरतः परित्यज्य संस्कृतप्राकृतभाषापद्यस्तोत्रनामा-वलिहोमादिकर्तारो दूरत एव वन्द्याः, तादृशहोमे शास्त्रवचनानुपलम्भात् ।

अस्तु । स्थाप्यदेवतालिङ्गकेन मन्त्रेण तिलाज्यान्यतरद्रव्येण १००८ वा १०८ संख्यया होमः । ततः शैवे-पिण्डिकामुद्दिश्य (गौरीर्मिमाय० आयङ्गौ) इति गौरीवाचकस्वशाखोक्तमन्त्रेण तेनैव द्रव्येण १००८ वा १०८ होमः । वैष्णवे पिण्डिकामुद्दिश्य (ह्रीश्चते लक्ष्मीश्च० श्रीश्चते०) इति लक्ष्मीवाचकस्वशाखोक्तमन्त्रेण होमः । सर्वासु पद्धतिषु पिण्डिकायाः सिंहासनपर्यायाया देवपत्नीरूपेण परिगणनं कृतम् ।

४३ देवीप्रतिमासु पिण्डिकामन्त्रत्वेन देवीमन्त्रान्तरग्रहणप्रतिपादनम् ।

यत्र पुनः गौरीलक्ष्मीदुर्गागायत्रीसरस्वत्यादयः प्रधाना देवताः स्वशाखोक्तमन्त्रैः प्रधानहोमः तत्रापि पिण्डिकासत्त्वात् पिण्डिकायाः पृथगधिवासनान्न्यासाच्च पिण्डिकायाः कृते पृथग्देवीमन्त्रेण होमः । प्रतिष्ठात्रैविक्रम्यामेतद् विवृतम्, देवीप्रतिमायां प्रतिष्ठाप्यमानायां देवीनां निजमन्त्रेणैव होमः इति । अनेन पिण्डिकायाः पार्थक्यात् प्रधानदेवीहोमात् पृथग्देवीमन्त्रेण होमः सिध्यति । प्रतिष्ठेन्दौ परिवारदेवताहोमे प्रधानदेवताहोमापेक्षयाऽल्पीयस्त्वं संख्यायामुक्तम् । 'गुणविशेषे फलविशेष' इति न्यायेन प्रतिदैवतं १००८ वा १०८ संख्यया होमकरणे फलाधिक्यं बोध्यम् ।

वर्तमानकाले ह्येकस्मिन् प्रासादे मन्दिरे वाऽविचार्य अनेकाः प्रधानदेवताः सपरिवाराः स्थाप्यन्ते तत् शिल्पशास्त्रविरुद्धं सदपि सिद्धगतिचिन्तनन्यायेन, तस्यास्तस्याः प्रधानदेवतायाः तत्पिण्डिकायाश्च सुविचार्य होमः कर्तव्य एव । अनेकासां देवतानां वैदिकादिमन्त्राणां यथासम्भवं विचारं मन्त्रपरिशिष्टे करिष्यामः ।

४४ पञ्चकुण्डेषु, नवकुण्डेषु च विशिष्टहोमवर्णनम् ।

पञ्चकुण्डीपक्षे विशिष्टो होमः देवमूलमन्त्रेण पूर्वकुण्डे आज्येन-८ दक्षिणकुण्डे दध्ना-८पश्चिमकुण्डे क्षीरेण-८ उत्तरकुण्डे मधुना - ८ वारम्, नवकुण्ड्यां पुनराग्नेये ॐ वौषट्-आज्येन-८नैर्ऋत्ये-तत्सवितु० दध्ना-८ वायव्ये क्षीरेण जातवेदसे ८ ईशानकुण्डे मधुना ब्रह्मजज्ञानं-८ आचार्यकुण्डे मिलितक्षीरदधिमधुघृतैः मूर्धानं दिव० ८ इत्युक्तम् ।

पञ्चकुण्डीनवकुण्डीपक्षयोर्विशिष्टो होमः प्रतिष्ठाभास्करे कमलाकरे चोक्तः । स प्रतिष्ठाप्रभात्रुल्लिखितो द्रष्टव्यः ।

४५ व्याहृतिहोमवर्णनम् । शतान्ते सहस्रान्ते पूर्णाहुतेः स्वातन्त्र्यवर्णनम् ।

मात्स्ये-शान्तिकैः पौष्टिकैस्तद्वन्मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः । इति निर्देशाद् व्याहृतिहोमं कृत्वा प्रधानहोमः कर्तव्य इत्यापतति । तथापि प्रतिष्ठायां स्थाप्यदेवतानां प्राधान्यमुचितं मत्वा याज्ञिकाः पूर्वं स्थाप्यदेवताहोमं कृत्वा व्याहृतिहोमं कुर्वन्ति । स च व्याहृतिहोमः १ तिल २ यव ३ व्रीहि ४ चरु ५ आज्य इति द्रव्यपञ्चकेन केवलेन आज्येन तिलैर्वा समस्तव्याहृतिभिः १००८ वा १०८ संख्यया भवति । अत्र व्याहृतीनामुपांशुत्वम्, प्रणवस्वाहापदयोरुच्चैः पाठ इति ज्ञेयम् ।

मात्स्ये-शतान्ते वा सहस्रान्ते स्रुक्पूर्णाहुतिरिष्यते । समपादस्तथोर्ध्वस्तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत् अनेन वचनेन शान्तिकपौष्टिकमूर्त्तिमूर्त्यधिपतिलोकपालस्थाप्यदेवताव्याहृतिहोमान्ते साकल्येन स्रुचि द्वादशगृहीतेन चतुर्गृहीतेन वा आज्येन पूर्णादर्वीत्येकेन मन्त्रेण मूर्धानं दिवो० इति मन्त्रेण वा समपादस्तिष्ठन्नाचार्यः पूर्णाहुतिं जुहुयात् । इयं पूर्णाहुतिः स्वातन्त्र्येण विहितेति नास्या उत्तरतन्त्रोक्तपूर्णाहुत्या साकं सम्बन्धः इति प्रतिष्ठेन्दौ । पूर्णाहुत्यनन्तरं ॐ विश्वतश्चक्षु० इति मन्त्रेण प्रतिमानां पादादिशिरोऽन्तमालभनम् । 'कृतममुं होमं देवाय निवेदयामि' इति देवदक्षिणकर्णे होमनिवेदनम् । एवं द्वितीयदिनसाध्यं होमकर्म समाप्तम् ।

४६ पिण्डिकाधिवासनप्रतिष्ठापने । पिण्डिकाप्रासादतत्त्वहोमयोः कृताकृतत्वञ्च ।

पिण्डिका नाम सिंहासनापरपर्यायः यथोचितनिर्दिष्टस्थाने स्थाप्यदेवतापादपीठिकाविस्तरायाममानात् किञ्चिदधिकगर्तसंयुक्तः पाषाणविशेषः सिंहासनाकारः । तत्र पाषाणत्रयं देवताप्रतिमापादपीठिकाधिकमानमितगर्तयुक्तं निवेशनीयम् - प्रथमा कूर्मशिला तदुपरि तदन्तर्गता ब्रह्मशिला तदुपरि तदन्तर्गता पिण्डिका-इति । एतदसम्भवे देवतापीठरूपः । पाषाणविशेष उक्तस्थाने देवतापादपीठिकानिवेशनगर्तयुक्तस्त्रिवप्रः पिण्डिकारूपः पूर्वं स्थिरीकरणीयः । पिण्डिकायां जलनिर्गमाय

शुद्धप्राच्यां शुद्धोदीच्यां वा सूक्ष्मा प्रणाली विधेया । शिवस्थापनेऽपि गर्भगृहमध्यसूत्रद्वययुतौ कूर्मशिला ब्रह्मशिला पिण्डिकारूप पाषाणत्रयं मध्ये गर्तयुतं शिवलिङ्गसमावेशयोग्यं जलाधारीतिपर्यायवाच्यं प्रणालं प्रतिष्ठातः पूर्वमेव स्थिरीकरणीयम् । प्रणाल्या अग्रं शुद्धप्राच्यां शुद्धोदीच्यां वा प्रासादद्वारस्थितिं विचार्य कर्तव्यम्, यथा जलनिर्गमो द्वारमध्ये न पतेत् । प्राचीनेषु केषुचिन्मन्दिरेषु कूर्मशिलाब्रह्मशिला पिण्डिकारूपं पाषाणत्रयं दृश्यते । वर्तमानयुगे पिण्डिकैव त्रिवप्रा क्रियते । शिवस्य प्रणाली वर्तुला चतुरस्राऽष्टास्रा वा भवति । तत्रापि जलनिर्गमस्तु प्राच्यामुदीच्यां वा शुद्धायां कार्यः । प्रणालीनिर्माणविधिर्दैर्ध्यायामविस्तराः शिल्पशास्त्रादवगन्तव्याः ।

इदं पिण्डिकाधिवासनं प्रासादाधिवासनोत्तरं प्रतिष्ठादिनात्पूर्वदिने प्रतिष्ठादिने प्रातर्वा कार्यम् । सर्वपद्धतिषु पिण्डिकाया देवपत्नीत्वेन निर्देशः कृतः तर्हि देवीप्रतिमाप्रतिष्ठायां पिण्डिकायाः किंदेवतात्वमिति विचारे प्रतिष्ठात्रिविक्रम्यां पिण्डिकाया अपि देवीरूपत्वं सिद्धान्तितमिति न कश्चिच्छङ्कावसरः । एवं देवीप्रतिष्ठायामपि पिण्डिकायाः स्वातन्त्र्येण देवीमन्त्रेण होमः कार्यो होमकाले ।

पिण्डिकाधिवासने पिण्डिकान्यासे ॐ यं थं भं फट् (लक्ष्म्यै-इति वैष्णवे-गौर्यै इति शैवे) हृदयाय नमः - इत्यादिपञ्चाङ्गन्यासो विहितो वासुदेव्याम् । पद्मनाभादिषु ॐ नमो व्यापिनि स्थिरे अचले ध्रुवे ह्रीं लं स्वाहा-इति मन्त्रेण न्यास उक्तः कार्यः । देवीपिण्डिकान्यासे तु तत्तद्देवीनामोल्लेखः पिण्डिकापञ्चाङ्गन्यासे कार्य इति भाति । अथवा शैवे-ॐ यं थं भंफट् गौर्यै इति, निखिलजगतो विष्णुमयत्वाच्छैवभिन्ने-लक्ष्म्यै-इत्यूहेन न्यासकरणं सुकरः पन्थाः । एवं गौर्या-गौरीर्मिमाय॰ आयङ्गौः॰ इति मन्त्रः वैष्णवे-ह्रीश्च ते॰ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च॰ मन्त्रो ग्राह्यः । स्वशाखानुसारिगौरीलक्ष्मीविङ्गक-मन्त्रग्रहण-मन्यशाखिभिः कार्यम् । प्रतिष्ठाहेमाद्रौ विष्णोः - श्रीश्चते॰ श्रीरसि॰ श्रीनिधीन॰ श्रीपति॰ इति पिण्डिकान्त्राः । शिवस्य आपोहिष्ठा॰ गौरीर्मिमाय॰ जातवेदसे॰ इत्यादयः । ब्रह्मणो गायत्र्यादयः । सूर्यस्य-उषस्तच्चित्रं॰ प्रत्यदर्शी॰ इत्यादयः ।

एवं पञ्चाङ्गन्यासानन्तरं मूर्तिमूर्तिपतिपिण्डिकामन्त्रमूर्त्यादिन्यासानन्तरं पिण्डिकाप्रतिष्ठां कृत्वा अकारादिवर्णानिन्द्रादीन् लोकपालानावाहयेदष्टदिक्षु । ततः पिण्डिकागर्ते रत्नन्यासं धान्यनिक्षेपं सुगन्धिद्रव्य-औषधि-सकलधातु-हरितालमनःशिलगन्धकसुवर्णमाक्षिकगैरिकपारदादिखनिजानि सौवर्णं राजतं वा कूर्मं देववाहनं निक्षिप्य प्रतिष्ठां कृत्वा पिण्डिकामेकरात्रं सद्यो वाऽधिवासयेत् । पिण्डिकातत्त्वानां होमचिकीर्षायां समिद्घ्रततिलाज्याहुतिभिः प्रत्येकमष्टाष्टवारं एकैकाज्याहुत्या वाऽऽचार्यकुण्डे होमः स्थाप्यदेवताहोमकाले कर्तव्यः । अयञ्च कृताकृतः । एवं प्रासादतत्त्वहोमोऽपि कृताकृतः ।

४७ वापीकूपतडागारामदेवतायतनप्रतिष्ठासु यूपप्रतिष्ठाविचारः ।

वापीकूपतडागारामातिदेशात् प्रतिष्ठायां पञ्चारत्निदीर्घः क्षीरवृक्षजोऽष्टास्राकारो यूपो निवेशनीय

इति कैश्चिदुक्तम् । किन्तु यूपनिवेशनस्य पशुनियोजनमात्रप्रयोजनत्वात् प्रतिष्ठायां तद्विधेः सर्वथाऽप्राप्त्या यूपनिवेशनं नाद्रियन्ते शिष्टाः । प्रतिष्ठेन्दुकृता यूपनिवेशनस्य निष्प्रयोजनत्वं प्रतिपाद्य 'केवलमदृष्टार्थत्वमवेहि' इत्युक्त्वा स्वारुचिः प्रकटीकृता । अत एव सर्वैः पद्धतिकृद्भिरत्र विषये मौनमेव समालम्बितम् ।

४८ द्वारपालजाप्यवेदसूक्तविवरणम् ।

प्रतिष्ठायां यज्ञेषु च होमकाले पूर्वद्वारे-बह्वृचौ दक्षिणद्वारे कृष्णयजुर्वेदिनौ शुक्लयजुर्वेदिनौ वा पश्चिमद्वारि सामगौ उत्तरद्वारि चाथर्वणौ यागरक्षार्थं शास्त्रविहितानि सूक्तानि जपेताम् । तत्र मात्स्यमयूखादिषु सूक्तपाठे भेदः परस्परमवलोक्यते । तत्र मात्स्ये पूर्वद्वारि श्रीसूक्त पावमान सोमसूक्त सुमङ्गलसूक्तशान्त्यध्याय-इन्द्रसूक्त-राक्षोघ्नसूक्तानि पठनीयानि । दक्षिणद्वारे कृष्णयजुर्वेदिनौ-रुद्रसूक्त पुरुषसूक्त श्लोकाध्यायशुक्रियमण्डलाध्यायान् पठेताम्-तत्र प्रतिष्ठेन्दौ विवरणमस्य कृतम्-रुद्रं नमस्ते इत्यादि पुरुषसूक्तं सहस्रशीर्षा० श्लोकाध्यायः - देवसवितः प्रसुव यज्ञं० ब्रह्मविद्भृगुः० शुक्रियं० युञ्जते० मण्डलाध्यायः - आदित्यो वा यपयन्० इति, शुक्लयजुर्वेदिनौ-नमस्ते० सहस्रशीर्षा० देवसवितः प्रसुव० ऋचंवाचं० यदेतन्मण्डल० इमानि पठेताम् । सामगौ-वामदेव्यं-बृहद्-ज्येष्ठ-रथन्तर-पुरुषसूक्त-रुद्रसूक्त आज्यदोह-शान्त्यध्याय भारुण्डसामानि जपेताम् । अथर्ववेदिनौ-अथर्वाङ्गिरस-नील-रुद्र-अपराजित-देवी-मधु-रोधस शान्त्यध्यायसूक्तानि पठेताम् । विषयेऽस्मिन् मयूखे मात्स्यापेक्षया कश्चन भेदो निर्दिष्टः । पक्षद्वयात् यथेष्टं ग्राह्यम्, यावद्धोमं मन्त्रजपः ।

४९ अनेकदिनाधिवासने प्रतिष्ठाकर्मव्यवस्था । अधिवासनदिनेषु प्रतिदिनं कर्तव्यविधिप्रतिपादनम् ।

सर्वत्राधिवासनविषये सप्तपञ्चत्र्येकरात्रयामगोदोहनमात्ररूपा विकल्पाः प्रदर्शिताः । आगमादिषु जलाधिवासविषयेऽगाधह्रदे नद्यां तडागे वा मासं यावदधिवासनं प्रतिमायाः प्रोक्तम् । एतदधिवासनं पाषाणादीनां सच्छिद्रत्वदौर्बल्यसन्धानादिपरीक्षार्थमर्चाशुद्ध्यर्थं विहितमिति भाति ।

वर्तमानकाले नानावर्णायुधालङ्कारादिसहिताः प्रोज्ज्वलवर्णरञ्जिताः प्रतिमा आपणात् क्रीत्वाऽनीयन्ते । एवं प्रायेण दिनत्रयसाध्यप्रतिष्ठायामेकरात्रं दिनद्वयप्रतिष्ठायां याममात्रं गोदोहनकालं वा यावत् प्रतिमानां जलाधिवासनं क्रियते ।

नवदिनसाध्यप्रतिष्ठायां प्रथमेऽह्नि मण्डपप्रवेशान्तं कर्म द्वितीयेऽह्नि जलयात्रा दिग्रक्षण पञ्चगव्यकरणाग्निस्थापनप्रधानदेवताग्रहयोगिनीक्षेत्रपालस्थापनम् । तृतीयेऽह्नि जलाधिवासनं पञ्चमदिनान्तम् । तृतीयचतुर्थपञ्चमदिनेषु जलाधिवासितप्रतिमासन्निधौ सुवर्चसं दीपं स्थाप्य ब्राह्मणद्वारा

अघोरमन्त्रराक्षोघ्नसूक्ततत्तद् देवतासूक्तादिजपः कार्यः नान्यत् किञ्चित् । तृतीयेऽह्नि ग्रहहोमः । चतुर्थेऽह्नि प्रासादाङ्गभूता वास्तुशान्तिः, पञ्चमेऽह्नि प्रासादस्नपनम् । षष्ठेऽहनि प्रतिमानां स्नपनविधिः तत्त्वन्यासहोमः धान्यशय्याधिवासः तत्त्वन्यासाः प्रासादाधिवासनम् शान्तिकपौष्टिकहोममूर्त्तिमूर्त्यधिपतिलोकपालस्थाप्य-देवताव्याहृतिहोमास्तत्त्वन्यासा यावच्छय्याधिवासनं कार्याः । अयं शय्याधिवासः षष्ठसप्तमाष्टमदिनत्रयमितो भवति । अष्टमदिने पिण्डिकाधिवासनञ्च कार्यम् । नवमदिने प्रातः स्थापितदेवतापूजनं प्रासाद दिग्होमं मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपाल स्थाप्यदेवताहोमं च कृत्वा सुमूहूर्ते प्राणप्रतिष्ठा अघोरहोमः महापूजनादि प्रतिष्ठाहोमो व्याहृतिहोम उत्तरतन्त्रञ्च ।

एवं सप्तदिन साध्यप्रतिष्ठायां प्रथमे मण्डपप्रवेशान्तम् द्वितीये जलयात्रा मण्डपाङ्गणेशादिदेवतास्थापनान्तम् । तृतीयेऽह्नि प्रासादवास्तुग्रहहोमान्तम्, तृतीये जलाधिवासः, चतुर्थे स्नपनादिव्याहृतिहोमान्तम् । चतुर्थपञ्चमषष्ठदिनान्तं शय्याधिवासः । चतुर्थे प्रासादस्नपनाधिवासनान्तम् । पञ्चमेऽहनि पिण्डिकाधिवासनं होमादि । षष्ठेऽहनि शान्तिकपौष्टिकादिव्याहृतिहोमान्तम् प्रासाददिग्होमः । सप्तमेऽहनि प्रतिष्ठादिनसाध्यं कर्म उत्तरतन्त्रञ्च ।

पञ्चदिनसाध्यप्रतिष्ठायां प्रथमेऽहनि ग्रहहोमान्तम् । जलाधिवासश्च । द्वितीयेऽहनि जलयात्रा स्नपनादिशय्याधिवासनम् । तृतीये दिने प्रासादवास्तुशान्तिः होमादि । चतुर्थेऽहनि प्रासादस्नपनाधिवासनपिण्डिकाधिवासनम् होमादि । पञ्चमे दिने प्रतिष्ठादिनसाध्यं कर्म होमादि उत्तरतन्त्रञ्च ।

अत्र विषये 'अनेकदिननिर्वर्त्येऽप्यधिवासनकर्मणि । होमानष्टौ सहस्राणि विदधीरन् पृथक् पृथक् । इति वचनात् स्नपनानन्तरं यावन्ति दिनानि शय्याधिवासने त्रीणि पञ्च वा तावन्ति दिनानि यावत् प्रतिदिनं शान्तिकपौष्टिकहोम मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालस्थाप्यदेवताहोमाः । तत्त्वन्यासहोम तत्त्वन्यासाश्चावश्यं कार्याः । प्रासादपिण्डिकाङ्गभूतकार्यं यथायथमायोजनीयम् । त्रिदिनसाध्यप्रतिष्ठायां तु स्नपनोत्तरमेकरात्रिाधिवासपक्षेऽयं व्यवस्थाप्रश्न एव न समुत्पद्यते ।

एवं प्राणप्रतिष्ठामुहूर्त्तपूर्वदिनसाध्यं कर्म कृत्वा सायं स्थापितदेवतापूजननीराजनाद्याशीर्वादान्तं कुर्यात् ।

९० प्रासाददिग्घोमः । तस्य च कृताकृतत्वम् ।

नूतनः प्रासादश्चेत् प्रासादाष्टदिक्षु स्थण्डिलानि कृत्वा पञ्चभूसंस्काराग्निस्थापनदक्षिणतो ब्रह्मासनाद्याज्यभागान्तं कृत्वाऽज्येन देवमन्त्रेण गायत्र्या वा प्रतिस्थण्डिलमष्टोत्तरशताष्टाविंशत्यष्टान्यतम-संख्यया हुत्वाऽज्यसंस्रवान् पात्रान्तरे प्रक्षिप्य नवाहुतिस्विष्टकृत्संस्रवप्राशनादिप्रणीताविमोकान्तं पात्रान्तरप्रक्षिप्तं संस्रवजलमेकीकृत्य वा कार्यः । प्रोक्षण्यां निक्षिप्तसंस्रवाणां होमान्ते

प्राशनरूपप्रतिपत्तिरूपत्वात् प्रधानहोमसंस्रवाणां तु देवोत्थापनैकहेतुत्वात् स्थण्डिलेशाने कलशान् निधाय तेषु प्रधानाज्याहुतिसंस्रवप्रक्षेपः कार्यः ।

यत्र ग्रामनगरादिषु संकीर्णत्वाद् देवतायतनाद्दिक्षु स्थण्डिलहोमादिकरणासम्भवः तत्र प्रासादात् पुरतः सभामण्डपे बहिर्वा स्थण्डिलमेकं विधायाज्यभागान्ते ८६४, २२४ ता ६४ संख्यया प्रधानमन्त्रेण गायत्र्या वाऽज्येन हुत्वा ऐशानकलशे संस्रवान् प्रक्षिप्य नवाहुतिस्विष्टकृदाद्यिप्रणीताविमोकान्तं कृत्वा संस्रावकलशं सुरक्षितं स्थापयेत् ।

अयं प्रासाददिग्होमः प्रतिष्ठापद्मनाभत्रिविक्रमादिभिरुक्तः । अन्यैश्च नोक्तः । अस्मिन् विषये प्रतिष्ठोल्लासे-तत आचार्यस्ताम्रपात्रे पूर्वस्थापितकुण्डकलशेभ्यः किञ्चित् किञ्चित् तोयमादाय मूलमन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य सर्वतीर्थमयं ध्यात्वा तेन देवस्य शिरोऽभिषिच्य, इत्युक्तम् । तेन कुण्डैशानस्थापितशान्तिकलशजलमेकीकृत्य मूलमन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्रितं सर्वतीर्थमयं ध्यात्वा शिरोऽभिषिच्य देवप्रबोधनमिति तात्पर्यम् । एतत् प्रतिष्ठामुहूर्तात्प्रागपि प्रातर्भवितुमर्हति । 'किञ्चित् किञ्चित्' इत्युक्त्या शान्तिकलशानां परत्रोपयोगः सूचितः । एवञ्च दिग्घोमस्य कृताकृतत्वम् । करणे फलविशेषः । जीर्णप्रासादसंस्कारे कृते दिक्होमो न भवति तस्य प्रासादार्थत्वाभावात् ।

५१ गर्भगृहे देवतास्थापनदेशविषये प्रकारवर्णनम् ।

अस्मिन् विषये प्रतिष्ठात्रैविक्रम्यां वासुदेव्यां हेमाद्रिराजवल्लभादिशिल्पशास्त्रग्रन्थेषु भूयान् विचारः कृतः । तत्सर्वं याज्ञिकानां शिल्पिनाञ्च सुकरं भवेदिति सकलपक्षाणां सारमाकलय्य साररूपेण निरूप्यते । तत्र प्रथमः पक्षः - द्वारसंलग्नान्तरभित्तितो गर्भगृहस्य पश्चाद्भित्तिपर्यन्तं यद् दैर्घ्यं भवेत् तस्य पूर्वार्धं परित्यज्य भित्तिपर्यन्तापरार्धदैर्घ्यस्याष्टाविंशतिभागान् कृत्वा गर्भगृहसूत्रचतुष्टमध्यचिह्नं यवेन यवार्धेन वा वेधदोषपरिहारार्थं विहाय १ शिवलिङ्गं स्थापयेत् । ततः पश्चाद्भित्तिपर्यन्तमष्टाविंशतिभागान् कृत्वा तत्तद्भागमध्ये प्रतिमापादपीठिकामध्यं समापतेत् तत्र तं तं देवं स्थापयेत् । तदधो निर्दिश्यते ।

१ शिवलिङ्गम् । २ हिरण्यगर्भः । ३ नकुलीशः ।
४ सावित्री । ५ अर्धनारीश्वररुद्रः । ६ स्कन्दः ।
७ वेद सरस्वती पितामहाः । १८ भैरवः ।
८ वासुदेवः वराहः उमा-जलशायी । १९ क्षेत्रपालः ।
९ जनार्दनः सर्वविष्णुरूपाणि हरिः शम्भुः । २० कुबेरादि यक्षाः ।
उमा मिश्रमूर्त्ति दत्तात्रेय हरिहर पितामहाः । २१ हनुमान् ।
१० विश्वेदेवाः । २२ भृगुः ।
११ अग्निः । २३ घोरः ।

१२ भास्कर-पितामह-चन्द्र-सूर्य-ऋषयः ।
१३ दुर्गा ।
१४ गणपतिः ।
१५ ग्रहाः ।
१६ मातरः, सर्वदेव्यः ।
१७ गणाः ।
२४ दैत्यः ।
२५ राक्षसाः ।
२६ पिशाचः ।
२७ भूतानि ।
२८ न कश्चिद् देवः-एतत्कोष्ठगतदेवसमान-देवता अपि तस्मिन् स्थाने स्थापनीयाः ।

द्वितीयः पक्षः - ब्रह्मपदे शिवस्थानं परित्यज्य शेषभागस्य, समान् पञ्चभागान् कृत्वा १ प्रथमे यक्षादयः २ द्वितीयेऽखिलदेवताः ३ तृतीये ब्रह्मजिनादयः ४ चतुर्थे गणपति भैरव-क्षेत्रपालयक्षहनुमन्तः ५ पञ्चमे भृगु-घोर-दैत्य-राक्षस पिशाच-भूत-हराः । द्वितीयपक्षस्य इदं तात्पर्य्यं यद् मध्यसूत्रादग्रेतनप्रथमभागार्धं त्यक्त्वा शेषसार्धसप्तविंशतिभागानां पञ्चधा विभागे प्रत्येको भागः सार्धपञ्चभागात्मको भवति । प्रथमपक्षनिर्दिष्टपक्षदेवतापेक्षया कश्चन भेदोऽत्र विद्यते ।

तृतीय पक्षः - गर्भगृहमध्यसूत्रात् पश्चाद् भित्तिपर्यन्तं समान् सप्तभागान् कृत्वा १ ब्राह्मे-शिवः २ प्राजापत्ये हरिब्रह्मदिवाकराः ३ सौम्ये-षडानन-गौरी-लक्ष्मी-दुर्गागणाधिपाः ४ ऐन्द्रे-मातृ-दुर्गा-लोकपाल-मारुत-ग्रहाः ५ गान्धर्वे-मुनि-नाग-सिद्धविद्याधरादयः ६ राक्षसे-यक्ष-रक्षांसि ७ पैशाचे-पिशाचाः - इति सप्तभागेषु प्रतिमास्तास्ताः स्थापनीयाः । सप्तभागकरणपक्षे प्रथमपक्षोक्ताष्टाविंशतिभागैः संकलने प्रतिभागं चतस्रो देवता इति तत्तद्भागेषु स्थापयितुं शक्यन्ते । अस्त्य त्राप्यल्पीयान् भेदः ।

चतुर्थः पक्षः - द्वारलग्नान्तरभित्तितः पश्चाद्भित्तिपर्यन्तं समान् सप्तभागान् कृत्वाऽग्रेतनसार्धत्रयभागान् परित्यज्य ततोऽर्धभागश्चतुर्थभागस्य १ ब्रह्मपदं शिवपदम् २ द्वितीये देवपदेऽष्टभागान् कृत्वा पञ्चमांशे-केशवादिचतुर्विंशतिदेवताः वाराह-सूर्य नृसिंहवैकुण्ठत्रैलोक्यमोहन-स्कन्दाः ३ तृतीये मनुष्यपदे-पञ्चमांशे-केशवादि चतुर्विंशतिप्रतिमाः आसीनाः स्थाप्याः । ४ चतुर्थे पिशाचपदे-दुर्गा-विनायक-मातृयक्षादयः स्थाप्याः ।

प्रतिष्ठास्थापनदेशनिर्णयो गर्भगृहनिर्माणात्परं द्वारमध्यसूत्रशाखाद्वय उत्तराङ्गकाष्ठादिविचारं प्रतिमा पादपीठकादैर्घ्यायामोच्चतां प्रतिमादृष्टिपदमुच्चतां सुचारुतया शिल्पिभिः शिल्पशास्त्राभिज्ञयाज्ञिकैर्वा सुविचार्य सिंहासनदैर्घ्यायामोच्चता देवस्थापनभागपश्चाद्भागाग्रेतनभागसोपानादि रेखाङ्कितं शास्त्रानुरोधेन विधेयम्, अन्यथादेवतास्थापने महती हानिः ।

पद्धतिषु 'कुण्ड्यलग्नास्तु मातरः' इति वचनं शिवालये पार्वतीमात्रविषयकं बोध्यम् तत्र भित्तिलग्ना भित्त्यन्तर्गतगवाक्षगता वा गौरी द्वारमध्यसूत्रसंगता स्थापनीया, यत्र पुनर्दुर्गा-गायत्री-लक्ष्मी-सरस्वत्यादिदेवीनां स्वतन्त्रः प्रासादः तत्र तु उपरि निर्दिष्टपक्षचतुष्टयादेकतमस्य सङ्गत्या स्थापनदेशनिर्णयः कार्यः ।

१२ भास्कर-पितामह-चन्द्र-सूर्य-ऋषयः ।
१३ दुर्गा ।
१४ गणपतिः ।
१५ ग्रहाः ।
१६ मातरः, सर्वदेव्यः ।
१७ गणाः ।
२४ दैत्याः ।
२५ राक्षसाः ।
२६ पिशाचः ।
२७ भूतानि ।
२८ न कश्चिद् देवः-एतत्कोष्ठगतदेवसमान-देवता अपि तस्मिन् स्थाने स्थापनीयाः ।

द्वितीयः पक्षः - ब्रह्मपदे शिवस्थानं परित्यज्य शेषभागस्य, समान् पञ्चभागान् कृत्वा १ प्रथमे यक्षादयः २ द्वितीयेऽखिलदेवताः ३ तृतीये ब्रह्मजिनादयः ४ चतुर्थे गणपति भैरव-क्षेत्रपालयक्षहनुमन्तः ५ पञ्चमे भृगु-घोर-दैत्य-राक्षस पिशाच-भूत-हराः । द्वितीयपक्षस्य इदं तात्पर्यं यद् मध्यसूत्रादग्रेतनप्रथमभागार्धं त्यक्त्वा शेषसार्धसप्तविंशतिभागानां पञ्चधा त्रिभागे प्रत्येको भागः सार्धपञ्चभागात्मको भवति । प्रथमपक्षनिर्दिष्टपक्षदेवतापेक्षया कश्चन भेदोऽत्र विद्यते ।

तृतीय पक्षः - गर्भगृहमध्यसूत्रात् पश्चाद् भित्तिपर्यन्तं समान् सप्तभागान् कृत्वा १ ब्राह्मे-शिवः २ प्राजापत्ये हरिब्रह्मदिवाकराः ३ सौम्ये-षडानन-गौरी-लक्ष्मी-दुर्गागणाधिपाः ४ ऐन्द्रे-मातृ-दुर्गा-लोकपाल-मारुत-ग्रहाः ५ गान्धर्वे-मुनि-नाग-सिद्धविद्याधरादयः ६ राक्षसे-यक्ष-रक्षांसि ७ पैशाचे-पिशाचाः - इति सप्तभागेषु प्रतिमास्तास्ताः स्थापनीयाः । सप्तभागकरणपक्षे प्रथमपक्षोक्ताष्टाविंशतिभागैः संकलने प्रतिभागं चतस्रो देवता इति तत्तद्भागेषु स्थापयितुं शक्यन्ते । अस्त्य त्राप्यल्पीयान् भेदः ।

चतुर्थः पक्षः - द्वारलग्नान्तरभित्तितः पश्चाद्भित्तिपर्यन्तं समान् सप्तभागान् कृत्वाऽग्रेतनसार्धत्रयभागान् परित्यज्य ततोऽर्धभागश्चतुर्थभागस्य १ ब्रह्मपदं शिवपदम् २ द्वितीये देवपदेऽष्टभागान् कृत्वा पञ्चमांशे-केशवादिचतुर्विंशतिदेवताः वाराह-सूर्य नृसिंहवैकुण्ठत्रैलोक्यमोहन-स्कन्दाः ३ तृतीये मनुष्यपदे-पञ्चमांशे-केशवादि चतुर्विंशतिप्रतिमाः आसीनाः स्थाप्याः । ४ चतुर्थे पिशाचपदे-दुर्गा-विनायक-मातृयक्षादयः स्थाप्याः ।

प्रतिष्ठास्थापनदेशनिर्णयो गर्भगृहनिर्माणात्परं द्वारमध्यसूत्रशाखाद्वय उत्तराङ्गकाष्ठादिविचारं प्रतिमा पादपीठकादैर्घ्यायामोच्चतां प्रतिमादृष्टिपदमुचतां सुचारुतया शिल्पिभिः शिल्पशास्त्राभिज्ञयाज्ञिकैर्वा सुविचार्य सिंहासनदैर्घ्यायामोच्चता देवस्थापनभागपश्चाद्भागाग्रेतनभागसोपानादि रेखाङ्कितं शास्त्रानुरोधेन विधेयम्, अन्यथादेवतास्थापने महती हानिः ।

पद्धतिषु 'कुण्ड्यलग्नास्तु मातरः' इति वचनं शिवालये पार्वतीमात्रविषयकं बोध्यम् तत्र भित्तिलग्ना भित्त्यन्तर्गतगवाक्षगता वा गौरी द्वारमध्यसूत्रसंगता स्थापनीया, यत्र पुनर्दुर्गा-गायत्री-लक्ष्मी-सरस्वत्यादिदेवीनां स्वतन्त्रः प्रासादः तत्र तु उपरि निर्दिष्टपक्षचतुष्टयादेकतमस्य सङ्गत्या स्थापनदेशनिर्णयः कार्यः ।

सप्तचत्वारिंशभागः, इत्येकोऽर्थः, अष्टौ भागान् कृत्वा तत्र सप्तमभागो नाम एकोनपञ्चाशत्एकपञ्चाशत्-त्रिपञ्चाशद्-पञ्चपञ्चाशदन्यतमभागे विष्णुदृष्टिरित्यपरोऽर्थः । अनुभवेनेदं सिद्धं यद्-४५-४७-४९-५१ भागा दृष्टियोग्या मनोहराश्च भवन्ति, त्रिपञ्चाशत्-पञ्चपञ्चाशद्भागौ गत्यन्तराभावे ग्राह्यौ यत एतद्भागद्वयग्रहणेन प्रतिमामस्तकाग्रमष्टमे पिशाचभागे पततीति न तच्छुभकरम् । अत्र आदितः त्रयोविंशत्यव्यक्तरूपभागानां सूक्ष्मयन्त्रत्वान्न तत्र दृष्टिः साधनीया ।

द्वितीय पक्षः - द्वारस्योदुम्बराद् द्वारदैर्घ्यस्य १ पृथिवी २ अप् ३ तेजः ४ वायुः ५ आकाशरूपाः पञ्चभागाः कर्तव्याः । 'दृष्टिस्तेजसि दातव्या वास्तुशास्त्रविशारदैः' इति वचनेन तेजोभागे दृष्टिस्थानं समागतम् । चतुःषष्टिभागकरणे पञ्चविंशाद्येकोनचत्वारिंशभागेषु दृष्टिः समापतति । इदं कुड्य (भित्ति) गतगौर्याः सुप्तस्य केशवस्य शेषशायिनः सुप्तायाः प्रतिमायाश्च कृते मनोहरं भवति । नान्यासां स्थितविष्ण्वादिप्रतिमानां कृते । एतद् गौरीगवाक्षस्य पूर्वनिर्मितौ सुकरं भवति । नूतनगवाक्षनिर्माणे तु सप्तत्रिंशभाग एव दृष्टिः सुखावहेति ।

तृतीय पक्षः - द्वारदैर्घ्यस्याष्टौ भागान् कृत्वा तृतीयभागे सुप्तायाः प्रतिमायाः चण्डिकायाः उमायाः सूर्यस्य क्षेत्रपालस्य च दृष्टिः - प्रथमपक्षेण, सप्तदश-नवदश-एकविंश-त्रयोविंशान्यतमभागे दृष्टिरिति तात्पर्य्यम् । पञ्चमे भागे आसीनायाः प्रतिमायाः महिषारूढायाश्चण्डिकायाः रुद्रस्य गणेशस्य यक्षस्य च दृष्टिः कार्या । प्रथमपक्षसमन्वये ३३-३५-३७-३९ भागान्यतमभागे दृष्टिः समायाति । सप्तम भागे स्थितायाः महिषारूढायाः सूर्य-ब्रह्म-गणेशस्कन्द सरस्वतीनां दृष्टिर्विधेया-प्रथमपक्षसङ्गतौ ४९-५१-५३-५५ भागेषु दृष्टिरिति तात्पर्य्यम् । अष्टमो भागः सर्वथा त्याज्यः ।

चतुर्थः पक्षः - द्वारदैर्घ्यस्य नवभागान् विधाय तेषु यानस्थायाः जङ्गमायाः सुप्तायाः यक्षस्य सूर्यस्य च दृष्टिस्तृतीयभागे कर्तव्या प्रथमपक्षान्वयेन २३-२५-२७ भागेषु दृष्टिः । आसीनायाः चण्डिकायाः महिषारूढाया देव्याः रुद्रगणेशस्कन्दक्षेत्रपालयक्षाणां पञ्चमे भागे दृष्टिः प्रथमपक्षेण सहकारे २९-३१-३३-३५ भागेषु दृष्टिः । स्थितप्रतिमायाः सप्तमे भागे वाऽष्टमे भागे दृष्टिः प्रथमपक्षोक्तरीत्या ४३-४५-४७-४९ वा ५१-५३-५५ भागे दृष्टिः । नवमो भागस्त्याज्यः ।

दृष्टिविषये प्रतिष्ठादिनात्पूर्वं यथाकथञ्चित् सिंहासने निर्मिते पुनर्निर्माणासम्भवे द्वितीयतृतीयचतुर्थान्यतमपक्षमाश्रित्य सिद्धस्य गतिश्चिन्तनीयेति न्यायेन दृष्टिसाधनं करणीयम् । इदं दृष्टिसाधनं प्रधानदेवतायाः न तु समस्थितसीतालक्ष्म्यादिदेवतानाम् । पादपीठिकोपरिभागः समसूत्रेण सम्पादनीय इति विशेषः ।

वस्तुतस्तु मूर्त्तिसमानयनानन्तरं द्वारसंस्थापने कृते गर्भगृहभूमिसंस्कारे सम्पन्ने सति देवस्थापनदेशनिर्णयं देवदृष्टिसाधनं च विधाय सिंहासनकरणं इति श्रेयान् पन्थाः । आदौ

मूर्तिपीठिकादैर्घ्यायामोच्चतामानं विलिख्य पीठिकोपरिभागाद् दृष्टिमध्यं यावत् शिखान्तं च मानं पत्रे विलिख्य ततो दृष्टिस्थाननिर्णयो भवितुमर्हति । सिंहासनोच्चतासम्पादनं च बुद्धिगतं भवेत् ।

एतस्य कृत एकमुदाहरणं दर्शयामः । यथा द्वारोच्चता ७५ ईंच (१०० अं) परिमिता द्वारविस्तारः - ५१ ईंच (६८ अं) नारायणमूर्त्तिपीठिकादैर्घ्यं ९ ईंच विस्तारः ८ ईंच उच्चता-२॥ ईंच । गर्भगृहद्वारसंलग्नान्तरभित्तितः पश्चाद्भित्तिपर्यन्तं ९ फुट ४ ईंच-११२ ईंचमितमन्तरं तदर्धं ५६ ईंच मितम् । तस्य अष्टाविंशतिधा भागः - २ ईंच परिमितः । मध्यसूत्रान्नवमे भागे नारायणस्थानं । नवम भागार्धं १७ ईंचपरिमितम् , तदेवं निष्कर्षः- पश्चाद्भित्तितः - ३९ ईंच भागे मध्यसूत्राद् १७ ईंच भागे नारायणस्थानं गणितेन समागच्छति । देवपादपीठिकायामस्य मध्यं सप्तदश ईंच भागे यथा समागच्छेत् । तादृशं सिंहासनम् । प्रतिमायाः पश्चाद्भागे शृङ्गारादिकरणाय ९ ईंचभागः अग्रे च भोजनपात्रादिनिवेशनाय - ११ ईंच भूमिः । एवं सिंहासनायामः ३९ ईंच परिमितः कर्तव्यः विस्तारः पुनः ३५-३७-४१-४३-४५ ईंचमितः कार्यः । एवं पश्चाद्भित्तेः एकादशांगुलान्तरे सिंहासनं भवति । प्रदक्षिणायोग्यस्थानं लभ्यते । सिंहासनाग्रे सोपानद्वयं १० ईंच उच्च १० ईंच विस्तारयुतं कार्यम्, चलदेवतान्तरसाहित्यसंरक्षणाय ।

इतः परं दृष्टिविचारणम् । पिण्डिकागर्ते यवार्धेन यवेन वा उच्चा पादपीठिका स्थापनीया । द्वारोच्चता ७५ ईंच परिमिता तस्य चतुःषष्टितमो भागः १ ईंच षोडशभागात्मकः लवः २॥ एतस्य सार्धाष्टाचत्वारिंशांशः ५३ ईंच अष्टभागलवे ७ दोरकः एतद् नारायणस्य दृष्टिस्थानम् एवं द्वारस्य ऊनपञ्चाशे भागे दृष्टिसाधनम् । उदुम्बरादूर्ध्वं द्वारशाखायां ५३ ईंच ७ दोरकस्थाने लोहेन अङ्कं कुर्यात् । पादपीठिकोपरिभागाद् दृष्टिमध्यं २१ ईंच परिमितं शिखाग्रञ्च-२७ ईंच ५३-७ बाद २१-३५-७ एतदूनितं तेन उदुम्बराद् - ३५ ईंच ७ दोरक भागपर्यन्तं सिंहासनोच्चता भवति । एतदुदाहरणमात्रं दत्तम् । सुधिया याज्ञिकेन गणितरीत्या दृष्टिस्थानं देवस्थापनदेशञ्च सम्यङ् निर्णीय सिंहासनादिकं निर्मापणीयमित्यलं विस्तरेण । एतद् विषयकसकलपञ्चविवरणाकृतिसहितं प्रथमप्रकरणे प्रदर्शितम्, तत् ततोऽवधेयम् ।

५३ परिवारदेवतास्थापनविस्तारः शिवालये कूर्महनुमत्स्कन्दानां स्थापने रहस्यम् ।

विषयेऽस्मिन् प्रयोगदर्पणकृता पद्मनाभेन रचितायां पद्धत्यां प्रधानदेवतास्थापनानन्तरं परिवारदेवतास्थापनमुक्तम् शिवविषये 'नन्दिमहाकाली पृष्ठे च भृङ्गिरीटस्कन्दोमाविनायकविष्णुब्रह्म-जयन्तेन्द्राग्नियमनिर्ऋतिवायुसोमेशानान् अप्सरोगणगन्धर्वगुह्यकविद्याधरादीन् रुद्रस्य । विष्णोर्ब्रह्मादयः । ब्रह्मणस्तु विष्ण्वादयः । एवं चण्डीविनायकादीनामपि परिवारकल्पनम्' इति । वासुदेव्यां त्रैविक्रम्याञ्चान्यत्र पद्धतिषु विषयेऽस्मिन् मौनमेवाश्रितम् ।

अत्र किञ्चिद् विचार्यते, एकस्मिन् प्रासाद एकस्यैव देवस्य स्थापनम् इति सिद्धान्तोऽस्माभिः पूर्वमेव स्वीकृतः । एतदेव पुनः सर्वत्र प्रासादेषु दृष्टिगोचरं भवति । यदि पद्मनाभोक्ताः परिवार देवताः स्थाप्याः स्युः तर्हि के के स्थापनीयाः ? कुत्र स्थापनीयाः ? गर्भगृहान्तर्बहिर्वा ? परिवारदेवतानां प्रधानदेवेन सह प्रतिष्ठाविधिः कार्यो न वा ? अष्टदिक्पालानां स्थापने द्वारमध्ये स्थापनं समापतेत् ? तस्यापि देवाभिमुखत्वं वा ? यदि प्रासादबहिःस्थितभित्तिषु परिवारदेवतानां स्थापनं क्रियेत तर्हि अर्चाराहित्येन प्राणप्रतिष्ठाविधेरानर्थक्यम् ? 'मा भूत् पूजाविरामोऽस्मिन्' इति प्रार्थनाविरोधश्च ? बहिः प्रतिष्ठापितासु काकादिपक्षिपुरीषादिदुष्टस्पर्शोऽपि संभवति ? एवमनेके प्रश्नाः समुद्भवन्ति समाधानञ्च सर्वथाऽशक्यम् ।

आगमाद्यनुरोधेन विष्णोः स्थापने चतुर्व्यूहरूपाणां वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुध्धानां प्रतिमा दक्षिणोत्तरभित्तिषु गवाक्षेषु परस्परं सम्मुखाः स्थापयितुं शक्यन्ते । तेषां स्वरूपभेदमत्रकलय्य तादृशप्रतिमानां प्रधानेन सह प्रतिष्ठा समाप्नोति । एवं करणेऽपि पद्मनाभेन 'विष्णोर्ब्रह्मादयः' इत्युक्तेः सङ्गमनं तत्तत्प्रतिमानां स्थापनं कुत्र कर्तव्यमिति शङ्कापिशाचः शिरसि तिष्ठत्येव । 'एवं चण्डीविनायकादीनां परिवारकल्पनम्' पद्मनाभोक्तैतत्पङ्क्तेरपि इयमेवावस्था । पुनश्च चण्डीविनायकादीनां परिवारदेवतास्तन्त्रागमादिभ्यः शोधनीयाः पुनश्च तासां स्वरूपं स्थानं संख्या च दुरवगाहा-इति भूयसः कालात् शिवालयं विहाय प्रतिष्ठापूर्वकं परिवारदेवतानां स्थापनमद्य यावत् न कुत्रचिद् दृष्टम् । नन्दजाशाकम्भर्यादीनां स्वतन्त्राणि मन्दिराणि दृष्टिपथमायातानि न परिवारत्वेन ।

प्राधान्येन सर्वत्र चान्यदेशेषु शिवस्य प्रधानत्वे उमागणेशस्कन्दवृषभाणां स्थापना एकादशशतकात् प्राङ्निर्मितेषु मन्दिरेषु दृश्यन्ते । दक्षिणजनपदेषु सुब्रह्मण्येत्यपरनामकषण्मुखकार्तिकेयस्कन्देत्यनेकनामकस्य भगवतः स्वतन्त्राणि मन्दिराण्यद्यापि विराजन्ते ।

'षण्मुखस्वरूपकुमारस्य स्पर्शनेन पूजनेन कुमारीणां विवाहो न भवति' इति बलवत्तरलोकप्रवादस्य प्रवृत्त्या द्वादशशतकादारभ्य मन्दिरात् स्कन्दं निष्कास्य हनुमतः प्रवेशः शिवालये जातः । अद्यापि प्राचीनेषु प्रासादेषु शिवालये स्कन्दप्रतिमा वर्तते हनुमांश्च प्रासादाद् बहिः स्वतन्त्रमन्दिरे दक्षिणाभिमुखो दृश्यते ।

अधुना किञ्चिद् विचार्यते-प्रकृतिपुरुषरूपौ गौरीशिवौ गर्भगृहान्तः स्थितौ भृङ्गिरीटवीरभद्रप्रमथादिगणानामधिपो गणपतिः शिवपुराणे हनुमतो वीरभद्रावतारत्वेन परिगणनाद् गणेशसम्मुखो हनुमान् द्वाराद्बहिर्भूतगवाक्षयोः गणेशहनुमन्तौ वर्तमानयुगे स्थाप्येते । कूर्मः पुनर्विष्ण्ववताररूपत्वात् परिवारत्वेन द्वारसम्मुखं स्थापितो वृषभशिवान्तरागमनदोषं निवारयतीति वृद्धाः । एवं परिवारदेवता परिगणनस्थानप्रतिष्ठा-प्रतिमास्वरूपादिविचारणायां नास्माकमल्पीयसी मतिर्निश्चेतुं प्रभवति । विषयेऽस्मिन्नागमास्तज्ज्ञाः पण्डिताः शिल्पिनश्च प्रमाणभूता निर्णयन्त्वित्यलं प्रपञ्चेन ।

हनुमत्स्थापननिर्णयः ।

'नैर्ऋत्याभिमुखः कार्यो हनुमान् वानरेश्वरः' । इति शिल्पशास्त्रोक्त्या नैर्ऋतीदिक् दक्षिणदिगुपलक्षिका बोध्या नैर्ऋत्याभिमुखत्वे तु देवदृष्टेः कोणवेधरूपदोषापत्तेः । यत्र केवलः स्वतन्त्रो हनुमान् स्थाप्यते तत्र दक्षिणामुखे प्रासादे दक्षिणामुखो हनुमान् स्थाप्यः । कुत्रचित् दासरूपः पञ्चमुखो वा हनुमान् दक्षिणातिरिक्तमुखोऽपि स्थापितो दृश्यते ।

शिवालये पुनर्हनुमतः परिवारत्वेन स्थापने कर्तव्ये प्राङ्मुखप्रासादे शुद्धदक्षिणामुखः दक्षिणामुखे प्रासादे शुद्धप्रतीचीमुखः प्रत्यङ्मुखप्रासादे शुद्धदक्षिणामुखः उदङ्मुखप्रासादे शुद्धप्राङ्मुखो हनुमान् स्थाप्य इति निष्कर्षः ।

९४ वाहनस्थापनदेशविचारः वाहनदृष्टिविचारश्च ।

शिवविष्णुदेवीगणेशादिप्रासादेषु वृषभगरुडसिंहमूषकादिवाहनप्रतिमानां स्थापनं कुत्र कथञ्च कार्यमिति जिज्ञासायां प्रासादाधिवासने 'वाहनं चाग्रमण्डपे' इत्युक्तम् । अग्रमण्डपे एतस्यार्थद्वयम् गर्भगृहाद् बहिः सभामण्डपे वाहनस्थापनमित्येकोऽर्थः प्रधानप्रासादाद् बहिः स्वतन्त्रे द्वारमध्यसूत्रानुरोधेन निर्मिते मण्डप इत्यपरोऽर्थः । प्राचीनेषु मन्दिरेषु बहुशः प्रासादाद् बहिः स्वतन्त्रे मण्डपे नन्दिगरुडादिवाहनानां स्थितिर्दृश्यते कुत्रचिच्च सभामण्डपे वाहनं स्थापितं निरीक्ष्यते । एतेन गर्भगृहाभ्यन्तरे वृषभादिवाहनं सर्वथाऽनुचितम्, स्वामिनीस्वामिनोः सन्निधौ सेवकरूपवृषभगरुडादीनां स्थितिर्लोकन्याय विरुद्धा शिल्पशास्त्रविरुद्धा च ।

एतेषां वृषभगरुडादिवाहनरूपप्रतिमानां स्थापनाय द्वारमध्यसूत्रमवलम्ब्य सभामण्डपे बहिर्मण्डपे वा पीठं विधेयम् । एतद्विषये शिल्पशास्त्रे राजवल्लभे-प्रासादवाहनस्थानं कर्तव्या च चतुष्किता । एतद्द्वित्रिचतुःपञ्चरससप्तपदान्तरे । अर्चायास्तु नवांशेन पञ्चषट्सप्तभागिका । गुह्यनाभिस्तनान्तो वा त्रिविधो वाहनोदयः । पादजानुकटीयावद् अर्चाया वाहनस्य वै - अनेन सन्दर्भेण पादजानुकटिस्तनभागान्तं वाहनस्य दृष्टिः प्राप्नोति तथाप्युपसंहाररूपं वाक्यं-पादजानुकटिं यावद् इति यदुक्तं तदेव समुचितम् । स्तनान्तभागं यावद् वाहनदृष्टेर्न्यायविरुद्धत्वाल्लोकविद्विष्टत्वाच्च ।

एवं गर्भगृहस्थितप्रधानप्रतिमायाः पादं जानुं कटिं वा यावद् मानं गृहीत्वा तस्माद् पीठिकासहितवृषभादिवाहनानां पीठिकातो दृष्टिमध्यं यावत् यावन्ति अङ्गुलानि स्युः तावन्ति अङ्गुलानि परित्यज्य शेषभागमिता प्रतिमापीठिकामानाच्चतुर्दिक्षु चतुस्त्र्यङ्गुलमानाधिका द्वारमध्यसूत्रावलम्बिनी चतुष्किका (चौकी) निर्मातव्या । अत्रापि पादजानुकटीयावदुच्चत्वे क्रमेणोत्तममध्यमाधमत्वं सुधीभिरूह्यम्, दासस्य चरणयोरेव दृष्टेः समुचितत्वात् ।

इत्थं शिवालये गौरीपादजानुकट्यन्यतममितं दृष्टिस्थानं प्रकल्पनीयम् । केचिच्छिवेन सह वृषभस्य दृष्टिं सङ्गमयन्ति तन्न योग्यम्, शिवस्य निराकारत्वादर्धभागस्य पिण्डिकान्तर्गतत्वाच्च । अयं दृष्टिनियमः प्राचीनेषु शिवालयेष्ववाचीनेषु च कुत्रचित् पालितो दृश्यते कुत्रचिन्न न पालितः । किन्तु याज्ञिकैर्नूतनशिवालये गौरीदृष्टिर्द्वारस्य चतुःषष्टिभागेषूदुम्बराद्-३१-३३-३५-३७-३९ भागानामन्यतमभागे समापतेत् तथा यतनीयम् । अस्माद् भागात् पीठिकासहितवृषभदृष्टेर्यन्मानं तदूनं कृत्वा अवशिष्टं पीठिकोच्चतामानमागच्छेत् । एवं विष्णवाद्यायतनेष्वपि गरुडादिवाहनदृष्टिं निर्णीय उपरिवत् सपीठिकवाहनदृष्टिमानमूनं विधायावशिष्टं वाहनपीठिकामानम् ।

यत्र पुनः प्राचीनेषु शिवालयेषु सोपानान्यवरुह्यान्तर्भूमौ गर्भगृहम्, मध्ये शिवः पृष्ठे भित्तौ गौरी तत्र दृष्टिविचारस्यावकाश एव नास्ति ।

तदेवं प्रधानप्रतिमायाः पादमध्ये जानुनि कटौ वा वाहनदृष्टिः सम्पादनीयेति निष्कर्षः । अतश्चोपरितना दृष्टिः शुभावहा न भवति ।

५५ लग्नशुद्धिविचारः ।

एतस्मिन् विषये ज्योतिःशास्त्रे बहुधा विचारः कृतः । शास्त्रोक्तमासतिथिवारनक्षत्रयोगकरण चन्द्राद्यनुकूले प्रतिष्ठादिनेऽचलप्रतिष्ठां पुरस्कृत्य मेषकर्क-तुला-मकररूपचरलग्नेषु वृषभ-सिंह-वृश्चिक कुम्भरूपस्थिरनवमांशे वा स्थिरलग्नेषु स्थिरनवमांशेषु शुभग्रहस्थितिदृष्टिसमन्विते ज्योतिर्विन्निर्दिष्टे उत्तमे मध्यमे वा काले पूर्वाह्णं यावद् वा प्राणप्रतिष्ठाविधिः कार्यः । 'पूर्वाह्णो वै देवानाम्' इत्युक्त्या मध्याह्नात् परं कृतायां प्राणप्रतिष्ठायां ज्योतिर्विदादिष्टा लग्नशुद्धिः कालश्च शुभेच्छुभिः प्रयत्नेन पालनीयः । विषयान्तरावगाहनविस्तरभयादत्रैव विरमामः ।

५६ प्रतिष्ठादिनकृत्यम्, होमादिश्च ।

निश्चितमुहूर्तसमयात् पूर्वं घण्टाद्वये घण्टात्रये वा सपत्नीको यजमान ऋत्विजश्च प्रातरागत्य कर्मारम्भं कुर्युः । मूर्त्युत्थापनप्रासादपरिक्रमण द्वारप्रवेशस्थिरीकरणादिकार्यकलापसम्पादनाय कियान् समयोऽपेक्षित इति सम्यग् विचार्य स्थापितदेवतानां पूजनं षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्गन्धपुष्पाभ्यां वा सम्पाद्य ब्राह्मणान् संपूज्य पूर्वदिने पिण्डिकाधिवासनं न कृतं चेत् तर्हि पिण्डिकातत्त्वन्यासमूर्तिमूर्तिपति-लोकपालन्यासप्रतिष्ठानवरत्नधान्याष्टक-ओषध्यष्टक-धात्वष्टक-गन्धाष्टक वर्णन्यासलोकपालादिन्यासप्रतिष्ठाः कृत्वाऽधिवासयेत् ।

नूतनः प्रासादश्चेत् प्रासादाष्टदिक्षु तदसम्भवे प्रासादपुरतः स्थण्डिले पूर्वोक्तरीत्या होमं कृत्वा कलश आज्याहुतिसंपातान् निक्षिप्य संस्रवजलमेकीकृत्यैकत्र संरक्षेत् ।

अपरत्र ऋत्विजो मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालान् स्थाप्यदेवाँश्चोद्दिश्य तल्लिङ्गकैर्मन्त्रैराज्येन तिलैर्वा प्रतिदैवतमष्टाविंशत्यष्टान्यतरसंख्यया होमं कृत्वा मूर्धानमिति पूर्णाहुतिमाज्येन जुहुयुः । अयं प्रातर्होमः कुत्रचिदुक्तः अन्यत्र नोक्तः, अपरत्र स्थाप्यदेवतामात्रहोमो लिखितः ।

प्रतिष्ठात्रासुदेव्यां प्रतिष्ठादिनकृत्यं वेदागमपुराणादिसर्वोपसंहारेण सम्यक् प्रदर्शितम् । होमं संपाद्य यजमान ऋत्विजश्च शय्याधिवासस्थितप्रतिमासमीपमागत्य प्रासाददिग्होमसंपातकलशजलं प्रासाददिग्होमाकरणे कुण्डेशानस्थापितशान्तिकलशोदकं तदभावे जलपूरितं कलशं प्रधानदेवतामूल-मन्त्रेणाष्टोत्तरशताष्टविंशत्यष्टान्यतमसंख्ययाऽभिमन्त्र्य तीर्थान्यावाह्य देवशिरोऽभिषिच्य 'ॐ नृसिंहाय हुं फट्' राक्षोघ्नमन्त्रैर्वा सर्षपैर्दिग्बन्धं वेदगीतवाद्यघोषेण देवं प्रबोध्य गन्धपुष्पाक्षतफलमधुपर्कभक्ष्यभोज्यादि समर्प्यार्घं दत्त्वा देवतासूक्तेन पुरुषसूक्तेन तत्तद्देवतामूलमन्त्रेण वा स्तुत्वा उत्तरार्घं दत्वा रथे याने साधनान्तरे वा प्रतिमा निधाय भद्रमङ्गलसूक्तादिघोषेण सम्भवे सति प्रासादप्रादक्षिण्येन प्रासादद्वारमानीय द्वारसम्मुखाः प्रतिमाः संस्थाप्यान्तरेऽन्तःपटं धृत्वा मङ्गलपद्यानि पठित्वान्तःपटं निःसार्य प्रतिमानां मधुपर्कं (दधिमधुघृतप्राशनरूपं) कुर्यात् ।

५७ प्रतिमानां द्वारप्रवेशनिर्णयः ।

परब्रह्मरूपपरमात्मनः सर्वव्यापकत्वात् सर्वव्यापिचैतन्यस्यांशेन व्याप्ताः प्रतिमा आकाशमार्गेणैव गर्भगृहं प्रवेशनीयाः - इति शिल्पशास्त्रपुरस्कारिणो मन्यन्ते ।

अयमाकाशमार्गः शिखररहितप्रासादशिलाछिद्रवाचकः स्यात् तर्हि प्रासादस्य पुरुषरूपत्वात् शिखरस्य प्रासादमस्तकरूपत्वान्मस्तकहीनः पुरुषः स्यात् 'सशिखरं प्रासादं स्नपयेत्' इत्युक्तेर्विरोधः प्रसज्येत, शिखरकलशस्य पुनः समग्रः प्रतिष्ठाविधिः कर्तव्यो भवेत्, बृहतीनां प्रतिमानामेतन्मतस्वीकारेऽधः समवतारणं दुष्करम् पुनश्च पतनखण्डनादिभयं सन्निहितम्, एवं करणे पिपीलिकारक्षणाय गजो हतः इति न्यायेन खण्डनप्रायश्चित्तं नूतनमूर्तेश्च समग्रो विधिः पुनः करणीयः स्यात्' एवंविधानेकविप्रतिपत्त्युपस्थित्या 'आकाशमार्गादवतारणं शिवलिङ्गमात्रविषयकमिति समादधति, तन्न विचारसहम् चतुष्किकासहितबृहल्लिङ्गावतारणस्य सर्वथाऽशक्यपत्वम् । आकाशपदं प्रासादभित्त्यन्तरे छिद्रं विधाय तस्मादवतारणबोधकमित्यपि न शोभनम् । तादृशछिद्रकरणस्य शिल्पशास्त्रे कुत्राप्यनुल्लेखात् । लिङ्गपदं बिम्बरूपप्रतिमामप्युपलक्षयति ।

प्रासादद्वारसम्मुखमानीयार्घं मधुपर्कं कृत्वा पुनर्लिङ्गंबहिर्नीत्वाऽकाशमार्गेणावतारणं वदन्तो भ्रान्ता एव । विषयेऽस्मिन् केचनान्यथा व्याख्यानं कुर्वन्ति । दृष्टिविचारविषये द्वारोदुम्बरात् पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशरूपाः पञ्च भागाः सन्ति तेभ्यः पञ्चमादाकाशभागादन्तः प्रवेशरूपोऽर्थ इति । इदमपि न समीचीनम् । आकाशभागाद्बृहल्लिङ्गप्रतिमादिप्रवेशो भागान्तरप्रवेशे विरुध्येत । इति शिल्पशास्त्रोक्तमाकाशमार्गेण प्रवेशनं सर्वथा शास्त्रविरुद्धम् ।

सर्वासु प्रतिष्ठापद्धतिषु 'द्वारसम्मुखं लिङ्गं (बिम्बं) कृत्वा प्रवेशयेद्' इत्येव निरुक्तम्। वस्तुतस्तु आकाशपदरहस्यमेव ते न जानन्ति, आकाशो नाम न कश्चिन्मूर्त्तः पदार्थः आकाशोऽवकाशो मार्गरूपः। द्वारशाखयोर्यदन्तरं तदेव द्वारपदेन गृह्यते, तच्च अवकाशापरपर्यायाकाशरूपमेव। इत्थं विवरणेन सिद्धं यल्लिङ्गस्य प्रतिमानाञ्च द्वारादेव गर्भगृहान्तः प्रवेशनं शास्त्रसम्मतम्। 'आकाशमार्गेण' इदं शिल्पशास्त्रवचनं शास्त्रविरुद्धमेकदेशीयत्वादुपेक्ष्यमित्यलं तुषकण्डनेन।

५८ प्राणप्रतिष्ठाकृत्यम्, प्रतिष्ठामन्त्रविचारः।

प्राणप्रतिष्ठामुहूर्तं यथायथं सिध्येत् तथा मुहूर्त्तात् प्राक्काले मूर्त्तिपा ऋत्विजोऽन्ये च गर्भगृहान्तः स्थाप्याः प्रतिमा द्वारेण गर्भगृहान्तस्तत्तदायतनसमीपे स्थापयेयुः। बहिःस्थाप्यास्तत्तत्स्थानसमीपे स्वस्थाने सुदृढं शिल्पिद्वारा स्थापनं यावत् सुरक्षिताः धृत्वा तिष्ठेयुः। तत्तन्मूर्तिस्थापनगर्तेषु सुवर्णरजतरत्नादिकं प्रक्षिप्य मध्यसूत्रानुरोधेन सिंहासने तत्तत्प्रतिमास्थापनमध्यसूत्रानुसारं लेप (सीमेन्ट) सिकतासीसकादिरसादिभिः निर्दिष्टस्थाने प्रधानप्रतिमादृष्टिः समापतेत्, तथा उच्चां नीचां वा कृत्वा लम्बकेन समदृष्टिं समस्थितां च परीक्ष्य दृढं स्थापयेत्। एवं गर्भगृहस्थितानां सम्मुखानां प्रतिमानामपि समदृष्टिः स्यात् तथा उच्चं नीचं वा कृत्वा दृढं स्थापयेत्। शिवालये गौरीचरणमध्याद् वृषभनेत्रमध्यभागं यावत् सूत्रं धृत्वा लम्बकेन शिवलिङ्गमध्यं परीक्षेत। यवं यवार्धमितं ईशानस्थितं लिङ्गं न दोषाय। एवमेव सुविचार्य तत्तत्स्थानमध्यसूत्रपादपीठिकामध्यसूत्रैकीकरणेनान्या अपि प्रतिमा निर्दिष्टस्थाने संस्थाप्य लेपादिना दृढीकृत्य सुवर्णदर्भान्यतरशलाकां संस्थाप्य प्राणप्रतिष्ठामुहूर्तकालात् पूर्वं प्राणप्रतिष्ठाविधिमारभेत येन निर्दिष्टमुहूर्ते प्राणप्रतिष्ठामन्त्रा जप्येरन्।

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रविचारः।

तत्र प्राणप्रतिष्ठा द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च। वासुदेव्यादिषु-समाहितमना आचार्य आत्मनि परमेश्वरचैतन्यं चिन्तयन् प्रतिष्ठामन्त्रान् जप्त्वा संप्रार्थ्य देवशिरसि हस्तं दत्त्वा तां तां देवतां ध्यात्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वकं देवस्य कर्णे तत्तन्मन्त्रं गायत्रीं सूक्तं वा जप्त्वा योगमार्गसिद्ध आचार्य उक्तविधिना तत्तत्तत्त्वन्यासपूर्वं प्राणसूक्तं जपन् जीवन्यासं कुर्यादित्युक्तम्। इतीयं वैदिकी प्राणप्रतिष्ठा। एतदशक्तौ प्राणप्रतिष्ठाविधिर्वासुदेवादिभिरुक्तः।

तान्त्रिकप्राणप्रतिष्ठायां प्राणप्रतिष्ठाविनियोगस्वात्मन्यासदेवन्यासपूर्वं प्राणप्रतिष्ठा निरूपिता। तत्र प्राणप्रतिष्ठामन्त्रे प्रकारत्रयम्, एकोऽष्टात्रिंशदधिकशताक्षरो मन्त्रः, अपरोऽन्त्यसप्तवर्णरहित एकत्रिंशदुत्तरशताक्षरः, तृतीयश्च ॐ आं ह्रीं० हं ळं क्षं हंसः अमुकदेवस्य प्राणा इह प्राणा इत्यादिवासुदेव्युक्तः अष्टाचत्वारिंशदुत्तरशताक्षरः। अत्र बृहत्तन्त्रकौमुद्यनुरोधेन प्रथमं मन्त्रद्वयं स्वात्मनि प्राणप्रतिष्ठान्यासविषयकम्, तृतीयश्च देवप्राणप्रतिष्ठाविषयक इति विवेकः। एतत्प्राणप्रतिष्ठामन्त्रजपं

निर्दिष्टे मुहूर्ते एव कुर्यात्, मन्त्रजपकाले प्रतिप्रतिमं ब्राह्मणा देवकपालौ स्पृष्ट्वा वा हृदयंगुष्ठं दत्त्वा जपेयुः । अत्रावसरे चतुर्वेदनिर्दिष्टान् प्रतिष्ठामन्त्रान् ध्रुवसूक्तं मन्त्रं गायत्रीं वा जपेयुः ।

देवप्रतिमानां गर्भाधानादिसंस्कारार्थं प्रतिसंस्कारं कुण्डे तिलैरष्टवारं समस्तव्याहृतिहोमं ब्राह्मणद्वारा कृत्वा ॐ प्रणवेन संस्कारान् कृत्वा प्रार्थयेत् । तत्र ऋग्वेदिनां पञ्चदशसंस्कारसत्त्वात् पञ्चदशप्रणवजपः । याजुषाणां तु षोडशसंस्कारसत्वात् षोडशप्रणवजप इति विशेषः । प्राणप्रतिष्ठान्ते देवं प्रार्थयेत् । अवशिष्टञ्च प्रतिमास्थिरीकरणादिकार्यं शिल्पिभिः परिपूरणीयम् । प्रातः स्थापितदेवतानां संक्षिप्ता पूजा कृता चेदस्मिन्नवसरे यजमानद्वारा स्थापितदेवतापूजनं षोडशोपचारैः सम्पादयेत् । सर्वे प्रयोगा मिश्रविधिना क्रियन्ते तेन वासुदेवयुक्तप्राणप्रतिष्ठाविधिना मिश्रत्वं स्वतः सिध्यति ।

५९. दिगीशहोमः । प्रतिष्ठाहोमविचारश्च ।

'तत्रादौ, देवस्थापनकाले लिङ्गं बिम्बं यां दिशं श्रयेत् तत्तद्दिगीशमन्त्रेण अष्टोत्तरशतसंख्यया शमीपलाशान्यतरसमिद्भिस्तिलैर्वा होमं कुर्यात्' इति कासुचित् पद्धतिषूक्तम् । अत्र विचारणीयम्, पिण्डिकागर्ते प्रतिमायाः समत्वेन स्थिरीकरणाय यां काञ्चिद् दिशं प्रत्यूर्ध्वाधः स्थितिर्भवत्येव । समसूत्रत्वेन स्थिरीकरणानन्तरं लम्बकेन समत्वं सम्यक् परीक्ष्य दृढीकृत्य चालनस्य संभावनैव न स्यात्, तदनन्तरं प्राणप्रतिष्ठाविधेरुक्तत्वादयं होमः कृताकृतः । स्थाप्यमाने देवे शब्दोत्थाने भ्रान्ते स्फुटिते वा शान्त्यर्थं मूलमन्त्रेणाष्टोत्तरशतमाज्येन तिलैर्वा जुहुयात् 'इति पद्मनाभादिभिरुक्तम्, किन्तु प्रतिष्ठान्ते सर्वशान्त्यर्थकाघोरमन्त्रहोमस्य विहितत्वादयं होमोऽपि कृताकृतः ।

प्रतिष्ठामयूखे प्राणप्रतिष्ठान्ते ॐ शिवाय स्थिरो भव स्वाहा इत्यादयः सप्त घृताहुतयो होतव्या इत्युक्तम् । अन्यपद्धतिषु 'शिवाय अनादिदेवो भव स्वाहा शिवाय कृत्यो भव स्वाहा । इत्याहुतिद्वयं संभूय नवाहुतय उक्ताः अत्र मूलं मृग्यम् । मयूखेऽयं प्रतिष्ठाहोमः शिवविषयक एवेति नोक्तम् किन्तु 'शिवाय इति पदस्य तत्र विद्यमानत्वात् शिवविषयकत्वं प्रथमोपस्थितं भवति । पुनश्च स्थिरत्वाप्रमेयत्वानादिबोधत्वनित्यत्वसर्वगत्वाविनाशत्वाक्रमत्वरूपाः सप्त धर्माः सर्वासामपि देवतानां संभवन्तीति तत्तद्देवताचतुर्थ्यन्तनामरूपोहकरणे न कश्चिद् दोष इति भाति । साक्षादुपदेशाभावेऽतिदेशस्य प्राप्त्या 'विष्णवे स्थिरो भव स्वाहा, दुर्गायै स्थिरा भव स्वाहा-इत्याद्यूहेन होमकरणे संगतिर्भवति । तथाप्याग्नेयमात्स्यपरिशिष्टान्यपद्धतिषु निर्देशाभावादकरणे न दोषः ।

६० महापूजादि । अघोरहोमश्च ।

शिल्पिद्वारा प्रतिमानां लेपादिना स्थिरीकरणे सम्पन्ने सऋत्विग् यजमानः षोडशोपचारै राजोपचारैर्वा महापूजानैवेद्यनीराजनादि सर्वासां देवतानां वेदमन्त्रैः सम्पादयेत् । पुष्पादिनाऽभिषेके तत्तद्देवतासूक्तपाठपूर्वकं शान्तिकलशजलैः संपातोदककलशैश्च अभिषेकस्नानं सम्पादयेत् ।

'शतेन स्थापयेद् देवं सहस्रेण विचालयेदिति' वचनात् प्रतिष्ठाहोमकरणे तदन्तेऽकरण इदानी अघोरेभ्यो॰ इति मन्त्रेण घृताक्ततिलैरष्टोत्तरशतं जुहुयात् ।

६१ स्थापितदेवताहोमः । होमे नमःशब्दयोजनखण्डनम् ।

वास्तुसहितशिख्यादिदेवता ब्रह्मादिमण्डलदेवताः पीठदेवता यन्त्रदेवता योगिनीदेवताः क्षेत्रपालभैरवान्यतरदेवता उद्दिश्य प्रतिदैवतं दश दश घृताक्ततिलाहुतीरेकैकामाज्याहुतिं वा नाममन्त्रेण जुहुयात् । अत्र विषये संस्कारकौस्तुभेऽनन्तदेवेन प्रणवादिचतुर्थ्यन्तदेवतानामोत्तरं नमः पदान्तस्य समग्रस्य नाममन्त्रत्वं स्वीकृत्य ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा-इत्थं प्रयोगः स्वीकृतः । एतस्य खण्डनं प्रतिष्ठेन्दौ कृतम् । 'नाममन्त्रेण होमपक्षे तल्लक्षणं मन्त्रप्रकाशे-प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं स्वाहाशब्दसमन्वितम् । स्यात् पीठदेवता होमे मन्त्रो नामैव कीर्तितः' इति होमकाले 'ॐ ब्रह्मणे स्वाहा-इत्येव सिध्यति । पुनश्चैतत्समर्थकं परशुरामकल्पसूत्रटीकायां परमानन्दतन्त्रवचनं नाममन्त्रविषयमवलम्ब्य 'होमे स्वाहाऽन्तिमाः प्रोक्ताः पूजायां च नमोऽन्तकाः' इति पूजाहोमरूपविषयभेदाद् ॐ ब्रह्मणे स्वाहा - इत्येव सिद्धम् । गणेशमातॄणां तु न होमस्तासां प्रधानाङ्गभूतनान्दीश्राद्धाङ्गभूतत्वात् प्रधानहोमेन सह सम्बन्धाभावात् ।

६२ व्याहृतिहोमस्य प्रायश्चित्तार्थत्वं प्रधानहोमत्वं वेत्यत्र निर्णयः ।

प्रयोगदर्पणेऽन्यग्रन्थेषु च ग्रहमखस्य अयुतहोमः लक्षहोमः कोटिहोमश्चेति त्रैविध्यमुक्तम् । अत्रायुतलक्षकोटिसंख्या समस्तव्याहृतिहोमबोधिनी वर्तते । व्यस्तानां भूरादितिसृणां पृथक् पृथक् अग्निवायुसूर्या देवताः । समस्तानां व्याहृतीनां ॐ भूर्भुवः स्वाहा - इदं प्रजापतये न ममेति समस्तव्याहृतिको यागः प्रजापतिदेवताको वर्तते । अत्र होमद्रव्यम् व्रीहयः तिलाः समिधः यवाः आज्यम् ॥ एभ्य एकतमं ग्राह्यम् । 'सर्वत्रोपांशुः प्राजापत्यः' इति कात्यायनश्रौतसूत्रपरिभाषाप्रकरणे विधानाद् 'भूर्भुवः स्वः' इत्युपांशु पठेत् । प्रणवं स्वाहाकारश्चोच्चैः पठेत् ।

अत्र विचारणीयम् - प्रयोगदर्पणेऽन्वाधाने ग्रहहोमान्वाधानोत्तरम् - अत्र प्रधानं प्रजापतिंअयुतलक्षकोट्यन्यतमसंख्यया घृताक्ततिलैः समस्तव्याहृतिभिर्यक्ष्ये - इत्युक्तं तेन व्याहृतिहोमस्य ग्रहहोमोऽङ्गभूत इति स्वतः सिध्यति । सामान्योपनयनविवाहशान्तिपौष्टिकादिकर्मसु अयुतसंख्यया व्याहृतिहोमकरणासम्भवे 'महदल्पव्यवस्थया' इति न्यायेन १००८-१०८-२८-८ एतदन्यतमसंख्याहोमः प्रधानरूपेण क्रियते । सामवेदिनामुपनयनविवाहादावपि अयुतहोमो विहितः क्रियते च नैरन्त्र्य यावत् ।

सकलशान्तिकपौष्टिकपुराणतन्त्रागमाद्युक्तानां कर्मणां 'ग्रहयज्ञः प्रकृतिरूपेण वर्तत इति पूर्वमेव साधितम् । अयं ग्रहहोमोऽपि त्रैविध्येन व्याहृतिहोमरूपप्रधानकर्माङ्गभूतः - इत्युपरितनसंदर्भेण स्थापितम् ।

संस्कारभास्करेऽन्यासु च पद्धतिषु - अस्मिन् होमकर्मणि न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थमष्टोत्तर-शताष्टाविंशत्यन्यतरसंख्यया घृताक्ततिलैः समस्तव्याहृतिभिर्होमं कुर्याद्-इत्युक्तम् । एवमेव वीरमित्रोदये संस्कारप्रकाशे व्याहृतिहोमस्य होमकालिकसमस्तदोषपरिहारार्थकत्वं महता संकल्पेन निर्दिष्टम् । अत्र विचार्यते - यद्यस्य व्याहृतिहोमस्य होमकालिकप्रायश्चित्तनिवारणार्थकत्वमस्ति तर्हि भगवता पारस्करेण काण्ड - १ कण्डिका ५ सूत्रे महाव्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तं प्राजापत्यं ᳪ स्विष्टकृच्च, अनेन भूरादिप्रजापत्यन्तनवाहुतीनां विधानं निरर्थकं स्यात्, सर्वप्रायश्चित्तमिति संज्ञाकरणमप्यनर्थकं स्यात्, सर्वत्र देवताऽनादेशे प्रजापतिः' इति विधानस्य प्रामुख्यं विहन्येत, पुनश्च ऋग्वेदस्थालीपाकोत्तरतन्त्रे स्विष्टकृत् - इध्मरज्जुहोमअयाश्चाग्न - इत्यादि व्यस्तसमस्तान्तव्याहृत्यन्तसप्तप्रायश्चित्ताहुतिज्ञाताज्ञात-दोषनिवारकाहुतिद्वयमन्त्र तन्त्रविपर्यासनिमित्तकानां एकादशप्रायश्चित्ताहुतीनाञ्च नैरर्थक्यं स्यात् - उपर्युक्तसमस्तव्याहृतिहोमेनैव सकलहोमकालिकदोषनिवारणेनैव गतार्थतापत्तेः ।

यद्यप्यस्ति पूर्वोत्तराङ्गसर्वप्रायश्चितेऽन्यत्र च प्रायश्चित्तनिवारकत्वेन व्यस्तसमस्तव्याहृतिहोमः तस्य प्रकरणान्तरस्थत्वात् नात्र प्रधानभूतायुतलक्षकोट्यन्यतमसंख्याकव्याहृतिहोमेन साकं सम्बन्धलेशोऽपि । एवं पौराणकर्मणि वैदिकमन्त्रत्यागमन्त्रैर्होमस्य विहितत्वात् समस्तव्याहृतेश्च प्रजापतिदेवताकत्वात् 'प्रजापतये नमः इदं प्रजापतये न मम' इत्येव व्याहृतिहोमः शास्त्रसिद्धः 'अग्निवायुसूर्येभ्यो नमः' इत्युक्त्वा क्रियमाणो होमो भ्रान्तिमूल एव व्यस्तानां समस्तायाश्च व्याहृतेर्दैवताभेदात् ।

एवं ग्रहमखे क्रियमाणस्य व्याहृतिहोमस्य प्रधानत्वं न तु प्रायश्चित्तार्थकत्वमिति सुधीभिर्विज्ञेयम् ।

६.३ फलसर्षपगुग्गुलुलक्ष्मीहोमानां काम्यत्वप्रतिपादनम् । उत्तरपूजनञ्च ।

इमे होमाः प्राचीनपद्धतिषु नोपलभ्यन्ते, अन्वाधाने च नास्त्युल्लेखः, तथापि वर्तमानकाले क्रियमाणानां कर्मणां वैदिकतान्त्रिकमिश्रपद्धत्या समनुष्ठीयमानत्वात् तन्त्रातिदेशं पद्धत्यन्तरोक्तिञ्चानुरुध्य याज्ञिकैरेतेषां होमानां सम्प्रदायः प्रवर्तित इति भाति । एवमेतेषां होमानां काम्यत्वं कृताकृतत्वञ्च स्वयं सिद्धम् । 'श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेद्' इति मात्स्यवचनेन ग्रहयज्ञस्यैव श्रीशान्तिपुष्ट्यादिफलजनकत्वान्नावश्यकत्वम् ।

तन्त्रातिदेशेन सर्षपहोमः शत्रुनाशार्थं पुष्ट्यर्थं च गुग्गुलुहोमः - अत्र मन्त्रौ - सजोषा इन्द्र० त्र्यम्बकं० इति । आभिचारिकत्वाद्रौद्रत्वाच्चोदकोपस्पर्शः कार्यः । नवग्रहमन्त्रैः क्रमेण द्राक्षा-इक्षु-पूगीफल-नारिङ्ग-जम्बीर-बीजपूरक-उत्तती (कमलबीजं) नारिकेल-दाडिमानि स्फोटयित्वा घृताक्तानि जुहोति याज्ञिकसम्प्रदायः । वासिष्ठग्रहशान्तौ इमानि नैवेद्यानन्तरं देयत्वेनोक्तानि, होमो नोक्तः ।

एवमेव वासिष्ठहवनग्रहशान्तौ 'गुडान्नं क्षीरकंसारदुग्धान्नदधिभुक्तकम् । घृतान्नं कृसरा माषा विचित्रान्नैः पृथक् पृथक् ॥१४७॥ इति ग्रहाणां नैवेद्यानि भिन्नान्युक्तानि । तन्त्रे नैवेद्यादादाय बलीनां

विहितत्वात् केषुचिद् देशेषु पायसबलिभिः साकमेतान्यप्यङ्गानि गृह्यन्ते ।

एवमेव दधिदूर्वाहरिद्राफलखण्डबिल्वफलखण्डादिकमेकीकृत्य 'सदसस्पतिः यांमेधां० मेधाम्मे वरुणो० इदम्मे ब्रह्म च क्षत्रं० शुक्ल य सं-अ. ३२ मंत्राः - १३-१४-१५-१६ एतेन लक्ष्मीप्राप्तये होमं कुर्वन्ति याज्ञिकाः । अत्र सदसस्पतिमिति तृचस्य मेधाजनकत्वं - इदंम्मे- एतस्य लक्ष्मीप्रापकत्वं यजुर्विधाने प्रतिपादितम् । मेधामन्तरा प्राप्ता लक्ष्मीः स्थिरा न भवतीति बुद्ध्या याज्ञिका मन्त्रचतुष्टयेन लक्ष्मीप्रापकं होमं कुर्वन्ति । वस्तुतस्तु नवरात्रव्रते महाष्टम्यां क्रियमाणस्य नवार्णमन्त्रेण अष्टोत्तरशतहोमस्यैव लक्ष्मीहोमत्वेन पद्धतिकृद्भिः परिगणनं कृतम्, नास्य सदसस्पति सूक्तमन्त्रचतुष्टयहोमस्य । एतदपेक्षया काम्यत्वेन चिकीर्षिते लक्ष्मीहोमे आज्येन प्रत्यृचं श्रीसूक्तेन पञ्चदशाज्याहुतिकरणमेव शास्त्रोक्तत्वादुचितम् । एवमिमे होमा ग्रहयज्ञे कृताकृता अकरणे न कर्मवैगुण्यम्, करणे न दोष इत्यलम् ।

उत्तरपूजनम् ।

शान्तिपौष्टिकादिकर्मविशेषमनुरुध्य-पूजा स्विष्टं नवाहुत्यो बलिः पूर्णाहुतिस्तथा । संस्रवादिविमोकान्तं होमशेषसमापनम् । श्रेयः संपाद्य दानञ्च ह्यभिषेको विसर्जनम् । इति उत्तरतन्त्रक्रमः प्रदर्शितः कारिकाकृद्भिः । अयं क्रम उपनयनविवाहादिसंस्कारकर्मसु न प्रवर्तते । संस्काराणां नित्यत्वात् । शान्तिकादिनैमित्तिककाम्यकर्मादिष्वेवास्य क्रमस्य प्रवृत्तिरिति बोध्यम् ।

उत्तरपूजने पूर्वमग्नेः पूजनं ततः स्थापितदेवतानामिति क्रम उक्तः । अत्र शङ्क्यते, किमित्यग्नेः पूर्वं पूजनमिति ? उच्यते, शान्तिकादिकर्मसु जपप्रधाने कर्मणि पूर्वं प्रधानदेवतास्थापनम् ततोऽग्निस्थापनम्, एवं सत्त्वेपि जपप्रधानकर्मणां तद्दशांशहोमपर्यवसायित्वात् सर्वत्र ग्रहयज्ञस्य प्रकृतिरूपत्वात् ग्रहस्थापनस्य चाग्निस्थापनपूर्वकत्वाच्च जपप्रधाने होमप्रधाने च कर्मणि अग्नेः प्राधान्यात् पूर्वमग्नेः पूजनम्, ततः स्थापितदेवतापूजनमिति विवेकः । अग्निं प्रथमं संपूज्य स्थापनक्रमेण स्थापितदेवतापूजनं कार्यम् ।

भिन्नभिन्नकर्मस्वग्नेः पृथङ्नाम्ना पूजनेऽपि उत्तरतन्त्रे मृडनामकाग्नेः पूजनं क्रियते । अत्र मृडशब्दः सुखवाची विहितप्रधानाङ्गभूतहोमैः परितुष्टः प्रधानकर्माङ्गत्वेन न कोऽपि होमोऽवशिष्ट इति कृत्वा प्रसादवाचकमृडशब्दविशिष्टमृडाग्निनाम्ना पूजनमृषिभिरुक्तम् । अत्र गन्धपुष्पादिनैवेद्यदक्षिणाप्रार्थनान्तं पूजनं कुर्यात् ।

६४ अनेकदिनसाध्ये कर्मणि स्विष्टकृद्धोमनिर्णयः ।

अनेकदिनसाध्ययज्ञेषु प्रतिष्ठापद्धतिकल्पलतायां स्विष्टकृद्धोमविषये विचारितम् । 'प्रथमदिने एव स्विष्टकृत् इति कात्यायनाश्वलायनप्रतिष्ठोद्योतकारदिनकरमतम्, प्रथमान्त्यदिनयोः स्विष्टकृदिति कात्यायनमतम्, अन्त्यदिन एव स्विष्टकृद्-इति प्रतिष्ठावासुदेवीमतम् । अत्र विचार्यते, स्विष्टकृतो

नवाहुतीनाञ्च अविच्छिन्नः सम्बन्धः। प्रथमदिने ग्रहहोमान्तं कर्म भवतीति प्रधानहोमशेषद्रव्यमेव नास्ति, द्वितीय-तृतीयचतुर्थादिवसेषु नूतनहविषां ग्रहणात् तेषां संस्कारं कृत्वा प्रतिदिनं होमो भवति, अन्त्यदिनेऽपि नूतनहविर्भिर्होमो भवतीति तेषां संस्कारः कार्यः। एवं हुतशेषत्वसम्पादनाय समित्फलादि घनं द्रव्यं विहाय शेषहविषां घृतप्लुतानां आहुतिद्वयपर्याप्तानामेकस्मिन् पात्रे प्रतिदिनं प्रक्षेपः। अन्त्यदिने पुनः पात्रप्रक्षिप्तेन सर्वेण हविषा स्विष्टकृद्धोमः कार्यः। एतेन स्विष्टकृन्नवाहुतीनामविच्छिन्नः सम्बन्धो हुतशेषेण स्विष्टकृत् - इत्युभयमपि सुचारुरूपेण सम्पद्यते।

'अन्वारब्ध आघारावाज्यभागौ महाव्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तं प्राजापत्यं स्विष्टकृच्च एतन्नित्यं सर्वत्र। प्राङ्महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविः एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः इति पारस्करगृह्यसूत्रीय प्रथमकाण्डस्थचतुर्थप्रथमकण्डिकाभ्यामयमर्थो निर्गलति, यत्र कुत्रचित् स्मार्ते शान्तिके पौष्टिके पौराणेऽन्यस्मिन् कर्मणि होमश्चिकीर्षितस्तत्र पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निस्थापनं दक्षिणतोब्रह्मासनादि पवित्रयोः प्रणीतासु निधानान्तं कर्मावश्यं कुर्यादिति प्रथमकण्डिकातात्पर्यम्। पुनश्च यत्र कश्चिद् होमस्तत्र ब्रह्मणा कुशेन प्रकोष्ठे स्पृष्टो यजमानः पूर्वमाघाराज्यभागाहुतिचतुष्टयमाज्येन प्रधानहोमोत्तरं नवाहुतीः स्विष्टकृद्धोमआज्येन जुहुयात्। यदि प्रधानहोमे आज्यादपरमपि हविर्द्रव्यं स्यात् तदा पूर्वं स्विष्टकृद्धोमः पश्चान्नवाहुतयो होतव्या आज्येन इति चतुर्थकण्डिकासन्दर्भतात्पर्यम्।

अथ स्विष्टकृद्विषये विचार्यते - सु इष्टं करोतीति स्विष्टकृच्छिवोऽग्निरूपः वेदान्तरेषु अग्नये स्विष्टकृतये - इति पाठः तत्र स्विष्टं कृतिर्यस्य तस्मै स्विष्टकृतये शिवायाग्निरूपायेति तात्पर्यम्। हुतशेषेण स्विष्टकृत् द्विर्द्विरवद्य जुहोति 'इति श्रौतसूत्रे निर्देशाद् होमानन्तरं तस्मिन् हविष्पात्रे यद् यद् हविरवशिष्यते तस्मात् तस्माद् हविष आहुतिद्वयपर्याप्तं हविः स्रुचि प्रक्षिप्य स्विष्टकृद्होमं कुर्यात्। स्विष्टकृद्धोमस्य देवो रुद्ररूपोऽग्निः इत्यभिप्रेत्य पद्धतिषु रौद्रत्वादुदकोपस्पर्शः इति, लिखितम्। स्रुवेण सूर्यमुद्दिश्याज्यश्चर्वादिकं च हस्तेन गृहीतं - तत आकृष्णेनेति मन्त्रपठनकाले स्रुवाद् आज्यबिन्दवः चरुतिलयवादीनाञ्च कश्चन भागलेशः पात्रे पतितस्तस्मिन् 'एष ते रुद्र भागः' इत्यादिश्रुत्या रुद्रभागत्वं सिध्यति समित्फलमोदकादिघनद्रव्येषु शेषभागस्य सर्वथा पतनासंभवात् समित्फलमोदकादिघनद्रव्यं स्विष्टकृद्धोमे न गृह्यते, अत एवोक्तं समिधां न स्विष्टकृत् 'इति, अयमेव हविर्द्रव्यशेषभागः यस्मिन् रुद्रस्याधिकारः स्विष्टकृद्धोमरूपः स दक्षप्रजापतिना बृहस्पतिसवने रुद्रमुद्दिश्य न हुतः एतदेव कारणं दक्षयज्ञविध्वंसनस्य सतीदेहत्यागस्य च। स्विष्टकृद्धोमानन्तरं यदवशिष्यते, 'तस्य हविरुच्छिष्टं दक्षिणा' इति विधानाद् आचार्यादिभ्यो देयम्, अनुपयुक्तं चेज्जले प्रक्षिपेत्, शेषमद्भिः प्रप्लाव्य' इति पा० गृ० प्र० का० द्वादशकण्डिकायामुक्तत्वात्।

एवं यस्मिन् कर्मणि केवलमाज्येनैव होमः यथा चौलोपनयनवेदारम्भकेशान्तसमावर्तनविवाहेषु तेषु प्रथमं नवाहुतयः ततः स्विष्टकृत्। यत्र च सीमन्तोन्नयनान्नप्राशनविवाहाङ्गचतुर्थीकर्मसु स्थालीपाकेन

होमः तत्र प्रथमः स्विष्टकृत् ततो नवाहुतय आज्येन, आघाराज्यभागनवाहुतिषु आज्यमस्त्ययेव तेन आज्यचरुभ्यां स्विष्टकृद्धोम इति सिद्धम् ।

श्रौते कालातिक्रमे यत् प्रायश्चित्तं तदेव 'कालातिक्रमे नियत (श्रौत) वत्' इति पारस्कर गृह्यसूत्रवचनात् संस्कारकालातिक्रमे यदनादिष्टं हूयते तत्र नाघाराज्याभागाहुतयः नापि स्विष्टकृत्, किन्तु १ भूः २ भुवः ३ स्वः ४ भूर्भुवः स्वः ५ त्वन्नो अग्ने॰ ६ सत्वन्नो अग्ने॰ ७ अयाश्चाग्ने॰ ८ ये ते शतं ९ उदुत्तमं॰ एता एव नवाहुतीर्जुहुयात् प्रायश्चित्तार्थत्वादिति विशेषः ।

६५ यज्ञियहिंसाया हिंसाभावत्वप्रतिपादनम् । बलिदानप्रत्याम्नायाश्च ।

इदं बलिदानं वास्तुशान्त्याद्यनेकनैमित्तिककाम्यकर्मसु मांसेन प्राक्काले क्रियमाणमासीत् । श्रौतस्मार्ताग्निहोत्राद्यनेककर्मसु पशुहिंसाविषयं पुरस्कृत्य 'अहिंसा परमो धर्मः' इति' महान्तमाक्रोशं कुर्वद्भिर्जिनैर्बौद्धैश्च सनातनवैदिकधर्मस्य महती निन्दा कृता ।

अत्र तेऽहिंसावादिनः परमार्थबुद्ध्या पृच्छ्यन्ते, जगति सर्वे जना मातृस्तनदुग्धं पीत्वैवैधमाना जीवन्ति, शरीरे विद्यमानाद्रक्तादुपरितनो विकारो दुग्धम्, गोषु महिषीषु वा दुह्यमानासु ऊधसि सम्पन्ने पयसि दोहे रक्तं निर्गच्छति, एतद् दुग्धं तद्विकारा दधिनवनीतघृतरूपा जनैः प्रेम्णा उपभुज्यन्ते न वा ? जगति चराचरे वृक्षफलधान्यतृणादिषु चैतन्यस्य विद्यमानत्वादेव तत् सर्वं जायते वर्धते इत्यादिषड्विकारग्रस्तं फलधान्यपुष्पादिकं जीवनायोपयुज्यते न वा ? यदि नास्ति तत्र चैतन्यम् ? तर्हि भूमावुप्तं तत्सर्वं जलतेजोवाय्वादिना कथमुत्पद्यते वर्धते च ? 'अहिंसा परमो धर्मः' इति डिण्डिमघोषं कुर्वाणैस्तैर्दुग्धतद्विकार-अन्नफलशाकादिकं सर्वं भुज्यते, अत्र हिंसा भवति न वा ? इति स्वयमेवोत्तरं देयम् । गां महिषीं वाऽहत्वा दुग्धादि गृह्यते इति न सा हिंसा ? इति चेत्, वृक्षशाकधान्यादिषु परिणतेषु संच्छिद्य भुज्यते तत्र हिंसा भवति न वा ? धान्यादिकं स्वभावेनोत्पद्यते, न तत्र चैतन्यांशः ? इति चेत् स्वशब्दस्य कोऽर्थः ? आत्मान आत्मीया वा इत्येवोत्तरम् ? ।

एवं 'जीवो जीवस्य जीवनम्' इति सिद्धान्तेन दुग्धधान्यतृणशाकफलादीनि परित्यज्य कोऽपि जीवितुमेव न प्रभवति । पुनश्च जीवने ज्ञाताज्ञाताऽनेकविधा हिंसा भवत्येव, तर्हि अहिंसावादिनां का गतिर्जैनानां बौद्धानाञ्च । यथा वदन्ति तथा न कुर्वन्ति ईदृशां बौद्धानां जगति सम्प्रति विद्यमानानां भोजनादिषु हिंसा भवति, केवलं वेदधर्मविहिता निराकृता हिंसा । अनेन हेतुना अहिंसावादिनां नित्यं मांसभक्षिणां बौद्धानां धर्मो भारतवर्षात् स्वयमेव निरस्तः ।

सनातनवैदिकधर्मस्य यानि मूलभूतानि तत्त्वानि तानि संरक्ष्य धर्मकर्मसु हिंसया जीवनमेवाशक्यं भवेदिति विचार्य वैदिकी हिंसा धर्मेण परित्यक्ता तत्प्रत्याम्नायत्वेन माषभक्तपिष्टपशुरूपादिनाऽद्यापि

स्वधर्मो रक्ष्यते, परेषां धर्मस्य यद् विशिष्टं तत्त्वं तद्यदि समीचीनम् तर्हि स्वधर्मे तदन्तर्भाव्य मोदन्ते भारतीयाः । इदमेव सनातनवैदिकधर्मस्थितेः परमं संजीवनम् । एवं सिद्धम् यत् कोऽपि कीदृशीमपि हिंसामन्तरा न जीवति तथैव यज्ञिया हिंसा हिंसा न भवतीति ।

६६ बलिदानम् । अनेककुण्डेषु बलिदानविचारश्च ।

एवं मांसपर्यायभूतमाषभक्तपायसदध्योदनादिना बलिदानं कार्यम् । तत्र पक्वान्नादिकमपि केषुचित् प्रदेशेषु माषपायसादिना साकं दीयते । शान्तिपौष्टिकादिनैमित्तिककाम्यकर्मस्वेतद् बलिदानम्, न नित्येषु विवाहादिषु । तत्र पूर्वं दिक्पालानां प्रत्येकमेकतन्त्रेण वा पिष्टनिर्मितकुलकेषु दीपं निधाय माषभक्तादिसहितं कुर्यात् । ततः स्थापितदेवतानां प्रत्येकमेकतन्त्रेण वा । तत्र बलिदीपानां प्रज्वालनं कुण्डवह्निना कार्यमित्यागमेषूक्तं तद् विचार्यम् ।

प्रतिष्ठावैष्णवरौद्रदेवीयागादिषु मण्डपे प्रतिकुण्डं दिक्पालबलयो दशदिक्षु देया इत्येकं मतम्, आचार्यकुण्ड एकस्मिन् कुण्डे वा कुण्डदशदिक्षु बलयो देया इत्यपरं मतम् । अत्र विचार्यते 'प्रधानः स्वामी फलयोगाद्, इति सूत्रेण कर्मजन्यफलभोक्तृत्वं यजमानस्यैव, ऋत्विजस्तु दक्षिणाक्रीता यजमानप्रतिनिधिरूपा न फलभाजः । एकाग्निपक्षे भिन्नाग्निपक्षेऽपि प्रतिकुण्डं विधीयमानस्य कर्मणः प्रधानकर्माङ्गत्वं प्रधानकर्मसंकल्पानुरोधेन सिद्धमेव । कर्मसौकर्यार्थं कुण्डरूपायतनभेदेऽपि कर्मैकत्वसंपादनं प्रधानं लक्ष्यम् । एतानि च कुण्डानि मण्डपान्तर्गतानि, मण्डपपूजायां ते ते दिक्पाला ध्वजपताकयोः स्थाप्यन्ते तत्तद्दिशि । एवं मण्डपस्यैव दशदिक्षु मण्डपान्ते बहिर्वा भूमौ दिक्पालानां बलिदानं कार्यमेतेन मतद्वयमपि सार्थकं भवति ।

ततो गणेशादिस्थापितदेवतानां स्थापनक्रमेण बलिदानं कुर्यात् । देवीयागे नवशतचण्ड्यादौ मेषमहिषान्यतरपशोरर्धं देव्यग्रे अवशिष्टार्धं क्षेत्रपालाय निवेदयेत् । देवीभिन्नयागेषु पशुबलिदानं मण्डपादुत्तरे बहिश्चत्वरे वा देयम् । कलियुगे पशुबलिनिषेधाल्लोकविद्विष्टत्वाच्च पशुपर्यायरूपकूष्माण्डेन माषभक्तसहितेन क्षेत्रपालबलिदानं कार्यम् । कूष्माण्डालाभे पुरुषार्थचिन्तामणौ कालिकापुराणवचनात् पशुपर्यायभूताः - माष कूष्माण्ड-इक्षुदण्ड-मद्य-आसव-श्रीफल-जम्बीर-बीजपूरक-अलाबु प्रभृतिद्रव्याणि, तेभ्य एकतमेन तन्त्रपुराणान्तरवचनाच्च कार्यम् । क्षेत्रपालबलिर्भूतप्रेतादिजन्याधिव्याध्यादिनिवृत्तये मण्डपोत्तरे चत्वरे वा खड्गेन छित्त्वा देयः । क्षेत्रपालबलिर्दुर्ब्राह्मणेन नेतव्य इत्युक्तम् । तत्र दुर्ब्राह्मणो नाम यस्योपनयनादिसंस्कारा वेदाध्ययनं च त्रिपुरुषपर्यन्तं भ्रष्टं स पतितरूपो दुर्ब्राह्मणः । यस्य वेदश्च वेदी च, विच्छेद्येते त्रिपूरुषम् । स वै दुर्ब्राह्मणो ज्ञेयः सर्वकर्मसु निन्दितः - इति स्मृतिवचनम् । क्षेत्रपालबलिदानान्तरं यजमानः पाणिपादं प्रक्षाल्याचम्य पूर्णाहुतिं जुहुयात् ।

६७ पूर्णाहुतेः कर्मापवर्गसमित्प्रक्षेपरूपत्वम्, तिष्ठता यजमानेन पूर्णाहुतिसमर्थनम्, त्यागविचारश्च ।

नैमित्तिककाम्यशान्तिकपौष्टिकादिकर्मसु पूर्णाहुतिर्भवति न नित्येषूपनयनविवाहादिषु । प्रतिष्ठाप्रयोगाङ्गभूते होमे 'शतान्ते वा सहस्रान्ते पूर्णाहुतिमथाचरेत्' इति वचनेन मूर्धानमिति मन्त्रेण वा पूर्णाहुतिः क्रियते तदपेक्षयेयं पूर्णाहुतिर्भिन्ना । स्विष्टकृत्नवाहुत्यन्ते हविषां निःशेषत्वेन पूर्णाहुतिवसोर्धारार्थमन्यदाज्यं गृहीत्वाऽग्नावधिश्रित्य स्रुक्स्रुवौ प्रतप्य संमार्जनकुशैः सम्मार्ज्य तत आज्यमुद्वास्य पवित्राभ्यामुत्पूयावेक्ष्यापद्रव्यं निरस्य, स्रुचि चतुर्वारं द्वादशवारं वाऽऽज्यं प्रपूर्य तदुपरि वस्त्रमाल्याद्यलङ्कृतं ससमित्नारिकेलं निधाय तदुपरि अधोमुखं स्रुवं निधाय धृत्वोभयपाणिभ्यां यजमानस्तिष्ठेत् । मन्त्रान्ते जुहुयात् ।

अथ का नाम पूर्णाहुतिरिति विचारे स्मार्ताग्निहोत्रे कर्मान्ते 'कर्मापवर्गसमित्प्रक्षेपः कर्मणोऽपवर्गः समाप्तिः तत्सूचिकायाः समिधोऽग्नौ प्रक्षेपः' इत्युक्तम् । एतदतिदेशभूतेयं पूर्णाहुतिः अत एव पूर्णाहुतौ ससमित्नारिकेलं समिधा सहितं नारिकेलं निधीयते । इयं समिदेव कर्मापवर्गरूपपूर्णत्व बोधिका । ससमित्त्वेन निधानात् 'तिष्ठन् समिधः सर्वत्र' लाजहोमं समिद्धोमं मूर्ध्नि होमं तथैव च । पूर्णाहुतिं वसोर्धारां तिष्ठतैव हि कारयेत्' श्रौतसूत्रगृह्यकारिकावचनाभ्यां पूर्णाहुतिः वसोर्धारा च तिष्ठता यजमानेन कार्येति सिध्यति । विवाहे वधूकर्तृको लाजहोमः सप्तहतेन तिष्ठती जुहोतीत्युक्तः, उपनयने ब्रह्मचारिकृतं समिदाधानं 'उत्तिष्ठन् समिधमादधाति' इत्युक्तत्वात् तिष्ठता ब्रह्मचारिणा क्रियते, विनायकशान्तौ यजमानमूर्धनि दर्भान् निधाय सार्षपतैलेन तिष्ठताऽऽचार्येण षडाहुतयो हूयन्ते, एवमेव पूर्णाहुतिवसोर्धाराकर्मणी स्थितेन यजमानेन कार्ये इत्यर्थो निर्गलति । मात्स्ये-शतान्ते वा सहस्रान्ते स्रुक्पूर्णाहुतिरिष्यते । समपादस्ततोर्ध्वस्तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत् 'इति वचनं यद्यपि प्रतिष्ठाङ्गहोमविषयम्, तथापि श्रौतसूत्रगृह्यकारिके कर्मावसानिकपूर्णाहुतिवसोर्धारयोः यजमानस्य समपादत्वं स्थितत्वं प्रशान्तात्मत्वञ्च गमयतः । तेन भूमावुपविश्य दक्षिणं जान्वाच्य पूर्णाहुतिं जुहुयादिति वदन्तो निर्मूला एव । मात्स्यवचने स्रुक्पूर्णाहुतिरिष्यते' एतस्य स्थाने 'पूर्णाहुतिमथाचरेत्' इति पाठभेदः पद्धतिषूपलभ्यते । प्रतिष्ठेन्दौ प्रधानहोमान्ते शतसहस्रान्तहोमबोधिका पूर्णाहुतिरन्या, प्रकृतिवद् विकृतिः कर्तव्येति न्यायप्राप्त-ग्रहमखस्य प्रकृतित्वमादाय कर्मावसाने क्रियमाणेयं पूर्णाहुतिर्भिन्नेति प्रतिपादितम् ।

६८ वसोर्धाराया उद्देशः, त्यागसंस्रवराहित्यप्रतिपादनम् ।

ऋग्वेदपद्धतिषु पूर्णाहुतौ ग्रहयज्ञे १ समुद्रादूर्मिर्म २ वयं नामः ३ चत्वारि शृङ्गाः ४ मूर्धानं दिवो॰ ५ पुनस्त्वा॰ ६ पूर्णादर्वि॰ ७ सप्तते अग्ने॰ ८ धामन्ते॰ इत्यष्टमन्त्रैः पूर्णाहुतिं हुत्वा मन्त्रक्रमानुरोधेन 'इदमग्नये वैश्वानराय वसुरुद्रादित्येभ्यः शतक्रतवे सप्तवतेऽग्नये अद्भ्यश्च न मम' इति

त्यागवाक्यं युक्तम् । याजुषाणां तु पूर्णाहुती-१ समुद्रादूर्म्मि॰ धामन्ते (१०) ११ पुनस्त्वा॰ १२ मूर्धानं॰ १३ सप्तते अग्ने॰ १४ पूर्णादर्वि॰ इति मन्त्रक्रमानुरोधेन, इदमद्भ्यः वसुरुद्रादित्येभ्यः अग्नये वैश्वानराय सप्तवते अग्नये शतक्रतवे च न मम इति त्यागवाक्यं वक्तुमुचितम्, तथापि प्राचीनपद्धतिषु ऋग्वेदानुसारि त्यागवाक्यं लिखितं तत्र मूलं मृग्यम् । ऋग्वेदानुसारित्यागवाक्यस्वीकारे तु - १ मूर्धानं दिवो २ पुनस्त्वा॰ ३ पूर्णादर्वि॰ ४ सप्तते अग्ने॰ ५ ततः १४ समुद्रा॰ मधुमन्तन्त ऊर्मिम् स्वाहा' ईदृशो मन्त्रक्रमः स्वीकार्यः स्यात् किन्तु तादृशक्रमस्वीकारस्य कुत्राप्यदर्शनान्मन्त्रक्रमानुरोधेन त्यागवाक्योच्चारणं शास्त्रसम्मतं भवेत् ।

'वसोर्धारा' इत्यलुक्सामासिकं पदम् । श्रुतौ 'वसुर्वै यज्ञः इत्युक्तत्वात् यज्ञसम्बन्धिनी धाराइत्यर्थो निर्गच्छति । केनेत्याकाङ्क्षायां सामान्यत्वादाज्यमुपक्षिप्यते । तेन यज्ञसम्बन्धिनी घृतधारा तद्विषयकं कर्मेति स्वरसः । पूर्णाहुतिसंकल्पे-एकोनपञ्चाशद्मरुद्गणानां प्रीतये वसोर्धारासमन्वितं पूर्णाहुतिहोमं करिष्ये-इति याज्ञिकसम्प्रदायात् पूर्णाहुतेः प्राथम्यम् वसोर्धारायाश्चानन्तर्यं विशेषणत्वादुपपद्यते । अस्मिन् विषये पुराणकथा संगच्छते-शक्रेण दितिगर्भस्य वज्रेण सप्त भागाः कृताः तथापि ते न मृता इति कृत्वा पुनः सप्तानां सप्तधाकरणेन एकोनपञ्चाशत् संख्याकाः मरुतः कश्यपगर्भत्वात्तेषां जीवने दितिप्रार्थनया तेषां देवत्वं यज्ञभोक्तृत्वञ्च स्वीकृतम् । इमे चैकोनपञ्चाशन्मरुतः शुक्रज्योतिरित्याद्यनुवाकेन उग्रश्चेति मन्त्रेण च वेदे निर्दिष्टाः सन्ति । 'अहुतादो मरुतः' इति श्रुतिवचनात् तानुद्दिश्य क्रियमाणेयं वसोर्धारा होमत्वेन न परिगणिता किन्तु धारारूपेण, होमाभावादत्र त्यागवाक्यस्य प्राप्तिरेव न । पुनश्च बाहुमात्रया वा चतुर्हस्तमितया औदुम्बर्या मध्ये सकोटरया ऋज्व्या स्रुचाऽऽज्यस्य सन्ततधारां पातयेद् अथवा कुण्डमध्योपरिभागे घृतेन घृतपूरितेन सच्छिद्रेण ताम्रकुम्भेन वा मन्त्रान् पठन् सन्ततधारां पातयेत् । होमान्ते च तामौदुम्बरीं स्रुचम् अग्नौ प्रास्येदित्युक्तत्वात् होमाभावात् त्यागस्य वह्नौ स्रुङ्निक्षेपविधानेन संस्रवस्य अवकाश एव नास्ति । तथापि याज्ञिकाः इदमग्नये न मम रुद्रकलशे त्यागः इति वदन्ति कुर्वन्ति च । एतत् त्यागसंस्रवनिक्षेपरूपं कर्म भ्रान्तिमूलमेवेत्युपेक्ष्यम् ।

मत्स्यपुराणे-घृतकुम्भाद् वसोर्धारां पातयेदनलोपरि । औदुम्बरीमथार्द्रां च पर्णशाखाविवर्जिताम् ॥ बाहुमात्रां स्रुचं कृत्वा धृत्वा स्तम्भद्वयोपरि । घृतधारां सम्यगग्नेरुपरि पातयेत् । इति वचनाभ्यां यवमात्रच्छिद्रसहिते कुम्भे घृतं प्रपूर्य सन्ततधारां पातयेदित्येकः पक्षः, औदुम्बर्या दीर्घस्रुचा धारां पातयेत्-इत्यपरः पक्षः । केचिद् याज्ञिकाः स्रुचा कुम्भेन च धारां कुर्वन्ति । तत्र कुम्भमानं प्रतिष्ठेन्दौ प्रतिपादितम् ।

वसोर्धारायां क्रियमाणायां स्वशाखोक्तसूक्तानुवाकपठनानन्तरं विशिष्टसूक्तजप उक्तो मात्स्ये-श्रावयेत् सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम् । महावैश्वानरं साम ज्येष्ठसाम च वाचयेत्-इति । प्रयोगदर्पणे 'सप्ततेत्यनुवाकं च मखे सूक्तान् विशेषतः । चमकान् वसुधारोक्तान् वसोर्धाराहुतौ पठेत् इति । एतद्वचननिचयस्यायं निष्कर्षः सप्त ते' अग्ने॰ इत्यारभ्य वा शुक्रज्योतिरित्यारभ्य घृतम्मिमिक्षे॰ इत्यन्तान्

दश नव वा मन्त्रान् पठित्वा अग्निसूक्तं समास्त्वा० अमुत्र भूया० अ-२७ मं १ तः ९ नवर्चम्-विष्णोर्नुकं इति षड् ऋचः वा युञ्जते इति पञ्चमाध्यायगताष्टकम् रौद्रसूक्तम्-नमस्ते० ६६ वा १६ इन्दुसूक्तम् आप्यायस्वेति तृचम् चमकाध्यायो वाजश्च समग्रः- २९ वा एकाचमे० वेदृस्वाहामहावैश्वानरसामज्येष्ठसामनी सामवेदे प्रसिद्धे ऋग्वेदसामवेदाथर्ववेदिनस्तैत्तिरीयाश्च पूर्णाहुतौ वसोर्धारायाञ्च स्वस्वशाखानिर्दिष्टानि सूक्तानि पठेयुः । अन्ते 'अथातो वसोर्धारां जुहोति० इति ब्राह्मणमन्त्रान् पठित्वाऽन्ते ॐ यत्कर्मणात्यरीरिचं० सुहुतं करोतु स्वाहा-इति पठित्वा वसोर्धारां समापयेत् । अग्निविष्णु-रुद्र-इन्दुसूक्तान्यपि स्वशाखास्थितान्यन्यानि घृतसद्भावं समीक्ष्य यथासम्भवं पठनीयानि यथासमयम् । वसोर्धारान्ते त्यागः संस्रवश्च नास्तीत्युपरि सप्रमाणं प्रतिपादितम् । महार्णवे चिन्तामणौ वसोर्धारां प्रकृत्य-वाजश्चमेत्यादि वेदृस्वाहेत्यन्तमेव च । होमान्ते प्रासयेदग्नौ स्रुचं तामाज्यलिप्तिकाम् इति स्रुङ्निक्षेपविधानात् संस्रवप्रक्षेपः स्रुपुष्प्यायितः ।

६९ भस्मधारणम्, मन्त्रकण्डिकाभेदश्च ।

वसोर्धारान्ते स्रुवेण स्रुचा वा कुण्डस्यैशानीतो भस्मादाय 'त्र्यायुषमिति प्रतिमन्त्रम् इति, पारस्करगृह्य० का० २ सू० ४ वचनात् ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः - इति ललाटे ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् इति ग्रीवायाम् ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् - इति वामदक्षिणस्कन्धयोः ॐ तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् - इति हृदये भस्म धारयेद्यजमानः । श्रद्धां मेधां० देहि मे हव्यवाहन - इति पौराणमन्त्रमपि पठेत् । हस्तं प्रक्षालयेत् ।

अत्र सूत्रे 'त्र्यायुषमिति प्रतिमन्त्रम्' इति सूत्रकृता निर्देशात् त्र्यायुषमित्यस्यां कण्डिकायां मन्त्रचतुष्टयं वर्तते इति सिद्धम् । 'नियताक्षरपादावसाना ऋचः अनियताक्षरपादावसानानि यजूंषि' इति भगवता यास्केन यजुर्लक्षणमुक्तम् । याज्ञिका व्यवहारे ॐ इषेत्वो० पशून्पाहि-इत्यन्तं समग्रं मन्त्रं मन्यन्ते किन्तु शुक्लयजुर्वेदोवटमहीधरभाष्ययोः 'इषेत्वा - इति द्विपदस्त्र्यक्षरो मन्त्रः ऊर्जेत्वा द्विपदस्त्र्यक्षरो मन्त्रः ३ वायवस्थ चतुरक्षरो द्विपदो मन्त्रः ४ देवो वः० स्यातबह्वीः इति द्विषष्ट्यक्षरः ५ यजमानस्य पशून् पाहि-इति नवाक्षरः एवं संभूय पञ्च मन्त्राः सन्ति । मन्त्रसमूहः कण्डिका यथा गृह्यसूत्रेषु 'सूत्रसमूहः कण्डिका, सूत्रमल्पाक्षरं वाक्यम्, इति निर्देशात् संहिताभाष्ये इषेत्वेति प्रथमा कण्डिका मन्त्रसमूहरूपा न तु मन्त्रः । इति स्थापितम् । श्रौतस्मार्ताग्निहोत्रकर्मसु निरुक्तं मन्त्रत्वमादायैव यजुर्वेदविधाने कण्डिकासु मन्त्रविभागं पुरस्कृत्य संहितास्वाहाकारप्रयोगः क्रियते । इत्थं मन्त्रकण्डिकयोर्भेदमालक्ष्य 'त्र्यायुषमिति प्रतिमन्त्रम्' इत्युक्तम् ।

७० होमसंकल्पः । संस्रवप्राशनादिप्रणीताविमोकान्तकर्मविचारश्च ।

यथा पूर्वं होमारम्भे वराहुत्यनन्तरमनेकर्त्विक्साध्ये कर्मणि प्रतिमन्त्रं त्यागसंस्रवप्रक्षेपासंभवात् 'इदं सम्पादितं० न मम, यथादैवतमस्तु' इति साकल्येन त्यागसंकल्पः कृतः तथैव समग्रहोमे सम्पन्ने

आधारादिपूर्णाहुतिपर्यन्तं० सा सा देवता प्रीयताम् इति साकल्येन होमपरिपूर्तिंदर्शकस्तत्तद्देवताप्रीतिजनको होमसंकल्पः क्रियते ।

श्रौतसूत्रे 'हुत्वा हुत्वाऽवत्तस्य शेषप्राशनम् - इति स्रुवादिना गृहीतस्य शेषस्य होमान्ते प्राशनमित्युक्तम् । तेन प्रोक्षण्यां निक्षिप्तस्य संस्रवरूपशेषस्य यजमानेन प्राशनम्, तत आचमनम् । यत्र तु संस्रवस्य भिन्ना प्रतिपत्तिः, यथा विवाहाङ्गभूतचतुर्थीकर्मणि हुत्वा हुत्वैतासामाहुतीनामुदपात्रे संस्रवान् समवनीय तत एनां मूर्धन्यभिषिञ्चति-प्रणीतोत्तरस्थले उदपात्रं निधाय तस्मिन् अग्नेप्रायश्चित्ते० प्रजापतये स्वाहा-इति षडाहुतीनां संस्रवप्रक्षेप उक्तः तेन चोदपात्रजलेन याते पतिघ्नी० इति मन्त्रेण वधूमूर्धनि वरकर्तृकोऽभिषेकः संस्रवप्राशनान्ते विहितः पुनश्च वास्तुशान्तावप्युदपात्रं निधाय इहरत्यादिषडाहुतीनाम् अग्निमिन्द्रं० इत्यादिघृतसहितस्थालीपाकषडाहुतीनाञ्च संस्रवस्योदपात्रे प्रक्षेपो विहितः एतस्य संस्रवस्य आसनोपस्थानादिप्रोक्षणे भित्त्यलङ्करणे च विनियोगः कृतः तथा च विवाहहोमकर्मणि यमपितृवैवस्वतानामाहुतीनां दक्षिणनिहितोदपात्रे मृत्योश्च भूमावग्नौ वा संस्रवनिक्षेपो देवतानामुग्रत्वमभिलक्ष्य पद्धतिकृद्भिर्विहितः, तथा मङ्गले कर्मण्युग्रदेवताकसंस्रवप्राशनं मा भूदिति हेतुना एवमुपरिनिर्दिष्टानामाहुतीनां प्रोक्षण्यां संस्रवप्रक्षेपो न भवति, प्रोक्षणीस्थितस्य संस्रवस्यैव प्राश्यत्वात् ।

अत्र विचार्यते-अनेकेषु यागेषु कर्मसु च यमरुद्रपितृस्वधामृत्युभैरवाद्युग्रदेवतानामावाहनं पूजनं होमः संस्रवप्रक्षेपश्च भवति तत्र संस्रवप्राशनं कार्यं न वेति - विचार्य घ्राणमपि भक्षणरूपं मत्वा संस्रवघ्राणं कुर्वन्ति - इति याज्ञिकैर्मध्यमो मार्गः स्वीकृत इति भाति । तथापि विहिते निषेधाप्रवृत्त्या प्राशनस्य विहितत्वात् प्राशनं कार्यमिति संक्षेपः ।

आवसथ्याधानसूत्रे - बर्हिर्हुत्वा प्राश्नाति - परिस्तरणनिहिता ये दर्भास्तानग्नौ प्रक्षिप्य संस्रवप्राशनम् - इति सूत्रार्थः । अत्र भाष्यकृद्भिः स्मार्ताग्निहोत्रसाध्यकर्मस्वेव बर्हिर्होमः नान्यत्रेति प्रतिपादितम् । किन्तु यथाऽन्यत्र स्मार्ताग्निहोत्रातिदेशो गृह्यते तथैवात्रापि तदतिदेशमादाय परिस्तरणदर्भाणामग्नौ प्रक्षेपे न कश्चिद् दोषः अकरणे तु न प्रत्यवायः । अयं बर्हिर्होमोऽग्नितन्त्रसमाप्तिसूचकः । प्रणीतासु निहिताभ्यां पवित्राभ्यां प्रणीताजलेन यजमानमुखं मार्जयित्वा पवित्रग्रन्थिं विमोच्य पवित्रयोरग्नौ प्रक्षेपः । षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयमुष्टितण्डुलपूरितं पात्रं सदक्षिणाकं ब्रह्मणे संकल्पपूर्वकं दद्यात् । तादृशपूर्णपात्राभावे तन्निष्क्रयीभूतां दक्षिणां दद्याद् अथवा वरोऽभिलषितं द्रव्यम् तद् दद्यात् । प्राचीनकाले 'चतुःकार्षापणो वरः' इति वरपर्यायत्वेन डब्बूकचतुष्टयप्रदानमुक्तम् । यस्मिन् काले धान्यफलतृणशाकादीनां मूल्यमेव नासीत् । इदानीन्तु वरत्वेन यजमानसमृद्धिमपेक्ष्य द्रव्यदानं कुर्यादिति विवेकः । ततः प्रणीतापात्रमादाय प्रादक्षिण्येन यजमानसमीपे पश्चिमभागे आनीय प्रणीताशेषजलं शुद्धभूमौ वा गृहीत्वा तेन जलेन आपः शिवाः० कृण्वन्तु भेषजम् इति मन्त्रेण यजमानमूर्धन्यभिषिञ्चेत् । एवं समग्रमग्नितन्त्रमत्र समाप्तम् ।

७१ शिवाग्नितन्त्रस्य वैदिकक्रमविरोधः ।

दुर्गाकल्पद्रुमे चण्डीयागे शिवाग्नितन्त्रे होमसंकल्पानन्तरमाज्येनाग्नौ हिरण्यादिद्वात्रिंशदाहुतयो होतव्या इत्युक्तम्, सरल्यां च वैदिकस्विष्टकृन्नवाहुत्यनन्तरमाज्येन तान्त्रिकस्विष्टकृन्नवाहुतिहोम आज्येनोक्तः । तत्र शङ्क्यते - शिवाग्नितन्त्रे वैदिकतान्त्रिकमिश्रविधित्वं स्वीकृत्य पूर्णाहुतावन्यदाज्यं गृहीत्वा संस्कारान् विधाय तेनाज्येन पूर्णाहुतिवसोर्धाराकरणस्योपदेशात् तान्त्रिकस्विष्टकृन्नवाहुतयः हिरण्यादिद्वात्रिंशदाज्याहुतयश्च किमसंस्कृतेनाज्येन देया उत वाऽन्यामाज्यस्थालीमादाय संस्कृताज्येन देयाः, इति विषये त एव उत्तरं दद्युः । पुनश्च हुतशेषेण सम्पादिते स्विष्टकृद्धोमे किमन्यं चरुं पायसं वा पचेत् - इत्यत्रापि कः पन्थाः ? । मिश्रप्रयोगे वैदिकस्य विधेर्बलीयस्त्वं तैरेव तन्त्रे स्वीकृतम् । वैदिकं हुतशेषस्य स्विष्टकृद्धोमेन प्रतिपत्तिं प्रतिपादयति इति तान्त्रिकस्विष्टकृन्नवाहुतिहोमे का गतिरिति त एव प्रष्टव्याः ।

७२ प्रासादोत्सर्गः । नीराजनादि ।

द्वैतनिर्णये त्रैविक्रम्यामन्यत्र च प्रासादोत्सर्ग उक्तः । केवलप्रासादप्रतिष्ठायां स्वातन्त्र्येण कृतायां तु प्रासादप्रतिष्ठानन्तरं प्रासादोत्सर्गः कुत्रचिदुक्तः तन्न शोभनम्, प्रासादस्य देहरूपत्वात् प्रतिमायाश्च चैतन्यरूपत्वात् प्रणीताविमोकान्तकर्मणि कृत एव प्रासादोत्सर्गो विधेय इति युक्तम् । यजमानः प्रासाददेवद्वारसम्मुखं सभामण्डपसोपानसमीपे मण्डपे वोपविश्य उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा सहिरण्यकुशा अपो हस्ते धृत्वा-अद्य० तिथौ समस्तपूर्वजानां (अमुक) लोकनिवासहेतवे सूर्याचन्द्रमसौ यावद् बिम्बे देवकलासान्निध्यहेतवे इमं शिलेष्टकापाषाणखण्डकाष्ठध्वजशिखरवलभी प्राकारगोपुरादिसहितं (अमुक) देवतं प्रासादं शास्त्रानुरोधेन भक्तजनानां दर्शनार्चनार्थं सर्वभूतेभ्यः अहमुत्सृज्ये न मम इत्युक्त्वा जलं प्रासादद्वारि सोपाने मण्डपे वा उत्सृजेत् । अयं प्रासादोत्सर्गो नूतन एव प्रासादे कार्यो नान्यत्र । तत आचारात् स्थापितदेवतानां नीराजनं प्रदक्षिणां मन्त्रपुष्पाञ्जलिं विशेषार्घं प्रार्थनां क्षमापनञ्च यथायथं सम्पादयेत् ।

७३ चतुर्थीकर्माङ्गलेपः, कङ्कणमोचनञ्च ।

प्रतिष्ठादिनाच्चतुर्थेऽह्नि द्वितीये वा चतुर्थीकर्म कुर्याद् । अत्र शैवे वैष्णवे चान्यदेवताया वा प्रतिष्ठायां चतुर्थीकर्मतदङ्गमहास्नानादि प्रतिष्ठाप्रयोगप्रकरणे वक्ष्यते । एतच्चतुर्थीकर्मार्चाशुद्ध्यर्थञ्च क्रियते । अत्र विहितहोमादिकर्मणि सम्पन्ने प्रासादस्नपनोक्तैरेकाशीतिकलशैः स्नपनमथवा मात्स्योक्तप्रकारेण महास्नानं विधेयम् । विषयममुमवलम्ब्याग्नेऽष्टोत्तरसहस्रतदर्धतदर्धान्यतमपक्षं स्वीकृत्य महास्नानं देवस्योक्तम् । एतन्महास्नानं दूषितस्पर्शादिजन्यदेवकलाह्रासनिवृत्त्यर्थमप्याग्नेयेश्वरसंहितादिषु शान्तिहोमजपपूर्वकं विहितम् । तत्प्रयोगः स्वातन्त्र्येण लिखितः ।

ततः प्रतिष्ठोत्तरं प्रतिदिनं क्रमेण १ मधु २ हरिद्रासर्षपपिष्ट ३ श्रीखण्ड (चन्दन) यवपिष्ट ४ मनःशिलाप्रियङ्गुपिष्टद्रव्यैर्लेपं कृत्वा यथासम्भवकलशैर्देवं संस्नाप्य पूजनादि कुर्यात् । इदानीं सद्यः पक्षेण चतुर्थीकर्मणि विधेये तु मधुहरिद्रासर्पपपिष्टश्रीखण्डयवपिष्टमनःशिलाप्रियङ्गुपिष्टान्येकीकृत्य देवमन्त्रेण देवं विलेप्य वारिणा संशोध्य पूजयेत् । ततः प्रतिमासंरक्षणार्थं जलाधिवासे जलाधिवासाकरणे स्नपनविधौ देवदक्षिणहस्ते बद्धमूर्णासूत्रं 'मुञ्चन्तु मा० किल्विषात्-इति मन्त्रेण विमोच्य देवपादयोः समर्पयेत् । प्रतिष्ठेन्दी-महास्नानचतुर्थीकर्मणोर्विकल्पः अदृष्टार्थत्वात् समुच्चय इति केचित्-इत्युक्तम् ।

७४ श्रेयोदानस्य कृताकृतत्वम् ।

प्रयोगपारिजाते वामनेन-आचार्यप्रभृतिभ्यश्च ग्रहार्चनफलं ततः । समिदाज्यचरूणां च तिल होमफलं तथा ॥ ब्रह्मत्वे कुम्भपूजायां चार्चनस्य फलं तथा । लोकपालगणेशाद्यास्तत्र या अङ्गदेवताः । तासां जपफलं दद्याद् गृह्णीयाज्जलपूर्वकम् । ततस्तेभ्यो यथाशक्ति दातव्या दक्षिणा क्रमात्-इति आचार्यादिकर्त्विग्भिः प्रत्येकं केवलमाचार्येण वा-एभिर्ब्राह्मणैः सह यत् कर्म कृतं तदुत्पन्नं यच्छ्रेयः तेन श्रेयसा त्वं श्रेयस्वी भव-इत्युक्त्वा यजमानहस्ते पूर्वं जलादिकं दत्त्वा साक्षतजलपूगीफलेन देयम् । यजमानेन-भवामि-इत्युक्त्वा गृहीत्वा देवपादयोः समर्पयेत् ।

रुद्रपद्धतौ भट्टैस्तु - इदं श्रेयोग्रहणं निर्मूलत्वाद्यजमानप्रतारणामात्रमित्युपेक्ष्यम्-इत्युक्तम् ।

अत्र विचार्यते - 'प्रधानस्स्वामी फलयोगात्' दक्षिणापरिक्रीतोऽध्वर्युः यजमानार्थं कर्म करोति, यज्ञे यां वै काञ्चन ऋत्विज आशिषमाशासते सा यजमानस्यैव, इत्यादिश्रुतिवाक्यसआश्रयेन समग्रस्य कर्मणः स्वयं ब्राह्मणरूपप्रतिनिधिद्वारा वा सम्पादितस्य फलभोक्तृत्वं यजमानस्यैव नान्यस्येति स्वतः सिद्धम्, पुनश्च 'को यज्ञः ? का दक्षिणा ? इति प्रश्नद्वयेन यजमान ऋत्विजो दक्षिणया क्रीणातीति क्रीतानां फलभोक्तृत्वं स्वप्नायितम् । 'मानस्तोके० त्र्यम्बकं० इत्यादिष्वनेकमन्त्रेषु ब्राह्मणद्वारोच्चार्यमाणेषु-मा नः इत्यादिपदजन्या आशिषो यजमान एव लभते-इति श्रुतिवाक्यानां तात्पर्यम् ।

एवं दक्षिणादातुर्यजमानस्यैव फलभोक्तृत्वे सिद्धे श्रेयोदानस्य निरर्थकत्वम् । तथापि स्थानान्तरस्थितेन ब्राह्मणेन यजमानाज्ञया परोक्षे सम्पादितं कर्म साङ्गं जातमिति यजमानस्य सन्तोषोपपत्तये यदि क्रियते श्रेयोदानं न काचिद्धानिः, उपर्युक्तवामनवचनात् ।

एवं दक्षिणामादाय ब्राह्मणो यदि साङ्गं कर्मनकरोति स्वात्मस्थितं परमात्मानं यजमानञ्च वञ्चयति तदा कर्मवैगुण्यजनितं पातकं ब्राह्मणस्य शिरसि पतति, यजमानस्तु दक्षिणादानेन तत्तत्कर्मजन्यसम्पूर्णफलभाग् भवत्येवेति तत्त्वम् ।

७५ दक्षिणादानम् ।

'यज्ञस्य पत्नी दक्षिणा' इति श्रुतिवाक्याद् दक्षिणामदत्त्वा वञ्चयित्वा वा कर्मकारयिता यजमानः कर्मजन्यफलं नाश्नुते पापभाक् च भवति । गृह्यपरिशिष्टे वस्त्रालङ्कारगोभूहिरण्यान्याचार्याय तदर्धमृत्विग्भ्यस्तदर्धं सदस्याय इति । आचार्यापेक्षयाऽर्धं ब्रह्मणे इत्यादि प्रतिष्ठेन्दावुक्तम् । कल्पतरौ भविष्ये-हस्त्यश्वरथवस्त्रैश्च गोभूमिरजतादिभिः । सहस्रदक्षिणाभिश्च पूजयेद् विधिवद् गुरुम्-इति । बौधायनः-गोसहस्रं तदर्धं गोशतं वा वृषभम्, एकादश गाः पञ्च वैकां गां भूषणाद्युपस्करसहितां दक्षिणात्वेन कल्पयेद्-इति ।

वर्तमानकाले यदि कश्चिद् गोसहस्रं हस्तिनं अश्वं वा ददाति तर्हि प्रतिग्रहीतुः पालनसामर्थ्यमेव न भवति . सुवर्णरजताश्वरत्नवृषभादिदानमपि खपुष्पायितम् । नास्ति तादृशो दाता नास्ति च प्रतिग्रहीता योग्यः । इति कृत्वा देशकालानुसारेण दातुं योग्यं यत् सविधे स्यात् तद् ब्राह्मणयोग्यतां विचार्य प्रेम्णा विभज्य दक्षिणात्वेन देयमिति निष्कर्षः ।

तत आचार्याय सालङ्कृतसदक्षिणसोपस्करप्रत्यक्षगोदानं तन्निष्क्रयद्रव्यदानं वा ब्रह्मणे तादृशप्रत्यक्षवृषभदानं तन्निष्क्रयद्रव्यदानं वा आचार्यादिभ्यो यथाविभवं वस्त्रालङ्कारादिसहितदक्षिणादानं आचार्याय दशमहादाननिष्क्रयद्रव्यदानं मण्डपनिष्क्रयदानञ्च आचार्यादिभ्योऽन्येभ्यश्च भूयसी (निर्दिष्टदक्षिणापेक्षयाऽधिका) दक्षिणादानम्, आचार्याय सोपस्कारपीठतिलपात्रकांस्यमयाज्यपात्रछाया-पात्रदानम्, आचार्याय तण्डुलपूरिताञ्चरुस्थालीम्, ब्रह्मणे घृतपूरितामाज्यस्थालीं यजमानो दद्यात् ।

७६ दानप्रतिग्रहयोर्विशेषः, तत्तद्देवतानिर्देशश्च ।

वृद्धपराशरेण दानप्रतिग्रहयोर्देवतानिर्देशपूर्वकं विशेष उक्तः । १ विष्णुदैवतभूमेः प्रादक्षिण्येन स्वीकारः । २ प्राजापत्यानां कन्यादासीदासानां करेण तत्र दासीदासानां हृदये करेण, ३ प्राजापत्यगजस्यारोहणेन, ४ यमदैवताश्वस्य कर्णग्रहणेन ५ यमदैवतैकशफानां रुद्रदैवतगोश्च पुच्छेन ६ मृगस्य शृङ्गेण ७ अजानां पशूनाञ्च कर्णेन, तत्र महिषो यमदैवतः, उष्ट्रो निर्ऋतिदैवताकः एतस्यारोहणेन, छागोऽग्निदैवताक, वराहो विष्णुदैवताकः, आरण्यपशवो वायुदेवताकाः । ७ रथस्येक्षास्पर्शः, छत्रदण्डयोर्धारणम्, आसने उपवेशनम्, उपानहोः पादुकयोर्वा पादनिवेशनम्, रथछत्रदण्डासनोपानत्पादुका उत्तानगिरोदैवताः । ८ वृक्षस्य मूलस्पर्शेन वनस्पतिर्दैवता । ९ रत्नसुवर्णालङ्कारधात्वादीनां धारणमग्निर्दैवता । १० वस्त्रं प्रान्तेन बृहस्पतिर्दैवता । ११ कवचध्वजयोः स्पर्शः इन्द्रः । १२ यज्ञोपवीतग्रहणम् प्रजापतिः । १३ गृहं प्रवेशेन इन्द्रः । १४ वापीकूपतडागादिष्ववतरणम् वरुणो देवता । १५ रसादिग्रहणम् सोमः । १६ शय्या-उपवेशनं स्पर्शो वा विश्वकर्मा । १७ शिल्पादिग्रहणम् विश्वकर्म्मा । १८ विद्यापुस्तकादिग्रहणम् - ब्रह्मा सरस्वती । १९ अन्यत् सर्वं करेण विष्णुर्देवता । इत्यादिको दानस्वीकारे प्रकारो देवताविशेषनिर्देशश्च बोध्यः ।

७७ दानलब्धद्रव्यविक्रयणेऽधिकारः ।

ब्राह्मणाय तत्तद्वस्तुदानानन्तरं तद् द्रव्यंविक्रेतुं शक्नोति ब्राह्मणः । अत्र प्रमाणं शुद्धितत्त्वे मात्स्ये-देवे दत्त्वा तु दानानि देवे दद्यातु दक्षिणाम् । तत्सर्वं ब्राह्मणे दद्यात्-इति । हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्ते-देवानां प्रतिमा विप्र गृहीत्वा ब्राह्मणः स्वयम् । आत्मोपयोगं कुरुते क्रीत्वा वाथ विभज्य वा । तिलधेन्वादयश्चैव कथं भज्या विजानता । यावत्पूजा तावत् प्रतिमादीनां देवत्वं प्रतिपादयति विश्वामित्रः - दानकाले तु देवत्वं प्रतिमानां प्रकीर्तितम् । धेनूनामपि धेनुत्वं श्रुत्युक्तं दानयोगतः । दातुर्वै दानकाले तु धेनवः (सुवर्णधेनवः) परिकीर्तिताः । विप्रस्य व्ययकाले तु द्रव्यं तदिति निश्चयः - इति । एवं पीठस्थापितदेवताप्रतिमावस्त्रालङ्कारादीनां विसर्जनानन्तरमेव ग्राह्यत्वमित्यर्थो निर्गच्छति । यदत्रशिष्टं प्रतिष्ठोपकरणं तदाचार्याय दद्यादित्युक्तं प्रतिष्ठेन्दौ ।

७८ अभिषेकदानाशीर्वादविसर्जनकर्मसमाम्नयः ।

मण्डपसत्त्वे वायव्यां कृते द्विहस्त (चतुस्त्रिंशदङ्गुल) पीठे सपरिवारं यजमानं प्राङ्मुखमुपवेश्य पीठकलशेभ्यस्ताम्रपात्रे जलं गृहीत्वा चत्वारोऽविधुरा ब्राह्मणा दूर्वाम्रपल्लवैरुदङ्मुखाः पौराणवैदिकमन्त्रैरभिषिञ्चेयुः । मण्डपाभावेऽग्न्यायतनपश्चिम उपवेश्य सपरिवारं यजमानमभिषिञ्चेयुः । ततः शुद्धजलेन स्नात्वा नवे वाससी परिधाय स्नानवस्त्राण्याचार्याय दत्त्वाऽचान्तो धृततिलको दानदक्षिणादिकं सम्मानपूर्वकमाचार्यादिभ्यो दत्त्वा तेभ्यश्चाशिषः प्रतिगृह्याग्निं स्थापितदेवताश्च विसृज्य कर्मब्रह्मार्पणं कृत्वा विष्णुं स्मृत्वाऽचम्य प्राणानायम्य यथासुखं विहरेत् । ब्राह्मणादींश्च मिष्टान्नेन भोजयेत् । तत्र हेमाद्रौ मात्स्ये च सहस्रादारभ्य यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं निर्दिष्टम् ।

७९ अवभृथस्नानम् ।

यद्यपि श्रौतयागेऽवभृथस्नानमुक्तम्, तथाप्यतिदेशमादाय समाप्तिदिने परदिने वा कुण्डाद् भस्मोद्धृत्य मृद्घटे निक्षिप्य पूजाहोमादिसाहित्यमादाय सऋत्विक् सपरिवारो यजमानस्तीर्थं गत्वा यथोक्तविधिनाऽवभृथस्नानविधिं सम्पादयेत् । तत्प्रयोगः प्रयोगप्रकरणे वक्ष्यते, अयमत्रभृथस्नानविधिः कृताकृतः ।

८० महास्नानम् ।

उपर्युक्तं यन्महास्नानचतुर्थीकर्मणोर्विकल्पः । अदृष्टार्थत्वात् समुच्चय इति केचित् - इति प्रतिष्ठेन्दौ । इदमेव महास्नानं प्रतिष्ठोत्तरं भवति । पुनश्च प्रतिमानां दूषितपतितादिस्पर्शदोषनिवृत्तयेऽपि कार्यम् । अर्चाशुद्ध्यर्थं क्रियमाणे महास्नाने तु शान्तिहोमजपपुरःसरं अष्टोत्तरसहस्राद्यष्टशतान्यतरपक्षेण

प्रतिमानां शुद्धिरित्याग्नेयेश्वरसंहितादिषूक्तम् । मात्स्ये-देवतामहास्नाने पूर्वविधिं निर्दिश्य-ततो घटसहस्रेण सहस्रार्धेन वा पुनः । तस्याप्यर्धेन वा कुर्यादथवाऽष्टशतेन च । चतुःषष्ट्या ततोऽर्धेन तदर्धेनाथवा पुनः । चतुर्भिरथवा कुर्याद् घटानामल्पवित्तवान् इति-१००८ (१०००) ५०१, २५१, १२५, १०८, ६४, ३२, १६, ८, ४ एते कलशविकल्पा निर्दिष्टाः ।

८१ अष्टोत्तरसहस्रकलशस्नपनम् ।

आग्नेये तु ६१ अध्यायेऽर्चादिशुद्ध्यर्थं दूषितपतितादिस्पर्शदोषनिवृत्त्यर्थं देवतानुग्रहार्थञ्च शान्तिहोमजपपुरःसरं मध्यकोष्ठे कलशनवकं तद्दशदिक्षु दश दिक्पालकलशान् पूर्वाद्यष्टदिक्षु च प्रतिकोष्ठं कलशानामेकादशैकादश पङ्क्तीः सम्पाद्य तत्रापि मध्यमत्रये तानि तानि विशिष्टानि वस्तून्यन्येषु गन्धोदकं प्रपूर्य मण्डलादुत्तरतः चतुरो लौकिककलशान् मृत्तिकादिदशकलशान् पञ्चकषायकलशान् शीतोदककलशमुष्णोदककलशश्चेत्यष्टोत्तरसहस्रं कलशानां स्थापयेत् । मध्ये ९+१० प्रतिकोष्ठं १२१ x ८=९६८, ४ १०, ५, २ = १००८ । एतत्प्रयोगः स्वातन्त्र्येण प्रकटीकरिष्यते ।

८२ चतुर्थीकर्मादिविविधप्रयोगशास्त्रार्थवचनादिविचारः ।

चतुर्थीकर्मचण्डप्रतिष्ठाध्वजप्रतिष्ठाप्रतिमास्थानान्तरनयनविधिं जीर्णोद्धार-प्रासादपिण्डिका-प्रतिमा चालनविधि शिखर (कलश) प्रतिष्ठा- प्रोक्षणविधिप्रतिमाशिवलिङ्गप्रासादकलशादिभङ्ग-शान्त्यवभृथस्नानादिप्रयोगाः शास्त्रार्थपूर्वकं प्रयोगप्रकरणे वक्ष्यन्ते ।

इति श्रीवटपत्तनवासि श्रीगुरुद्विजकुलभूषणशुक्लगौरीशङ्करात्मजपण्डितलक्ष्मीशङ्करशुक्लविरचिते
प्रतिष्ठामौक्तिके संस्कृतभाषायां प्रतिष्ठाप्रयोगशिल्पादिविषयकं
द्वितीयं शास्त्रार्थप्रकरणम् ।

श्रीः

३ प्रतिष्ठामौक्तिके विविधदेवतामन्त्रयन्त्रादिप्रकरणम् ।

'होमजपोपस्थानकर्मविषये यद्यपि मन्त्रा यथास्वरं पठनीयास्तथापि हस्तकण्ठस्वरौ न विधेयाविति प्रतिष्ठातिलक उक्तम् - 'उपस्थाने जपे मन्त्रैहवने यज्ञकर्मणि । विस्वरो न प्रयोक्तव्यो न हस्तस्वर संयुतः' - इति होमकाले मन्त्रोच्चारणमेकश्रुत्या प्रतिपादितम् ।

१ गणेशः

ऋग्वेदे - ॐ निषुसीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत् क्रियते किञ्चनारे महामर्कं मघवन् चित्रमर्च ॥ १०-११२-९

कृष्णयजुर्वेदे - ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पतऽआनः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ २-३-१४-४

शुक्लयजुर्वेदे - ॐ गणानान्त्वा गणपति ꣳ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपति ꣳ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपति ꣳ हवामहे व्वसो मम ।
आहमजानि गर्ब्भधमात्त्वमजासि गर्ब्भधम् ॥ २३-१९ ॥

सामवेदे - ॐ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १६७ ॥

अथर्ववेदे - ॐ निर्लक्ष्म्यंऽललाम्यं १ निररातिं सुवामसि ।
अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥ १-१८-१ ॥

पौराणः - वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ । निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सिद्धिद ॥

गायत्री - ॐ एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ (गण० अथर्व०)

तन्त्रागमोक्ताः - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ॥
ॐ गं गणपतये नमः । (सन्त्यत्र गणपतिभेदेन विविधा मन्त्राः)

नाममन्त्रः - ॐ महागणपतये नमः ।

२ स्कन्दः

ऋ० ॐ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन् त्समुद्रादुतवा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महिजातं ते अर्वन् ॥१-१६३-१

कृ० यजु० ॐ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन् त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुतं जनिम तत् ते अर्वन् ॥४-२-८-२/१-६-७-१

शु० यजु० - १ यदक्रन्दः० उपस्तुत्यं महिजातं ते अर्वन्-ऋग्वेदसमानः । २ ॐ द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमञ्च योनिमनु यश्च पूर्व्वः । समानं योनिमनुसञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥१३-५॥

साम० - ॐ यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१८६६॥

अथर्व० - ॐ द्रप्सश्चस्कन्द० सप्त होत्राः ॥१८-४-२८ शु० य० समानः ।

पौराणः - ध्येयो देवो गुहः शक्ति कुक्कुटाक्षवरान् दधत् ।
रक्तो रक्तांशुको रक्तप्रवराकल्पभूषितः ॥ (मेरुतन्त्रे)

तान्त्रिकः - ॐ वं वह्नये नमः (मेरुतन्त्रे)

३ मयूरः ।

शु० यजु० - ॐ अन्यवापोऽर्धमासानाम-इयो मयूरः सुपर्ण्णास्ते गन्धर्व्वाणामपामुद्रो मासां कश्यपो कुण्ड्रणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥२४-३७॥

४ दुर्गा । गौरी ।

ऋ० - ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।
सनः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१-९९-१॥

कृ० य० - तै० आ० १०-२-१ नि १४-३३ ऋग्वेदसमः ।

शु० य० - १ ॐ अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । स सस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥२३-१८॥ २ ॐ आयङ्गौ० प्रयन् त्स्वः ॥३-६॥ ३ देवीस्तिस्त्र स्तिस्रो० यज॥२१-५४, २८-१८॥ ४ ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकम्म इषाण ॥३१-२२॥

कृ० यजु० - ॐ ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ । अहोरात्रे पार्श्वे । नक्षत्राणि रूपम् ।
अश्विनौ व्यात्तम् । इष्टं म निषाण । अमुम्म निषाण । सर्वं म निषाण ॥

सरस्वती - ॐ पावकानः सरस्वती व्वाजेभिर्व्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियाव्वसुः ।

साम० - ॐ गौर्धयति मरुतां श्रवस्न्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥१४९॥

ऋ०तै०आ० - ॐ गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदा सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥१-१६४-४१॥
तै०आ० २-४-६-११, १-९-४ नि० २१-४०

अथर्व० - ॐ गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी । अष्टापदी नवपदी

बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥९-१०-२१॥

गायत्री - १ ॐ सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि । तन्नो गौरी प्रचोदयात् ॥

२ ॐ महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ (देव्यथर्व०)

३ ॐ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।

दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्येऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः । (प्रपधे सुतरसि तरसे नमः सुतरसि तरसे नमः । (परि-१२) पाठभेदः)

४ ॐ महालक्ष्मि च विद्महे विष्णुपत्नि च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥

४ ॐ चामुण्डायै विद्महे वरप्रदायै धीमहि । तन्नो दुर्गा (लक्ष्मीः) प्रचोदयात् ॥

पौराण० - जयन्ती मङ्गला० इत्यादयोऽनेके मन्त्राः ।

तान्त्रिकाः - १ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे । २ ॐ ऐं क्लीं सौः वद वद वाग्वादिनि स्वाहा । ३ ॐ श्रीं ह्रीं ऐं महालक्ष्म्यै नमः । ४ ॐ श्रीं ह्रीं ऐं लक्ष्मीः कमलधारिणी हंसः स्वाहा । इत्यादयोऽनेके मन्त्राः ।

५ हस्ती ।

शु० यजु० - ॐ प्रजापतये च व्वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥२४-३०॥

साम० - ॐ आतून इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥

६ कूर्मः ।

ऋ० - ॐ कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥१०-५१-७

शु० यजु० - ॐ यस्य कुर्म्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्द्धया त्वम् । तस्मै देवा अधिब्रवन्नयञ्च ब्रह्मणस्पतिः ॥१७-५२॥

साम० - ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥२२२॥

अथर्व० - ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदा । समूढमस्य पांसुरे ॥७-२६-४॥

कृ० यजु० - ॐ यस्य कुर्मो हविर्गृहितमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै देवा अधि ब्रवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥६-२-३॥

तान्त्रिकः - ॐ नमो भगवते कुं कूर्माय धराधरधुरन्धराय नमः ॥ (मेरुतन्त्रम्)

पौराणः - क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः । पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषायकण्डूः ॥ (श्रीमद् भागवतम्)

नाममन्त्रः - ॐ कुं कूर्माय नमः ।

७ वृषभः

ऋ० - ॐ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनो निमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥१०-१०३-१॥

कृ० यजु० - 'भीमो' इत्यस्य स्थाने 'युध्मो इति पाठः । शुक्लयजु० ॥१७-३३॥ सामवेदे ॥१८-४९॥

अथर्ववेदे - १९-१३-२ ऋग्वेदसमानो मन्त्रः । शु० यजु० ॐ चत्वारि शृङ्गाः मर्त्यां २ आविवेश ॥ गायत्री-ॐ तीक्ष्णशृङ्गाय विद्महे वेदपादाय धीमहि । तन्नो वृषभः प्रचोदयात् ॥

पौराणः - नमो वृषभ देवेश भूतर्षिपितृपोषक । त्वयि मुक्तेऽश्रया लोकाः सर्वे सन्तु निरामयाः ॥

८ हनुमान् ।

ऋ० - ॐ अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायिपज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः) ॥८-६३-१२॥

कृ० यजु० - ॐ चित्त ९ सन्तानेन भवं यक्ना रुद्रं तनिम्ना पशुपति ९ स्थूलहृदयेनाग्निं ९ हृदयेन रुद्रं लोहितेन शर्वं मतस्नाभ्यां महादेवमन्तः पार्श्वे नौ वसिष्ठहनु ९ शिङ्गीनि कोश्याभ्यान् ॥६-४-३६-४॥

शु० यजु० - १ अस्मे रुद्रा० (ऋग्वेदसमानः) ३३-५०॥ २ ॐ अग्निंहृदयेनाशनिंहृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना । शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तः पर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥३९-८॥

साम० - ॐ दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥१२॥

अथर्व - ॐ अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यंऽमस्तिष्काज्जिह्वाया विवृहामि ते ॥२-३३-१॥

गायत्री - ॐ आञ्जनेयाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि । तन्नो हनुमान् प्रचोदयात् ।

तान्त्रिकः - ॐ ओं ऐं ह्रीं हनुमते रामदूताय लङ्काविध्वंसनायाञ्जनीगर्भसंभूताय शाकिनीडाकिनीविध्वंसनाय किलिकिलिबुबुकारेण विभीषणाय हनुमद्देवाय ओं ह्रीं श्रीं ह्रौं ह्रां फट्स्वाहा ॥ (मातृकाविलास))

पौराणः - मनोजवं० दक्षिणे लक्ष्मणो०

९ शिवः ।

ऋ० - १ ॐ कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे ॥१-४३-१॥ २ ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥७-५९-१२॥

कृ० यजु० - १ ॐ नमः शम्भवे च मयोभवे च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥७-५-८-९-१०-११॥ २ त्र्यम्बकं यजामहे० ऋग्वेदवत् ॥१-८-६॥

शु० यजु० - ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥१६-४१॥ २ ॐ शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः । माद्यावापृथिवी अभिशोचीर्म्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥११-४५॥ ३ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीय मामृतात् ॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥३-६०॥

साम० - १ ॐ आवो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥६९॥

अथर्व० - १ ॐ रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥१६-५-१४॥

तान्त्रिकः - १ ॐ नमो भगवते रुद्राय (दशाक्षरः २ ॐ नमो रुद्राय ३ ॐ नमः शिवाय (षडक्षरी)

गायत्री - १ ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ (नारायणोपनिषद्)

पौराणः - नमः शिवाय शान्ताय पञ्चवक्त्राय शूलिने । नन्दिभृङ्गिमहाकालगणयुक्ताय शम्भवे ॥ (अनेके)

१० नारायणः - विष्णुः ।

अत्र केशवादिमूर्त्तीनामायुधभेदेन स्वरूपभेदः पूर्वं हिन्दीविवरणप्रकरणे प्रोक्तः ।

ऋ० - १ ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूळ्हमस्य पांसुरे ॥१-२२-१७॥

कृ० य० - १ ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे ।.१-२-१३-४॥

शु-य० - १ ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाᳬसुरे स्वाहा ॥५-१५॥

साम० - १ ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे ॥७-२६-४॥

अथर्व० - १ ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदा । समूढमस्य पांसुरे ॥७-२६-४॥

अन्ये चानेके विष्णुलिङ्गकामन्त्राः - सहस्रशीर्षा० अतो देवा० त्रीणि पदा० तद्विष्णोः० विष्णोः कर्म्माणि० तद्विप्रासो० इत्यादयः ।

गायत्री - ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥

तन्त्रागमोक्ताः - १ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय (१२) २ ॐ नमो नारायणाय (८) ३ ॐ नमो विष्णवे (६) नारायणोपनिषद् ।

पौराणः - कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने । प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ (इत्यादयः)

११ श्रीः । लक्ष्मीः ।

ऋ० - १ ॐ श्रियै जातः श्रिय आनिरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति । श्रियं वसाना अमृतत्वमायन् भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥९-९४-४॥

२ ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् । श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मादेवीर्जुषताम् ॥ (ऋ-परि) अन्ये चानेके मन्त्राः ।

कृ० यजु० - ॐ ह्रींश्चते लक्ष्मीश्च० मनिषाण ॥ (दुर्गाप्रकरणे) शु० यजु० ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च० ॥३१-३२॥

साम० - १ ॐ श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि जातोजनिमान्योजसा प्रतिभागं न दीधिमः ॥२६७-१३१९॥

अथर्व० - १ ॐ युवं श्रियमश्विना देवताता दिवोन पातावनथः शचीभिः । युवोर्वपुरभिपृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥२०-१४३-२॥ ३ ॐ एह यातु वरुणः सोमो अग्निं बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु । अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेतुः संमनसः सजाताः ॥६-७३-१॥

गायत्री - दुर्गाप्रकरणवत् । तान्त्रिकः ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्मि नमः ॥ (इत्यादयोऽनेके)

पौराणः - नमस्ते सर्वलोकानां जननी त्रिगुणात्मिका । श्रेयस्कृता च पद्माश्री विष्णोर्वक्षःस्थलालये ॥ वैदिकं पौराणं श्रीसूक्तं प्रसिद्धम् । अन्ये च मन्त्राः ।

१२ राधाकृष्णमन्त्राः ।

ऋ० कृष्ण - १ ॐ इदं विष्णु० । राधा-श्रियेजातः०

कृष्ण० - १ ॐ कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति । त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥१-१६४-४७॥ राधा - ॐ ह्रीश्चतेलक्ष्मीश्च०

शु० यजु० - १ ॐ कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषेत्वा जुष्टं प्रोक्षामि बर्हिरसि

सुरभ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥२-१॥ २ शादन्दद्भिः० इक्षवः ॥२५-१॥ ३ इदं विष्णु०

राधा - १ ॐ श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधो गूर्ता अमृतस्य पत्नीः । ता देवीर्देवत्रेमं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥६-३४॥ २ श्रीश्चते० ॥३१-२२॥ ३ प्रयाभिर्यासि० राधः ॥२७-२७॥

साम० - १ ॐ कृष्णां यदेनीमभिवर्षसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् । ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्विभाति ॥१५४७॥ २ इदं विष्णु० ३ आयन्त इव०

अथर्व० - ॐ कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति । ता आववृत्रहन् त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूऽधुः ॥६-२२-१॥ २ कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत । स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥१३-३-२६॥ ३ इदं विष्णु० राधा-२ एह यातु० ६-७३-१॥

तान्त्रिक - १ ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय (नमः) स्वाहा ॥ २ ॐ क्लीं कृष्णाय नमः ३ ॐ श्रीं राधिकायै नमः ।

गायत्री - १ ॐ दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ॥ (मेरुतन्त्र)

पौराण - नौमि नवघनश्यामं पीतवाससमच्युतम् । श्रीवत्सभासितोरस्कं राधिकासहितं हरिम् ॥

१३ सीतारामादिमन्त्राः ।

ऋ० राम - १ ॐ इदं विष्णु० २ सीता ॐ श्रियेजातः० ३ रामः - ॐ पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभि । यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्न भिष्णक् ॥१०-१३१-५॥

कृष्ण० यजु० - १ ॐ इदं विष्णु० २ ॐ ह्रीश्चते लक्ष्मीश्च० ॥ शु० यजु० १ ॐ इदं विष्णु० २ ॐ श्रीश्चते०

राम - ऋग्वेदवत् - ॐ पुत्रमिव० (दंसनाभिरित्यस्य स्थाने दसनाभिः । इति पाठः ।

सीता - ॐ घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पिन्वमानाऽस्मान् सीते पयसाऽभ्याववृत्स्व ॥१२-७०॥ २ रामः- ३ आग्नेयः कृष्णग्रीवः० पैत्वः ॥२९-५८॥

शु०यजु०लक्ष्मण १ ॐ ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे निदीध्यदैन्द्र उदानो अङ्गेअङ्गे निधीतः । देव त्वष्ट र्भूरितेस ह समेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति । देवत्रायन्तमवसे सखायोऽनुत्वा मातापितरो मदन्तु ॥६-२०॥ २ ॐ नमोऽस्तुसर्पेभ्यो० ॥१४/६-७-८॥

भरतः - ॐ जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीका बृहता दिविस्पृशा द्युमद् विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१५-२७॥

शत्रुघ्नः - १ ॐ सजोषा इन्द्र० विश्वतो नः ॥

साम० राम - १ इदं विष्णु० । सीता २ आयन्त इव (लक्ष्मीनारायणवत् ॥ रामः १ ॐ मोषुत्वा वाघतश्च नारेअस्मान्निरीरमन् । आरात्ताद्वा सधमादं न आगहीह वा सन्नुपश्रवि ॥१६७८॥

अथर्व० राम - १ इदं विष्णु० ॥ २ पुत्रमिव पितरा० ऋग्वेदवत् ॥२०-१२५-५॥

सीता - १ ॐ सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव । यथानः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥३-१७-८॥ २ ॐ इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषाऽभिरक्षतु । सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥३-१७-४॥

तान्त्रिका - १ ॐ रां रामाय नमः । २ ॐ नमो भगवते रामभद्राय । ३ ॐ श्री राम जय राम जय जय राम । (इत्यादयोऽनेके । सीता :- ॐ श्रीं सीतायै नमः । लक्ष्मण :- ॐ लं लक्ष्मणाय नमः । भरत :- ॐ भं भरताय नमः । शत्रुघ्न :- ॐ शं शत्रुघ्नाय नमः ।

पौराण - १ आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् । लोकाभिरामं श्रीरामं भूयोभूयो नमाम्यहम् ।
२ दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा । पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥
३ रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ (रामरक्षा)

१४ विठ्ठलः रुक्मिणी-सत्यभामा

ऋग्वेदे - इदं विष्णुः २ श्रिये जातः० । रु० सत्यभामा १ ॐ स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छानः शर्म्म सप्रथः । १-२२-१५॥ २ ॐ सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः । मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥१-३८-७॥

कृ० यजु० - १ ॐ पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात् सुवर्ज्योतिरगामहम् ॥४-६-३॥ विठ्ठलः ॐ इदं विष्णु० ॥ रुक्मिणी ह्रीश्चते लक्ष्मीश्च० ॥

शु०यजु० विठ्ठल १ ॐ इदं विष्णु० । २ रुक्मिणी - ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च० । ३ सत्यभामा ३ स्योना पृथिवि० ॥

साम०विठ्ठल - इदं विष्णु० । २ रुक्मिणी - ॐ आयन्त इव० सत्यभामा-ॐ सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः । वृषाह्युग्रशृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ (जैमिनिशाखा)

अथर्ववेदे - १ इदं विष्णु० । रुक्मिणी - १ युवं श्रियमश्विना० २ एह यातु० (लक्ष्मीवत्) सत्यभामा ॐ सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः । ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः ॥ (१४-१-१) गायत्रीतान्त्रिकपौराणन्त्रा लक्ष्मीनारायणवत् ।

१५ दत्तात्रेयः ।

ऋ० - १ ब्रह्मजज्ञानं० २ इदं विष्णु० ३ नमस्ते रुद्र० । दत्तात्रेयः ऋ० त्रीरोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः । अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसो ऋजवे मर्त्याय ॥२-२७-९॥

कृ० यजु० - १ त्र्यक्षय आलभ्यन्तोऽभिपूर्वमेवास्मिन् तेजो दधाति ॥२-४-९॥ २ इदं विष्णु० ॥

शु० यजु० - १ ब्रह्मजज्ञानं० २ इदं विष्णु० नमस्ते रुद्र० ॥ २ त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे । उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥२९-१५॥ ३ यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः । तदग्निर्वैश्वकर्म्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ १८-६४॥

साम० - १ त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥७२४॥ २ इदं विष्णु० ॥

आथर्व० - १ ॐ त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥२०-११०-३॥ २ इदं विष्णु० ॥

गायत्री - ॐ दिगम्बराय विद्महे अवधूताय धीमहि । तन्नो दत्तः प्रचोदयात् ॥

तान्त्रिक - १ ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं द्रां दत्तात्रेयाय नमः । ॐ द्रां दत्तात्रेयाय नमः । (इत्यादयोऽनेके)

पौराण - १ दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मत्तानन्ददायक । दिगम्बर मुने बाल पिशाचज्ञानसागर ॥ (दत्त० उप०)

१६ सूर्यः ।

ऋ० - १ ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १-५०-१॥

कृ० यजु० - १ उदुत्यं० १-२-८-७ समानः । शु. यजु० ॐ उदुत्यं० ३३-३१ समानः । २ ॐ तत्सवितु० ॥३-३५॥

सामवेदे - उदुत्यं (३१) समानः । अथर्ववेदे-उदुत्यं० १३-२-१६ समानः ।

गायत्री - ॐ भास्कराय विद्महे महद् द्युतिकराय धीमहि । तन्न आदित्यः प्रचोदयात् ॥ (नारा० उप०)

तान्त्रिक - ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः ।

पौराण - ॐ एकचक्रो रथो यस्य दिव्यः कनकभूषितः । स मे भवतु सुप्रीतः पद्महस्तो दिवाकरः ॥

१७ गायत्री ।

ऋ० - ॐ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१-१०-१॥

कृ० यजु० - गायत्रीः पुरस्तादुपदधाति तेजो वै गायत्री तेज एव मुखतो धत्ते ॥५-३-८-२॥

शु० यजु० - १ गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिगृह्णाम्यन्तरिक्षेणोपयच्छामि । इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात व्वसवो यजत व्वाट् ॥३८-६॥ २ गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् पङ्क्त्या सह । बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥१३-३३॥

साम० - १ ॐ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्मणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव ये मिरे ॥३४२॥

अथर्व० - १ ॐ गायत्रेण प्रतिमिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन नाकम् । वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥९-१०-२॥

तान्त्रिक - अनन्तकोटिब्रह्माण्डव्यापिनि ब्रह्मचारिणि । नित्यानन्दे महामाये परेशानि नमोऽस्तुते ॥ (वसिष्ठसंहिता)

पौराण - यो देवः सविताऽस्माकं मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः । प्रचोदयतितद्भर्गं वरेण्यं समुपास्महे ॥

१८ भैरव ।

ऋ० - १ ॐ भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वानर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो विदूधोत् विवज्रहस्तो महिना जघान ॥७-२१-४॥

कृ० यजु० - १ ॐ भीमं वहन्तीभ्यः स्वाहा-७-२४-८॥ २ ॐ नम उग्राय च भीमाय च-४-५-८-४

शु० यजु० - ॐ उग्रश्चभीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्वाँश्चाभियुग्वा च व्विक्षिपः स्वाहा ॥३९-७॥ २ ॐ नम उग्राय च भीमाय च ॥१६-४०॥ ३ ॐ यो भूतानामधि पतिर्य्यस्मिँल्लोकाऽअधिश्रिताः । यऽईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥२०-३२॥

साम० - १ ॐ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो० साकमिन्द्रः ॥ (ऋग्वेदसमानः)
२ उग्रा विघनिनी मृध इन्द्राग्नी हवामहे । तानो मृडात ईदृशे ॥८५४॥

अथर्व० - १ ॐ भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः । ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृऽषतु ॥४-३७-८॥

तान्त्रिकः - ॐ ह्रीं बटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं ॐ ॥

पौराणः - तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम । भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

१९ नृसिंहः ।

ऋ० - १ ॐ सिंहं नसन्तमध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परिपात्युक्षा ॥९-८९-३॥ २ इदं विष्णु० ॥

कृ० यजु० - १ सिंऽहो नकुलो व्याघ्रस्ते महेन्द्राय ॥५-५-२१-५॥ इदं विष्णु० ॥

शु० यजु० - १ खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिप्पकाशकुनिस्ते शरव्यायैविश्वेषांदेवानांपृषतः ॥२४-४०॥ २ इदं विष्णु० ॥

साम० - १ ॐ हरी त इन्द्रश्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी । तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥६५३॥ २ (इदं विष्णु०)

अथर्व० - १ ॐ सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥६-३८-१॥

गायत्री० - ॐ वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात् (नारा० उप०)

तान्त्रिकः - ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय ज्वालामालिने दीप्तदंष्ट्राय अग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशनाय सर्वघोरविनाशनाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ॥
२ ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय (मेरुतन्त्र)

पौराणः - उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं रुद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥ (मेरुतन्त्र)

२० गरुडः ।

ऋ० - ॐ सुपर्ण इत्थानखमासिषायाऽवरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान् गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०-२८-१०॥

कृ० यजु० - १ ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ सुवः पत ॥४-१-१०॥

शु० यजु० - १ ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रञ्चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोमऽआत्माच्छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं

पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवङ्गच्छ स्वः पत ॥१२-४॥

साम० - १ ॐ पवमानो असिष्यद् रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥१४-२९॥

अथर्व० - १ सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् । नामीमदो नारूरूप उतास्मा अभवः पितुः ॥४-६-४॥

गायत्री - १ वैनतेयाय विद्महे स्वर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ॥
२ सुपर्णाय विद्महे पक्षिराजाय धीमहि । तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ॥ (मेरुतन्त्र)

तान्त्रिकः - ॐ नमो भगवते महागरुडाय श्री विष्णुवरवाहनाय त्रैलोक्यपूजिताय वज्रनखाय वज्रतुण्डाय वज्रपक्षाय पिङ्गशरीराय एह्येहि महागरुड दुष्टनागान् छिन्धि छिन्धि दुष्ट विषान् छिन्धि छिन्धि दुष्टराक्षसान् भिन्धि भिन्धि आवेशय आवेशय हुं फट् स्वाहा (मेरुत)

पौराणः - आजानुकाञ्चनाभासं ह्यानाभं तुहिनप्रभम् । आकण्ठाद्रक्तवर्णं च विष्णुध्वजगतं भजे ॥

२१ मूषकः ।

ऋ० - १ ॐ मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ।
सकृत् सु नो मघवन्निन्द्र मृळयऽधा पितेव नो भव ॥१०-३३-३॥

कृ० यजु० - १ ॐ आखुः सृजया शयण्डकस्ते मैत्रा ॥५-५-१४-२॥

शु० यजु० - १ ॐ एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तञ्जुषस्व स्वाहैष ते रुद्रभागऽआखुस्ते पशुः ॥३-५७॥

साम० - १ ॐ त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् । सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥१४३४॥

अथर्व० - १ ॐ सुदेवस्त्वामहानग्नीर्बबाधते साधु स्रोदनम् । कुसं पीवरोनवत् ॥२०-७०-१२॥

सूचनम् - अन्यदेवतानां मन्त्रास्तत्तद्वेदपुराणतन्त्रागमतो लिङ्गमन्त्रसिद्धान्तं पुरस्कृत्य ज्ञेयाः ।

२२ मूर्तिमूर्त्यधिपतिलोकपालमन्त्राः । शुक्लयजुर्वेदे ।

इमे समग्रा मन्त्राः प्रयोगप्रकरणे वक्ष्यन्ते । अधुना प्रतीकानि ।
१ स्योना पृथिवि० २ नमः शर्वाय च पशुपतये च ३ त्रातारमिन्द्र० ४ अग्निन्दूतं० ५ तेजः पशूना 'U' हवि० ६ अयं ते योनि० ७ सुवीरो व्वीरान्० ८ उग्रश्च भीमश्च० ९ समायत्त्वाङ्गिर० १० उदुत्यं० ११ इमा रुद्राय० १२ असुन्वन्त० १३ आपोहिष्ठा० १४ नमो भवाय च रुद्राय च । १५ इमम्मे व्वरुण० १६ तव व्वायवृतस्पते० १७ तमीशानं० १८ आनो नियुद्भिः १९ वयः ह सोम० २० उग्रां लोहितेन० २१ अभित्यं देवह० २२ आदित्यं गर्भं० २३ मृगो न भीमः० २४ अभित्वा शूर नोनुमो०

२३ वैष्णवे पञ्चमूर्त्तिमूर्त्तिपतयः ।

१ पृथिवी - स्योना पृथिवि० २ इदं विष्णु० ३ जलं-आपोऽअस्मान्० ४ त्रीणि पदा० ५ तेजः पशुनाध्र्० ६ विष्णोः कर्म्माणि० ७ वायुः - आनो नियुद्भिः० तद्विष्णोः ९ आकाशःनाभ्या आसीदः १० तद्विप्रासो० ।

२४ शैवे पञ्चमूर्त्तिपक्षे मूर्त्तिमूर्त्तिपतयः ।

१ स्योना पृथिवि० २ ब्रह्मजज्ञानं० ३ आपोहिष्ठा० ४ इदं विष्णु० ५ तेजः पशुना९० ६ नमस्ते रुद्र० ७ वायो ये ते० ८ यः प्राणतो० ९ द्यौरासीत्० १० शिवो भव प्रजाभ्यो० ।।

२५ गणेशस्याष्टमूर्त्तिपतिपक्षे ।

१ सुमुख-मनो मे तर्पयत० २ एकदन्त-सजोषा इन्द्र० । ३ कपिल-प्रतूर्वन्नेह्य० ४ गजकर्ण-नमो गणेभ्यो० । ५ लंबोदर-कृतजित्० । ६ विकट-समुद्रोऽसि नभस्वा० । ७ विघ्ननाश-इदं ह हविः० । ८ गणाधिपः - गणपतये स्वाहा ।

२६ देव्या अष्टमूर्त्तिपतिपक्षे ।

१ आर्या-आयङ्गौः० । २ दाक्षायणी-यदाबध्नन्० । ३ गिरिजा - समख्ये देव्या० । ३ मेनकात्मजा - तम्पत्नीभि० । ५ शर्वाणी - नमः शर्वाय च पशुपतये च । ६ भवानी - नमो भवाय च रुद्राय च । ७ मृडानी - याते रुद्र शिवा तनूः शिवा० । ८ अम्बिका - अम्बे अम्बिके० ।

२७ विष्णोरष्टमूर्त्तिपतिपक्षे ।

१ विष्णुः - युञ्जते मन० । २ मधुसूदनः - इदं विष्णुः० । ३ त्रिविक्रमः - इरावती धेनुमती० । ४ वामनः - देवश्रुतौ० । ५ श्रीधरः - विष्णोर्नुकं । ६ हृषीकेशः - दिवो वा० । ७ पद्मनाभः - प्रतद्विष्णु० । ८ दामोदरः - विष्णोरराटमसि० ।।

२८ सूर्यस्याष्टमूर्त्तिपतिपक्षे ।

१ विकर्तनः - नमोऽसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानाम्पतये नमः । २ विवस्वान् - विवस्वन्नादित्यै० । ३ मार्तण्डः - सूर्य्य रश्मि० । ४ भास्करः - आयन्त इव सूर्य्यं० । ५ रविः - आकृष्णेन रजसा० । ६ लोकप्रकाशकः - तरणिर्विश्वदर्शतो० । ७ श्रीमान् - श्रीणामुदारो० । ८ लोकचक्षुः - तच्चक्षुर्देवहितं० ।

२९ ऋग्वेदे मूर्त्तिमूर्त्यधिपतिलोकपालमन्त्राः ।

(प्रतिष्ठावासुदेव्याम्) १ स्योना पृथिवि० । २ अघोरेभ्यो० । ३ त्रातारमिन्द्र० । ४ अग्निन्दूतं० । ५ तेजः पशूनां० । ६ अग्न आयाहि० । ७ असि हि वीरसेन्योसि भूरिपरादर्दिः । असिदभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ ८ त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षिबाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ॥ ९ यमाय सोमं० । १० उदुत्यं० । ११ आवो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः । अग्निं पुरा तनयित्नो रचिताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १२ असुन्वन्त) । १३ आपोहिष्ठा० । १४ नमो भवाय च रुद्राय च । १५ इमम्मे० । १६ वात आयातु भेषजं शंभु मयोभुवो हृदे । प्राण आयूंषि तारिषत् ॥ १७ तमीशानं० । १८ आनो नियुद्भिः० । १९ वयं सोम व्रते० । २० तत्पुरुषाय० । २२ आदित्प्रत्नस्य० । २३ आदित्प्रत्नस्य० । २३ मृगो न भीमः । २४ अभि त्वा देवसवितरी० ।

३० कृष्णयजुर्वेदे ।

१ मही द्यौः० मभिः । २ नमः शर्वाय च पशुपतये च । ३ त्रातारमिन्द्र० धात्विन्द्रः । ४ अग्निमीडे० धातमम् । ५ तेजोऽसितेजो मयि धेहि । ६ अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषं च न । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ७ यजमानस्य पशून् पाहि ॥ ८ नम उग्राय च भीमाय च ॥ ९ यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् । गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट॥१० उदुत्यं० ॥ ११ रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु त्रैष्टुभेनच्छन्दसा ॥ १२ निर्ऋतिं निर्जाल्मकेन शीर्ष्णा ॥ १३ आपो हिष्ठा० ॥ १४ नमो भवाय च रुद्राय च ॥ १५ इमम्मे० ॥ १६ वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १७ अभित्वा देवसवित० ॥ १८ वातस्य ध्राजिं वरुणस्य नाभिमश्वंजज्ञानꣳ सरिरस्य मध्ये । शिशुं नदीनाꣳहरिमद्रिबुध्नमग्ने मा मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥ १९ सोमꣳराजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे । वाचं विष्णुꣳसूर्यं ब्रह्माणञ्च बृहस्पतिम् ॥ २० महादेवमन्तः पार्श्वेन ॥ २१ सोम राजन्नेहाव रोह माभेर्म्मा संविक्था मा त्वा हिꣳसिषं प्रजास्त्वमुपावरोह प्रजास्त्वामुपावरोहन्तु ॥ २२ घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसां पावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा त्वाऽन्तरिक्षाय ॥ २३ भीमं वहन्तीभ्यः स्वाहा ॥ २४ अभि त्वा शूरनोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः सुवर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥

३१ सामवेदे ।

१ गात्र उपब्दाबटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभाकर्ण्णा हिरण्यया ॥१६८२॥ २ अग्ने मृड महाँ अस्यय आदेवयुंजनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥२३॥ ३ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् । हुवेनु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्त्विन्द्रः ॥२३३॥ ४ अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३॥ ५ ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्णाः । तास्ते

क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥९९७॥ त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषेजने ॥२॥ ७ यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥११२॥ ८ उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ईदृशे ॥८५६॥ ९ यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यञ्जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥१४१५॥ १० उदुत्यं० सूर्यम् ॥३१॥ ११ आवो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः । अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥६९॥ १२ पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः । प्रस्म वाजेषु नोऽव । त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥१५४५॥ १३ आपोहिष्ठा० चक्षसे ॥१८३७॥ १४ एभिर्नो अर्कैर्भवानो अर्वाङ्स्वऽर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥१७७९॥ १५ वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥७९५॥ १६ वात आवातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१८४॥ १७ अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥२३३॥ १८ यददे वात ते गृहे ३ मृतं निहितं गुहा । तस्य नो धेहि जीवसे ॥१८४२॥ १९ सोमः पवते जनितामतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः । जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५२७॥ २० क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥४३३॥ ॥२१ पवस्य सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनुपूर्व्यः ॥४३६॥ २२ आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवि ॥२०॥ २३ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् । संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥१८४९॥ २४ ईशान इमा भुवनानि ईयसे० पञ्चममन्त्रवत् ॥९९७॥

३२ अथर्ववेदे

१ स्योनाऽस्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी । यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥१८-२-१९॥ २ शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥१५-४-५॥ ३ इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा । मा नः सेना अररुषीरुपगुर्विषूचीरिन्द्रद्रुहो विनाशय ॥१९-१५-२॥ ४ अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥१५-४-८॥ ६ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टि मनुवष्टि शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः ॥२०-६७-३॥ ७ यजमान ब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याऽणि प्रेक्षत इदं भूया ३ इदा ३ मिति ॥९-६-२-१८॥ ८ उग्रं वनिषदाततम् ॥४-३७-८॥ ९ यमः परोऽवरान् विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किञ्चन । यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान ॥१८-२-३२॥ १० सूर्य एनं प्रणुदतां न्योऽपतु ॥१२-५-७३॥ ११ रुद्र जलापभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत् । प्राशं प्रति प्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥२-२७-६॥ १२ यत्ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं तत् । तत् ते विष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥६-६३-१॥ १३ समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः

समभ्राणि वातजूतानि सन्तु । मह ऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥४-१५-१॥ १४ भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्व १ अन्तरिक्षम् । तस्मै नमो यत अस्यां दिशी ३ तः ॥११-२-२७॥ १५ वरुणो मादित्यैरेतस्यां दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिंश्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ॥१९-१७-४॥ १६ वायो यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु यो ३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२-२०-५॥ १७ ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥१-५-४॥ १८ वातात् ते प्राणमविदं सूर्याचक्षुरहं तव । यत् ते मनस्त्वयि तद्धारयामि संवित् स्वाङ्गैर्वद जिह्वया लपन् ॥८-२-३॥ १९ सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्रणयामि वः । तामाविशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१९-१९-५॥ २० रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठाता नु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥१५-५-१४॥ २१ सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां प्रायच्छदहृणीयमानः । अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥५-१७-२॥ २२ द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् । उत्तानयोश्चम्वो ३ र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥९-१०-१२॥ २३ भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः । ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृऽषितु ॥४-३७-८॥ २४ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यो ३ स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४-२-१॥

३३ शान्तिकपौष्टिकहोममन्त्राः । ऋग्वेदे ।

शान्तिकाः - १ शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा । शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥१-९०-९॥ २ शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ ॥७-३५-१॥ ३ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१०-९-४॥

पौष्टिकाः - १ पुष्टिर्नरण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्नभुज्म क्षोदो न शम्भु ॥१-६५-५॥ २ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः । यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥७-५४-१॥ ३ गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥१-९१-१२॥ ४ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥७-५९-१२॥

मयूखोक्तः शन्नो वात इति मन्त्र ऋग्वेदपरिशिष्टोक्तः । त्रिविक्रमोक्तः द्यौः शान्तिरित्ययं मन्त्र ऋग्वेदे नास्ति । एवमेव त्रिविक्रमोक्तः इह पुष्टि० इति पौष्टिक ऋग्वेदे न दृश्यते । किन्तु सौत्रो लुप्तशाखीयः ।

कृष्णयजुर्वेदे पद्धतिकारोक्तमन्त्राणां साकल्येनादर्शनाद् ऋग्वेदोक्ता एव शान्तिकपौष्टिकमन्त्रा ग्राह्याः ।

३४ शुक्लयजुर्वेदे ।

शान्तिकाः - १ शन्नो व्वातः पवताᳩ शन्नस्तपतु सूर्यः । शन्नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु ॥ २ अहानि शं भवन्तु नः श ᳩ रात्रीः प्रतिधीयताम् । शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंय्योः । ३ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥४॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ᳩ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ᳩ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

पौष्टिकाः - १ अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः । अग्ने पुरीष्याभिद्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥३-४०॥ २ त्र्यम्बकं यजमाहे० मामुतः ॥३-६०॥ ३ शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिᳩसीः । निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥३-६३॥

मयूखोक्तस्य 'शन्न इन्द्राग्नी' इत्यस्य शुक्लयजुर्वेदे 'अहानिशं० इत्यत आरम्भः' । त्रिविक्रमोक्तः 'इह पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधात्विह प्रजाᳩरमयतु प्रजापतिः । अग्नये गृहपतये रयिमते पुष्टिपतये स्वाहा - अयं सौत्रः, पुष्टिर्नरण्वा० अयं आग्वेदिकः, गयस्फानो अमीवहा० अयमपि ऋग्वेदीयः० एते त्रयः शुक्लयजुर्वेदे न सन्ति । गयस्फानः प्रतरणः० इत्यस्यान्तिमपादत्वान्न स्वीकारः । सद्गहोक्तः 'शिवोनामासि० अयं स्वीकृतः । सामवेदे तु पद्धतिकृदुक्तशान्तिकपौष्टिकमन्त्राणामभावाद् ऋग्वेदोक्ताः शुक्लयजुर्वेदोक्ता वा मन्त्रा ग्राह्याः ।

३५ अथर्ववेदे ।

शान्तिकमन्त्राः - १ शन्नो वातो वातु शंन्नस्तपतु सूर्यः । अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रतिधीयतां शमुषा नो व्युऽच्छतु ॥७-६९-१॥ २ शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ ॥१९-१०-१॥ ३ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१-६-१॥ ४ पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः । ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोह यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥११-९-१४॥

पौष्टिकमन्त्राः - १ इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव । पशून् यमिनि पोषय ॥३-२८-४॥ २ पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यऽम् । पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात् ॥१९-३१-५॥ ३ शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा । शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय क्षेमाय शिवा न इहैधि ॥३-२८-३॥ इति शान्तिकपौष्टिकमन्त्राः ।

३६ यन्त्रप्रकरणम् ।

१ गणेशः - बिन्दु, त्रिकोणम्, षट्कोणम्, वृत्तम्, अष्टदलम्, भूपुरत्रयम् ।

२ दुर्गा - १ प्रथमः प्रकारः - बिन्दुः, त्रिकोणम्, षट्कोणम्, वृत्तम्, अष्टदलम्, भूपुरत्रयञ्च । २ द्वितीयः प्रकारः - बिन्दुः, त्रिकोणम्, षट्कोणम्, वृत्तम्, अष्टदलम्, वृत्तम् चतुर्विंशतिदलम्, भूपुरत्रयञ्च ।

३ रुद्रः - बिन्दुः, वृत्तम्, अष्टदलम्, षोडशदलम्, चतुर्विंशतिदलम्, द्वात्रिंशद्दलम्, चत्वारिंशद्दलम्, भूपुरत्रयञ्च ।

४ नारायणः - बिन्दुः, त्रिकोणम्, षट्कोणम्, अष्टदलम्, दशदलम्, द्वादशदलम्, चतुर्दशदलम्, षोडशदलम्, भूपुरत्रयञ्च ।

५ कृष्णः - बिन्दु, वृत्तम्, अष्टदलम्, भूपुरत्रयञ्च ।

६ रामः - १ बिन्दु, षट्कोणम्, वृत्तत्रयं साष्टपत्रम्, द्वादशदलम्, षोडशदलम्, द्वात्रिंशद्दलम्, भूपुरत्रयम् ।

२ बिन्दुः, षट्कोणम्, वृत्तम्, अष्टपत्रम्, भूपुरत्रयञ्च ।

७ दत्तात्रेयः - बिन्दु, त्रिकोणम्, षट्कोणम्, अष्टदलम्, द्वादशदलम्, षोडशदलम्, विंशतिदलम्, द्वात्रिंशद्दलम्, भूपुरत्रयम् ।

८ सूर्यः - बिन्दुः, वृत्तम्, अष्टपत्रम्, अष्टपत्रम्, अष्टपत्रम्, भूपुरत्रयम् ।

९ गायत्रीः - बिन्दुः, त्रिकोणम्, षट्कोणम्, अष्टदलम्, भूपुरत्रयञ्च ।

१० भैरवः - बिन्दुः, वृत्तम्, अष्टदलम्, षोडशदलम्, भूपुरत्रयञ्च ।

११ नृसिंहः - बिन्दुः, षट्कोणम्, वृत्तद्वयम्, द्वादशदलम्, वृत्तद्वयम्, षोडशदलम्, वृत्तद्वयम्, द्वात्रिंशद्दलम्, वृत्तत्रयम्, भूपुरत्रयञ्च ।

३७ पुरुषसूक्तानि ।

ऋग्वेदे पुरुषसूक्तम् ।

१ ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । सभूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥१॥

२ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

३ एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पुरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ॥३॥

४ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः । ततो विष्वङ्व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥४॥

५ तस्माद्विराळजायत विराजो अधिपुरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

६ यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६॥
७ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥
८ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् । पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥८॥
९ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥९॥
१० तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥
११ यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥
१२ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥
१३ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥
१४ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४॥
१५ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥
१६ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१०-९०-१-१६॥

कृष्णयजुर्वेदे पुरुषसूक्तम् ।

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः । सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वा । अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ पुरुष एवेद९ सर्वम् । यद्भूतं यच्च भव्यम् । उतामृतत्वस्येशानः । यदन्नेनातिरोहति ॥१॥ एतावानस्य महिमा । अतो ज्यायाँश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि । त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः । पादोऽस्येहाभवत् पुनः । ततो विष्वङ्व्यक्रामत् ॥ साशनानशने अभि ॥ तस्माद्विराडजायत । विराजो अधिपूरुषः । सजातो अत्यरिच्यत । पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥२॥ यत् पुरुषेण हविषा । देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तो अस्यासीदाज्यम् । ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ सप्तास्यासन् परिधयः । त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वानाः । अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥३॥ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् । पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त । साध्या ऋषयश्च ये ॥ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः । सम्भृतं पृषदाज्यम् । पशू९स्ता९श्चक्रे । वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः । ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दा९सि जज्ञिरे तस्माद् । यजुस्तस्मादजायत ॥४॥ तस्मादश्वा अजायन्त । ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात् । तस्माज्जाता अजावयः ॥ यत् पुरुषं व्यदधुः । कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्य कौ बाहू । कावूरू पादावुच्येते ॥ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् । बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद् वैश्यः । पद्भ्या९ शूद्रो अजायत ॥५॥ चन्द्रमा मनसो जातः । चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च । प्राणाद्वायुरजायत ॥ नाभ्या आसीदन्तरिक्षम् । शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः । श्रोत्रात्तथा लोका९ अकल्पयन् ॥६॥ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् । आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे । सर्वाणि रूपाणि विचिन्त्य धीरः । नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते ॥ धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार । शक्रः प्रविद्वान् प्रदिशश्चतस्रः

॥ तमेवं विद्वानमृत इह भवति । नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ॥ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः । तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्ते । यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ (पुरुषः पुरोऽग्रतोऽजायत ॥ कुतो कल्पयन् नासन् द्वे च) ॥१॥

शुक्लयजुर्वेदे पुरुषसूक्तं प्रसिद्धम् - सं-अ-३१ मन्त्राः - १ तः १६

सामवेदे समग्रं पुरुषसूक्तं नास्ति । केचिन्मन्त्राः सन्ति ॥

अथर्ववेदे शौनकीयशाखायां पुरुषसूक्तम् ।

(काण्ड-१२ सूक्त-६ मन्त्राः १८ तः ३३)

१ ॐ सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥१॥

२ त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत्पुनः । तथा व्यऽक्रामद्विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥२॥

३ तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

४ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यऽम् । उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत्सह ॥४॥

५ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यऽकल्पयन् । मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥५॥

६ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् । मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥६॥

७ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥७॥

८ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥८॥

९ विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥९॥

१० यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१०॥

११ तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः । तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥११॥

१२ तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१२॥

१३ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥१३॥

१४ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् । पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्याऽनारण्या ग्राम्याश्च ये ॥१४॥

१५ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

१६ मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः । राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥१६॥

इत्याथर्वणिकं पुरुषसूक्तम् ।

पुराणोक्तं पुरुषसूक्तम् । ब्रह्मनारदसंवादे पौराणिकम् ।

१ ॐ ब्रह्मोवाच-सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् । तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥१॥

२ सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् । सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ॥२॥
३ महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः । पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ॥३॥
४ त्रिपात् पुरुष ऊर्ध्वोस्येहोदैत् पादोऽभवत् पुनः । सृती विचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे ॥४॥
५ विराड् देहोऽभवत् तस्माद् विराजश्चातिपूरुषः । जातोऽत्यरिच्यत हि सः पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥५॥
६ पुरुषेण ततो यज्ञात् पृषदाज्यं हि सम्भृतम् । वायून् देवान् पशूँश्चक्रे ग्राम्यारण्यांश्च नारद ॥६॥
७ पुरुषाच्च ततो यज्ञादृचः सामानि जज्ञिरे । गायत्र्यादीनि छन्दांसि यजुस्तस्मादजायत ॥७॥
८ ततः पुरुषयज्ञाद्धि गावोऽश्वाश्चोभयोदतः । जज्ञिरेऽजावयस्तस्माच्च हि यज्ञः पशुं विना ॥८॥
९ यज्ञं तं बर्हिषि प्रौक्षन् सृष्टेः पूर्वं हि पूरुषम् । जातं देवा आयजन्त ऋषयः साध्यकाश्च ये ॥९॥
१० व्यदधुः पुरुषं यद्धि कतिधा च व्यकल्पयत् । मुखं बाहूरुपादाश्च विविधं ह्यस्य कल्पितम् ॥१०॥
११ पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः । ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥११॥
१२ मनसश्चन्द्रमा जातः सूर्यश्चक्षोरजायत । श्रोत्रात् प्राणश्च वायुश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥
१३ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकस्तु नाभितः । स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना चेति वै लोककल्पना ॥१३॥
१४ हविषा पूरुषेणास्य देवा यज्ञमतन्वत । आज्यमासीद्वसन्तो हि ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥
१५ सप्त परिधयोऽस्यासन् त्रिसप्त समिधः कृताः । यज्ञं देवाश्च तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥
१६ यज्ञं यज्ञेनायजन्त देवा धर्माणि तानि च । प्रथमानि नाकमासन् महिमानः सचन्त तम् ॥१६॥

इति श्रीब्रह्मनारदसंवादे पौराणिकं पुरुषसूक्तम् ।

अस्य सूक्तस्य समग्रस्य प्रत्यृचं वा अयुतसहस्रान्यतरसंख्यया पायसहोमेन पौराणिको विष्णुयागः सम्पद्यते ।

३८ केचन तान्त्रिका मन्त्राः ।

दक्षिणामूर्तिः - १ ॐ ह्रीं दक्षिणामूर्तये तुभ्यं वटमूलनिवासिने । ध्यानैकनिरताङ्गाय नमो रुद्राय शम्भवे ह्रीं ॐ २ ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा । ३ ॐ हंसः । ४ ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधां प्रज्ञां प्रयच्छ स्वाहा ॥ (मेरु०)

बाला - १ ॐ ऐं क्लीं सौः वद वद वाग्वादिनि स्वाहा ।

भुवनेश्वरी - १ ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः । २ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भुवनेश्वर्यै नमः । ३ ॐ ऐं ह्रीं ऐं भुवनेश्वर्यै नमः ।

श्रीविद्या - (कादि) ॐ ह्रीं क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं सकल ह्रीं । (हादि) - ॐ ह्रीं

ह स क ह ल ह्रीं क ए ई ल ह्रीं स क ल ह्रीं ।

दक्षिणकाली - ॐ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा ।

तारा - ॐ ऐं ओं ह्रीं क्रीं हूं फट् ।

छिन्नमस्ता - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं हूं फट् स्वाहा ।

त्रिपुरभैरवी - ॐ हसैं हसकरीं हसैं । बगलामुखी - ॐ ह्लीं बगलामुखी सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तंभय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा ।

धूमावती - ॐ धूं धूं धूमावती ठः ठः । मातङ्गी - ॐ ह्रीं क्लीं हूं मातङ्ग्यै फट् स्वाहा ।

कमला - ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसौं जगत्प्रसूत्यै नमः ।

मनसादेवी - ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा ।

अन्नपूर्णा - ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा ।

कुमारः - (कार्तिकेयः) - ॐ ह्रां कुमाराय नमः स्वाहा ।

कार्तवीर्यः - ॐ फ्रों व्रीं क्लीं भ्रों आं श्रीं क्रीं ऐं हां हुं फट् कार्तवीर्यार्जुनाय स्वाहा ।

भैरवः - ॐ ह्रीं वीं रुं धुं भ्रीं ह्रीं बटुकभैरवाय नमः स्वाहा ।

महामृत्युञ्जयः - ॐ जों सः हंसः मां पालय पालय सो हंसः जूं ॐ

३९ सुवर्णघर्मानुवाकः (तैत्तिरीयशाखास्थः)

हरि ॐ ॥ तच्छंयोरावृणीमहे । गातुं यज्ञाय । गातुं यज्ञपतये । दैवी स्वस्तिरस्तु नः । स्वस्तिर्मानुषेभ्यः । ऊर्ध्वं जिगातु भेषजम् । शन्नो अस्तु द्विपदेचतुष्पदे ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ॐ सुवर्णं घर्मं परिवेद वेनं । इन्द्रस्यात्मानं दशधा चरन्तम् । अन्तः समुद्रे मनसा चरन्तम् । ब्रह्मान्वविन्दद् दशहोतारमर्णे । अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम् । एकः सन् बहुधा विचारः । शतꣳशुक्राणि यत्रैकं भवन्ति । सर्वे वेदा यत्रैकं भवन्ति । सर्वे होतारो यत्रैकं भवन्ति । समानसीन आत्मा जनानाम् ॥१॥ अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाꣳसर्वात्मा । सर्वाः प्रजा यत्रैकं भवन्ति । चतुर्होतारो यत्र सम्पदं गच्छन्ति देवैः । समानसीन आत्मा जनानाम् । ब्रह्मेन्द्रमग्निं जगतः प्रतिष्ठाम् । दिव आत्मानꣳसवितारं बृहस्पतिम् । चतुर्होतारं प्रदिशो न क्लृप्तम् । वाचो वीर्यं तपसान्वविन्दत् । अन्तः प्रविष्टं कर्तारमेतम् । त्वष्टारꣳरूपाणि विकुर्वन्तं विपश्चिम् ॥२॥ अमृतस्य प्राणं यज्ञमेतम् । चतुर्होतृणामात्मानं कवयो निचिक्युः । अन्तः प्रविष्टं कर्तारमेतम् । देवानां बन्धुर्निहितं गुहासु । अमृतेन क्लृप्तं यज्ञमेतम् । चतुर्होतृणामात्मानं कवयो निचिक्युः । शतं नियुतः परिवेद विश्वा विश्ववारः । विश्वमिदं वृणाति । इन्द्रस्यात्मा निहितः पञ्चहोता । अमृतं देवानामायुः प्रजानाम् ॥३॥

इन्द्र॑राजान॑ सवितारमेतम् । वायोरात्मानं कवयो निचिक्युः । रश्मि॑रश्मीनां मध्ये तपन्तम् । ऋतस्य पदे कवयो निपान्ति । य आण्डकोशे भुवनं बिभर्ति । अनिर्भिण्णः सन्नथ लोकान् विचष्टे । यस्याण्डकोश॑शुष्ममाहुः प्राणमुल्बम् । तेन क्लृप्तोमृतेनाहमस्मि । सुवर्णं कोश॑रजसा परीवृतम् । देवानां वसुधानीं विराजम् ॥४॥ अमृतस्य पूर्णां तामु कलां विचक्षते । पाद॑षड्ढोतुर्न किला विवित्से । येनर्तवः पञ्चधोत क्लृप्ताः । उत वा षड्धा मनसोत क्लृप्ताः । त॑षड्ढोतारमृतुभिः कल्पमानम् । ऋतस्य पदे कवयो निपान्ति । अन्तः प्रविष्टं कर्तारमेतम् । अन्तश्चन्द्रमसि मनसा चरन्तम् । सहैव सन्तं न विजानन्ति देवाः । इन्द्रस्यात्मान॑शतधा चरन्तम् ॥५॥

इन्द्रो राजा जगतो य ईशे । सप्त होता सप्तधा विक्लृप्तः । परेण तन्तुं परिषिच्यमानम् । अन्तरादित्ये मनसा चरन्तम् । देवाना॑हृदयं ब्रह्मान्वविन्दत् । ब्रह्मैतद् ब्रह्मण उज्जभार । अर्क॑श्चोतन्त॑सरिरस्य मध्ये । आ यस्मिन् सप्त पेरवः । मेहन्ति बहुला॑श्रियम् । बह्वश्वामिन्द्रगोमतीम् ॥६॥ अच्युतां बहुला॑श्रियम् । स हरिर्वसुवित्तमः । पेरुरिन्द्राय पिन्वते । बह्वश्वामिन्द्रगोमतीम् । अच्युतां बहुला॑श्रियम् । मह्यमिन्द्रो नियच्छतु शत॑शता अस्य युक्ता हरीणाम् । अर्वाङायातु वसुभी रश्मिरिन्द्रः । प्रमहमाणो बहुला॑श्रियम् । रश्मिरिन्द्रः सविता मे नियच्छतु ॥७॥

घृतं तेजो मधुमदिन्द्रियम् । मय्ययमग्निर्दधातु । हरिः पतङ्गः पटरी सुपर्णः । दिविक्षयो नभसा य एति । स न इन्द्रः कामवरं ददातु । पञ्चारं चक्रं परिवर्तते पृथु । हिरण्यज्योतिः सरिरस्य मध्ये । अजस्रं ज्योतिर्नभसा सर्पदेति । स न इन्द्रः कामवरं ददातु । सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम् ॥८॥ एको अश्वो वहति सप्तनामा । त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वम् । येनेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ भद्रं पश्यन्त उपसेदुरग्रे । तपो दीक्षामृषयः सुवर्विदः । ततः क्षत्रं बलमोजश्च जातम् । तदस्मै देवा अभिसन्नमन्तु । श्वेत॑रश्मि नो भुज्यमानम् । अपां नेतारं भुवनस्य गोपाम् । इन्द्रं निचिक्युः परमे व्योमन् ॥९॥

रोहिणीः पिङ्गला एकरूपाः । क्षरन्ती पिङ्गला एकरूपाः । शत॑सहस्राणि प्रयुतानि नाव्यानाम् । अयं यः श्वेतो रश्मिः । परि सर्वमिदं जगत् । प्रजां पशून् धनानि । अस्माकं ददातु । श्वेतो रश्मिः परिसर्वं बभूव । सुवन् मह्यं पशून् विश्वरूपान् । पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया ॥१०॥

हृदा पश्यन्ति मनसा मनीषिणः । समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षते । मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः । पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति । तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः । तां द्योतमाना॑ स्वर्यं मनीषाम् । ऋतस्य पदे कवयो निपान्ति । ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपाः । विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः । अग्निस्ता॑ अग्रे प्रमुमोक्तु देवः ॥११॥ प्रजापतिः प्रजया संविदानः । वीत॑स्तुके स्तुके । युवमस्मासु नियच्छतम् । प्र प्र यज्ञपतिं तिर । ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपाः । विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः । तेषां॑ सप्तानामिह रन्तिरस्तु । रायस्पोषाय सुवीर्याय । य आरण्याः पशवो विश्वरूपाः । विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ॥१२॥

वायुस्त्वाऽग्रो प्रमुमोक्तु देवः । प्रजापतिः प्रजया संविदानः । इडायै सृप्तं घृतवच्चराचरम् । देवा अन्वविन्दन् गुहाहितम् । य आरण्याः पशवो विश्वरूपाः । विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः । तेषां ९ सप्तानामिह रन्तिरस्तु । रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥१३॥ (आत्मा जनानां विकुर्वन्तं त्रिषष्टिं प्रजानां वसुधानीं विराजं चरन्तं गोमतीं मे नियच्छत्वेकचक्रं व्योमन्मायया देव एकरूपा अष्टौ च) ॥१४॥ इति सुवर्णघर्मानुवाकः ॥ ततः पुरुषसूक्तम् ॥

४० महापुरुषविद्या ।

(उपलभ्यमानेषु ग्रन्थेषु महापुरुषविद्यायामनेके पाठभेदा उपलभ्यन्ते । तत्रोपसंहारे 'पुरुषस्य हरेः सूक्तम्' इत्युक्तत्वात्, महापुरुषविद्यायाः पुरुषसूक्तत्वेन परिगणनात् पुरुषसूक्तस्य पुनर्ऋग्वेदे कृष्णयजुर्वेदे शुक्लयजुर्वेदेऽथर्ववेदे च षोडशर्चत्वेन प्रसिद्धिः स्वतः सिद्धा । सम्प्रत्युपलभ्यमानासु मुद्रितासु महापुरुषविद्यासु कचित्-त्रयोदशान्यत्र चतुर्दशापरत्र च पौराणिके पञ्चदश पद्यानि दृश्यन्ते । कुत्रापि षोडशर्चा महापुरुषविद्या नोपलभ्यते । पौराणिके वैष्णवयागे पूजान्ते जितं ते० इति स्तोत्रेण, जितं ते० इति मन्त्रेण वा शिरस्यूर्ध्वं च षोडशपुष्पप्रक्षेपस्य विहितत्वात् प्रत्यक्षं विसंवाद उत्पद्यते । एतत्पारस्परिकपाठविरोधनिरसनायास्माभिः पञ्चरात्रागमे महोपनिषद्ब्रह्मतन्त्रे श्रीमदष्टाक्षरकल्पे जितं ते० स्तोत्रस्य चतुर्थाध्यायनिगदिता सर्वपाठसंवादिनी षोडशर्चा महापुरुषविद्याऽनूद्यते ।)

१ जितं ते पुण्डरीकाक्ष पूर्णषाड्गुण्यविग्रह । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥१॥

(नमो हिरण्यगर्भाय प्रधानाव्यक्तरूपिणे । ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥२॥ आ० सूत्रा०)

२ देवानां दानवानाञ्च सामान्यमधिदैवतम् । सर्वदा चरणद्वन्द्वं व्रजामि शरणं तव ॥२॥

३ एकस्त्वमस्य लोकस्य स्रष्टा संहारकस्तथा । अध्यक्षश्चानुमन्ता च गुणमायासमावृतः ॥३॥

४ संसारसागरं घोरमनन्तं क्लेशभाजनम् । त्वामेव शरणं प्राप्य निस्तरन्ति मनीषिणः ॥४॥

५ न ते रूपं न चाकारो नायुधानि न चास्पदम् । तथापि पुरुषाकारो भक्तानां त्वं प्रकाशसे ॥५॥

६ नैव किञ्चित् परोक्षं ते प्रत्यक्षोऽसि न कस्यचित् । नैव किञ्चिदसाध्यं ते न च सिद्धोऽसि कस्यचित् ॥६॥

७ कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाच्यमुत्तमम् । योगिनां परमा सिद्धिः परमं ते पदं विदुः ॥७॥

८ अहं भीतोऽस्मि देवेश संसारेऽस्मिन् भयावहे । पाहि मां पुण्डरीकाक्ष न जाने शरणं परम् ॥८॥

९ कालेष्वपि च सर्वेषु दिक्षु सर्वासु चाच्युत । शरीरे च गतौ चास्य वर्तते मे महद् भयम् ॥९॥

१० त्वत्पादकमलादन्यन्न मे जन्मान्तरेष्वपि । निमित्तं कुशलस्यास्ति येन गच्छामि सद्गतिम् ॥१०॥

११ विज्ञानं यदिदं प्राप्तं यदिदं ज्ञानमर्जितम् । जन्मान्तरेऽपि देवेश मा भूदस्य परिक्षयः ॥११॥

१२ दुर्गतावपि जातायां त्वद्गतो मे मनोरथः । यदि नाशं न विन्देत तावताऽस्मि कृती सदा ॥१२॥

१३ न कामकलुषं चित्तं मम ते पादयोः स्थितम् । कामये वैष्णवत्वं तु सर्वजन्मसु केवलम्॥१३॥

१४ अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानादशुभं यत्कृतं मया । क्षन्तुमर्हसि देवेश दास्येन च गृहाण माम् ॥१४॥

१५ सर्वेषु देशकालेषु सर्वावस्थासु चाच्युत । किङ्करोऽस्मि हृषीकेश भूयो भूयोऽस्मि किङ्करः॥१५॥

१६ इत्येवमनया स्तुत्या देवदेवं विनोदयेत् । किङ्करोऽस्मीति चात्मानं देवायैव निवेदयेत् ॥१६॥

१७ यश्चापराधं कृतवानज्ञानात् पुरुषोत्तम । भक्तस्य मम देवेश तं सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥१७॥

१८ अहङ्कारार्थकामेषु प्रीतिरद्यैव नश्यतु । त्वां प्रपन्नस्य मे देव वर्धतां श्रीमति त्वयि ॥१८॥

१९ काहमत्यन्तदुर्बुद्धिः क्व त्वं चात्महितेक्षण । यद्धितं मम देवेश तदाज्ञापय माधव ॥१९॥

२० सोऽहं ते देवदेवेश नार्चनादौ स्तुतौ न च । सामर्थ्यवान्कृपामात्रमनोवृत्तिः प्रसीद मे ॥२०॥

२१ उपचारापदेशेन कृतान्यहर्निशं मया । अपचाराणि सर्वाणि क्षमस्व पुरुषोत्तम ॥२१॥

२२ न जाने कर्म यत् किञ्चिन्नापि लौकिकवैदिकौ। न निषेधविधी विष्णो तव दासोऽस्मि केवलम् ॥२२॥

२३ सत्यं प्रसीद भगवन् कुरु मय्यनाथे, विष्णो कृपां परमकारुणिकः किल त्वम् ।
संसारसागरनिमग्नमनन्तदीनं, उद्धर्तुमर्हसि हरे पुरुषोत्तमोऽसि ॥२३॥

इति श्रीपञ्चरात्रागमे महोपनिषद्ब्रह्मतन्त्रे श्रीमदष्टाक्षरकल्पे (श्री जितं ते स्तोत्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥

इतिश्री वटपत्तनवासि श्रीगुरुद्विजकुलभूषण शुक्ल गौरीशङ्करात्मजपण्डित लक्ष्मीशङ्कर शुक्ल विरचिते प्रतिष्ठामौक्तिके तृतीयं विविधदेवतामन्त्रयन्त्रादिप्रकरणं सम्पूर्णम् ।

श्रीः

४ प्रतिष्ठामौक्तिके चतुर्थं षोडशविधस्नपनभेदप्रकरणम् ।

अत्र निर्दिश्यमानसर्वपक्षेषु, वेदीकरणं, भद्रपीठनिधानं, व्रीहिस्वस्तिकं, कुशास्तरणं, पञ्चगव्येन प्रोक्षणं, देवस्थापनं, कलशासादनं, महीद्यौरित्यादि सतीर्थवरुणावाहनान्तं, विशिष्टमन्त्रैः कलशाभिमन्त्रणं, नेत्रोन्मीलनं, वस्त्रसम्मार्जनं, सुगन्धितैलाभ्यञ्जनं, यवशालिगोधूममसूरबिल्वचूर्णोद्वर्तनं, यक्षकर्दमानुलेपनं, संकलीकरणपूजनसामिधेनीकल्पोक्तपुरुषसूक्तस्तवनमित्यादिको विशेषः सामान्यो बोध्यः । स्नपने षोडशप्रकाराः क्रमेणाधो निर्दिश्यन्ते ।

१ प्रथमः प्रकार १ कलशात्मकः सामान्यः ।

वेदी, भद्रपीठम् ।

१ कलशः ।

गन्धपुष्पाक्षतदूर्वौसर्वौषधीपञ्चपल्लवपञ्चरत्नपञ्चगव्यकषायपञ्चामृतफलहिरण्यादिसहितः । स्नपने मन्त्रः - १ ॐ दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम् । २ पुरुषसूक्तम् । ३ तत्तद्देवतासूक्तम् । ४ तत्तद्देवतागायत्री वा ।

२ द्वितीयः प्रकारः ४ कलशात्मकः सामान्यः ।

वेदी, भद्रपीठम् ।

१ मृत्तिकाः ॐ आपोहिष्ठा० १ (इमम्मेवरुण०)

गन्धपुष्पफलादि - ४ ॐ आजिघ्र० (सत्वन्नो अग्ने)

२ कषायः ॐ योवः० १ (तत्त्वायामि०)

३ धान्यानि - ॐ तस्मा अरङ्ग० १ (त्वन्नो अग्ने०)

३ तृतीयः प्रकारः ८ कलशात्मकः सामान्यः साम्बपुराणोक्तः ।

वेदी, भद्रपीठम् ।

मृत्तिका - ॐ इदं विष्णु०

१

८ फलानि-ॐ याः फलिनी० ८

७ पुष्पाणि-ॐ ओषधीः प्रतिमो० ७

६ यवाः-ॐ व्रीहयश्च मे० ६

२ पञ्चपल्लवाः-ॐ अश्वत्थे वो०

३ कुशाः-ॐ पवित्रे स्थो०

४ शान्त्युदकम्-ॐ द्यौः शान्ति०

५

प्रस्रवणोदकम्-ॐ सम्यक् स्रवन्ति०

४ चतुर्थः प्रकारः १६ कलशात्मकः ।

वेदी, भद्रपीठम् ।

१ मृत्तिकाः-ॐ स्योना पृथिवि०

१ मृत्तिकाः-ॐ इदं विष्णुः०

८ फलानि-ॐ याः फलिनी० ८

४ गन्धपुष्पफल-ॐअहमुना ते०

७ पुष्पाणि-ॐ ओषधीः प्रति० ७

६ यवाः-ॐ धान्यमसि० ६
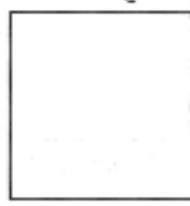
२ पञ्चपल्लवाः - ॐ अश्वत्थेवो०

२ कषाय० यज्ञा यज्ञावो०

३ कुशाः-ॐ कृष्णोऽस्या०

४ शान्त्युदकम् - ॐ शन्नोवातः०

५ प्रस्रवणोदकम्-ॐ पञ्चनद्यः०

३ धान्यानि-ॐ व्रीहयश्च मे०

४ ३ २ १

ॐ तत्त्वायामि० । ॐ इमम्मे० । ॐ अपोदेवीरुप० । ॐ इदमापः० सुवासिनीकलशाः - ४

सूचनम् - १ प्रथमं वेद्यष्टकलशीः, २ द्वितीयं वेदीचतुर्दिकलशीः, ३ तृतीयं सुवासिनीकलशीः०

५ पञ्चमः प्रकारः २४ प्रतिष्ठावासुदेव्युक्तः पद्धतिकल्पलतोक्तश्च ।

२ उत्तरवेदी, भद्रपीठम् । १ दक्षिणवेदी, भद्रपीठम् ।
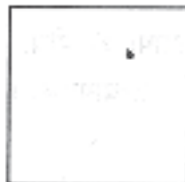
१८	१७	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	(२) पं.
पुरुषसूक्त	पञ्चा मृतम्	मधु	घृत	व्रीहि	यव	सुवर्ण	फल	मण्युदकम्	

९	८	७	६	५	४	३	२	१	(१) पं.
पुण्यो दकम्	कषाय	मधु	यव पिष्ट	दधि	पञ्च गव्यम्	आच मन	अर्घ्य	पाद्यम्	

दक्षिणवेदीस्नपनमन्त्राः

१ मृत्तिका० ॐ भूरसि०

२ कषाय० ॐ यज्ञायज्ञावो०

३ धान्य० ॐ धान्यमसि०

४ गन्धादि ॐ त्र्यम्बकं०

उत्तरवेदीस्नपनमन्त्राः ।

१ प्रथमपङ्क्तिः

१ पाद्यम्-ॐ एतावानस्य०

२ अर्घ्यम्-ॐ त्रिपादूर्ध्व०

३ आचमन-ॐ ततो व्विराड०

४ पञ्चगव्यम्-ॐ आयङ्गौः०

५ दधि-ॐ दधिक्राव्णो०

६ यवपिष्ट-ॐ यवोसि०

७ मधु-ॐ मधुव्वाता०

८ कषाय-ॐ यज्ञायज्ञावो०

९ पुण्योदक-ॐ पावकान०

२ द्वितीयपङ्क्तिः ।

१० मण्युदक ॐ परिवाजपतिः०

११ फल ॐ याः फलिनी०

१२ सुवर्ण ॐ हिरण्यगर्भः०

१३ यव-ॐ धान्यमसि०

१४ व्रीहि-ॐ व्रीहयश्च मे०

१५ घृत-ॐ घृतं मिमिक्षे०

१६ मधु-ॐ अश्नातृपरि०

१७ पञ्चामृत-ॐ ऊर्कुञ्चमे०

१८ पुरुषसूक्तं देवतासूक्तं वा ।

३ तृतीयपङ्क्तिः

१ शान्ति० ॐ शन्नोदेवी०

२ सुवासिनी० ॐ आपो अस्मान्०

६ षष्ठः प्रकारः २५ कलशात्मको द्वैतनिर्णयोक्तः ।

२ उत्तरवेदी-भद्रपीठम्

१ दक्षिणवेदी-भद्रपीठम्
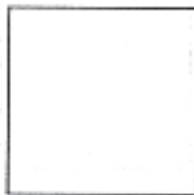
१ मृत्तिका
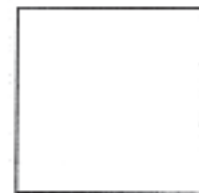
२ कषायः

३ धान्यानि

४ गन्धोदकम्

१ तीर्थोदककलशः (४) पं०

४ ३ २ १ समुद्रकलशाः (३) पं०

२

८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १

शु. शु. शु. शु. शु. शु. शु. शुद्ध (२) पं०

८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १

भस्म शर्करा मधु घृतम् दधि पयः गोमयं गोमूत्रं (१) पं.

उत्तरवेदीस्नपनमन्त्राः १ २ पङ्क्ती

१ गोमूत्रम्-ॐ तत्सवितु०
१ शुद्ध-ॐ आपोहिष्ठा०
२ गोमय-ॐ मानस्तोके०
२ शुद्ध-ॐ यो वः शिव०
३ पयः-ॐ पयः पृथिव्यां०
३ शुद्ध-ॐ तस्मा अरङ्ग०
४ दधि-ॐ दधिक्राव्णो०
४ शुद्ध-ॐ इदमाप०
५ घृतं-ॐ घृतम्मिमिक्षे०
५ शुद्ध० ॐ आपोअस्मान्-
६ मधु० ॐ मधुव्वाता०
६ शुद्ध ॐ हविष्मती०
७ शर्करा-ॐ अपाऽरस०
७ शुद्ध-ॐ देवीरापो०
८ भस्म-ॐ प्रसद्य भस्मना०
८ शुद्ध-ॐ शन्नो देवी०

दक्षिणवेदी स्नपनमन्त्राः

१ मृत्तिका-ॐ इदं विष्णु०
२ कषायः-ॐ यज्ञा यज्ञावो०
३ धान्यानि ॐ धान्यमसि०
४ गन्धोदकम् ॐ अंशुना ते०

३ पङ्क्ति समुद्रकलशाः ४

१ समुद्रादूर्म्मि०
२ समुद्रस्यत्वा०
३ समुद्रोऽसि व्विश्वव्यचा०
४ समुद्रोऽसि नभस्वाना०

४ पंक्तिः तीर्थोदक कलशः

१ ये तीर्त्थानि०

७ सप्तमः प्रकारः ३६ कलशात्मकः ।

२ उत्तरवेदी-भद्रपीठम्

१ क्षार
२ क्षीर
३ दधि
४ घृत
५ इक्षुरस
६ सुरा
७ स्वादु
८ गर्भोदक

१ दक्षिणवेदी-भद्रपीठम् ।

२ १ पं-६
शान्ति लौकिक

४ ३ २ १ पं-५
सु. सु. सु. सुवासिनी

६ ५ ४ ३ २ १ पं-४
गन्ध तीर्थ धान्य शुद्धोदक रत्न फल

५ ४ ३ २ १ पं-३
शु. शु. शु. शु. शु.

५ ४ ३ २ १ पं.२
शर्करा मधु घृतम् दधि पयः

६ ५ ४ ३ २ १ पं-१
पञ्च गन्धो गोमय गोमूत्र कषाय मृत्तिका गव्य दक

६+५+५+६+४+८+२=३६ कलशाः ।

पं-१	पं-२	पं-३
१ अग्निर्मूर्धा०	१ अस्य प्रत्नना०	१ शुक्रवालः०
२ यज्ञायज्ञावो०	२ ऊर्कूचमे०	२ देवीरापो०
३ गायत्री त्रिष्टुब्०	३ घृतवती०	३ अपोदेवी०
४ मानस्तोके०	४ मधुनक्त०	४ द्रुपदादिव०
५ त्र्यम्बकं०	५ स्वादिष्ठया०	५ अपाऽरस०
६ आयङ्गौ०		

पं-४	पं-५	दिक्कलशाः
१ याः फलिनी०	१ शन्नोवातः०	१ कयानश्चित्र०
२ परिवाजपति०	२ अहानिशं०	२ पयः पृथिव्यां०
३ चत्वारिशृङ्गा०	३ शन्नोदेवी०	३ दधिक्राव्णो०
४ धान्यमसि०	४ द्यौः शान्ति०	४ घृतेनाञ्जन्०
५ ये तीर्थानि०	पं-६	५ स्वाद्वींन्त्वा०
६ त्वाङ्गन्धर्वा०	१ लौकिक-शन्नो भवन्तु०	६ सुरावन्तं०
		७ आनो मित्रा०
	२ शान्ति० इन्द्रो विश्वस्य०	८ आदित्यं गर्भं०

८ अष्टमः प्रकारः - ४८ कलशात्मको जयरामपद्धत्युक्तः ।

२ उत्तरवेदी-भद्रपीठम् ।

पं. ४१

मृत्तिका

८ फल — १ पल्लव
७ पुष्प — ३ कुश
६ यव — ४ शान्त्युदक

५ प्रस्रवणोदक

१ दक्षिणवेदी भद्रपीठम् ।

१ मृत्तिका (४)

४ गन्धोदकम् — २ कषायः

३ धान्यानि

४ ३ २ १ पं-५ २ १

सुवा० सुवा० सुवा० सुवा० उष्णोदक संस्रव पं-४

८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-३ ५ ४ ३ २ १

शु. तीर्थं कषाय इक्षुरस नारिकेल जल दु घृत मधु शर्करा मधु घृत दधि पयः पं-२

२ १ पं-२

पुरुषसूक्त सहस्रच्छिद्र

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१ ५ ४ ३ २ १

शा. म. घृ. द. प. पञ्चगव्य भस्म गोमूत्र गोमय मृत्तिका घृत दधि क्षीर गोमय गोमूत्र पं-१

उत्तरवेदीमन्त्राः ।			दक्षिणवेदी मन्त्राः ।	
पं-१	पं-२	पं-४ दिक्कलशाः		
१ अश्मा च मे०	१ सहस्रशीर्षा०	१ इदं विष्णु	पं-१	पं-२
२ स्थिरोभव०	२ पुरुषसूक्तं	२ नमः पर्णाय	१ तत्सवितु०	१ अस्य प्रत्नुना०
	देवसूक्तं वा.	३ पवित्रेस्थो०	२ मानस्तोके०	२ पयसो रूपं०
३ रेतोमूत्रं०	पं-३		३ पयः पृथिव्यां०	३ घृताच्यसि०
	१ मधुश्चमाध०		४ दधिक्राव्णो०	४ मधुमान्नो०
४ प्रसद्य भस्म०	२ सम्यक्स्रव०	४ द्यौः शान्ति०	५ घृतं मिमिक्षे०	५ स्वादिष्ठया०
५ आयद्नीः०	३ पयः पृथिव्यां०	५ स्रवन्तीभ्यःस्वाहा ।	पं-३	पं-४ वेदीकलशाः
६ पयः पृथिव्यां	४ आदित्यं गर्भं०	६ यवोऽसि०	१ सꣳस्रवभागा०	१ इदं विष्णु०
७ दधिक्राव्णो०	५ अपाꣳरस०	७ ओषधीः प्रतिमो०	२ आपो अस्मान्०	२ यज्ञा यज्ञावो०
८ घृतं मिमिक्षे०	६ यस्ते रसः०	८ याः फलिनी०	३ भद्रोनो	३ धान्यमसि०
९ स्वाहा मरुद्भिः	७ ये तीर्थानि०		४ भद्रोमेऽसि०	४ अंशुना ते०
		पं-५ सुवा०	दक्षिणवेदीकलशाः ।	
१० स्वादुषꣳसदः	८ वाचन्ते	१ भद्रं कर्णेभिः	५+५+२+४=१६	
		२ भद्रावर्त	१०+२+८+८+४=३२=४८	
	शुन्धा०	प्रश०	उत्तरवेदीकलशाः ।	

९ नवमः प्रकारः ६४ कलशात्मको निर्णयसिन्ध्वनुसारी धर्मसिन्धूक्तः ।

१ वेदी-भद्रपीठम् ।

३ २ १ पं. १०

तीर्थोदकम् रत्नोदकम् कषायः

४ ३ २ १ पं. ९ समुद्रसंज्ञाः

४ ३ २ १ पं. ८ पल्लवाः

२ सम्पातोदकं १ उष्णोदकं पं. ७

८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं. ६ देवसूक्ताभिमंत्रिताः

५ ४ ३ २ १ पं. ५ शुद्धाः

५ ४ ३ २ १ पं. ४ पृथक्

श. म. घृ. द. प.

१ पञ्चगव्यम् पं. ३

१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं. २ शुद्धकलशाः

१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं. १ द्वादशमृत्तिका

चत्वर गोष्ठ अग्निहोत्र राज हृद सङ्गम वल्मीक वरा अरण्य रथ्या अश्व गज

द्वार होद्धृत

पं-१ पं-२ पं-३ पं-७

१ हस्तऽआधाय० १ आपोहिष्ठा १ आयङ्गौः० १ नमोवीध्र्याय० वेदीकलशाः

पं-४ १ महीद्यौः०

२ अश्वस्तूपरो० २ यो वः शिव० १ पयः पृथि० २ सᳫस्रव० २ नमऊर्व्याय०

पं-८

३ सुषारथि० ३ तस्माअरङ्ग० २ दधिक्राव्णो० १ अश्वत्थेवो ३ व्रीहयश्चमे०

४ वनेषुव्यं० ४ इदमापः० ३ घृतंमिमिक्षे० २ नमः पर्णाय० ४ अभित्यंदेव०

५ इन्द्रस्यक्रोडो० ५ आपो अस्मा० ४ मधुव्वाता० ३ उतस्मास्य० ५ याः फलिनी०

६ या इषवो यातु० ६ आपो हयद्० ५ स्वादिष्ठया० ४ नमोवृक्षेभ्यो० ६ काण्डात्काण्डात्

पं-५ पं-९

७ उपह्वरेगिरी० ७ हविष्मती० १ आप्यायस्व० १ समुद्रादूर्म्मि० ७ स्रवन्तीभ्यः स्वाहा ।

८ नमोहृद्य्याय० ८ शन्नोदेवी० २ सन्तेपयाᳫसि० २ धामन्तेविश्वं० ८ या ओषधीः पूर्वा०

९ राजन्तमध्व० ९ कार्पिरसि० ३ आप्यायमानो० ३ समुद्रस्यत्वा०

१० अयमिहप्रथमो० १० द्रुपदादिव० ४ आतेवत्सो० ४ समुद्रोऽसिविश्व०

११ नमोव्रज्याय० ११ अपोदेवी० ५ तुभ्यं ता० पं-१०

पं-६ १ यज्ञायज्ञावो० १२+१२+१+५+

१२ नमः स्रुत्याय० १२ अपाᳫरस० १ देवसूक्तेन-८ २ परिव्राजपति० ५+८+२+४+४+

३ येतीर्थानि० ३+८=६४ कलशाः ।

१० दशमः प्रकारः ९० कलशात्मकः प्रतिष्ठामयूखोक्तः ।

उत्तरवेदी-भद्रपीठम् मध्यवेदी-भद्रपीठम् दक्षिणवेदी-भद्रपीठम्

१ क्षार

गर्भो० ८ २ क्षीर

स्वादु ७ ३ दधि

इक्षु ६ ४ घृत

५ सुरा

५ ४ ३ २ १ पं-२ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-२

ग ग ग ग ग स्थपति ग. ग. ग. ग. गन्धो

६ ५ ४ ३ २ १ पं-१ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१

ग.भ.गो.गो.क.मृ. गन्धो० भस्म गोमय गोमूत्र कषाय मृत्तिका

११ कलशाः १२ कलशाः

लौकिकाः

१०

९

८

७ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-७

६ पला नाग बि वट चू. प्ल. अ. ज. शा. कदम्ब

५ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-६

४ नवरत्न दूर्वा पञ्च सर्वौ सहस्र धा गोशृ. सुव. फल. पुष्प

३ पल्लव

२ ५ ४ ३ २ १ पं-५ कषायाः

१ क क क क क

५ ४ ३ २ १ पं-४ शुद्धकलशाः

समुद्राः ५ ४ ३ २ १ पं-३

४ ३ श. म. घृ. द. प.

२ १ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-२ शुद्धकलशाः

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१

श. म. घृ. द. प. पञ्चग भस्म गोमूत्र गोमय मृ.

१२+११+१०+१०+४+५+५+५+१०+१०+८=९०

आवश्यका लौकिककलशा भिन्नाः । मन्त्राः समग्राः प्रयोगप्रकरणे वक्ष्यन्ते । दशमप्रकारे पक्षान्तरम्- प्रतिष्ठोल्लासे ९० नवतिकलशान्, वासुदेव्युक्तांश्चतुरः समुद्रसंज्ञान् कलशान् विहाय शेषाष्टादशकलशान् १८ सम्मेल्य १०८ अष्टोत्तरशतकलशात्मकः पक्ष उक्तः ।

११ एकादशः प्रकारः ८४ कलशात्मकस्त्रिविक्रमोक्तः ।

२ उत्तरवेदी-भद्रपीठम्

१ क्षार

गर्भो ८ | २ क्षीर

स्वादु ८ | ३ दधि

इक्षु ६ | ४ घृत

५ सुरा

१ दक्षिणवेदी-भद्रपीठम् ।

मङ्गलकलशाः ६ ५ ४ ३ २ १ पं-२

१ वा १६ वा ८ वा ४ पं-९ स्थपति ग ग ग ग ग ग

६ ५ ४ ३ २ १ पं-१

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ गन्धो भस्म गोम गोमू कषाय मृत्तिका

पला नाग बि. व. चू. प्ल. अ. ज. शा. क. पं-८ पल्लवाः

१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-७

तीर्थ रत्न पल सर्वौ सहस्र धा. गोशृ. सुव फ क पु ओ

५ ४ ३ २ १ पं-६ कषायः

५ ४ ३ २ १ पं-५ शुद्धाः

५ ४ ३ २ १ पं-४

श म घृ द प

समुद्रसंज्ञाः २ १

४ ३ शु शु पं-३ १२+१०+१०+४+२+५+५+

२ १ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ ५+१२+१०+१+८=८४

शु शु शु शु शु शु शु शु शु शु पं-२

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१ मन्त्राः प्रयोगप्रकरणे मयूखोक्तस्नपनवद्

श म घृ द प पञ्च भ गो गो मृ बोध्याः ।

१२ द्वादश- प्रकारः प्रतिष्ठाहेमाद्युक्तः ८८ कलशात्मकः ।

भद्रपीठम्

१ क्षार

(१) शुद्ध २ क्षीर

गर्भो ८

स्वादु ७ (४) शुद्ध (२) ३ दधि ब्रीहि

इक्षु ६

(३) पञ्चगव्य ४ घृत

५ सुरा

प्रथमपंक्तौ-१ इदमाप० २ आपोदेवी० ३ पञ्चनद्यः० ४ तत्त्वायामि०
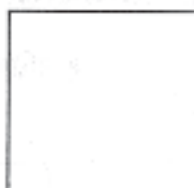
७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१० ७

पुरुष मं. मं. मं. मं रुद्राक्ष

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-९ १०

प. ना. वि. वट चू. प्ल. अ. ज. शा. क.

८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-८ ८

स्थपति तीर्थ सहस्र धा गोशृ हि फ पु

२ १ पं-७ २

गन्धो कषाय

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-६ १०

शु शु शु शु शु श म घृ द प

७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-५ ७

उष्णो सुखो कुशो हिर अग्र तीर्थ सर्षप

९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-४ शुद्धकलशाः ९

९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-३ ९

श म घृ द प पञ्च भस्म गोमू गोमय

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-२ १०

शु सरः सीर क्षेत्र गोशृ नदी वल्मी पर्वत पद्म सर्वौ

४ ३ २ १ पं-१ शुद्धकलशाः ४

भद्रपीठमन्त्राः - १ ॐ २ भूः ३ भुवः ४ स्वः । दिक् कलशाः - मयूखवत् ।

अष्टमपंक्तौ - ८ स्थपति-काशी कुशस्थली०

दशमपंक्तौ - १ रुद्राक्ष-त्र्यम्बकं० । २-३-४-५-६ नमः शम्भवायेत्याद्याः पञ्च ।

७ पुरुषसूक्तम्-देवसूक्तं वा । विशिष्टा लिङ्गमन्त्रा ग्राह्याः । शेषा मयूखवत् ।

१३ त्रयोदशः प्रकारः । १२० कलशाः प्रतिष्ठासारदीपिकोक्ताः । कलशाः प्रतिष्ठामार्तण्डोक्ता, संभूय १४५ कलशात्मकः ।

३ उत्तरवेदी-भद्रपीठम्
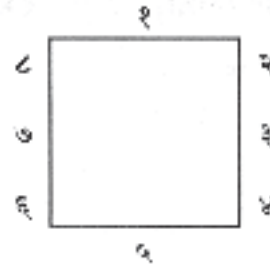
लौकिकाः

१०						२		१			पं-८
९						सुवासिनी		मंगल			प्र-मार्तण्ड
८	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	पं-७
७	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	पं-६
६						५	४	३	२	१	पं-५
५						५	४	३	२	१	पं-४
४	४	३				५	४	३	२	१	पं-३
३	२	१									
२	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	पं-२
१	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	पं-१

मयूखवत्

दक्षिणवेदीशाने षोडशदलपद्मे मध्ये चत्वारः । पूर्वादितः पद्मे षोडशकलशाः प्रादक्षिण्येन । तत्र मध्यस्थचतुःकलशैर्देवगायत्र्या स्नपनम् । बहिः स्थषोडशकलशैः पुरुषसूक्तेन देवसूक्तेन देवगायत्र्या वा स्नपनम् । सर्वे गन्धोदकपूरिताः ।

मन्त्रा मयूखवत् । अन्ये लिङ्गमन्त्रा उह्येयाः । दक्षिणवेदी ६५ मध्यवेदी ११ उत्तरवेदी ६९=१४५ मयूखोक्ताः - ९० सारदीपिकोक्ताः ८+१२+२०=४० मार्तण्डोक्ताः २+११+२=१५=१४५ कलशाः

१४ चतुर्दशः प्रकारः २५० कलशात्मकः संकलितः ।

३ उत्तरवेदी-भद्रपीठम् २ मध्यवेदी भद्रपीठम् १ दक्षिणवेदी भद्रपीठम्

१

८ २

७ ३

६ ४

५

उत्तरवेदीकलशाः

१ २ ३

८ ९ ४

७ ६ ५

८१ कलशाः
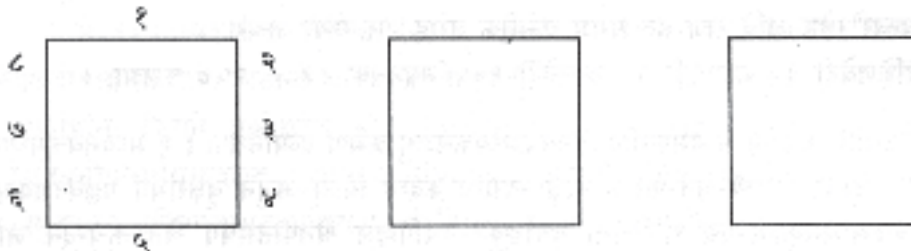
स्थपतिं विहाय प्रथम वेदीवत्-३२ कलशाः

					१ स्थपति	पं-७	
			४	३	२	१	पं-६ शुद्धाः
			४	३	२	१	पं-५
					गं.भ.गो.गोमूत्र		पं-५
		५	४	३	२	१	पं-४ शुद्धाः
		५	४	३	२	१	पं-३ पञ्च कषायाः
७	६	५	४	३	२	१	पं-२ शुद्धाः
७	६	५	४	३	२	१	पं-१ सप्त

गो राजद्वार हृद सं. वल्मीक गज अश्व मृत्तिकाः

दक्षिणवेदी ३२ कलशाः

उत्तरवेदीकलशाः

						४	३	२	१	पं-११	सुवासिनी
		८	७	६	५	४	३	२	१	पं-१०	तीर्थोदक
					५ रत्न	४ दू.	३ सहस्र	२ गो	१ सु	पं-९	
					५	४	३	२	१	पं-८	पल्लवाः
१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	पं-७	सर्वौषध्यः
१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	पं-६	धान्यानि
१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	पं-५	फलानि
१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	पं-४	कषायाः
१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	पं-३	पुष्पाणि

१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-२
श. म. घृ. द. प. स. स. स. समुद्र भस्म गोमय गोमू
१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१ द्वादशमृत्तिका
चत्वर गोष्ठ अग्नि राज ह्रद संगम वल्मीक वराह अर रथ्या अश्वग
दक्षिणवेदी-३३ मध्यवेदी-३२ उत्तरवेदी-१०४ नवनवक-८१ = २५० कलशाः ।

एकाशीतिकलशेषु मध्यमपूर्वादिनवनवकमध्यकलशेषु क्रमेण द्रव्यनिक्षेपः । १ मध्यनवकमध्यम-कुम्भेशमी उदुम्बर-अश्वत्थ-चूत-पलाश-प्लक्ष न्यग्रोध-कदम्ब-बिल्व-अर्जुन वृक्षसंभवं पल्लवदशकम् । २ पूर्वनवकमध्यमकुम्भे-पद्म गोरोचना दूर्वाङ्कुर-दर्भपिञ्जूल श्वेतपीतसर्षप श्वेतरक्तचन्दन जाती बकुलकुसुमनद्यावर्तेति दशकम् । ३ आग्नेयनवकमध्यकुम्भे-यवव्रीहितिलसुवर्णरजत समुद्रगामिनीनदीकूलमृत्तिकाभूम्यसंस्पृष्टगोमयेति सप्तकम् । ५ दक्षिणनवकमध्यकुम्भे सहदेवी विष्णुक्रान्ता भृङ्गराज महौषधी शमी शतावरी गुडूची श्यामाकेत्यष्टकम् । ५ नैर्ऋत्यनवकमध्यकुम्भे-कदलीफल नारिकेल बिल्व नारिङ्ग मातुलिङ्ग बदरामलक चूतफलेति फलाष्टकम् । ६ पश्चिमनवकमध्यकुम्भे-मन्त्रसाधितं पञ्चगव्यम् । ७ वायव्यनवकमध्यकुम्भे-शम्युदुम्बराश्वत्थ न्यग्रोधपलाशेति वृक्षपल्लवकषायपञ्चकम् । ८ उत्तरनवकमध्यकुम्भे-शंखपुष्पी सहदेवी शतावरी गुडूची वचा बला कुमारी व्याघ्रीति मूलाष्टकम् । ९ ईशाननवकमध्यकुम्भे-वल्मीकादिसप्तमृत्तिकाः क्षिपेत् । सर्वकलशेषु गन्धोदकञ्च । दक्षिणमध्योत्तर वेदीस्नपन कलशेषु नवनवकभिन्नेषुतत्तल्लिङ्गका मन्त्रा ग्राह्याः ।

क्रमेण नवकगतमध्यकलशस्नपनमन्त्राः - मध्येन-१-नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० । २ पूर्वेण-विष्णो-रराटमसि० । ३ आग्नेयेन-सोमह राजान० । ४ दक्षिणेन-विश्वतश्चक्षु० । ५ नैर्ऋतेन-याः फलिनीर्या० । ६ पश्चिमेन-पयः पृथिव्यां० । ७ वायव्येन-यज्ञायज्ञावो० । ८ उत्तरेण-हृ ह सः शुचि० । ९ ऐशानेन-समुद्राय त्वा व्वाताय० ।

मध्यमपूर्वादिनवकेषु अवशिष्टपूर्वाद्यष्टकलशेषु इमे मन्त्रा आवृत्त्या पठनीयाः । १ इदमापः० २ हविष्मती० ३ देवीरापो० ४ कार्षिरसि० ५ अपोदेवा मधु० ६ द्रुपदादिव० ७ शन्नोदेवी० ८ अपाᳪरस० ।

१५ पञ्चदशः प्रकारः संकलितः ५०० कलशात्मकः ।

३ उत्तरवेदी-भद्रपीठम् २ मध्यवेदी-भद्रपीठम् १ दक्षिणवेदी-भद्रपीठम्
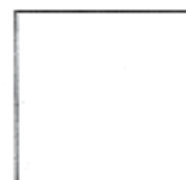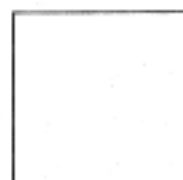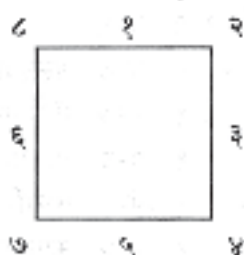
१ दक्षिणवेदी कलशाः ।

१ स्थपति पं-६

४ ३ २ १ पं-६ शुद्धाः

४ ३ २ १ पं-५

गन्धो. भस्म. गोम. गोमू.

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-४ शुद्धाः

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-३ कषायः

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-२ शुद्धाः

१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१ द्वादशमृदः

दक्षिणवेद्यां ५३ कलशाः

२ उत्तरवेदीकलशाः

स्रुवा ४ पं-१६

शान्तिकलशाः - २४ पं-१५

तीर्थ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१४

शुद्धाः ५ ४ ३ २ १ ५ ४ ३ २ १ पं-१३

नत्र. दू. सह गोशृ सुत्र.

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१२ पल्लवाः

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-११ सर्वौषधी

१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१० धान्य

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-९ कषाय

४ ३ २ १ पं-८ समुद्र

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-७ फलानि

१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-६ पुष्पाणि

शुद्धाः ५ ४ ३ २ १ ५ ४ ३ २ १ पं-५ पञ्चामृत

श. म. घृ. द. प.

५ ४ ३ २ १ ५ ४ ३ २ १ पं-४ पञ्चगव्य

शु. शु. शु. शु. शु. घृ. द. क्षी. गो. गो.

३ २ १ ३ २ १ पं-३

शु. शु. शु. भस्म. गोम. गो.

१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-२ शुद्धाः

१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ पं-१ द्वादशमृत्तिका

उत्तरवेद्याम्-१२+१२+६+१०+१०+१०+१०+४+१०+१२+१०+१०+१०+८+२४+८+४=१७०

दक्षिणवेदी- ५३ मध्यवेदी- ५२ उत्तरवेदी- १७० = २७५ पञ्चपङ्क्तिभिः पञ्चविंशतिकलशानां नवकोष्ठानि २५ x ९ = २२५ = ५००

९ ईशानकोष्ठम् ।

२४	२५	१०	११	१२
२३	९	२	३	१३
२२	८	१	४	१४
२१	७	६	५	१५
२०	१९	१८	१७	१६

२ पूर्वकोष्ठम् ।

२४	२५	१०	११	१२
२३	९	२	३	१३
२२	८	१	४	१४
२१	७	६	५	१५
२०	१९	१८	१७	१६

३ अग्निकोष्ठम् ।

२४	२५	१०	११	१२
२३	९	२	३	१३
२२	८	१	४	१४
२१	७	६	५	१५
२०	१९	१८	१७	१६

८ उत्तरकोष्ठम् ।

२४	२५	१०	११	१२
२३	९	२	३	१३
२२	८	१	४	१४
२१	७	६	५	१५
२०	१९	१८	१७	१६

१ कोष्ठकम् ।

२४	२५	१०	११	१२
२३	९	२	३	१३
२२	८	१	४	१४
२१	७	६	५	१५
२०	१९	१८	१७	१६

४ दक्षिणकोष्ठम् ।

२४	२५	१०	११	१२
२३	९	२	३	१३
२२	८	१	४	१४
२१	७	६	५	१५
२०	१९	१८	१७	१६

७ वायव्यकोष्ठम् ।

२४	२५	१०	११	१२
२३	९	२	३	१३
२२	८	१	४	१४
२१	७	६	५	१५
२०	१९	१८	१७	१६

६ पश्चिमकोष्ठम् ।

२४	२५	१०	११	१२
२३	९	२	३	१३
२२	८	१	४	१४
२१	७	६	५	१५
२०	१९	१८	१७	१६

५ नैर्ऋतिकोष्ठम् ।

२४	२५	१०	११	१२
२३	९	२	३	१३
२२	८	१	४	१४
२१	७	६	५	१५
२०	१९	१८	१७	१६

मध्यमपूर्वादिक्रमेण मध्यमपूर्वादिनवनवकेषु निर्दिष्टवस्तूनि, सर्वेषु गन्धोदकं निक्षिपेत् ।

१ मध्यनवकलशेषु-१ नवरत्न २ यव ३ व्रीहि ४ तिल ५ नीवार ६ श्यामाक ७ कुलित्थ ८ मुद्ग ९ सर्षपाः ।

२ पू-नवके, १ घृत २ पलाशकषाय ३ अश्वत्थ ४ न्यग्रोध ५ आम्र ६ बिल्व ७ उदुम्बर ८ जम्बू ९ शमीकषायाः ।

३ अ-नवके, १ मधु २ गङ्गाजल ३ गोशृङ्गोदक ४ मृत्तिका ५ गिरि ६ गज ७ तीर्थ ८ वराहोद्धृत ९ सौराष्ट्री-मृत्तिका ।

४ द-नवके, १ तैल २ नारिङ्ग ३ जम्बीर ४ खर्जूर ५ द्राक्षा ७ श्रीफल ८ पूगीफल ८ दाडिम ९ पनस-फलानि ।

५ नै-नवके, १ श्रीफलक्षीर २ कुङ्कुम ३ नाग ४ चम्पक ५ मालती ६ मल्लिका ७ पुन्नाग ८ करवीर ९ उत्पल-पुष्पाणि ।

६ प-नवके, १ कदलीजल २ वृष्टि ३ हिम ४ निर्झर ५ गङ्गा ६ सागर ७ सरसी ८ सङ्गम ९ वापी-जलानि ।

७ त्रा-नवके, १ दधि २ सहदेवी ३ कुमारी ४ सिंही ५ व्याघ्री ६ अमृता ७ विष्णुपर्णी ८ शतशिवा ९ वचा-औषध्यः ।

८ उ-नवके, १ इक्षुरस २ ताम्बूल ३ एला ४ कुष्ठ ५ उशीर ६ श्वेतचन्दन ७ रक्तचन्दन ८ कस्तूरी ९ कृष्णागरु द्रव्याणि ।

९ ई-नवके, १ गर्भोदक २ चन्द्रतार ३ रौप्य ४ लोह ५ सीसक ६ ताम्र ७ सुवर्ण ८ पञ्चरत्न ९ रीतिक-धातवः । शेषेषु सर्वेषु च गन्धोदकम् ।

१ मध्यमपूर्वादिमध्यनवकमन्त्रा वक्ष्यमाणषोडशपक्षवत् ।

२ मध्यमपूर्वादिक्रमेण अवशिष्ट षोडशकलशानां १ प्रधानदेवता २ इन्द्र ३ अग्नि ४ यम ५ निर्ऋति ६ वरुण ७ वायु ८ सोम ९ ईशान-देवताकसूक्तैर्मन्त्रैर्वा स्नपनं कार्यम् ।

१६ षोडशः प्रकारः अष्टोत्तरसहस्रकलशात्मकः । १००८ कलशाः । आग्नेयोक्तः ।

१९ मध्यमकोष्ठे कलशाः प्रथमे ९ कलशाः, तत्परितो १० दशदिक्कलशाः पूर्वाद्यष्टदिक्षु ११ एकादशकलशानाम् ११ एकादश पङ्क्तयः । प्रतिकोष्ठं १२१ x कलशाः ८ = ९६८ कलशाः ।

१ २ ३

८ १ ४

८ ९ १ २

९ २ ३

७ ८ १ ४ ३

७ ६ ५

६ ५ १० ४

७ ६ ५

मध्यकोष्ठे	९
मध्यकोष्ठे दिक्पाल	१०
अष्टकोष्ठेषु १२१ x ८ = ९६८	
लौकिकाः	४
दशकलशाः	१०
कषायकलशाः	५
शीतोष्णोदककलशी	२
१००८ कलशाः	

१ मध्यपूर्वादिकोष्ठमध्यगत नवनवकेषु निक्षेप्यवस्तूनि पञ्चदशपक्ष उक्तानि ।

२ अवशिष्टकलशेषु गन्धोदकम् ।

३ लौकिकलशीः १ इदमापः० अपोदेवी० ३ इमम्मे० ४ तत्त्वायामि०

४ मृत्तिकादिदशकलशीः पूर्वोक्तमन्त्रैः ।

५ कषायकलशीः - यज्ञायज्ञावो० इति मन्त्रावृत्त्या ।

६ शीतोष्णोदककलशाभ्यां १ ऊर्ध्वमेन० २ प्रतद्विष्णु०

७ मध्यमकोष्ठगतनवकलशीः ।

८ दिक्पालमन्त्रैर्दिक्पालदशकलशाः ।

मध्यकोष्ठगतनवकलशमन्त्राः ।

मध्यकोष्ठगतदिक्पालकलशमन्त्राः ।

२ १
उष्णो शीतोदक
५ ४ ३ २ १
क क क क कषाय
१० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १
श म घृ द प ग भ गो गोम मृद्
४ ३ २ १
लौकिकाः

१ अश्वीव्यस्यत्०
२ यवोऽसि०
३ दीक्षायैरूप -
४ व्रीहयश्चमे०
५ या ओषधी०
६ अश्याम तं०
७ धानाना ᳪ रूपं०
८ धान्यमसि०
९ अक्षराजाय कितवं०

१ त्रातारमिन्द्र०
२ त्वन्नोअग्ने०
३ यमाय त्वा०
४ असुन्वन्त०
५ तत्त्वायामि०
६ आनोनियुद्भिः०
७ वय ꣳ सोम०
८ तमीशानं०
९ अस्मेरुद्रा०
१० स्योना पृथिवि०

१ ततः पूर्वकोष्ठमध्यकलशनवकस्नपनं मध्यपूर्वादिक्रमेण ।

१ मध्य :- ॐ घृतम्मिमिक्षे०
२ पूर्व :- ॐ इषेत्वोर्ज्जेत्वा०
३ आग्नेय :- ॐ अश्वत्थेवो०
४ दक्षिणा :- वायुष्ट्वा पचतै २३-१७
५ नैर्ऋत :- ॐ नमो विल्मिने च०
६ पश्चिम :- ॐ सीरायुञ्जन्ति० १२/६७
७ वायव्यः- ॐ मशकान् केशै० २१/३
८ उत्तर :- ॐ वीत ꣳ हविः० १७/९७
९ ईशान :- ॐ मरुता ᳪ स्कन्धा० २५/६
हरिद्रालेपनम् - ॐ या ओषधीः० १२/७५
शुद्धजलेन-ॐ देव्यायकर्मणे० १/१३-३

२ आग्नेयकोष्ठनवकलशैः ।

१ म० ॐ मधुव्वाता० १३/२७
२ पू० ॐ प्रपर्वतस्य० १०/९
३ आ० ॐ याते धामान्यु० ६/३
४ द० ॐ अश्मन्नूर्जं० १७/१
५ नै० ॐ प्रजापतेव्वायवे० २४/३०
६ प० ॐ ये तीर्थानि० १६/६१
७ वा० ॐ इयत्यग्र० ३७/५
८ उ० ॐ तद्विष्णोः० ६/५
९ ई० ॐ स्योनापृथिवि० ३६/१३
जटामांस्याऽनुलेपनम्
ॐ औषधीः प्रति० १२/७७
देवमन्त्रेण पीतपुष्पार्चनम् ।

३ दक्षिणकोष्ठनवकलशैः ।

१ म० ॐ अद्भ्यः क्षीरं० १९/७३
२ पू० ॐ शुन ꣳ सुफाला० १२/६९
३ आ० ॐ लाङ्गलं पवीरवत्० १२/७१
७ वा० ॐ याः फलिनीर्या० १२/८९
८ उ० ॐ होतायक्षदिडिडित० २१/३२
९ ई० गायत्रं छन्दोऽसि० ३/६

४ द० ॐ इष्कृतिर्नाम० १२/८३
५ नै० ॐ साकंयक्ष्म० १२/८७
६ प० ॐ श्रीणामुदारो० १२/२२

आमलकचूर्णेनोद्वर्तनम् ।
कुङ्कुमरक्तचन्दनकरवीरपुष्पैरर्चनम् ।

४ नैर्ऋतकोष्ठनवकलशाः ।

१ म० ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च० ३१/२२
२ पू० ॐ मनसः काममा० ३९/४
३ आ० ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० १३/६
४ द० ॐ मुखह सदस्य० १९/८८
५ नै० ॐ कुलायिनी घृतवती० १४/२
६ प० ॐ ग्राम्मालेखीरन्त० ५/४३

७ वा० ॐ या इषवोयातुधा० १३/७
८ उ० ॐ प्रधासिनो हवामहे० ३/४४
९ ई० ॐ ते हि पुत्रासो० ३/३३
सौराष्ट्याऽनुलेपनम् । तुलसी कस्तूरी चन्दनैरर्चनम् ।

५ पश्चिमकोष्ठनवकलशाः ।

१ म० ॐ याः फलिनीर्य्या० १२/८९
२ पू० ॐ समुद्रायत्वावाताय० ३८/७
३ आ० ॐ हिमस्यत्वाजरा० १७/५
४ द० ॐ वातं प्राणेनापानेन० २५/२
५ नै० ॐ इरावती धेनुमती० ५/१६
६ प० ॐ समुद्रं गच्छस्वाहा० ६/२१

७ वा० ॐ सरोभ्यो धैवरं० ३०/१६
८ उ० ॐ उपह्वरे गिरीणा० २६/१५
९ ई० ॐ नमः वर्ष्यायचा० १६/३८
सितवस्त्रेण मार्जनम् । सुगन्धि चूर्णेनोद्वर्तनम् । पुष्पाञ्जलिदानम् ।

६ वायव्यकोष्ठनवकलशाः ।

१ म० ॐ दधिक्राव्णो० २३/३२
२ पू० ॐ पवित्रे स्थो वैष्ण० १/१२
३ आ० ॐ नृत्ताय सूतं० ३०/६
४ द० ॐ मृगोन भीमः० १८/७१
५ नै० ॐ याव्याघ्रंविषू० १९/१०
६ प० ॐ स्वाद्वीन्त्वा० १९/१

७ वा० ॐ तद्विप्रासो० ३४/४४
८ उ० ॐ आपोअस्मान्० ४/२
९ ई० ॐ शिवेन व्वचसा० १६/४
पञ्चामृतेन स्नपनम्-ॐ ऊर्कुचमे० देवमन्त्रेण प्रार्थनम्-ॐ अद्भ्यः सम्भृत - ६

७ उत्तरकोष्ठनवकलशाः ।

१ म० ॐ शादन्दद्भिरव० २५/१
२ पू० ॐ वतस्मात्स्यद्रव० ९/१५
३ आ० ॐ ये पथांपथि० १६/६०
४ द० ॐ नमो वन्याय० १६/३४
५ नै० ॐ उशिक्पावको० १२/२०
६ प० ॐ या इषवो यातु० १३/७

७ वा० ॐइन्द्रस्य रूप० १९/९१
८ उ० ॐ ऊः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ तस्य० ॐ आपो ज्योती० स्वरोम् । दशप्रणवाः ।
९ ई० ॐ कृष्णा भीमा० २४/१०
शान्तिकुम्भेन-ॐ द्यौः शान्तिः० ३६/१७

८ ईशानकोष्ठनवकलशीः ।

१ म० ॐ सरस्वतीयोन्यां० १९/९४
२ पू० ॐ शुक्रंत्वा शुक्रे० ४/२४
५ नै० ॐ होतायक्षद् दैव्या० २५/३६
६ प० ॐ असौ यस्ताम्रो० १६/६
७ वा० ॐ मीढुष्टम शिवतम० १६/५१
३ आ० ॐ रजता हरिणीः० २३/३७
४ द० ॐ अश्मा च मे० १८/१३
८ उ० ॐ परिव्राजपति० ११/२५
९ ई० ॐ यदग्ने कानि० ११/७३
वस्त्रेण मार्जनम् । पूजनम् । सूक्तेन स्तुतिः ।

ततः पूर्वाद्यष्टकोष्ठस्थितद्वादशाधिकशत ११२ संख्याककलशीर्मध्यनवकाद् बहिर्भूतपङ्क्ति-चतुष्टयात् । पूर्वादिक्रमेण प्रादक्षिण्येनैकैकं कलशमादाय वक्ष्यमाणतत्कोष्ठनिर्दिष्टमन्त्रपाठेन देवं सन्ततं स्नपयेत् ।

१ पूर्वकोष्ठस्नपनमन्त्राः

१ ऋग्वेद-ॐ हिरण्यवर्णां० श्रीसूक्तम्
२ कृ० यजु० ॐ आशुः शिशानो० शर्मयच्छतु । १ कां-४ प्र ६ अनु-४ (मं-१५)
३ ऋग्वेदे इन्द्रसूक्तानि-ॐ आशुः शिशानो० १३ २ इन्द्रं विश्वा० ८ अष्टक १ सू० ११मं० १
४ शुक्लयजुर्वेदे इन्द्रसूक्तम्-ॐ आपश्चित्पिप्यु० मदन्त्वनु । अ-३३ मन्त्र १८ तः २९
५ सामवेदे इन्द्रसूक्तम्-पूर्वार्चिके अ-२ मं-११५ तः १५० । ॐ तद्वोगाय० रिमाते ।
६ अथर्ववेदे-इन्द्रसूक्तम् का-२० सू-३४ म १ तः १८ ॐ योजातएव प्रथमे० विदथमावदेम ॥

२ आग्नेयकोष्ठे

१ ऋग्वेदेऽग्निसूक्तम्-ॐ भद्राअग्ने० शर्धतो वाच्यश्च ॥१२॥ अ० सू० मं० (पवमानसूक्तं-स्वादिष्टया० इन्द्रोस्वाभुवनम्-इत्यन्तं केषाञ्चिन्मते । सोमदेवतत्वादनुचितम्)
२ कृ० यजुर्वेदे० ॐ समास्त्वाग्न० ज्योतिरुत्तमम् । कां-४ प्र-१ अनु-७ मं २०
३ शु० यजु० अग्निसूक्तम् - अस्याजरासो० अग्नावृणीमहे ॥ अ-३३ म-१ तः १७ वा-समास्त्वाग्न० अ-२७ म-१ तः ९ ।
(मतान्तरे-देवसवितः० अ-३० सम्पूर्णः ।
४ सामवेदेऽग्निसूक्तम्-ॐ अग्निंर्वोवृधन्त० यस्य ते गिरा ॥ पूर्वार्चिके अ-१ ख-३ म-१४ ॐ अबोधिया० इडा ॥१॥ गानम् ।
४ अथर्ववेदेऽग्नि सूक्तम्-ॐ अभ्यर्चत सुष्टुतिं० गाव्यो अग्ने ॥ कां-७ सू-८२ मं-६ ॥ अनाधृष्यो० नो गयम् ॥१॥ कां ७ सू-८४ म-१ ।

३ दक्षिणकोष्ठे

१ ऋग्वेदे यमसूक्तम्-ॐ परेयिवांसं० यम आहिता ॥ म-१ तः १६ ॥
२ कृ० यजु० यमः पृथिव्या० ३-४-५-३ परेत तः २२ (मतान्तरे-तदेव० अ-३२ त्र्यंबकं० अ-३६ पुनन्तुमा पितरः ८)
४ सामवेदे पित्र्यसंहिता सुबोधिनीपद्धती-यद्वा उ

पितरः ० १-८-५-९ उशन्तस्त्वा० स्याम । २-६-१२ म-१ तः १७

३ शु-यजु० यमसूक्तम्-ॐ अपेतो यन्तु० लोकाय स्वाहा ॥ अ-३५ सम्पूर्णः । म-१ तः २२

विशस्पते० भी २३४५ः ॥१२ मं

५ अथर्ववेदे यमसूक्तम् - ॐ यमस्य लोका० पर याहि दूरम् ॥ का-१९ सू-५६ म-१ तः ६ । ॐ ऋचाकपोतं० नमो अस्तु मृत्यवे ॥ का-६ सू-२८ म-१ तः ३

४ नैर्ऋत्यकोष्ठे

१ ऋग्वेदे निर्ऋतिसूक्तम्-ॐ प्रतार्यायुः० किंचनाममत् ॥ मं-१० अ-४ सू-५९ म-१ तः १०

२ कृ० यजु० नमः सुतेनिर्ऋते० प्रतिसूरीत्रिचाष्टे-कां-४ प्र-२ अ-५ म-७ तः ११ कृण्णुष्वपाजः० -१-२-१४- मं-१ तः ५ रक्षोहणोवलगहनो० वाचंवद । का-१ प्र-३ अनु-२

३ शु० यजु० निर्ऋतिसूक्तम्-ॐ असुन्वन्त० १२-६२ तः ६४ ॥ यं ते देवी० चकार-

१२-८३ मोषूण० अ-३-४६ । कृणुष्व पाजः० सादयामि ॥ अ-१३ म-९ तः १३ ॥ इन्द्राग्न्योः पक्षति० मुत्तरम् ॥ अ-२५ मं-५ (मतान्तरे अ-१२ मं-६३ तः ११७ अ-सहस्रशीर्षा० अ-३१, स्वाहाप्राणेभ्यः० अ-३९ म-१ तः ६ ॥)

४ सामवेदे-स्वादिष्ठया० सन्त्वद्रयः ॥ म-६८१ तः ६९९

५ अथर्ववेदे० क्षेत्रियात्वा० उभे स्ताम् ॥ कां-२ सू-१० म १ तः ८

५ पश्चिमकोष्ठे ।

१ ऋग्वेदे-ॐ धीरात्वस्य महिना० स्वस्तिभिः सदानः ॥ मं-७ सू-८६ मंत्र १ तः ८ ॥ २ रदत् पथो० सदानः ॥ मं-७ सू-८७ मं-१ तः ७ ॥

२ कृ० यजु० ॐ इमम्मे० तत्त्वायामि० त्वन्नो अग्ने० सत्वन्नो अग्ने० इमम्मे वरुण० उरुꣳहि राजा० सꣳसृजवर्चसा का-१ प्र-४ अनु-४५

३ शु० यजु० ॐ इमम्मे० तत्त्वायामि० त्वन्नो अग्ने० सत्वन्नो अग्ने० अ-२१ मं-१ तः ४॥ वरुण० क्षत्रमिन्द्रियं० २०-७२ सविता वरुणो० २० ७१ निषसाद धृतव्रतो० २०-२ नमोमित्रस्य० ४-३५ वरुणस्योत्तम्भन० ४-३६ उदुत्तमं वरुण० १२-१२ वरुणः प्राविता०

३३-४६ इदमापः० ६-१७ मापो मौषधी० ६-२२ हविष्मती रिमा० ६-२३ आपो अस्मान्० ४-२ ॥ (मतान्तरे-एदम्० ४ अध्यायः)

४ सामवेदे-गाने-चन्द्रमा० १ यदा कदा० २ ज्येष्ठसाम पवाद्धिये त्वा १४ वयो मनः० १५ वयो मना० १७ धर्म विधर्म० १८ औ ही हो वा होयि० १९ रथन्तरं सामअभित्वा० आज्यदोहं साम-हाउ ।३।० ऋतम् ॥ (मतान्तरे-वायव्य बृहज्ज्येष्ठ रथन्तराज्य दोह सामानि समग्राणि पठनीयानि ॥

५ अथर्ववेदे-ॐ बृहन्नेषामधिष्ठाता० सर्वाननु-संदिशामि ॥ कां ४ सू-१६ मं-१ तः ९ ५-२३ वाक्त आप्यायतां० मारुत गच्छतम्

६ वायव्यकोष्ठे ।

१ ऋग्वेदे-ॐ प्रवीरयाशुचयो० सदानः ॥ मं-७ सू-९० मं-१ तः ७

२ कुविदङ्ग नमसा ये० सदानः ॥ मं-७ सू-९१ मं-१ तः ७

२ कृ० यजु० अग्नये समनमत्० संनमन्तु-७-श्रुतस्य २-२-१२-२७ तः ३० वातो वा मनो० जवं दधातु-अ-९ मं-७-८ ॥ वाताय स्वाहा० अ-२२-२६ ॥ वायोः पूत० सखा ॥ अ-१९-३ (मतान्तरे-अ-१७ मं-८० तः ८६ शुक्रज्योतिश्च० भवन्तु ॥ अ २७ ऊर्ध्वा अस्य० ध्रुवः सीद ॥ मं-११ तः ४५) १-३-९

३ शु० यजु० आनो नियुद्भिः० अश्वा॑ऽस्या वृणीमहे ॥ अ-२७ मं-२८ तः ३४ । वातस्य जूर्तिं० १३-४२ वायो शतꣳहरीणां०

४ सामवेदे-१ उपत्वाग्रामयो गिरा० १३-२ अग्नि रुक्थे० मं-४८ । अस्ति सोमो० मं-१७४ । सुनीथोघ्वा० मं-२०३ । न हि विश्वरमं० मं-२४१ । बृहदिन्द्राय० मं० १५८ । वृत्रस्यत्वा० मं-३२४ । पवस्वदक्ष साधनो० मं-४७४ । वात आवातु मं-१८४० । उत वात पितासि० मं-१८४१ । यददो वातते० मं-१८४२ ॥

५ अथर्ववेदे-ॐ प्राणाय नमोयस्य० सर्वं प्रतिष्ठतम् ॥ काण्ड-११ सू-४ मं-१ तः १५ ॥

७ उत्तरकोष्ठे ।

१ ऋग्वेदे-ॐ सोमः पुनानो अर्षति०५ । अत्याहि० वृत्रस्यसीदत-४ । परिप्रास्य० निर्णिजम्-५ । अतिश्रिती० ह्यस्मयुः - ३ । एषधिया० मदिन्तमम्-८ ॥ पवमानसूक्ते-अ-२ वर्गाः १ तः ५ ऋचः - २५ ॥

२ कृष्णयजु० ऊददरेण० २-२ २-१३ तः १३ वसुमद्गणस्य० भक्षयामि-३-२-५ म-५ तः १३

३ शु० यजु० ॐ आप्यायत्व० डेकोविराजति । अ-१२ मं-११२ तः ११७ । अषाढं युत्सु० सोमो धेनु ० त्वमिमा ओषधीः० देवेननो० अ-३४ मं-२० तः २३ । वय ꣳ सोम० अ-३ मं-५६ । सोमꣳ राजान्० अ-६ मं-२६ यत्ते सोम० अ-६ मं-३३ सोमो राजा० अ-६ मं-७२ ॥ इमं देवा० अ-९ मं-४० ॥

४ सामवेदे ॐ पुनानः सोमो० मभिप्रयाꣳ सिञ्च ॥ मं-५११ तः ५२२ ।

५ अथर्ववेदे-ॐ इन्द्रासोमा० दासति द्रुहः । कां-८ सू-४ मं-१ तः ७ । आयाहि सुषुमा० हवामहे का-२० सू-३ मं-१ तः ३ । सत्येनोत्तभिता० अश्नाति पार्थिवः । का-१४ सू-१ मं-१ तः ५ ॥

८ ईशानकोष्ठे ।

१ ऋग्वेदे-ॐ इमारुद्रायतवसे० ५ (१ इदं पित्रे मरुता० उतयीः ६ (२) मं-१ सू-११४ ऋच-११

२ कृ-यजु० ॐ इडादेवहू० नुमदन्तु । ॐ नमस्ते रुद्र० अस्मच्चिभे हितम् इत्यन्तः

पाक्षम्भेदध्मः ६६ रौद्राध्यायमेकवारमेकादशवारं वा, ततः वय ꣳ सोम (उग्राश्च-७) वाजश्च २८ ऋचं वाचं० २४ ब्रह्ममन्त्रांश्च पठेत् । २ पक्षः केवलं रौद्राध्यायं जपेत् । ३ पक्षः ॐ नमस्ते० हवामहे १६ मन्त्राः । पक्षत्रयादेकेन स्नपयेत् ।

प्रथमोऽनुवाकः, अथवा 'यश्च नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दधामिवः- ११ एकादशानुवाकाः ।

३ शु० यजु० १ यज्जाग्रतः । २ सहस्रशीर्षा-१६ । अद्भ्यः सम्भृतः-६ । ४ आशुः शिशानो० १७ । ५ विभ्राड्० १७ । ६ नमस्तेरुद्र० १६ । ततः ॐ नमस्ते रुद्र०

६ सामवेदे० ॐ आवो राजानमध्वरस्य० युयो ३ आउवा २३ ना २३४ माः इत्यन्तम् ।

५ अथर्ववेदे-आथर्वणिकशौनकानां नीलरुद्रसूक्तम् ॐ अपश्यंत्वाऽवरोहन्तं० नमः सभाप्रपादिने ॥ २४ मन्त्राः ॥

(ग्रामे नगरे वा चतुर्वेदविदां ब्राह्मणानामलाभे नवकोष्ठस्थितमध्यमनवकलशैर्बहिःस्थापितकलशैश्च स्वस्वशाखीयमन्त्रैः स्नपनं सम्पाद्यं तत्तद्दिग्गत ११२ कलशानां स्नपन इन्द्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुसोमेशान देवतालिङ्गमन्त्रा वैदिकास्तान्त्रिकाः पौराणा वा मन्त्रा ग्राह्याः ।

स्नपनविधौ विशेषः ।

प्रथमादित्रयोदशपक्षान्ताः स्नपनप्रकारा नूतनप्रासादप्रतिमाप्रतिष्ठायामुपादेयाः । तत्र स्नपनविधौ मण्डपानयनम् । भद्रपीठनिवेशनम् । पीठप्रोक्षणम् । कुशास्तरणम् । प्रतिमानां पीठनिवेशनम् । कलशासादनाभिमन्त्रेण । बलिदानम् । प्रैषात्मकपुण्याहवाचनम् । नेत्रोन्मीलनम् । वस्त्रसम्मार्जनम् । तैलोद्वर्तनम् । यवादिचूर्णोद्वर्तनम् । यक्षकर्दमानुलेपनम् । अन्ते पूजनं सामिधेनीकल्पेन स्तुतिश्च । एतत् सर्वं प्रयोगोक्तक्रमेण यथायथं सम्पादनीयम् ।

चतुर्दशपञ्चदशषोडशपक्षाणां प्रासादस्य प्रतिष्ठापितप्रतिमानाञ्च शास्त्रनिषिद्धदूषितस्पर्शादि-जन्यदेवकलाह्रासनिवृत्तिपूर्वकं प्रासादस्य प्रतिष्ठापितप्रतिमानाञ्च दिव्यदेवकलातेजोऽभिवृद्धये कर्तव्यता बोध्या । तत्र नान्दीश्राद्धान्तम् । आचार्यादि वरणम् । दिग्रक्षणम् । पञ्चगव्यकरणम् । भूमिपूजनम् । अग्निस्थापनम् । मण्डलदेवतास्थापनम् । प्रधानदेवता स्थापनम् । (ग्रहस्थापनम्) दक्षिणतो ब्रह्मासनाद्याज्यभागान्तम् । वराहुतिः त्यागसंकल्पः । (ग्रहहोमः) जलाधिवासोक्तः शान्तिहोमः । शान्तिसूक्तसूपः । व्याहृतिहोमः । उत्तरपूजनादि प्रणीतादिविमोकान्तम् । ततः स्नपनारम्भः । स्नपनान्ते महापूजनम् । दान संकल्पाः । दक्षिणादानम् । अग्निदेवताविसर्जनम् । आशीर्वादः । कर्मसमाप्तिश्च ।

अन्तिमाः १४-१५-१६ पक्षा आतिदेशिकत्वमादाय केवलं स्नपनविधौ नूतनप्रतिष्ठायां ग्रहीतुं शक्यन्ते ।

उपरि प्रतीकमात्रेण निर्दिष्टास्ते ते मन्त्रा अस्मत्कृतायां सहस्रकलशस्नपनमहाभिषेकपद्धतौ तत्तद्वेदमन्त्राः साकल्येन लिखितास्ते ततोऽवगन्तव्याः ।

इतिश्री वटपत्तनवासि श्रीगुरुद्विजकुलभूषणशुक्लगौरीशङ्करात्मजपण्डितलक्ष्मीशङ्करशुक्लविरचिते प्रतिष्ठामौक्तिके चतुर्थं स्नपनभेदप्रकरणम् ।

५ प्रतिष्ठामौक्तिके पञ्चमं प्रयोगप्रकरणम् ।

मंगलाचरणम् ।

गौर्यङ्कस्थगणाधीशं शङ्करो लालयन् मुदा । ॥१॥
तनोत्वनुपमां लक्ष्मीं विदुषां हृच्छ्र्यां सिताम् ।

श्रुतिस्मृतिपुराणादि शिल्पतन्त्रागमादिकम् ।
पद्धतीश्च समालोच्य प्रतिष्ठामौक्तिकं शुभम् ॥२॥

लक्ष्मीशङ्करशुक्लोऽहं श्रीगुरुद्विजभूषणः ।
ग्रथ्नामि वित्प्रमोदाय सत्कर्मपथगुप्तये ॥३॥

१ भूमिपूजनम् ।

सूचना :- इस प्रकरणमें शुक्ल यजुर्वेद के मन्त्रों में य स्थूल का ज ऐसा उच्चार करना ।

सूर्यनक्षत्रात् - ५-७-९-१२-१९-२६ नक्षत्रदिनं विहायान्ते चन्द्रताराद्यनुकूलयथोक्तमुहूर्ते शिल्पशास्त्रोक्तरीत्या भूमिपरीक्षां शुद्धिश्च सम्पाद्य प्रासादारम्भाङ्गभूतं भूमिपूजनं खातपूजनञ्च कुर्यात् । तत्र देवालये चिकीर्षिते मीनमेषवृषभसंक्रान्तिष्वाग्नेयकोणे मिथुनकर्कसिंहस्थसूर्ये ईशानकोणे कन्यातुलावृश्चिकस्थसवितरि वायव्यकोणे धनुर्मकरकुम्भस्थदिवाकरे च नैर्ऋत्यकोणे खातं कुर्यात् । रक्तवस्त्रे गोधूममण्डले गणेशस्थापनम् । श्वेतवस्त्रे तण्डुलाष्टदलस्थकलशपूर्णपात्रस्योपरि वराहकूर्मानन्त भूमीनामाधाराद्वास्तुपुरुषस्य शेषस्य च पूजनं कुर्यात् ।

सम्भृतसम्भारः सपत्नीकः कर्ता प्राङ्मुख उपविश्य-ॐ स्वस्तिन इन्द्रो० तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । रक्तसूत्रबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । शान्तिपाठः । देवतानमस्काराः । सुमुखश्चेत्यादि । संकल्पः-साक्षतं जलमादाय - विष्णु० अमुकशर्मा (वर्मा-गुप्तः-दासः) सपत्नीको यजमानोऽहं मम सकुटुम्बस्य सकलग्रामजनभक्तजनदेशजनानाञ्च दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यग्रहपीडा ईतिभयादिदुर्निमित्तोपशमनपुरःसरं सकलक्षेमकल्याण सुभिक्षधनधान्यवंशाभि-वृद्धिअभ्युदयनिः श्रेयससिद्धये अमुकदेवताप्रीतये निर्मास्यमाननूतनप्रासादाङ्गभूतं वराहादिदेवतानां पूजनं (खातपूजनञ्च) करिष्ये । पुनर्जलमादाय-तदङ्गभूतमासनविधिं दिग्रक्षणं कलशार्चनं दीपपूजनं निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनञ्चाहं करिष्ये । आसनविध्यादिगणपतिपूजनान्तं कृत्वा । तण्डुलाष्टदले कलशं निधायमहीद्यौरित्यादिपूर्णपात्रवरुणपूजनान्तं कुर्यात् । त्रैपात्मकपुण्याहवाचनम् । पूर्णपात्रस्योपरि पूगीफलषट्कं (रजतमयं वास्तुपुरुषं नागञ्च) स्थापयित्वा । हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा वराहादीनावाहयेत्-हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा ।

१ यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत् क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः । अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाऽद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥ (भागवते) ॐ खड्गो वैश्वदेवश्श्वा कृष्णःकर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिप्पकाशकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषान्देवानां पृषतः ॥२४-४०॥ ॐ भूर्भुवः स्वः वराहाय नमः वराहं आवाहयामि स्थापयामि ॥

२ क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः । पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषायकण्डूः ॥ (भाग०) ॐ यस्यं कूर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्द्धयात्वम् । तस्मै देवा अधिब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥१७-५२॥ ॐ भू० कूर्माय० कूर्मम्० ॥

३ एह्येहि नागेन्द्र धराधरेश सर्वामरैर्वन्दितपादपद्म । नानाफणामण्डलराजमान गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ॐ तन्मित्रस्य्वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे । अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥३३-३८॥ (स्योना पृथिवि०) ॐ अनन्ताय० अनन्तं० ॥

४ एह्येहि विश्वेश्वरि विश्वधात्रि वसुन्धरे सर्वजनाश्रये च । संक्षोभमाने धररत्नबीजे गृहाण पूजां पृथिवि प्रणौमि ॥ ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री ॥

पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥१३-१८॥ ॐ भू० धरायै० धराम्० ॥

(आचारात्-ॐ वास्तोष्पते० ॐ भू० वास्तुपुरुषाय० वास्तुपुरुषं० ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० शेषाय० शेष०) इत्यावाह्य ॐ वराहाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः इति पूजयेत् ॥

ततः पात्रे दूर्वागन्धपुष्पाक्षतफल हिरण्यादि सहितान् क्रमेण पञ्चार्घान् भूमौ दद्यात् - १ आगच्छ सर्वकल्याणि वसुधे लोकधारिणि । उद्धृतासि वराहेण सशैलवनकानना ॥ प्रासादं (मन्दिरं-मण्डपं) कारयाम्यद्य त्वदूर्ध्वं शुभलक्षणम् । गृहाणार्घं मया दत्तं प्रसन्ना शुभदा भव ॥ धरायै नमः इदमर्घं समर्पयामि ॥२॥ वसुधेऽनन्तगर्भाऽसि शेषस्योपरिशायिनि । तव पृष्ठे ददाम्येतं गृहाणार्घं धरित्रि मे ॥ धरायै० अर्घं० ॥ ३ सर्वलक्षणसंपन्न सर्वेश कमठाधिप । स्थानं देहालयं कर्तुं गृहाणार्घं नमोऽस्तु ते ॥ कूर्माय० अर्घं ॥ ४ हिमकुन्दप्रतीकाश नागानन्त महाफणिन् । स्थानं देहालयं कर्तुं गृहाणार्घं नमोऽस्तु ते ॥ अनन्ताय० अर्घं० ॥ ५ वास्तोष्पते त्वमुत्तिष्ठ संसारस्थितिकारक । गृहाणार्घं मया दत्तमालयारम्भणे नमः ॥ वास्तुपुरुषाय० अर्घं० । एवं पञ्चार्घान् दत्त्वा । भूमिं प्रार्थयेत्-वसुधेऽनन्तगर्भाऽसि शेषस्योपरिशायिनि । अस्मिन् स्थाने महामाये विघ्नं रक्ष त्वमम्बिके । इति संप्रार्थ्य । ततो वराहादिदेवतानामुत्तरपूजननीराजनादि कुर्यात् ।

निर्दिष्टकोणे पूजायाः प्राग् भित्तिमूलान्तर्भूमौ कृते गर्ते - ताम्रपात्रे-दूर्वादधिहरिद्रासर्षपपञ्चरत्नपूगीफल हिरण्यगन्धपुष्पयुत वास्तुशेषमूर्ती निधाय पात्रान्तरेण पिधाय गर्तमवतरेत् । पूजाकलशमादाय-ॐ वास्तोष्पते० द्यौः शान्तिः० इत्यादिमन्त्रान् पठन् जलधारां कुर्यात् । ततो गर्तमध्ये दूर्वादिसहितं पात्रं निधाय नमस्ते वास्तुपुरुष० इति नत्वा चतस्रः इष्टकाः - ॐ नन्दायै नमः ॐ भद्रायै नमः ॐ जयायै

नमः ॐ पूर्णायै नमः - इति गन्धपुष्पादिभिःसंपूजिताश्चतुर्दिक्षु स्थापयेत् । लेपसिकतादिना गोपायेत् । आचारात् श्रीफलं स्फोटयित्वा धारां कृत्वा गुडधानादिकं वितरेत् । बहिरागत्य सूत्रधारकर्मकारभृत्यादीन् संपूज्य तोषयेत् । ब्राह्मणपूजनम् । आशीर्वादः । देवताविसर्जनम् । कर्मसमाप्तिः ॥ इति भूमिपूजन खातपूजनप्रयोगः ॥

२ शिलास्थापनप्रयोगः ।

(यथोक्तलक्षणायां भूमौ भूमिपूजनं कृत्वा प्रासादगर्भगृहभित्तिपरिकराधिकां भूमिमामूलखातमितां सम्पूर्णां खात्वा मृदं निष्कास्य भूमिं समां शुद्धां शिल्पिभिः सम्पादयेत् । तत्र गृहहर्म्यादिषु नन्दा-भद्रा-जया पूर्णासंज्ञाश्चतस्रः शिला आधारशिलासहिता आग्नेयादिकोणचतुष्टये स्थापयेत् । बृहद्वास्तुमालायामी-शानादिकोणचतुष्टये मध्ये च नन्दा-भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णा-संज्ञिकाः पञ्च शिला उक्ताः । प्रासादमञ्जर्यां पूर्वादिक्रमेण प्रासादमूलभूमौ १ नन्दा २ अजिता ३ भद्रा ४ अपराजिता ५ जया ६ शुक्ला ७ पूर्णा ८ सौभागिनी संज्ञा अष्ट वज्र-शक्ति-दण्ड-खड्ग-पाश-अङ्कुश-गदा-त्रिशूलाकृतीः मध्ये च कूर्मशिलामुक्तलक्षणां स्थापयेदित्युक्तम् । इमाः शिलाः पाषाणमयीरुक्तचिह्नोत्खाताश्चतुर्विंशत्यङ्गुलविस्तृतायता वा द्वादशाङ्गुलायतविस्तृताश्चतुरङ्गुलोच्चाः सम्पादयेत् । खातभूमेर्बहिः प्रासादमण्डपभूमौ रक्तवस्त्रे गोधूमैर्गणेश मातृकास्थापनम्, मध्ये श्वेतवस्त्रे पञ्चवर्णतण्डुलैश्चतुः षष्टिपदं शतपदं वा वास्तुमण्डलम्, ईशान्यां श्वेतवस्त्रे तण्डुलैर्ग्रहस्थापनञ्च कुर्यात् । शिलास्वधः स्थापनाय नव लघुकलशान् सपिधानान् दूर्वा गन्धपुष्प हरिद्रा सर्षपफलहिरण्य पञ्चरत्नमुद्रासमेतान् सम्पादयेत् । दिक्पाल क्रमेण पीतरक्तकृष्णहरितश्वेत धूसरश्वेत श्वेतवस्त्रखण्डानि कूर्मशिलार्थञ्चैकं वस्त्रम् । हवींषि-समिचरुतिलाज्यानि, पायसञ्च बलिदानार्थम् ।)

प्रयोग :- तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । कङ्कणबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । शान्तिपाठः । देवतानमस्काराः । सुमुखश्चेत्यादि० । संकल्पः विष्णु० अहं ममात्मनः श्रुतिस्मृति पुराणोक्त पुण्यफलप्राप्त्यर्थं मम सुकुटुम्बस्य सकल ग्रामजन भक्तजनदेशजनानाञ्च सकलारिष्ट दुर्निमित्तोपशमनपूर्वकं निखिलक्षेमसुभिक्षकल्याणप्राप्तये अमुक देवताप्रीत्यर्थं निर्मास्यमाननूतनप्रासादाङ्गभूतं शिलास्थापनं करिष्ये । पुनर्जलमादाय-तदङ्गभूतं आसनविधिं दिग्रक्षणं कलशार्चनं दीपपूजनं गणपतिपूजनं स्वस्तिपुण्याहवाचनं (मातृकापूजनं वसोर्धारापूजनमायुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं) ऋत्विग्वरणं पञ्चगव्यकरणं भूमिपूजनमग्निस्थापनं वास्तुदेवतास्थापनं बलिदानं (ग्रहस्थापनं) विहितहवनं शिलास्नपनं शिलास्थापनञ्च करिष्ये । (मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं ग्रहस्थापनं ग्रहहोमश्च कृताकृतः) आसनविध्यादिअग्निस्थापनान्तं कृत्वा । वास्तुमण्डलदेवतापूजनं कलशोपरि वास्तुपुरुषध्रुवयोः पूजनं बलिदानञ्च कृत्वा (ग्रहस्थापनम्) दक्षिणतो ब्रह्मासनादि-पवित्रयोः प्रणीतासु निधानम्-इत्यन्तां कुशकण्डिकां कृत्वाऽपयमनान् कुशानादाय दक्षिणं जान्वाच्य ब्रह्मान्वारब्धः आदौ षडाहुतीर्जुहुयात् । उदपात्रे संस्रवः ।

आज्येन - ॐ इहरतिरिहरमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा-इदमग्नये न मम। २ ॐ उपसृजन् धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासुदीधरत् स्वाहा-इदमग्नये न मम। ३ ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान् स्वावेशो अनमीवो भवानः। यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्वशन्नो भव द्विपदेशञ्चतुष्पदे स्वाहा-इदं वास्तोष्पतये नमम। ४ ॐ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो। अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रतितन्नोजुषस्व शन्नो भव द्विपदेशञ्चतुष्पदे स्वाहा-इदं वास्तोष्पतये० । ५ ॐ वास्तोष्पते शग्मया स ह सदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। पाहि क्षेम उत योगे वरन्नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा-इदं वास्तोष्पतये०। ६ ॐ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः स्वाहा-इदं वास्तोष्पतये०। षडाहुतीनामुदपात्रे संस्रवः। तत आधारावाज्यभागौ हुत्वा प्रोक्षण्यां संस्रवः। अग्निपूजनम्। स्थालीपाकेन षडाहुतीर्जुहुयात्। १ ॐ अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वान् देवानुपह्वये सरस्वतीं च वाजीं च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा-इदमग्नय इन्द्राय बृहस्पतये विश्वेभ्यो देवेभ्यः सरस्वत्यै वाज्यै च नमम। २ ॐ सर्पदेवजनान् सर्वान् हिमवन्त ह सुदर्शनम्। वसूँश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह। एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा - इदं सर्पदेवजनेभ्यो हिमवते सुदर्शनाय वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्य ईशानाय जगदेभ्यश्च नमम। ३ ॐ पूर्वाह्णमपराह्णं चोभौ मध्यन्दिना सह। प्रदोषमर्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम्। एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा-इदं पूर्वाह्णायापराह्णाय मध्यंदिनाय प्रदोषायार्धरात्राय व्युष्टायै देव्यै महापथायै च नमम। ४ ॐ कर्तारं च विकर्तारं विश्वकर्माणमोषधींश्च वनस्पतीन्। एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा-इदं कर्त्रे विकर्त्रे विश्वकर्मण ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यश्च नमम। ५ ॐ धातारं च विधातारं निधीनां पतिं ह सह। एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा-इदं धात्रे विधात्रे निधीनां च पतये नमम। ६ ॐ स्योन ह शिवामदं वास्तु मे दत्त ब्रह्मप्रजापती। सर्वाश्च देवताः स्वाहा-इदं ब्रह्मणे प्रजापतये सर्वाभ्यो देवताभ्यश्च न मम। इति षडाहुतीर्हुत्वा त्यागमुच्चरेत्। न संस्रवः। ततो वराहुतिः। त्यागसंकल्पः। (ग्रहहोमः) आज्येन - १ ॐ नन्दायै स्वाहा ८। २ अजितायै स्वाहा ८। ३ ॐ भद्रायै स्वाहा ८। ४ ॐ अपराजितायै स्वाहा ८। ५ ॐ जयायै स्वाहा ८। ६ ॐ शुक्रायै स्वाहा ८। ७ ॐ पूर्णायै स्वाहा ८। ८ ॐ सौभागिन्यै स्वाहा ८॥ आज्येनप्रासाद प्रधानदेवतामन्त्रेण-२८ अष्टाविंशत्याहुतयः। ॐ ध्रुवासि० आज्येन ८। आज्येन ॐ अघोरेभ्यो० ८। आज्येन वास्तुमण्डलदेवतानामेकैकाहुतिः। व्याहृतिहोमः - २८॥ इति होमः।

३ शिलास्नपनम्-स्थापनञ्च।

भद्रपीठे पञ्चशिलाः कूर्मशिलादिनवशिला वा संस्थाप्य पीठपश्चिमतो दक्षिणत उदक्संस्थं क्रमेण षट्कलशान् संस्थाप्य तत्र क्रमेण १ द्वादशमृत्तिकाः २ पल्लव कषायः ३ गन्धोदकम् ४ गोमूत्रम् ५ गोमयम् ६ मीलितपञ्चगव्यं निक्षिपेत्। तत्पुरतः पञ्चकलशेषु क्रमेण १ दुग्ध २ दधि ३ घृतं ४ मधु

५ शर्कराः निक्षिपेत् । तत्पुरतः पञ्चकलशेषु गन्धोदकं निक्षिपेत् । तत्पुरतः षट्कलशेषु १ फल २ रत्न ३ वृषशृङ्गोदक ४ सप्तधान्य ५ तीर्थोदक ६ गन्धोदकानि क्रमेण निदध्यात् । पीठस्याष्टदिक्षु क्रमेण पूर्वतः १ क्षारोदक २ क्षीरोदक ३ दध्युदक ४ घृतोदक ५ सुरोदक ६ इक्षुरसोदक ७ स्वादूदक ८ गर्भो (नारिकेलो) दकं निक्षिपेत् । एवं त्रिंशत् कलशान् संस्थाप्य महीद्यौ रित्यादितो वरुणावाहनान्तं कर्म कृत्वा शिला वस्त्रेणाच्छाद्य ॐ नन्दादिभ्यो नमः - इति गन्धपुष्पादिभिः संपूज्य स्नपयेत् ।

स्नपनम्-पञ्चगव्येन ॐ आपो हिष्ठा-३ शिलाः संप्रोक्ष्य प्रासाददेवतामन्त्रेण अभिमन्त्र्य प्रथमपङ्क्तितः- १ मृत्तिका-ॐ अग्निर्मूर्धा० २ कषायः- ॐ य॒ज्ञा य॑ज्ञा वो अ॒ग्नये॑ गि॒रा गि॑रा च॒ दक्ष॑से । प्र प्र॒वय॑म॒मृतं॑ जा॒तवे॑दसं प्रि॒यं मि॒त्रं न श॑ꣳ सिषम् ॥२७-४२॥ ३ गोमूत्रम्-ॐ तत्सवितु० । ४ गोमयं-ॐ मानस्तोके० ५ गन्धोदकम्-ॐ गन्धद्वारां० । ६ पञ्चगव्यम्-ॐ आयङ्गौ ॄ पृश्निरक्रमीदसदं मातरं पुर ॄ । पितरञ्च प्रयन् त् स्वंः ॥३-६॥ द्वितीयतृतीयपङ्क्तितः- १ दुग्धम्-ॐ पयः पृथिव्यां० १ शुद्धोदकम्-ॐ वरुणस्योत्तम्भन० । २ दधि-ॐ दधि क्राव्णो० २ शुद्धोदकम्-ॐ सं ते॒ पयां॑ꣳसि समु॑यन्तु॒ वाजा॒ ॄ सं वृष्ण्या॑न्यभिमाति॒षाहः॑ ॄ । आ॒प्याय॑मानो अ॒मृता॑य सोम दि॒वि श्रवा॑ꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥१२-११३॥ ३ घृतम्-ॐ घृतं मिमिक्षे० । ३ शुद्धोदकम्-ॐ आप्यायस्व मदिन्तम॒ सोम॒ विश्वे॑भिरꣳ ꣳशुभिः ꣳ । भवा न ॄ स॒प्रथ॑स्तम ॄ सखा॑ वृधे ॥१२-११४॥ ४ मधु-ॐ मधुव्वाता० । ४ शुद्धोदकम्-ॐ तत्त्वायामि० ॥ ५ शर्करा-अपाꣳरस० । ५ शुद्धोदकम्-ॐ अ॒प्स्वग्ने॒ सधि॒ष्टव सौष॑धीरनु॑ रुध्यसे । गर्भे॒ सञ्जा॑यसे पुनः॑ ॄ ॥१२-३६॥ चतुर्थपङ्क्तौ-१ फलम्-ॐ याः फलिनीर्य्या० २ रत्नोदकम्-ॐ परिवाजपतिः० ३ वृषशृङ्गोदकम्-ॐ आशुः शिशानो० । ४ सप्तधान्यम्-ॐ धान्यमसि० ५ तीर्थोदकम् - ॐ ये तीर्त्थानि० ६ गन्धोदकम्-ॐ गन्धद्वारां० ॥

ततोऽष्टदिक्कलशैः पूर्वादिक्रमेण-१ क्षारोदकम् कयानश्चित्र० । २ क्षीरोदकम्-ॐ आप्यायस्व० । ३ दध्युदकम्-ॐ दधिक्राव्णो० । ४ घृतोदकम्-ॐ घृ॒तव॑ती॒ भुव॑नानामभि॒ श्रियो॒र्वी पृ॒थ्वी म॑धु॒दुघे॑ सु॒पेश॑सा । द्यावा॑ पृथि॒वी व्वरु॑णस्य॒ धर्म्म॑णा॒ विष्क॑भिते अ॒जरे॒ भूरि॑रेतसा ॥३४-४५॥ ५ इक्षुरसोदकम्-ॐ अपाꣳरस० ॥ ६ सुरोदकम्-ॐ सु॒रावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं य॒ज्ञꣳ हिन्वन्ति महि॒षा नमो॑भिः । दधा॑ना ॄ सोमं॑ दि॒वि दे॒वता॑सु॒ मदे॒मेन्द्रं॒ यज॑माना ॄ स्व॒र्का ॄ ॥१९-३२॥ ७ स्वादूदकम्-ॐ स्वादिष्ठया॒ मदि॑ष्ठया॒ पव॑स्व॒ सोम॒ धार॑या । इन्द्रा॑य॒ पात॑वे सु॒त ॄ ॥२६-२५॥ ८ गर्भोदकम्-ॐ सर॑स्वती॒ योन्यां॒ गर्भ॑म॒न्तर॒श्विभ्यां॒ पत्नी॒ सुकृ॑तं बिभर्ति । अपाꣳरसे॑न॒ वरु॑णो॒ न साम्नेन्द्रꣳ श्रि॒यै ज॒नय॑न्न॒प्सु राजा॑ ॥१९-९४॥ एवं त्रिशत् कलशैः शिलाः संस्नाप्य सर्वतीर्थजलेन ॐ ये तीर्थानि० ॐ इमं मे वरुण० ॐ द्यौ शान्तिः० ॐ सर्वेषां वा एष० । इति संस्नाप्य वस्त्रेण सम्मार्ज्य नन्दादिषु क्रमेण ॐ त्रातारमिन्द्र० इत्याद्यष्ट दिक्पालमन्त्रैर्दिक्पालदेवान् कूर्मशिलायां प्रधानदेवञ्चावाह्य ॐ नन्दादिभ्यो नमः इति पूजयेत् ॥ कलशेभ्यः किञ्चिज्जलं पात्रान्तरेऽवशेषयेत् ।

शिलास्थापनम् ।

प्रासादगर्भगृहगर्ते ईशानाद्यष्टकोणेषु मध्ये च वितस्तिमानान् कलशनिधानयोग्यान् नव गर्तान् विधाय व्रीहिभिरक्षतैर्वा ईशानशिरस्कं निर्ऋतिपादकं वायव्याग्नेययोर्बाहुकूर्परकं हृदयाञ्जलिं वास्तुपुरुषं विरचयेत् । प्रोक्षणीपात्रस्थसंस्रवशेषभागं स्नपनकलशशिष्टं वा जलं कलशे प्रक्षिप्य दर्भैः शिलाप्रोक्षणम्- १ ॐ आब्रह्मन्० २ भद्रंकर्णेभिः ॐ जातवेदसे० (अम्बे अम्बिके०) ४ यमाय त्वा० ५ पूर्णादर्वि० एभिर्मन्त्रैः शिलाः प्रोक्षेत् । भद्रसूक्तेन वारुणमन्त्रैश्च पूर्वादिगर्तेषु मध्ये च कलशेन जलं प्रक्षिप्य गन्धपुष्पाक्षतैः सम्पूज्य दधिदूर्वासर्षप हरिद्रागन्धपुष्पफल पञ्चरत्न हिरण्यमुद्रासहितान् साच्छादनान् नव कलशान् गर्तेषु ॐ मनोजूति० इति निधाय ईशानकलशे वास्तुमूर्तिनागञ्च संस्थाप्य शिल्पिद्वारा लेपेन समं कृत्वा तत्राधारशिलाः संस्थाप्य तदुपरि पूर्वादिक्रमेण वज्र-शक्ति-दण्ड-खड्ग-पाश-अङ्कुश-गदा-त्रिशूल चिह्निता अष्टशिला मध्ये कूर्मशिलाञ्च शान्तिमन्त्रान् पठन्तः स्थापयेयुः । शिल्पिद्वारा लेपादिना समसूत्रेषु स्थिरीकुर्यात् । यजमानो हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा १ पूर्वे-नन्दायै नमः-इन्द्राय नमः । आग्नेये-२ अजितायै नमः-अग्नये नमः । दक्षिणे-३ भद्रायै नमः- यमाय नमः । नैर्ऋत्ये-४ अपराजितायै नमः - निर्ऋतये नमः । पश्चिमे-जयायै नमः-वरुणाय नमः । वायव्ये-६ शुक्रायै नमः - वायवे नमः । उत्तरे-७ पूर्णायै नमः- सोमाय नमः । ईशाने-८ सौभागिन्यै नमः- ईशानाय नमः । मध्ये-९ कूर्माय नमः- प्रासाद (अमुक) देवतायै नमः - इत्यावाह्य प्रतिष्ठाप्य ॐ नन्दादिभ्यो नमः - इति संपूज्य शिलासु तत्तद्दिक्पालवर्णानि पूर्वोक्तानि वस्त्राण्याच्छादयेत् । प्रतिशिलं सदीपान् माषभक्तपायसबलीन् निधाय ॐ नन्दादिदेवताभ्यो नमः इमान् बलीन् समर्पयामि-इति जलं समर्प्य-भो भो नन्दादिदेवताः इमं० कुरुत । आयुः कर्त्र्यः० वरदा भवत । अनेन बलिदानेन नन्दादिदेवताः प्रीयन्ताम् ।

ततः प्रार्थयेत् १ ॐ नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम् । मन्दिरे त्विह संतिष्ठ यावचन्द्रार्कतारकम् ॥१॥ आयुः कामं श्रियं देहि देववासिनी नन्दिनि । अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या मन्दिरे यत्नतः सदा ॥२॥ भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि । आयुर्दा कामदा देवि सुखदा त्वं सदा भव ॥ त्वामत्र स्थापयाम्यद्य प्रासादे (गृहेऽस्मिन्) भद्रदायिनि ॥२॥ ३ गर्गगोत्रसमुद्भूतां त्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम् । प्रासादे स्थापयाम्यद्य जयां चारुविलोचनाम् ॥ नित्यं जयाय भूत्यै च स्वामिनो भव भार्गवि ॥३॥ ४ (रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्नि सिद्धिभुक्तिप्रदे शुभे । सर्वदा सर्वदोषघ्नि तिष्ठास्मिंस्तत्र नन्दिनि ॥४॥ ५ पूर्णेत्वं सर्वदा पूर्णान् लोककामांश्च काश्यपि । आयुर्दा कामदा देवि धनदा सुतदा तथा ॥१॥ गृहाधारावास्तुमयी वास्तुदेवेन संयुता । त्वामृते नास्ति जगतामाधारश्च जगत्प्रिये ॥२॥ ततः सर्वाः प्रार्थयेत्-यावचन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत् त्वयाऽत्र देवेशि स्थातव्यं हितकाम्यया ॥

ततो मण्डपमागत्य लक्ष्मीहोमः । अग्निपूजनम् । स्थापितदेवतापूजनम् । स्विष्टकृद् । नवाहुतयः । बलिदानम् । पूर्णाहुतिः । वसोर्धारा । भस्मधारणम् । आहुति संकल्पः । संस्रव प्राशनादि प्रणीता

विमोकान्तम् । नीराजनादिक्षमापनान्तम् । विश्वकर्मादीनां पूजनम् । दानसंकल्पाः । दक्षिणादानम् । आशीर्वादः । अग्निस्थापितदेवताविसर्जनम् । कर्मसमाप्तिः । शिल्पिद्वारा स्थापितशिलानां इष्टकापाषाणसिकतालेपादिना स्थिरीकरणं समत्वञ्च सम्पादयेत् । शिलावस्त्राणां शिल्पिने दानम् ॥ इति शिलास्थापनप्रयोगः ॥

४ संक्षिप्तः पूर्वोत्तराङ्गसहितसर्वप्रायश्चित्तप्रयोगः ।

(धर्मकर्मसु पापक्षयपूर्वकमधिकारासिद्ध्यर्थमातुरावस्थायाञ्च सञ्चितपापक्षयपूर्वकमुत्तमलोकप्राप्त्यर्थं पूर्वाङ्गोत्तराङ्गसहितं सर्वप्रायश्चित्तं क्रियते । तत्र वापीकूपतडागारामदेवतायतनप्रतिष्ठादिपूर्त्तकर्मसु प्रायशोऽनेकजनैः साहित्यद्रव्यश्रमधनदानादिना निर्माणस्य दृष्टत्वात् प्रासादादीनाञ्च सार्वजनीनत्वाद्यथांशं दातॄणां फलभोक्तृत्वादनेकेषां यजमानानां प्रायश्चित्तकरणस्यानौचित्यात् कश्चिदधिकारिणं द्विजं प्रतिनिधित्वेन वृत्वा द्रव्योत्सर्गं कृत्वा प्रतिनिधिद्वारा समग्रं प्रतिष्ठादिकर्म सम्पाद्यते । तेन प्रतिनिधिना चावश्यं प्रायश्चित्तं कार्यम् । प्रतिष्ठाप्रारम्भदिनात् पूर्वं शुभेऽह्नि रिक्तायां वा तिथौ पूर्वोत्तराङ्गसहितः समग्रः प्रायश्चित्तविधिः प्रतिनिधिना सम्पाद्यः । तथाकरणाशक्तौ प्रतिष्ठारम्भदिने प्रातः संक्षिप्तः सर्वप्रायश्चित्तप्रयोगः कार्यः । एतावतोऽप्यसंभवे यथाशक्ति प्राजापत्यप्रत्याम्नायरूपरजतनिष्करूप-द्रव्यदानसंकल्पं कुर्यात् । अभ्युदयार्थे प्रायश्चित्ते वपनाभावः । समग्रः प्रयोगोऽन्यत्र द्रष्टव्यः ।)

भस्मधारणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । संकल्पः- विष्णु० समस्तग्रामजनभक्तजन प्रतिनिधिभूतः सपत्नीको यजमानोऽहम् समस्तभक्तजनानां कल्याणाय प्रासादे प्रतिमासु च सूर्याचन्द्रमसौ यावद् देवकलासान्निध्यहेतवे करिष्यमाण (द्वि-त्रि-पञ्च-सप्त) दिनसाध्यसग्रहमखसप्रासादाचलप्रतिष्ठाकर्मणि, मम सपत्नीकस्य, अनेकजन्मार्जितमहापातकव्य-तिरिक्तकायिकादिपातकनिवृत्तिपूर्वकम्, देहमनोविशुद्धिपूर्वकम्, अधिकारसिद्ध्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पूर्वोत्तराङ्गसहितं सर्वप्रायश्चित्तमहं करिष्ये । तत्रादौ विष्णुस्मरणं करिष्ये । ॐ इदं विष्णु० पापघ्ने महाविष्णवे नमः नमस्करोमि । (सम्भवे-मृत्तिका-गोमय-गोमूत्र-भस्म-गोरज :- धान्य-फल-हिरण्य-सर्वोषधी-गङ्गोदकस्नानानि मन्त्रैः कुर्यात्, तदन्ते स्नानं द्वादश गण्डूषान् वा कृत्वा ।) विदुषो वेद धर्मज्ञान् प्रार्थयेत् - मम पातकनिरासार्थमनुग्रहं कृत्वा प्रायश्चित्तमुपदिशन्तु भवन्तः- इति तान् संपूज्य संतोषयेत् । विद्वांसो द्रव्यशक्तिं विचार्य सार्धाब्द-४५ त्र्यब्द-९० षडब्द-१८० गावः, एतदन्यतमं पक्षं निश्चित्यानुवादकद्वारा प्रायश्चित्तोपदेशवाक्यं यजमानाय श्रावयेत् ।) अनुवादकः- अमुकाब्द सर्वप्रायश्चित्तेन पूर्वोत्तराङ्गसहितेन आचीर्णेन तव शुद्धिर्भविष्यति, तेन त्वं कृतार्थो भविष्यसि - इति त्रिवारमुपदिशेत् । यजमानः - ओम् - इति स्वीकृत्य पञ्चगव्यं मन्त्रैः संपादयेत् । संकल्पः - व्याहृतिहोमसिद्ध्यर्थं मनः संकल्पितं घृतं आचार्याय दास्ये । पञ्चगव्यमादाय-यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके । प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनम् -ॐ इति प्रणवेन प्राश्य आचम्य ।

सं० पूर्वाङ्गगोमिथुनद्रव्यं दास्ये । पूर्वाङ्गविष्णुश्राद्धप्रत्याम्नायभूतं द्रव्यं दास्ये । प्रायश्चित्ताय निश्चितं द्रव्यं गन्धपुष्पाक्षततुलसीदलसहितं पात्रे निधाय-सं० अमुकस्य मम महापातकव्यतिरिक्तसमस्त पातकनिरसनपूर्वकं देहमनोविशुद्धिपूर्वकं जनपदश्रेयसे करिष्यमाणसप्रासाद सग्रहमखप्रतिष्ठाकर्मणि अधिकारसिद्ध्यर्थं अमुकाब्दसर्वप्रायश्चित्तस्य प्राजापत्यप्रत्याम्नायरूपव्यावहारिकरजतनिष्कद्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दातुमहमुत्सृज्ये इति द्रव्यस्योपरि जलं क्षिपेत् । सं० उत्तराङ्गव्याहृतिहोम सिद्ध्यर्थं मनःसंकल्पितं घृतमाचार्याय दास्ये । सं० उत्तराङ्गगोमिथुनद्रव्यं दास्ये । उत्तराङ्गविष्णु श्राद्धप्रत्याम्नायभूतं द्रव्यं दास्ये । यथाशक्ति विहितदाननिष्क्रयीभूतं द्रव्यं दास्ये ॥ यजमानः - ॐ यद्ग्रामे० यद्देवा देवहेडनं० यदि दिवा यदि नक्त० यदि जाग्रद्यदि स्वप्न० मुञ्चन्तु ह इसः ॥४॥ गावो ममा० मम पापं व्यपोहतु ॥ इति मन्त्रान् पठेत् ।

सं० अनेन पूर्वोत्तराङ्ग सर्वप्रायश्चित्तेन मम (सपत्नीकस्य) समस्तपातकनिवृत्तिपूर्वकं करिष्यमाणकर्मणि अधिकारसिद्धिरस्तु । अनेन प्रायश्चित्तेन पापापहा महाविष्णुः प्रीयताम् । विष्णवे नमो० ३ नमः । (ततः स्नात्वा वा द्वादश गण्डूषान् कृत्वाऽऽत्मानं प्रोक्ष्य जलं निष्कासयेत् ।

एतावत्करणस्याप्यसंभवे-सं० मम सपत्नीकस्य पातकनिवृत्तये करिष्यमाणकर्मणि अधिकारार्थं पञ्चदश १५ प्राजापत्यानि रजतगोनिष्कप्रत्याम्नायभूतव्यावहारिकद्रव्यद्वारा आचरामि । एतावद्द्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दास्ये । तेन करिष्यमाणकर्मणि अधिकारसिद्धिरस्तु । उदकोपस्पर्शः । इति सर्वप्रायश्चित्तविधिः ।

९　प्रतिनिधिवरणम् । द्रव्योत्सर्गः ।

(प्रतिष्ठादिकर्मणां पूर्तकर्मत्वादनेकदातृसमालम्बितत्वात् सार्वजनीनत्वाच्च सर्वेषां दातॄणां सममेव प्रधानकर्मसम्पादनस्य शास्त्रविरुद्धत्वात् पूर्तकमलाकरप्रतिष्ठापद्धतिकल्पलताद्यनेकग्रन्थसम्मतत्वात् कर्मसौकर्याय सदाचारकर्मनिष्ठद्विजरूपप्रतिनिधिवरणमावश्यकम् ॥ एक एव दाता प्रासादप्रतिमादिसम्पादक उपनीतो द्विजश्चेत् प्रतिनिधिवरणमनावश्यकम् । लोकसङ्ग्रहाय सर्वानधिकारिणो दातॄन् उपावेश्य प्रतिनिधिवरणं द्रव्योत्सर्गञ्च कारयेत् ।)

सर्वान् यजमानानुपावेश्य- तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । शान्तिपाठः देवतानमस्कारादि । संकल्पः, अद्य० अहं मम सकुटुम्बस्य अस्मिन् देशे वसतां द्विपदां चतुष्पदाञ्च कर्मजन्य सकलदुःखदारिद्र्यदौर्भाग्य ग्रहपीडा दुर्निमित्तोपशमनपूर्वकं सकलसुखसौभाग्यलक्ष्मीवंशाभिवृद्धि सदभीष्ट सिद्ध्यर्थं प्रासादनिर्माणप्रतिमादिसंपादनकर्मणि साहाय्यकर्तॄणां समस्तपूर्वजानां उद्धारपूर्वकं प्रासादप्रतिमाणुसंख्याकवर्षाणि यावद् ब्रह्मलोक (गोलोक-रुद्रलोक वैकुण्ठ) निवास हेतवे सूर्याचन्द्रमसौ यावत् प्रासादे प्रतिमासु च देवकलासान्निध्यहेतवे सग्रहमखसप्रासाद (अमुक दिनसाध्य-अचल प्रतिष्ठाकर्म सम्पादयितुं प्रतिनिधिवरणं द्रव्योत्सर्गं च करिष्ये । तत्रादौ आसनविधिं दिग्रक्षणं कलशार्चनं दीपपूजनं

गणपतिपूजनं (प्रैषात्मकपुण्याहवाचनं) च करिष्ये । आसनविध्यादि गणपतिपूजनान्तं कृत्वा । (सति काले प्रैषात्मकपुण्याहवाचनं कृत्वा ।) सं० अस्माकं सर्वेषां भक्तजनानां देशजनानाञ्च कल्याणाय प्रतिष्ठाकर्म सम्पादयितुं अमुकप्रवरान्वितामुकगोत्रोत्पन्नं अमुकवेदान्तर्गतममुकशाखाध्यायिनं अमुकशर्माणं (सपत्नीक) ब्राह्मणं अस्मत्प्रतिनिधित्वेन त्वामहं वृणे इति साक्षतजलपूगीफलं प्रतिनिधिहस्ते दद्यात् । प्रतिनिधिः - वृतोऽस्मि-इति ब्रूयात् । प्रतिनिधिहस्ते कङ्कणबन्धनं पूजनञ्च कुर्यात् ।

ततो यजमानाः पात्रे शताधिकं सहस्राधिकं वा द्रव्यं निधाय तदुपरि गन्धपुष्पाक्षततुलसीदलानि निधाय-सं-समस्तग्रामजनभक्तजनदेशजनहिताय प्रतिष्ठाकर्म संपादयितुं एतावदपेक्षितमधिकमपेक्षिष्यमाणञ्च द्रव्यं दातुं प्रतिजानीमहे-इत्युक्त्वा प्रतिनिधिहस्ते जलं दद्यात् । द्रव्यपात्रं स्पृष्ट्वा प्रतिनिधिहस्ते दद्यात् । प्रतिनिधिः - ओम्-इति स्वीकुर्यात् । आशीर्वादादि । यज० अनेन प्रतिनिधिवरणेन द्रव्योत्सर्गकर्मणा च भगवान् परमेश्वरः प्रीयताम् । न मम । (प्रतिनिधिः द्रव्यं संरक्षेत् । ततः सर्वप्रायश्चित्तमुपर्युक्तं कृत्वा प्रधानकर्मारभेत ।) इति प्रतिनिधिवरण-द्रव्योत्सर्गविधिः ।

६ प्रधानकर्मारम्भः ।

यथोक्तमण्डपे मण्डपाद् दक्षिणतः पश्चादुत्तरतो वा बहिः, छायामण्डपे तु मण्डपाभ्यन्तरतः कृतप्रायश्चित्तः सुस्नातः परिहिताहतवासाः सोत्तरीयः कृतनिर्णेजनान्तनित्यक्रियः कर्ता स्वासने दक्षिणतः पत्न्या सह प्राङ्मुख उपविशेत् ।

तिलककरणम्-स्वस्तिस्तु या० मन्त्रार्थाः सफलाः० (ऋ० परि०) ॐ यशस्करं बलवन्तं प्रभुत्वं तमेव राजाधिपतिर्बभूव । संकीर्णनागाश्वपतिर्नराणां सुमङ्गल्यं सततं दीर्घमायुः ॥ (कृ० यजु०) ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः । स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः । स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ (शु० यजु०) ॐ स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवा ६ स्वस्ति नः पूषा व्विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति बृहस्पतिर्दधातु ॥१९/२५॥ (साम०) स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्तिनो नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ (अथर्व०) ॐ स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः । विश्वंसुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगे व दृशेम सूर्यम् ॥१-६-३१-४॥ निर्विघ्नमस्तु ॥ शिखाबन्धनम्-ऊर्ध्वकेशि विरुपाक्षि मांसशोणित भोजने । तिष्ठ देवि शिखाबन्धे चामुण्डे चापराजिते ॥ ॐ मानस्तोके० सदमित्त्वा हवामहे ॥ यजमानदक्षिणहस्ते पत्न्या वामहस्ते रक्तसूत्र (कङ्कण) बन्धनम्-जीवेद्वर्षशतं० यावद्भूमण्डलं० ॐ यदा बध्नन् दाक्षायणा हिरण्य ६ शतानीकाय सुमनस्यमानाः । तन्मऽआबध्नामि शतशारदाया युष्मान्जरदष्टिर्यथासम् ॥३४/५२॥ कर्मारम्भे त्रिराचमनम्-१ ॐ भूः स्वाहा-ऋग्वेदं प्रीणामि । २ ॐ भुवः स्वाहा यजुर्वेदं प्रीणामि । ३ ॐ स्वः स्वाहा सामवेदं प्रीणामि । हस्तप्रक्षालनम् - ॐ भूर्भुवः स्वर्नमः - अथर्ववेदेतिहासपुराणादीनि प्रीणामि । पुनराचमनम् - १ ॐ केशवाय नमः स्वाहा । २

ॐ नारायणाय नमः स्वाहा । ३ ॐ माधवाय नमः स्वाहा । हस्तप्रक्षालनम् - ४ ॐ गोविन्दाय नमः । ५ ॐ विष्णवे० ६ ॐ मधुसूदनाय० ७ ॐ त्रिविक्रमाय० ८ ॐ वामनाय० ९ ॐ श्रीधराय० १० ॐ हृषीकेशाय० ११ ॐ पद्मनाभाय० १२ ॐ दामोदराय० १३ ॐ संकर्षणाय० १४ ॐ वासुदेवाय० १५ ॐ प्रद्युम्नाय० १६ ॐ अनिरुद्धाय० १७ ॐ पुरुषोत्तमाय० १८ ॐ अधोक्षजाय० १९ ॐ नारसिंहाय० २० ॐ अच्युताय० २१ ॐ जनार्दनाय० २२ ॐ उपेन्द्राय० २३ ॐ हरये० २४ ॐ श्रीकृष्णाय नमः - इति सर्वाङ्गानि प्रोक्षेत् ॥ प्राणायामाः - (सर्वत्र विनियोगेषु वाक्योच्चारणम्, जलग्रहणमाचारात् - (ह्रीं नमो भगवते वासुदेवाय-९ वारम्) प्रणवपूर्वकद्वादशाक्षरीमहामन्त्रस्य परब्रह्मऋषिः परमात्मा देवता दैवी गायत्री छन्दः, सप्तानां व्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्नि भरद्वाजगौतमात्रिवसिष्ठकश्यपा ऋषयः, अग्निवायुसूर्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहतीपङ्क्ति त्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि, तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्रऋषिः, सविता देवता गायत्री छन्दः आपोज्योतिरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः ब्रह्माग्नि वायुसूर्या देवताः, यजुश्छन्दः, सर्वेषां प्राणायामे विनियोगः । आत्मनः समन्तात्प्रदक्षिणवदुदकक्षेपणम्- ॐ नमो भगवते वासुदेवाय-ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् । ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥ (इति पूरकं त्रिः, कुम्भकं चतुर्वारम्, रेचकं त्रिः)

पवित्रधारणम्-अपवित्रः पवित्रो० ॐ पवित्रे स्थो० तच्छकेयम् ।

७ शान्तिपाठः ।

ऋग्वेदे-ॐ स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः । स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना ॥५-५१-११॥ स्वस्तये वायुमुप ब्रवा महै सोमं स्वस्ति द्यावा भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२॥ विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये । देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्तिनो रुद्रः पात्वंहसः ॥१३॥ स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति । स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्तिनो अदिते कृधि ॥१४॥ स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥५-५१-१५॥ स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमिं महद्भूतं वायसं देवतानाम् । असुरघ्नमिन्द्र सखं समत्सु बृहद्यशो नाव मिवारुहेम ॥ (ऋ-परि०) अंहोमुचमाङ्गिरसं गयं च स्वस्त्यात्रियं मनसा च तार्क्ष्यम् । प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये स्वस्ति संबाधेष्वभयं नो अस्तु ॥ (ऋ० परि०) ॥७॥ (आनोभद्रा० जनित्वम्-१-८९-१ तः १०॥ शन्न इन्द्राग्नी० सदानः- ७-३५-१ तः १५) कृ० यजु० शान्तिपाठः- ॐ शतायुधाय शतवीर्याय शतोतयेऽभिमातिषाहे । शतं योनः शरदो अजीतानिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा ॥५-७-२/१॥ ये चत्वारः पथयोदेवयानां अन्तरा द्यावा पृथिवी वियन्ति । तेषां यो अज्यानिमजीतिमावहान् तस्मैनो देवाः परिदत्तेह सर्वे ॥२॥ ग्रीष्मो

हैमन्त उत नो वसन्तः शरद्वर्षः सुवितं नो अस्तु । तेषामृतूनाꣳशतशारदानां निवात एषामभये स्याम ॥३॥ इदुवत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः । तेषां वयꣳसुमतौ यज्ञियानां ज्योग जीता अहताः स्याम ॥४॥ भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वयाऽवसेन समशीमहि त्वा । सनो मयोभूः पितो आविशस्व शंतोकाय तनुवे स्योनः ॥५॥ ५-७-२-१ तः ॥५॥ शुक्लयजुर्वेदे शान्तिपाठः - ॐ आनो भद्रा ॒ क्रतवो यन्तु व्विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतासऽउद्भिदः । देवानो यथा सदमिद् वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥१४/२५॥ देवानाम्भद्रा सुमतिर्ऋजूयतान्देवानाꣳरातिरभिनो निवर्त्तताम् । देवानाꣳसख्यमुपसेदिमाव्वयन्देवानऽआयु ॒ प्रतिरन्तु जीवसे ॥१५/२५॥ तान्पूर्वया निविदाहूमहे व्वयम्भगम्मित्रमदितिन्दक्षमस्रिधम् । अर्य्यमणंव्वरुण ॒ सोममश्विना सरस्वतीन ॒ सुभगा मयस्करत् ॥१६/२५॥ तन्नो व्वातो मयोभुव्वातु भेषजन्तन्माता पृथिवी तत्पिताद्यौः । तद्ग्रावाण ॒ सोमसुतो मयोभुवस्त दश्विना शृणुतन्धिष्ण्या युवम् ॥१७/२५॥ तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिन्धियञ्जिन्वमवसे हूमहे व्वयम् ॥ पूषा नो यथा व्वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्ध ॒ स्वस्तये ॥१८/२५॥ स्वस्तिनऽइन्द्रो वृद्धश्रवा ॒ स्वस्ति नः पूषा व्विश्ववेदा ॒ । स्वस्ति न स्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमि ॒ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१९/२५॥ पृषदश्वा मरुत ॒ पृश्निमातर ॒ शुभंय्यावानो व्विदथेषु जग्मय ॒ । अग्निजिह्वा मनव ॒ सूरं चक्षसो व्विश्वेनो देवाऽअवसागमन्निह ॥२०/२५॥ भद्रङ्कर्णेभि ॒ शृणुयाम देवा भद्र म्पश्येमाक्षभिर्य्यजत्रा ॒ । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं य्यदायुः ॥२१/२५॥ शतमिन्नु शरदोऽअन्ति देवा यत्रानश्चक्रा जरसन्तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मद्ध्यारीरिषतायुर्गन्तो ॒ ॥२२/२५॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता सपिता स पुत्र ॒ । विश्वेदेवाऽअदिति ॒ पञ्चजनाऽ-अदितिर्ज्जातमदितिर्जनित्वम् ॥२३/२५॥ द्यौ ॒ शान्तिरन्तरिक्ष ॒ शान्ति ॒ पृथिवी शान्तिराप ॒ शान्तिरोषधय ॒ शान्तिः । व्वनस्पतय ॒ शान्ति र्व्विश्वे देवा ॒ शान्ति र्ब्रह्मशान्ति ॒ सर्व्वं ॒ शान्ति ॒ शान्तिरेव शान्ति ॒ सा मा शान्तिरेधि ॥१७/३६। यतो यत ॒ समीहसे ततो नोऽअभयङ्कुरु । शन्नः कुरुप्रजाभ्योऽभयन्नःपशुभ्यः ॥२२/३६॥ (इन्द्रो व्विश्वस्य० रभिस्रवन्तु नः ॥अ-३६ मं-८ तः १२ । द्यौ शान्ति० शरदः शतात् ॥अ-३६ म-१७ तः २४॥ यज्जाग्रतो० सङ्कल्पमस्तु-अ-३४ मं-१ तः६ ॥)

५र ५र १११ २२१३ ५२३२२

सामवेदे शान्तिपाठः- ॐ त्य मूषु । वाजि । ना ३४५ म् । देवजूताम् । सहोवानन्ना ।

२ २ ३४५ २ १ ५ ५ २ ३१५ २ १ २ १ ३२

सता ३ । रꣳरथानाम् । अरिष्टना २३४ इमीम् । पृतना ३४३ ज माशुम् । स्वस्त । या २ । तार्क्ष्यमीहा

२ ४ १ १ १११ ६ ५ ४ ४२

३४३ । हू २ वा ५ इमा ६५६ हा २३४५ ह य इ मा

२२१२ ७ ५ १ २ २ ७ २ १

त्रातारमिन्द्रमविता । रमी २३ न्द्राम् । हवे हवे सुहवꣳशू । रमी २ इन्द्राम् । हुवा इ नु शक्रं

७ २ २१ २ २र २ १र २ २ ४
पुरु हू । तमी २३ न्द्राम् । इद९स्वस्तिनो मघवा । वा ३४३ इ । तू ३ वा ५ इन्द्रा ६५६ : ॥

१ २ ३२३१२३ १ २ ३१२ २३ ३ १ २
शन्नो देवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये । शं यो रभिस्रवन्तु नः ॥

३ २ ३ १ २ ३१२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ ५ ३ ५ ३ १ ५ ३ ५ ३
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो
२ ३ १ २
बृहस्पतिर्दधातु ॥१८७५॥

अथर्ववेदे शान्तिपाठः - ॐ शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व १ न्तरिक्षम् । शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥१॥ शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् । शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥२॥ इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता । ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥३॥ इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् । येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥४॥ इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि । यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥५॥

शन्नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः । शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो भवत्वर्यमा ॥६॥ शन्नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः । उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शंनो दिविचरा ग्रहाः ॥७॥ शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् । शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरवतीर्यतीः ॥८॥ नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः । शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥९॥ शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा । शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥१०॥ शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः । शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥११॥ ब्रह्म प्रजापति र्धाता लोका वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः । तैर्मेकृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु । विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२॥ यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः । सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥१३॥

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति र्द्यौः शान्तिरापः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः । ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः शमयामो ह यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥१४॥ का-१९ सू. ९ म-९ तः १४ ॥

(ॐ शन्न इन्द्राग्नी० क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ का-१९ सू. १० म-१ तः १० ॥ शन्नः सत्यस्य पतयो० बृहते सादनाय ॥ का-१९ सू. ११ म-१ तः ६ ॥) शान्तिः शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु ॥

देवब्राह्मणनमस्काराः - साक्षतपूगीफलहिरण्यं ताम्बूलं धृत्वा प्रधानदेवतां स्मरेत् (ॐ.जन्माद्यस्य० वेदानुद्धरते० यं ब्रह्मा०) इदं विष्णु० श्रीश्चते० नमः शम्भवाय० अम्बे अम्बिके० सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमो नमः । पुनरादाय - ब्रह्मानन्दं० नमो गुरुभ्यो० समस्तसंपत्० ॐ ब्राह्मणोऽस्य० ॐ उपह्वरे गिरीणा ५ँ सङ्गमे च नदीनाम् । धिया व्विप्रोऽअजायत ॥ ॥ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमो नमः ।

देवतानमस्काराः - ॐ श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । लक्ष्मीनारायणाभ्यां० । उमामहेश्वराभ्यां० । वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां० ॥ शचीपुरन्दराभ्यां० । मातापितृचरणकमलेभ्यो० । इष्टदेवताभ्यो० । कुलदेवताभ्यो० । ग्रामदेवताभ्यो० । स्थानदेवताभ्यो० । वास्तुदेवताभ्यो० । गुरुभ्यो० । एतत् कर्मप्रधानदेवताभ्यो नमः । ॐ पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु । पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु ।

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः । लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो गणाधिपः ॥१॥ धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः । द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥२॥ विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा । संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥३॥ शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥४॥ लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः । येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥५॥ अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः । सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥७॥ सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् । येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः ॥८॥ तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव । विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि ॥९॥ यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्री र्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥१०॥ सर्वेष्वारब्धकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः । देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥११॥ विनायकं गुरुं भानुं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । सरस्वतीं प्रणौम्यादौ सर्वकामार्थ सिद्धये ॥१२॥ (द्वादश श्लोका गर्गसंहितोक्ताः) (आपदामप० विश्वेशं माधवं०)

८ प्रधानसंकल्पः

हस्ते साक्षतं जलमादाय - विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः - (श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे अह्नो द्वितीये यामे श्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भूर्लोके भारतवर्षे भरतखण्डे जम्बूद्वीपे अमुकारण्यैकदेशे अमुकक्षेत्रे अमुकनद्याः उत्तरे तीरे अमुकनद्याः दक्षिणे तटे शालिवाहनशके बौद्धावतारे अस्मिन् वर्तमाने अमुकनामके संवत्सरे अमुकायनगते मार्तण्डमण्डले अमुक ऋतौ शुभकारिणि अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकदिवसनक्षत्रे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथं राशिस्थानस्थितेषु सत्सु, एवं गुणगणविशेषेण विशिष्टे अस्मिन् पुण्याहे, अमुकप्रवरान्वित अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकवेदान्तर्गत अमुकशाखाध्यायी, (समस्तग्रामजनभक्तजनदेशजनप्रतिनिधिभूतः अमुकशर्मा (वर्मा, गुप्तः,) सपत्नीकः अहं, मम सकुटुम्बस्य

सपरिवारस्य श्रुतिस्मृतिपुराणतन्त्रागमोक्त सत्कर्मजन्य पुण्यफलप्राप्त्यर्थं, अस्मिन् ग्रामे नगरे देशे च वसतां सर्वेषां भक्तजनानां, मम च नानाविधकर्मविपाकजन्य-आधिदैविक-आधिभौतिक-आध्यात्मिकतापरोग-उपद्रव-दुख-दारिद्र-दौर्भाग्य-अतिवृष्टि-अनावृष्टि शलभ-शुक-मूषक-अग्न्यादि-ईतिभयनिवृत्तिपूर्वकं सर्वेषां क्षेमसुभिक्षकल्याणदीर्घायुरारोग्य-विपुल लक्ष्मी-कीर्ति-पुत्र-पौत्रादि-अनवच्छिन्नवंशाभिवृद्धि-ऐहिकपारलौकिक-अभ्युदय-निःश्रेयस-पुरुषार्थचतुष्टयसंप्राप्ति-भारतीय संस्कृति सुप्रतिष्ठा हेतवे, प्रासादनिर्माण-प्रतिमासंपादनादि कर्मणि सर्वतः साहाय्यकर्तृणां भक्तानां पूर्वजानाम् उद्धारपूर्वकं प्रासादप्रतिमा अणु-संख्याकवर्षाणि यावद् अमुकलोकनिवास हेतवे सूर्याचन्द्रमसौ यावत् प्रासादे प्रतिमासु च देवकलासान्निध्यहेतवे सच्चिदानन्दघन (सपरिवार) अमुकदेवता चरणसरोरुह-अनुग्रह प्राप्तये, नूतने प्रासादे अमुकामुकदेवता प्रतिमानां एकरात्र (त्रिरात्र-पञ्चरात्र) अधिवास पक्षाश्रयेण सग्रहमखां सप्रासादां अमुकदिनसाध्यां अचलप्रतिष्ठां स्वयं ब्राह्मणद्वारा च करिष्ये ॥

पुनर्जलमादाय- तदङ्गत्वेन निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनं मातृकापूजनं वैश्वदेवसंकल्पं वसोर्धारापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं, नान्दीश्राद्धं, ब्रह्माचार्यादृत्विग्वरणं, वृतानां मधुपर्कार्चनं, स्वस्तिपुण्याहवाचनं, वर्धिनीकलशपूजनं मण्डपपूजनं मण्डपप्रवेशं, दिग्रक्षणं पञ्चगव्यकरणं, मण्डपाङ्ग गणपतिपूजनं बल्यन्तं वास्तुपूजनं, भूम्यादिपूजनं कुण्डदेवतापूजनं पञ्चभूसंस्कार पूर्वकं अग्निस्थापनं, मण्डलदेवता प्रधानदेवतास्थापनं, ग्रहस्थापनं, योगिनी स्थापनं भैरव (क्षेत्रपाल) स्थापनं अग्नितन्त्रं, ग्रहहोमं, कुटीरहोमं जलाधिवासं, स्थापितदेवतानाञ्च सायंतनपूजनान्तं प्रथमदिनसाध्यं कर्म यथायथं करिष्ये ॥

पुनर्जलमादाय-तत्रादौ आसनविधिं दिग्रक्षणं कलशार्चनं दीपपूजनं (सूर्यपूजनं) कलशासादनं मूर्तीनामग्न्युत्तारणपूर्वकं प्राणप्रतिष्ठां च करिष्ये ॥ ततः आसनविधिं, दिग्रक्षणं, कलशार्चनं दीपपूजनं सूर्यपूजनं कलशासादनं प्रतिमाग्न्युत्तारणप्राणप्रतिष्ठां च सम्पाद्य गणपतिपूजनं कुर्यात् ।

(इदं सकलकर्मणो निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनं न कर्माङ्गभूतम्, किन्तु काम्यम्, मातृकासहितगणेशपूजनमेव कर्माङ्गम् । तत्र ऋग्वेदिनाम्, ऋद्धिबुद्धिसहित महागणपतये नमः, शुक्लयजुर्वेदिनां सिद्धिबुद्धिसहित श्रीमन्महागणाधिपतये नमः तैत्तिरीयसामवेद्यथर्ववेदिनां तु गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, इति पूजनम् । वर्तमानकाले क्रियमाणः विधिस्त्रिंशदुपचारात्मकः, तदशक्तौ षोडशोपचारात्मकः पञ्चोपचारात्मको वा कार्यः ।)

९ गणपतिपूजनम् ।

रक्तवस्त्रे गोधूममण्डले मूर्त्तौ पूगीफलेष्वक्षतपुञ्जेषु वा गणेशमावाहयेत्-पुष्पाक्षतान् गृहीत्वा स्वहृदि गणेशं सपरिवारं ध्यायेत्-श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुम गणैः पूजितं श्वेतगन्धैः, क्षीराब्धौ

रत्नदीपैः सुरनरतिलकं रत्नसिंहासनस्थम् । दोर्भिः पाशाङ्कुशेष्टाभयधृतिविशदं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम् ॥ ॐ निषुसीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् । न ऋते त्वत् क्रियते किञ्चनारे महामर्कं मघवन् चित्रमर्च ॥'(कृ० यजु०) ॐ गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपम श्रवस्तमम् । ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पतऽआनः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ (शु० यजु०) ॐ गणानान्त्वा गणपति ह हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपति ह हवामहे निधीनान्त्वा निधिपति ह हवामहे व्वसो मम । आहमजा निगर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥

२ २र ३२३ ३२ ३१ २र ३ २ ३१

(साम०) ॐ आतून इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ (अथर्व०) ॐ निर्लक्ष्म्यंऽललाम्यं ह निरराति सुवामसि । अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहित श्रीमन्महागणाधिपतये नमः सिद्धिबुद्धिसहितं श्रीमन्महागणाधिपतिं ध्यायामि । इति अक्षतपुष्पं मूर्त्तौ पूगीफलेषु वा निक्षिपेत् । तत आवाहन प्रतिष्ठादि क्षमापनान्तं पूजनं कुर्यात् । जलमादाय-अनेन सकलकर्मणो निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं कृतेन पूजनेन सिद्धिबुद्धिसहितः श्रीमन्महागणाधिपतिः प्रीयताम् । इति गणपतिपूजनम् ।

(यथोक्तमण्डपाभावे छायामण्डपकरणे अत्रावसरे स्वस्तिपुण्याहवाचनं कुर्यात् ।)

१० मातृकापूजनम् ।

(ऋग्वेदिनां गौर्यादि ब्राह्म्यादिमातॄणां पूजनम् । प्रतिष्ठातिलके-कीर्तिर्लक्ष्मी धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः । बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः कान्तिस्तुष्टिश्च मातरः ॥ इति षोडशमातॄणां प्रासादादिजलोत्सर्गे पूजनं वसोर्धारापूजनञ्च विहितम् । यत्र नान्दीश्राद्धं तत्रैव मातृकापूजनं नान्यत्र) जलमादायकर्माङ्गभूतं मातृकापूजनं करिष्ये । हस्ते पुष्पाक्षतान्-गृहीत्वा-गणानान्त्वा १ ॐ भू० गणेशाय नमः गणेशं आवाहयामि । २ आयङ्गौः (गौरीर्मिमाय० ॐ भू० गौर्यै० गौरीं० । ३ कांसोस्मिता० ॐ भू० पद्मायै० पद्माम्० । ४ अदित्यै रास्ना० ॐ भू० शच्यै० शचीम्० । ५ मेधाम्मे० ॐ भू० मेधायै० मेधाम्० । ६ ॐ उपयामगृहीतोऽसि सावित्रो० ॐ भू० सावित्र्यै० सावित्रीम्० । ७ ॐ उद्धर्षय मघवन्० ॐ भू० विजयायै० विजयां० । ८ ॐ अस्माकमिन्द्रः० ॐ भू० जयायै० जयां० । ९ ॐ इन्द्र आसान्नेता० ॐ भू० देवसेनायै० देवसेनाम्० । १० ॐ आयन्तु नः० ॐ भू० स्वधायै० स्वधाम्० । ११ ॐ सप्तस्वभागा० ॐ भू० स्वाहायै० स्वाहाम्० । १२ ॐ मातान्वते० आयङ्गौ० ॐ भू० मातृभ्यो० मातॄः० । १३ ॐ नाभ्या आसी० ॐ भू० लोकमातृभ्यो० लोकमातॄः० । १४ ॐ इहरति० ॐ भू० धृत्यै० धृतिम्० । १५ ॐ रयिश्च मे० ॐ भू० पुष्ट्यै० पुष्टिं० । १६ ॐ पितुन्न स्तोषं० ॐ भू० तुष्ट्यै० तुष्टिम्० । १७ देवीं वाचम्० ॐ भू० कुलदेवतायै० कुलदेवताम्० । ॐ मनोजूति० ॐ भू० गणेशगौर्याद्यावाहितमातरः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्त ॥

११ वैश्वदेवसंकल्पः ।

(कृतनिर्णेजनान्त वैश्वदेवस्य यजमानस्य मङ्गलकर्मण्यधिकारः, निर्णेजनानन्तरं पितृयज्ञ मनुष्ययज्ञ ब्रह्मयज्ञा अवशिष्टाः मनुष्ययज्ञस्य यति ब्रह्मचार्यतिथिभ्योऽन्नदानरूपत्वाद् तत्तद्दिनसाध्यकर्मान्ते भोजनसम्पत्तेर्मनुष्ययज्ञासम्भवः, मातृकापूजनस्य नान्दीश्राद्धाङ्गभूतत्वान्नान्दीश्राद्धस्य च मङ्गलकर्मणि विहितत्वात् 'न स्वधाभिर्दूषयेत् तम्' इति श्रुतिवचनेन देवताविसर्जनं यावत् पितृयज्ञस्य निषिद्धत्वाद् प्राग् यावन्ति दिनानि निरग्निकस्य यान्ति, तावद्दिनसंख्यया प्रात्यहिकं दधितण्डुलयवानामन्यतमं द्रव्यमाहुति चतुष्टय पर्याप्तमेकीकृत्य दीयते, तद्वदत्रापि वैश्वदेवपर्याप्त सघृत तण्डुल दानं देवकोत्थापनं यावद् वैश्वदेवाकरणजन्यप्रत्यवायपरिहाराय वैश्वदेवफलप्राप्तये च गृह्यकारिकानुरोधेन देयमिति विवेकः) संकल्पः - सघृतदक्षिणतण्डुलं पात्रमादाय अद्य० पूर्व तिथौ अमुकदिनसाध्यसग्रहमख (सप्रासाद) अचलप्रतिष्ठाकर्मणि देवकोत्थापनान्तं विहितवैश्वदेवाकरणजन्य प्रत्यवायपरिहारपूर्वकं वैश्वदेवकरणजन्यफलप्राप्तये इमान् सघृतदक्षिणाँस्तण्डुलान् तुभ्यमहं संप्रददे- इति दत्त्वा (ॐ देवकृतस्यैनसो० सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि-इति मन्त्रं पठेत् । जलमादाय-अनेन सघृतदक्षिणतण्डुलदानेन वैश्वदेवफल समृद्धिरस्तु-इति जलमुत्सृजेत ।

१२ वसोर्धारापूजनम् ।

(इदं कातीयानां छन्दोगानाञ्च विहितम्, नान्येषाम् । भित्तौ इष्टकायां ताम्बूले वा कुङ्कुमाङ्किताः सप्त पञ्च वा घृतधाराः सम्पाद्य उदक्संस्थं पूजयेत् । श्रीश्च लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा सरस्वती । माङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः ॥ (अत्र कारिकायां 'पुष्टिः श्रद्धा सरस्वती' इति पाठस्य स्थाने 'स्वाहा प्रज्ञा सरस्वती' इति पाठोऽप्युपलभ्यते । पञ्चपक्षे अन्तिमे द्वे त्याज्ये ।)

हस्तेअक्षतान् गृहीत्वा - ॐ व्वसोः पवित्रमसि शतधारं व्वसोः पवित्रमसि सहस्र धारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु व्वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥३/१॥

१ ॐ श्रीणामुदारो० ॐ भू० श्रियै नमः श्रियमावाहयामि स्थापयामि । २ ॐ श्रीश्चते० ॐ भू० लक्ष्म्यै० लक्ष्मीम्० ३ ॐ इहरति० ॐ भू० धृत्यै० धृतिम्० ४ ॐ याम्मेधां० ॐ भू० मेधायै० मेधाम्० ॐ ५ ॐ रयिश्च० ॐ पुष्ट्यै० पुष्टिम्० ६ ॐ व्रतेन दीक्षा० ॐ भू० श्रद्धायै० श्रद्धाम्० ७ ॐ पावकानः सरस्वती० ॐ भू० सरस्वत्यै० सरस्वतीम्० । ॐ मनोजूति० ॐ भू० श्र्यादिसप्तघृ-तमातरः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत ॥ ततः श्रीसूक्तेन प्रत्यृचं नाममन्त्रेण वा पूजयेत् । ॐ अनेन पूजनेन वसोर्धारासमन्वितसगणेशगौर्यादिमातरः प्रीयन्ताम् ।

१३ आयुष्यमन्त्रजपः ।

आचाराद् यजमानदक्षिणमणिबन्धे पत्न्या वामहस्ते रक्तसूत्ररूपं कङ्कणं बध्नीयात् । संकल्पः - अद्य० पू० तिथौ मम सकुटुम्बस्य समस्तभक्तजनानाञ्च सकलपीडानिवृत्तये दीर्घायुरारोग्यप्राप्तये ब्राह्मणद्वारा आयुष्यमन्त्रजपं करिष्ये । ॐ १ आयुष्यं वर्चस्य ० २ न तद्रक्षा सि० ३ यदाबध्नन्० (अ-३४-अं-५०-५१-५२) (अग्निरायुष्मान्० ८ त्र्यायुषं० दिवस्परि प्रथमं०) सं० आयुष्यमन्त्रजपकर्तृभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दास्ये । अनेन मम सकुटुम्बस्य समस्तभक्तजनानाञ्च दीर्घायुरारोग्य प्राप्तिरस्तु ॥

१४ नान्दीश्राद्धविचारः ।

(नान्दीश्राद्धस्य मङ्गलसत्कर्मप्रतिबन्धक जननाशौच मरणाशौच सम्प्राप्तिनिवर्त्तकत्वं मङ्गलार्थत्वञ्चशास्त्रे प्रतिपादितम् । मुहूर्तान्तरालाभे नितरामावश्यकत्वे चाशौचप्राप्तेः सम्भवे निश्चितदिनात् पूर्वं विवाहे दशदिनेषु, श्रौतस्मार्ताग्निसाध्ययज्ञेषु एकविंशतिदिनेषु, चौले दिनत्रये, उपनयने षड्दिनेषु नान्दीश्राद्धं पूर्वं करणीयम् । तेन तत्तत्कर्मस्वावश्यकनियुक्तानामाशौचकृतप्रतिबन्धो नास्ति ।

ऋग्वेदिनां मातृपार्वण पितृपार्वणं सपत्नीकमातामहपार्वणञ्चेति पार्वणत्रयम् । कृष्णयजुर्वेदिनामप्येवम् । शुक्लयजुर्वेदिनां पितृपार्वणं सपत्नीकं मातामहपार्वणञ्च सपत्नीकम्-इति पार्वणद्वयम । अत्र मातृपितामही प्रपितामहीनामन्यतम जीवने, पितृपार्वणे सपत्नीकशब्दं । एवं मातामही प्रमातामही वृद्धप्रमातामहीनामन्यतमजीवने मातामहपार्वणे सपत्नीकशब्दं नोच्चरेत् । सामवेदे कोकिलमतानुसारिणां पितृपितामहप्रपितामहानामेकं पार्वणम् । मातृमातामहप्रमातामहानां द्वितीयं पार्वणम् । उभयत्रापि सपत्नीकसम्बन्धो नास्ति । अन्येषां छन्दोगानां पितृपार्वणं मातामहपार्वणञ्च सपत्नीकम् । अत्रापि सपत्नीकसम्बन्धो नास्ति । अन्येषां छन्दोगानां पितृपार्वणं मातामहपार्वणञ्च सपत्नीकम् । अथर्ववेदिनां पार्वणत्रये प्रथमानां त्रयाणामश्रुमुखत्वमलभ्य तेभ्यः परेषां त्रयाणां नान्दीमुखत्वं स्वीकृतम् । तेन मातृपार्वणे वृद्धप्रपितामहीतच्छ्वश्रूतत्प्रतिश्वश्रूणां ग्रहणम्, पितृपार्वणे वृद्धप्रपितामहतत्पितातत्पितामहानां, मातामहपार्वणे वृद्धप्रमातामहस्य पितृपितामहप्रपितामहानां ग्रहणम् । नान्दीश्राद्धे कर्तुः पितृजीवने पितुः सर्वान् पितॄनुद्दिश्य, पितुर्मरणे तु स्वपितॄनुद्दिश्य नान्दीश्राद्धं कार्यम् । तत्रापि पार्वणाद्यजीवने समग्रपार्वणलोपः ।

पितुर्मरणे पितामहजीवने तु पितृप्रपितामह वृध्धप्रपितामहा ग्राह्याः एवं मातृमातामहपार्वणयोर पिव्युत्क्रममृतौ बोध्यम् ॥ अपुत्रया विधवया प्रतिनिधिद्वारा क्रियमाणे नान्दीश्राद्धे प्रतिनिधिना 'यजमानाया भर्तृतत्पितृतत्पितामहाः, यजमानायाः पितृपितामहप्रपितामहाः सपत्नीकाः' इति ऊहेन पार्वणद्वये नान्दीश्राद्धं कार्यम् । कुत्रचित् तन्त्रे 'नान्दीश्राद्धं नैव कुर्यात् स्त्रीणां विधेयकर्मणि । तदभावे तु गां दद्यान्नान्दीश्राद्धफलाप्तये इति निर्देशान्नान्दीश्राद्धफलावाप्तये, पयस्विनीनिष्क्रयो देयः ।

नान्दीश्राद्धस्याभ्युदयिककर्माङ्गत्वात् गोत्रनामरूपाणि विहाय संबोधनरूपः प्रथमाविभक्त्यन्तः प्रयोग इष्टः, अन्यत्र पाद्ये प्रथमा आसने षष्ठी गन्धाद्यर्चने भोजननिष्क्रियदक्षिणादाने चतुर्थी विभक्तिः प्रयुक्ता दृश्यते। इदं नान्दीश्राद्धं सव्येन प्राङ्मुखान् द्विजानुपवेश्य सव्येन सर्वं साङ्कल्पिकेन विधिना भवति। कुत्र चित् सपिण्डकमपिण्डकश्चेति पक्षद्वयम्। सपिण्डकश्राद्धपक्षे दधिबदराक्षतमिश्रगुडेन पिण्डदानं क्रियते, ब्राह्मणेभ्यो भोजनत्वेन द्विगुणं हिरण्यं चतुर्गुणमामान्न मिति पक्षे षोडशामान्नक्रियीभूतं द्रव्यं दीयते। पारस्करगृह्यसूत्रीयश्राद्धसूत्रे श्रद्धा च नो माव्यगमद् इत्यत्र 'न माङ्योगे त्यडागमा भावेऽपि माव्यगमद् इत्युक्तत्वाद्' 'मा व्यगमद्' इत्यार्षः प्रयोगः। अतिथींश्च लभेमहिइत्यत्र 'लभध्वं यूयमतिथीन्' इति प्रतिप्रैषः। एतावान् विशेषः। सम्बोधनरूप प्रथमान्तप्रयोगे वाक्यार्थ सङ्गतये 'वः' इति पदमध्याहृतं भवति।

१५ साङ्कल्पिकनान्दीश्राद्धप्रयोगः।

ताम्रपत्रे त्रीन् दूर्वाबटून् पूगीफलानि वा निधाय दक्षिणहस्ते दूर्वापवित्रं धृत्वा वामहस्तेन दक्षिणत उदगन्तं क्रमेण देवतीर्थेन दक्षिणहस्तेन संकल्पजलं तत्र तत्र समर्पयेत्।

पाद्यदानम् - १ सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः, ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यम् पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः। २ गोत्राः पितृपितामह प्रपितामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः, ॐ भू० इदं वः पाद्यं० वृद्धिः। ३ द्वितीयगोत्राः मातामहप्रमातामहाः सपत्नीकाः ॐ भू० इदं वः पाद्यं० वृद्धिः। प्रधानसंकल्पः - अद्य० पू० तिथौ - करिष्यमाणसंग्रहमखसप्रासाददिनत्रयसाध्य-अचल (चल) प्रतिष्ठाङ्गभूतं (अमुककर्माङ्गभूतं) साङ्कल्पिकेन विधिना नान्दीश्राद्धं करिष्ये।

आसनदानम् - १ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनं सुखासनं। नान्दीश्राद्धे क्षणौ क्रियेताम्। तथा। प्राप्नुतां भवन्तौ। प्राप्नवाव। २ गोत्राः पितृ० नान्दीमुखाः ॐ भू० सुखासनं। नान्दीश्राद्धे क्षणाः क्रियन्ताम्। तथा प्राप्नुवन्तु भवन्तः। प्राप्नवामा ३ द्वितीयगोत्राः मातामह० सुखासनं। नान्दीश्राद्धे क्षणाः क्रियन्ताम्। तथा। प्राप्नुवन्तु भवन्तः। प्राप्नवाम।

गन्धादिदानम् - १ सत्य० इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः। २ गोत्राः पितृ० संपद्यतां वृद्धिः। ३ द्वितीयगोत्राः मातामह० संपद्यतां वृद्धिः॥

भोजननिष्क्रयद्रव्यदानम् - द्रव्यमादाय - १ सत्य० इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्न निष्क्रयीभूतं किञ्चिद् हिरण्यं दत्तममृतरूपेण स्वाहा संपद्यतां वृद्धिः। २ गोत्राः पितृ० संपद्यतां वृद्धिः। ३ द्वितीयगोत्राः मातामह० संपद्यतां वृद्धिः॥

सक्षीरयवोदकदानं - क्षीरं यवाँश्चादाय - १ सत्य० प्रीयन्ताम्। २ गोत्राः पितृ० प्रीयन्ताम्। ३ द्वितीयगोत्राः मातामह० प्रीयन्ताम्।

आशीर्ग्रहणम् - बद्धाञ्जलिर्याचेत - १ गोत्रं नोऽभि वर्धताम् । अभि वर्धतां वो गोत्रम् । २ दातारो नोऽभिवर्धन्ताम् । अभिवर्धन्तां वो दातारः । ३ वेदाश्च नोऽभिवर्धन्ताम् । अभिवर्धन्तां वो वेदाः । ४ सन्ततिर्नोऽभिवर्धताम् । अभिवर्धतां वः सन्ततिः । ५ श्रद्धा च नो माव्यगमत् । मा व्यगमद् वः श्रद्धा । ५ बहुदेयं च नोऽस्तु । अस्तु वो बहुदेयम् । ६ अन्नं च नो बहु भवेत् । भवतु वो बह्वन्नम् । ७ अतिथींश्च लभेमहि । लभध्वं यूयमतिथीन् । ८ याचितारश्च नः सन्तु । सन्तु वो याचितारः । ९ एता आशिषः सत्याः सन्तु । सन्तु एताः सत्या आशिषः । गोत्रं गोत्रस्याभिवृद्धिरस्तु । पितॄणां प्रसादाद् धनकनकवंशाभिवृद्धिरस्तु ।

दक्षिणादानसंकल्पः - द्रव्यमादाय - १ सत्य० कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयीभूतां दक्षिणां दातुमहं उत्सृज्ये (उत्सृजामि) । २ गोत्राः पितृ० उत्सृज्ये । ३ द्वितीयगोत्राः मातामह० उत्सृज्ये । प्रणम्य वदेत् - नान्दीश्राद्धं सम्पन्नम् । ब्रा० सुसम्पन्नम् । माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही । पिता पितामहश्चैव प्रपितामह एव च । मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः । एते भवन्तु सुप्रीताः प्रयच्छन्तु च मङ्गलम् ॥ दूर्वाग्रेण दूर्वाबटून् पूगीफलानि वा स्पृष्ट्वा - विसर्जनम् (आचाराद् हिरण्येन भाण्डवादनम्) - ॐ व्वाजे व्वाजे व्वतव्वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृताऋतज्ञाः । अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥१८-१॥ जलेन प्रदक्षिणीकरणम् ॐ आमा व्वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावा पृथिवी विश्वरूपे । आमागन्तां पितरा मातरा चामासोमोऽअमृतत्वेन गम्यात् ॥१९-९॥ जलमादाय-अस्मिन्नान्दीश्राद्धे न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्ट ब्राह्मणानां वचनात् नान्दीमुखपितॄणां प्रसादाच्च परिपूर्णोऽस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु । अस्तु परिपूर्णः । पुनर्जलमादाय - अनेन नान्दीश्राद्धकर्मणा नान्दीमुखसंज्ञका देवताः प्रीयन्ताम् । उदकोपस्पर्शः । स्वस्तिन० तिलक करणम् । दूर्वाबटून् वा पूगीफलानि पात्रत्रयजलं च निष्कासयेत् । इति नान्दी श्राद्धम् । (साङ्गोपाङ्गः सपिण्डकोऽपिण्डको वा प्रयोगो ग्रन्थान्तरेभ्यो ग्राह्यः ॥)

१६ ऋत्विग्वरणम् ।

(यद्यपि 'समाख्या वेदयोगात्' इति सूत्रेण स्मार्ते कर्मण्यध्वर्योः कर्तृत्वं नास्ति, तथापि शान्तिकपौष्टिकादिकर्मसु नियतकालमवलम्ब्य विहितहोमजपादिकर्मसम्पादनायानेकर्त्विग्वरणमावश्यकं कर्मापेक्षया । तथा च मधुपर्कसूत्रभाष्ये 'सोमयागार्थमेव वृता ऋत्विजो मधुपर्केणार्च्याः' इत्युक्तम्, किन्तु स्मृतिपुराणादिवचनानुरोधेन शान्तिपौष्टिकादिष्वप्यातिदेशिकं मधुपर्ककरणं प्राप्नोति । अत्र यजमानशाखया अर्च्यशाखया वा मधुपर्क इति मतद्वयम् । मधुपर्के विष्टरादीनां दानमात्रं यजमान कर्तृकम्, विष्टरादिस्वीकारे तु मन्त्रपाठोऽर्च्यकर्तृक एव । एवं यजमानकर्तृके दाने पदार्थदानव्युत्क्रमः, अर्च्येन मन्त्रोच्चारे मन्त्रान्तरपठनम्, इत्युभयत्र समानो दोषः । तत्परिहाराय यजमानेन स्वशाखानुरोधेन विष्टरादिदानम्, प्रतिग्रहीत्रा तत्तत्पदार्थप्रतिग्रहे स्वशाखीयमन्त्रोच्चारणमिति सर्वं सुस्थम् । कर्मकार्यबाहुल्यहोमजपादिसंख्यां विचार्यापेक्षिता ऋत्विजो वरणीयाः ।

१७ (आचाराद्) अर्घकरणम् ।

आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधिदूर्वाक्षतास्तथा । सर्षपाः कुङ्कुमश्चैव, अष्टाङ्गोऽर्घः प्रकीर्तितः ॥ बृहति ताम्रपात्रे जलदुग्धकुशाग्र दधिदूर्वाक्षतसर्षपचन्दनानि निक्षिप्य पात्रान्तरेण पिधाय रक्तसूत्रेण वेष्टयित्वा आसनाधः सपत्नीको यजमान उदङ्मुखः पात्रसंपुटं हस्तयोर्गृहीत्वा तिष्ठन् ब्राह्मणान् प्रार्थयेत् ।

सुमुहूर्तादि कर्तव्यं शोभने मण्डपे द्विजैः । शान्तिपाठश्चार्घदानं पृच्छापूर्वं समाचरेत् ॥१॥ आयुरारोग्यपुत्रादिसुखश्रीप्राप्तये मम । आपद्विघ्नविनाशाय शत्रुबुद्धिक्षयाय च ॥२॥ विशेषकाम्यहोमेन सहितं समिदादिभिः । आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे राहुकेतुपुरःसराः ॥३॥ ग्रहदेवाधिदेवैश्च नक्षत्राणां सदैवतैः । इन्द्रादिभिश्च दिक्पालैर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥४॥ वास्तुदुर्गागणेशैश्च क्षेत्रपालादिसंयुतैः । भूम्यन्तरिक्षदेवैश्च कुलदेवैश्च मातृभिः ॥५॥ चतुर्भिश्चैव वेदैश्च रुद्रेण सहितास्तथा । सागरद्वीपपातालान्यूर्ध्वलोकाः सुरैः सह ॥६॥ पर्वता ऋषयः सर्वे गङ्गाद्याः सरितो ध्रुवम् । आदित्याद्या ग्रहा यज्ञैः सुप्रसन्ना भवन्तु मे ॥७॥ स्वागतं भो द्विजश्रेष्ठा मदनुग्रहकारकाः । इदमर्घमिदं पाद्यं भवद्भिः प्रतिगृह्यताम् ॥८॥

यजमानः - ॐ प्रतिगृह्यताम् । आचार्यः - प्रतिगृह्णामि । संपुटं गृहीत्वा उद्घाट्य यजमानसमीपे स्थापयेत् । यजमानः पादप्रक्षालनमर्घदानञ्च कुर्यात् ।

वरणम् ।

प्राङ्मुखो यजमान उदङ्मुखं ब्राह्मणं पूगीफलेन वृणुयात्-यज० अमुकप्रवरान्वित अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायी अमुकशर्मा (वर्मा-गुप्तः - दासः) सपत्नीको यजमानोऽहम् (ब्राह्मणः स्वं गोत्रप्रवरशाखानामादिकं द्वितीयान्तं ब्रूयात्) अमुकप्रवरान्वितममुकगोत्रोत्पन्नं अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिनममुकशर्माणं ब्राह्मणम्-(यज०) अमुकदिनसाध्य सग्रहमख-अमुकयागाख्ये कर्मणि आचार्यत्वेन त्वामहं वृणे । इति पूगीफलमाचार्यहस्ते दद्यात्-आचार्यः - वृतोऽस्मि । कर्म करिष्यामि - इति वदेत्-ॐ बृहस्पते० आचार्य त्वं०-इति प्रार्थ्य पाद्येन पादौ प्रक्षाल्य हस्तेऽर्घं दद्यात् । वृताय, एतत्ते पाद्यम् । एष ते अर्घः । गन्धादिभिः संपूज्य हस्ते कङ्कणं बध्नीयात् । एवमेव उपाचार्यं ब्रह्माणमुपब्रह्माणं गणपतं सर्वोपद्रष्टारं सदस्यान् द्वारपालान् होतॄन् जापकान् परिचारकाँश्च वृणीयाद् गोत्रोच्चारस्थाननिर्देशपुरःसरम् ।

१८ मधुपर्कः ।

प्रतिब्राह्मणं विष्टरद्वयं पाद्यजलमर्घमाचमनीयं मधुपर्कं शुद्धजलञ्च समीपेऽवस्थाप्य) यज० अस्मिन् कर्मणि वृतानां ऋत्विजां मधुपर्केणार्चनं करिष्ये । यजमानः प्रतिब्राह्मणं प्रार्थयेदुत्थाय-ॐ साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम्-ब्राह्मणः - ॐअर्चय । अन्यः - विष्टरो विष्टरो विष्टरः - यज०

प्रतिगृह्यताम् । ब्रा० प्रतिगृह्णामि । विष्टरमासने उदगग्रं निधाय तदुपरि उपविश्य मन्त्रं पठेत् ॐ वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्य्यः । इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति । अन्यः-पादार्थमुदकं ३ । यज० प्रतिगृह्यताम् । ब्रा० प्रतिगृह्णामि । जलं गृहीत्वा दक्षिणं पादं प्रक्षालयति ॐ विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः । ततो वामं-ॐ विराजो० । अन्यः - द्वितीयविष्टरो विष्टरो विष्टरः यज० प्रतिगृह्यताम् । ब्रा० प्रतिगृह्णामि-इति प्रतिगृह्य प्रक्षालितपादयोरधस्तादुदगग्रं निधाय तदुपरि पादौ करोति - ॐ वर्ष्मोऽस्मि० । अन्यः, अर्घपात्रमादाय अर्घोऽर्घोऽर्घः - यज० प्रतिगृह्यताम् । ब्रा० ॐ आपःस्थ युष्माभिः सर्वान् कामानवाप्नवानि । इति प्रतिगृह्य वामे कृत्वा दक्षिणेनाभिमन्त्रयन् भूमौ जलं निनयेत् - ॐ समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत । अरिष्टाअस्माकं वीरा मा परासेचिमत् पयः ॥ अन्यः - आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम् । यज० प्रतिगृह्यताम् । ब्रा० प्रतिगृह्णामि । पात्रं वामहस्ते कृत्वा - ॐ आमागन्यशसा सᳪंसृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् - इति दक्षिणहस्तेनाचमनं कृत्वा ततः त्रिराचामेत् ॐ केशवाय नमः स्वाहा ॐ नारायणाय नमः स्वाहा ॐ माधवाय नमः स्वाहा । हस्तं प्रक्षाल्य ॥ कांस्यपात्रे दधिमधुघृतं प्रक्षिप्य तदुपरि पात्रं पिधाय-अन्य- मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः । यजमान उद्घाट्य प्रदर्शयति - समीक्ष्यताम् । ब्रा० ॐ मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे - इति पश्यति । यज० प्रतिगृह्यताम् । ब्रा० ॐ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् - इति मन्त्रेण पात्रं प्रतिगृह्य सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणस्यानामिकया प्रदक्षिणमालोड्य किञ्चिद् भूमौ क्षिपति - ॐ नमः श्यावास्यायान्नशनेयत्तऽआविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि - इति मन्त्रेण त्रिवारं मन्त्रपाठपूर्वकं क्षिपेत् । ततोऽनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मधुपर्कस्य त्रिवारं समन्त्रं प्राशनम् - ॐ यन्मधुनो मधव्यं परमᳪंरूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि- इति प्राश्नीयात् । (१ मधुव्वाता० २ मधुनक्त० ३ मधुमान्नो० इति मन्त्रैर्वा प्राशनम् ।) उच्छिष्टमुत्तरे विसृजेत् । हस्तं प्रक्षाल्य आचामेत् - ॐ (आमागन्०) केशवाय० ३॥ ततः प्राणस्थानानि ब्राह्मणः स्पृशेत् (आचाराद्वामहस्ते जलं गृहीत्वा दक्षिणेन हस्तेन जलेन) कराग्रेण - ॐ वाङ्म आस्येऽस्तु । तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्यां दक्षिण वामनासिके - ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु । अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां नेत्रे - ॐ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु । कराग्रेण दक्षिणं कर्णं - ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु । पुनर्वामं कराग्रेण - ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु । (भेदे मन्त्रावृत्तिः - का० श्रौ० सू०) । दक्षिणं बाहुं कराग्रेण - ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु । ततो वामं ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु । उभाभ्यां हस्ताभ्यां - ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु । उभाभ्यां मस्तकादिपादान्तम् - ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु । इति स्पृष्ट्वा हस्तं प्रक्षाल्य । यज० (गोनिष्क्रयं प्रत्यक्षां गां वा स्थाप्य - ॐ गौर्गौर्गौः उत्सृज्यताम् । ब्रा० ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनाᳪं स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः । प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट । मम च अमुकस्य यजमानस्य च पाप्मा हतः, ॐ उत्सृजत, तृणानि अत्तु - इत्युक्त्वा गां द्रव्यं वा उत्सृजेत् ।

१९ ब्राह्मणपूजने वेदचतुष्टयमन्त्राः ।

तत ऋत्विग्भ्यो गन्धाक्षतपुष्पमालावस्त्रयज्ञोपवीतजलपात्रछत्रोपानद् मुद्रिकादिदानम् (दक्षिणासमये) वा । ऋत्विक्पूजनान्ते संकल्पः - वृतेभ्य आचार्यादि ऋत्विग्भ्यो वस्त्रयज्ञोपवीतजलपात्रछत्रोपानद् मुद्रिकाः, (तत्प्रत्याम्नायभूतं निष्क्रयं) दातुमहमुत्सृज्ये । पूजने ब्राह्मणाश्चतुर्वेदमन्त्रान् पठेयुः ॥

ऋग्वेदे - ॐ अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रकाउतपुरं न धृष्ण्वर्चत ॥८-६९-८॥ अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् । प्रमन्दयुर्मनागूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥१-१७३-२॥ मदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती । अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥८-२९-५॥ अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥५-१३-१॥ अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः । इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वे दह यजमानाय सुन्वते ॥१-९२-३॥ अर्चा दिवे बृहते शूष्यं १ वच स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ॥ बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि यः ॥१-५४-३॥ अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरतामियं गीः । स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमाऽस्मे क्षत्राणि धारयेरनुद्यून् ॥२-४-८॥ अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे । अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन् मध्वानो अत्र पितरा शिशीताम् ॥१०-१२-४॥ अर्चा शक्राय शाकिने शचीपते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभिष्टुहि । यो धृष्णुया शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वावृषभो न्यृञ्जते ॥१-५४-२॥ यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति तस्माद् ब्राह्मणेभ्यो वेदविद्भ्यो दिवे दिवे नमस्कुर्यान्नाश्लीलं कीर्तये देता एव देवताः प्रीणाति ॥

कृ० यजुर्वेदे - ॐ यावन्तो वै सदस्यास्ते सर्वे दक्षिण्यास्तेभ्यो यो दक्षिणां न (३) नयेदैभ्यो वृश्च्येत यद्वैश्वकर्मणानि जुहोति सदस्यानेव तत् प्रीणाति ॥३-२-८॥ अस्मे देवासो वपुषे चिकित्सत यमाशिरा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वथ विश्वे अरपा एधते गृहः ॥ आशीर्दाया दम्पती वाममश्नुतामरिष्टो रायः सचताऽसमोकसा । स आऽसिंचत् संदुग्धं कुम्भ्या सहेष्टेन यामन्नमतिं जहातु सः ॥३-२-८॥ अर्चामिते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरता (२) मियंगीः । स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥१-२-१४॥

शु० यजुर्वेदे - ॐ अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतञ्च श्रद्धाञ्चो पैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥२०-२४॥ यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह । तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥२०-२५॥ यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह । तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥२०-२६॥ अंशुना ते अंशुः पृच्यतां परुषा परुः । गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः ॥२०-२७॥ सिञ्चन्ति परिषिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च । सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥२०-२८॥ धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥२०-२९॥ बृहदिन्द्राय

गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् । येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधोदेवं देवाय जागृवि ॥२०-३०॥ अध्वर्य्यो अद्रिभिस्सुतꣳसोमं पवित्र आनय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥२०-३१॥ यो भूतानामधिपतिर्य्यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः । य ईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥२०-३२॥

ॐ सदसस्पति० तस्यै ते स्वाहा ॥३२-१३ तः १६॥ ॐ गन्धर्वस्त्वा० यज्ञन्यम् ॥२-३-त) ६॥ ॐ यज्जाग्रतो० ३४-१-तः ६ ॥ ॐ ब्रह्मणे ब्राह्मणं० ३०-५ तः ।

ॐ सहस्रशीर्षा० ३१-१ तः १६ ॥ ॐ ईशावास्य० ४० ॐ खम्ब्रह्म १ तः १७॥

१२३ १ २ ३ १२ ३ १२ १२ २ ३ १२३ ३२ ३१२१२
सामवेदे - ॐ अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥३६२॥
३ १ २२ ३२३ १२ ३ १२ ३ १ २ २ ३१२ ३१२ ३ १ २ ३ १ २
उक्थमिन्द्रायशंस्यं वर्धनं पुरुनिःषिधे । शक्रो यथा सुतेषुणो रारणत्सख्येषु च ॥३६३॥ विश्वानरस्य
३ २ ३१ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३१ २२ १२ २ ३ १२ ३ १ २२ ३ १
वस्पतिमनानतस्य शवसः । एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥३६४॥ स धा यस्ते दिवो नरो धिया
२२ ३ १२ ३ १ २३१२ ३२ ३२३ ३ १ २ ३ १२ ३ १२ ३ २ ३ १
मर्तस्य शमतः । ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति । ॥३६५॥ विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः
२ १ २ ३१ २ १२ ३१ २ ३१ २२ २३
शतक्रतो । अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥३६६॥ वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि । उषः
१२ ३१ २२ ३ १ २२ ३ १२ ३ १ २२ ३२३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ २३ ३ २ ३
प्रारन्नृतूँ रनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥३६७॥ अमी ये देवास्थन मध्य आरोचने दिवः । कद्व ऋतं कदमृतं
२ ३ २३ १२ २ ३ १२ ३ २ ३ १२ ३ १२ १ २२ ३२
का प्रत्ना व आहुतिः ॥३६८॥ ऋचं सोम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते । वि ते सदसि राजतो यज्ञं
३२१
देवेषु वक्षतः ॥३६९॥

अथर्ववेदे - ॐ यस्ते गन्धः पृथिवि सं बभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः । यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मानो द्विक्षत कश्चन ॥१२-१-२३॥ यस्ते गन्धः पुष्कर माविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे । अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मानो द्विक्षत कश्चन ॥१२-१-२४॥ यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः । यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु । कन्यायां वर्चो यद्भूमे तेनास्माँ अपि संसृज मानो द्विक्षत कश्चन ॥१२-१-२५॥ अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वऽर्चत ॥२०-९२-५॥

ब्राह्मणान् प्रार्थयेत् - ॐ बृहस्पते० आचार्यत्वं यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः । तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत ॥१॥ ब्रह्म जज्ञानं० यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । तथा त्वं

मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ॥२॥ ॐ गणानान्त्वा० वाञ्छितार्थफलावाप्त्यै पूजितो यः सुरासुरैः । निर्विघ्नक्रतुसंसिद्ध्यै त्वामहं गणपं वृणे ॥३॥ ॐ सदसस्पति० कर्मणामुपदेष्टारं सर्वकर्मविदुत्तमम् । कर्मठं वेदतत्त्वज्ञं सदस्यं त्वामहं वृणे ॥४॥ सर्वोपद्रष्टा - ॐ उहुरे गिरीणां ७' सङ्गमे च नदीनाम् । धिया विप्रोऽअजायत ॥२६-१५॥ भगवन् सर्वकर्मज्ञ वेदशास्त्रविदां वर । यज्ञ कर्मोपद्रष्टारं विद्वांसं त्वामहं वृणे ॥५॥ ॐ अग्निमीळे० ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः । रक्षोविघ्नविनाशाय द्वारपालो मखे भव - अ० ब्राह्मणं पूर्वद्वारे होमकाले सूक्तजपार्थं त्वामहं वृणे ॥ एवं द्वितीयम् ॥६-७॥ ॐ इषेत्वो० कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः । यज्ञविघ्नविनाशार्थं द्वारपालो भव द्विज ॥ अ० ब्राह्मणं दक्षिणद्वारे होमकाले सूक्तजपार्थं त्वामहं वृणे ॥ एवं द्वितीयम् ॥८-९॥ ॐ अग्न आयाहि० सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः । राक्षसानां निराकृत्यै द्वारपालो मखे भव ॥ अ० ब्राह्मणं पश्चिमद्वारे होमकाले सूक्तजपार्थं त्वामहं वृणे ॥ एवं द्वितीयम् ॥१०-११॥ ॐ शन्नो देवी० बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः । विघ्नापद्रक्षसां हत्यै द्वारपालः क्रतौ भव ॥ अ० ब्राह्मणं उत्तरद्वारे होमकाले सूक्तजपार्थं त्वामहं वृणे ॥ एवं द्वितीयम् ॥१२-१३॥ अष्ट, अलाभे चतुर ऋग्यजुःसामाथर्ववेदविदो ब्राह्मणान् वृणुयात् ॥ ततः - ॐ अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तञ्जानन्नग्न आरोहाथानो वर्द्धया रयिम् ॥३-१४॥ ऋत्विजश्च यथा पूर्वं शक्रादीनां मखेऽभवन् । यूयं तथा मे भवत ऋत्विजो द्विजसत्तमाः ॥ कर्मपिक्षयाऽवश्यकान् होतॄन् जापकान् परिचारकांश्च गोत्रोच्चारपूर्वकं स्थाननिर्देशपुरःसरं वृणुयात् । ॐ व्रतेन दीक्षा० एतावद्रूपं० सुते ॥

१९ ब्राह्मणपूजने वेदचतुष्टयमन्त्राः ।

द्विजप्रार्थना-यज० ब्राह्मणाः सन्तु मे शस्ताः पापात् पान्तु समाहिताः । देवानां चैव दातारः पातारः सर्वदेहिनाम् ॥१॥ जपयज्ञैस्तथा होमैर्दानैश्च विविधैः पुनः । देवानां च ऋषीणां च तृप्त्यर्थं याजकाः कृताः ॥२॥ येषां देहे स्थिता वेदाः पावयन्ति जगत्त्रयम् । रक्षन्तु सततं ते मां जप यज्ञैर्व्रतस्थिताः ॥३॥ ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तेषां वाक्योदकेनैव शुध्यन्ति मलिना (मलिनो) जनाः ॥४॥ पावनाः सर्ववर्णानां ब्राह्मणा ब्रह्मरूपिणः । सर्वकर्मरता नित्यं वेदशास्त्रार्थकोविदाः ॥५॥ श्रोत्रियाः सत्यवाचश्च देवध्यानरताः सदा । यद्वाक्यामृतसंसिक्ता ऋद्धिं यान्ति नरद्रुमाः ॥६॥ अङ्गीकुर्वन्तु कर्मैतत् कल्पद्रुमसमाशिषः । यथोक्तनियमैर्युक्ता मन्त्रार्थे स्थिरबुद्धयः ॥७॥ यत्कृपालोचनात् सर्वा ऋद्धयो वृद्धिमाप्नुयुः । अस्मिन् यागे मया पूज्याः सन्तु मे नियमान्विताः ॥८॥ अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः । देवध्यानरता नित्यं प्रसन्नमनसः सदा ॥९॥ अदुष्टभाषणाः सन्तु मा सन्तु परनिन्दकाः । ममापि नियमा ह्येते भवन्तु भवतामपि ॥१०॥ इति संप्रार्थ्य तान् ब्रूयाद् यथावत् क्रियकां विधिः । ऋत्विजश्च यथापूर्वं शक्रादीनां मखेऽभवन् ॥११॥ सुप्रसन्नैः प्रकर्तव्यं कर्मेदं विधिपूर्वकम्-भो आचार्यादिसमस्तब्राह्मणाः यथाविधि कर्म कुरुध्वम् ॥ ब्राह्मणाः - यथाविधि करिष्यामः ॥ आसत्यलोकात् पातालादालोकालोकपर्वतात् । ये सन्ति ब्राह्मणा देवास्तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥ इति नमस्कुर्यात् ॥

२० स्वस्तिपुण्याहवाचनम् ।

(प्रयोक्तुः कर्मणामादावन्ते चोदयसिद्धये - इति वचनेन चशब्दात् मध्येऽपीति तात्पर्यात् पूर्वाङ्गोत्तरं प्रधानकर्मारम्भात् प्राङ् मध्ये पुण्याहवाचनम् । अन्यशाखासु पुण्याह ऋद्धि स्वस्तिरूप प्रैषत्रयेण शुक्लयजुर्वेदिनां तु पुण्याह-कल्याण-ऋद्धि-स्वस्ति-श्रीरस्तु-इति पञ्चप्रैषयुक्तं समग्रं प्रैषात्मकं केवलं वा पुण्याहवाचनं भवतीति विवेकः । केवलप्रैषात्मकपुण्याहवाचने कलशसाधनवरुणपूजन जानुमण्डलनिपातब्राह्मणपूजनाशीर्वचनोदकसेचनाभिषेकाणामभावः । पूर्वं कलशासादनं न कृतं चेदिदानीं वर्धिनीकलशसहितसर्वकलशानामेकतन्त्रेण कुर्यात् । स्वर्णपूर्ण, इत्यस्य स्थाने स्वर्णःपूर्ण-इति शुद्धः पाठः ।)

संकल्पः ।

अद्य० पू० कर्माभ्युदयार्थं स्वस्तिपुण्याहवाचनमहं करिष्ये । तत्रादौ कर्माङ्गभूतकलशानामेकतन्त्रेणासादनं करिष्ये । महीद्यौः० इत्यारभ्य वरुणावाहन पूजनान्तं - तावत् त्वं सन्निधौ भव - इत्यन्तं कुर्यात् । ततः अवनीकृतजानुमण्डलः० इत्यारभ्य - पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये - इत्यन्तं कुर्यात् - ब्राह्मणः - वाच्यताम् । ब्राह्मणा अक्षतैराशिषो दद्युः -

ऋग्वेदे - ॐ द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्रयंसत् । द्रविणोदा वीरवतीमिषंनो द्रविणोदारासते दीर्घमायुः ॥ कृ० यजु० ॐ द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयामि तेनर्षिणा तेन ब्रह्मणा तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥४-४-६-३४॥ शुक्ल यजु० ॐ भद्रं कर्णेभिः० ॐ द्रविणोदाः

५र४ २

पिपीषति जुहोत प्रचतिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥२६-२२॥ सामवेदे - ॐ देवो ३ वो ३

४ ५ र २र१र २र १ २ १ २ २ २ र १ ७ १र २ र १

द्रविणोदाः । पूर्णां विवष्ट्वा सिचं । उद्वा १ सिंचा २ ध्वमुपवापृणध्वं आदिद्वोदे २ । वओहते । इडा

२ १

२ ३ भा ३ ४ ३ । ओ २ ३ ४ ५ ई । डा । (वेयगाने प्र-२ प्रथमार्धे साम-२४) ॥ अथर्ववेदे - ॐ धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः । त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥७-२-१७-४॥

ऋग्वेदे -ॐ सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात् सवितोत्तरात्तात् सविता धरात्तात् । सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥ कृ० यजु० ॐ सविता यः सहस्रियः संनो गृहेषु रारणत् । आ पूषा एत्वा वसु ॥२-५-२॥ शुक्ल यजु० ॐ देवानां भद्रा० ॐ सविता त्वा सवानां ᳪ सुवतामग्निर्गृहपतीना ᳪ सोमो व्वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्व्वाचऽइन्द्रो ज्येष्ठ्याय रुद्र ३ पशुभ्यो मित्र

२र१ १ ५ १ २ १२

३ सत्यो व्वरुणो धर्म्मपतीनाम् ॥९-३९॥ साम० ॐ ऊर्ध्व ऊषुणा ३ ऊता २३४ याई । तिष्ठा देवोन

१र २ २ १ २ र १ २र १ १ २१र
सविता । ऊर्ध्वों वा २ ३ जा । स्यासनिता । यादंजिभीः २ः । वाघाद्धी २ः । वीवी २ । ह्वयामा २
२ १ ५
३ हा २ ४ ३ ई । उ २ ३ ४ ५ ई । डा (बेय० प्र-२ प्र० साम-२६॥ अथर्ववेदे-ॐ अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु । अभयन्नोऽस्तूर्वा १ऽन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥६-४०-१॥

ऋग्वेदे-ॐ नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् । भागं देवेभ्यो विदधात्यायन् प्रचन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥ कृ० यजु० ॐ नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रे । भागं देवेभ्यो विदधात्यायन् प्रचन्द्रमास्तिरति दीर्घमायुः ॥२-४-१४-१॥ शु० यजु० ॐ न तद्रक्षा७ँसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमज७ँह्येतत् । यो बिभर्ति दाक्षायण ह हिरण्यहस देवेषु कृणुते
१ १ र २ २ १ ३
दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥३४-५१॥ सामवेदे - चन्द्रमा आउवा । प्सुवान्ताराउवा ।
२ १र २ २ १र १ र २ २ १ २ २० १ १ २ १ १
सुपर्णो धाउवा । वतोदिवि नवोहिराउवा । ण्यनाइमायाउवा । पदं विंदाउवा । तिविद्युताः । वित्तमा
२ २ १र ५ १ ५
आउवा । स्यरोदा २ ३ सा ३ ४ ३ ई । ओ २ ३ ४ ५ ई डा ॥ वे० ११ प्र० प्र० साम-३१ ॥ अथर्ववेदे - ॐ नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजंह्ये ३ तत् । यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं सजीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥१-२५-२॥

ऋग्वेदे - ॐ उच्चादिवि दक्षिणावन्तोऽअस्थुर्येऽअश्वदाः सहते सूर्येण । हिरण्यदाऽअमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्रतिरन्तऽआयुः ॥८-६-३॥ कृ० यज० आयुर्दा अग्ने हविषो जुषाणो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि । घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमम् ॥३-३-८-१॥ शुक्ल-यजु० ॐ दीर्घायुस्तऽओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् । अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात्
५ र ५
॥१२-१००॥ उच्चाते जातमन्धसो दिविसद्भूम्याददे । उग्र ह शर्म्ममहिश्रवः ॥ साम० उच्चाता ३
४र५ १ १ १ १ २ १ २ १ २
ईजातमन्धसाः । दिवाई । सा १ दभू २ । मिया २३ ददाई । उग्रा ७ँ शर्म्मा । महा २३ ईश्रवा
२ २र३ १ १ १ १
उ । वा ३ । स्तौषि २ ३ ४ ५ ॥ वे० १२ प्र-२ में साम-१३ ॥ अथर्व० उच्चापतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् । पश्यामत्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥१३-२-२६॥ (उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन्वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः । वाचं क्षुणुवानो दमयन् सपत्नान् सिंह इव जेष्यन्नभितं स्तनीहि-५-४-२०-१) ॥ इत्येता ऋचः पुण्याहे ब्रूयात् । यज० व्रतजपतपः स्वाध्याय क्रतुदयादमदानविशिष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम् । ब्रा० समाहितमनसः

स्मः । यजः-प्रसीदन्तु भवन्तः । ब्रा० प्रसन्नाः स्मः ।

यजमानमूर्ध्नि अक्षतान् क्षिपेत्-यज० ॐ शान्तिरस्तु० तिथिकरणमुहूर्त नक्षत्र ग्रहलग्न संपदस्तु । पुण्याहवाचनकलशात् जलं पात्रे प्रक्षिप्य वामहस्तेन दक्षिणहस्ते देवतीर्थेन उदकसेकः - ॐ तिथिकरण० इत्यारभ्य - अहोरात्रे शिवे स्याताम् - इत्यन्तम् ।

ऋग्वेदे - ॐ शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु । शन्नो द्यावापृथिवी शं प्रजाभ्यः शन्न एधि द्विपदे शंचतुष्पदे ॥ ऋ० परिशिष्टमन्त्र ८ ॥ कृ० यजु० निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु । फलिन्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् । योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥७-५-१८॥ शु० यजु० निकामे निकामे न ꣳ पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधय ꣳ पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥२२-२२॥ ब्राह्मणम्-निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षत्विति निकामे निकामे वैतत्र पर्जन्यो वर्षति यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते फलवत्यो नऽओषधयःपच्यन्तामिति फलवत्यो वै तत्रौषधयःपच्यन्ते यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते योगक्षेमो नः कल्पतामिति योगक्षेमो वैतत्र कल्पते यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते तस्माद्यत्रैतेन्न यज्ञेन यजन्ते

३ २ ५र १ ४५ २१ २ २ १

क्लृप्तः प्रजानां योगक्षेमो भवति ॥ साम० त्वष्टा ३ ४ / नो दैवियं वचाः । पर्जन्यो ब्रह्मणस्पा २३

२ ३१र २ १र २ १ २ २ १ २ १ ५

तीः । पुत्रैर्भ्रातृभिरदि तिर्नुपातू २३ नाः । दुष्टारा २३ न्त्रा । मणं त्रा २३ चा ३४३ः । ओ २३४५ ई । डा ॥ वेय० अ० प्र० प्रथ० साम-२० ॥ अथर्ववेदे-गणास्त्वोपगायन्तु मारुताः पर्जन्यघोषिणः पृथक् । सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥४-३-१५-४॥ ॐ शुक्राङ्गारकबुधबृहस्पतिशनैश्चरराहुकेतुसोमसहिता आदित्यपुरोगाः सर्वे ग्रहाः प्रीयन्ताम् । भगवान्नारायणः प्रीयताम् । भगवान् स्वामी महासेनः प्रीयताम् - इति जलमुत्सृज्य ॥

ब्राह्मणान् नत्वा वदेत्-ॐ पुण्याहकालान् वाचयिष्ये । ब्रा० वाच्यताम् । यज० ब्राह्मं पुण्यमहर्यच्च सृष्ट्युत्पादनकारकम् । वेदवृक्षोद्भवं नित्यं तत् पुण्याहं ब्रुवन्तु नः । भो ब्राह्मणाः मह्यं सकुटुम्बाय महाजनान् नमस्कुर्वाणाय आशीर्वचनमपेक्षमाणाय मया (समस्तजनपदश्रेयसे) करिष्यमाण (सग्रहमखसप्रासाद अमुक दिनसाध्य प्रतिमाऽचलप्रतिष्ठा) कर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्रा० अस्तु पुण्याहम् । एवं पुनर्वारद्वयं वदेत् । (पुण्याहवाचने वैदिक पौराणमन्त्रपाठान्तरं पुण्याहाद्विप्रप्रतिविप्रदानमुचितम्)

२१ वेदचतुष्टयेन पुण्याहवाचनप्रयोगः ।

ऋग्वेदे - ॐ उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि । वृषेववाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमावद विश्वतो नः शकुने पुण्यमावद ॥

याज्यया यजति प्रत्तिर्वै याज्या पुण्यैव लक्ष्मीः पुण्यामेव तल्लक्ष्मीं संभावयति पुण्यां लक्ष्मीं संस्कुरुते

॥ कृ० यजु० यत् पुण्यं नक्षत्रं । तद्बट्कुर्वीतोपव्युषं । यदावै सूर्य उदेति । अथ नक्षत्रं नैति । यावति तत्र सूर्योगच्छेत् । यत्र जघन्यं पश्येत् । तावति कुर्वीत यत्कारी स्यात् । पुण्याह एव कुरुते । तानि वा एतानि यमनक्षत्राणि । यान्येव देवनक्षत्राणि । तेषु कुर्वीत यत्कारी स्यात् । पुण्याह एव कुरुते ॥ शु० यजु० ॐ पुनन्तु मा देवजना ३ पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वाभूतानि जातवेदः पुनीहिमा ॥१९-३९॥ ब्राह्मणम् - ॐ स यः कामयेत महत् प्राप्नुयामित्युदगयनऽआपूर्य्यमाणपक्षे पुण्याहे द्वादशाहमुप सद्व्रती भूत्वौदुम्बरे क ह से चमसे वा सर्वौषधं फलानीति संभृत्य परिसमुह्य परिलिप्याग्निमुप-

२ र २

समाधायावृताज्य ह संस्कृत्य ह पु सा नक्षत्रेण मन्थः सन्नीय जुहोति ॥ साम० ॐ पुनानः सोमा ३

१ ५ १ र र र र र ३ २ १ २ २ १ र र र

धारा २३४ या । आपोवसानो अर्षन्नधा योनि मृतस्य सा २ ईद साई । ओहा ३ उवा उत्सो देवोहिरा

२ १ २ २ २ १ २ ४ ५ ४

२३ हाई । ओहा ३ उवा । ण्यया । ओ ३ होवा । हो ५ ई । डा ॥ वेय-प्र-१४ प्रथमार्धे साम ३५ ॥ अथर्व० ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया । पुनन्तु विश्वाभूतानि पवमानः पुनातु मा ॥ का० ६-२-१९-१ ॥

कल्याणम्-पृथिव्यामुद्धृतायां तु यत्कल्याणं पुराकृतम् । ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत् कल्याणं ब्रुवन्तु नः ॥ भो ब्राह्मणाः० कर्मणः कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु ॥ ब्रा० अस्तु कल्याणम् । एवं त्रिः ॥ ऋग्वेदे० ॐ अपाः सोमस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते । यत्रारथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥ कृ० यजु० भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः । न यत् ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तनुवि रेप आधुः ॥४-३-१३-३॥ शु० यजु० ॐ यथेमां व्वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याᳬशूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय च । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादोनमतु ॥२६-२॥ ब्राह्मणम्-अथाध्वर्युः प्रतिगरोरात् सुरिमे यजमाना भद्रमेभ्यो यजमानेभ्यो भूदिति कल्याणमेवैतन्मानुष्यै व्वाचो वदति ॥

३ र २ ४ र ४र ५ १ २१ र २ १ २१

साम - ॐ का ऽ ५ या । नश्चा ३ इत्रा ३ आभूवात् । उ । ती सदा वृधस्स । खा । ओ ३ हो

२ १ २ ३र २ १ १ २

हाइ । कया २३ शचा ३ । प्रयौ हो ३ हुम्मा १२ । वाऽ२र्तो ३ ५ हाइ ॥ वेय-५ प्र०प्र० साम-२५ ॥ ॐ अथर्व० ॐ विश्वजित् कल्याण्यै मा परिदेहि कल्याणि द्विपाच्च सर्वन्नो रक्ष चतुष्पाद्यच्चनः स्वम् ॥६-११-१०७-३॥

ऋद्धिः - सागरस्य यथा वृद्धिर्महालक्ष्म्यादिभिः कृता । संपूर्णा सुप्रभावा च तां च ऋद्धिं ब्रुवन्तु नः ॥ भो ब्राह्मणाः० कर्मणः ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्रा० कर्म ऋध्यताम् । एवं त्रिः । ऋग्वेद-ॐ ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमानो मन्त्रं सरथे होपयातम् । यशो न पक्वं

मधुगोष्वन्तरा भूतांशोऽअश्विनोः कामंमप्राः ॥ ब्राह्मणम्-सर्वामृद्धिमृध्नुयामिति तं वै तेजसैव पुरस्तात् पर्यभवच्छन्दोभिर्मध्यतोऽक्षरैरुपरिष्टाद् गायत्र्या सर्वतो द्वादशाहं परिभूय सर्वामृद्धिमार्ध्नोत् सर्वामृद्धिमृध्नोति य एवं वेद ॥ कृ० यजु० ॐ ऋद्ध्यास्म हव्यैर्नमसोपसद्य । मित्रं देवं मित्रधेयं नो अस्तु । अनूराधान् हविषा वर्धयन्तः । शतं जीवेम शरदः सवीराः । त्रीणि त्रीणि वै देवानामृद्धानि । त्रीणिच्छन्दांꣳसि त्रीणि सवनानि । त्रय इमे लोकाः । ऋद्ध्यामेव तद्वीर्यं एषु लोकेषु प्रति तिष्ठति ॥ शु० यजु० ॐ सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृताऽअभूम । दिवं पृथिव्याऽअध्यारुहामाविदाम देवान् स्वर्ज्योतिः ॥८-५२॥ ब्राह्मणम्-तऽउत्तरस्य हविर्धानस्य जघन्यायाङ्कूबर्यां ७ सामाभिगायन्ति सत्रस्य ऋद्धिरितिराद्धि मेवैतदभ्युत्तिष्ठन्त्युत्तरवेदेर्वोत्तराया ७ श्रोणावितरन्तु

२र र र र र र २ र १ २ १र २ २ १र ३ १ २
कृततरम् ॥ साम० औ हो वा औ हो वा औ हो ३ वा । अगन्म ज्योतिः । अगन्म ज्योतिः । अगन्म
१र २ १र २ र २ १र २र २ १र २ २र १ ३ २र र रर १ २ १ २र
ज्योतिः । अमृता अभूम । अमृता अभूम । अमृता अभूमा । न्तरिक्षं पृथिव्या अध्यारुहाम । दिवमन्तरिक्षा ।
१ २ १ २र १ २र २र १ २ १ २र १ २र २र १ २ १ २ र १ २र १ २र १ १र २ २र
दिवमन्तरिक्षा दध्यारूहाम । दिवमन्तरिक्षादध्यारुहाम । दिवमन्तरिक्षादध्यारुहाम । अविदाम देवान् । अविदाम
२ १र १ २र र १ र १ २र १र २ १ २र १ र२ १ २र १ र २र र ३ २र र र
देवान् । अविदाम देवान् । समुदे वैरगन्महि । समुदे वैरगन्महि । समुदे वैरगन्महि । औ हो वा । औ हो वा ।
२र २ १ र ३ १ १ १ १
औ हो ३ वा । सुवर्ज्योती २ ३ ४ ५ ः ॥ आर० ४प्र० प्रथ-साम-४ अथर्व० ॐ ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा । अदब्धा सु भ्राजमानो हैवत्रितो घर्ता दाधार त्रीणि ॥५-१-१-१॥

स्वस्तिः - स्वस्तिस्तु याऽविनाशाख्या पुण्यकल्याणवृद्धिदा । विनायकप्रियी नित्यं ताश्च स्वस्ति ब्रुवन्तु नः ॥ भो ब्राह्मणाः० कर्मणे स्वस्ति (कर्मणि स्वस्तिति) भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्रा० आयुष्मते स्वस्ति ॥ एवं त्रिः । ऋग्वेदे० स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेकुणस्वस्त्यभिया वाममेति । सा नोऽअमासोऽअरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥ (स्वस्तये वायुमुपब्रवामहे सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तये आदित्यासो भवन्तु नः : ब्राह्मणम् - आदित्य उदयनीयः पथ्ययैवेतः स्वस्त्या प्रयन्ति पथ्यां स्वस्तिमभ्युयन्ति स्वस्त्यैवेतः प्रयन्ति स्वस्त्युयन्ति स्वस्त्युद्यन्ति ॥ कृ० यजु० ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः । स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः । स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ अष्टौ देवा वसवः । सोम्यासः । चतस्रोदेवी रजराः श्रविष्ठाः । ते यज्ञंपान्तु रजसः परस्तात् । संवत्सरीणममृतꣳस्वस्ति ॥ शु० यजु० ॐ स्वस्तिनऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ब्राह्मणम्-गातुंयज्ञाय गातुंयज्ञपतयऽइति गातुꣳह्येष यज्ञायेच्छति गातुंयज्ञपतये यो यज्ञस्य सꣳस्थान् दैवी स्वस्ति रस्तुनः स्वस्तिर्मानुषेभ्यऽइति स्वस्तिनो देवत्रास्तु स्वस्तिर्मानुष्यत्रे त्येवैतदाहोर्ध्वं जिगातु भेषजमित्यूर्ध्वो नो

यज्ञ्यज्ञो देवलोकञ्यजत्वित्ये वैतदाह शन्नोऽअस्तु द्विपदे शञ्चतुष्पदऽइत्ये तावद्वाऽइद ६ सर्वं यावद् द्विपाच्चैव चतुष्पाच्च तस्माऽएवैतद्यज्ञस्य स ५ स्थां गत्वा शंकरोति तस्मादाह शन्नोऽअस्तु द्विपदे

२ २र २र ३ र १ र र ३ २

शञ्चतुष्पदे ॥ साम० ॐ त्रातारमिन्द्रमविता । रमि २ ३ न्द्रम् । हवे हवे सुहव ५ शू । रमी २३ न्द्राम् ।

१ ३ २ २१ २ १ २ १ र २ २

हुवाइ । नुशक्रं पुरुहू । तमी २३ न्द्राम् । इद२ह । वाई: । मघवा । वा ३४३ इ । तू ३ वा ५ इन्द्रा ६५६: ॥ वेय० प्र-९ प्र-साम० ३ ॥ अथर्व० स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः । विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥ का-१-६-३१-४ ॥

श्रीः - समुद्रमथनाज्जाता जगदानन्दकारिका । हरिप्रिया च माङ्गल्या तां श्रियं च ब्रुवन्तु नः ॥ भो ब्राह्मणाः० कर्मणः श्रीरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्रा० अस्तु श्रीः । एवं त्रिः ॥ ऋग्वेदे-ॐ श्रिये जातः श्रिय आनिरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति । श्रियं वसाना अमृतत्वमायन् भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥ (ब्रा०) श्रिय एवैनं तच्छ्रिया मादधाति संततमृचा वषट्कृत्यं संधीयते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ॥ कृ० यजु० ॐ ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ । अहोरात्रे पार्श्वे । नक्षत्राणि रूपम् । अश्विनौ व्यात्तम् । इष्टं म निषाण । अमुं म निषाण । सर्वं म निषाण ॥ ब्रा० यस्मिन् ब्रह्माभ्यजयत सर्वमेतत् । अमुञ्च लोकमिदमु च सर्वम् । तन्नो नक्षत्रमभिजिद्विजित्य । श्रियं दधात्वहृणीयमानम् । अहेर्बुध्नियमन्त्रं मे गोपाय । यमृषयस्त्रयिविदा विदुः । ऋचः सामानि यजूंषि । सा हि श्रीरमृतासताम् ॥ शु० यजु० ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्व्वलोकम्मऽइषाण ॥३१-२२॥ ब्रा० ॐ तेनोहतत्तऽईजे दक्षः पार्वतिस्तऽइमेऽप्ये तर्हि दाक्षायणा राज्यवमिवैव प्राप्ता राज्यमिव ह्वै प्राप्नोति यऽएवं विद्वाने तेनयज्ञेन यजते तस्माद्वाऽएतेन यजेत स वाऽएकैकऽएवानूचीनाहं पुरोडाशो भवत्येतेनोह्यस्यासपत्नानुपबाधा

२र ५ १ १ २ १ २२

श्रीर्भवति । साम० श्रायन्त इव सू ४ रायां । विश्वा ५२ इदिन्द्रा ५२ । स्यभा ५२ क्षाता । वासूनि

२ १र २र २ १ २ १ २२१ र १ २ १र २ र

जातो जनिमा । नियोजा १ सा ५२ । प्रतिभागंनदी २ धिमः । प्रा २३ ती । भागांना ३ दा ।

१ ३ २ १ ५ २ ११११

हुं । धिमा ३: । ओ २३४ वा । हे २३४५ ॥ वेय० प्र-७ द्वि० साम-५ ॥ अथर्व० एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरिह यातु । अस्य श्रियमुपसंयात सर्वऽउग्रस्य चेतुः संमनसः सजाताः ॥६-८-७३-१॥

जलमादाय-अस्मिन् पुण्याहवाचने न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्टब्राह्मणानां वचनाद् इष्टदेवताप्रसादाच्च स सर्वः परिपूर्णोऽस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्रा० अस्तु परिपूर्णः । सं० अनेन पुण्याहवाचनेन कर्माङ्गदेवताः प्रीयन्ताम् ।

२२ अभिषेकः ।

अभिषेके पत्नी वामतः । एकस्मिन् पात्रे पात्रपातितजलं गृहीत्वाऽविधुराश्चत्वारो ब्राह्मणा उदङ्मुखास्तिष्ठन्तः प्राङ्मुखमुपविष्टं सपत्नीकं यजमानं दूर्वाम्रपल्लवैर्वक्ष्यमाणमन्त्रैरभिषिञ्चेयुः ॥ मन्त्राः - १ ॐ पयः पृथिव्यां० २ पञ्चनद्यः० ३ पुनन्तुमा० ४ वरुणस्योत्तम्भन० ५ देवस्यत्वा सवितु ३ प्रसवे श्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्ने ३ साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥१८-३७॥ ७ देवस्यत्वा सवितु ३ प्रसवे श्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्य्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसे भिषिञ्चामि ॥२०-३॥ ८ विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआसुव ॥३०-३॥ ९ धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचेतसो व्विश्वेदेवा यज्ञं प्रावन्तु न ३ शुभे ॥१८-७६॥ १० त्वँय्यविष्ठ दाशुषो नॄँ ३ पाहि शृणुधी गिरः । रक्षातोकमुतत्मना ॥१३-५२॥ ११ अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्रदातारन्तारिषऽऊर्ज्जन्नोधेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥११-८३॥ १२ द्यौः शान्तिः १३ यतो यतः० । ब्राह्मणम् - ॐ पालाशं भवति, ०तेन ब्राह्मणोऽभिषिञ्चति ब्रह्म वै पलाशो ब्रह्मणैवैनमेतदभिषिञ्चति ॥ २ औदुम्बरं भवति, तेन स्वोऽभिषिञ्चत्यन्नं वाऽऊर्गुदुम्बरऽऊर्ग्वै स्वं यावद्वै पुरुषस्य स्वं भवति नैव तावदशनायति तेनोर्क् स्वं तस्मादौदुम्बरेण स्वोऽभिषिञ्चति ॥ ३ नैय्यग्रोध पादं भवति, तेन मित्रो राजन्योऽभिषिञ्चति, पद्भिर्वैन्यग्रोधः प्रतिष्ठितो मित्रेण वै राजन्यः प्रतिष्ठित स्तस्मान्नैय्यग्रोधपादेन मित्रो राजन्योऽभिषिञ्चति ॥ ४ आश्वत्थं भवति, तेन वैश्योऽभिषिञ्चति स यदेवादोश्वत्थे तिष्ठतऽइन्द्रो मरुतऽउपामन्त्रयते तस्मादाश्वत्थेन वैश्योऽभिषिञ्चति ॥ यद्देवकल्पाञ्जुहोति, प्राणाव्रैकल्पाऽअमृतमुवै प्राणाऽअमृतेनैवैनमेतदभिषिञ्चति ॥ (सुरास्त्वामभि० रापो निम्नन्तु सर्वदा) ६ सर्वेषां वाऽएषव्वेदानाᳪरसो यत् साम सर्वेषामेवैनमेतद् वेदाना ᳪ रसेनाभिषिञ्चति ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः सुशान्ति र्भवतु । सर्वारिष्टसर्वोपद्रवशान्तिरस्तु ॥ इत्यभिषेकः ।

यजमानः स्वस्थाने उपविश्य-उदकोपस्पर्शः । सं० अभिषेककर्तृभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथोत्साहं दक्षिणां दास्ये । तेन कर्माङ्गदेवताः प्रीयन्ताम् ।

(महाराष्ट्रदेशीयानामाचारः - पतिपुत्रवतीभिर्वृद्धसुवासिनीभिरुभयोर्नीराजनं कार्यम् - ॐ अनाधृष्टा पुरस्तादग्ने राधिपत्यऽआयुर्म्मेदा ३ पुत्रवती दक्षिणतऽइन्द्रस्याधिपत्ये प्रजाम्मेदा३ । सुषदा पश्चाद् देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्म्मेदाऽआश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषम्मेदा३ । विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पते राधिपत्यऽओजोमेदा व्विश्वाभ्यो मानाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥३७-१२॥) सुवासिनीनां सत्कारं कुर्याद् । इति पुण्याहवाचनम् अभिषेकश्च ।

(प्रथमदिने प्रारम्भानन्तरं प्रतिमानां शोभायात्रा ग्रामनगरान्यतर प्रादक्षिण्येनान्यैर्भवतैः सम्पादनीया । अत्रावसरे समाचाराज्जलयात्रा विधिरपि चिकीर्षितश्चेत् सम्पादनीयः । असम्भवे द्वितीयेऽह्निप्रातर्जलयात्रा, तत्प्रयोगो वक्ष्यतेऽग्रे ।)

२३ वर्धिनीपूजनम् ।

(द्वादश चतुर्दशषोडशाष्टादशाद्यन्यतम हस्तमानमितोऽर्धहस्त - हस्तोच्छ्रयान्यतरोच्छ्रयश्चतुरस्रो भूभागविशेषो यथोक्तकुण्डवेद्यादिसहितो मण्डपत्वेन कुण्डकल्पलतायां परिगणितः । पुनश्च वर्तमानकाले द्वारतोरणफलकस्तम्भकीलकध्वजपताकाच्छादन शिखरादिकं कुतश्चिद् भृत्या क्रीत्वा वाऽनीय छायारूपो मण्डपः क्रियते । कुण्डमण्डपादिग्रन्थेषु यथोक्त मानानुरोधेन काष्ठच्छेदनकर्तनवृक्षनालङ्करणादि सम्पादने भूयान् व्ययो भवति । प्रतियजमानं हस्तमानभेदाद् यत्रान्तरे द्वारतोरणादिकं पुनरुपयोजयितुं न शक्यम् । यत्र मण्डपे द्वारतोरणादिकं यथोक्तमानेन कृतं स्यात्, तत्रैव मण्डपपूजा क्रियते याज्ञिकैः । तथापि मण्डपपूजाऽग्रे वक्ष्यते । मण्डपाद्बहिर्नान्दीश्राद्धवरणान्तकरणे मण्डपद्वारादिसत्त्वे वर्द्धिनीपूजनं मण्डपपूजा मण्डपप्रवेशश्च कार्यः । केवलं नवचण्डीशतचण्डीविष्णुयागरुद्रयाग प्रतिष्ठादिषु कुण्डवेदिकादि कृतं स्यात्, यथोक्तस्तम्भादि रहित श्छायामण्डपः स्यात्, मण्डपान्तश्चोपविश्य वरणादिकं क्रियेत, तत्रेदं वर्धिनीपूजन मण्डपपूजनमण्डपप्रवेशादिकरणमनावश्यकम् । छायामण्डपसत्त्वे मण्डपाङ्गं गणपतिपूजनं वास्तु पूजनञ्च न करणीयम् ।

स्मार्ताग्निहोत्र ईशान्यां मणिकाविधानस्य कर्मार्थत्ववद्वर्धिनीकलशस्यापि शान्तिकपौष्टिकादिकर्मार्थकजलपात्रत्वादैशान्यां वचनान्तरादाग्नेय्यां वा मण्डपे निधानं भवति । तत्र देवताः पुनः कलशस्य मुखे० देवदानवसंवादे० इत्यादिश्लोकोक्ता गृहीता इति सुस्थम् ।)

वर्धिनीपूजनप्रयोगः ।

मण्डपाद्बहिः पश्चिम द्वारसमीपे सन्निविश्य यजमानः - संकल्पः - अद्य० पु० तिथौ करिष्यमाण अमुकयागाङ्गभूतंवर्धिनी कलशपूजनं करिष्ये । तत्रादौ गणेशस्मरणं कलशासादनञ्च करिष्ये । काष्ठपीठे श्वेतवस्त्रे व्रीहिराशौ पञ्चवर्ण तण्डुलाष्टदले वा सुवर्णरजत ताम्रमृत्तिकान्यतममयकलशं संस्थापयेत् । ॐ गणानान्त्वा० गणपतये नमः सर्वोपचारार्थं नमस्करोमि । (पूर्वं कलशासादने न कृतं चेद्, इदानीं) महीद्यौरित्यादि पूर्णपात्रनिधानवरुणावाहनपूजनान्तं कुर्यात् । आदौ कलशं प्रार्थयेत् - ॐ वर्धिनि त्वं महापूता महातीर्थोदकान्विता । वर्धिनि त्वं जगन्माता भव त्वं कुलवर्धिनी । तव तोयेन कलशान् कर्मार्थं पूरयाम्यहम् । इति नत्वा हस्ते अक्षतान् गृहीत्वाऽवाहयेत् -

(ॐ भू० वर्धिनि इहागच्छ इह तिष्ठ, वर्धिन्यै नमः वर्धिनीम् आवाहयामिस्थापयामि)

१. ॐ ब्रह्मजज्ञानं० ब्रह्मन्० ब्रह्मणे० ब्रह्माणम्०

२. ॐ आशुः शिशानो० वृषभेश्वर० वृषभेश्वराय० वृषभेश्वरं०

३. ॐ इदं विष्णु० विष्णो० विष्णवे० विष्णुम्०

४. ॐ आपोऽअस्मान्॰ आपः॰ अद्भ्यो॰ अपः॰
५. ॐ इमम्मे वरुण॰ सप्तसागरा॰ सप्तसागरेभ्यो॰ सप्तसागरान्॰
६. ॐ मही द्यौः॰ महि॰ मह्यै॰ महीम्॰
७. ॐ पञ्चनद्यः॰ गङ्गादिनदीभ्यो॰ गङ्गादिनदीः॰
८. ॐ ये तीर्थानि॰ तीर्थानि॰ तीर्थेभ्यो॰ तीर्थानि॰
९. ॐ गायत्री त्रिष्टुप्॰ गायत्रि॰ गायत्र्यै॰ गायत्रीम्॰
१०. ॐ अग्निमीळे॰ ऋग्वेद॰ ऋग्वेदाय॰ ऋग्वेदम्॰
११. ॐ इषेत्वोर्ज्जेत्वा॰ यजुर्वेद॰ यजुर्वेदाय॰ यजुर्वेदम्॰
१२. ॐ अग्न आयाहि॰ सामवेद॰ सामवेदाय॰ सामवेदम्॰
१३. ॐ शन्नो देवी॰ अथर्ववेद॰ अथर्ववेदाय॰ अथर्ववेदम्॰
१४. ॐ अग्निन्दूतं॰ अग्ने॰ अग्नये॰ अग्निम्॰
१५. ॐ यज्ञोदेवानां॰ व्दादशादित्याः॰ व्दादशादित्येभ्यो॰ व्दादशादित्यान्॰
१६. ॐ रुद्राः सध्सृज्य॰ एकादशरुद्राः॰ एकादशरुद्रेभ्यो॰ एकादशरुद्रान्॰
१७. ॐ मरुतो यस्य॰ मरुतः॰ मरुद्भ्यो॰ मरुतः॰
१८. ॐ ऋताषाड्ऋत॰ गन्धर्वाः॰ गन्धर्वेभ्यो॰ गन्धर्वान्॰
१९. ॐ सहस्तोमाः सह॰ सप्तर्षयः॰ सप्तर्षिभ्यो॰ सप्तर्षीन्॰
२०. ॐ तत्त्वा यामि॰ वरुण॰ वरुणाय॰ वरुणम्॰
२१. ॐ आनो नियुद्भिः॰ वायो॰ वायवे॰ वायुम्॰
२२. ॐ वय ह सोम॰ धनद॰ धनदाय॰ धनदम्॰
२३. ॐ सुगन्नु पन्थां॰ यम॰ यमाय॰ यमम्॰
२४. ॐ यज्ञेन यज्ञ॰ धर्म॰ धर्माय॰ धर्मम्॰
२५. ॐ नमः शम्भवाय॰ शिव॰ शिवाय॰ शिवम्॰
२६. ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः॰ यज्ञपुरुष॰ यज्ञपुरुषाय॰ यज्ञपुरुषं॰
२७. ॐ विश्वेदेवासऽआगत॰ विश्वेदेवाः॰ विश्वेभ्यो देवेभ्यो॰ विश्वान् देवान्॰

आवाहयामि स्थापयामि । ॐ मनोजूति॰ वर्धिनी कलशाधिष्ठितब्रह्मादि देवताः सुप्रतिष्ठिताः वरदा भवत-इति २७ देवान् प्रतिष्ठाप्य-ॐ वर्धिनीकलशाधिष्ठितब्रह्मादिदेवेभ्यो नमः-इति षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा संपूज्य प्रार्थयेत्- ॐ वर्धिनि त्वं महापूता महातीर्थोदकान्विता । वर्धिनि त्वं जगन्माता भव त्वं कुलवर्धिनी । तव तोयेन कलशान् पूरयामि श्रिये मुदा ॥ इति प्रार्थ्य-जलमादाय अनया पूजया वर्धिनीकलशाधिष्ठितब्रह्मादिदेवताः प्रीयन्ताम् (मण्डपपूजा वक्ष्यते)

२४ मण्डपप्रवेशः ।

ततः साचार्यर्त्विग् यजमानः पत्नीहस्तयोः वर्धिनीकलशं दत्त्वा तामग्रतः कृत्वा ॐ कनिक्रदज्जनुषं० आनो भद्राः० द्यौ शान्तिः० इत्यादिमङ्गलवेदघोषेण शङ्खदुन्दुभ्यादिघोषेण च शान्तिसूक्तं-अथ साम गायति० इत्यादिकं पठन् यथोक्तप्रकारेण षोडशहस्तादिमण्डपं प्रदक्षिणी कृत्य पश्चिमद्वारि कुम्भं पीठे निधाय-उपविशेत् ।

सं० मण्डपप्रवेशाङ्गभूतं भूमिपूजनं बलिदानं च करिष्ये । अक्षतान् गृहीत्वा भूमिं ध्यायेत्-चतुर्भुजां शुक्लवर्णां कूर्मपृष्ठोपरि स्थिताम् । शङ्ख पद्मधरां चक्रशूलयुक्तां धरां भजेत् ॥१॥ आगच्छ देवि कल्याणि वसुधे लोकधारिणि । पृथिवि ब्रह्मदत्तासि काश्यपेनाभिवन्दिता ॥ ॐ भूरसि भूमिरस्य० ॐ सपरिवारायै भूम्यैनमः इति गन्धादि पञ्चोपचारैः संपूज्य । पुष्पाञ्जलिमादाय-उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । दंष्ट्राग्रे लीलया देवि यज्ञे भार्गवि रम्यताम्-इति दण्डवत् प्रणम्य । ततोऽर्घपात्रे गन्धपुष्पाक्षताद्यष्टाङ्गमर्घं गृहीत्वा जानुभ्यां धरणीं गत्वाऽर्घं दद्यात् । तत्र मन्त्राः-ब्रह्मणा निर्मिते देवि विष्णुना शङ्करेण च । पार्वत्या चैव गायत्र्या स्कन्देन श्रवणेन च ॥१॥ यमेन पूजिते देवि धर्मस्य विजिगीषया । सौभाग्यं देहि पुत्रांश्च धनं रूपञ्च पूजिते ॥२॥ गृहाणार्घमिमं देवि सौभाग्यञ्च प्रयच्छ मे ॥ ॐ सपरिवारायैभूम्यै० अर्घं समर्पयामि ॥ ततो गन्धादिना संपूज्य-उपचारानिमान् तुभ्यं ददामि परमेश्वरि । भक्त्या गृहाण देवेशि त्वामहं शरणं गतः-इति निवेदयेत् । ततो गन्धपुष्पपायसलाजसहितं सदीपं बलिं दद्यात्-ॐ सपरिवारायै भूम्यै नमः आसादितं सदीपं बलिं समर्पयामि ॥

ततः प्रार्थयेत् - ॐ नन्दे नन्दय वासिष्ठि वसुभिः प्रजया सह । जये भार्गवि दायादे प्रजानां जयमावह ॥१॥ पूर्णे गिरिशदायादे पूर्णान् कामान् कुरुष्व मे । भद्रे काश्यपि दायादे कुरु भद्रां मतिं मम ॥२॥ सर्व बीजसमायुक्ते सर्वरत्नौषधीवृते । रुचिरे नन्दने नन्दे वासिष्ठि रम्यतामिह ॥३॥ प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीयसि । सुभगे सुव्रते देवि यज्ञे भार्गवि रम्यताम् ॥४॥ पूजिते परमाचार्यैर्गन्धमाल्यैरलंकृते । भवभूतिकरि देवि यज्ञे काश्यपि रम्यताम् ॥५॥ अव्यक्ते व्याहृते पूर्णे शुभे चाङ्गिरसः सुते । इष्टदे त्वं प्रयच्छेष्टं त्वामहं शरणं गतः ॥६॥ देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे । मनुष्यधनहस्त्यश्व पशुवृद्धिकरी भव ॥७॥ इति प्रार्थना ॥

ततो यजमानो मण्डपद्वारतोरणफलककीलकध्वजपताकाशिखरादिकं ॐ मण्डपदेवताभ्यो नमः इति गन्धपुष्पाक्षतैः संपूज्य यज० ॐ भो आचार्य प्रविशामि । आ० सुखेन प्रविश-इत्यनुज्ञातः पत्नीहस्तयोः वर्धिनीकलशं दत्त्वा तामग्रतः कृत्वा दक्षिणपादेन प्रविश्य द्वारवामशाखां दक्षिणांसेन स्पृशन् ॐ द्यौः शान्तिः० २ क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये० शग्योः ॥ इति मन्त्राभ्यां साचार्यर्त्विक् सपत्नीकः प्रविश्य आग्नेय्यामैशान्यां वा व्रीहिराशौ वर्धिनीकलशं स्थापयेत् ॥

ततो मण्डपस्यैशान्यां ग्रहपीठादधः कोणे लाजसर्षपव्रीहिराशिं कृत्वा साक्षतपूर्णपात्रं कलशं निधाय

पूर्णपात्रे नवग्रहान् नाममन्त्रैरावाह्य संपूज्य विसृज्य तं कलशमादाय ऐशानीमारभ्यैशानीपर्यन्तं जलधारां दुग्धधाराञ्च प्रदक्षिणक्रमेण पातयेत् - ॐ पुनन्तु मा पितामहाः० इति पावमानीभिर्ऋग्भिः परिषिञ्चेत् । त्रिगुणीकृतसूत्रेण मण्डपं वेष्टयेत् ।

ततो मण्डपं प्रविश्य अग्न्यायतनात् पश्चिमत उपविश्य वामहस्ते गौरसर्षपान् तदुपरि दक्षिणहस्तं निधाय-ॐ रक्षोहणं वलगहनं० रक्षोहणोवो वलगहनः० रक्षसां भागोऽसि० रक्षोहाविश्व० वा-कृणुष्वपाजः० प्रमृणीहि शत्रून् - अपसर्पन्तु० अपक्रामन्तु० यदत्र संस्थितं० भूतानि राक्षसा० देवयागं करोम्यहम्- एभिर्मन्त्रैश्चतुर्दिक्षु सर्षपान् विकीर्य वामपादपार्ष्णिना घातत्रयं कृत्वा अप उपस्पृशेत् ।

ततः कांस्यपात्रे-गोमूत्रम्-ॐ तत्सवितुः गोमयं-ॐ गन्धद्वारां० क्षीरं-ॐ आप्यायस्व० दधि-ॐ दधिक्राव्णो- घृतम्-ॐ तेजोऽसि०कुशोदकम् ॐ देवस्यत्त्वा० हस्ताभ्याम्-इति मन्त्रैरेकीकृत्य कुशैः ॐ इति प्रणवेन आलोड्य - ॐ इति प्रणवेन अभिमन्त्र्य कुण्डमण्डपवेदिकापीठादिकं पञ्चगव्येन दर्भैः प्रोक्षेत् - ॐ आपोहिष्ठा० ३ अपवित्रः० सर्वेषां कुण्डमण्डपादीनां यज्ञसम्भाराणाञ्च पवित्रताऽस्तु-इति प्रोक्षणं कुर्यात् ।

पश्चिमद्वारे प्राङ्मुख उपविश्य अञ्जली पुष्पाण्यादाय - ॐ स्वस्तिन इन्द्रो० (आवो देवास ईमहेवामं प्रयत्यध्वरे । आवोदेवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे (४-५) ॐ देवाः, आयान्तु, (इत्युच्चैर्वदन् ऊर्ध्वंप्रक्षिपेत् । यातुधानाः अपयान्तु- (ॐ अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमोदैव्योभिषक् । अहींश्च सर्वाञ् जम्भयन् सर्व्वांश्च यातुधान्योऽधराचीःपरासुव (१६-५) इति यातु धानादीन् सर्षपैः दूरीकृत्य-भूमौ वामपादेन घातत्रयं कृत्वा अप उपस्पृश्य भूमौ प्रादेशं कृत्वा-ॐ विष्णो देवयजनं रक्ष - (साव्विश्वायुःसाव्विश्वकर्म्मा सा व्विश्वधायाः । इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मिव्विष्णो हव्यꣳ रक्ष ॥१-४॥ ॐ इयं व्वेदिःपरोऽअन्तः पृथिव्याऽअयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । अयꣳ सोमोवृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्माऽयं वाचः परमं व्योम ॥२३-६२॥ सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्म्महत्यर्णवे । दधेह गर्भमृत्त्वियं यतो जातःप्रजापतिः ॥२३-६३॥ ॐ भूमिर्भूमिमवागान्माता मातरमप्यगात् । भूयाम पुत्रैः पशुभिर्यो नो द्वेष्टि स भिद्यताम् ॥ इति भूमिं स्पृष्ट्वा प्रणमेत् ॥ इति मण्डपप्रवेशः ॥

२५ मण्डपद्वारतोरणस्तम्भकलशध्वजपताकादिपूजा ।

(इयं पद्मनाभोक्ता यथोक्तद्वारतोरणादिसत्त्वे कार्या, नान्यत्र । विषयेऽस्मिन् पूर्वं विवेचितम्)

यजमानो मण्डपान्तः प्राङ्मुख उपविश्य-तत्र स्तम्भद्वारतोरणादिषु ध्वज पताकाकलशनिधानादिकं पूर्वमेव सम्पाद्य - संकल्पः - अद्य पू० तिथौ करिष्यमाणामुककर्माङ्गत्वेन मण्डपस्तम्भदेवतादिपूजनं करिष्ये । हस्ते अक्षतान् गृहीत्वा - मध्यवेद्या ईशानस्तम्भे ⓒ १ ॐ ब्रह्मजज्ञानं० ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणं आवाहयामि स्थापयामि - २ सावित्र्यै० सावित्रीम्० ३ वास्तुदेवतायै० वास्तुदेवताम्, ४ ब्राह्म्यै०

ब्राह्मीम्० ५ गङ्गायै० गङ्गाम्० इत्यावाह्य गन्धादिभिः ॐ ब्रह्मादिदेवताभ्यो नमः - इति संपूजयेत् । स्तम्भमालभ्य ॐ ऊर्ध्वऽऊषुणऽऊतये तिष्ठदिवो न सविता । ऊर्ध्वोव्वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्व्वाघद्भिर्व्विह्वयामहे ॥११-४२॥ स्तम्भाग्रे-ॐ नागमात्रे नमः - इति शाखामालभ्य - ॐ आयङ्गौः ० इति शाखाबन्धनम् । शाखामनुमन्त्र्य स्तम्भानुमन्त्रणम् - ॐ यतो यतः० पशुभ्यः ॥

मध्यवेद्याग्नेयस्तम्भे ॐ इदं विष्णु० १ ॐ विष्णवे० विष्णुम्० २ लक्ष्म्यै० लक्ष्मीम्० ३ नन्दायै० नन्दां० ४ वैष्णव्यै० वैष्णवीम्० स्तम्भालम्भनम् ॐ ऊर्ध्वऊषुण० । शाखाबन्धनं-ॐ आयङ्गौः ० । शाखानुमन्त्रणम् ॐ यतो यतः० पशुभ्यः ॥

मध्यवेदीनैर्ऋत्यस्तम्भे ॐ नमः शम्भवायच० १ ॐ शङ्कराय० शङ्करं० २ गौर्यै० गौरीं० ३ माहेश्वर्यै० माहेश्वरीं० ४ शोभनायै० शोभनाम्-इत्यावाह्य गन्धादिभिः ॐ शिवादिभ्यो नमः इति संपूज्य । स्तम्भालम्भनम्-ॐ ऊर्ध्वऽऊषुणः० शाखाबन्धनं-ॐ आयङ्गौः० । शाखानुमन्त्रणम् ॐ यतोयतः० पशुभ्यः ॥

मध्यवेदीवायव्यस्तम्भे ॐ त्रातारमिन्द्र० १ ॐ इन्द्राय० इन्द्रं० २ इन्द्राण्यै० इन्द्राणीं ३ आनन्दायै० आनन्दाम्० ४ विभूत्यै० विभूतिम्० इत्यावाह्य गन्धादिभिः ॐ इन्द्रादिभ्यो नमः संपूज्य । स्तम्भालम्भनम्-ॐ ऊर्ध्वऊषुणः० शाखाबन्धनम्-ॐ आयङ्गौः० शाखानुमन्त्रणम्-ॐ यतोयतः० पशुभ्यः ॥

(१) यजमानो मण्डपाद् बहिरागत्य ईशानकोणादारभ्य प्रादक्षिण्येन द्वादशस्तम्भान् पूजयेत्-ईशानस्तम्भे ॐ आकृष्णेन० १ सूर्याय० सूर्यं० २ शङ्करात्मने० शङ्करात्मानं० ३ सावित्र्यै० सावित्रीम्० ४ मङ्गलायै० मङ्गलाम्० इत्यावाह्य-ॐ सूर्यादिभ्यो नमः इति सम्पूज्य-स्तम्भालम्भनशाखाबन्धन-शाखानुमन्त्रणानि उपरिवत् ।

(२) ईशान पूर्वान्तरालस्तम्भे ॐ गणानान्त्वा० १ ॐ गणपतये० गणपतिं० २ सरस्वत्यै० सरस्वतीम्० ३ विघ्नहारिण्यै० विघ्नहारिणीम्० ४ जयायै० इत्यावाह्य ॐ गणपत्यादिभ्यो नमः इति सम्पूज्य शेषमुपरिवत् ॥ ३) पूर्वाग्नेयान्तरालस्तम्भे ॐ यमायत्वा० १ ॐ यमाय० यमं० २ पूर्वसंध्यायै० पूर्वसन्ध्याम्० ३ अञ्जन्यै० अञ्जनीं० ४ क्रूरायै० क्रूराम्० ५ नियन्त्र्यै० नियन्त्रीम्० ॐ यमादिभ्यो नमः इति संपूज्य शेषमुपरिवत् ॥ ४) बाह्याग्नेयकोणस्तम्भे ॐ आयङ्गौः १ नागराजाय० नागराजम्० २ मध्यमसन्ध्यायै० मध्यमसन्ध्याम्० ३ धरायै० धराम्० ४ महापद्मायै० महापद्माम् - इत्यावाह्य ॐ नागराजादिभ्यो नमः इति सम्पूज्य शेषमुपरिवत् । ५) आग्नेयदक्षिणान्तरालस्तम्भे ॐ यदक्रन्दः० ॐ स्कन्दाय० स्कन्दम्० २ पश्चिमसन्ध्यायै० पश्चिमसन्ध्याम्० ३ जयायै० जयाम्० ४ शक्त्यै० शक्तिम् ० इत्यावाह्य ॐ स्कन्दादिभ्यो नमः इति संपूज्य शेषमुपरिवत् ॥ ६) दक्षिणनैर्ऋत्यान्तरालस्तम्भे ॐ आनो नियुद्भिः० १ ॐ वायवे० वायुम्० २ वायव्यै० वायवीम्० ३ मध्यमसन्ध्यायै० मध्यमसन्ध्याम्० ४

गायत्र्यै० गायत्रीम्० इत्यावाह्य-ॐ वाय्वादिभ्यो नमः इति संपूज्य शेषमुपरिवत् ॥ ७॥बाह्यनैर्ऋत्यस्तम्भे॰ ॐ आप्यायस्व० १ ॐ सोमाय० सोमम्० २ सावित्र्यै० सावित्रीम् ३ अमृतकलायै० अमृतकलाम्० ४ विजयायै० विजयाम्० ५ पश्चिमसन्ध्यायै० पश्चिमसन्ध्याम्० इत्यावाह्य ॐ सोमादिभ्यो नमः-इति संपूज्य शेषमुपरिवत् ॥८॥ निर्ऋतिपश्चिमान्तरालस्तम्भे-ॐ इमम्मे वरुण० १ वरुणाय० वरुणम्० २ वारुण्यै० वारुणीम्० ३ पाशधारिण्यै० पाशधारिणीम्० ४ बृहस्पतये० बृहस्पतिम्० इत्यावाह्य ॐ वरुणादिभ्यो नमः इति संपूज्य शेषमुपरिवत् ॥९॥ पश्चिमवायव्यान्तरालस्तम्भे-ॐ सुगावो देवाः० (वसवस्त्वा कृण्वन्तु०) १ ॐ अष्टवसुभ्यो० अष्टवसून्० २ विनतायै० विनताम्० ३ अणिमायै० अणिमाम्० ४ विभूत्यै० विभूतिम्० ५ गरिमायै० गरिमाम्० इत्यावाह्य-ॐ वस्वादिभ्यो नमः-इति संपूज्यशेषमुपरिवत् ॥१०॥बाह्यवायव्यस्तम्भे॰ ॐ वयध्सोम० (सोमो धेनु) १ ॐ धनदाय० धनदम्० २ अदित्यै० अदितिम्० ३ लघिमायै० लघिमाम्० ४ सिनीवाल्यै० सिनीवालीम्० इत्यावाह्य ॐ धनदादिभ्यो नमः-इति संपूज्य शेषमुपरिवत् ॥११॥ वायव्योत्तरान्तरालस्तम्भे-१ ॐ बृहस्पते अति० बृहस्पतये० बृहस्पतिम्० २ पूर्णमास्यै० पूर्णमासीम्० ३ सावित्र्यै० सावित्रीम्० इत्यावाह्य ॐ बृहस्पत्यादिभ्यो नमः-इति संपूज्य शेषमुपरिवत् ॥१२॥ उत्तरेशानान्तरालस्तम्भे-ॐ ॐ विश्वकर्म्मन् हविषा० १ विश्वकर्मणे० विश्वकर्माणं० २ सिनीवाल्यै० सिनीवालीम्० ३ वास्तुदेवतायै० वास्तु देवताम्० ४ सावित्र्यै० सावित्रीम्० इत्यावाह्य ॐ विश्वकर्मादिभ्यो नमः इति संपूज्य-स्तम्भालम्भनम् ॐ ऊर्ध्वऊषुणः० । शाखाबन्धनम्-ॐ आयङ्गौः शाखानुमन्त्रणम्-ॐ यतो यतः० ॥ इति षोडशस्तम्भपूजा ।

तोरणपूजनम् ।

साचार्यर्त्विग् यजमानः पूजाकलशादिसम्भारानादाय मण्डपाद् बहिः पूर्वद्वाराद् हस्तमात्रे दूरे वटतोरणमाश्वत्थं वा सुहृद्नामकं सुशोभननामकं वा तोरणद्वारमुपेत्य पुरतः उपविश्य फलकोपरिशैवे देवीयागे त्रिशूलकीलाङ्कितं गणेशयागे अङ्कुशयुतं सौरे पद्मयुतं वैष्णवे शङ्खाङ्कितं कीलमारोप्य-सँ० अद्य० तिथौ-तोरणद्वारपूजादिकं करिष्ये । ॐ अग्निमीळे० सुहृद्तोरणाय नमः (सुशोभनतोरणाय नमः) दक्षिणशाखायां-ॐ राहवे नमः, वामशाखायां-ॐ बृहस्पतये नमः इत्यावाह्य-पूर्वतोरणद्वारदेवताभ्यो नमः-इति गन्धादिभिः संपूज्य दक्षिण द्वारवामशाखासमीपे दूर्वापञ्चपल्लवादिसंयुतं संस्कृतं कलशमेकमाग्नेयमते कलशद्वयं वा निधाय ॐ घृताय नमः - इत्यावाह्य आग्नेयमते १ प्रशान्ताय नमः २ शिशिराय नमः-पूजयेत् ॥ सूक्तजापकौ ऋग्वेदिनौ ऋत्विजौ-होमकाले सूक्तजपार्थं वां वृणे- इति वृणीयात् ।

दक्षिणतोरणद्वारे औदुम्बरं प्लाक्षं वा सुभद्रं विकटं वा उपर्युक्तकीलान्वितं वैष्णवे चक्रकीलक तोरणम्-ॐ इषेत्वोर्ज्जेत्वा० ॐ सुभद्रतोरणाय नमः (विकटतोरणाय नमः) दक्षिणशाखाया-सूर्याय नमः-वामशाखायां-भौमाय नमः-इत्यावाह्य ॐ दक्षिणतोरणद्वारदेवताभ्यो नमः-इति संपूज्य

द्वारशाखाद्वयसमीपे कलशमेकं द्वयं वा ॐ धरायै नमः (आग्नेयमते-१ पर्जन्याय नमः २ अशोकाय नमः इति पूजयेत् । सूक्तजपार्थं द्वौ यजुर्वेदिनौ होमकाले सूक्तजपार्थं वां वृणे-इति वृणुयात् । ततः पश्चिमतोरणाद्वारसमीपं गत्वा पश्चिमे प्लाक्षमौदुम्बरं वा सुकर्मसंज्ञकं सुभीमसंज्ञकं वा-उपर्युक्तकीलाङ्कितं वैष्णवे गदाकीलकान्वितं-ॐ अग्न आयाहि० वीतये० ॐ सुकर्मतोरणाय नमः (सुभीमतो रणाय नमः-दक्षिणशाखायां-शुक्रायनमः, वामशाखायां-बुधाय नमः इत्यावाह्य-पश्चिमतोरणद्वारदेवताभ्यो नमः इति संपूज्य द्वारशाखाद्वयसमीपे कलशं निधाय-ॐ वाक्पतये नमः (आग्नेयमते कलश द्वयं वा- १ भूतसंजीवनाय नमः २ अमृताय नमः) इति पूजयेत् । सूक्तजपार्थं सामवेदिनौ-होमकाले सूक्तजपार्थं वां वृणे-इति वृणुयात् । तत उत्तरतोरणद्वारसमीपं गत्वा प्लाक्षं वटकाष्ठनिर्मितं । सुहोत्रसंज्ञकं सुप्रसन्नसंज्ञकं वा उपर्युक्तकीलान्वितं वैष्णवे पद्माङ्कितकीलयुतं - ॐ शन्नो देवी० ॐ सुहोत्रतोरणाय नमः (सुप्रसन्नतोरणाय नमः) दक्षिणशाखाया-सोमाय नमः-वामशाखायां-केतुशनिभ्यां नमः-इत्यावाह्य-ॐ उत्तरतोरण द्वारदेवताभ्योनमः इति संपूज्य द्वार शाखाद्वयसमीपे कलशमेकमाग्नेयमते कलशद्वयं वा निधाय ॐ विघ्नेशाय नमः (आग्नेयमते-१ धनदाय नमः २ श्रीप्रदाय नमः) इति संपूज्य सूक्तजपार्थमथर्ववेदिनौ-होमकाले सूक्तजपार्थं वां वृणे-इति वृणीत; इति तोरणपूजा ॥

द्वारकलशनिधानपूजनध्वजपताकोच्छ्रयबलिदानानि ।

यजमानः सं० अमुककर्माङ्गभूतं द्वारकलशनिधान पूजन ध्वजपताकोच्छ्रयबलिदानादिकं करिष्ये । पूर्वद्वारशाखामूलयोः संस्कृतं सोपस्करं कलशद्वयं संस्थाप्य कलशद्वये-ॐ ऐरावताय नमः- इत्यावाह्य पूजयेत् । ततो द्वारपूजा-अक्षतान् गृहीत्वा-ऊर्ध्वे-ॐ द्वारश्रियै नमः-देहल्यां-वास्तुपुरुषाय नमः-वामस्तम्भे-गणेशाय नमः । दक्षिणस्तम्भे-स्कन्दाय नमः । वामकलशे-गङ्गायै नमः । दक्षिणकलशे-यमुनायै नमः । कलशद्वये-इन्द्राय नमः-द्वारश्याद्यावाहितदेवताभ्यो नमः-इति संपूज्य दद्यात्-ॐ त्रातारमिन्द्र० इन्द्राय नमः-अर्घं समर्पयामि । सदीपबलिदानम्-इन्द्राय० सदीपमाषभक्तबलिं समर्पयामि । पीतं ध्वजं दक्षिणस्तम्भेन सह पीतां पताकां वामस्तम्भेन सह-ॐ आशुः शिशानो० इति मन्त्रेण संयोज्य संपूज्य-ॐ वर्च्छ्रयस्व व्वनस्पतऽऊर्ध्वोमा पाह्यहंसऽआस्ययज्ञस्योदचः - इति स्तम्भाभ्यां सहबद्ध्वा उच्छ्रयेत् ॥ आग्नेयीं गत्वा-स्तम्भमूले कलशं निधाय-ॐ पुण्डरीकाय नमः । ॐ अमृताय नमः-इत्यावाह्य पूजयेत् । रक्तेध्वजे रक्तपताकायां-ॐ अग्निर्दूतं० अग्नये नमः गन्धपुष्पाभ्यां सं० बलिः - अग्नये नमः माषभक्तबलिं समर्पयामि । आग्नेयस्तम्भे दक्षिणतो ध्वजं उत्तरतः पताकां बद्ध्वा ॐ उच्छ्रयस्व० इचः - इत्युच्छ्रयेत् ॥ दक्षिणद्वारसमीपे उपविश्य-द्वारशाखामूलयोः कलशद्वयं निधाय तत्र । वामनाय नमः - इत्यावाह्य पूजयेत् । ऊर्ध्वे-ॐ द्वारश्रियै० देहल्यां वास्तुपुरुषाय० वामस्तम्भे-पुष्पदन्ताय नमः । दक्षिणस्तम्भे-कपर्दिने० वामकलशे-मोदायै० दक्षिणकलशे० कृष्णायै० इत्यावाह्य पूजयेत् । कृष्णध्वजपताकयोः ॐ यमाय त्वा० यमाय नमः - संपूज्य-यमाय० बलिः० । दक्षिणस्तम्भे ध्वजं

वामस्तम्भे पताकां बद्ध्वा-ॐ आयङ्गौः० (उच्छ्रयस्व०) इत्युच्छ्रयेत् ॥ नैर्ऋतीं दिशं गत्वा-कलशं निधाय - ॐ कुमुदायनमः ॐ दुर्मदायनमः इत्यावाह्य संपूज्य नीले ध्वजे नीलपताकायां ॐ असुन्वन्त० (मोषूण इन्द्रात्र०) ॐ निर्ऋतये नमः- इत्यावाह्य संपूज्य ॐ निर्ऋतये० बलिं०-बलिं दद्यात्। नैर्ऋतस्तम्भे पूर्वतो ध्वजं उत्तरतः पताकाञ्च स्तम्भेन सह बद्ध्वा ॐ उच्छ्रयस्व० इत्युच्छ्रयेत् ॥

पश्चिमद्वारसमीपे उपविश्य-द्वारशाखामूलयोः कलशद्वयं निधाय-ॐ अञ्जनाय० इत्यावाह्य पूजयेत् । द्वारपूजा-ऊर्ध्वे-द्वारश्रियै० देहल्यां-वास्तुपुरुषायं० वामस्तम्भे-नन्दिने० दक्षिणस्तम्भेचण्डाय० वामकलशे-रेवायै० दक्षिणकलशे-नर्मदायै० इत्यावाह्य पूजयेत् । श्वेतध्वजे वरुणाय० श्वेतपताकायाञ्च-ॐ तत्त्वायामि० संपूज्य-वरुणाय० बलिं० बलिं दद्यात् । दक्षिणस्तम्भेन सह ध्वजं वामस्तम्भेन सह पताकां बद्ध्वा-उच्छ्रयस्व० इत्युच्छ्रयेत् ॥वायव्यां गत्वा-स्तम्भसमीपे कलशं निधाय ॐ पुष्पदन्ताय० ॐ सिद्धार्थाय० इत्यावाह्य पूजयेत् । धूम्रवर्णध्वजपताकयोः - ॐ आनो नियुद्भिः० (वायो येते०) वायवे नमः - इत्यावाह्य संपूज्य-वायवे० बलिं० बलिं दद्यात् । तत्र वायव्यस्तम्भे दक्षिणतो ध्वजं तदुत्तरतः पताकां स्तम्भेन सह बद्ध्वा ॐ उच्छ्रयस्व० इत्युच्छ्रयेत् ॥ तत उत्तरद्वारसमीपं गत्वा-द्वारशाखामूलयोः कलशद्वये ॐ सार्वभौमाय नमः- इत्यावाह्य संपूज्य । द्वारपूजा-ऊर्ध्वे-द्वारश्रियै० देहल्यां-वास्तुपुरुषाय० वामस्तम्भे-महाकालाय० दक्षिणस्तम्भे-भृङ्गिणे० वामकलशे-वाण्यै० दक्षिणकलशे-वेण्यै० इत्यावाह्य पूजयेत् । श्वेतध्वजपताकयोः ॐ वय ँ सोम० सोमाय० इति संपूज्य-सोमाय० बलिं० बलिं दत्त्वा द्वारवामस्तम्भे ध्वजं दक्षिणस्तम्भे पताकां बद्ध्वा ॐ उच्छ्रयस्व० इत्युच्छ्रयेत् ॥

ऐशानीं गत्वा-स्तम्भमूले कलशे ॐ सुप्रतीकाय नमः ॐ मङ्गलाय नमः इत्यावाह्य पूजयेत् । श्वेतध्वजपताकयोः ॐ तमीशानं० ईशानाय नमः इत्यावाह्य-ईशानाय० बलिं० बलिं दत्त्वा ॐ उच्छ्रयस्व० इति पश्चिमतो ध्वजं तत्पूर्वतः पताकां स्तम्भेन सह बद्ध्वा उच्छ्रयेत् ॥

ततः पूर्वे शानान्तराले ऊर्ध्वां दिशं प्रकल्प्य-कलशं स्थाप्य-ॐ अस्मेरुद्रा० ब्रह्मणे नमः - इत्यावाह्य संपूज्य - मेघवर्णध्वजपताकयोः ॐ ब्रह्मजज्ञानं० इति ब्रह्माणमावाह्य संपूज्य-ब्रह्मणे० बलिं० बलिं दत्वा पूर्वेशानान्तरालत्रिभागीस्तम्भेन सह बद्ध्वा-ॐ उच्छ्रयस्व० इति मन्त्रेण दक्षिणतो ध्वजं तदुत्तरे पताकाञ्चोच्छ्रयेत् ॥ ततो निर्ऋतिपश्चिमान्तरालेऽधोदिशं प्रकल्प्य कलशं निधाय ॐ स्योना पृथिवि० (तन्मित्रस्य वरुणस्या०) ॐ अनन्ताय नमः - इत्यावाह्य सम्पूज्य रक्तवर्णध्वजपताकयोः ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० अनन्ताय नमः इत्यावाह्य-अनन्ताय- बलिं दत्त्वा निर्ऋति पश्चिमान्तरालत्रिभागस्तम्भेन सह दक्षिणतो ध्वजमुत्तरतः पताकां बद्ध्वा ॐ उच्छ्रयस्व० इति मन्त्रेण उच्छ्रयेत् ॥ ततो मध्यवेदीशानस्तम्भे पञ्चवर्णं महाध्वजमुक्तलक्षणं ॐ इन्द्रस्य वृष्णो० इन्द्राय नमः - ब्रह्मजज्ञानं० ब्रह्मणेनमः - वंशेषु-किन्नरेभ्यो नमः पृष्ठे - पन्नगेभ्यो नमः प्रधानदेवतामन्त्रेण-सवाहनं प्रधानदेवतामावाह्य संपूज्य बलिं दत्त्वा ॐ उच्छ्रयस्व० इति मन्त्रेण उच्छ्रयेत् ॥ एवं मण्डपद्वारतोरणध्वजपताकादिनिवेशनं

समाप्य-मण्डपाद् बहिः प्राच्यां भूमिमुपलिप्य तत्र सार्वभौतिकबलिं निधाय - संपूज्य-जलमादाय-त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥१॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥२॥ सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपालगणैः सह ॥३॥ रक्षन्तु मण्डपं सर्वेघ्नन्तु रक्षांसि सर्वतः ॥ आभ्यो देवताभ्यो नमः बलिं निवेदयामि । जल० अनेन बलिदानेन सर्वभूतानि प्रीयन्ताम् । ततो यजमानः प्रक्षालितपाणिपादः स्वाचान्तः मण्डपं प्राग्द्वारेण प्रविशेत् ।

इति मण्डपतोरणद्वारध्वजपताका महाध्वजनिवेशनबलिदानादिविधिः ॥

२६ मण्डपाङ्गं गणपतिपूजनम् ।

(बहिः स्थापितगणपतिमातृकापीठे मण्डपे आग्नेय्यां स्थापयेत् । यथोक्तमण्डपसत्त्वे आग्नेयां पूर्वरचिते पीठे रक्तवस्त्रं प्रसार्य गोधूममण्डलं कृत्वा तत्र मूर्तौ पूगीफलेषु वा गणपतिं पूजयेत् ॥)

यजमानो मण्डपं प्रविश्याग्नेय्यां पीठे गणपतिं पूजयेत् । आचम्य प्राणानायम्य-सं-मण्डपाङ्गं गणपतिपूजनं करिष्ये । ॐ गणानान्त्वा० ॐ सिद्धिबुद्धि सहितश्रीमन्महागणाधिपतये नमः - इत्यावाह्य प्रतिष्ठाप्य षोडशोपचारैः पूजयेत् । अनया पूजया सिद्धिबुद्धिसहितः श्रीमन्महागणाधिपतिः प्रीयताम् ।

२७ मण्डपाङ्गं वास्तुपूजनम् ।

(यथोक्तमण्डपे नैर्ऋत्यां हस्तमात्रे चतुरस्रे श्वेतवस्त्रं प्रसार्य पञ्चवर्णैस्तण्डुलैः चतुःषष्टिपदं वास्तुमण्डलं विरचय्य बल्यन्तं वास्तुपूजनं कुर्यात् । होमचिकीर्षायां मण्डपे नैर्ऋत्यकोष्ठे स्थण्डिलं कृत्वा यथोक्तं होमं संक्षेपेण कुर्यात् । तदभावे स्थापितदेवताहोमावसरे वास्तुं मण्डलदेवताश्चोद्दिश्य एकैकामाज्याहुतिं कुण्डे दद्यात् । मण्डपस्यास्थिरत्वान्नात्र ध्रुवस्थापनम् । प्रासादस्य तु स्थिरत्वात् तत्र ध्रुवपूजनं होमश्च कार्यः)

यजमान उदङ्मुख उपविश्य-सं० मण्डपभूमिगतशल्यादिदोषजीवहिंसावेधादिदोषपरिहारार्थं अमुककर्माङ्गभूतं बल्यन्तं वास्तुपूजनं करिष्ये । पीठस्य आग्नेय्यादिकोणेषु चतुरः शंकून् निखाय बद्ध्वा वा त्रिगुणीकृतसूत्रेण वेष्टयेत् । हस्ते अक्षतान् गृहीत्वा-विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः । मण्डपे चात्र तिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा - इति मन्त्रावृत्त्या अक्षतान् क्षिपेत् । शंकुपार्श्वेचतुरः सदीपमाषभक्तबलीन् निधाय - ॐ बलिद्रव्याय नमः - इति संपूज्य जलमादाय - ॐ अग्निभ्योऽप्यथसर्पेभ्यो ये चान्ये तान् समाश्रिताः । बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥१॥ ॐ अग्न्यादिभ्यो नमः बलिं समर्पयामि । इति बलिसमीपे जलमुत्सृजेत् । पुनर्जलमादाय - नैर्ऋत्यधिपतिश्चैव नैर्ऋत्यां ये च राक्षसाः । बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॐ-निर्ऋत्यादिभ्यो नमः बलिं० । २ नमो वै

वायुरक्षोभ्यो ये चान्ये तान् समाश्रिताः । बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम्-ॐ वाय्वादिभ्यो नमः बलिं समर्पयामि । ४ रुद्रेभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तान् समाश्रिताः । मण्डपे चात्र तिष्ठन्तु गृह्णन्तु सततोत्सुकाः ॐ रुद्रादिभ्यो नमः बलिं समर्पयामि ।

सुवर्णशलाकया दर्भेण वा प्रतीच्यादिप्रागन्ता उदक्संस्था नवरेखाः कुर्यात्-अक्षतान् गृहीत्वा प्रतिरेखम्-१ लक्ष्म्यै नमः २ यशोवत्यै० ३ कान्त्यै० ४ सुप्रियायै० ५ विमलायै० ६ शिवायै० ७ सुभगायै० ८ सुमत्यै० ९ इडायै० । ततो दक्षिणादि-उदगन्तासु प्राक्संस्थासु नवरेखासु-ॐ १ धन्यायै नमः २ प्राणायै० ३ विशालायै० ४ स्थिरायै० ५ भद्रायै० ६ जयायै० ७ निशायै० ८ विरजायै० ९ विभवायै० इत्यावाह्य-ॐ रेखादेवताभ्यो नमः गन्धपुष्पाभ्यां संपूजयामि ।

यजमानोऽक्षतान् गृहीत्वा मण्डलदेवता आवाहयेत् - (शिख्यादिक्रमेण ब्रह्मादिक्रमेण वा)

१. मध्ये चतुष्पदे - ॐ ब्रह्मजज्ञानं० ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि ।
२. तत्पूर्वपदद्वये-तान्पूर्वया० अर्यमणं०) अर्यम्णे० अर्यमणम्०
३. आग्नेयकोणे अर्धपदे ॐ उदुत्यं० सवित्रे० सवितारम्०
४. चतुष्पदाद् दक्षिणपदद्वये० विवस्वन्ना० विवस्वते० विवस्वन्तम्०
५. ब्रह्मपदान्नैर्ऋत्यार्धपदे० त्रातारमिन्द्र० विबुधाधिपाय० विबुधाधिपं०
६. चतुष्पदात् पश्चिमपदद्वये० मित्रस्यचर्षणी० मित्राय० मित्रं०
७. ब्रह्मपदाद् वायव्यार्धपदे० साकंयक्ष्म० राजयक्ष्मणे० राजयक्ष्माणं०
८. ब्रह्मपदादुत्तरपदद्वये० पृथिवि देवयज० पृथ्वीधराय० पृथ्वीधरं०
९. ब्रह्मपदादैशानार्धपदे० आपो अस्मान्० आपवत्साय० आपवत्सं०
१०. आपवत्ससंलग्नैशानार्धपदे० आपो हिष्ठा० अद्भ्यो० अपः०
११. सवितृपदसंलग्नाग्नेयार्धपदे० उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि०-सावित्राय० सावित्रं०
१२. विबुधाधिपसंलग्ननैर्ऋत्यार्धपदे० गोत्रभिदं० जयाय० जयं०
१३. यक्ष्मसंलग्ननैर्ऋत्यार्धपदे० याते रुद्र० रुद्राय० रुद्रं०
१४. ऐशानकोणे अर्धपदे० सनः पावक० शिखिने० शिखिनं०
१५. तद्दक्षिणपदद्वये० निकाम निकामेनः० पर्जन्याय० पर्जन्यं०
१६. तद्दक्षिणपदद्वये० मर्माणिते० जयन्ताय० जयन्तं०
१७. तद्दक्षिणपदद्वये-मरुत्वाँ इन्द्र० कुलिशायुधाय० कुलिशायुधं०
१८. तद्दक्षिणपदद्वये-आकृष्णेन सविता० सूर्याय० सूर्यं०
१९. तद्दक्षिणपदद्वये-व्रतेन दीक्षा० सत्याय० सत्यं०
२०. तद्दक्षिणसार्धपदे-भायै दार्वाहारं० भृशाय० भृशं०

२१. तद्दक्षिणार्धपदे-घृतं घृतपावानः० आकाशाय० आकाशं०
२२. तत्पश्चिमे अर्धपदे-आनो नियुद्भिः० वायवे० वायुम्०
२३. तत्पश्चिमे सार्धपदे-पूषन्तव व्रते० पूष्णे० पूषणं०
२४. तत्पश्चिमे पदद्वये-विदद्यदी सरमा० वितथाय० वितथम्०
२५. तत्पश्चिमे पदद्वये-गृहामाविभीत० गृहक्षताय० गृहक्षतं०
२६. तत्पश्चिमे पदद्वये-यमायत्वा० यमाय० यमं०
२७. तत्पश्चिमे पदद्वये-गन्धर्वस्त्वा० गन्धर्वाय० गन्धर्वं०
२८. तत्पश्चिमसार्धपदे-सोमथ्राजान० भृङ्गराजाय० भृङ्गराजं०
२९. तत्पश्चिमसार्धपदे-मृगोन भीमः० मृगाय० मृगं०
३०. तत्पश्चिमार्धपदे-उदीरतामवर० पितृभ्यो० पितॄन्०
३१. तत्पश्चिमार्धपदे-द्वे विरुपे० दौवारिकाय० दौवारिकं०
३२. तदुत्तरपदद्वये-तन्नो व्वातो० सुग्रीवाय० सुग्रीवं०
३३. तदुत्तरपदद्वये-नमः पार्य्याय० पुष्पदन्ताय० पुष्पदन्तं०
३४. तदुत्तरपदद्वये-इमम्मे व्वरुण० वरुणाय० वरुणं०
३५. तदुत्तरपदद्वये-ये रूपाणि० असुराय० असुरं०
३६. तदुत्तरसार्धपदे-नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० शेषाय० (शोषाय)० शेषं० (शोषं०)
३७. तदुत्तरार्धपदे-मामेम्मा० पापाय० पापं०
३८. तत्पूर्वार्धपदे-परंमृत्यो० रोगाय० रोगं०
३९. तत्पूर्वपदद्वये-अहिरिवभोगैः० अहये० अहिं०
४०. तत्पूर्वपदद्वये-मुख ह सदस्य० मुख्याय० मुख्यं०
४१. तत्पूर्वपदद्वये-भद्रं कर्णेभिः- भल्लाटाय० भल्लाटं०
४२. तत्पूर्वपदद्वये-वय ह सोम० सोमाय० सोमं०
४३. तत्पूर्वपदद्वये-नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० सर्पाय० सर्पं०
४४. तत्पूर्वसार्धपदे-अदितिर्द्यौ० अदितये० अदितिं०
४५. तत्पूर्वार्धपदे-अग्निश्च मे घर्म्मश्च० दितये० दितिं०
४६. मण्डलाद्बहिरीशाने चत्वारिशृङ्गा० चरक्यै० चरकीं०
४७. आग्नेये० ततो व्विराड० विदार्यै० विदारीं०
४८. नैर्ऋत्यै० द्रुपदादिव० पूतनायै० पूतनां०
४९. वायव्ये० रक्षसां भागोऽसि० पापराक्षस्यै० पापराक्षसीं०
५०. पूर्वे-यदक्रन्दः० स्कन्दाय० स्कन्दं०
५१. दक्षिणे-अर्यमणं० अर्यम्णे० अर्यमणं०

५२. पश्चिमे-येरूपाणि० डामराय० डामरं०
५३. उत्तरे-नर्तविद्याय० पिलिपित्साय० पिलिपित्सं०
५४. पूर्वादिक्रमेण पूर्वे-त्रातारमि० इन्द्राय० इन्द्रं०
५५. आग्नेय्यां-त्वन्नो अग्ने० अग्नये० अग्निं०
५६. दक्षिणे - यमाय त्वा० यमाय० यमं०
५७. नैर्ऋत्ये - असुन्वन्त० निर्ऋतये० निर्ऋतिं०
५८. पश्चिमे - तत्त्वायामि- वरुणाय० वरुणं०
५९. वायव्ये - आनोनियुद्भिः० वायवे० वायुं०
६०. उत्तरे - वय ह सोम० सोमाय० सोमं०
६१. ईशाने - तमीशानं० ईशानाय० ईशानं०
६२. पूर्वेशानमध्ये-अस्मे रुद्रा० ब्रह्मणे० ब्रह्माणं०
६३. निर्ऋतिपश्चिममध्ये - स्योनापृथिवि० अनन्ताय० अनन्तं०

(हेतुकादयः कृताकृताः- पूर्वादिक्रमेण १ हेतुकाय० हेतुकं० २ त्रिपुरान्तकाय० त्रिपुरान्तकं० ३ अग्निवेतालाय० अग्निवेतालं ४ अग्निजिह्वाय० अग्निजिह्वं० ५ महाकालाय० महाकालं ० ६ करालाय० करालं० ७ एकपदे० एकपादं० ८ भीमरूपाय० भीमरूपं० ९ अद्भ्यो० अपः १० क्षितिरूपाय० क्षितिरूपं०) इत्यावाह्य-ॐ मनोजूति० ब्रह्मादिवास्तुमण्डलदेवताः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवत । ॐ ब्रह्मादिवास्तु मण्डलदेवताभ्यो नमः- इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य मण्डलमध्ये कलशं निधाय क्षौमवस्त्रेणाच्छाद्य-वास्तुपुरुषमूर्त्तिं तत्र निधाय-ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान् स्वावेशोऽअनमीवो भवानः । यत्त्वेमहे प्रतितन्नोजुषस्वशन्नो भव द्विपदे शञ्चतुष्पदे ॥ ॐ भू० वास्तोष्पतये नमः वास्तोष्पतिमावाहयामि स्थापयामि । ॐ मनोजूति० सपरिवार वास्तोष्पते सुप्रतिष्ठितो वरदो भव - इति प्रतिष्ठाप्य-ॐ मण्डलदेवतासहितवास्तुपुरुषाय नमः- इति षोडशोपचारैः पूजयेत् । विशेषार्घः - अयोने भगवन् भर्गललाटस्वेदसम्भव । गृहाणार्घमया दत्तं वास्तो स्वामिन् नमोऽस्तुते-ॐ मण्डलदेवता सहितवास्तुपुरुषाय नमः विशेषार्घ समर्पयामि । प्रार्थना-ॐ नमो वात्याय० नमस्ते वास्तुपुरुष भूशय्यानिरत प्रभो । मद्गृहे धनधान्यादिसमृद्धिं कुरु सर्वदा ॥ ॐ मण्डल० प्रार्थनां समर्पयामि । जलमादाय-अनेन पूजनेन मण्डलदेवतासहितो वास्तुपुरुषः प्रीयताम् । पीठपुरतः पायसमाषदध्योदना न्यन्यतमं सदीप बलिं निधाय-ॐ बलिद्रव्याय नमः इति संपूज्य-जलमादाय-एह्येहि भगवन् सपरिवार वास्तोष्पते, इमं मयोपनीतं बलिं गृहाण गृहाण, मम यज्ञमच्छिद्रं कुरुकुरु सकलदुष्टेभ्यो मां रक्ष रक्ष स्वाहा ॐ वास्तोष्पतये नमः बलिं निवेदयामि । इति जलं क्षिपेत्-ॐ ब्रह्मणे नमः पायसबलिं समर्पयामि-इत्याद्यूहेन प्रति दैवतं बलिं दद्यात् ॥ जलमादाय-अनेन बल्यन्तवास्तुपूजनेन मण्डलदेवतासहितः सपरिवारो वास्तुपुरुषः प्रीयताम् ॥

(यथोक्तमण्डपाभावे छायामण्डपे वर्धिनीपूजनमण्डपपूजनमण्डपप्रवेशनवग्रहावाहनधाराकरण

त्रिसूत्रीवेष्टनमण्डपाङ्गगणपतिवास्तुपूजनानि न भवन्ति । तत्र वरणान्ते पुण्याहवाचनान्ते वा दिग्रक्षणपञ्चगव्यकरणे देवावाहनयातुधानापसारणप्रादेशकरणानि कृत्वा भूम्यादिपूजनं कुर्यात् ।)

२८ भूम्यादिपूजनम् ।

यजमानः कुण्डसमीपे उपविश्य अक्षतपुञ्जचतुष्टयं भूमौ कृत्वा उदकसंस्थमावाहयेत्-ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीन्दृ ꣳ ह पृथिवीम्मा हि ꣳ सीः ॥१७-१८॥ ॐ भू० भूम्यै नमः भूमिम्० २ ॐ यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने व्वर्द्धया त्वम् । तस्मै देवा अधिब्रुवन्नयञ्च ब्रह्मणस्पतिः ॥१७-५६॥ ॐ भू० कूर्माय० कूर्मम्० ॥३ स्योना पृथिवि० (तन्मित्रस्य व्वरुण०) ॥३३-३८॥ ॐ भू० अनन्ताय० अनन्तं० ॥४ ॐ खड्गो व्वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानाम्पृषतः ॥२४-४०॥ ॐ भू० वराहाय० वराहं० । ॐ मनोजूति० भूम्यादिदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत । ॐ भूम्यादिदेवताभ्यो (पृथिवीकूर्मानन्तवराहदेवताभ्यो) नमः - इति संपूजयेत् । अनया पूजया भूम्यादि देवताः प्रीयन्ताम् ।

२९ कुण्डसमेखलस्थण्डिलपूजनम् ।

(भूमिगतगर्तनाभिकण्ठयोनिमेखलारूपपञ्चाङ्गयुतं कुण्डम् । समेखलस्थण्डिले पक्षद्वयम्, कण्ठनाभियोनिसहितमेकं मेखलानिर्माणसञ्जातमानस्य गर्तमाने समावेशात्, कण्ठनाभियोनिरहितं केवलं मेखलायुतमपरमिति पक्षद्वयम् । द्वितीयपक्षे कण्ठनाभियोनिदेवतानामावाहनाभावः । मेखलास्वपि क्रमद्वयम्-उपरिमेखलातो विष्णुब्रह्मरुद्रा देवता इति सर्वसम्मतः पक्षः, परशुराममते तु ब्रह्मविष्णुरुद्रा इति क्रमः । पञ्चमेखलासु श्वेतरक्तकृष्णपीतहरितवर्णासु विष्णुब्रह्मरुद्रसूर्येन्द्रदेवताः । एकमेखलायां तस्यामेव देवतात्रयम् मेखलाद्वये उपरि विष्णुः द्वितीयस्यां ब्रह्मरुद्रौ । शैवे योन्यां गौरी, वैष्णवे लक्ष्मीश्चेति ।)

कुण्डं वस्त्रेणाच्छाद्य यजमानः पश्चिमत उपविश्य । एकाधिककुण्डसत्त्वे तत्तत्कुण्डाचार्यः कुण्डपश्चिमत उपविश्य-जलमादाय-कर्माङ्गभूतं कुण्डदेवतापूजनमहं करिष्ये । अक्षतानादाय-ॐ विश्वकर्म्मन् हविषा व्वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवद्ध्यम् । तस्मै व्विशः समनमन्त पूर्व्वीरयमुग्रो व्विहव्यो यथासत् ॥८-४६॥ (कुण्डमध्ये) ॐ भू० विश्वकर्म्मणे० विश्वकर्माणम्० २ (उपरिमेखलायां श्वेतवर्णायां-ॐ इदं विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा ꣳ सुरे स्वाहा ॥५-१५॥ ॐ भू० विष्णवे० विष्णुम्० ॥३ ॐ ब्रह्मजज्ञानम्प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेन ऽआवः सबुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ॥१३-१३॥ मध्यमेखलायां रक्तवर्णायां-ॐ भू० ब्रह्मणे० ब्रह्माणं० ॥४ ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव ऽउतोत इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥१६-१॥ अधोमेखलायां कृष्णवर्णायां-ॐ भू० रुद्राय० रुद्रं० ॥ ''शैवे योन्यां-ॐ अम्बे अम्बिके ऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः

सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥२३-१८॥ (सुभगायै विद्महे काम मालिन्यै धीमहि । तन्नो गौरी प्रचोदयात् ॥ गौरीर्मिमाय०ऋ०) ॐ भू० गौर्यै० गौरीम्० ॥ वैष्णवे योन्यां ॐ श्रीश्चते० इषाण ॥३१-२२॥ ॐ भू० लक्ष्म्यै० लक्ष्मीम्०) ॥ ६ कण्ठे-ॐ नीलग्रीवाःशितिकण्ठा दिवं रुद्राऽउपश्रिताः । तेषां ᳪ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥१६-५६॥ ॐ भू० कण्ठाय० कण्ठं० ॥ ७ नाभ्याम्-ॐ नाभिर्म्मे चित्तं व्विज्ञानम्पायुर्म्मेपचितिर्म्भसत् ॥ आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यम्पसः । जङ्घाभ्याम्पद्भ्यान्धर्म्मोऽस्मि व्विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥२०-९॥ ॐ भू० नाभ्यै० नाभिम्० ॥ ८ कुण्डनैर्ऋत्ये-ॐ वास्तोष्पते० ॐ भू० वास्तुपुरुषाय० वास्तुपुरुषं० ॥ ॐ विश्वकर्माद्यावाहितकुण्डदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत । ॐ विश्वकर्माद्यावाहित-कुण्डदेवताभ्यो नमः इति संपूज्य प्रार्थयेत् । आवाहयामि तत्कुण्डं विश्वकर्म विनिर्मितम् । शरीरं यच्च ते दिव्यमग्न्यधिष्ठान मुत्तमम् ॥१॥ ये च कुण्डे स्थिता देवाःकुण्डाङ्गे याश्च संस्थिताः । ऋद्धिं यच्छन्तु ते सर्वे यज्ञसिद्धिं मुदान्विताः ॥२॥ हे कुण्ड तव रूपं तु रचितं विश्वकर्मणा । अस्माकं वाञ्छितां सिद्धिं यज्ञसिद्धिंददस्व नः ॥३॥ इति प्रार्थ्य जलमादाय-अनया पूजया विश्वकर्माद्यावाहितकुण्डदेवताः प्रीयन्ताम् ॥ (कण्ठनाभियोनियुते समेखले स्थण्डिले सर्वासां देवतानां स्थापनम् कण्ठनाभियोनिरहिते समेखल स्थण्डिले तु कण्ठनाभिगौरीदेवतास्थापनं न विधेयमिति विशेषः ।)

२० पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निस्थापनम् ।

(त्रिधाऽग्निसम्प्राप्तिः १ स्वीयारणिभ्यामग्न्युत्पादनम् । २ सूर्यकान्तादग्न्युत्पादनम् । ३ बहुपशुवैश्यगृहभ्राष्ट्रगृह-अम्बरीषगृह-बहुयाजिब्राह्मणमहानस-बह्वन्नपाकस्थलान्यतमस्थलाहृतश्च । एककुण्डे पञ्चकुण्डयां नवकुण्डयां वा स्थापनसापेक्षमग्निं समानाय कुण्डे कुण्डेषु वा पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वाऽऽचार्यकुण्डे समग्रमग्निं संस्थाप्य तत उद्धृत्य पूर्वादिक्रमेण कुण्डान्तरेष्वग्निस्थापनमित्येकाग्निपक्षः । स्थापनात् पूर्वं अग्निं विभज्य आचार्यपूर्वकुण्डादिक्रमेणाग्निस्थापनमिति भिन्नाग्निपक्षः । उभयत्राप्यग्नेरेकत्वमेवेति न विवादावसरः । एकपञ्चनवकुण्डादीनां प्रधानकर्मसम्पादकत्वमुपलक्ष्यात्र न काचिदनुपपत्तिः । सर्वकुण्डेषु पृथक् पृथक् पञ्चभूसंस्काराग्निस्थापनदक्षिणतोब्रह्मासनाद्प्रणीताविमोकान्त कर्म प्रधानकर्माङ्गत्वेनैव भवति । पञ्चभूसंस्काराणां कुशकण्डिकायाञ्च 'एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः इति सूत्रभाष्ये 'अयं विधिरेव न मन्त्राः' इति स्पष्टमुपपादितत्वात् नित्याचारप्रदीपे श्रौतातिदेशमादाय तत्तत्संस्कारेषु मन्त्रा अपि निरुक्ताः । तेषां नावश्यकत्वम्, करणे न दोषः ।)

यजमान आचार्यकुण्डपश्चिमतोऽन्यकुण्डसत्त्वे तत्तत्कुण्डाचार्याः कुण्डपश्चिमत उपविश्य कुण्डाच्छादितं वस्त्रं कुण्डकारयित्रे द्विजाय शिल्पिने वा दद्यात् । जलमादाय-अद्य० पू० तिथौ अमुककर्माङ्गत्वेन अस्मिन् कुण्डे पञ्चभूसंस्कारपूर्व कमग्निस्थापनं करिष्ये । मूलधृतैरैशानीमारभ्य आभितः प्रतीचीमा रभ्य प्राक्संस्थैः निःसारितैः त्रिभिर्दर्भैः परिसमुह्य परिसमुह्य परिसमुह्य । (यदं देवा देव

हेडनं०) । गोमयोदकेन प्रदक्षिणमुपलिप्य उपलिप्य उपलिप्य) (मानस्तोके०) । स्रुवेण यज्ञियकाष्ठेन दर्भेण वा (परशुराममते स्रुवमूलेन) प्रतीचीमारभ्य प्रागन्तं त्रिरूर्ध्वरेखाकरणमुदक्संस्थम् । प्रादेशपरिमिता वा रेखाः कुर्यात्उल्लिख्य-उल्लिख्य-उल्लिख्य । (ॐ त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वांकाष्ठास्वर्वत) ॥२७-३७-२॥ अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुदधृत्य उदधृत्य उदधृत्य (व्रजंगच्छ गोष्ठानम्) । न्युब्जपाणिना उदकेनाभ्युक्ष्य अभ्युक्ष्य अभ्युक्ष्य (देवस्य त्वा० अश्विनोर्भैषज्येन० । आनीतमग्निं कुण्डस्याग्नेय्यां दिशि निधाय-ॐ हुं फट् (धृष्टिरस्य० क्रव्यादमग्निं०) इति मन्त्रेण नैर्ऋत्यां दिशि आमक्रव्यादांशौ परित्यज्य, अग्निपात्रमादाय त्रिर्भ्रामयित्वा योनिमार्गेण नीत्वा आत्माभिमुखमग्निं कुण्डे स्थापयेत् ॐ अग्निन्दूतं पुरोदधेहव्य वाहमुपब्रुवे । देवाँ २ आसादयादिह ॥२२-१७॥ (अग्निर्मूर्धा०) इति मन्त्रेण निक्षिप्य-अग्न्यानीतपात्रे साक्षतोदकं निषिच्य अग्निमुखं कृत्वा ध्यायेत्-ॐ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽअस्य । त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीतिमहो देवो मर्त्याँ २ आविवेश ॥१७-९१॥ अग्ने, शाण्डिल्यगोत्र शाण्डिल्यासितदेवलेति त्रिप्रवरान्वित भूमिर्माता वरुणः पिता मेषध्वज प्राङ्मुख मम सम्मुखो भव-इति प्रार्थ्य-प्रतिष्ठायां-ॐ बलवर्धननाम्ने वैश्वानराय नमः - इति संपूज्य प्रार्थयेत् - सप्तहस्तश्चतुःशृङ्गो सप्तजिह्वो द्विशीर्षकः । त्रिपात् प्रसन्नवदनः सुखासीनः शुचिस्मितः ॥१॥ स्वाहां तु दक्षिणे पार्श्वे देवीं वामे स्वधां तथा । बिभ्रद्दक्षिणहस्तैस्तु शक्तिमन्नं स्रुचं स्रुवम् ॥२॥ तोमरं व्यजनं वामे घृतपात्रञ्च धारयन् । आत्माभिमुख आसीन एवंरूपो हुताशनः ॥३॥ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् । हिरण्यवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥ ॐ भू० बलवर्धननामाग्नये० नमस्करोमि ॥ अनेन पञ्चभूसंस्कार पूर्वकमग्निस्थापनेन बलवर्धननामाग्निः प्रीयतां न मम ॥ (कुटीरहोमे वरदनामा-प्रासादवास्तुनि बलवर्धननामा-प्रासाददिग्घोमे वरदनामा) । इत्यग्निस्थापनम् ॥

३१ स्थालीपाकतन्त्रम् । कुशकण्डिका ।

स्वयं प्राङ्मुखो यजमान उदङ्मुखमुपविष्टं ब्रह्माणं-अस्मिन् कर्मणि त्वं ब्रह्मा भव, भवामि-इति तेनोक्ते उत्थाय ब्रह्मणो दक्षिणहस्तं गृहीत्वा अग्नेः पूर्वेण गत्वा अग्नेर्दक्षिणे हस्ताद् दूरे पूर्वास्तृतासनसमीपं नीत्वा-अत्रासने-उपविश-ब्रह्मा-उपविशामि-इत्युक्त्वा स्वासनात् किञ्चिद् दर्भमादाय ॐ निरस्तः परावसुः - इति दर्भं नैर्ऋत्यां दिशि निरस्य ब्रह्मा आसने अग्न्यभिमुख उपविशति । ॐ हिरण्यगर्भः० तं गन्धादिभिः संपूज्य । ब्राह्मणोपवेशनाभावे पञ्चाशत्कुशनिर्मितं सग्रन्थिब्रह्माणं निधाय तं पूजयेत् ॥ (ब्रह्मासनविध्यनन्तरं वास्तुकर्मणि विवाहकर्माङ्गचतुर्थीकर्मणि च प्रणीतास्थलं त्यक्त्वोत्तरत उदपात्रं प्रतिष्ठापयेत् । प्रणीताप्रणयनम् - उत्तरतः प्रोक्षण्यासनम् । तदुत्तरे प्रणीतासनम् । तद्वायव्यां द्वितीयासनम् । द्वादशाङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुलविस्तारं चतुरङ्गुलखातं प्रणीतापात्रं वामहस्ते धृत्वा दक्षिणहस्तस्थकलशेन आत्माभिमुखं जलं पायसहोमे क्षीरञ्च) (आपोहिष्ठा०) प्रपूर्य भूमौ वायव्यासने निधाय दक्षिणस्यानामिकया जलमालभ्य प्रणीतामग्नेरुत्तरत आसने स्थापयेत् ॥ परिस्तरणम् ॥ बर्हिर्मुष्टिमादाय त्रिभिस्त्रिभिर्दर्भैर्वा अग्नेः (कयानश्चित्र०) परिस्तरणम् । पुरस्तादुदगग्रैः, दक्षिणतः प्रागग्रैः, प्रत्यगुदगग्रैः उत्तरतः प्रागग्रैर्दर्भैः

अग्निं परिस्तीर्य इतरथावृत्तिः ॥ अर्थवत्पात्रासादनम् । अग्नेः पश्चादुत्तरतो वा, प्राक्संस्थमुदक्संस्थं वा, दर्भानास्तीर्य, द्वन्द्वं द्वन्द्वमासादयेत् । १ पवित्रच्छेदना दर्भास्त्रयः २ पवित्रे द्वे ३ प्रोक्षणीपात्रम् ४ आज्यस्थाली ५ (चरुहोमे चरुस्थाली) ६ संमार्जनकुशाः पञ्च ७ उपयमनकुशाः सप्तपञ्च त्रयो वा ८ पालाश्यः समिधस्तिस्रः ९ स्रुवः १० स्रुक् ११ आज्यम् १२ (चरुहोमे तण्डुलाः) १३ पूर्णपात्रम्, वरो वा (वरोऽभिलषितं द्रव्यम्) उपकल्पनीयानि-समिधः, यवाः, तिलाः कर्महोमोपयुक्तानि अन्यद्रव्याणि (ॐ पूर्णादर्वि० इत्यासादयेत् ।)

पवित्रकरणम्-द्वयोः पवित्रयोरुपरि उदगग्रं पवित्रत्रयं निधाय द्वयोर्मूलेन द्वौ कुशौ प्रदक्षिणीकृत्य त्रयाणां मूलाग्राणि एकीकृत्य (ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ) अनामिकाङ्गुष्ठेन द्वयोरग्रे प्रादेशमात्रेच्छेदयेत् । द्वयोर्मूलं त्रीणि चोत्तरतः क्षिपेत् ॥ प्रोक्षणीसंस्कारः-प्रोक्षणीपात्रे सपवित्रहस्तेन चतुर्वारं प्रणीतोदकमासिच्य अन्यज्जलं प्रपूर्य भूमौ निधाय वामकरे पवित्राग्रं दक्षिणे मूलं धृत्वा (सवितुर्वः प्रसव उत्पुनामि) मध्यतः पवित्राभ्यामुत्पवनम् । प्रोक्षणीनां सव्यहस्ते करणम्, दक्षिणहस्त मुत्तानं कृत्वा मध्यमानामिकाङ्गुल्योर्मध्यपर्वभ्यामपामुदिङ्गनम् ॥ प्रणीतोदकेन पवित्राभ्यां प्रोक्षण्याः प्रोक्षणम् । प्रोक्षण्युदकेन (दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम्) आज्यस्थाल्याः प्रोक्षणम्, (चरुस्थाल्याः प्रोक्षणम्), संमार्जनकुशानां प्रोक्षणम्, उपयमनकुशानां प्रोक्षणम्, समिधां प्रोक्षणम्, स्रुवस्य प्रोक्षणम्, स्रुचः प्रोक्षणम् आज्यस्य प्रोक्षणम् (तण्डुलानां प्रोक्षणम्) पूर्णपात्रस्य प्रोक्षणम् । उपकल्पनीयानां प्रोक्षणम्, असञ्चरे प्रणीताग्न्योर्मध्ये प्रोक्षणीनां निधानम्, पवित्रे प्रोक्षणीषु स्थापयेत् ॥ आज्यादिसंस्कारः- (इषेत्वो० तमाय कर्मणे) आज्यस्थाल्यामाज्यं निरुप्य सपवित्रके चरुपात्रे त्रिःप्रणीतोदकमासिच्य त्रिःक्षालित तण्डुलानां प्रक्षेपः पाकापेक्षजलप्रक्षेपश्च) पवित्रे प्रोक्षणीषु निधाय । ब्रह्मणो दक्षिणत आज्याधिश्रयणम्, आचार्यस्य मध्ये चरोरधिश्रयणम्, युगपत् आज्यस्योत्तरतः ॥

पर्यग्निकरणम्-(अन्तरितंरक्षोऽन्तरिता अरातयः । देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधिनाके) ज्वलदुल्मुकेन आज्यचर्वोः समन्तात् पृथक् पृथक् पर्यग्निकरणम्, ज्वलदुल्मुकस्याग्नौ प्रक्षेपः, इतरथाऽवृत्तिः अर्धशृते चरौ अधोमुखयोः स्रुवस्रुचोः प्रतपनम् (ॐ त्रातारमिन्द्र० उत्तानौ कृत्वा स्रुवस्य स्रुचश्च पृथक् संमार्जनकुशैः (अनिशितासि० चक्षुषाऽवपश्यामि) संमार्जनम् । उपरि अग्रैरग्रं यावत् मूलैर्मूलं यावदधः । स्रु वस्रु चोः पवित्राभ्यां प्रणीतोदकेनाभ्युक्षणम् । पुनरग्नौ प्रतपनम् (प्रत्युष्ट० अरातयः) । स्वदक्षिणदेशे निधानम् । आज्यमुत्थाप्य चरोः पूर्वेण प्रोक्षण्यपरेण च नीत्वा अग्नेरुत्तरतः स्थापयेत् । ततश्चरुं घृतेनाभिघार्यादाय आज्यस्य पश्चिमतो नीत्वा आज्यादुत्तरतो निदध्यात् । अग्नेः पश्चादाज्यमानीय चरुश्चानीय, पवित्राभ्यां (सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनामि) आज्योत्पवनम् । अवेक्षणम् । पवित्राभ्यामपद्रव्यं निरस्य । पवित्राभ्यां प्रोक्षण्याः प्रत्युत्पवनम् (सवितुर्वःप्रसव उत्पुनामि) । पवित्रे प्रोक्षणीषु निधाय ॥ इति कुशकण्डिकां यथाऽवसरं कुर्यात् ॥ (इयं कुशकण्डिका होमारम्भात् प्राग् यदा कदाचित् कर्तव्या । जलाधिवासः कुटीरहोमश्च समयमनुरुध्य ग्रहहोमान्ते यथासमयं वा सम्पादनीयः । तत्प्रयोगश्चाग्रे वक्ष्यते)

३२　सर्वतोभद्रमण्डलदेवतास्थापनम् ।

(तन्त्रभद्रमार्तण्डादिग्रन्थेषु द्वादशाष्टादशैकविंशतित्रयोविंशतिपञ्चविंशतिकोष्ठात्मकान्यनेकानि मण्डलानि भिन्नानि प्रदर्शितानि, किन्तु तेषु सर्वत्र मण्डलस्वरूपभेदो न देवताभेदः । प्रतिष्ठात्रैविक्रम्यां भद्रमार्तण्डे च लतालिङ्गोद्भवगौरीतिलकाद्यनेके मण्डलप्रकाराः प्रदर्शिताः, किन्तु स्वातन्त्र्येण देवताभेदो न निर्दिष्टः । शैवाग्रहिणःपुनरेकलिङ्गचतुर्लिङ्गाष्टलिङ्गद्वादश लिङ्गभद्रमण्डलानि पुरस्कुर्वन्ति, तत्रापि सर्वतोभद्रदेवता आवाह्य कुत्रचित् पद्धतिषु विशिष्ट देवतावाहनं दृश्यते । जलाशयातिदेशमादाय प्रतिष्ठापद्धतिकारा वारुणमण्डलकरणं निर्दिशन्ति । सर्वतोभद्रमण्डलस्य ब्रह्माण्डस्वरूपवत्त्वात् सर्वमण्डलानां प्रकृतिरूपत्वाच्च सर्वप्रतिष्ठासु सर्वतोभद्रमण्डलकरणं श्रेयः जलाशयातिदेशेन प्रतिष्ठासु वारुणमण्डलकरणेऽपि न दोषः । उभयोः स्थापनविधिः निर्दिश्यते ।)

मध्ये कुण्डसत्त्वे प्राच्यां प्रधानवेद्याम्, पञ्चनवकुण्डयोर्मध्यवेद्यां सर्वतोभद्रं विरचय्य-यजमानो मण्डलसमीपे उपविश्य-जलमादाय-अद्य० पू० तिथौ अमुकदेवताप्रतिष्ठाङ्गभूतं सर्वतोभद्रमण्डलदेवतानां स्थापनं पूजनञ्च करिष्ये । हस्ते अक्षतान् गृहीत्वा-मध्ये कर्णिकायाम्-ॐ ब्रह्म जज्ञानम्प्रथमम्पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेनऽआवः । स बुध्न्याऽउपमाऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ॥१३-३॥ ॐ भू र्भुवः स्वः भो ब्रह्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ, ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणं आवाहयामि ॥२ उत्तरे वाप्याम्-ॐ व्वयꣳ सोम व्व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥३-५६॥ ॐ भू० भो सोम इहा० सोमाय० सोमम्० ॥३ ईशान्यां खण्डेन्दौ-ॐ तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिन्धियञ्जिन्वमवसे हूमहे व्वयम् । पूषा नो यथा व्वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२५-१८॥ ॐ भू० भो ईशान इहा० ईशानाय० ईशानम्० ॥४ पूर्वे वाप्यां ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रम्पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥२०-५०॥ ॐ भू० भो इन्द्र इहा० इन्द्राय० इन्द्रम्० ॥५ आग्नेय्यां खण्डेन्दौ-ॐ त्वन्नो अग्ने तव देव पायुभिर्म्मघोनो रक्ष तन्वश्च व्वन्द्य । त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्व्रते ॥३४-१३॥ ॐ भू० भो अग्ने इहा० अग्नये० अग्निम्० ॥ दक्षिणे वाप्याम् ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्म्माय स्वाहा घर्म्मः पित्रे ॥३८-९॥ ॐ भू० भो यम इहा० यमाय० यमम्० ॥७ नैर्ऋत्यां खण्डेन्दौ-ॐ असुन्वन्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥१२-६२॥ ॐ भू० भो निर्ऋते इहा० निर्ऋतये० निर्ऋतिम्० ॥ ८ पश्चिमे वाप्याम्-ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो व्वरुणेह बोध्युरुशꣳस मान आयुः प्रमोषीः ॥१८-४९॥ ॐ भू० भो वरुण इहा० वरुणाय० वरुणम् ॥ ९ वायव्यां खण्डेन्दौ-ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् । व्वायो अस्मिन् सवने मादयस्व यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२७-२८॥ ॐ भू० भो वायो इहा० वायवे० वायुम् ॥१० वायुसोममध्ये भद्रे-

ॐ सु गावो देवाःसदना अकर्म्म य आजग्मेदꣳसवनं जुषाणाः । भरमाणाव्वहमाना हवीꣳष्य स्मे धत्त व्वसवो व्वसूनि स्वाहा ॥८-१८॥ ॐ भू० भो अष्ट वसवः इहागच्छत इह तिष्ठत, अष्टवसुभ्यो० अष्टवसून्० ॥११ सोमेशानमध्ये भद्रे-ॐ रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीम्बृहज्ज्योतिः समीधिरे । तेषाम्भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥११-५४॥ ॐ भू० भो एकादश रुद्राः इहागच्छत इहतिष्ठत, एकादशरुद्रेभ्यो० एकादशरुद्रान्० ॥१२ ईशानपूर्वमध्ये भद्रे-ॐ यज्ञो देवानाम्प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ वोर्व्वाची सुमतिर्व्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या व्वरिवो व्वित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥८-४॥ ॐ भू० भो द्वादशादित्याः इहागच्छत इहतिष्ठत, द्वादशादित्येभ्यो० द्वादशादित्यान्० ॥१३ इन्द्राग्निमध्ये भद्रे ॐ यावाङ्कशा मधुमत्यश्विनासूनृतावती । तया यज्ञम्मिमिक्षतम् ॥७-११॥ ॐ भू० भो अश्विनौ इहागच्छतम्, इह तिष्ठतम्, अश्विभ्यां० अश्विनौ० ॥१४ अग्नियममध्ये भद्रे-ॐ ओमासश्चर्षणीधृतो व्विश्वेदेवास आगत । दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम् ॥७-३३॥ ॐ भू० भो सपैतृका विश्वेदेवाः इहागच्छत इहतिष्ठत, सपैतृकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो० सपैतृकान् विश्वान् देवान्० ॥१५ यमनिर्ऋतिमध्ये भद्रे- ॐ अभित्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳरत्नधामभि-प्रियम्मतिङ्कविम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपास्वः । प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनु प्राणिहि ॥४-२५॥ ॐ भू० भो सप्तयक्षाः इहागच्छत इहतिष्ठत, सप्तयक्षेभ्यो० सप्तयक्षान्० ॥१६ निर्ऋतिपश्चिममध्येभद्रे-ॐ भूतायत्वा नारातये स्वरभिविख्येषन्दृꣳहन्तान्दुर्य्याः पृथिव्यामुर्व्वन्तरिक्षमन्वेमि पृथिव्यास्त्वानाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यꣳरक्ष ॥१-११॥ ॐ भू० भो भूतनागाः इहागच्छत इहतिष्ठत, भूतनागेभ्यो० भूतनागान्० ॥१७ वरुणवायुमध्ये भद्रे-ॐ ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्व्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम । सन इदम्ब्रह्म-क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा व्वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥१८-३८॥ ॐ भू० भो गन्धर्वाप्सरसः इहागच्छत इहतिष्ठत, गन्धर्वाप्सरोभ्यो० गन्धर्वाप्सरसः० ॥

१८ ब्रह्मसोममध्ये वाप्याम्-ॐ यदक्रन्दः प्रथमञ्जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यम्महिजातन्ते अर्व्वन् ॥२९-१२॥ ॐ भू० भो स्कन्द इहा० स्कन्दाय० स्कन्दम्० ॥१९ स्कन्दादुत्तरे-ॐ आशुः शिशानो व्वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् । सङ्क्रन्दनो निमिष एकवीरः शतꣳसेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१७-३३॥ ॐ भू० भो नन्दीश्वर इहा० नन्दीश्वराय० नन्दीश्वरम्० ॥२० नन्दीश्वरादुत्तरे-ॐ कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि । समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥६-२८॥ ॐ भू० भो शूलमहाकाली, इहगच्छतम्, इहतिष्ठतम्, शूलमहाकालाभ्यां० शूलमहाकाली० ॥२१ ब्रह्मेशानमध्ये वल्लीषु-ॐ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता सपिता स पुत्रः । विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्वम् ॥२५-२३॥ ॐ भू० भो दक्षादिसप्तकानि, इहागच्छत इहतिष्ठत, दक्षादिसप्तकेभ्यो० दक्षादि सप्तकानि० ॥२२ ब्रह्मेन्द्रमध्ये वाप्याम्-ॐ अम्बे अम्बिकेम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् ॥२०-१८॥

ॐ भू० भो दुर्गे इहा० दुर्गायै० दुर्गाम् ॥२३ दुर्गोत्तरतः-ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधेपदम् । समूढमस्य पाᳬसुरे स्वाहा ॥५-१५॥ ॐ भू० भो विष्णो इहा० विष्णवे० विष्णुम्० ॥२४ ब्रह्माग्नि मध्ये वल्लीषु-ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः । अक्षन् पितरोमीमदन्त पितरोतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥१९-३६॥ ॐ भू० भो स्वधे इहा० स्वधायै० स्वधाम्० ॥२५ ब्रह्मयममध्येवाप्यां-ॐ परम्मृत्योऽअनुपरेहि पन्थाँ यस्तेऽअन्यऽइतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाᳬरीरिषो मोत वीरान् ॥३५-७॥ ॐ भू० भो मृत्युरोगौ इहागच्छतम् इहतिष्ठतम्, मृत्युरोगाभ्यां० मृत्युरोगौ० ॥ २६ ब्रह्मनिर्ऋतिमध्ये वल्लीषु-ॐ गणानान्त्वा गणपतिंहवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिंहवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिंहवामहे व्वसो मम । आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥२३-१९॥ ॐ भू० भो गणपते इहा० गणपतये० गणपतिम्० ॥२७ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्याम्-ॐ शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥ ३६-१२॥ ॐ भू० भो आपः इहागच्छत इह तिष्ठत, अद्भ्यो० अपः० ॥२८ ब्रह्मवायुमध्ये वल्लीषु ॐ मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो व्विमहसः । स सु गोपातमो जनः ॥८-३१॥ ॐ भू० भो मरुतः इहागच्छत इहतिष्ठत, मरुद्भ्यो० मरुतः० ॥ २९ ब्रह्मणः पादमूले-ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छानः शर्म्मसप्रथाः ॥३६-१३॥ ॐ भू० भो पृथिवि इहा० पृथिव्यै० पृथिवीम्० ॥३० ब्रह्मणःपादमूले कर्णिकाधः-ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥३४-११॥ ॐ भू० भो गङ्गादिनद्यः इहागच्छत इहतिष्ठत, गङ्गादिनदीभ्यो० गङ्गादिनदीः० ॥३१ ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाधः-ॐ इमम्मे व्वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥२१-१॥ ॐ भू० भो सप्तसागराः, इहागच्छत इहतिष्ठत, सप्तसागरेभ्यो० सप्तसागरान्० ॥३२ कर्णिकोपरि-ॐ प्रपर्व्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिच इयानाः । ता आववृत्रन्नधरागुदक्ताऽअहिम्बुध्न्यमनुरीयमाणाः । विष्णो र्व्विक्रमणमसि व्विष्णोर्व्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥१०-१९॥ ॐ भू० भो मेरो इहा० मेरवे० मेरुम्० ॥

ततो बहिरुत्तरादिक्रमेणायुधानि विन्यसेत्-प्रथमपरिधौ-सोमसमीपे-३३ ॐ गणानान्त्वा० ॐ भू० गदे इहा० गदायै० गदाम्० ॥ ३४ ईशानसमीपे ॐ त्रिᳬशद्धाम व्विराजतिव्वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरहद्युभिः ॥३-८॥ ॐ भू० भो त्रिशूल इहा० त्रिशूलाय० त्रिशूलं ॥३५ इन्द्रसमीपे ॐ महाँ २ इन्द्रोव्वज्रहस्तःषोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि ॥२६-१०॥ ॐ भू० भो वज्र० इहा० वज्राय० वज्रम्० ॥३६ अग्निसमीपे ॐ व्वसुश्च मे व्वसतिश्च मे कर्म्म च मे शक्तिश्च मेर्थश्च म एमश्च म इत्या चमेगतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१८-१५॥ ॐ भू० भो शक्ते इहा० शक्तये, शक्तिम्० ॥३७ यमसमीपे-ॐ इडऽएह्यदितऽएहिकाम्याऽएत । मयिवः कामधरणं भूयात् ॥३-२७॥ ॐ भू० भो दण्ड इहा० दण्डाय० दण्डम्० ॥३८ निर्ऋतिसमीपे-ॐ खड्गो, वैश्वदेवः० (पृ-२४४) ॐ भू० भो खड्ग, इहा० खड्गाय,० खड्गम्० ॥३९ वरुण समीपे ॐ उदुत्तमं व्वरुण पाशमस्मदवाधमं

व्विमर्च्चमᳪश्रथाय । अथा व्वयमादित्यव्व्रते तवानागसोऽअदितयेस्याम ॥१२-१२॥ ॐ भू० भो पाश इहा० पाशाय० पाशम्० ॥४०॥ वायु समीपे-ॐ अᳪशुश्चमेरश्मिश्च मेऽदाभ्यश्चमेऽधिपतिश्चमउपाᳪशुश्च मेऽन्तर्य्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रति प्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१८-१९॥ ॐ भू० भो अङ्कुश इहा० अङ्कुशाय० अङ्कुशम्० ॥

४१ द्वितीयपरिधावुत्तरे-ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥३-६॥ ॐ भू० भो गौतम इहा० गौतमाय० गौतमम्० ॥४२ ईशानसमीपे-ॐ अयं दक्षिणा व्विश्वकर्म्मा तस्य मनो व्वैश्वकर्म्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारᳪ स्वारादन्त र्य्यामोऽन्तर्यामात् पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद्भरद्वाजऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥१३-५५॥ ॐ भू० भो भरद्वाज इहा० भरद्वाजाय० भरद्वाजम्० ॥४३ इन्द्रसमीपे-ॐ इदमुत्तरात् स्वस्तस्यश्रोत्रᳪसौवᳪश-रच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऐडमैडान् मन्थी मन्थिनऽ एकविᳪश एकविᳪशाद् वैराजं विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥१३-५७॥ ॐ भू० भो विश्वामित्र इहा० विश्वामित्राय० विश्वामित्रम्० ॥४४ अग्निसमीपे ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः कश्यपस्य- त्र्यायुषम् । यद्देवेषुत्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥३-६२॥ ॐ भू० भो कश्यप इहा० कश्यपाय० कश्यपम्० ॥४५ यमसमीपे ॐ अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्व्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती व्वार्षी जगत्या ऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात् सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥१३-५६॥ ॐ भू० भो जमदग्ने इहा० जमदग्नये० जमदग्निम्० ॥४६ निर्ऋतिसमीपे- ॐ अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो व्वसन्तः प्राणा यनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाᳪशुरुपाᳪशोस्त्रिवृत्त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामिप्रजाभ्यः ॥१३-५४॥ ॐ भू० भो वसिष्ठ इहा० वसिष्ठाय० वसिष्ठम्० ॥४७ वरुणसमीपे-अत्र पितरो मादयद्ध्वं यथाभागमावृषायध्वम् । अमीमदन्त पितरो यथा भागमावृषायिषत ॥२-३१॥ ॐ भू० भो अत्रे इहा० अत्रये० अत्रिम्० ॥४८ वायुसमीपे ॐ तम्पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः । नाकङ्गृभ्णानाः सुकृतस्यलोके तृतीये पृष्ठेऽअधिरोचने दिवः ॥१५-५०॥ ॐ भू० भो अरुन्धति इहा० अरुन्धत्यै० अरुन्धतीम्० ॥

४९ पूर्वे-ॐ अदित्यै रास्नासीन्द्राण्याऽउष्णीषः । पूषासि धर्म्माायदीष्व ॥३८-३॥ ॐ भू० भो ऐन्द्रि इहा० इन्द्राण्यै० इन्द्राणीम्० ॥५० आग्नेय्यां-ॐ यत्रबाणाः सम्पतन्ति कुमारा व्विशिखा इव । तन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म्म यच्छतु व्विश्वाहाशर्म्म यच्छतु ॥१७-४८॥ ॐ भू० भो कौमारि इहा० कौमार्यै० कौमारीम्० ॥५१ दक्षिणे-ॐ इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रह्माणिहरि वस्सुते दधिष्वनश्चनः ॥२०-८९॥ ॐ भू० भो ब्राह्मि इहा० ब्राह्म्यै० ब्राह्मीम्० ॥५२ नैर्ऋत्याम्० ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरम्पुरः । पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥३६॥ ॐ भू० भो वाराहि इहा० वाराह्यै० वाराहीम्० ॥५३ पश्चिमे-ॐ अम्बे अम्बिके० (पृ-२२९) ॥२०-१८॥ ॐ भू० भो चामुण्डे इहा० चामुण्डायै०

चामुण्डाम्० ॥५४ वायव्याम्-ॐ आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमवृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥१२-११२॥ ॐ भू० भो वैष्णवि इहा० वैष्णव्यै० वैष्णवीम् ॥५५ उत्तरे ॐ या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताऽभिचाकशीहि ॥१६-२॥ ॐ भू० भो माहेश्वरि इहा० माहेश्वर्यै० माहेश्वरीम्० ॥५६ ईशाने-ॐ समख्ये देव्या धिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा । मामऽआयुःप्रमोषीर्म्मोऽअहं तव व्वीरं विदेय तव देविसन्दृशि ॥४-२३॥ ॐ भू० भो वैनायकि इहा० वैनायक्यै० वैनायकीम् आवाहयामि स्थापयामि ॥ एवं ५६ षट्पञ्चाशद्देवता आवाह्य-ॐ मनोजूति० ब्रह्मादिसर्वतोभद्रमण्डलदेवताः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवत । ततः ॐ भू० ब्रह्मादिसर्वतोभद्र मण्डलदेवताभ्यो नमः-इति पूजयेत् । अनया पूजया ब्रह्मादिसर्वतोभद्रमण्डलदेवताः प्रीयन्ताम् ॥ (केचि दत्र पायसबलिदानमिच्छन्ति । सदीपं पायसबलिं निधाय-बलिद्रव्याय नमः-इति सम्पूज्य-ॐ ब्रह्मणे नमः पायसबलिं समर्पयामि-इति प्रतिनाम अथवा एकतन्त्रेण-ॐ भू० ब्रह्मादिसर्वतोभद्रमण्डलदेवताभ्यो नमः एकतन्त्रेण सदीपपायसबलिं समर्पयामि । जलमादाय-अनेन बलिदानेन ब्रह्मादिसर्वतोभद्रमण्डलदेवताः प्रीयन्ताम्-इति बलिदानम् ॥ स्थापितदेवताहोमावसरे-ॐ ब्रह्मणे स्वाहा-इति प्रतिनाम आज्येनैकैकामाहुतिं वा दश दश घृताक्ततिलाहुतीर्जुहुयात् ॥) इति सर्वतोभद्रमण्डलदेवतास्थापनपूजनादि ।

३३ एकलिङ्गतोभद्रचतुर्लिङ्गतोभद्राष्टलिङ्गतोभद्रेषु विशिष्टदेवताः ।

त्रिप्रकारेषु लिङ्गतोभद्रमण्डलेषु पूर्वं सर्वतोभद्रनिर्दिष्ट ५६ षट्पञ्चाशद्देवतावाहनं कृत्वा ततो विशिष्टदेवतानामावाहनम् । तत्रैकलिङ्गतोभद्रेलिङ्गे-१ महादेवाय ईशानाय नमः महादेवमीशानं० । चतुर्लिङ्गेषु सत्सु-१ पश्चिमलिङ्गे-ॐ सद्योजातं० ब्रह्मजज्ञानं० सद्योजाताय० सद्योजातं० । २ उत्तरलिङ्गे-ॐ वामदेवाय नमो० वाममद्य० वामदेवाय० वामदेवम्० । ३ दक्षिणलिङ्गे-ॐ अघोरेभ्यो० याते रुद्र शिवा० अघोराय० अघोरं० । ४ पूर्वलिङ्गे-ॐ तत्पुरुषाय० हंसःशुचिषद्० तत्पुरुषाय० तत्पुरुषम्० ५ मध्ये ॐ ईशानः सर्वविद्यानां० तमीशानं० ॐ ईशानाय० ईशानम्० । अष्टलिङ्गेषु सत्सु पूर्वलिङ्गयोःउत्तरलिङ्गे-१ ॐ भवाय० भवं० । २ दक्षिणलिङ्गे० शर्वाय० शर्वम्० । दक्षिणलिङ्गयोः पूर्वलिङ्गे-३ ईशानाय० ईशानं० । पश्चिमलिङ्गे ४ पशुपतये० पशुपतिम्० ५ पश्चिमलिङ्गयोर्दक्षिणलिङ्गे-रुद्राय० रुद्रं० । उत्तरलिङ्गे-६ उग्राय० उग्रम्० । उत्तरलिङ्गयोः पश्चिमलिङ्गे-७ भीमाय० भीमम्० । तत्पूर्वलिङ्गे-८ महते० महान्तम्० । अथ द्वादशलिङ्गेषु-ईशानादिप्रादक्षिण्येन-१ वीरभद्राय० वीरभद्रं० । २ शम्भवे शम्भुम्० ३ अजैकपदे० अजैकपदम्० । दक्षिणलिङ्गेषु ४ अहिर्बुध्न्याय० अहिर्बुध्न्यम्० । ५ पिनाकिने० पिनाकिनम्० ६ शूलपाणये० शूलपाणिम्० । पश्चिमलिङ्गेषु-७ भुवनाधीश्वराय० भुवनाधीश्वरं० । ८ कपालिने० कपालिनं० । ९ दिक्पतये० दिक्पतिम्० । उत्तरलिङ्गेषु-१० रुद्राय० रुद्रं० । ११ शिवाय० शिवं० । १२ महेश्वराय० महेश्वरम्० । इति पार्थक्येन एकचतुरष्ट द्वादशलिङ्गदेवतास्तस्मिंस्तस्मिन् मण्डल आवाहयेत् । अथ लिङ्गतोभद्रमण्डलेषु सामान्यदेवताः० पूर्वे-१ असिताङ्ग भैरवाय० असिताङ्ग भैरवम्० । २ आग्नेये रुरुभैरवाय० रुरुभैरवाय० । दक्षिणे-३ चण्डभैरवाय० चण्डभैरवम्० । नैर्ऋत्यै-४ क्रोध भैरवाम्० क्रोधभैरवम्० । पश्चिमे-५ उन्मत्त

भैरवाय० उन्मत्तभैरवम्० । वायव्ये-६ कपालभैरवाय० कपालभैरवम्० । उत्तरे-७ भीषणभैरवाय० भीषणभैरवम्० । ईशान-८ संहारभैरवाय० संहारभैरवम्० ।। पूर्वादिक्रमेणाष्टनागान्-पू-९ अनन्ताय० अनन्तं० । १० आ० वासुकये० वासुकिम्० । ११ तक्षकाय० तक्षकं० । १२ नै-कुलिशाय० कुलिशम्० । १३ प-कर्कोटकाय० कर्कोटक० वा-१४ शङ्खपालाय० शङ्खपालम्० । १५ उ-कम्बलाय० कम्बलम् ।। १६ ई-अश्वतराय० अश्वतरम्० तत ईशानपूर्वायन्तरालेषु १७ शूलिने० शूलिनम्० । १८ चन्द्रमौलये० चन्द्रमौलिम्० ।। अग्निनैर्ऋत्यान्त रालेषु-१९ वृषध्वजाय० वृषध्वजम्० २० त्रिलोचनाय० त्रिलोचनम्० ।। नैर्ऋतवायव्यान्तरालेषु-२१ शक्तिधराय- शक्तिधरम्० । २२ महेश्वराय० महेश्वरम्० । वायव्येशानान्तरालेषु-२३ शूलपाणये० शूलपाणिम्० । २४ महादेवाय० महादेवम्० ।। परिधौ-२५ परिधये० परिधिम्० । २६ परिधिसमन्तात्-चतुःपुरीभ्यो० चतुःपुरीः० ।। आग्नेयकोणे शृङ्खलायां-२७ ऋग्वेदाय० ऋग्वेदम्० नैर्ऋत्यकोणे २८ यजुर्वेदाय० यजुर्वेदम्० ।। वायव्यकोणे २९ सामवेदाय-सामवेदम्० । ईशानकोणे शृङ्खलासु ३० अथर्ववेदाय० अथर्ववेदम्- ।। पूर्वादिक्रमेण वापीषु अष्टशक्तीरावाहयेत्-पूर्वे ३१ भवान्यै० भवानीम्० ३२ शर्वाण्यै० शर्वाणीम् ।। दक्षिणे-३३ पाशुपत्यै० पाशुपतीम्० । ३४ ईशान्यै० ईशानीम्० ।। पश्चिमे० ३५ उग्रायै० उग्राम्० । ३६ रुद्राण्यै- रुद्राणीम्० ।। उत्तरे-३७ भीमायै० भीमाम्० । ३८ महत्यै० महतीम्० ।। (एवं सर्वतोभद्रदेवतानन्तरं तत्तत्संख्याकलिङ्गदेवताआवाह्य सामान्या असिताङ्गभैरवादिमहत्यन्ता अष्टात्रिंशद्देवता आवाहयेत् । शुक्लयजुः शाखीयकर्म काण्डप्रदीपोक्तदेवतानां विनिमयं कृत्वैष प्रकारो निर्दिष्टः । प्राचीनहस्तलिखितपद्धतिषु लेखकस्वातन्त्र्येण देवतानिर्देशभेदाद्, देवतानिर्देशकप्रत्यक्ष-वचनानुपलम्भात् पद्धतिषु पारस्परिक-विरोधदर्शनाच्चायं पक्षः समादृतः । महारुद्रादिपद्धतिषु द्वादशलिङ्गतोभद्रमण्डलदेवतानां वैशिष्ट्येन स्वीकारात् तत्प्रयोगो ग्रन्थान्तरादवसेयः) ॐ मनोजूतिरिति प्रतिष्ठाप्य ॐ ब्रह्मादिलिङ्गतोभद्रदेवताभ्यो नमः इति सम्पूज्य बलिं दद्यात् । प्रतिष्ठायां सर्वतोभद्रस्य प्राधान्यमिति विवेकः ।

इति लिङ्गतोभद्रमण्डलदेवतास्थापनम् ।

३४ वारुणमण्डलदेवतास्थापनम् ।

(प्रतिष्ठायां सर्वतोभद्रमण्डलाकरणे जलाशयातिदेशाद् वारुणमण्डलकरणं पद्धतिकृद्भिः प्रपञ्चितम् । तद्रचनाप्रकारस्तु ग्रन्थान्तरादनुसन्धेयः)

जलमादाय-अद्य० तिथौ अमुकप्रतिष्ठाङ्गभूतं वारुणमण्डलदेवतास्थापनं पूजनं च करिष्ये । हस्ते अक्षतान् गृहीत्वा-

१ पूर्वे आरायां-ॐ आकृष्णेन० ॐ भूः० भो सूर्य इहा० सूर्याय० सूर्यम्० ।।
२ आग्नेये आरायां-ॐ इमन्देवा० ॐ भू० भो सोम इहा० सोमाय० सोमम्० ।।
३ दक्षिणे आरायां-ॐ अग्निर्मूर्धा० ॐ भू० भो भौम इहा० भौमाय० भौमम् ।।

४ नैर्ऋत्ये आरायां-ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने० ॐ भू० भो बुध इहा० बुधाय० बुधम् ।
५ पश्चिमे आरायां-ॐ बृहस्पते अति० ॐ भू० भो बृहस्पते इहा० बृहस्पतये० बृहस्पतिम्०
६ वायव्ये आरायां-ॐ अन्नात् परिस्रुतो० ॐ भू० भो शुक्र इहा० शुक्राय० शुक्रम्० ॥
७ उत्तरे आरायां-ॐ शन्नोदेवी० ॐ भू० शनैश्चर इहा० शनैश्चराय० शनैश्चरं०
८ ईशाने आरायां-ॐ कयानश्चित्र० ॐ भू० भो राहो इहा० राहवे० राहुम्० ॥
९ ईशान एव आरायां-ॐ केतुं कृण्वन्न० ॐ भू० भो केतो इहा० केतवे० केतुम्० ॥
१० पूर्वे आरायां सूर्याग्रे-ॐ त्रातारमिन्द्र० ॐ भू० भो इन्द्र इहा० इन्द्राय० इन्द्रम् ॥
११ आ-॥ सोमाग्रे-ॐ त्वन्नो अग्नेतव० ॐ भू० भो अग्ने इहा० अग्नये० अग्निम् ॥
१२ द-॥ भौमाग्रे-ॐ यमायत्वाऽङ्गिर० ॐ भू० भो यम इहा० यमाय० यमम्० ॥
१३ नै-॥ बुधाग्रे-ॐ असुन्वन्त० ॐ भू० भो निर्ऋते इहा० निर्ऋतये० निर्ऋतिम्० ॥
१४ प-॥ गुर्वग्रे-ॐ तत्त्वायामि० ॐ भू० भो वरुण इहा० वरुणाय० वरुणम्० ॥
१५ नि-॥ शुक्राग्रे-ॐ आनो नियुद्भिः० ॐ भू० भो वायो इहा० वायवे० वायुम्० ॥
१६ उ-॥ शन्यग्रे-ॐ वयहसोम० ॐ भू० भो सोम इहा० सोमाय० सोमम्० ॥
१७ ई-॥ राहुकेत्वग्रे-ॐ तमीशानं० ॐ भू० भो ईशान इहा० ईशानाय० ईशानं० ॥
१८ वायुसोममध्ये आरायां-ॐ सुगावो देवाः० ॐ भू० भो अष्टवसवः इहा० अष्टवसुभ्यो० अष्टवसून्० ॥
१९ सोमेशानान्तराले-ॐ रुद्राः सध्सृज्य० ॐ भू० भो रुद्रा इहा० रुद्रेभ्यो० रुद्रान्० ॥
२० ईशानेन्द्रान्तराले ॐ यज्ञो देवानां० ॐ भू० भो आदित्या इहा० आदित्येभ्यो० आदित्यान्० ॥
२१ इन्द्राग्न्यन्तराले ॐ यावाङ्कशा० ॐ भू० भो अश्विनौ इहा० अश्विभ्यां० अश्विनौ० ॥
२२ अग्नियमान्तराले ॐ ओमासश्चर्ष० ॐ भू० भो विश्वेदेवा इहा० विश्वेभ्यो देवेभ्यो० विश्वान् देवान्० ॥
२३ तत्रैव-॥ ॐ उदीरतामवर० ॐ भू० भो पितर इहा० पितृभ्यो० पितॄन्० ॥
२४ यमनिर्ऋत्यन्तराले० ॥ ॐ अभित्यं देव ६ ० ॐ भू० भो यक्षा इहा० यक्षेभ्यो० यक्षान्० ॥
२५ निर्ऋतिवरुणान्तराले ॥ ॐ आयङ्गौः० अन्तश्चरति० ॐ भू० भो भूतनागा इहा० भूतनागेभ्यो भूतनागान्० ॥
२६ वरुणवाय्वन्तराले ॥ ॐ ऋताषाडृत० ॐ भू० भो गन्धर्वाप्सरस इहा० गन्धर्वाप्सरोभ्यो० गन्धर्वाप्सरसः० ॥
२७ सौम्याद्यष्टदलेषु उत्तरदले-ॐ यदक्रन्दः ॐ भू० भो स्कन्द इहा० स्कन्दाय० स्कन्दम्० ॥
२८ ईशानदले-ॐ अदितिर्द्यौ० ॐ भू० भो दक्षादिसप्तकानि इहा० दक्षादिसप्तकेभ्यो० दक्षादिसप्तकानि० ॥
२९ पूर्वदले-ॐ अम्बे अम्बिके० ॐ भू० भो दुर्गे इहा० दुर्गायै० दुर्गाम्० ॥
३० पूर्वदलएव-ॐ इदं विष्णु० ॐ भू० भो विष्णो इहा० विष्णवे० विष्णुम्० ॥

३१ आग्नेयदले-ॐ पितृभ्यः० भू० भो स्वधे इहा० स्वधायै० स्वधाम्० ॥
३२ दक्षिणदले-ॐ परंमृत्यो० ॐ भू० भो मृत्यो इहा० मृत्यवे० मृत्युम्० ॥
३३ नैर्ऋत्यदले-ॐ गणानान्त्वा० ॐ भू० भो गणपते इहा० गणपतये० गणपतिम्० ॥
३४ पश्चिमदले-ॐ शन्नो देवी० ॐ भू० भो आपः इहा० अद्भ्यो० अपः० ॥
३५ वायव्यदले-ॐ मरुतोयस्य० ॐ भू० भो मरुतः इहा० मरुद्भ्यो० मरुतः० ॥
३६ कर्णिकायां-ॐ तत्त्वायामि० ॐ भू० भो वरुण इहा० वरुणाय० वरुणम्० ॥
३७ उत्तरकेसरमूले-ॐ ब्रह्मजज्ञानं० ॐ भू० भो ब्रह्मन् इहा० ब्रह्मणे० ब्रह्माणम्० ॥
३८ ईशान्ये ॥ ॐ विष्णोरराटमसि० ॐ भू० भो विष्णो इहा० विष्णवे० विष्णुम्० ॥
३९ पूर्वे ॥ ॐ मानस्तोकेतनये० ॐ भू० भो रुद्र इहा० रुद्राय० रुद्रम्० ॥
४० आग्नेये ॥ ॐ श्रीश्चतेलक्ष्मीश्च० ॐ भू० भो लक्ष्मि इहा० लक्ष्म्यै० लक्ष्मीम्० ॥
४१ दक्षिणे ॥ ॐ अम्बे अम्बिके० ॐ भू० भो अम्बिके इहा० अम्बिकायै० अम्बिकाम्० ॥
४२ नैर्ऋत्ये ॥ ॐ तत्सवितु० ॐ भू० भो सावित्रि इहा० सावित्र्यै० सावित्रीम्० ॥
४३ पश्चिमे ॥ ॐ पञ्चनद्यः ॐ भू० भो नद्यः इहा० गङ्गादिनदीभ्यो० गङ्गादिनदीः० ॥
४४ वायव्ये ॥ ॐ इमम्मे व्वरुण० ॐ भू० भो सप्तसागरा इहा० सप्तसागरेभ्यो सप्तसागरान्० ॥
४५ ब्रह्मणःपादमूले ॐ भूतायत्वा० ॐ भू० भो भूतग्राम इहा० भूतग्रामाय० भूतग्रामम्० ॥
४६ कर्णिकोपरि-ॐ प्रपर्वतस्य० ॐ भू० भो मेरो इहा० मेरवे० मेरुम्० ॥
४७ बाह्यपरिधौ सोमादिसमीपे ॐ गणानान्त्वा० ॐ भू० भो गदे इहा० गदायै० गदाम्० ॥
४८ ईशानसमीपे-ॐ त्रिंशद्धाम० ॐ भू० भो त्रिशूल इहा० त्रिशूलाय० त्रिशूलम्० ॥
४९ इन्द्रसमीपे ॥ ॐ महाँ इन्द्रो वज्र० ॐ भू० भो वज्र इहा० वज्राय० वज्रम्० ॥
५० अग्नि ॥ ॐ वसुचमे० ॐ भो भू० भो शक्ते इहा० शक्तये० शक्तिम्० ॥
५१ यम-॥ ॐ इडएह्यदित० ॐ भू० भो दण्ड इहा० दण्डाय० दण्डम्० ॥
५२ निर्ऋति ॥ ॐ खड्गो वैश्वदेवः० ॐ भू० भो खड्ग इहा० खड्गाय० खड्गम्० ॥
५३ वरुण ॥ ॐ उदुत्तमं० ॐ भू० भो पाश इहा० पाशाय० पाशम्० ॥
५४ वायु ॥ ॐ अंशुश्च मे० ॐ भू० भो अङ्कुश इहा० अङ्कुशाय० अङ्कुशम्० ॥
५५ तद्बाह्य उत्तरे० ॐ आयङ्गौः० ॐ भू० भो गौतम इहा० गौतमाय० गौतमम्० ॥
५६ ईशाने-ॐ अयं दक्षिणा० (पृ-२५१) ॐ भू० भो भरद्वाज इहा० भरद्वाजाय० भरद्वाजम्० ॥
५७ पूर्वे-ॐ इदमुत्तरात्० (पृ-२५१) ॐ भू० भो विश्वामित्र इहा० विश्वामित्राय० विश्वामित्रम्० ॥
५८ आग्नेये-ॐ त्र्यायुषञ्जम० ॐ भू० कश्यप इहा० कश्यपाय० कश्यपम्० ॥
५९ दक्षिणे-ॐ अयं पश्चाद्० (पृ०२५१) ॐ भू० भो जमदग्ने इहा० जमदग्नये० जमदग्निम्० ॥
६० नैर्ऋत्ये-ॐ अयमुपरो भुव० (पृ-२५१) ॐ भू० भो वसिष्ठ इहा० वसिष्ठाय० वसिष्ठम्० ॥
६१ पश्चिमे-ॐ अत्र पितरो० ॐ भू० भो अत्रे इहा० अत्रये० अत्रिम्० ॥

६२ वायव्यां-ॐ तम्पत्नीभि० ॐ भू० भो अरुन्धति इहा० अरुन्धत्यै० अरुन्धतीम्० ॥
६३ पूर्वे ॐ अदित्यै रास्ना० ॐ भू० भो ऐन्द्रि इहा० ऐन्द्र्यै० ऐन्द्रीम्० ॥
६४ आग्नेये ॐ यत्रबाणा० ॐ भू० भो कौमारि इहा० कौमार्यै० कोमारीम्० ॥
६५ दक्षिणे-ॐ इन्द्रायाहितुतुजान० ॐ भू० भो ब्राह्मि इहा० ब्राह्म्यै० ब्राह्मीम्० ॥
६६ नैर्ऋत्ये-ॐ आयङ्गौः० ॐ भू० भो वाराहि इहा० वाराह्यै० वाराहीम्० ॥
६७ पश्चिमे-ॐ अम्बे अम्बिके० ॐ भू० भो चामुण्डे इहा० चामुण्डायै० चामुण्डाम्० ॥
६८ वायव्ये-ॐ आप्यायस्व० ॐ भू० भो वैष्णवि इहा० वैष्णव्यै० वैष्णवीम्० ॥
६९ उत्तरे-ॐ याते रुद्र० ॐ भू० भो माहेश्वरि इहा० माहेश्वर्यै० माहेश्वरीम्० ॥
७० ईशाने-ॐ समख्ये देव्या० ॐ भू० भो वैनायकि इहा० वैनायक्यै० वैनायकीम्०

इति ७० सप्ततिसंख्याका देवता आवाह्य-ॐ मनोजूतिः सूर्यादिवारुणमण्डलदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत । ॐ भू० सूर्यादिवारुणमण्डलदेवताभ्यो नमः इति षोडशोपचारैः पूजयेत् । ततः सदीपपायसबलिं-ॐ बलिद्रव्याय नमः-इति सम्पूज्य-ॐ सूर्याय नमः पायसबलिं समर्पयामि-इति प्रणवादिचतुर्थ्यन्तप्रतिदैवतनामभिः वलिं दद्यात् । अनेन बलिदानेन सूर्यादिवारुणमण्डलदेवताः प्रीयन्ताम् । जलमादाय-अनेन प्रतिष्ठाङ्गभूतवारुणमण्डलपूजनेन सूर्यादि वारुणमण्डलदेवताः प्रीयन्ताम् ॥ (मन्त्राः सर्वतोभद्रमण्डलप्रयोगादवतारणीयाः ॥ प्रतिनाम एकतन्त्रेण वा पायसबलिदानम् ।) स्थापितदेवताहोमावसरे-ॐ सूर्यायस्वाहा-इत्यादिनामभिः प्रतिमन्त्रमेकैकामाज्याहुतिं वा दश दश घृताक्ततिलाहुतीर्जुहुयात् ॥

३५ प्रधानदेवतास्थापनम् ।

(ऋग्वेदिनां प्रधानदेवतास्थापनानन्तरमग्निस्थापनम्, याजुषाणां पुनर्जपपूर्वक दशांशहवनरूपनवचण्डीशतचण्डीविष्णुयागादिजपप्रधानकर्मणि पूर्वं प्रधानदेवतास्थापनं ततो दिग्रक्षणाद्यग्निस्थापनान्तं होमप्रधान लघुरुद्रमहारुद्रप्रतिष्ठादिकर्मसु पूर्वं दिग्रक्षणाद्यग्निस्थापनान्तं कृत्वा ततः प्रधानदेवतास्थापनं कर्तव्यम् । पद्मनाभादिपद्धतिषु ग्रहयज्ञं प्रकृतिं मत्त्वा पूर्वं ग्रहस्थापनं ततः प्रधानदेवतास्थापनं निरुक्तम् । वस्तुतस्तु ग्रहयज्ञस्य प्रकृतित्वेऽपि प्रधानकर्माङ्गत्वात् पूर्वं प्रधानदेवतास्थापनं युक्ततमम् । केवलं रुद्रयजने विशेषवचनबलेन पूर्वं ग्रहस्थापनं भवति ।) पीठमध्ये ताम्रादिकलशं सपूर्णपात्रं निधाय क्षौमवस्त्रमात्रेष्ट्य प्रासादे स्थापयिष्यमाणदेवतानां प्रतिमासु पूगीफलेषु वा तास्ता देवता आवाहयेत् । जलमादाय-अद्य० तिथौ सकलजनपदश्रेयसे प्रारब्धसग्रहमखसप्रासाददिनत्रयसाध्य-अचलप्रतिष्ठाङ्गत्वेन प्रधानदेवतास्थापनं पूजनञ्चाहं करिष्ये । ताम्रपात्रे सुवर्णरजतान्यतरप्रतिमाः पूगीफलानि वा निधाय (शैवे-१ ॐ गणानान्त्वा० गणपतिं० २ ॐ अग्निछहृदयेना० अस्मेरुद्रा० हनुमन्तं० ३ ॐ आशुः शिशानो० नन्दीश्वरं० ४ ॐ यस्यकुर्मो० कूर्मं० ५ ॐ अम्बेऽम्बिके० गौरीम्० ६ ॐ

गौरीर्मिमाय० आयङ्गौः० पिण्डिकाम्० ७ ॐ नमः शम्भवाय० भगवन्तं शिवम्० ८ ॐ केतु कृण्वन्न० ध्वजम्० ९ ॐ आजिघ्रकलशं० शिखरम्० इत्यावाहयेत् । वैष्णवे-केवले विष्णौ-ॐ इदं विष्णु-विष्णुम्-श्रीश्चते० पिण्डकाम्० गरुडश्चेत् ॐ सुपर्णोऽसि० गरुत्मन्तम्० । लक्ष्मीनारायणयोःराधाकृष्णयोश्च-इदं विष्णु० नारायणं कृष्णं वा, श्रीश्चतेलक्ष्मीश्च० लक्ष्मी राधा वा० श्रीणामुदारो- पिण्डिकाम्० । लक्ष्मणरामसीतासु-इदं विष्णु० पुत्रमिव पितरा० रामं, नमोऽस्तुसर्पेभ्यो० लक्ष्मणम्० घृतेन सीता० सीताम्-श्रीश्चते० पिण्डिकाम्-दासहनुमाँश्चेत्-अग्निᳬहृदयेना० हनुमन्तम् । सत्यारुक्मिणी विठ्ठलप्रतिमासु-भूरसि० सत्याम्० श्रीश्चते० रुक्मिणीम्० इदं विष्णु० विठ्ठलम्० श्रीणामुदारो० पिण्डिकाम् गरुडश्चेत्-सुपर्णोऽसि० गरुडम्० । केवलदुर्गायां-अम्बे अम्बिके० श्रीश्चते० पावकानः सरस्वती० जातवेदसे० तामग्निवर्णां० एतदन्यतमेन दुर्गां लक्ष्मीं वा० गौरीर्मिमाय० श्रीणामुदारो० पिण्डिकायां० सिंहश्चेत्-स्वङ्गो वैश्वदेवः० सिंहम्० । दत्तात्रेये-यद्दत्तं० ब्रह्मजज्ञानं० इदंविष्णुः० त्र्यम्बकं० दत्तात्रेयम्-श्रीश्चते० पिण्डिकाम्० । केवलं गणेशे-गणानान्त्वा० गणपतिम्, श्रीश्चते० पिण्डिकाम् । केवलहनुमतिअस्मे रुद्रा० अग्निᳬहृदयेन० हनुमन्तम्० श्रीश्चते० पिण्डिकाम् । केवलभैरवे-यो भूताना० भैरवम्० गौरीर्मिमाय० पिण्डिकाम्० । अन्यासु देवतासु तत्तन्मन्त्रोहः । सर्वत्र एवं सपरिवारप्रधानदेवतापूजनेन सपरिवारा अमुकदेवताः प्रीयन्ताम् ॥

३६ ग्रहमण्डलदेवता-शेषादिमनुष्यान्तदेवतास्थापनम् ।

(याज्ञवल्क्यदिनकरमते केवलनवग्रहाः, मात्स्यपरिशिष्टमते नवग्रहाः, नवाधिदेवताः नवप्रत्यधिदेवताः, पञ्च सप्त वा क्रतुसाद्गुण्यदेवताः, अष्टौ दश वा दिक्पालदेवताः, तत्र दिक्पालेषु ऋग्वेदिनां प्रथमोऽनन्तः द्वितीयो ब्रह्मा, याजुषाणां पुनः प्रथमो ब्रह्मा ततोऽनन्तः, एवं ४०, ४२, ४४ वा देवता ग्रहस्थापने भवन्ति । प्रयोगदर्पणवासिष्ठीहवनपद्धत्यादिमतेन ग्रहमण्डले निर्दिष्टस्थानेषु शेषादिमनुष्यान्त देवतानामावाहनं कृताकृतम् । ग्रहयज्ञहविर्भिः सह हविर्वैषम्यात् । अयुतलक्षकोटिहोमेषु तु शेषादि देवतानामावश्यकत्वम् । सर्वपद्धतिकृद्भिर्ग्रहमण्डलदेवतावाहनान्ते मण्डलेशाने कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणावाहनम्, साङ्गरुद्रजपश्चोक्तः, वासिष्ठहवनपद्धतौ असंख्यातेति मन्त्रेण रुद्रो रुद्रघटाम्भसि, इतिवचनेन रुद्रावाहनं प्राप्नोति, कलशदैवतत्वाद्वरुणमावाह्य रुद्रावाहने न कश्चिद्विरोधः ॥)

पीठसमीप उपविश्य-यज० सग्रहमखसप्रासादामुकदेवताचलप्रतिष्ठाङ्गभूतग्रहमण्डलदेवतावाहनं पूजनञ्च करिष्ये । सूर्यादि-अनन्तान्तदेवतानामावाहनं तत्तन्मन्त्रैः कृत्वा ईशानकलशे ॐ तत्त्वायामि० इति वरुणमावाहयेत् । ॐ सूर्यादिग्रहमण्डलदेवताभ्यो नमः इति षोडशोपचारैः पूजयेत् । ईशानकलशे साङ्गरुद्रजपं रौद्राध्यायं नमस्ते० इति षोडशर्चं वा कश्चिदृत्विक् कलशं स्पृष्ट्वा जपेत् । शेषादिमनुष्यान्तदेवतानामावाहनम्-तत्रतत्राक्षतपुञ्जान् कृत्वाऽवाहयेत् १ सूर्यपूर्वे-१ शेषाय० शेषम्० । २ सोमाग्रे-वासुकये० वासुकिम्० ३ भौमाग्रे-तक्षकाय० तक्षकम्० ४ बुधोत्तरे ४ कर्कोटकाय०

कर्कोटकम्० । ५ बृहस्पत्यग्रे-पद्माय० पद्मम्० । ६ शुक्रोत्तरे महापद्माय० महापद्मम्० ७ शनिपश्चिमे शङ्खपालाय० शङ्खपालम्० । ८ राहुपुरतः-कम्बलाय० कम्बलम्० । ९ केतुपुरतः- कुलिकाय० कुलिकं० ।

मण्डलपूर्वे उदक्संस्थेषु पञ्चसु अक्षतपुञ्जेषु क्रमेण-१० अश्विन्यादिसप्तनक्षत्रेभ्यो० अश्विन्यादिसप्तनक्षत्राणि० । ११ विष्कुम्भादिसप्तयोगेभ्यो० विष्कुम्भादिसप्तयोगान्० । १२ बवबालवकरणाभ्यां० बवबालवकरणे० । १३ सप्तद्वीपेभ्यो० सप्तद्वीपान्० १४ ऋग्वेदाय० ऋग्वेदम्० ॥

मण्डलदक्षिणे पञ्चसु अक्षतपुञ्जेषु प्राक्संस्थं-१५ पुष्यादिसप्तनक्षत्रेभ्यो० पुष्यादिसप्तनक्षत्राणि० । १६ धृत्यादिसप्तयोगेभ्यो० धृत्यादिसप्तयोगान्० । १७ कौलवतैतिलकरणाभ्यां० कौलवतैतिलकरणे० १८ सप्तसागरेभ्यो० सप्तसागरान्० । १९ यजुर्वेदाय यजुर्वेद० ।

मण्डलपश्चिमे पञ्चस्वक्षतपुञ्जेषु उदक्संस्थम्-२० स्वात्यादिसप्तनक्षत्रेभ्यो० स्वात्यादिसप्त नक्षत्राणि० २१ वज्रादिसप्तयोगेभ्यो० वज्रादिसप्तयोगान्० । २२ गरवणिजकरणाभ्यां० गरवणिजकरणे० । २३ सप्तपातालेभ्यो० सप्तपातालानि० २४ सामवेदाय० सामवेदं० ।

मण्डलोत्तरे पञ्चस्वक्षतपुञ्जेषु प्राक्संस्थम्-२५ अभिजिदादिसप्तनक्षत्रेभ्यो० अभिजिदादिसप्तनक्षत्राणि० । २६ साध्यादिषड्योगेभ्यो० साध्यादिषड्योगान्० २७ विष्टिकरणाय० विष्टिकरणम्० । २८ भूरादिसप्तलोकेभ्यो० भूरादिसप्तलोकान्० २९ अथर्ववेदाय० अथर्ववेदम्० ।

वायव्यां पञ्चसु अक्षतपुञ्जेषु-३० ध्रुवाय० ध्रुवं० । ३१ सप्तर्षिभ्यो० सप्तर्षीन्० ३२ गङ्गादिसरिद्भ्यो० गङ्गादिसरितः० ३३ सप्तकुलाचलेभ्यो० सप्तकुलाचलान्० ३४ अष्टवसुभ्यो० अष्टवसून्० ॥ ईशान्याम् ३५ एकादशरुद्रेभ्यो० एकादशरुद्रान्० । ३६ द्वादशादित्येभ्यो० द्वादशादित्यान्० । ३७ मरुद्भ्यो० मरुतः० ३८ षोडशमातृभ्यो० षोडशमातृः० ३९ षड्ऋतुभ्यो० षड्ऋतून्० ॥ आग्नेय्यां पञ्चस्वक्षतपुञ्जेषु-४० द्वादशमासेभ्यो० द्वादशमासान्० । ४१ उदगयनदक्षिणायनाभ्यां० उदगयन दक्षिणायने० । ४२ पञ्चदशतिथिभ्यो० पञ्चदशतिथीन्० । ४३ षष्टिसंवत्सरेभ्यो० षष्टिसंवत्सरान्० ४४ सुपर्णेभ्यो० सुपर्णान्० ॥ नैर्ऋत्याम्-४५ नागेभ्यो० नागान्० । ४६ सर्पेभ्यो० सर्पान् । ४७ यक्षेभ्यो० यक्षान्० ॥ ४८ गन्धर्वेभ्यो० गन्धर्वान्० । ४९ सिद्धेभ्यो० सिद्धान्० । ५० विद्याधरेभ्यो० विद्याधरान्० । पूर्वे० ५१ अप्सरोभ्यो० अप्सरसः० दक्षिणे० ५२ राक्षसेभ्यो० राक्षसान्० । पश्चिमे-५३ भूतेभ्यो० भूतान्० । उत्तरे-५४ मनुष्येभ्यो० मनुष्यान्० ॥ एवं चतुःपञ्चाशद्देवता आवाह्य ॐ मनोजूति० शेषादिमनुष्यान्तदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत । ततः केवलग्रहमण्डलसत्त्वे-ॐ सूर्यादिग्रहमण्डल देवताभ्यो नमः- (शेषादिमनुष्यान्तसहितपक्षे) ॐ शेषादिमनुष्यान्तदेवतासहित-सूर्यादिग्रहमण्डल देवताभ्यो नमः- इति षोडशोपचारैः पूजयेत् । जलमादाय-अनेन पूजनेन (शेषादिमनुष्यान्तदेवता सहिताः) सूर्यादिग्रहमण्डलदेवताः प्रीयन्ताम् । वासिष्ठीहवनपद्धती

ग्रहस्थानमुखाकारवर्णगोत्र देशवस्त्रगन्ध पुष्पधूपदीपनैवेद्यफलादिकं ग्रहाणां पार्थक्येन निरुक्तम् तत्ततोऽनुसन्धेयम् ।)

३७ योगिनीमण्डलम् ।

(तन्त्रादिषु काशीखण्डे पुराणादिषु च यज्ञकालिकविघ्नविध्वंसनार्थं योगिनीपूजनं विहितम् । एतच्च कृताकृतम्, कुत्रचिदुक्तत्वात् कुत्रचिदनुक्तत्वाच्च । आग्नेय्यां हस्तमात्रे योगिनीपीठेश्वेतवस्त्रे पञ्चवर्णैस्तण्डुलैरेकत्रिपञ्चसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशत्रिकोणात्मिकाः परस्परसंलग्ना अष्टपङ्क्तयो विधेयाः । अथवाऽष्टाष्टत्रिकोणानामष्टपङ्क्तयः प्राक्संस्थाः कार्याः । तत्परितोऽष्ट दिक्षु अष्ट देवताः अग्रभागे च महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीतिदेवतात्रयम् । एवं ७५ पञ्च सप्ततिदेवता भवन्ति । योगिनीभैरवपूजनयोर्देवीरुद्रयागयोरावश्यकत्वम् । देवीरुद्रभिन्नयागेषु भैरवस्थाने क्षेत्रपालस्थापनमिति याज्ञिकसम्प्रदायः । पद्धतिकृद्भिर्योगिनीपूजने १ रुद्रकल्पद्रुमोक्ता गजाननादयः ६४ । २ शान्तिसाराद्युक्ता जयादयः । ३ आग्नेयोक्ता-अक्षोभ्यादयः । ४ प्रतिष्ठातिलकोक्ता अघोरादयः । ५ दिव्ययोगिन्यादयोऽन्यत्रोक्ता । ६ प्राचीनपद्धत्युक्ता विश्वदुर्गादयः एवं षड्भेदाः योगिनीस्थापने । यासामावाहनं तासां होमः स्थापितदेवताहोमकाले कर्तव्य इति सावधानैर्भाव्यम् ।)

जलमादाय अद्य-तिथौ यज्ञकालिकसमस्तविघ्नविध्वंसनार्थं प्रतिष्ठाङ्गत्वेन योगिनीस्थापनं पूजनञ्चाहं करिष्ये । हस्ते अक्षतान् गृहीत्वा-ॐ योगे योगे तवस्तरं व्वाजे व्वाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥१५-१४॥ पुरतः पूगीफलेषु ॐ ऐं महाकाल्यैनमः महाकालीम्० । २ ह्रीं महालक्ष्म्यै० महालक्ष्मीम्० । ३ क्लींमहासरस्वत्यै० महासरस्वतीम्० । पुरतस्त्र्यस्त्रेषु क्रमेण आदौप्रणवः सर्वत्रअन्ते नमः पदम् ।

१ विश्वदुर्गायै० विश्वदुर्गाम्०
२ उद्योतिन्यै० उद्योतिनीम्०
३ मालाधर्यै० मालाधरीम्०
४ महामायायै० महामायाम्०
५ मायावत्यै० मायावतीम्०
६ शुभायै० शुभाम्०
७ यशस्विन्यै० यशस्विनीम्०
८ त्रिनेत्रायै० त्रिनेत्राम्०
९ लोलजिह्वायै० लोलजिह्वाम्०
१० शङ्खिन्यै० शङ्खिनीम्०

२८ भुवनेश्वर्यै० भुवनेश्वरीम्०
२९ खड्गपाण्यै० खड्गपाणिम्०
३० शूलिन्यै० शूलिनीम्०
३१ दण्डिकायै० दण्डिकाम्०
३२ अम्बिकायै अम्बिकाम्०
३३ शूलेश्वर्यै० शूलेश्वरीम्०
३४ बाणवत्यै० बाणवतीम्०
३५ धनुर्धरायै० धनुर्धराम्०
३६ महोल्लासायै० महोल्लासाम्०
३७ विशालाक्ष्यै० विशालाक्षीम्०

५५ गगनायै० गगनाम्०
५६ मेघवाहनायै० मेघवाहनाम्०
५७ मेघघोषायै० मेघघोषाम्०
५८ नारसिंह्यै० नारसिंहीम्०
५९ कालिन्द्यै० कालिन्दीम्०
६० श्रीधर्यै० श्रीधरीम्०
६१ तैजस्यै० तैजसीम्०
६२ श्यामायै० श्यामाम्०
६३ मातङ्ग्यै० मातङ्गीम्०
६४ नरवाहनायै० नरवाहनाम्०

११ यमघण्टायै॰ यमघण्टाम्॰	३८ त्रिपुरायै॰ त्रिपुराम्॰	मण्डलाद्बहिः
१२ कालिकायै॰ कालिकाम्॰	३९ भगमालिन्यै॰ भगमालिनीम्॰	१ पू-इन्द्राण्यै॰ इन्द्राणीम्॰
१३ चर्चिकायै॰ चर्चिकाम्॰	४० दीर्घकेश्यै॰ दीर्घकेशीम्॰	२ आ दुर्गायै॰ दुर्गाम्॰
१४ यक्षिण्यै॰ यक्षिणीम्॰	४१ घोरघोणायै॰ घोरघोणाम्॰	३ द जयायै॰ जयाम्॰
पृ. २६०	पृ. २६०	पृ. २६०
पृ. २५९ तः	पृ. २५९ तः	पृ. २५९.तः
१५ सरस्वत्यै॰ सरस्वतीम्॰	४२ वाराह्यै॰ वाराहीम्॰	४ नै-विजयायै॰ विजयाम्॰
१६ चण्डिकायै॰ चण्डिकाम्॰	४३ महोदर्यै॰ महोदरीम्॰	५ प-अजितायै॰ अजिताम्॰
१७ चित्रघण्टायै॰ चित्रघण्टाम्॰	४४ कामेश्वर्यै॰ कामेश्वरीम्॰	६ वा-विश्वमङ्गलायै॰ विश्वमङ्गलाम्॰
१८ सुगन्धायै॰ सुगन्धाम्॰	४५ गुह्येश्वर्यै॰ गुह्येश्वरीम्॰	७ उ-भद्ररुपिण्यै॰ भद्ररूपिणीम्॰
१९ कामाक्ष्यै॰ कामाक्षीम्॰	४६ भूतनाथायै॰ भूतनाथाम्॰	८ ई-भुवनेश्वर्यै॰ भुवनेश्वरीम्॰
२० भद्रकाल्यै॰ भद्रकालीम्॰	४७ महारवायै॰ महारवाम्॰	९ म-राजराजेश्वर्यै॰ राजराजेश्वरीम्॰
२१ परायै॰ पराम्॰	४८ ज्योतिष्मत्यै॰ ज्योतिष्मतीम्॰	
२२ कान्ताक्ष्यै॰ कान्ताक्षीम्॰	४९ कृत्तिवाससे॰ कृत्तिवाससम्॰	
२३ कोटराक्ष्यै॰ कोटराक्षीम्॰	५० मुण्डिन्यै॰ मुण्डिनीम्॰	
२४ नीलाङ्गायै॰ नीलाङ्गाम्॰	५१ शववाहिन्यै॰ शववाहिनीम्॰	
२५ सर्वमङ्गलायै॰ सर्वमङ्गलाम्॰	५२ शिवाङ्गायै॰ शिवाङ्गाम्॰	
२६ ललितायै॰ ललिताम्॰	५३ लिङ्गहस्तायै॰ लिङ्गहस्ताम्॰	
२७ त्वरितायै॰ त्वरिताम्॰	५४ भगवक्त्रायै भगवक्त्राम्॰	
पृ-२५९ तः	पृ-२५९ तः	

मध्ये कलशं निधाय तदुपरि मूर्तौ समष्टिरूपेण पूजयेत् ।

ॐ मनोजूति॰ ॐ महाकाल्यादिसहितविश्वदुर्गादियोगिन्यः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत ।

ॐ भू॰ महाकाल्यादिसहितविश्वदुर्गादियोगिनीभ्यो नम इति षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेत्-ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा, पाताले वा तले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा । क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन, प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ॥ अनेन पूजनेन महाकाल्यादिसहितविश्वदुर्गादियोगिन्यः प्रीयन्ताम् । पायसबलिद्रव्याय नम इति सम्पूज्य-ॐ महाकाल्यादिसहितविश्वदुर्गादि देवताभ्यो नमः पायसबलिं समर्पयामि । अनेन बलिदानेन योगिन्यः प्रीयन्ताम् ।

(गजाननाद्यन्यप्रकाराः देवताप्रकरणतो बोध्याः) होमकाले एकैकामाज्याहुतिं दश दश तिलाहुतीर्वा जुहुयात्)

३८ भैरवस्थापनम् ।

(देवीयजने भैरवाणाम् रुद्रयजने भैरवक्षेत्रपालान्यतरेषाम् अन्ययजनेषु क्षेत्रपालानां स्थापनम् । मण्डपे वायव्ये कृष्णश्वेतान्यतरवस्त्रे पञ्चवर्णतण्डुलैः स्थापनम् । चतुःषष्टिभैरवाः एकपञ्चाशत् क्षेत्रपाला वा । क्षेत्रपालेषु कुत्रचित् संख्याभेदः)

श्वेतकृष्णान्यतरवस्त्रे पञ्चवर्णैस्तण्डुलैरष्टदलं कृत्वा प्रतिदलमष्टाष्टाक्षतपुञ्जान् वा अष्टाना मष्ट पङ्क्तीः कृत्वा चतुःषष्टिभैरवान् मध्ये कलशे मूर्तौ समष्टिरूपेण आवाह्य पूजयेत्-जलमादाय-अद्य-तिथौ यज्ञकालिकविघ्नविनाशनार्थं प्रतिष्ठाङ्गभूतं चतुःषष्टिभैरवाणां स्थापनं पूजनञ्च करिष्ये ।

हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा ॐ यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः । य ईशे महतो महाँस्तेनगृह्णा मित्वामहम्मयिगृ ह्णामित्वामहम् ।।२०-३२।। ॐ नम उग्राय च भीमाय च-

	पृ. २६२ तः	पृ. २६२ तः
१ श्रीमद्भैरवाय०	२३ निर्भयभैरवाय०	४५ विष्णुभैरवाय०
२ शम्भुभैरवाय०	२४ विगीतभैरवाय०	४६ बटुकनाथभैरवाय
३ नीलकण्ठभैरवाय०	२५ प्रेतभैरवाय०	४७ भूतनाथ भैरवाय०
४ विशालभैरवाय०	२६ लोकपालभैरवाय०	४८ वेतालभैरवाय०
५ मार्तण्डभैरवाय०	२७ गदाधरभैरवाय०	४९ त्रिनेत्रभैरवाय०
६ मनुप्रभभैरवाय०	२८ वज्रहस्तभैरवाय०	५० त्रिपुरान्तकभैरवाय०
७ स्वच्छन्दभैरवाय०	२९ महाकालभैरवाय०	५१ वरदभैरवाय०
८ असिताङ्गभैरवाय०	३० प्रचण्डभैरवाय०	५२ पर्वतवासभैरवाय०
९ खेचरभैरवाय०	३१ अजेयभैरवाय०	५३ शशिशकलभूषणभैरवाय०
१० संहारभैरवाय०	३२ अन्तकभैरवाय०	५४ सर्वभूतहृदयभैरवाय०
११ विरूपभैरवाय०	३३ भ्रामकभैरवाय०	५५ घोरनायकभैरवाय०
१२ विरूपाक्षभैरवाय०	३४ संहारभैरवाय०	५६ भयङ्करभैरवाय०
१३ नानारूपधरभैरवाय०	३५ कुलपालभैरवाय०	५७ भुक्तिमुक्तिप्रदभैरवाय०
१४ वराहभैरवाय०	३६ चण्डपालभैरवाय०	५८ कालाग्निभैरवाय०
१५ रुरुभैरवाय०	३७ प्रजापालभैरवाय०	५९ महारुद्रभैरवाय०
१६ कुन्दवर्णभैरवाय०	३८ रक्ताङ्गभैरवाय०	६० भयानकभैरवाय०

	पृ. २६२ तः	
१७ सुगात्रभैरवाय०	३९ वेगवीक्षणभैरवाय०	६१ दक्षिणमुखभैरवाय०
१८ उन्मत्तभैरवाय०	४० अरूपभैरवाय०	६२ भीषणभैरवाय०
१९ मेघनादभैरवाय०	४१ धरापालभैरवाय०	६३ क्रोधभैरवाय०
२० मनोजवभैरवाय०	४२ कुण्डलभैरवाय०	६४ सुखसम्पत्तिदायकभैरवाय नमः
पृ. २६२	पृ. २६२	
पृ. २६१ तः	पृ. २६१ तः	
२१ क्षेत्रपालभैरवाय०	४३ मन्त्रनाथभैरवाय	
२२ विषापहारभैरवाय	४४ रुद्रपितामहभैरवाय० (पृ. २६१ तः)	

ॐ मनोजूति० श्रीमद्भैरवादिचतुःषष्टिभैरवाः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत । मध्ये कलशे मूर्तौ समष्टिरूपेण-ॐ श्रीमद भैरवादिचतुःषष्टि भैरवेभ्यो नमः इति षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेत्-ॐ ह्रीं बटुकाय आपदुद्धारणाय कुरुकुरु बटुकाय ह्रीं ॐ । करकलितकपालःकुण्डली दण्डपाणि, स्तरुण तिमिरनीलव्यालयज्ञोपवीती । क्रतुसमयसपर्याविघ्न विच्छेदहेतुर्जयति बटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥ ॐ श्रीमद्भैरवादि० नमस्कारान् नम० । पायसबलिं निधाय-बलिद्रव्याय नमः-इति सम्पूज्य ॐ श्रीमद् भैरवादिचतुःषष्टिभैरवेभ्यो नमः पायसबलिं समर्पयामि । अनेन पूजनेन श्रीमद् भैरवादिचतुःषष्टिभैरवाः प्रीयन्ताम् ॥ होमकाले एकैकाज्याहुतिर्वा दशदश तिलाहुतयः ॥

३९ क्षेत्रपालस्थापनम् ।

(काशीखण्डे क्षेत्रपालपूजनमुक्तम् । वायव्यां पीठे श्वेतवस्त्रे पञ्चवर्णैस्तण्डुलैरष्टदलं पद्मं विधाय तत्र प्रतिकोष्ठं षट्षडक्षतपुञ्जान् मध्ये च त्रीन् पुञ्जान् विधाय पूजयेत् । मध्ये कलशे मूर्तौक्षेत्रपालं समष्टिरूपेणावाहयेत्) ॥ जलमादाय० अद्य० तिथौ यज्ञकालिक विघ्नोत्पादनार्थ प्रतिष्ठाङ्गत्वेन क्षेत्रपालानां स्थापनं पूजनञ्च करिष्ये-हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा-ॐ नहिस्पशमविदन्नन्य मस्माद् वैश्वानरात् पुरएतारमग्नेः । एमेनमवृधन्नमृताऽअमर्त्यं व्वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥३३-६०॥ ॐ नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणाम्पतये नमः ॥१६-१८॥

पूर्वकोष्ठे

१ अजराय०	५ उग्राय०	८ बटुकाय०	१२ एकदंष्ट्राय०	१५ बन्धनाय०
२ व्यापकाय०	६ कूष्माण्डाय	९ विमुक्ताय०	दक्षिणकोष्ठे०	१६ दिव्यकाय०
३ इन्द्रचौराय	आग्नेयकोष्ठे	१० लिप्तकायाय०	१३ ऐरावताय०	१७ कम्बलाय०
४ इन्द्रमूर्तये	७ वरुणाय	११ लीलालोकाय०	१४ ओषधिघ्नाय०	१८ भीषणाय०
नैर्ऋत्यकोष्ठे	पश्चिमकोष्ठे	वायव्यकोष्ठे	उत्तरकोष्ठे	ईशानकोष्ठे
१९ गवयाय०	२५ जटालाय०	३१ डामराय०	३७ महाबलाय०	४३ मेघवाहनाय०

२० घण्टाय०	२६ क्रतवे०	३२ दुण्डिकर्णाय०	३८ फेत्काराय०	४४ तीक्ष्णोष्ठाय०
२१ व्यालाय०	२७ घण्टेश्वराय०	३३ स्थविराय०	३९ चीकराय०	४५ अनलाय०
२२ अणवे०	२८ विटङ्काय	३४ दन्तुराय०	४० सिंहाय०	४६ शुकतुण्डाय०
२३ चन्द्रवारुणाय०	२९ मणिमानाय०	३५ धनदाय०	४१ मृगाय०	४७ सुधालापाय०
२४ घटाटोपाय०	३० गणबन्धवे०	३६ नागकर्णाय०	४२ यक्षाय०	४८ बर्बरकाय०

मध्ये-४९ पवनाय० ५० पावनाय० मूर्तौ-ॐ नहिस्पश० क्षेत्रपालाय नमः क्षेत्रपालं० ॐ मनोजूति० अजरादिक्षेत्रपालाः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत। ॐअजरादिक्षेत्रपालेभ्यो नमः- इति षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेत्-ॐ यं यं यं यक्षरूपं दशदिशिवदनं भूमिकम्पायमानं, सं सं संहारमूर्ति शिरसि धृतजटाशेखरं चन्द्रबिम्बम् । दं दं दं दीर्घकायं धृतनखपुषम्, ऊर्ध्वरेखाकरालम्, पं पं पं पापनाशं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥ इति नत्वा बलिं दद्यात्-बलिद्रव्याय नमः संपूज्य-ॐ अजरादिक्षेत्रपालेभ्यो नमः पायसबलिं समर्पयामि । अनेन पूजनेन अजरादिक्षेत्रपालाः प्रीयन्ताम् ।

४० कुटीरहोमः १ (शान्तिहोमः)

(जयपुरादिनगरेभ्यः क्रीत्वा स्वग्राममानीतानां प्रतिमानां प्रतिमानिर्माणस्थलं गत्वा कुटीर होमकरणस्य सर्वथाऽसम्भवाद् मण्डपाद् बहिःस्थण्डिलं विधाय तत्र जलाधिवासः कुटीरहोमश्च ग्राम नगरप्रादक्षिण्येन मण्डपमानीतासु-प्रतिमासु प्रथमेऽहनि यथासमयं कार्यः । जीर्णप्रतिमोद्धारोऽपि चिकीर्षितश्चेत् प्रथमेऽहनि नान्दीश्राद्धोत्तरं कार्यः अस्यैव शान्तिहोम इत्यपरा संज्ञा)

यजमानो मण्डपाद बहिरुपविश्य-आचम्य प्राणानायम्य-द्यौः शान्तिः० सुमुखश्चेत्यादि । संकल्पः- अद्य० तिथौ प्रतिमानिर्माणे अशुचिदेश-अशुचिकाल अशुचिस्पर्शादिजन्यदोषपरिहारार्थं प्राणि बधादिदोषोपशमनार्थं प्रतिमापिण्डिकादिषु न्यूनातिरिक्तदोषशान्तये सकलदुर्निमित्तोपशमनार्थं प्रतिष्ठाङ्गत्वेन कुटीरहोमं करिष्ये । तदङ्गभूतं स्थण्डिले पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निस्थापनं करिष्ये । पञ्चभूसंस्काराः । वरदनामाग्निस्थापनं-वरदनामाग्नये नमः । इति सम्पूज्य-दक्षिणतो ब्रह्मासनादि-आघाराज्यभागान्तं कृत्वा । अग्निं संपूज्य । त्यागसंकल्पः- इदं सम्पादितं हविस्तेन या या यक्ष्यमाणा देवताः ताभ्यः ताभ्यः मया परित्यक्तम् । न मम । यथादैवतमस्तु । आज्येन घृताक्ततिलैर्वा होमः) १ प्रासादे स्थापयिष्यमाणदेवताः तत्तत्पिण्डिकाश्चोद्दिश्य-स्थाप्यदेवमन्त्रेण शतद्वयं २०० प्रतिदैवत माहुतीर्दद्यात् । २ ॐ परं मृत्योऽअनुपरेहिपन्थां यस्तेऽअन्य इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा ᳪ रीरिषो मोत वीरान् स्वाहा-इदं मृत्यवे न मम । १०८ आहुतयः २८ वा । ३ ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽअस्तु रुद्ररूपेभ्यः स्वाहा-इदमघोराय नमम-१०८ आहुतयः २८ वा । (याते रुद्र शिवा तनू० चाकशीहि) ४ ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वाहा-इदं रुद्राय नमम । १०८

आहुतयः २८ वा । ५ ॐ यद्ग्रामेयदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमाव्व यमिदन्तदवयजामहे स्वाहा इदमेनसे न मम ॥ १०८ आहुतयः २८ वा ॥

तत आज्यहोमे प्रथमं नवाहुतयः ततः स्विष्टकृत । तिलहोमे प्रथमं तिलाज्याभ्यां स्विष्टकृत् तत आज्येन नवाहुतयः । मूर्धानं० पूर्णाहुतिः । संस्रवप्राशनादि प्रणीताविमो कान्तंकृत्वा । अनेन कुटीरहोम (शान्तिहोम) करणेन प्रतिमानिर्माणे अशुचिदेशकाल स्पर्शादिजन्यदोषप्राणिवधादिदोषप्रतिमा-पिण्डिकादिन्यूनाधिक्यदोष निवृत्तिपूर्वकं सकलदुर्निर्मित्तदुरितो पशमनमस्तु ॥ इति शान्तिहोमः (कुटीरहोमः) ॥

४१ जलाधिवासः ।

(अयं जलाधिवासविधिः प्रतिष्ठापद्धतिकल्पलतोक्तो वासुदेवीकृता निरूपितः । प्रतिमासन्धा नछिद्रापकसशर्कर पाषाणादिपरीक्षापूर्वकमर्चाशुध्यर्थे विहितः । केचिदत्र घृताधिवासं कुर्वन्ति किन्तु प्रयोगे 'मूर्ति घृतेनाभ्यज्य जलधारां कुर्याद्' इत्युक्तत्वाद् घृतेनाभ्यञ्जनमात्रं विहितम् न घृते निक्षेपः । शिवलिङ्गादिकं घृतपात्रे निक्षिपन्ति घृतग्रहणहेतुना याज्ञिकाः, जलधारां न कुर्वन्ति । घृतनिक्षेपणनिष्कासनादिना चैक्कण्यवशाद् मूर्तीनां वर्णलोपः, स्खलनादिना प्रतिमाभङ्गसम्भवश्च । एवं 'काकिणीलोभेन गजो हतः इतिवद् घृतग्रहणलोभं पुरस्कृत्य घृताधिवासं ये कुर्वन्ति, ते वन्द्या एव ।)

साचार्यो यजमानो वेदनिनादछत्रचामरादिरथादियानसहितः शिल्पिशालां सन्निधापितप्रतिमागृहं वा गत्वा तत्र प्रतिमा वस्त्रादिना विभूष्य गन्धपुष्पमालादिना संपूज्य शिल्पिनः प्रतिमानिर्मातृंश्च वस्त्रगन्धादिना संतोष्य कुद्दालादिशिल्पिशस्त्राणि च हरिद्रादिना भूषयित्वा ॐ व्विश्वकर्म्मन् हविषाव्वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवद्ध्यम् । तस्मै व्विशः समनमन्त पूर्व्वीरयमुग्रो व्विहव्यो यथासत् ॥८-४६॥ इति विश्वकर्माणं नत्वा याने प्रतिमामारोप्य ग्रामनगरादिप्रादक्षिण्येन जलाधिवासमण्डपमानयेत् । शाकुन्तसूक्तं पठेत्-

ॐ कनिक्रदज्जनुषंप्रब्रुवाण ईयर्ति वाचमरितेव नावम् । सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा काचिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१॥ मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा । विदद्दिषुमान् वीरो अस्ता । पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलोभद्रवादीवदेह ॥२॥ अवक्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते । मा नः स्तेन ईशतमाघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥ ऋ० मं-२० सू० ४२॥ प्रदक्षिणिदभिगृणन्ति कारवो वयो वदन्तऋतुथा शकुन्तयः । उभे वाचो वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभञ्चानु राजति ॥१॥ उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि । वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतोनः शकुने भद्रमावद विश्वतोनः शकुने पुण्यमावद ॥२॥ आ वदंस्त्वं शकुने भद्रमावद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धिनः । तदुत्पतन् वदसि कर्करियथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥ ऋ० मं० २ सू०-४३॥

ॐ आनोभद्राः० इति भद्रसूक्तं पठेत् ॥ आनीतासुमूर्तिषु ताः ॐ अनाधृष्टा० इति नीराज्य जलाधिवासमण्डपे स्वसम्मुखं प्राङ्मुखीः स्थापयेत् ।

साचार्यो यजमानः - आचम्य । प्राणायामः । शान्तिपाठः । जलमादाय-अद्य० पू० तिथौ-प्रतिष्ठाङ्गत्वेन प्रतिमाशुद्ध्यर्थं जलाधिवासाख्यं कर्म करिष्ये । ॐ गणानान्त्वा० गणपतये नमः सर्वोपचारार्थंनमस्करोमि । प्रैषात्मकपुण्याहवाचनं कृत्वा । सर्षपानादाय-ॐ रक्षोहणं ०४ वा कृणुष्वपाजः० शत्रून्-५ अपसर्पन्तु० देवयागंकरोम्यहम्-इति सर्षपान् विकीर्य वामपादेन त्रिवारं भूमिं ताडयित्वा उदकमुपस्पृशेत् । मन्त्रैः पञ्चगव्यं सम्पाद्य मण्डपं प्रतिमा ब्राह्मणांश्च प्रोक्षेत् ॐ आपोहिष्ठा० ३ ॥ सर्वेषां पवित्रताऽस्तु ।

अग्न्युत्तारणम्-अद्य० आसां प्रतिमानां (अस्याः प्रतिमायाः) अङ्गप्रत्यङ्गसन्धि समुत्पन्नकुद्दालकादि-टङ्कादि-आतपाग्निसंयोगजनितदोषपरिहारार्थं घनादिदोषपरिहारार्थं अग्न्युत्तारणमहं करिष्ये । मूर्तीं घृतेनाभ्यज्योपरि जलधारां कुर्यात् । आग्वैदिकमग्निपदरहितमग्निपदसहितश्चाग्निसूक्तं पठेत् ॥ अग्निपदरहितम्-ॐ ससिंवाजं भरं ददाति वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम् । रोदसी विचरत् समञ्जनारीं वीर कुक्षिंपुरन्धिम् ॥१॥ अप्रसः समिदस्तु भद्रा महीरोदसी आविवेश । एकश्चोदयत् समत्सु वृत्राणि दयते पुरूणि ॥२॥ हत्यं जरतः कर्णमवाद्भ्यो निरदहज्जरूथम् । अत्रिघर्मउरुष्यदन्तर्नृ मेधंप्रजया सृजत्सम् ॥३॥ दाद्रविणं वीरपेशा ऋषिं यः सहस्रा सनोति । दिविहव्यमाततानधामानि विभृतापुरुत्रा ॥४॥ उक्थैर्ऋषयो विह्वयन्तेनरो यामनिबाधितासः । वयोअन्तरिक्षेपतन्ना सहस्रा परियातिगोनाम् ॥५॥ विशं ईळते मानुषीर्या मनुष्यो नहुषो विजाताः । गान्धर्वीपन्था मृतस्य गव्यूतिर्घृतमानिषत्ता ॥६॥ ब्रह्मऋभवस्ततक्षुर्महामवोचामासुवृक्तिम् । प्रावजरितारं यविष्ठमहिद्रविणमायजस्व ॥७॥

अग्निपदसहितम्-ॐ अग्निःससिंवाजंभरंददात्यग्निर्वीरंश्रुत्यंकर्मनिष्ठाम् । अग्नी रोदसी विचरत् समञ्जन्नग्निर्नारींवीरकुक्षिंपुरन्धिम् ॥१॥ अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्राग्निर्मही रोदसी आविवेश । अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि ॥२॥ अग्निर्हत्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम् । अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजया सृजत्सम् ॥३॥ अग्निर्दाद्द्रविणंवीरपेशा अग्निर्ऋषिंयःसहस्रासनोति । अग्निर्दिवि हव्यमाततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥४॥ अग्निमुक्थैर्ऋषयो विह्वयन्तेग्निंनरो यामनिबाधितासः । अग्निर्वयो अन्तरिक्षे पतन्तोग्निः सहस्रा परियातिगोनाम् ॥५॥ अग्निंविशईळते मानुषीर्याअग्निं मनुषो नहुषो विजाताः । अग्निर्गान्धर्वीपथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिर्घृत मानिषत्ता ॥६॥ अग्नये ब्रह्मऋभवस्ततक्षुरग्निमहामवोचामासुवृक्तिम् । अग्ने प्रावजरितारं यविष्ठाग्ने महि द्रविणमायजस्व ॥७॥

शुक्लयजुर्वेदे-ॐ अश्मन्नूर्जं० नृषाणो अजरः=इति १ ०शमन्त्रानुवाकं वा समुद्रस्य त्वा वकयाग्ने० शिवोभव ४ तः १५ मन्त्रान् अनुवाकद्वयं वा पठेत् ॥

ॐ अश्मन्नूर्जम्पर्व्वते शिश्रियाणामद्भ्यऽओषधीभ्यो व्वनस्पतिभ्योऽअधि सम्भृतम्पयः । तान्नऽइषमूर्जन्धत्त मरुतः सर्ठ० रराणाऽअश्मँस्तेक्षुन्मयि त ऊर्ग्यन्द्विष्मस्तन्ते शुगृच्छतु ॥१७-१॥ इमा मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतञ्च शतञ्च सहस्रञ्च सहस्रञ्चायुतञ्चायुतञ्च नियुतञ्च नियुतञ्च प्रयुतञ्चार्ब्बुदञ्च न्यर्ब्बुदञ्च समुद्रश्च मद्ध्यञ्चान्तश्च परार्द्धश्चैता मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥२॥ ऋतवस्स्थऽऋतावृधऽऋतुष्ठास्स्थऽऋतावृधः । घृतश्चुतो मधुश्चुतो विराजो नाम कामदुघाऽअक्षीयमाणाः ॥३॥ समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसि । पावको अस्मभ्यर्ठ० शिवो भव ॥४॥ हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि । पावकोऽअस्मभ्यर्ठ० शिवो भव ॥५॥ उपज्मन्नुप वेतसेवतर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमन्नो यज्ञम्पावकवर्ण्णर्ठ० शिवङ्कृधि ॥६॥ अपामिदन्न्ययनर्ठ० समुद्रस्य निवेशनम् । अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यर्ठ० शिवो भव ॥७॥ अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥८॥ स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ २ इहावह । उप यज्ञर्ठ० हविश्च नः ॥९॥ पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्नुरुचऽउषसो न भानुना । तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नूरणऽआ यो घृणे न ततृषाणोऽअजरः ॥१०॥ (१०-१) ॥ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे । अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यर्ठ० शिवो भव ॥११॥ नृषदे व्वेडप्सुषदे व्वेड्बर्हिषदे व्वेड्वनसदे व्वेट्स्वर्विदे व्वेट् ॥१२॥ ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानार्ठ० संवत्सरीणमुप भागमासते । अहुतादो हविषो यज्ञेऽअस्मिन् स्वयम्पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥१३॥ ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुर एतारोऽअस्य । येभ्यो नऽऋते पवते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्याऽअधि स्नुषु ॥१४॥ प्राणदाऽअपानदा व्यानदा वर्चोदा व्वरिवोदाः । अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यर्ठ० शिवो भव ॥१५॥ (५-२) ॥

ततो देवं प्रार्थयेत् - ॐ त्वयि संपूजयामीशं नारायणमनामयम् । रहितः सर्वदोषैस्त्वं ऋद्धियुक्तः सदा भव ॥१॥ इति प्रार्थ्य प्रतिमां कुशैः संमार्ज्य (ॐ प्रत्युष्टर्ठ०रक्षः०) मध्वाज्याभ्यञ्जेन सतूर्यनिनादं देवस्य व्रणभङ्गः कार्यः । ततो मृदा गोमयेन गोमूत्रेण भस्मना क्षीरेण च पृथक् पृथक् जलान्तरितेन स्नापयित्वा गन्धादिभिरभ्यर्च्य सितपुष्पैः संपूज्य सुवर्णपात्रे मधुसर्पिषी संस्थाप्य सुवर्णशलाकया मधुसर्पिर्भ्यां नेत्रे आपूर्य मधूच्छिष्टेन (मीण) नेत्रावरणञ्च कृत्वा पश्चात् कलशोदकेन देवं संस्नाप्य यजमानाय दापयेत् । ततो यजमानः प्रतिमां गृहीत्वा-भो गुरो, प्रतिमां सावयवां निरीक्षस्व-इत्यनुज्ञाप्य, आचार्यः- (ॐ मित्रस्यत्वाचक्षुषा प्रतीक्षे) इति सावयवां प्रतिमां निरीक्षेत । यजमानः प्रतिमां मूलमन्त्रेण षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा संपूज्य कौतुकसूत्रबन्धनं कुर्यात् ।

कौतुकसूत्रबन्धनम् ।

आचार्यः - (सूर्याचन्द्रमसौ यावद्) देवरक्षार्थं कौतुकबन्धनं करिष्ये-इति संकल्प्य उदकपूर्णं कुम्भं निधाय सितोर्णादिसूत्रनिर्मितं वितस्तिमात्रं पञ्चाङ्गुलं अष्टाङ्गुलं वा हरिद्राक्तं कौतुकसूत्रं सर्वौषधिसहितं कुम्भोदकेन सूत्रं वक्ष्यमाणैर्मन्त्रैरभिषिञ्चेत् ।

ॐ अग्निमीळे० १ इषेत्वा० २ अग्न आयाहि० ३ शन्नोदेवी० ४ राजन्तमध्वराणां० ५ सनः पितेव सूनवे० ६ आपोहिष्ठा० ७-८-९ स्वादिष्ठया० १० रक्षोहा विश्व० ११ कृणुष्वपाजः० १२ तः १६ सहस्रशीर्षा० १७ तः ३२ विष्णोर्नुकं० ३३ इरावती० ३४ हिरण्यवर्णां० ३५ तः ४९ यज्जाग्रतो० ५० तः ५५ नतद्रक्षांऽसि० ५६ द्रविणोदा० ५७ तः ६०, एभ्यो यथासम्भवं मन्त्रान् प्रपठ्य सूत्रं गन्धेनानुलिप्य देवस्य दक्षिणहस्ते ॐ यदाबध्नन्० इति मन्त्रेण बध्नीयात् ।

ततो जलाधिवासं कुर्यात्-धान्यराशौ द्रोणिं कटाहं वा निधाय तदभावे जलधारार्थं शिक्यादि संपाद्य द्रोण्यादिकं गन्धोदकेनापूर्य तन्मध्ये अष्टाविंशतिदर्भमयं कूर्चं निधाय ॐ यदत्र संस्थितं० इति सर्षपैर्भूतशुद्धिं विधाय तस्मिन् कूर्चे हरिं हरं वा भावयित्वा चक्रमुद्रां प्रदर्श्य जलद्रोणितो दक्षिणदिशि धान्यपुञ्जे सवस्त्रं कलशं करकं च विधिना स्थापयेत् । तत्र कलशे-ॐ ब्रह्मणे नमः, करके ॐ सुदर्शनाय नमः इत्यावाह्य पूजयेत् ।

यजमानः-अद्य० तिथौ प्रतिष्ठाङ्गत्वेन वरुणप्रीतये जलमातृजीवमातृक्षेत्रपालवरुणपूजनं करिष्ये । जले अक्षतैरावाहयेत् - १ मत्स्यै० २ कच्छप्यै० ३ कूर्म्यै० ४ वाराह्यै० ५ दर्दुर्यै० ६ शिशुमार्यै० ७ ईश्वर्यै० ॥ अथ जीवमातृरक्षतपुञ्जेषु कटाहभित्तौ वा - १ मत्स्यै० २ हयायै० ३ गोधायै० ४ मकर्यै० ५ डुण्डुभ्यै० ६ दर्दुर्यै० ७ जलूयै० । जले-चतुःषष्टियोगिनीभ्यो नमः । वायव्याम्-कुङ्कुमेन क्षेत्रपालं विलिख्य-ॐ क्षेत्रपालाय नमः । इत्यावाह्य सम्पूज्य बलिदानं दध्योदनेन-ॐ क्षेत्रपालाय नमः बलिं समर्पयामि । ततो जले-ॐ अद्भ्यो नमः । ॐ सप्तसागरेभ्यो नमः । ॐ मानसादिसरोभ्यो ममः । ॐ पुष्करादितीर्थेभ्यो नमः । ॐ गङ्गादिनदीभ्यो नमः । इति जले गन्धाक्षतान् क्षिपेत् । ततो जले ॐ वरुणाय नमः इति सम्पूज्य जले तत्तन्मन्त्रेण पञ्चामृतं क्षिपेत् । ततो जलद्रोण्यादेरुपरि सर्षपान् विकीर्य सम्भवेऽष्टकलशान् पात्रपरितः संस्थाप्य तत्र इन्द्रादीनावाह्य अग्रतः सुवर्चसं दीपं दद्यात् । जलान्तः शमीपीठं स्थापयित्वा तदुपरि वस्त्रमास्तीर्य प्रतिमां वस्त्रेणाच्छाद्यकुशैरावेष्ट्य वेदगीततूर्यनिनादैः प्राङ्मुखीं उदङ्मुखीं वा जलेऽधिवासयेत् । (अस्य कमलाधिवास इत्यागमप्रसिद्धिः । अयमेव सरोजसंघातनामकाधिवासः) जलद्रोण्यभावे सन्ततधारां कुर्यात् । जलाधिवासं सप्तपञ्चत्र्येकरात्रायन्यतमपक्षेण सद्यो यामं गोदोहनमात्रं वा कुर्यात् । ततो यथासम्भवं सूक्तानि पठेयुः-ॐ सहस्रशीर्षा० १६ । पञ्चाक्षररुद्रजपः । अघोरमन्त्रपाठः । अतो देवा० इदं विष्णु० त्रीणि पदा० विष्णोः कर्म्माणि) तद्विष्णोः- तद्विप्रासो० विष्णोर्नुकं० रक्षोहणं० रक्षोहणो वो० रक्षसां भागोऽसि० रक्षोहा० । अन्यप्रतिमासु तत्तत्सूक्तपाठः । आचार्यादिभ्यो दक्षिणां दद्यात् । इति जलाधिवासः । एकाध्वरपक्षे कृताकृतोऽयम् । अनेन जलाधिवासकर्मणा आसां प्रतिमानां सकलदोष निवृत्तिपूर्वकं अर्चाशुद्धिपूर्वकं भगवान् प्रीयताम् ॥ इति प्रतिष्ठापद्धतिकल्पलतानुसारी प्रतिष्ठावासुदेव्युक्तो जलाधिवासः ।

४२ होमतन्त्रम् ।

यजमानः कुण्डाचार्यब्रह्माणश्च मण्डपमागत्य अग्न्यायतनात् पश्चिमतः-उपयमनान् कुशानादाय सोपयमनकुशं सव्यहस्तं हृदये निधाय । तिष्ठन् घृताक्तास्तिस्रः समिधः अग्नौ तूष्णीं अभ्याधाय । प्रोक्षण्युदकशेषेण सपवित्र हस्तेन अग्नेः ईशानकोणादारभ्य प्रदक्षिणवत् पर्युक्षणम् । इतरथावृत्तिः । पवित्रयोः प्रणीतासु निधानम् । उपविश्य दक्षिणं जान्वाच्य ब्रह्मणा कुशेन प्रकोष्ठे अन्वारब्धः आज्येन आधारावाज्यभागौ च प्रतिकुण्डं जुहुयात्-समिद्धतमेऽग्नौ प्रजापतिं मनसा ध्यायन् वायवीमारभ्य आग्नेयीपर्यन्तम् । ॐ प्रजापतये स्वाहा-इदं प्रजापतये न मम-इति प्रोक्षण्यां संस्रवप्रक्षेपः । २ नैर्ऋतीमारभ्यैशानीपर्यन्तम् । ॐ इन्द्राय स्वाहा-इदमिन्द्राय न मम (संस्रवः)। ततः मध्ये समिद्धतमेऽग्नौ । ३ ॐ अग्नये स्वाहा- इदमग्नये न मम (संस्रवः) । ४ ॐ सोमाय स्वाहा-इदं सोमाय न मम (संस्रवः) यजमानोऽग्निं पूजयेत्-ॐ बलवर्धननामाग्नये नमः इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् । (वायव्यां बहिर्नैवेद्यम्) अनेन पूजनेन बालवर्धननामाग्निः प्रीयताम् । ततः ॐ ब्रह्मजज्ञानं० अणिमाद्यष्टशक्तिसहित ब्रह्मणे नमः इति ब्रह्माणं पूजयेत् । (पुराणवचनादाचाराच्च) ॐ गणानान्त्वा० (आज्येन) गर्भधं स्वाहा-इदं गणपतये न मम (संस्रवः) । ततः त्यागसंकल्पः (अनेकर्त्विक्साध्ये कर्मणि प्रत्याहुति त्यागस्य कर्तुमशक्यत्वात्) केवलो यजमानः-जलमादाय-इदं सम्पादितं समिच्चरुतिलाज्यादि हविर्द्रव्यं तेन या या यक्ष्यमाणा देवताः ताभ्यः ताभ्यः मया परित्यक्तम्, न मम, यथादैवतमस्तु-जलत्मुसृजेत् ।

४३ ग्रहहोमव्यवस्था ।

ग्रहहोमे-क्रमेण १ अर्क-पलाश-खदिर-अपामार्ग-पिप्पल-उदुम्बर-शमी-दूर्वाः कुशाश्च समिधः, अधिदेवताप्रत्यधिदेवतानामपि तत्तद्ग्रहविहिताः समिधः, गणेशाद्यनन्तान्त सप्तदशदेवतानां पलाशोदुम्बरान्यतरसमिधः, समिधस्त्रिमधुप्लुताः दधिमधुघृताक्ताः, समिधामभावे घृताक्ता यवाः, २ चरुः ३ तिलाः श्वेताः कृष्णा धूसरा वा ४ आज्यं गव्यम्, तदभावे माहिषं तदभावे तिलतैलं सार्षपतैल जातिलान्यतमतैलम् ।

एककुण्डे विभागप्रश्नाभावः । पञ्चकुण्ड्यां १०८-२८-८ पक्षे विभाग सम्भवः । नवकुण्ड्यां १००८-१०८-२८ क्रमस्वीकारे विभागसम्भवः । अन्यथाऽचार्यकुण्डे एव होमः । विभागसम्भवेऽपि कैश्चित् पद्धतिकृद्भि राचार्यकुण्ड एव होमः स्वीकृतः । समाप्युत्सर्गे गणेशादिसप्तक्रतुसंरक्षक देवतापेक्षया इन्द्रादिदशदिक्पालानामाहुतिसङ्ख्याऽर्धा स्वीकृता । चतुर्भि र्द्रव्यैः प्रत्येकं निर्दिष्ट संख्यया होमः । विभागविचारः शास्त्रार्थप्रकरणे निरूपितः ।

४४ ग्रहहोमः ।

(ततः समिदाज्यचरुतिलद्रव्यैः प्रत्येकं प्रतिद्रव्येण ग्रहान्-१००८ अष्टोत्तर सहस्रसंख्यया अधिप्रत्यधिदेवताः प्रत्येकं १०८ अष्टोत्तरशतसंख्यया विनायकादिदिक्पालान्तान् सप्तदशदेवान् प्रत्येकं २८ अष्टाविंशतिसंख्यया तत्तन्मन्त्रैर्जुहुयात् । २ द्वितीयः पक्षः - नवग्रहान् प्रत्येकं १०८ संख्यया, अधिप्रत्यधिदेवताः २८ संख्यया विनायकादीन् सप्तदशदेवान्-८ संख्यया जुहुयात् । ३ तृतीयः पक्षः-ग्रहान् २८ संख्यया, अधिप्रत्यधिदेवताः ८ संख्यया, सप्तदशदेवान्-४ संख्यया जुहुयात् । ४ चतुर्थः पक्षः-ग्रहान्-८ संख्यया, अधिप्रत्यधिदेवताः ४ संख्यया, सप्तदशदेवान् २ संख्यया जुहुयात् । विवाहोपनयनादिकर्मसु चतुर्थः पक्षो बाहुल्येन आद्रियते) । एवं ग्रहहोमं कृत्वा समिदतिरिक्तमवशिष्टं हविराहुतिद्वयपर्याप्तं स्रुचि निक्षिप्य-दक्षिणं जान्वाच्य उपयमनकुशान् सव्यहस्तेन हृदये निधाय ब्रह्मणाऽन्वारब्धो यजमानः ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा-इदमग्नये स्विष्टकृते नमम इति प्रतिदिनं स्विष्टकृद्धोमपक्षस्वीकारे जुहुयात् । समाप्तिदिने स्विष्टकृदधोमपक्षस्वीकार आहुतिद्वयपर्यान्तं हविर्घृतप्लुतं कृत्वा पात्रान्तरे संरक्षेत् । उपयमनकुशान्-संमार्जनकुशान् पवित्रद्वयञ्चसुरक्षितं रक्षेत् । प्रतिदिनं द्वितीयतृतीयादिसमाप्तिदिनान्तं नूतनहविषां संस्कारं स्रुक्स्रुवप्रतपनसंमार्जनाभ्युक्षणपुनः प्रतपनानि, आज्याद्यधिश्रयणोद्वासनोत्पवना-वेक्षणापद्रव्यनिरसनानि कुर्याद् । अवशिष्टहविषः स्विष्टकृद्, अथवा घृतप्लुतं कृत्वा पात्रे प्रक्षिपेत् ॥ इति ग्रहहोमः ॥

४५ सायन्तनपूजनम् ।

यजमानः सं०-आरब्धप्रतिष्ठाकर्मणोऽङ्गत्वेन प्रथमेऽहनि स्थापितदेवतानां सायन्तनं पञ्चोपचारैः पूजनं करिष्ये । तत्तन्मन्त्रैः स्थापनक्रमेण देवतानां प्रार्थनाक्षमापनान्तं कर्म कुर्यात्-स्थापनक्रमश्च गणेशमातृका-वास्तुमण्डल-अग्नि-मण्डलदेवताप्रधानदेवता-ग्रह-योगिनी-क्षेत्रपालभैरवान्य तरपूजनम् । यज० प्रथमदिनकर्मपरिपूर्त्यै आचार्यब्रह्मादिपूजनपूर्वकं भूयसीं दक्षिणां दास्ये । सं० यथाशक्ति ब्राह्मणसुवासिनी बटुककुमारिकातिथिदीनानाथान् भोजयिष्ये । तिलकाशीर्वादादि कुर्यात् ।

संकल्पः-समस्तभक्तजनग्रामजनदेशजनकल्याणाय सूर्याचन्द्रमसौ यावत् प्रतिमासु देवकलासान्निध्यहेतवे अद्य प्रथमे दिने स्वयं प्रतिनिधिद्वारा ब्राह्मणद्वारा च प्रतिष्ठाङ्गभूतं यत् कर्म सम्पादितं, तत् कालक्रियाभक्तिश्रद्धाहीनं ब्राह्मणवचनादिष्टदेवताप्रसादाच्च सर्वं परिपूर्णमस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्राह्मणाः अस्तु परिपूर्णम् । यस्यस्मृत्या० विष्णवे नमो० ३ । समाप्तिं यावदग्निं रक्षेत् ।

इति प्रथमदिन कृत्यम् ।

४६ अथ द्वितीयदिनकृत्यम् ।

तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । चतुर्वेद शान्तिपाठः । नमस्काराः सुमुखश्चेत्यादि । यज० जलमादाय-विष्णु० समस्त ग्रामजन देशजन प्रतिनिधिभूतः यजमानोऽहम्, मम० सर्वेषां जनानां च श्रेयसे प्रारब्ध सग्रहमखसप्रासाददिनत्रयसाध्याचलप्रतिष्ठाङ्गभूतं द्वितीयदिनसाध्यं कर्म स्वयं प्रतिनिधिद्वारा ब्राह्मणद्वारा च करिष्ये । पुनर्जलमादाय-तदङ्गभूतं स्थापितदेवतापूजनं ब्राह्मणपूजनं जलयात्रां निक्षेपान्तप्रासादवास्तुशान्तिं अर्चाशुद्ध्यर्थं स्नपनविधिं मूर्तिमूर्तिपति लोकपालावाहनं शय्याधिवासं तत्त्वन्यासहोमं शान्तिकपौष्टिक होमं मूर्तिमूर्त्यधिपति लोकपालहोमं स्थाप्यदेवताहोम-व्याहृति होमान्, तत्त्वन्यासान्, प्रासादस्नपनाधिवासनं पिण्डिकाधिवासनं सायन्तनपूजनान्तं कर्म करिष्ये । तत्रादौ आसनविधिं दिग्रक्षणं कलशार्चनं दीपपूजनं (सूर्यपूजनं) चाहं करिष्ये ।

आसनविध्यादि ब्राह्मणपूजनान्तं कर्म कृत्वा ।

४७ जलयात्राप्रयोगः ।

(कर्मार्थजलाहरणरूपोऽयं विधिर्विष्णुवर्चनकल्पलतारुद्रकल्पद्रुम प्रतिष्ठातिलकादिषु प्रोक्तः । सति सम्भवे प्रथमेऽह्नि द्वितीयेऽह्नि प्रातर्वा जलयात्राविधिरेकत्र सम्पादनीयः, अन्यत्र नूतनप्रासादसत्त्वे निक्षेपान्तप्रासादवास्तुशान्तिरूपो विधिः स्वयं प्रतिनिधिद्वारा वा सम्पादनीयः । प्राचीनपद्धतिषु बाहुल्येनास्य विधेरदर्शनात् कृताकृतत्वम् ।

साचार्यर्त्विग् यजमानः पूजासम्भारान् अष्टौ नव वा कलशानादाय द्विजकुमारिका सुवासिनी सहितः शान्तिसूक्तादिकं पठन् मङ्गलगीतवाद्यघोषं कुर्वञ्जलाशयं वापीकूपतडागसरिदादिकं प्रति गच्छेत् ।

जलाशयसमीपे तीरे शुचौ देशे शुभ्रवस्त्रे तण्डुलैः सप्तसप्ताक्षतपुञ्जानां चतस्रः पङ्क्तीः) दिक्षु च दिक्पालानामक्षतपुञ्जान् कृत्वा तेषु पूगीफलानि निधाय प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा यजमानः सपत्नीक उपविश्य । तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् शान्तिपाठादि । जलमादाय-अद्य-पू० तिथौ प्रतिष्ठाङ्गत्वेन करिष्यमाण प्रतिमा प्रासादस्नपनार्थं जलाहरणरूपं जलयात्राकर्म करिष्ये । तत्रादौ गणेशस्मरणं ॐ प्राच्यै दिशे स्वाहा० इति सर्षपविकिरणं कुर्यात् । वामपाद पार्ष्णिना त्रिवारं भूमिं ताडयित्वा । उदकोपस्पर्शः । श्वेतवस्त्रे गोधूमैस्तण्डुलैर्वाऽष्टदलं पद्मं कृत्वा-तत्र पूगीफलं निधाय-ॐ भूरसीति मन्त्रेण-ॐ सपरिवारायै भूम्यै नमः-इति भूमिमावाह्य षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा भूमिं पूजयेत् । इति भूमिपूजा ।

द्विजकुमारिकासुवासिनीभिः स्वयश्चानीतान् कलशान् शुद्धजलेनापूर्य तेषु सर्वौषधी पञ्चपल्लवदूर्वामृत्तिकापूगीफलहिरण्यपञ्चरत्नादिकं प्रक्षिप्य तेषु नारिकेलानि निधाय मण्डलपरितः स्थापयित्वा

महीद्यौ रित्यादि पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा वरुणं आवाहयेत्-ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाऽशास्ते यजमानो हविर्ब्भिः । अहेडमानो व्वरुणेह बोद्ध्युरुशꣳसमान आयुः प्रमोषीः ॥१८-४९॥ ॐ इमम्मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या । असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ऋ० १०-७५-५॥ ॐ ये तीर्त्थानि प्रचरन्ति सृका हस्ता निषङ्गिणः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेवधन्न्वानि तन्मसि ॥१६-६१॥ ॐ प्रपद्ये वरुणं देवं यादसां पतिमीश्वरम् । याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥ गङ्गे त्वं सर्वतीर्थानामाश्रयासि यतस्ततः । देवपूजाभिषेकार्थं पापं मे हि विनाशय । सरस्वति नमस्तुभ्यं महेश्वरि हरिप्रिये । देवपूजाभिषेकार्थं पापं मे हि व्यपोहय ॥ ॐ भू० एषु कलशेषु साङ्गं सपरिवारं सतीर्थं वरुणमावाहयामि स्थापयामि । मनोजूति० इति प्रतिष्ठाप्य पञ्चोपचारैः पूजयेत् । ततः प्रार्थना-कलशस्य मुखे० देवदानवसंवादेनमो नमस्ते० ॐ कुम्भो व्वनिष्ठुर्ज्जनिता शचीभिर्य्यस्मिन्नग्ने योन्यां गर्ब्भोऽअन्तः । प्लाशिर्व्व्यक्तः शतधारऽउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधाम्पितृब्भ्यः ॥१९-८७॥ ॐ शङ्खस्फटिकवर्णाभ श्वेतहाराम्बरावृत । पाशहस्त महाबाहो दयाङ्कुरु दयानिधे ॥ ॐ भू० साङ्गसपरिवारसतीर्थवरुणाय नमः नमस्करोमि ॥ अनया पूजया साङ्गः सपरिवारः सतीर्थः वरुणः प्रीयताम् ॥ इति वरुणपूजा ।

ततो जलमातृका जीवमातृकास्थलमातृकासप्तसागरानक्षतपुञ्जेषु पूगीफलेषु वा क्रमेण पङ्क्तिषु उदक्संस्थमावाहयेत् । जलमातृकाः-अक्षतान् गृहीत्वा १ ॐ भू० मत्स्यैनमः मत्सीम् आवाहयामि । २ कूर्म्यै० कूर्मीम्० । ३ वाराह्यै० वाराहीम्० । ४ दर्दुर्यै० दर्दुरीम्० । ५ मकर्यै० मकरीम्० । ६ जलूक्यै० जलूकीम्० । ७ तन्तुक्यै० तन्तुकीम्० । द्वितीयपङ्क्तौ क्रमेण जीवमातृकाः-१ कौमार्यै० कौमारीम्० । २ धनदायै० धनदाम्० । ३ नन्दायै० नन्दाम्० । ४ विमलायै० विमलाम्० । ५ मङ्गलायै० मङ्गलाम्० । ६ चलायै० चलाम्० । ७ पद्मायै० पद्मामाम्० । तृतीयपङ्क्तौ स्थानमातृकाः क्रमेण-१ ऊर्म्यै० ऊर्मिम्० । २ लक्ष्म्यै० लक्ष्मीम्० । ३ महामायायै० महामायाम्० । ४ पानदेव्यै० पानदेवीम्० । ५ वारुण्यै० वारुणीम्० । ६ निर्मलायै० निर्मलाम्० । ७ गोधायै० गोधाम्० । ततश्चतुर्थपङ्क्तौ सप्तसागरान् क्रमेण-१ क्षारोदाय० क्षारोदम्० । २ क्षीरोदाय० क्षीरोदम्० । ३ इक्षुसमुद्राय० इक्षुसमुद्रम्० । ४ दधिसमुद्राय० दधिसमुद्रम्० । ५ गुडोदाय० गुडोदम्० । ६ घृतसमुद्राय० घृतसमुद्रम्० । ७ स्वादुसमुद्राय० स्वादुसमुद्रम्० । ॐ समुद्रादूर्म्मि० इत्यावाह्य ततो दश दिक्षु दिक्पालान् क्रमेण-पूर्वे-१ ॐ इन्द्राय० इन्द्रम्० । आ० २ अग्नये० अग्निम्० । द० यमाय० यमम्० । नै० ४ निर्ऋतये० निर्ऋतिम्० । प० ५ वरुणाय० वरुणम्० । वा० ६ वायवे० वायुम्० । स० ७ सोमाय० सोमम्० । ई० ईशानाय० ईशानम्० । ऊर्ध्वायां-९ ब्रह्मणे० ब्रह्माण्० । अधः-१० अनन्ताय० अनन्तम्० । ॐ मनोजूति० इति प्रतिष्ठाप्य ॐ मत्स्याद्यावाहितदेवताभ्यो नमः-इति सम्पूज्य बलिं दद्यात् । बलिं निधाय संपूज्य-ॐ मत्स्याद्यावाहितदेवताभ्यो नमः बलिं समर्पयामि । जलमादाय-अनया पूजया मत्स्याद्यावाहितदेवताः प्रीयन्ताम् ।

जलाश्रित वरुणपूजनम् । जले घृतहोमः ।

जलसमीपं गत्वा-ॐ एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्य सहाप्सरोभिः । विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते ॥ ॐ उरुᳪहि राजा व्वरुणश्चकार सूर्य्याय पन्थामन्न्वेतवाऽउ । अपदेपादा प्रतिधातवे करुता पवक्ता हृदयाव्विधश्चित् । नमो व्वरुणायाभिष्ठितो व्वरुणस्य पाशः ॥८-२३॥ ॐ भू० वरुणाय० इत्यावाह्य, संपूजयेत् । ॐ वरुणाय नमः-इति नैवेद्ये घृतं दधि पञ्चामृतं वा समर्पयेत् । अनेन पूजनेन वरुणः प्रीयताम् ॥

ऋजुकुशचतुष्टयेन चतुरस्रां वेदीं कृत्वा जले निधाय तत्राज्येन स्रुवेण होमः । त्यागोच्चारणमात्रम् । न संस्रवः । १ ॐ अद्भ्यः स्वाहा इदमद्भ्यो न मम । २ ॐ वार्भ्यः स्वाहा-इदं वार्भ्यो न मम । ३ ॐ उदकाय स्वाहा-इदमुदकाय न मम । ४ ॐ तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा-इदं तिष्ठन्तीभ्यो न मम । ५ ॐ स्रवन्तीभ्यः स्वाहा इदं स्रवन्तीभ्यो न मम । ६ ॐ स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा-इदं स्यन्दमानाभ्यो न मम । ७ ॐ कूप्याभ्यः स्वाहा इदं कूप्याभ्यो न मम । ८ ॐ सूद्याभ्यः स्वाहा-इदं सूद्याभ्यो न मम । ९ ॐ धार्य्याभ्यः स्वाहा-इदं धार्याभ्यो न मम । १० ॐ अर्णवाय स्वाहा-इदमर्णवाय न मम । ११ ॐ समुद्राय स्वाहा-इदं समुद्राय न मम । १२ ॐ सरिराय स्वाहा-इदं सरिराय न मम ॥

इति द्वादशाहुतीः स्रुवेण जले हुत्वा-ॐ नमो नमस्ते स्फटिक० इमम्मे० इति नत्वा-नारिकेलार्घं गृहीत्वा-प्रतीचीश नमस्तुभ्यं सर्वाघौघनिषूदन । पवित्रं कुरु मां देव सर्वकालेषु सर्वदा ॥१॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि भगवन् यन्मया कृतम् । तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जलाधिप ॥२॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यावान् विधिरनुष्ठितः । स सर्वस्त्वत्प्रसादेन पूर्णो भवत्वपाम्पते ॥३॥ इति नारिकेलं जले प्रक्षिप्य । जलमादाय-अनेन पूजनपूर्वकं होमकर्मणा सपरिवारो वरुणः प्रीयताम् ॥

४८ मण्डपप्रत्यागमनम् ।

मण्डलपरितः स्थापितान् कलशान् गन्धमाल्य सौभाग्य द्रव्यैरलंकृत्य हस्ते-अक्षतान् गृहीत्वा-यान्तु देवगणाः० उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते० इति मंत्राभ्यां ॐ मत्स्यादिदेवताः स्वस्वस्थानं गच्छत- इति विसर्जयेत् । दक्षिणादानम् । आशीर्वादः । ततः कलशान् कुमारिकासुवासिनीनां शिरसि निधाय भद्रसूक्तं शकुन्त सूक्तं शान्तिसूक्तादिकं पठन् सऋत्विग्यजमानः शिरसि धृतकलशाः सुवासिनीरग्रतः कृत्वा यागमण्डपं प्रति गच्छेत् ।

अर्धमार्गे भूमिं जलेन प्रोक्ष्य-अक्षतपुञ्जे पूगीफलं निधाय ॐ नहिस्पश० देवाः)-क्षेत्रपालाय नमः क्षेत्रपालमावाहयामि स्थापयामि-इत्यावाह्य संपूज्य समीपे माषभक्तादिसदीपं बलिं निधाय बलिद्रव्याय नमः-इति संपूज्य-जलमादाय-ॐ नमो भगवन् क्षेत्रपाल भासुरनेत्र ज्वालामुख अवतर अवतर पिङ्गलोर्ध्वकेश जिह्वाललन छिन्धि धीं धीं धीं धीं कुरु कुरु कुरु मुरु मुरु चल चल लं लः ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः मम यज्ञं रक्ष रक्ष बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा ॐ क्षेत्रपालाय नमः सदीपबलिं समर्पयामि-इति जलमुत्सृज्य उदकोपस्पर्शः । ततः पुरो यज्ञमण्डपं गत्वा पश्चिमद्वारि स्थित्वा गन्धाक्षतपुष्पैः

शिरोधृतकलशाः कुमारिकाः सुवासिनीश्च वर्धाप्य नीराजनं कुर्यात्-ॐ अनाधृष्टा पुरस्ता दग्नेराधिपत्यऽआयुर्म्मेदा ६ पुत्रवती दक्षिणतऽइन्द्रस्याधिपत्ये प्रजाम्मेदाः । सुखदा पश्चाद् देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्म्मेदाऽआश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषम्मेदाः । व्विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्यऽओजोमेदा व्विश्वाभ्यो मानाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥३७-१२॥ इति नीराज्य मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य कुमारिकाः सुवासिन्यश्च मण्डपपश्चिमद्वारि तिष्ठेयुः । तासां शिरोभ्यः कलशान् गृहीत्वा शुद्धपात्रे जलं संरक्षेत् । अनेन जलेन प्रतिमाप्रासादस्नपन यजमानाभिषेकादि सम्पादयेत् । कलशद्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दद्यात् ।

अनेन प्रतिष्ठाङ्गत्वेन प्रतिमास्नपनाभिषेकादिहेतवे जलानयनरूपजलयात्राकर्मणा भगवान् परमेश्वरः प्रीयताम् ॥

४९ निक्षेपान्तप्रासादवास्तुशान्तिः ।

(जलयात्राकाल एव यजमानोऽन्यः प्रतिनिधिर्वा ब्राह्मणैः सह वास्तुशान्तिकर्म सम्पादयेत् । प्रासादे चतुः षष्टिपदं शतपदं वा वास्तुमण्डलं काष्ठपीठे श्वेतवस्त्रे पञ्चवर्णै स्तण्डुलैर्यथा निर्दिष्टवर्णं वास्तुमण्डलं विरचयेत् । प्रासादसभामण्डपे चतुरस्रमेकहस्तं स्थण्डिलं चतुरङ्गुलोच्चं पकापकेष्टकाभि मृदा विरचयेत् । शतपदमण्डल एकादशरेखासत्त्वादन्तिमयोः सुरधा इन्द्राण्योरावृत्तिं कुर्यात् । प्रासादस्य स्थिरत्वाद् वास्तोष्पतिना सह ध्रुवमावाहयेत्-पूजयेच्च । रेखादेवतानां होमो नास्तीति प्रागुक्तम् ।)

प्रासादाङ्गवास्तुशान्तिप्रयोगः ।

प्रासादगर्भगृहे सभामण्डपे वा यजमानः प्रतिनिधिर्वा हस्तमात्रं चतुरस्रं स्थण्डिलं विधाय श्वेतवस्त्रे पुरत श्चतुःषष्टिपदं शतपदं वा पञ्चवर्णतण्डुलपूरितं वास्तुपीठं निधाय प्राङ्मुख उपविश्य तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । शान्तिपाठादि । संकल्पः-अद्य० तिथौ समस्तभक्तजनग्रामजनदेशजनकल्याणाय आरब्धप्रासादप्रतिष्ठाङ्गत्वेन अस्मिन् नूतनप्रासादे भूमिगत कांस्यरजतादि तुषपाषाणकेशास्थिकङ्कालाद्यष्टविधमेदिनी शल्यदोष-आय व्ययदिक्शूल दिङ्मूढवेधादि दोष-जीव हिंसादिदोषनिवारणपूर्वकं सूर्याचन्द्रमसौ यावद् वास्तोः स्थिरसिद्धिपूर्वकं देवकलासान्निध्यहेतवे सर्वदेवतास्वरूपाधिष्ठितवास्तुपुरुष ध्रुवदेवता प्रीत्यर्थं शालाकर्मसहितां वास्तुनिक्षेपान्तां वास्तुशान्तिमहं करिष्ये । पुनर्जलमादाय-तत्रादौ गणेशस्मरणपूर्वकं शालाकर्म दिग्रक्षणं पञ्चगव्यकरणं भूमिपूजनं पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निस्थापनं मण्डलदेवतास्थापनं प्रधानदेवतास्थापनं बलिदानं विहितं होमं निक्षेपान्तञ्च कर्म करिष्ये । ॐ गणानान्त्वा० गणपतये नमः सर्वोपचारार्थे नमस्करोमि । ब्राह्मणवरणम् । स्थण्डिलाद् दक्षिणे प्रादेशमात्रे स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य कांस्यपात्रे आज्यमग्नावधिश्रित्य स्रुवं प्रतप्य सम्मृज्याज्यमुद्वास्य लौकिकदर्भेण उत्पूय अवेक्ष्य अपद्रव्यं निरस्य शालाकर्म कुर्यात् ।

शालाकर्म ।

प्रासादस्य चतुर्षु कोणेषु पक्का अपक्का वेष्टका निधाय स्तम्भावटेषु चतुर्षु आग्नेयकोणादारभ्य स्रुवेण जुहुयात्, स्तम्भोच्छ्रयणञ्च कुर्यात् । (इदं पूर्वं जातमेवेति) सम्प्रति संस्कारमात्रं कुर्यात् । आग्नेयकोणे आज्येन स्रुवेण इष्टकायां जुहुयात्-ॐ अच्युताय भौमाय स्वाहा- इदमच्युताय भौमाय नमम त्यागोच्चारमात्रम्) ततः कोणं स्पृष्ट्वा स्तम्भोच्छ्रयणं भावयन् मन्त्रं पठेत् । ॐ इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्धारां प्रतरणीं वसूनाम् । इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुक्षमाणा ॥१॥ अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय । आत्वा शिशुराक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः ॥२॥ आ त्वा कुमारस्तरुण आवत्सो जगदैः सह । आत्वा परिस्रुतः कुम्भ आदध्नः कलशैरुप ॥३॥ क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम् । अश्वावद् गोमदूर्जस्वत् पर्णं वनस्पतेरिव । अभि नः पूर्यताꣳरयिरिदमनुश्रेयो वसानः ॥४॥ इति जपेत् । एवमेव नैर्ऋत्यकोणे वायव्यकोणे ईशानकोणे च ॐ अच्युताय भौमाय स्वाहा इदमच्युताय भौमाय नमम-इति आज्याहुतिं हुत्वा कोणं स्पृष्ट्वा-ॐ इमामुच्छ्रयामि० श्रेयो वसानः-इति चतुरो मन्त्रान् पठेत् ।

स्वस्थान उपविश्य । दिग्रक्षणम् । पञ्चगव्यकरणम् । भूम्यादिपूजनम् । पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं संस्थाप्य ॐ बलवर्धननामाग्नये नमः- इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् । अनेन पूजनेन बलवर्धननामाग्निः प्रीयताम् ॥

जलमादाय-प्रासादाङ्गे अस्मिंश्चतुः षष्टिपदमण्डले शतपदमण्डले देवतास्थापनमहं करिष्ये । पीठचतुःकोणेषु आग्नेयादिक्रमेण चतुरः शङ्कून् रोपयेत्-ॐ विशन्तु भूतले नागा० इति मन्त्रावृत्त्या । शङ्कून् त्रिगुणीकृत सूत्रेण वेष्टयित्वा शङ्कुपार्श्वे माषभक्तबलीन् दद्यात् । ॐ अग्निभ्यो० २ नैर्ऋत्यपि० ३ नमो वै वायुरक्षोभ्यो० ४ रुद्रेभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो० इति मन्त्रैः १ ॐ अग्न्यादिभ्यो नमः बलिं समर्पयामि । २ निर्ऋत्यादिभ्यो० । ३ वाय्वादिभ्यो० । ४ रुद्रादिभ्यो० । इति बलिदानम् ।

हस्ते अक्षतान् गृहीत्वा-मण्डपवास्तुस्थापनवत् (पृ० २४१ रेखाकरणम् रेखादेवताऽवाहनम् ।) शतपदे तु-पश्चिमादिप्रागन्तमुदक्संस्थमेकादश रेखासु-१ शान्त्यै० २ यशोवत्यै० ३ कान्त्यै० ४ विशालायै० ५ प्राणवाहिन्यै० ६ सत्यायै० ७ सुमत्यै० ८ नन्दायै० ९ सुभद्रायै० १० सुरथायै० ११ सुरथायै० दक्षिणादुदगन्ताः प्राक्संस्थाः-१ हिरण्यायै० २ सुप्रभायै० ३ लक्ष्म्यै० ४ विभूत्यै० ५ विमलायै० ६ प्रियायै० ७ जयायै० ८ बालायै० ९ विशोकायै० १० इन्द्राण्यै० ११ इन्द्राण्यै०) इति रेखादेवता आवाह्य ॐ रेखादेवताभ्यो नमः-इति पूजयेत् । रेखादेवतानां होमो नास्ति ।

ततो मण्डपाङ्गवास्तु प्रकरणे (पृष्ठे-२४१ तः २४३) निर्दिष्टास्त्रिषष्टिदेवतास्त्रिसप्ततिदेवता वा तत्तन्मन्त्रैर्नाममन्त्रैर्वाऽवाह्य ॐ ब्रह्मादिवास्तुमण्डलदेवताभ्यो नमः इति पञ्चोपचारैः संपूज्य मध्ये

सपूर्णपात्रं कलशं निधाय क्षौमवस्त्रेणाच्छाद्य तत्र-ॐ मण्डूकाय नमः-इत्यादि पीठदेवता आवाह्य गन्धपुष्पाभ्यां पूजयेत् । पात्रे वास्तोष्पतिप्रतिमां ध्रुवप्रतिमाञ्च निधाय-ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान् स्वावेशो अनमीवो भवानः । यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शञ्चतुष्पदे । (ऋ:) ॐ नमो व्वात्याय० चारुणाय च ॐ भू० वास्तोष्पते इहागच्छ इहतिष्ठ वास्तोष्पतये नमः वास्तोष्पतिमावाहयामि । स्थापयामि ॥ २ ॐ ध्रुवाऽसि ध्रुवोऽयँय्यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्ब्भूयात् । घृतेन द्यावापृथिवी पूर्य्येथामिन्द्रस्यच्छदिरसि व्विश्वजनस्यच्छाया ॥२॥ (५-२८) ॐ भू० ध्रुव० ध्रुवाय० ध्रुवम्० । ॐ मनोजूति० भो वास्तुपुरुष ध्रुवौ सुप्रतिष्ठितौ वरदौ भवतम् ॥ पुष्पाण्यादाय-ॐ ह्रीं नमो भगवते वास्तुपुरुषाय महाबलपराक्रमाय सर्वदेवाधिवासाश्रितशरीराय ब्रह्मपुत्राय सकलब्रह्माण्डधारिणे भूभारार्पितमस्तकाय पुरपत्तनप्रासादगृहवापी सरःकूपादिसन्निवेश-सान्निध्यकराय सर्वसिद्धिप्रदाय प्रसन्नवदनाय विश्वम्भराय परमपुरुषाय शक्रवरदाय वास्तोष्पते नमस्ते नमस्ते-इति पुष्पाणि समर्प्य-ॐ मण्डलदेवतासहितवास्तुपुरुष ध्रुवाभ्यां नमः-इति पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारैः पूजयेत् । विशेषार्घं गृहीत्वा-ॐ नमस्ते वास्तुपुरुष भूशय्यानिरत प्रभो । प्रासादे (मद्गृहे) धनधान्यादि समृद्धिं कुरु सर्वदा ॥१॥ अयोने भगवन् भर्गललाटस्वेदसम्भव । गृहाणार्घं मया दत्तं वास्तो स्वामिन् नमोऽस्तु ते ॥ ॥ॐ मण्डलदेवतासहित वास्तुपुरुष ध्रुवाभ्यां नमः नमस्कारान् समर्पयामि । अनेन पूजनेन मण्डलदेवतासहितौ वास्तुपुरुषध्रुवौ प्रीयेताम् ।

मण्डलेशान्यामव्रणं कलशं संस्थाप्य तस्मिन्-ॐ इमम्मे व्वरुण० येतीर्थानि० सतीर्थं वरुणमावाहयामि । गन्धपुष्पाभ्यां पूजयेत् ।

एकतन्त्रेण बलिदानम्-मण्डपसमीपे सदीपमाषभक्तपायसबलिं निधाय-जलमादाय-वास्तुमण्डलदेवतानामेकतन्त्रेण पायसबलिदानं करिष्ये । बलिद्रव्याय नमः-इति संपूज्य-जलमादाय-ॐ एह्येहि ध्रुवसहितवास्तोष्पते सपरिवार इमं मयोपनीतं बलिं गृहाण प्रासाद (मम गृहम्) अच्छिद्रं कुरुकुरु सकलदुष्टेभ्यो मां रक्ष रक्ष नमः । इति बलिं दत्त्वा ब्रह्मादिदेवताभ्यो नाममन्त्रैः ॐ ब्रह्मणे नमः बलिं समर्पयामि-एवं (पृ०२२५ तः २२७) क्रमेण अनन्तान्तं क्षितिरूपान्तं वा बलिं दद्यात् । अनेन एकतन्त्रेण बलिदानेन मण्डलदेवतासहितौ वास्तुपुरुषध्रुवौ प्रीयेताम् ।

दक्षिणतो ब्रह्मासनम् । प्रणीतास्थलं त्यक्त्वा तदुत्तरे उदपात्रस्थापनं संस्रवार्थम् (पा. गृ. भाष्ये) ततः प्रणीताप्रणयनादि प्रोक्षणीप्रत्युत्पवनान्तां कुशकण्डिकां कृत्वा-यजमानः प्रासादद्वाराद् बहिर्गत्वा ब्रह्माणं पृच्छति-भो ब्रह्मन् प्रविशामि । ब्रह्मा-सुखेन प्रविश । यज० ॐ ऋतं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये-इत्युक्त्वा पत्नीपुरःसरं दक्षिणपादेन देहलीं दक्षिणांसेन द्वारवामशाखां स्पृशन् प्रविशेत् ॥

होमः ।

सोपयमनकुशं सव्यहस्ते हृदये धृत्वा दक्षिणहस्तेन तिष्ठन् तिस्रः समिधः तूष्णीम् अग्नौ अभ्याधाय प्रोक्षण्युदकशेषेण सपवित्रहस्तेन अग्नेरीशानकोणमारभ्य प्रदक्षिणवत् पर्युक्षणम् । इतरथाऽवृत्तिः । पवित्रयोः प्रणीतासु निधानम् । दक्षिणं जान्वाच्य आज्येन आदौ इहरतिरित्यादिषडाहुतीर्जुहुयात् । उदपात्रे संस्रवः । स्रुवेणाज्यमादाय-१ ॐ इहरतिरिहरमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा इदमग्नये न मम । २ ॐ उपसृजन् धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् । रायस्पोषमस्मासुदी धरत् स्वाहा इदमग्नये न मम । ३ ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान् स्वावेशो अनमीवो भवानः । यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा-इदं वास्तोष्पतये न मम । ४ ॐ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शश्चतुष्पदे-स्वाहा । इदं वास्तोष्पतये न मम । ५ ॐ वास्तोष्पते शग्मया स ह सदा ते सक्षीम हिरण्वया गातुमत्या । पाहि क्षेम उत योगे वरन्नो यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा । इदं वास्तोष्पतये न मम । ६ ॐ अमीवहा व्वास्पोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः स्वाहा-इदं वास्तोष्पतये नमम ॥

ततो ब्रह्मणा प्रकोष्ठे दर्भेणान्वारब्ध आघारावाज्यभागौ चाज्येन जुहुयात् । प्रोक्षण्यां संस्रवः । १ ॐ प्रजापतये स्वाहा-इदं प्रजापतये नमम । २ ॐ इन्द्राय स्वाहा-इदमिन्द्राय नमम । ३ ॐ अग्नये स्वाहा-इदमग्नये नमम । ॐ सोमाय स्वाहा-इदं सोमाय नमम ।

सम्यगुपविश्य उपयमनकुशान् पुरतो निधाय-ॐ अग्निन्दूतं० बलवर्धन नामाग्नये नमः-इत्यग्निं संपूज्य स्थालीपाकेन षडाहुतीर्जुहुयात् । त्यागोच्चारमात्रम् । न संस्रवः । स्थालीपाकमादाय-१ ॐ अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वान् देवानुपह्वये । सरस्वती च वाजी च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा इदमग्नये इन्द्राय बृहस्पतये विश्वेभ्यो देवेभ्यो सरस्वत्यै वाज्यै च नमम । २ ॐ सर्पदेवजनान् सर्वान् हिमवन्त ह सुदर्शनम् । वसूँश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह । एतान् सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा- इदं सर्पदेवजनेभ्यो हिमवते सुदर्शनाय वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्य ईशानाय जगदेभ्यश्च नमम । ४ ॐ कर्तारञ्च विकर्तारं विश्वकर्माणमोषधींश्च वनस्पतीन् । एतान्त्सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा-इदं कर्त्रे विकर्त्रे विश्वकर्मणे ओषधिभ्यो वनस्पतिभ्यश्च नमम । ५ ॐ धातारञ्च विधातारं निधीनां पतिंह सह । एतान्त्सर्वान् प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा-इदं धात्रे विधात्रे निधीनाञ्च पतये नमम । ६ ॐ स्योन ह शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती । सर्वाश्च देवताः स्वाहा-इदं ब्रह्मणे प्रजापतये सर्वाभ्यो देवताभ्यश्च नमम । एवं षडाहुतीर्हुत्वा आज्येन । ॐ गणानान्त्वा० गर्भधम्-स्वाहा-इदं गणपतये नमम-इति वराहुतिं दत्त्वा त्यागसंकल्पं कुर्यात् ।

इदं सम्पादितं सिध्मौदनादि हविर्द्रव्यं, तेन या या वक्ष्यमाणदेवताः, ताभ्यः ताभ्यः मया परित्यक्तम्, न मम, यथादैवतमस्तु । इति त्यागसंकल्पः ।

ततः प्रधानहोमः-१ ततः - १ सिध्धौदनेन २ मधुना ३ आज्येन ४ यवैः ५ कृष्णतिलैः ६ क्षीरवृक्षसमिद्भिः इति षड्द्रव्यैः वास्तुपुरुषं प्रतिद्रव्यं ॐ वास्तोष्पते० चतुष्पदे स्वाहा-इति मन्त्रेण १०८ वा २८ आहुतीर्जुहुयात् (मतान्तरेण-१ क्षीरवृक्षसमित् २ चरु ३ तिल ४ आज्यद्रव्यैः वास्तुपुरुषं प्रतिद्रव्येण १ वास्तोष्पते० इति ऋक्चतुष्टयेन प्रत्यृचं सप्तवारं सप्तविंशतिवारं वा जुहुयात् ।)

(२) १ चरुणा २ तिलैः ३ आज्येन इति त्रिभिर्द्रव्यैः प्रतिद्रव्यं-१०८ वा २८ संख्यया ॐ ध्रुवाऽसि ध्रुवो० जनस्य च्छाया-स्वाहा-इति मन्त्रेण जुहुयात् ।

(३) घृतेन तिलैर्वा १०८ वा २८ संख्यया ॐ अघोरेभ्यो० रुद्ररूपेभ्यः-स्वाहा इति मन्त्रेण वास्तुमर्मसन्धानार्थं जुहुयात् ।

(४) ततो घृताक्तानि पञ्च बिल्वफलानि - १ ॐ वास्तोष्पते० २ वास्तोष्पते प्रतरणो० ३ वास्तोष्पते शग्मया० ४ अमीवहा वास्तोष्पते० ५ ध्रुवासि० इति प्रतिमन्त्रमेकैकं जुहुयात् ।

(५) वास्तुमण्डलदेवतानां-१ आज्येन २ चरुणा ३ तिलैः ४ क्षीरसमिद्भिश्च प्रतिद्रव्यमष्टाष्टसंख्यया जुहुयान्नाममन्त्रैः । चरक्याद्यष्ट देवतानां नाममन्त्रैः प्रतिद्रव्यं चतुश्चतुः संख्यया जुहुयात् । इन्द्रादि-अनन्तान्तानां दशानां क्षितिरूपान्तानां वा विंशतेः प्रतिद्रव्यं द्विर्द्विर्जुहुयात् । (अथवा समयाभावे ब्रह्मादिसर्वासां देवतानां द्रव्यचतुष्टयेन नाममन्त्रेण प्रत्येकमेकैकाहुतिं जुहुयात् ।)

(६) ततः समस्तव्याहृतिभिः तिलैः १०८ वा २८ संख्यया जुहुयात् । (ततः सर्षपगुग्गुलफललक्ष्मीहोमाः कृताकृताः) ।

मृडाग्नेः स्थापितवास्तुदेवतानां पूजनम् । स्विष्टकृत् । नवाहुतयः । दिक्पालानां मण्डलदेवतानाञ्च बलिदानम् । पूर्णाहुतिः । वसोर्धारा । भस्म धारणम् । होमसंकल्पः । संस्रवप्राशनम् । पवित्राभ्यां मुखमार्जनम् । अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः । पूर्णपात्रदानम् । प्रणीताविमोकः । इत्यन्तं कृत्वा सार्वभौतिकबलिदानम् ।

वास्तुमण्डलात् पूर्वे शुचौ देशे सदीपं बलिं निधाय-जलमादाय-सर्वभूतप्रीत्यर्थं प्रासाद प्रतिष्ठाङ्गं सार्वभौतिकबलिदानं करिष्ये । सर्वभूतबलिद्रव्याय नमः इति संपूज्य जलमादाय-ॐ त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥१॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥२॥ सर्वेऽत्र मन्दिरे (मम गृहे) रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपालगणैः सह । रक्षन्तु मन्दिरं (सदनं) सर्वे घ्नन्तु रक्षांसि सर्वतः ॥ जलं पात्रे क्षिपेत् - १ त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमः बलिं समर्पयामि । २ ब्रह्मणे० । ३ विष्णवे० ४ शिवाय० ५ देवेभ्यो० ६ दानवेभ्यो० ७ गोभ्यो० ८ यक्षेभ्यो० ९ राक्षसेभ्यो० १० पन्नगेभ्यो० ११ ऋषिभ्यो० १२ मनुष्येभ्यो० १३ गोभ्यो० १४ देवमातृभ्यो० १५ भूतेभ्यो० १६ प्रेतेभ्यो० १७ पिशाचेभ्यो० १८ मातृभ्यो० १९ गणेभ्यो नमः बलिं समर्पयामि ।

प्रार्थना-बलिं गृह्णन्त्विमे देवा आदित्या वसवस्तथा । मरुतोऽश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥१॥ असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः । डाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥२॥ जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा माला विद्याधरा नगाः । दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥३॥ जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ॥ मा विघ्नं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः । सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ॥३॥ अनेन बलिदानेन सर्वभूतानि प्रीयन्ताम् । ततो वास्तुदेवतानीराजनमन्त्रपुष्पाञ्जलिप्रदक्षिणाविशेषार्घप्रार्थनाक्षमापनानि कृत्वा वास्तुनिक्षेपं कुर्यात् ।

वास्तुनिक्षेपः ।

प्रासादगर्भगृहस्याग्नेय्यामाकाशपद ऐशान्यां वा हस्तमात्रं वितस्तिमात्रं गर्तं वा खात्वा मृदं तत्रैव संरक्ष्य गोमयेन गर्तमुपलिप्य गन्धमाल्यादिभिरलङ्कृत्य मृत्पात्रे ताम्रपात्रे वा शाल्यादिसप्तबीजानि दध्योदनं दधिशैवालपुष्पपञ्चरत्नहिरण्य दूर्वासर्वौषध्युदपात्रजलादिकं प्रक्षिप्य पूर्वं पूजितां वास्तुमूर्तिं पात्रेऽधोमुखीं ईशानशिरस्कां निधाय पात्रान्तरेण पिधाय मण्डलेशानस्थापितमव्रणं कलशमादाय गर्तसमीपं गच्छेत् । संकल्पः-अस्मिन् नूतनप्रासादे सूर्याचन्द्रमसौ यावद् वास्तोः स्थिरतासिद्ध्यर्थं वास्तुनिक्षेपमहं करिष्ये । अव्रणं कलशमादाय जानुभ्यामवनिं गत्वा-ॐ उदुत्तमं वरुणपाश० ॐ नमो वरुणाय-इति गर्ते कलशजलं सिञ्चेत् । वास्तुमूर्तिसहितं मृत्पात्रं ताम्रपात्रं वा सपिधानं गर्ते निधाय-ॐ स्थिरोभव० पुरीषवाहणः ॥ वास्तोष्पते प्रति० इति मन्त्रौ पठित्वा-स्थिरो भव । शाश्वतो भव । सुखदो भव । वरदो भव-इति प्रार्थ्य-द्यौः शान्ति० यतो यतः० पठन् यजमानो मृदा पत्नी, जलेन गर्तं प्रपूरयेत् । ततः प्रार्थयेत्-ॐ पूजितोऽसि मया वास्तो होमाद्यैरर्चनैः शुभैः । प्रसीद पाहि देवेश देहि नः सकलं सुखम् ॥ सशैलसागरां पृथ्वीं यथा वहसि मूर्धनि । तथा नो वह कल्याण संपत्सन्ततिभिः सह ॥ यथा मेरुगिरेः शृङ्गं देवानामालयः सदा । तथा ब्रह्मादि देवैस्त्वं प्रासादेऽस्मिन् स्थिरो भव-इति संप्रार्थ्य गर्ते गन्धपुष्पादिकं प्रक्षिपेत् । अनेन वास्तुनिक्षेपकर्मणा सूर्याचन्द्रमसौ यावत् प्रासादे वास्तोः स्थिरताऽस्तु ॥

भित्त्यलंकरणम् । दिक्प्रार्थना ।

कांस्यपात्रे उदपात्रस्थजलं क्षीरीदुम्बरपल्लवान् शैवालं गोमयं दधिमधुघृतं कुशान् यवान् हरिद्रासर्षप गोरोचनकुङ्कुमदूर्वादिमङ्गलद्रव्याणि चादाय प्रागादिभित्तीः स्वहस्तयुगलेन दम्पती अङ्कयेताम्-१ पूर्वभित्तिम्-ॐ श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेताम्। २ दक्षिणभित्तिम्-यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणसन्धौ गोपायेताम् । ३ पश्चिमभित्तिम्-अन्नं च त्वा ब्राह्मणाश्च पश्चिमसन्धौ गोपायेताम् । ४ उत्तरभित्तिम्-ऊर्क् च त्वा सूनृता चोत्तरसन्धौ गोपायेताम् । तेन मङ्गलजलेन आसनोपस्थानानि प्रोक्षेत् । द्वारशाखे चाङ्कयेत् ।

गृहाद् बहिर्निष्क्रम्य प्राचीमुपतिष्ठेत्-ॐ केता च मा सुकेता च पुरस्ताद् गोपायेतामग्निर्वै केताऽदित्यः सुकेता च तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद् गोपायेताम् ॥ दक्षिणाम्-ॐ गोपायमानश्च मा

रक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै गोपायमान ह रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेताम् ॥ प्रतीचीम्-ॐ दीदिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद् गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिविः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चाद् गोपायेताम् । उदीचीम्-ॐ अस्वप्नश्च मानवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मोत्तरतो गोपयेताम् ॥ ततः प्रासादं प्रविशेत्-ॐ धर्मस्थूणा राज ᳪ श्रीस्तूपमहोरात्रे द्वारफलके । इन्द्रस्य गृहा वसुमन्तो वरूथिन स्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिः सह । यन्मे किञ्चिदस्त्युपहूतः सर्वगणसखायसाधुसंवृतः । तां वा शालेऽरिष्टवीरा गृहा नः सन्तु सर्वतः-इति प्रविश्य देवपिण्डिकास्थानं प्रणम्य स्वासने उपविशेत् ।

प्रासादं गृहं वा पूर्वादिक्रमेण पीतरक्तकृष्णनीलश्वेतधूम्रश्वेतश्वेतमेघरक्तवर्णैर्ध्वजैर्लोकपालमन्त्रै-स्तत्तद्दिक्षु शोभयेत् । प्रासादं त्रिसूत्र्या वेष्टयित्वा जलधारां पयोधाराञ्च-ॐ रक्षोहणं-४ कृणुष्वपाजः-५ पुनन्तुमा० ९ इति राक्षोघ्नपावमानसूक्तैः परितः सिञ्चेत् ।

दक्षिणा भूयसी संकल्पौ । पीठदानं शिल्पिने । आशीर्वादादि । अग्निस्थापितदेवताविसर्जनम् । जलमादाय-नूतनप्रासादे शल्यजीवहिंसा आयव्ययवेधादिदोषनिवृत्तिपूर्वकं वास्तोः स्थिरतासिद्ध्यर्थं कृतेन निक्षेपान्तवास्तुशान्तिकर्मणा परमेश्वरः प्रीयताम् ।

इति प्रासादाङ्गवास्तुशान्तिः ॥

९७ स्नपनविधिः ।

(पूर्वं स्नपनप्रकारनिदर्शकपरिशिष्टात् प्रथमादिसप्तमप्रकारान्ताः पञ्च एकदिनसाध्यप्रतिष्ठायां सम्पादयितुं शक्यन्ते । अष्टमादित्रयोदशप्रकारान्ताः पक्षास्त्रिदिनसाध्यायामेकरात्राधिवासपक्षेण द्वितीयेऽहनि भवितुमर्हन्ति । सप्तपञ्चत्रिदिनाधिवासनपक्षेष्वर्चाशुद्धिरूपमातिदेशिकत्वं स्वीकृत्य सति सम्भवे चतुर्दशपञ्चदशषोडशप्रकाराः प्रयत्नेन सम्पादयितुमर्हाः सन्ति । प्रतिष्ठायां प्रधान मण्डपादुत्तरे तदर्धमानेन स्नानमण्डपः कार्य इति प्राक् शास्त्रार्थप्रकरण उक्तम् । एका वेदी, वेदीद्वयम्, वेदीत्रयं वा एकप्रतिमाप्रतिष्ठाकरण एव सम्भवति । सपरिवारशिवलक्ष्मीनारायण-लक्ष्मणरामचन्द्र-सीता-राधाकृष्णाद्येकाधिकप्रतिमाप्रतिष्ठाकरणे वेदीत्रयेण स्नपनमशक्यमिति वेद्यग्रे दोलादिकाष्ठपट्टिका निधेयाः । यद्यपि शिल्पशास्त्रे प्रासादगर्भगृहमानेन मूर्त्तिदैर्घ्यादिकं निर्दिष्टम्, तथापि वर्तमानयुगे शिल्पशास्त्रमवगणय्य महत्यः पुरुषमात्राः प्रतिमाः स्थाप्यन्ते । ईदृशि प्रसङ्गे छायामण्डपे चालयितुमशक्यत्वे स्वस्थानस्थितानामेव प्राक्शिरसां वा स्नपनविधिः सम्पादनीयः । इतस्ततः सञ्चारणे महदापत्प्रसङ्गात् ।

एतस्मिन् प्रयोगप्रकरणे प्रतिष्ठामयूखोक्त नवतिकलशात्मकपक्षेण साकं प्रतिष्ठावासुदेव्युक्तो द्वाविंशतिकलशस्नपनविधिः संकलितः । मयूखे समुद्रसंज्ञककलशचतुष्टयस्योक्तत्वाद् वासुदेव्युक्तं

तक्षिणवेदीनिर्दिष्टं कलशचतुष्टयं परित्यज्य शेषाष्टादशकलशसंकलेनन १०८ अष्टोत्तरशतकलशा अन्ये च लौकिकाः कलशाः स्वीकृताः । एतद्विभ्रपक्षं स्वीकृत्य स्नपनेऽपि न कश्चिद् दोषः ।

एतदवधेयम्-एककलशादारभ्य तदधिककलशस्नपनपक्षस्वीकारेऽपि स्नपनविधौ सामान्यत्वेन विहिता विधयः-कलशासादनम्, अभिमन्त्रणम्, भद्रपीठनिवेशन स्वस्तिकविरचन दर्भास्तरणानि, दूर्वाक्षतपुष्पार्पण वस्त्राच्छादन नेत्रोन्मीलन-वस्त्रमार्जन-तैलाभ्यञ्जन पिष्टोद्वर्तन यक्षकर्दम जटामांस्यनुलेपन पूजनसामिधेनी कल्पोक्त स्तुत्यादिकं प्रयोगे तत्तदवसरेऽनुसन्धेयं यथासमयम् । स्नपनविध्युक्तां सकलां सामग्रीं सन्निधाप्य स्नपनविधिमारभेत ।

५१ वासुदेवीसंवलितो मयूखोक्तः स्नपनप्रयोगः ।

हस्तमात्रं द्वादशाङ्गुलोच्चं पक्वेष्टका विरचितं वेदीत्रयम् । तदुपरि पट्टकत्रयम् । अनेकमूर्तिसत्वे वेद्यग्रतो दीर्घाणि दोलापट्टकानि स्थापयेत् । दक्षिणवेदी, मध्यवेदी उत्तरवेदी च । दक्षिणवेद्याः पश्चाद् उदक्संस्थं १ मृत्तिका २ पल्लववृक्षीयकषाय ३ गोमूत्र ४ गोमय ५ भस्म ६ गन्धोदकपूरितान् षट्कलशानासादयेत् । तदुपरि पूर्वस्यां षट्कलशान्, तेभ्यः पञ्चसु गन्धोदकं षष्ठे च स्थपतिसंज्ञके कलशे सर्वतीर्थोदकं प्रक्षिपेदिति दक्षिणवेद्यां द्वादश कलशाः । मध्यवेद्याः पश्चिमेऽपि एवं दक्षिणवेदीवत् प्रथमपङ्क्तौ तत्तद्द्रव्य पूरिताः षट्, तत्पुरतो गन्धोदकपूरिताः पञ्च इत्येकादशकलशाः । उत्तरवेद्यां पूर्वादिक्रमेण १ क्षार २ क्षीर ३ दधि ४ सर्पिः ५ सुरा ६ इक्षुरस ७ स्वादु ८ गन्धोदक (पर्जन्योदक नारिकेलोदक युतानष्ट कलशानासादयेत् । उत्तरवेद्याः पश्चाद् उदक्संस्थं कलशासादनम् । तत्पुरतः प्राक् संस्थाः पङ्क्तयः । तत्र अधः प्रथमपङ्क्तौ १ मृत्तिका २ गोमय ३ गोमूत्र ४ भस्म ५ मीलितपञ्चगव्य ६ क्षीर ७ दधि ८ घृत ९ मधु १० शर्करायुतान् दश कलशान् उदक्संस्थं पङ्क्तिरूपेण आसादयेत् । तदुपरि द्वितीयपङ्क्तौ दश गन्धोदकपूरितान्, भेदेन अन्यांश्चतुरः समुद्रसंज्ञकान् कलशानासादयेत्-इति चतुर्दश । तत्पुरतः तृतीयपङ्क्तौ पञ्च १ पयः २ दधि ३ घृतं ४ मधु ४ शर्करायुतान् । तदुपरि चतुर्थपङ्क्तौ पञ्च शुद्धोदकपूरितान् । तदुपरि पञ्चमपङ्क्तौ पञ्च पल्लवकषाययुतान् । तदुपरि षष्ठपङ्क्तौ दश क्रमेण १ पुष्प २ फल ३ सुवर्णोदक ४ गोशृङ्गोदक ५ सप्तधान्य ६ सहस्रच्छिद्र ७ सर्वौषधी ८ पञ्चपल्लव ९ दूर्वा १० नवरत्नोदक युतान् । (तदुपरि अष्ट तीर्थोदकयुतान्० । तदुपरि सप्तम (अष्टम) पङ्क्तौ दश १ कदम्ब २ शाल्मलि ३ अम्बु ४ अशोक ५ प्लक्ष ६ आम्र ७ वट ८ बिल्व ९ नागवल्ली १० पलाशपत्रयुतान् लोकपाल कलशान् स्थापयेत् । (अत्र तीर्थोदककलशो लौकिकः, अष्ट वा भिन्ना इति पक्षद्वयम् ।

ततो वासुदेवीमतेन एषां कलशानामुत्तरतः नवानां नवानां प्राक्संस्थं पङ्क्तिद्वयम् । तेषु क्रमेण १ पाद्यम् २ अर्घः ३ आचमनीयम् ४ पञ्चगव्यम् ५ दधि ६ यवपिष्टम् ७ मधु ८ कषायः ९ पुण्यतीर्थोदकम् १० मण्युदकम् ११ फलम् १२ सुवर्णम् १३ यवाक्षताः १४ व्रीहयः १५ घृतम् १६ मधु १७ पञ्चामृतम् १८ पुरुषसूक्ताभिमन्त्रितः देवसूक्ताभिमन्त्रितो वा-एतद्युतान् सम्पादयेत् । एवं तीर्थोदकातिरिक्ता

अष्टोत्तरशतं कलशाः । १२, ११, १०, १०, ४, ९, ९, ९, १० (८), ८, १८ = १०८ कलशाः । अन्ये चावश्यका भिन्ना लौकिककलशाः ॥१६॥

(जलाधिवासो न कृतश्चेत् स्नपनात्पूर्वं पूर्वोक्तं कुटीरहोमं संपाद्य प्रतिमाः कुशैः संमार्ज्य मधुघृताभ्यङ्गेन देवस्य व्रणभङ्गं दूरीकृत्य पञ्चगव्येन पृथक् संस्नाप्य पुनः संपूज्य प्रतिमारक्षार्थं देवस्य दक्षिणहस्ते ॐ यदाबध्नन्० इति मन्त्रेण हरिद्राक्तं ऊर्णासूत्रं बध्नीयात्)

ततो जलाधिष्ठिताः प्रतिमाः शङ्खतूर्यवेदघोषैः ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते० इति मन्त्रेण प्रबोध्य ॐ रथे तिष्ठन्नयति व्वाजिनं ÷ पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः । अभीशूनाम्महिमानम्पनायतमनं ÷ पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयं ÷ ॥२९-४३॥ इति मन्त्रेण रथादिना जलाधिवासमण्डपात् कर्मकुटीतो देवता मण्डपप्रादक्षिण्येन स्नानमण्डपमानीय पीठे पङ्के वा पूज्यपूजकयोर्म ध्ये प्राचीं प्रकल्प्य स्वसम्मुखं प्राङ्मुखीं देवदिगभिप्रायेण स्थापयेत् । तत्रादौ पञ्चगव्येन ॐ नमो नारायणाय (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय-ॐ नमो भगवते रुद्राय-ॐ नमो भगवते रामभद्राय-ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे-) इत्यादि तत्तद्देवतामूलमन्त्रेण स्नपनभूमिं वेदिकात्रयञ्च संप्रोक्ष्य दक्षिणवेदिकायां बालुका आस्तीर्य ॐ स्वस्तिनऽइन्द्रो० अनेन व्रीह्यादिना स्वस्तिकं विरच्य तत्र ॐ भद्रं कर्णेभि० इति भद्रपीठं निधाय तत्र ॐ स्तीर्ण्णं बर्हिः सुष्टरीमाजुषाणोरु पृथु प्रथमानम्पृथिव्याम् । देवेभिर्युक्तमदिति ६ सजोषा ६ स्योनङ्कृण्वाना सुविते दधातु ॥२९-४॥ इति मन्त्रेण वेद्यां कुशाना स्तीर्य देवं स्थापयेत् । प्रतिष्ठोद्योते शुद्धदिगभिप्रायेण प्रत्यङ्मुखमित्युक्तम् ॥

स्नपनप्रयोगः ।

उदङ्मुखो यजमानः आचम्य प्राणानायम्य । शान्तिपाठादि । जलमादाय-अद्य० पू० तिथौ आसां प्रतिमानां अशुचिदेशकालस्पर्शादिजनितसकलमालिन्यनिवृत्तिपूर्वकं शुचित्वसिद्ध्यै देवकलासान्निध्यहेतवे अर्चाशुद्ध्यर्थं प्रतिष्ठाङ्गभूतं स्नपनविधिं करिष्ये । तत्रादौ गणपतिस्मरणपूर्वकं कलशासादनं करिष्ये । ॐ गणानान्त्वा० गणपतये नमः नमस्करोमि । ततः पूर्णपात्रवर्जं ॐ महीद्यौः० इत्यारभ्य-ॐ तत्त्वायामि० एषु कलशेषु वरुणं आवाहयामि स्थापयामि । कलशान् वरुणं गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य-ॐ कलशस्य मुखे० ये तीर्थानि० इति सर्वकलशेषु तीर्थान्यावाह्य कलशाभिमन्त्रणम् । उत्तरवेदीपरितोऽष्टकलशान् पूर्वादिक्रमेण स्पृष्ट्वा ॐ हिरण्यगर्भः इत्यष्टमन्त्रैरभिमन्त्रयेत् ।

१ ॐ हिरण्यगर्ब्भ ६ समवर्त्तताग्ग्रे भूतस्य जात ६ पतिरेकऽआसीत् । सदाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥२३-१॥ २ उपयाम गृहीतोसि प्रजापतयेत्त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येषते योनि ६ सूर्य्यस्ते महिमा । यस्तेहन्त्संवत्त्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते व्वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्य्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्म्ने प्रजापतये स्वाहा देवेब्भ्यं÷ ॥२३-२॥ ३ य ६ प्राणतो निमिषतो महित्त्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव । यऽईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पद ६

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२३-३॥ ४ उपयामगृहीतोसि प्रजापतये त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा । यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्या मग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्य ৺ स्वाहा ॥२३-४॥ ५ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषञ्चरन्तम्परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥२३-५॥ ६ युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्ष सारथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२६-६॥ ७ यद्वातोऽअपोऽअगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् । एत ७ स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्तयासि न ॥ ॥२३-७॥ ८ वसवस्त्वाऽअन्तु गायत्रेण च्छन्दसा रुद्रास्त्वाऽअन्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसाऽऽदित्यास्त्वाऽअन्तु जागतेन च्छन्दसा । भूर्भुव ৺ स्वर्लाजी ३ च्छाची ३ न्यव्ये गव्यऽएतदन्नमत्त देवाऽएतदन्नमद्धि प्रजापते ॥२३-८॥ इत्यष्टकलशाभिमन्त्रणम् ।

ततः उत्तरवेद्यामन्तिमपङ्क्तौ स्थापितान् दशकलशान् क्रमेण-१ त्रातारमिन्द्र० २ त्वन्नो अग्ने तव० ३ यमायत्त्वाऽङ्गिरस्वते० ४ असुन्वन्तमयजमान० ५ तत्त्वायामि० ६ आनो नियुद्भिः० ७ वयः सोम० ८ तमीशानं० ९ अस्मे रुद्रा० (ब्रह्मजज्ञानं) १० स्योना पृथिवि० (नमोऽस्तु सर्पेभ्यो०) इति लोकपालमन्त्रैरभिमन्त्रणम् । वासुदेव्युक्त कलशेष्वन्तिममष्टादशं कलशं पुरुषसूक्तेन तत्तद्देवतासूक्तेन वाऽभिमन्त्रयेत् ॥ ततो दक्षिणवेदी समीपस्थित द्वितीयपङ्क्तेरन्तिमं हिरण्यादिसहितं स्थपतिसंज्ञकं द्वादशं कलशमादाय देवसमीपे निधाय तस्मिन् तीर्थान्यावाहयेत् ।

ॐ काशी कुशस्थली मायाऽवन्त्योध्या मथोः पुरी । शालिग्रामं सगोकर्णं नर्मदा च सरस्वती ॥१॥ तीर्थान्येतानि कुम्भेऽस्मिन् विशन्तु ब्रह्मशासनात् । झषारूढा सरोजाक्षी पद्महस्ता शशिप्रभा ॥२॥ आगच्छतु सरिज्ज्येष्ठा गङ्गापापप्रणाशिनी । नीलोत्पलदलश्यामा पद्महस्ताम्बुजेक्षणा ॥३॥ आयातु यमुना देवी कूर्मयानस्थिता सदा । प्राची सरस्वती पुण्या पयोष्णी गौतमी तथा ॥४॥ ऊर्मिलाचन्द्रभागा च सरयूर्गण्डकी तथा । जम्बुका च शतद्रुश्च कलिङ्गा सुप्रभा तथा ॥५॥ वितस्ता च विपाशा च शर्मदा च पुनः पुनः । गोदावरी महावर्ता शर्कराऽऽवर्त्तमार्जनी ॥६॥ कावेरी कौशिकी चैव तृतीया च महानदी । विटङ्का प्रतिकूला च सोमनन्दा च विश्रुता ॥७॥ करतोया वेत्रवती देविका वेणुका च या । अत्रिगङ्गा वैतरणी काश्मीरी ह्लादिनी च या ॥८॥ प्लाविनी च शविन्द्रा सा कल्माषा शंसिनी तथा । वासिष्ठी चाप्यपापा च सिन्धुवत्यारुणी तथा ॥९॥ ताम्रा चैव त्रिसध्या च तथा मन्दाकिनी परा । तैलोष्णी चैव पारा च दुन्दुभिर्नकुली तथा ॥१०॥ नीलगन्धा च बोधा च पूर्णचन्द्रा शशिप्रभा । अमरेशं प्रभासञ्च नैमिषं पुष्करं तथा ॥११॥ आषाढी टिण्डिभारञ्च भारभूतं बलाकुलम् । हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं मध्यं मध्यमकेश्वरम् ॥१२॥ श्रीपर्वतं समाख्यातं जलेश्वरमतः परम् । आम्रातकेश्वरञ्चैव महाकालन्तथैव च ॥१३॥ केदारमुत्तमं गुह्यं महाभैरवमेव च । गया चैव कुरुक्षेत्रं गुह्यं कनखलं तथा ॥१४॥ विमलं चन्द्रहासञ्च माहेन्द्रं भीममष्टकम् । वस्त्रापदं रुद्रकोटिं ह्यविमुक्तं महाबलम् ॥१५॥ गोकर्णं भद्रकर्णञ्च महेशस्थानमुत्तमम् । छागलाद्यं द्विरण्डं च कर्कोटं मण्डलेश्वरम् ॥१६॥ कालञ्जरवनं चैव देवदारुवनं तथा । शङ्कुकर्णं तथैवेह स्थलेश्वरमतः परम् ॥१७॥ एता नद्यश्च तीर्थानि गुह्यक्षेत्राणि सर्वशः । तानि सर्वाणि कुम्भेऽस्मिन् विशन्तु ब्रह्मशासनात् ॥१८॥ इति तीर्थान्यावाह्य स्थपतिर्यजमानो वा-ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृका

हस्ता निषङ्गिणं ÷ । तेषां ५ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥१६-६०॥ ॐ इमम्मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं स च ता परुष्ण्या । असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ (ऋ०) इति मन्त्राभ्यां देवं स्नपयेत् ।

यजमानो यथाशक्ति शिल्पिवर्गं संपूज्य मण्डपाद् बहिर्दिक्षु प्राच्यां वा सिद्धार्थघृतपायस बलिं दद्यात्-बलिद्रव्याय नमः-इति संपूज्य ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० मृतात्-रुद्राय नमः बलिं समर्पयामि । अप उपस्पृश्य देवसमीपमागत्य-सर्षपैः ॐ त्रातारमिन्द्र० इति लोकपालमन्त्रैः ॐ प्राच्यै दिशे स्वाहा० दिशे स्वाहा इति मन्त्रेण वा मण्डपान्तर्दिग्प्रक्षणं कुर्यात् ।

देवस्याग्रे चतुरो ब्राह्मणानुपवेश्य-जलमादाय-आसां प्रतिमानां अर्चाशुद्धि देवकलासान्निध्य हेतवे स्नपनविध्यभ्युदयार्थं प्रैषात्मकपुण्याहवाचनं करिष्ये । सहिरण्यं पूगीफलमादाय-भो ब्राह्मणाः, प्रतिमाशुद्धिदेवकलासान्निध्यहेतवे करिष्यमाण प्रतिष्ठाङ्गभूतस्नपनकर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु इति त्रिः । कल्याणं० ३ ऋद्धिं० ३ स्वस्तिं० ३ श्रीरस्त्विति० ३ । ब्राह्मणाः - अस्तु पुण्याहम् । अस्तु कल्याणम् । कर्म ऋध्यताम् । आयुष्मते स्वस्ति । अस्तु श्रीः - इति प्रतिप्रैषान् क्रमेण दद्युः । ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दास्ये - दक्षिणां दत्त्वा स्नपनविधिमारभेत । स्नपनकलशेभ्यः किञ्चिद् वारि परिशेष्य पात्रान्तरे संरक्ष्य तेन प्रासादध्वजपिण्डिकाशिखरादि प्रोक्षेत् । उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः । स्वसम्मुखः प्रत्यङ्मुखो देवः ।

दक्षिणवेदी स्नपनम् ।

१ प्रथमेन मृत्तिका कलशेन - ॐ अग्निर्म्मूर्द्धा दिवः॑ ककुत्पतिः॑ ÷ पृथिव्व्या ऽअयम् । अपा ९ रेता ९ सि जिन्वति ॥३-१२॥ २ द्वितीयेन कषाय कलशेन-ॐ यज्ञा यज्ञावो ऽअग्नये गिरा गिरा च दक्षसे । प्रप्रवयममृतञ्जातवेदसन्प्रियम्मित्रन्न शं ह सिषम् ॥२७-४२॥ ३ तृतीयेन गोमूत्रकलशेन- ॐ तत्सवितु० (गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह । बृहत्त्युष्णिहा ककुप्सूचीभि ÷ शम्म्यन्तु त्वा ॥२३-३३॥ ४ चतुर्थेन गोमयकलशेन-ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानान्तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ (ऋ० परि०) ॥ ५ पञ्चमेन भस्मकलशेन ॐ मानस्तोके तनये मान ऽआयुषि मानो गोषुमानो ऽअश्वेषु रीरिषः । मा नो व्वीरान्रुद्रभामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥१६-१६॥ ६ षष्ठेन गन्धोदककलशेन-ॐ ता ९ सवितुर्व्वरेण्ण्यस्य चित्रामाहं व्वृणे सुमतिं व्विश्वजन्याम् । यामस्यकण्वो ऽअदुहत्प्रपीना ५ सहस्रधाराम्पयसा महीङ्गाम् ॥१७-७४॥ ततो द्वितीय पङ्क्तिस्थपञ्चदेवत्यैः कलशैः क्रमेण-१ गन्धोदकेन-ॐ नमः ÷ शम्भवाय च मयोभवाय च नमः ÷ शङ्कराय च मयस्कराय च नमः ÷ शिवाय च शिवतराय च ॥१६-४१॥ २ गन्धोदकेन - ॐ ह ह स ९ शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता व्वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऽ ऋतजा ऽअद्रिजा ऽऋतम्बृहत् ॥१०-२४॥ ३ गन्धोदकेन-ॐ याते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी । तया नस्तन्न्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥१६-२॥ ४ गन्धोदकेन - ॐ विष्णोरराटमसि

व्विष्णो ६ श्नप्त्रेस्त्थो विष्णो ६ स्यूरसि व्विष्णोर्द्ध्रुवो सि । व्वैष्णवमसि व्विष्णवेत्त्वा ॥५-२१॥ ५ गन्धोदकेन - ॐ ब्रह्मजज्ञानम्प्रथमम्पुरस्ता द्विसीमत ऽऽ सुरुचो व्वेनऽआवः । स बुध्न्याऽउपमाऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ॥१३-३॥

ततो देवमूर्ध्नि दूर्वाक्षत पुष्पाणि दद्यात् - ॐ शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुतवो रुहः । अधा शतक्रत्त्वो यूयमिमम्मेऽ अगदङ्कृत ॥१२-७६॥ सितसूक्ष्मवस्त्रेण देवमाच्छादयेत्-ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म्म वरूथमासदत्स्वः । व्वासोऽअग्ने व्विश्वरूप ६ संव्ययस्व व्विभावसो ॥११-४०॥ इति दक्षिणवेदीस्नपनम् ।

मध्यवेदीस्नपनम् ।

भद्रपीठं स्थापयेत्० ॐ भद्रङ्कर्णेभिः० ॥ तत्र प्रागग्रकुशास्तरणम् - ॐ स्तीर्ण्णं बर्हिः० देवं तत्र निदध्यात्-ॐ इति प्रणवेन । (प्रतिमानां गुरुत्वाच्चालनासम्भवे स्वस्थानस्थितानामेव विधिः कार्यः ।) यजमानः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा भूत्वा कुङ्कुमाक्तेन सूत्रेण लिङ्गमावेष्ट्य लिङ्गस्य मध्यभागे मुखं कल्पयित्वा तदुपरि भागे पञ्चसूत्रीविधानेन नेत्रे कनीनिकां पक्ष्मपुटद्वयञ्च कल्पयेत् । प्रतिमानां नेत्रे स्पष्टे एव । सुवर्णादिपात्रे मध्वाज्यञ्च प्रक्षिप्य सुवर्णशलाकया नेत्रोन्मीलनं कुर्यात् । नेत्रपुरत आदर्शं निधाय सन्धार्य दृष्टिपथाज्जनानपसार्य सुवर्णपायसभक्ष्यभोज्यादि पुरतः सन्धार्य प्रथमं दक्षिणनेत्रं सुवर्णशलाकया मध्वाज्याभ्यामुन्मीलयेत् - ॐ चित्रन्देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्म्मित्रस्य व्वरुणस्याग्नेः ॥१३-४६॥ अर्धर्च्चेन-तत ऊर्ध्वाधः पृथग्भूतं पक्ष्मपुटद्वयं कनीनिकाञ्च कल्पयेत्-ॐ आकृष्णेन रजसा व्वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्श्यन् ॥३३-४३॥ एवं वामनेत्रमप्युक्त्वा । प्रतिप्रतिमं मन्त्रावृत्त्या नेत्रोन्मीलनं कुर्यात् । (शिल्पी लोहेन उल्लिखेत्-नेत्रयोः पूर्वमेव सम्पादितत्वा दिदं न कार्यम्) ।

ततो गुरुः प्रतिमां मधुसर्पिर्भ्यामभ्यञ्जयेत्-ॐ घृतेन सीता मधुना समज्ज्यतां व्विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ॥ ऊर्ज्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसा भ्याववृत्स्व ॥१२-७०॥ ततो द्वादशमृद्भिः देवं स्नपयेत्-ॐ इदम्विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम् । समूढमस्य पाᳪसुरे स्वाहा ॥५-१५॥ ततो गोमयेन-ॐ मानस्तोके- हवामहे ॥१६-१६॥ ततः प्रथमवेदीस्थ कलशवद् द्वितीयवेदीस्थकलशैः क्रमेण प्रथमवेदी स्नपनोक्तमन्त्रैः स्नपयेत् । १ मृत्तिका-ॐ अग्निर्म्मूर्धा० । २ कषायः-ॐ यज्ञायज्ञावो० । ३ गोमूत्रम्-ॐ तत्सवितु० (गायत्री त्रिष्टुब्०) । ४ गोमयम्-ॐ गन्धद्वारां० । ५ भस्म-ॐ मानस्तोके० । ६ गन्धोदकम्-ॐ ता ९ सवितु० । द्वितीयपङ्क्तिः गन्धोदकैः १ ॐ नमः शम्भवाय० । २ ह ६ सः शुचिषद्० । ३ याते रुद्र शिवा० । ४ विष्णोरराटमसि० । ५ ब्रह्मजज्ञानं० । ततो यजमानः सुवर्णशलाकां स्नानवस्त्रञ्च शिल्पिने दद्यात् । गुरवे सुवर्णसहितां गां दद्यात् ।

उत्तरवेदीस्नपनम् ।

गुरुरुत्तरस्यां वेद्यां ॐ भद्रं कर्णेभिः इति भद्रपीठं निधाय ॐ स्तीर्ण्णं बर्हिः० इति प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य ॐ इति प्रणवेन देवं भद्रासने संस्थाप्य लौकिककलशेन स्नपयेत् - ॐ समुद्रायत्त्वा व्वाताय स्वाहा सरिरायत्त्वा व्वाताय स्वाहा । अनाधृष्ष्याय त्त्वा व्वाताय स्वाहा प्रतिधृष्ष्यायत्त्वा व्वाताय स्वाहा । अवस्यवे त्वाव्वाताय स्वाहा शिमिदायत्त्वा व्वाताय स्वाहा ॥३८-७॥ ततः संपूज्य देवमूर्ध्नि दूर्वापुष्पाक्षतान् दद्यात्-ॐ शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुतवो रुहः । अधाशतक्रत्त्वो यूयमिमम्मेऽअगदङ्कृत ॥१२-७६॥ ततो देवं प्रार्थयेत्-ॐ नमस्तेऽर्चे सुरेशानि प्रकृते विश्वकर्मणः । प्रभाविताशेष जगद् धात्रि तुभ्यं नमो नमः ॥१॥ त्वयि संपूजयिष्यामि नारायण (महादेव-जगदम्बा) मनामयम् (मनामयाम्) । रहिताऽशेषदोषैस्त्वं कद्धियुक्ता सदा भव ॥२॥ इति प्रार्थ्य (पूर्वं न बद्धं चेदधुना देवदक्षिणहस्ते वितस्तिमात्रं हरिद्राक्तमूर्णासूत्रं-ॐ यदा बद्धन्दाक्षायणा हिरण्य ꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः । तन्मऽआबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टि र्य्यथासम् ॥३४-५२॥ इति मन्त्रेण बध्नीयात् ।) सर्वदेवमयं शान्तं परं ब्रह्म सनातनम् । त्वामेवालङ्करिष्यामि त्वं वन्द्यो भवते नमः ॥ इति प्रणमेत् ।

ततो द्वितीय पङ्क्तिस्थैरन्तिमैश्चतुर्भिः समुद्रसंज्ञितैः कलशैर्देवं स्नपयेत् - १ ॐ इदमापः प्प्रवहतावद्यञ्चमलञ्च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम् । आपो मातस्म्मादेनस ꣳ पवमानश्च मुञ्चतु ॥६-१७॥ (ॐ समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनानायन्त्यनिविशमानाः । इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ऋ ७-४९-१॥ ॐ समुद्रादूर्म्मि० ॥१७-८९॥) २ ॐ आपो देवी ꣳ प्प्रति गृभ्णीत भस्म्मैतत्स्योने कृणुद्ध्वꣳ सुरभाऽउलोके । तस्म्मै नमन्ताञ्जनयꣳ सुपत्नीम्मातेव पुत्रम्बिभृताप्प्स्वेनत् ॥१२-३५॥ (या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः । समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिहमामवन्तु ॥ऋ० ७-४९-२॥ ॐ अपामिदंन्ययन ꣳ ० शिवो भव ॥१७-७॥) ३ इमम्मे व्वरुणश्श्रुधीहव मद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥२१-१॥ (यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् । मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ऋ० ७-४९-३॥ समुद्रोऽसि व्विश्वव्यचा० भूयात् ॥५-३३॥) ४ ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो व्वरुणेह बोद्ध्युरुश ꣳ समानऽआयुः प्प्रमोषीः ॥२१-२॥ (यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति । वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ऋ० ७-४९-४॥ ॐ समुद्रे त्वा नृमणा० अवदर्धन् ॥१२-२०॥)

ततः प्रथमद्वितीयपङ्क्तिभ्यां पर्यायेण कलशानादाय स्नपयेत्-१ मृत्तिकाकलशः-ॐ अग्निर्म्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्व्याऽअयम् । अपा ꣴ रेता ꣴ सि जिन्वति ॥३-१२॥ १ शुद्धकलशेन ॐ देवीरापोऽअपान्नपाद्यो वऽऊर्म्मिर्हविष्ष्यऽइन्द्रियावान्मदिन्तमः । तन्देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो

येषाम्भागस्त्थ स्वाहा ॥६-२७॥ (वरुणस्योत्तम्भनमसि० सीद ॥४-३६॥) २ दशपलगोमय कलशः-१ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ऋ० परि॥ २ शुद्धकलशः ॐ अप्सुमे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निञ्च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ऋ-१-२३-२०॥

३ द्वादशपल गोमूत्र कलशः - ॐ तत्सवितु० (गायत्री त्रिष्टुब्० । ३ शुद्धकलशः-ॐ आपो हिष्ठामयो भुवस्तानऽऊर्जेदधातन । महे रणाय चक्क्षसे ॥३६-१४॥ ४ मुष्टि संमित भस्म कलशेन- प्रसद्य भस्म्मना योनिमपश्च्च पृथिवीमग्ने । स ᳪ सृज्य मातृभिष्ट्वञ्ज्योतिष्म्मान्पुनराऽसदः ॥१२-३८॥ ४ शुद्ध कलशः-ॐ शन्नोदेवीरभिष्ट्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभिस्रवन्तुनः ॥३६-१२॥ ५ त्रिपल संमित पञ्चगव्यकलशः - १ पय ÷ पृथिव्यां० (ॐ अब्भ्यर्षत सुष्टुतिङ्गव्यमाजिमस्म्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त । इमं यज्ञन्नयत देवतानो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१७-९८॥ ५ शुद्धकलशः - ॐ यो वः ÷ शिवतमो रसस्तस्य भाजयते हनः ÷ । उशतीरिव मातरः ÷ ॥३६-१५॥ ६ षोडशपल क्षीर कलशः-ॐ आप्यायस्व समेतु ते विश्श्वत ÷ सोमव्वृष्ण्यम् । भवा व्वाजस्य सङ्गथे ॥१२-११२॥ ६ शुद्धकलशः - ॐ तस्माऽअरङ्गमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथाच नः ॥३६-१६॥ ७ पञ्चविंशतिपलदधिकुम्भः - ॐ दधिक्राव्णोऽअकारिषञ्जिष्णोरश्वस्य व्वाजिनः ÷ । सुरभिनो मुखाकरत्प्रणऽआयू ᳪ षितारिषत् ॥२३-३२॥ ७ शुद्धकलशः - ॐ युञ्जानः प्रथमम्मनस्तत्त्वाय सविता धियः ÷ । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअद्ध्याभरत् ॥११-१॥ ८ सप्तपल घृतकुम्भः - ॐ घृतवती भुवनानामभि श्रियोर्व्वी पृत्थ्वी मधु दुघे सुपेशसा । द्यावा पृथिवी व्वरुणस्य धर्म्मणा व्विष्कभितेऽअजरे भूरिरेतसा ॥३४-४५॥ ८ शुद्धकलशः - ॐ देवस्यत्त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो र्व्बाहुब्भ्याम्पूष्णो हस्ताब्भ्याम् । सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येना भिषिञ्चामि ॥१८-३७॥ ९ त्रिपलमधुकलशः - ॐ मधुव्वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥१३-२७॥ ९ शुद्धकलशः - ॐ आपोऽअस्मान्मातरः ÷ शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः ÷ पुनन्तु । व्विश्वᳪ हि रिप्रम्प्रवहन्ति देवीरुदिदाब्भ्यः शुचिरापूतऽएमि । दीक्षातपसोस्तनूरसि तान्त्वा शिवा ᳪ शग्ग्मामपरिदधे भद्रं व्वर्णम्पुष्यन् ॥४-२॥ १० त्रिपलशर्कराकलशः - ॐ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोमधारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥२६-२५॥ १० शुद्धकलशः - ॐ आपो ह यद् बृहतीर्व्विश्वमायन्गर्भन्दधाना जनयन्तीरग्निम् । ततो देवाना ᳪ समवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥२७-२५॥

ततो देवस्य वस्त्रेण सम्मार्जनम् - ॐ यज्ञा यज्ञावोऽअग्नये गिरा गिरा च दक्षसे । प्रप्रवयममृतञ्जात वेदसम्प्रियम्मित्रन्नशᳪ सिषम् ॥२७-४२॥ (प्रत्युष्टᳪ रक्ष ÷ प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तᳪ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः । अनिशितोसि सपत्नक्षिद्वाजिनन्त्वा व्वाजेद्ध्यायै सम्मार्ज्मि ॥ प्रत्युष्टᳪ रक्ष ÷ प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तᳪ रक्षो निष्टप्ताऽअरातय ÷ । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वा

जिर्नीन्त्वा व्वाजेद्ध्यायै सम्मार्ज्मि ॥१-२९॥) ॥ सुगन्धितैलेनाभ्यञ्जनम् - ॐ त्र्यम्बकं० मृतात् ॥ यवशालिगोधूममसूरबिल्वचूर्णैरुद्वर्तनम् - ॐ द्रुपदादिव मुमुचान ॥ स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतम्पवित्रेणे वाज्ज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥२०-२०॥ यक्षकर्दमेनानुलेपनम्-(कस्तूरिकाया द्वौ भागौ द्वौ भागौ कुङ्कुम (केशर) स्य च । कर्पूरस्य त्रयो भागाः शशिनस्त्वेक एव हि ॥ शशी-शिलाजित्) ॐ यातें रुद्रशिवा तनूरघोरा पापकाशिनी । तया न स्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥१६-२॥ जटामांस्या अनुलेपनम्-ॐ याऽओषधी ॥ पूर्व्वा जाता देवेब्भ्यस्त्रियुगम्पुरा । मनैनु बब्भ्रूणामह ॥ शतन्धामानि सप्त च ॥१२-७५॥ ततो लौकिक कलशत्रयेण स्नपनम् - ॐ मानस्तोके तनये मानऽआयुषिमानो गोषुमानोऽअश्श्वेषु रीरिषः । मानो व्वीरान्नुद्रभामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥१६-१६॥ ॐ प्रतद्विष्णुस्तवते व्वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्यो रुषु त्रिषु व्विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि व्विश्वा ॥५-२०॥

ततः तृतीयपङ्क्तितः पृथक् पृथक् पञ्चामृतकलशैः, पर्यायेण चतुर्थपङ्क्तितश्च शुद्धोदककलशैः स्नपनम् - १ पयः कलशः - अस्य प्रत्नामनुद्युतं ॥ शुक्रन्दुदुहेऽअह्रय ॥ । पयः सहस्रसामृषिम् ॥३-१६॥ १ शुद्धकलशः - ॐ आप्यायस्व समेतु ते व्विश्वतः सोमव्वृष्ण्यम् । भवा व्वाजस्य सङ्गथे ॥१२-११२॥ २ दधिकलशः - ॐ पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपङ्कर्कन्धूनि । सोमस्य रूपं व्वाजिन ॥ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥१९-२३॥ २ शुद्धकलशः - ॐ सन्ते पयाᳬसि सम् यन्तु व्वाजाः ॥ सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः । आप्यायमानोऽअमृताय सोम दिविश्रवा ᳬसि उत्तमानि धिष्ष्व ॥१२-११३॥ ३ घृतकलशः - ॐ घृतेनाञ्जन्त्सम्पथोदेवयानान्प्रजानन्व्वाज्य्प्येतु देवान् । अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳬ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥२९-२॥ ३ शुद्धकलशः - ॐ आप्यास्व मदिन्तम सोम व्विश्वेभिरᳬ शुभिः । भवा न ॥ सप्रथस्तम ॥ सखा व्वृधे ॥१२-११४॥ ४ मधुकलशः - ॐ स्वाहा मरुद्भि ॥ परिश्रीयस्व दिवः ॥ स ᳬ स्पृशस्पाहि । मधु मधु मधु ॥३७-१३॥ ४ शुद्धकलशः - ॐ आ ते व्वत्सो मनो यमत्परमाच्चित् सधस्थात् । अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥१२-११५॥ ५ शर्कराकलशः - ॐ स्वादिष्ठया पवस्व सोमधारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥२६-२५॥ ५ शुद्धकलशः - ॐ तुभ्यन्ताऽअङ्गिरस्तम व्विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥१२-११६॥ (अथवा- १ पयः पृथिव्यां० १ वरुणस्योत्तम्भनमसि०, २ दधिक्राव्णो० २ सन्ते पयाᳬसि० ३ घृतम्मिमिक्षे० ३ आप्यायस्व मदिन्तम० ४ मधुव्वाता० ४ तत्त्वायामि० ५ अपाᳬरस० ५ अप्स्वग्ने सधिष्ट्व सौषधीरनुरुद्ध्यसे । गर्ब्भे सञ्जायसे पुनः ॥१२-३६॥ - एतैर्मन्त्रैः पञ्चामृतकलशैः शुद्धोदक कलशैश्च स्नपनं कार्यम् । अथवा गन्धद्वारां० इति एकेनैव मन्त्रेण पञ्चगन्धोदककलशैः स्नपयेत् ।)

ततः पञ्चमपङ्क्तिस्थैः पञ्चभिः कषाय कलशैः ॐ यज्ञायज्ञावो० सिषम्-इति मन्त्रावृत्त्या पृथक् पृथक् स्नपनम् (अथवा एभिः पञ्चमन्त्रैः - १ ॐ अश्वत्थेवो निषदनं पर्णे वो व्वसतिष्कृता । गोभाजऽइत्किलासथयत्सनवथ पूरुषम् ॥१२-७९॥ २ पर्णकषाय निष्पक्वा एता आपो भवन्ति, स्थेम्ने

न्वेव यत्रैव पर्णकषायेण सोमो वै पर्णश्चन्द्रमा उ वै सोम एतद्वा एकमग्निरूपमेतस्यैवाग्निरूपस्योपात्यै ॥ शत-कां ६ अ-५ क-१ ॥ ३ औदुम्बरं भवति तेन स्त्रोभिषिञ्चत्यन्नं वाऽऊर्गुदुम्बर ऊर्ग्वैस्वं यावद् वै पुरुषस्य स्वं भवति नैव तावदशनायति तेनोर्क् स्वं तस्मादौ दुम्बरेण स्वोभिषिञ्चति ॥ ४ नैय्यग्रोधपादं भवति, तेन राजन्योभिषिञ्चति पद्भिर्वैन्यग्रोध ऽ प्रतिष्ठितो मित्रेण वै राजन्यः प्रतिष्ठितस्तस्माचैय्यग्रोधपादेन मित्रो राजन्योऽभिषिञ्चति ॥ ५ आश्वत्थं भवति तेन वैश्योभिषिञ्चति सयदेवादोश्वत्थे तिष्ठतऽइन्द्रो मरुतऽउपामन्त्रयते तस्मादाश्वत्थेन वैश्योऽभिषिञ्चति ॥

ततो लौकिककलशेन ओषधीसुक्तेन - ॐ या ओषधीः पूर्वा० । द्वितीयेन शान्तिकलशेन लौकिकेन - ॐ द्यौः शान्ति० ॥ ततः षष्ठपङ्क्तिस्थैर्दशभिः कलशैः क्रमेण स्नपनम् - १ सितपुष्पोदकम् - ॐ ओषधीःप्रतिमोदद्ध्वम्पुष्पवतीःप्रसूवरीः । अश्वाऽइव सजित्वरीर्व्वीरुध ÷ पारयिष्ण्व ÷ ॥१२-७७॥ २ अष्टफलकलशः - ॐ या ऽ फलिनीर्य्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणी ऽ । बृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वह हसः ॥१२-८९॥ ३ सुवर्णजलकलशः - ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् । स दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मै देवाय हविषा व्विधेम् ॥१३-४॥ ४ गोशृङ्गोदककलशः - ॐ हविष्मतीरिमा आपोहविष्माँ २ ऽ आविवासति । हविष्मान् देवो अद्ध्वरो हविष्माँ २ ऽ अस्तु सूर्यः ॥६-२३॥ ५ धान्यकलशः - ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान्प्राणायत्त्वोदानायत्त्वा व्यानायत्त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषेधान्देवो वं ÷ सविता हिरण्य पाणिः प्रतिगृभ्णा त्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषेत्त्वा महीनाम्पयोऽसि ॥१-२०॥ व्रीहयश्चमे० कल्पन्ताम्) ६ सहस्रधार कलशः - ॐ सहस्रशीर्षा० । ७ सर्वौषधी कलशः - ॐ या ओषधी ऽ सोमराज्ञी र्विष्ठिता ऽ पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूताऽअस्यै सन्दत्त व्वीर्य्यम् ॥१२-९३॥ (या ओषधीः पूर्वा० सप्त च) ८ पञ्चपल्लवोदककलशः - ॐ उतस्मास्यद्रवत स्तुरण्यत ऽ पर्णन्नवेरनु वाति प्रगर्द्धि नं÷ । श्येनस्येव ध्रजतोऽअङ्कसम्परिदधिक्राव्णः सहोर्ज्जा तरित्रतः स्वाहा ॥९-१५॥ (नमः पर्णाय च पर्णशदाय च । नमोऽस्तु सर्पेभ्यो०) ९ दूर्वाकलशः - ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥१३-२०॥ १० नव (पञ्च) रत्नकलशः - ॐ परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्व्यान्न्य क्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥११-२५॥ (अभित्यं देव ह ०)

(ततो लौकिकेन तीर्थोदककलशेन - ॐ येतीर्त्थानि० । अथवा पञ्चमषष्ठ पङ्क्त्यन्तराले मयूखपरिगणित भिन्नैरष्टभिर्लौकिकैः कलशैः क्रमेण स्नपनम् - इमम्मे० २ तत्त्वायामि० ३ त्वन्नो अग्नेव्वरुणस्य० ४ सत्वन्नो अग्ने० ५ मापो मौषधीर्हि० ६ उदुत्तमं वरुण० ७ मुञ्चन्तुमा शपत्थ्या० ८ अवभृथ निचुम्पुण० ।)

(ततो वासुदेव्यक्ताष्टादशकलशनिधानं कृतं चेत्, तैः स्नपनम् - १ पाद्यम् - ॐ एतावानस्य० । २ अर्घः-त्रिपादूर्ध्व० । ३ आचमनीयम्-ततो व्विराड० ४ पञ्चगव्यम्-आयङ्गौः० । ५ दधि-

दधिक्राणो० । ६ यवपिष्टम् - यवोऽसियवया० । ७ मधु - अन्नात् परिस्रुतो० । ८ कषायः - यज्ञायज्ञावो० । ९ पुण्योदकम् - पावकानः० । १० मण्युदकम्-परिवाजपतिः- । ११ फलम्-याः फलिनी० । १२ सुवर्णम् - हिरण्यगर्भः० । १३ यवाक्षताः - धान्यमसि० । १४ व्रीहयः - व्रीहयश्च मे० । १५ घृतम्-घृतवती० । १६ मधु-मधुव्वाता० । १७ पञ्चामृतम्-ऊर्क् च मे० । १८ पुरुषसूक्तेन देवसूक्तेन वा इति वासुदेवयुक्तमष्टादशकलशस्नपनम्)

वेदीपरितः स्थापितसमुद्रसंज्ञकैरष्टभिः कलशैः पूर्वादिक्रमेण देवं स्नपयेत् - १ पूर्वे० क्षारोदकम् - ॐ कयानश्चित्रऽआभुव दूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया व्वृता ॥३६-४॥ २ आग्नेये-क्षीरोदकम्-ॐ आप्यायस्व समेतु ते व्विश्वतः सोमव्वृष्ण्यम् । भवा व्वाजस्य सङ्गथे ॥१२-११२॥ ३ दक्षिणे दध्युदकम्-ॐ दधिक्राव्ण्णोऽअकारिषञ्जिष्ष्णोरश्वस्य व्वाजिनः । सुरभिनो मुखाकरत्प्रणऽआयूᳪषि तारिषत् ॥२३-३२॥ ४ नैर्ऋत्ये-घृतोदकम्-ॐ घृतवती भुवनानामभि श्रियोर्व्वी पृत्थ्वी मधुदुघे सुपेशसा । द्यावा पृथिवी व्वरुणस्य धर्म्मणा व्विष्कभितेऽअजरे भूरिरेतसा ॥३४-४५॥ ५ पश्चिमे इक्षुरसोदकम्-ॐ पयः पृथिव्व्यां पयऽओषधीषु पयो दिव्व्यन्तरिक्षे पयोधाः । पयस्वतीः प्प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥१८-३६॥ ६ वायव्ये सुरोदकम् (गुडमिश्रं पयः) ॐ सिञ्चन्ति परिषिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च । सुरायै बभ्व्रे मदे किन्त्वो व्वदति किन्त्वः ॥२०-२८॥ (देवम्बर्हिर्व्वारितीनामध्वरे स्तीर्ण्णमश्विभ्यामूर्ण्णम्म्रदाः सरस्वत्त्या स्योनमिन्द्रते सदः । ईशायै मन्न्यु ᳪ राजानम्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं व्वसुवने व्वसुधेयस्य व्व्यन्तु यज ॥२१-५७॥ ७ उत्तरे स्वादूदकम्-ॐ स्वाद्वीन्त्वा स्वादुना तीव्रान्तीव्व्रेणामृताममृतेन । मधुमतीम्मधुमता सृजामि स ᳪ सोमेन । सोमोस्यश्विब्भ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥१९-१॥ ८ ईशान्यां गर्भोदकम् (नारिकेलोदकम्) - ॐ सरस्वती योन्न्याङ्गर्ब्भमन्तरश्विब्भ्यां पत्नी सुकृतम्बिभर्त्ति । अपाᳪरसेन व्वरुणो न साम्नेन्द्र ᳪ श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥१९-९४॥

ततोऽन्तिमपङ्क्तिस्थैर्लोकपालसंज्ञकैर्दशकलशैः स्नपयेत् - १ कदम्ब० ॐ त्रातारमिन्द्र० । २ शाल्मलि० ॐ त्वन्नो अग्ने तव० । ३ जम्बू० ॐ यमायत्त्वाङ्गिर० । ४ अशोक० ॐ असुन्वन्तमयज० । ५ प्लक्ष० ॐ तत्त्वायामि० । ६ आम्र० ॐ आनो नियुद्भिः० । ७ वट० ॐ वय ᳪ सोम० । ८ बिल्व० ॐ तमीशानं० । ९ पलाश० ॐ ब्रह्मजज्ञानं० । (अस्मे रुद्रा०) १० नागचम्पक० ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० (स्योना पृथिवि०) (ऋग्वेदिनां-९ नमोस्तु सर्पेभ्यो० १० ब्रह्मजज्ञानं० इति क्रमः)

ततः सुमङ्गलघोषैः सुवासिनीभिः चतुर्भिर्लौकिकैरेकेन वा लौकिकेन कलशेन देवं स्नपयेत् - ॐ द्यौः शान्तिः० यतो यतः० पालाशं भवति० औदुम्बरं भवति० नैय्यग्रोधपादं० आश्वत्थं भवति० यद्देवकल्पाशु० सर्वेषां वाऽएष० ॥ एवं देवं संस्नाप्य सम्मार्ज्य संशोध्य पूजनं कुर्यात् ॥ (मयूखोक्ताः कलशाः - ९० वासुदेवयुक्ताः - १८ लौकिकाः -१६ ॥)

ततः सुगन्धिना सितवस्त्रेण देवं परिमृज्य संकलीकरणम्-प्रतिमाङ्गानि स्पृष्ट्वा - १ हृदयाय नमः २ शिरसे स्वाहा ३ शिखायै वषट् ४ कवचाय हुम ५ नेत्रत्रयाय वौषट् ६ अस्त्राय फट् ॐ विश्वतश्चक्षु० इति मन्त्रेण दक्षिणहस्ततर्जनीं प्रतिमापरितो भ्रामयेत्-इति संकलीकरणम् । ततः पूजनम् ।

आवाहनम्-एह्येहि भगवन् देव लोकानुग्रहकाम्यया । यज्ञभागं गृहाणेमं देवदेव नमोऽस्तुते । ('विरोधेऽर्थस्तत्परत्वात्' इतिन्यायेन पद्धत्युक्तपूजनव्युत्क्रमं परिवर्त्य क्रमेण पूजनम्) । आसनम्-ॐ पुरुष एवेद ६ ० । पाद्यम्-ॐ हिरण्यवर्णा० । अर्घः - ॐ ततो व्विराड् । आचमनीयम् - ॐ विभ्राड्० । स्नानम् - ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः० । वस्त्रम् - ॐ अभिधा असि० (युवासु वासाः०) । यज्ञोपवीतम् - ॐ वेदाहमेतं० । गन्धः - ॐ त्र्यम्बकं० । पुष्पमाला - ॐ इदं विष्णु० । धूपः - ॐ धूरसि० । दीपः - ॐ चन्द्रमा मनसो० । नैवेद्यम् - ॐ अन्नपते० । आचमनम् । ताम्बूलपूगीफलदक्षिणाः - ॐ यत्पुरुषेण० ॐ याः फलिनीर्य्या० ॐ हिरण्यगर्भः० । प्रदक्षिणा - ॐ सप्तास्या० । मन्त्रपुष्पाञ्जलिः० यज्ञेन यज्ञ० । प्रार्थना - ॐ अद्भ्यः सम्भृतः० इषाण - ६॥ स्नानवस्त्रं नैवेद्याद शिल्पिने दद्यात् ।

ततः सामिधेनीकल्पेन देवं स्तुवीत-ॐ हिं ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः - ॐ सगस्त्रशीर्षा० हुलोम् २ पुरुष० तोम् । ३ एतावानस्य० दिवोम् । ४ त्रिपादूर्ध्व० अभोम् । ५ ततो व्विराड० पुरोम् । ६ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः० ग्राम्याश्चयोम्-७ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः० दजायतोम् । ८ तस्मादश्वा० जावयोम् । ९ तं यज्ञं० ऋषयश्च योम् । १० यत्पुरुषं० उच्येतोम् । ११ ब्राह्मणोऽस्य० शरद्धवोम् । १५ सप्तास्या० पशोम् । १६ यज्ञेन० देवोम् १७ यज्ञेन० देवोम्० १८ यज्ञेन० देवोम्-इत्यन्तिमामृचं मन्द्रमध्यतारस्वरैर्ब्रूयात् ॥

जलमादाय - स्नपनकर्मसाङ्गतासिद्ध्यर्थं ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दास्ये । प्रतिमासु अर्चाशुद्धिपूर्वकं देवदिव्यकलातेजोऽभिवृद्धये कृतेन स्नपनकर्मणा सपरिवारः स्थाप्यदेवः प्रीयताम् ॥ (स्नपनविधावन्येऽपि भेदा ग्रहीतुं शक्यन्ते ।)

॥ इति स्नपनविधिः ॥

५२ मण्डपे शय्यारचनम् ।

ततः सर्वतोभद्रकुण्डयोरन्तराले मध्यवेद्यां प्रतिमानां गुरुत्वादन्यत्र वा पर्यङ्के वा पट्टके तूलिकामुपधानमास्तरणमच्छादनयुतां शय्यां विरचय्य तत्र धान्य-फल-पुष्प-औषधी स्नानाङ्गानि निधाय शय्यायां व्रीहीन् गोधूमाँस्तण्डुलान् वा प्रक्षिप्य ॐ रथे तिष्ठन्० इति देवप्रतिमा आदाय शाकुन्तसूक्तं भद्रसूक्तं वा पठन् मण्डपप्रादक्षिण्येन पश्चिमद्वारि आनीय-सम्पूज्य ॐ धामन्ते विश्वं, इत्यर्घं दत्त्वा शय्यायां प्राक्शिरस्कां दक्षिण शिरस्कां वा प्रतिमां शनैः शाययेत् । ॐ आप्यायस्व० इति

मधुसर्पिर्भ्यामभ्यज्य ॐ याते रुद्र शिवातनू० तैलसर्षपकल्कैरुद्वर्त्य गन्धादिना सम्पूज्य तत्र-छत्रं-ॐ बृहस्पतेच्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो मान्तर्धेहि । वितानं-ॐ मर्माणि ते० । व्यजनम्- आनो नियुद्भिः० । चामरम्-वायो येते० । आदर्शः-ॐ रोचिष्णुरसि । ॐ त्रीणि पदा० इति शान्तिकुम्भी । पादुके-ॐ प्रतिष्ठेस्थो विश्वतो मा पातम् । शिरः प्रदेशे सजलं निद्राकलशं-अन्यश्च भक्ष्यभोज्यादि खाद्यपूरितं कलशं० आजिघ्र० इति स्थापयेत् । अग्रतः सुवर्चसं दीपं दूरे स्थापयेत् । देवमाच्छादनतूलिकयाऽच्छाद्य परितो भस्मदर्भतिलैः प्राकारत्रयं कुर्यात् ।

९३ तत्त्वन्यास होमः ।

कुण्डसमीप उपविश्य-जलमादाय-आसु प्रतिमासु सूर्याचन्द्रमसौ यावत् तत्त्वानामाप्यायनार्थं तत्त्वन्यासहोमं करिष्ये-इति संकल्प्य प्रतितत्त्वं ॐ अकाराय स्वाहा-इत्यादि साधारणैर्विशिष्टैश्च तत्त्वैः तत्तन्नाम्ना घृतेन तिलैर्वा जुहुयात् । एतावदसम्भवे-प्रधानदेवतामुद्दिश्य (ॐ पराय विष्ण्वात्मने स्वाहा, ॐ पराय शिवात्मने स्वाहा, ॐ पराय शक्त्यात्मने स्वाहा, ॐ पराय सूर्यात्मने स्वाहा, ॐ पराय गणेशात्मने स्वाहा, ॐ पराय हनुमदात्मने स्वाहा, ॐ पराय रामात्मने स्वाहा-इत्यादिदेवताविशेषोहं कृत्वा १०८ अष्टोत्तरशताहुतीर्जुहुयात्-अनेन तत्त्वानामाप्यायनार्थं कृतेन तत्त्वन्यासहोमकर्मणा तत्त्वन्यासकर्मणि अधिकारसिद्धिरस्तु । ततो यजमानमन्यं वा देवसमीपे उपावेश्य-तत्त्वन्यास शय्याधिवासनिद्रावाहनान्तं कर्म सम्पादयेत् ।

९४ मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालावाहनम् ।

कुण्डस्यैशान्यां सजलं शान्तिकलशं निधाय तदुत्तरे सजले सपूर्णपात्रपूगीफले कलशे मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालानावाहयेत् । १ ॐ पृथिवीमूर्त्तये नमः पृथिवीमूर्त्तिम् आवाहयामि स्थापयामि । २ पृथिवीमूर्त्यधिपतये शर्वाय० शर्वम्० । ३ इन्द्राय० इन्द्रम्० । ४ अग्निमूर्त्तये० अग्निमूर्त्तिम्० । ५ अग्निमूर्त्यधिपतये पशुपतये० पशुपतिम्० । ६ अग्नये० अग्निम्० । ७ यजमानमूर्त्तये० यजमानमूर्त्तिम्० । ८ यजमानमूर्त्यधिपतये उग्राय० उग्रं० । ९ यमाय० यमम्० । १० सूर्यमूर्त्तये० सूर्यमूर्त्तिम्० । ११ सूर्यमूर्त्यधिपतये रुद्राय० रुद्रं । १२ निर्ऋतये० निर्ऋतिम्० । १३ जलमूर्त्तये० जलमूर्त्तिम्० । १४ जलमूर्त्यधिपतये भवाय भवम्० । १५ वरुणाय० वरुणम्० । १६ वायुमूर्त्तये० वायुमूर्त्तिम्० । १७ वायुमूर्त्यधिपतये ईशानाय० ईशानम्० । १८ वायवे० वायुम्० । १९ सोममूर्त्तये० सोममूर्त्तिम्० । २० सोममूर्त्यधिपतये महादेवाय० महादेवं० । २१ सोमाय० सोमम्० । २२ आकाशमूर्त्तये० आकाशमूर्त्तिम्० । २३ आकाशमूर्त्यधिपतये भीमाय० भीमम्० । २४ ईशानाय० ईशानं० ॐ मनोजूति० मूर्त्तिमूर्त्तिपति लोकपालाः सुप्रतिष्ठिता) वरदाः भवत । ॐ मूर्त्तिमूर्त्यधिपतिलोकपालेभ्यो नमः - इति पञ्चोपचारैः पूजनम् । अनेन पूजनेन मूर्त्तिमूर्त्तिपति लोकपालाः प्रीयन्ताम् ।

५५ पञ्चकुण्डीपक्षे नवकुण्डीपक्षे च मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालावाहनव्यवस्था ।

पञ्चकुण्डीपक्षे नवकुण्डीपक्षे चाचार्यकुण्डैशान्यां मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालानामावाहनं न भवति । तत्र पञ्चकुण्डीपक्षे पूर्वकुण्डैशान्यां (शुद्धवायव्याम्-१ पृथिवीमूर्त्तये० २ पृथ्वीमूर्त्यधिपतये शर्वाय० ३ इन्द्राय० ४ अग्निमूर्त्तये० ५ अग्निमूर्त्यधिपतये पशुपतये० ६ अग्नये० इति षण्णां कलशे आवाहनम् । दक्षिणकुण्डैशान्यां (शुद्धवायव्यां) कलशे - १ यजमानमूर्त्तये० २ यजमानमूर्त्यधिपतये उग्राय० ३ यमाय० ४ सूर्यमूर्त्तये० ५ सूर्यमूर्त्यधिपतये रुद्राय० ६ निर्ऋतये० इति षण्णामावाहनम् । पश्चिमकुण्डैशान्यां कलशे-१ जलमूर्त्तये० २ जलमूर्त्यधिपतये भवाय० ३ वरुणाय० ४ वायुमूर्त्तये० ५ वायुमूर्त्यधिपतये ईशानाय० ६ वायवे० इति षण्णामावाहनम् । उत्तरकुण्डैशान्यां कलशे - १ सोममूर्त्तये० २ सोममूर्त्यधिपतये महादेवाय० ३ सोमाय० ४ आकाशमूर्त्तये० ५ आकाशमूर्त्यधिपतये भीमाय० ६ ईशानाय० इति षण्णामावाहनम् ।

नवकुण्डीपक्ष आचार्यकुण्डं विहाय पूर्वादिक्रमेण कलशे - एकैकमूर्त्तिमूर्त्यधिपति लोकपालानामावाहनम् । १ पूर्वकुण्डैशान्यां १ पृथिवीमूर्त्तये० २ पृथिवीमूर्त्यधिपतये शर्वाय० ३ इन्द्राय० । आग्नेयकुण्डैशान्यां - १ अग्निमूर्त्तये० २ अग्निमूर्त्यधिपतये पशुपतये० ३ अग्नये० । दक्षिणकुण्डैशान्यां- १ यजमानमूर्त्तये० २ यजमानमूर्त्यधिपतये उग्राय० ३ यमाय० । नैर्ऋत्यकुण्डैशान्यां - १ सूर्यमूर्त्तये० २ सूर्यमूर्त्यधिपतये रुद्राय० ३ निर्ऋतये० । पश्चिमकुण्डैशान्यां - १ जलमूर्त्तये० २ जलमूर्त्यधिपतये भवाय० ३ वरुणाय० । वायव्यकुण्डैशान्यां - १ वायुमूर्त्तये० २ वायुमूर्त्यधिपतये ईशानाय० ३ वायवे० । उत्तरकुण्डैशान्यां - १ सोममूर्त्तये० २ सोममूर्त्यधिपतये महादेवाय० ३ सोमाय० । ईशानकुण्डैशान्यां - १ आकाशमूर्त्तये० २ आकाशमूर्त्यधिपतये भीमाय० ईशानाय० एवं आवाह्य पूजयेत् । उभयपक्षयोः शान्तिकलश आवश्यकः ।

(शैवे पञ्चमूर्त्तिपक्षे वैष्णवे पञ्चमूर्त्तिपक्षे मूर्त्तयो मूर्त्यधिपतयश्च देवताप्रकरणे निरूपिताः । एवं विष्णु-गणेश-देवी-सूर्याणामष्टमूर्त्तयो मूर्त्यधिपतयस्तत्तन्मन्त्रा अपि मन्त्रप्रकरणे निगदिताः । एवं ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-अथर्ववेदानां पृथक् पृथक् मूर्तिमूर्त्यधिपतिलोकपालमन्त्राः शान्तिकपौष्टिकहोममन्त्रा विभिन्नदेवतापरिवारादीनां ऋग्वेदकृष्णयजुर्वेदशुक्लयजुर्वेदसामवेदाथर्ववेदतन्त्रागमपुराणाद्युक्ता विभिन्ना मन्त्रा मन्त्रप्रकरणतोऽनुसन्धेयाः)

५६ द्वारपालजाप्यसूक्तानि ।

द्वारपालजाप्यसूक्तानि-पूर्वद्वार ऋग्वेदिनौ-होमे प्रवर्तमाने यावद्धोमं सकृत्पुनः पुनर्वा जपं कुर्याताम् । ऋग्वेदिनौ - १ श्रीसूक्तम् २ पावमानम् ३ सोमसूक्तम् ४ शाकुन्तसूक्तम् ५ शान्तिसूक्तानि ६ इन्द्रसूक्तम् ७ राक्षोघ्नम् । दक्षिणे कृष्णयजुर्वेदिनौ - १ रुद्रसूक्तम् २ पुरुषसूक्तम् ३ श्लोकाध्यायः

(देवसवितः प्रसुव० ४ ब्रह्मविद् भृगुः० । ५ शुक्रियं-युञ्जते० मण्डलाध्यायः - ६ आदित्यो वा यपयन्० । शुक्लयजु० १ नमस्ते० २ सहस्रशीर्षा० ३ देवसवितः प्रसुव० ४ ऋचं वाचं० । ५ मण्डल ब्राह्मणम् - यदेतन्मण्डलम्० । पश्चिमे सामवेदिनौ - १ वामदेव्यम् २ बृहत् ३ ज्येष्ठ ४ रथन्तर ५ पुरुषसूक्त ६ रुद्रसूक्त ७ आज्यदोह ८ शान्त्यध्याय ९ भारुण्डसामानि । उत्तरे अथर्ववेदिनौ-१ अथर्वाङ्गिरस २ नीलसूक्त ३ रुद्रसूक्त ४ अपराजित ५ देवीसूक्त ६ मधुसूक्त ७ रोधस ८ शान्तिसूक्तानि ॥

५७ होमप्रकरणम् ।

संस्कारयोग्यमाज्यचर्वादिकं हविरग्नावधिश्रित्य स्रुक्स्रुवौ प्रतप्य संमार्जनकुशैः संमार्ज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य स्वदक्षिणदेशे स्थापयेत् । आज्यादिकमुद्वास्य पवित्राभ्यामुत्पूय अवेक्ष्य अपद्रव्यं निरस्य अन्यानि हवींषि प्रोक्ष्य होममारभेत ।

५८ शान्तिकपौष्टिकहोमः ।

तत आचार्यः पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमिधां प्रत्येकं षोडशाधिकशतद्वयं कुण्डसमीपे दधिमधुघृतप्लुतं निधाय - ॐ हिरण्यगर्भः० विधेम-इत्यभिमन्त्र्य शान्तिकैः पौष्टिकैश्च मन्त्रैर्यथाविभागं सऋत्विग् जुहुयात् । एवं पलाशादिकाः समिधः २१६ x ५ = १०८० अशीत्युत्तर सहस्रसंख्याका भवन्ति । शान्तिकपौष्टिकमन्त्रानुद्दिश्य अनेकेषां मन्त्राणां निर्देशो विभागः स्वीकारश्च शास्त्रार्थप्रकरणे बहुधा विचारितः स ततोऽनुसन्धेयः । समिधां सर्वथाऽलाभे यवैस्तदभावे तिलैर्वा होमः कार्यः ।

विभागश्चेत्थम्-अष्टादश ब्राह्मणानुपवेश्य त्रिंशद्वारं ३० शान्तिकमन्त्रैः त्रिंशद्वारं ३० पौष्टिकमन्त्रैश्च होमो मन्त्रसमुदायान्ते । द्वादश ब्राह्मणोपवेशने ४५ वारं शान्तिकैः ४५ वारं पौष्टिकैश्च होमः । नव ब्राह्मणोपवेशने ६० वारं शान्तिकैः ६० वारं पौष्टिकैश्च होमः । एवं १०८० आहुतयो भवन्ति । अन्यदेवेषु देवतामन्त्रप्रकरणे सम्पूर्णा मन्त्रास्तत्र द्रष्टव्याः ।

शान्तिकमन्त्राः ।

१ ॐ शन्नो व्वातः पवताᳪ शन्नस्तपतु सूर्य्यः । शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्ज्जन्यो अभिवर्षतु ॥३६-१०॥ २ अहानिशम्भवन्तु नः शᳪ रात्रीः प्रतिधीयताम् । शन्नऽइन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्नइन्द्रावरुणा रातहव्या । शन्नऽइन्द्रा पूषणा व्वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंय्योः ॥३६-११॥ ३ शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥३६-१२॥ ४ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳪ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । व्वनस्पतयः शान्तिर्व्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्ब्रह्म शान्तिः सर्व्वᳪ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि-स्वाहा ॥३६-१७॥

पौष्टिकमन्त्राः ।

१ अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः । अग्ने पुरीष्याभिद्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥३-४०॥ २ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिंपुष्टिवर्द्धनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीयमामृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिंपतिवेदनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धना दितो मुक्षीय मामुतः ॥३-६०॥ ३ शिवो नामासि स्वधितिस्ते पितानमस्तेऽअस्तु मा मा हि ह सी । निवर्त्तयाम्यायुषेन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय - स्वाहा ॥३-६३॥

(मयूखे-१ शन्नो वातः० २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नो देवी० शान्तिकाः । पद्मनाभे-१ शन्नो वातः० २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नो देवी० ४ द्यौः शान्तिरिति शान्तिकाः । त्रिविक्रमे १ शन्नो वातः० २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नो देवी० ४ द्यौ शान्तिः० ४ शान्तिकाः । प्रतिष्ठासङ्ग्रहे १ शन्नो वातः० २ शन्न इन्द्राग्नी० ३ शन्नो देवी० ३ शान्तिकाः । मयूखे पौष्टिकाः-१ अयमग्निः० २ गयस्फानो० ३ त्र्यम्बकं०-३ ॥ पद्मनाभे-१ अयमग्निः० २ गयस्फानोः अमीवहा० ३ इहपुष्टिं० ४ त्र्यम्बकं ४ मन्त्राः पौष्टिकाः । त्रिविक्रमे-१ अयमग्निः० २ गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टि वर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥ ऋ० १-९२-१२ ॥ ३ इह पुष्टिं० ४ पुष्टि र्नरण्वान्० ५ त्र्यम्बकं० ५ पौष्टिकाः - सङ्ग्रहे १ पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी । गिरिर्न भुज्म क्षोदो नः शंभु ॥ऋ० १-६५-५॥ २ गयस्फानो० ३ गयस्फानः प्रतरणः० ४ शिवो नामासि० ५ त्र्यम्बकं० मामुतः - ५ पौष्टिकाः । एतद्विचारो देवतामन्त्रप्रकरणे कृतः)

५९ मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालहोमः ।

ततो मूर्तिपा ऋत्विज एककुण्डे पलाशसमिद्भिराज्येन तिलैर्वा प्रत्येकं १०८ वा २८ संख्यया जुहुयात् । पञ्चकुण्ड्यामाचार्यकुण्डं विहाय पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरकुण्डेषु मूर्त्तिमूर्त्तिपति लोकपालानां द्वयं द्वयं जुहुयात् । नवकुण्ड्यामाचार्यकुण्डं विहाय पूर्वाद्यष्टकुण्डेष्वेकैकान् मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालानुद्दिश्य जुहुयात् ।

एककुण्डेऽष्टोत्तरशतपक्षेऽष्टादशब्राह्मणाः षड्वारं द्वादशब्राह्मणा नववारं, नवब्राह्मणा द्वादशवारं प्रत्येकांमूर्तिम्, मूर्त्तिपतिं, लोकपालञ्चोद्दिश्य जुहुयात् ।

१ पृथिवीमूर्त्तिः - ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छानः शर्म्म सप्रथाः स्वाहा ।

२ शर्वः - ॐ नम ÷ शर्व्वाय च पशुपतये च स्वाहा । (अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः स्वाहा) ।

३ इन्द्रः - ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र ह हवे हवे सुहव ह शूरमिन्द्रम् । ह्वयामिशक्रम्पुरुहूतमिन्द्र ५ स्वस्तिनो मघवा धात्विन्द्र ÷ स्वाहा ।

४ अग्निमूर्त्तिः - ॐ अग्निन्दूतम्पुरो दधे हव्यवाहमुपब्ब्रुवे । देवाँ २ आसादयादिह-स्वाहा ॥

५ पशुपतिः - ॐ तेजः पशूनाᳪ हविरिन्द्रियावत्परिस्रुता पयसा सारघम्मधु । अश्विभ्यान्दुग्धम्भिषजा सरस्वत्या सुतासुताब्भ्याममृतः सोमऽइन्दुः-स्वाहा ।

६ अग्निः - ॐ अयन्ते योनिर्ऋत्वियोयतो जातोऽअरोचथाः । तञ्जानन्नग्नऽआरोहाथानो व्वर्द्धया रयिम्-स्वाहा । (अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि-स्वाहा) साम० ।

७ यजमानमूर्त्तिः - ॐ सुवीरो व्वीरान्प्रजनयन्परी ह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्व्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि-स्वाहा ।

८ उग्रः - ॐ उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ।

९ यमः - ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा धर्म्माय स्वाहा धर्म्मः पित्रे - स्वाहा ।

१० सूर्यमूर्त्तिः - ॐ उदुत्त्यञ्जातवेदसन्देवं व्वहन्ति केतवः । दृशे व्विश्श्वाय सूर्य्यम्-स्वाहा ।

११ रुद्रः - ॐ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः । यथा शमसद्द्विपदे चतुष्प्पदे व्विश्श्वम्पुष्टङ्ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम् - स्वाहा ।

१२ निर्ऋतिः - ॐ असुन्न्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्त्यामन्न्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा तऽइत्त्या नमो देवि निर्ऋतेतुब्भ्यमस्तु - स्वाहा ।

१३ जलमूर्त्तिः - ॐ आपो हिष्ठा मयो भुवस्तानऽऊर्ज्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे-स्वाहा ।

१४ भवः - ॐ नमो भवाय च रुद्राय च-स्वाहा । नमो बब्भ्लुशाय व्याधिनेन्नानाम्पतये नमो नमो भवस्य हेत्त्यै जगताम्पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणाम्पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै व्वनानाम्पतये नमः - स्वाहा ।

१५ वरुणः - ॐ इमम्मे व्वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके स्वाहा ।

१६ वायुमूर्त्तिः - ॐ तव व्वायवृतस्पते त्वष्टुर्ज्जामातरद्भुत । अवाᳪस्या वृणीमहे-स्वाहा ।

१७ ईशानः - ॐ तमीशानञ्जगतस्तस्त्थुषस्पतिन्धियञ्जिन्न्वमवसे हूमहे व्वयम् । पूषा नो यथा व्वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये - स्वाहा ।

१८ वायुः - ॐ आनो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वर सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्। व्वायोऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा ॥

१९ सोममूर्त्तिः - ॐ व्वयꣳसोम व्रते तव मनस्तनूषु बिब्भ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि स्वाहा।

२० महादेवः - उग्रं लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रन्दौर्व्रत्येनेन्द्रम्प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साद्ध्यान्प्रमुदा। भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य व्वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् स्वाहा।

२१ सोमः कुबेरः - ॐ अभित्यन्देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्क्रतु मर्च्चामि सत्य सवꣳ रत्नधामभिप्प्रियम्मतिङ्कविम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भाऽअदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपास्वः। प्रजाब्भ्यस्त्वा प्प्रजास्त्वानुप्प्राणन्तु प्प्रजास्त्वमनुप्प्राणिहि - स्वाहा।

२२ आकाशमूर्त्तिः - ॐ आदित्यङ्गर्भम्पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां व्विश्वरूपम्। परिवृङ्ग्धि हरसा माभिमꣳस्थाः शतायुषङ्कृणुहि चीयमानः - स्वाहा।

२३ भीम - ॐ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावतऽआ जगन्था परस्याः। सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्रतिग्मं व्विशत्रून्ताढि व्विमृधोनुदस्व-स्वाहा।

२४ ईशान - ॐ अभित्त्वा शूरनोनुमो दुग्धाऽइव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्द्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः - स्वाहा। (अभित्वादेव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे - स्वाहा-ऋग्वेदस्य)

(एवं ऋग्वेदादीनां मूर्त्तिमूर्त्यधिपति लोकपालानां तत्तद्वेदनिगदिता, मन्त्राः गणेश-देवी-सूर्य-विष्णूनां भिन्ना मूर्त्यधिपतयः तेषां मन्त्राश्च, शैवे वैष्णवे च पञ्चमूर्त्ति पञ्चमूर्त्यधिपति स्वीकारे तत्तमन्त्राः, प्राङ्निर्दिष्टे देवतामन्त्र प्रकरणे, अन्य देवतामन्त्राश्च पुनः, सर्वे तत्र द्रष्टव्याः) इति मूर्त्तिमूर्त्यधिपति लोकपाल होमः।)

६० स्थाप्यदेवता होमः।

स्थाप्यदेवतालिङ्गकेन मन्त्रेण घृतेन तिलैर्वा अष्टोत्तर सहस्राष्टोत्तर शतान्यतर संख्यया प्रतिदेवतं जुहुयात्। स्थाप्यदेवतालिङ्गका ऋग्वेद-कृष्णयजुर्वेद शुक्लयजुर्वेद सामवेदाथर्व वेदतन्त्रागम पुराण गायत्री नाममन्त्राः पूर्वप्रकरणे निर्दिष्टाः प्राधान्येन। अन्य देवतानां मन्त्राः स्वयमूहनीयाः। तत्र केवलदेवे पिण्डिकायाः पत्नीरूपत्वात्पत्नीमन्त्रेण पिण्डिका होमः। केवलदेव्याः प्राधान्ये पिण्डिकाया देवीरूपान्तरं

मत्त्वा तन्मन्त्रेण होमः । ताम्रमयकाष्ठमयान्यतरध्वजदण्डे स्थाप्ये ॐ केतुं कृण्वन्० इति मन्त्रेण, शिखरस्थापने ॐ आजिघ्र कलशं० इति मन्त्रेण वाहनस्थापने च वाहनमन्त्रेण होमः कार्यः । यद्यपि पद्धतिषु द्वादशसहस्र षट्सहस्र त्रिसहस्र-अष्टोत्तर सहस्राष्टोत्तरशतरूपाः संख्या उक्ताः । किन्तु तादृशविद्वद्ब्राह्मणालाभे १००८ वा १०८ संख्याग्रहणमुचितम् । वर्तमानयुगे तथैव याज्ञिक सम्प्रदायः । देवताहोमे सपरिवार शिवदेवतामन्त्राः - १ गणानान्त्वा० गणपतेः, २ अम्बे अम्बिके० गौर्याः, नमः शम्भवाय च० शिवस्य, गौरीर्मिमाय० (आयङ्गौः०) पिण्डिकायाः अस्मे रुद्रा० हनुमतः, आशुः शिशानो० नन्दीश्वरस्य, यस्य कुर्मो० कूर्मस्य, केतुङ्कृण्वन्० ध्वजस्य, आजिघ्र कलशं० शिखरस्य-एते मन्त्रा ग्राह्याः ।

द्वादश ब्राह्मणोपवेशने प्रतिमन्त्रं नववारं, नवसत्त्वे द्वादशवारं, अष्टादशसत्त्वे षड्वारं प्रतिदैवतं होमः, एवम् १०८ संख्या प्रतिदेवं सम्पादनीया ।

६१ पञ्चकुण्डी नवकुण्डी पक्षयोर्होम विशेषः ।

प्रधानदेव मन्त्रेण पूर्वकुण्डे घृतेनाष्टवारम्, दक्षिण कुण्डे दध्नाऽष्टवारम्, पश्चिम कुण्डे क्षीरेणाष्टवारम्, उत्तर कुण्डे मधुनाऽष्टवारम्, आचार्यकुण्डे मीलितघृतदधि क्षीरमधुभिरष्टवारं होमं कुर्यात् । नवकुण्ड्यां पूर्वकुण्डे देवमन्त्रेण आज्य मष्टवारम् आग्नेय कुण्डे 'वौषट्' इत्याज्यमष्टवारम्, दक्षिणकुण्डे देवमन्त्रेण दधि अष्टवारम् । नैर्ऋत्य कुण्डे-तत्सवितुः० इति दध्यष्टवारम्, पश्चिमकुण्डे देवमन्त्रेण क्षीरमष्टवारम्, वायव्यकुण्डे-जातवेदसे० इति क्षीरमष्टवारम्, उत्तरकुण्डे देवमन्त्रेण मधु अष्टवारम्, ऐशानकुण्डे-ब्रह्मजज्ञानं० इति मधु अष्टवारम्, आचार्यकुण्डे 'मूर्धानन्दिवो०' इति मन्त्रेण मीलित घृत दधि क्षीरमधुभिरष्टवारं जुहुयादिति विशेषः । एककुण्डेऽयं होमो न कार्यः ।

६२ व्याहृतिहोमः ।

१ तिल २ यव ३ व्रीहि ४ चरु ५ आज्य - इति पञ्चद्रव्यैः प्रतिद्रव्यं अथवा केवलेन आज्येन तिलैर्वा अष्टोत्तर सहस्राष्टोत्तर शतान्यतर संख्यया समस्त महाव्याहृतिभिः ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा-इति मन्त्रेण दशब्राह्मणान् उपवेश्याष्टोत्तरसहस्र मेकया मालया जुहुयात् । ततो हुतशेषमादाय ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा-इति जुहुयात् ।

ततो-ॐ मूर्धानन्दिवो० देवाः स्वाहा-इति सपूगीफलेनाज्येन होमाङ्गां पूर्णाहुतिं जुहुयात् । होमे प्रतिपर्यायं प्रधानदेवस्य पादनाभिहृदय शिरांसि स्पृशेत् । देवस्य दक्षिण कर्णे 'कृतममुं होमं देवाय निवेदयामि' इति निवेदयेत् । यावन्ति दिनानि अधिवासने स्युः, तत्र प्रतिदिनं १ शान्तिकपौष्टिक होम, २ मूर्त्तिमूर्त्यधिपतिलोकपालहोम ३ स्थाप्यदेवता होम ४ व्याहृति होम ५ तत्त्वन्यास होम ६ तत्त्वन्यासाः प्रतिदिनं कार्या इति बोध्यम् । इति होमप्रकरणं द्वितीयदिनसाध्यं समाप्तम् ।

६३ प्रासादस्नपनम् अधिवासनञ्च ।

(प्रासादस्नपने मध्यकलशेषु द्रव्यनिक्षेपो दिक्क्रमेण, मध्यकलशैः स्नपनं दिग्व्यत्यासेन अवशिष्टाष्टकलशैश्च स्नपनं दिक्क्रमेण-इत्यस्मिन् विषये शास्त्रार्थप्रकरणे बहुधा विचारितं खण्डितञ्च । प्रासादस्नपनप्रयोगश्चायं दिक्क्रमं पुरस्कृत्यैव योजितः । शान्तिकपौष्टिकादि होमावसर एवान्यैर्ब्राह्मणैः प्रासादस्नपनाधिवासने समयमालोच्य सम्पादनीये ।)

प्रासादस्नपन प्रयोगः ।

प्रासादाग्रे सभामण्डपे बहिर्वाऽक्षतै रेकाशीति ८१ भिन्नभिन्न नवकैः कृत्वा सप्तधान्यपुञ्जान् व्रीहिपुञ्जान् वा विधाय नवनवकलशानां नव कोष्ठानि सम्पाद्य यजमानः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वोपविश्य संभृतसम्भारः -

आचम्य प्राणानायम्य । द्यौः शान्तिः० । जलमादाय-अद्य० पू० तिथौ सकलग्रामजनभक्तजनदेशजन कल्याणाय अस्मिन् नूतनप्रासादे सकलदोष निवृत्तिपूर्वकं प्रासादशुद्ध्यर्थं, आचन्द्रतारकं प्रासादपुरुष सान्निध्यहेतवे सप्रासादप्रतिष्ठाङ्गभूतं प्रासादास्नपनं प्रासादाधिवासनञ्च करिष्ये । तत्रादौ गणेश स्मरणपूर्वकं कलशासादनं करिष्ये । ॐ गणानान्त्वा० नमस्करोमि । ॐ महीद्यौ० इत्यादि विधिना पूर्णपात्रवर्जं वरुणावाहनान्तं कृत्वा मध्यपूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रमेण मध्यकलशेषु तानि तानि वस्तूनि निक्षिपेत् । १ मध्यनवक मध्यमकुम्भे ॐ सोमाय वनस्पत्यन्तर्गताय नमः इति शमीउदुम्बर-अश्वत्थ-चूत-पलाश-प्लक्ष-न्यग्रोध-कदम्ब-बिल्व-अर्जुन-वृक्षसम्भवं पल्लवदशकं निक्षिपेत् । ० पूर्वनवकमध्यकुम्भे-पद्म-गोरोचना-दूर्वाङ्कुर-दर्भपिञ्जूल-श्वेतपीतसर्षप-श्वेतचन्दन-जाती-बकुलकुसुम-नद्यावर्त इति दशकं क्षिपेत् । ३ आग्नेयनवकमध्य कुम्भे-यव-व्रीहि तिल-सुवर्ण-रजत-समुद्रगामिनी नदी कूलमृत्तिका-भूम्यसंस्पृष्ट गोमय-इति सप्तकं क्षिपेत् । ४ दक्षिण नवकमध्य कुम्भे-सहदेवी-विष्णुक्रान्ता-भृङ्गराज-महौषधी-शमी-शतावरी-गुडूची-श्यामाक-इत्यष्टकं क्षिपेत् । ५ नैर्ऋत्य नवकमध्यकुम्भे-कदलीफल नारिकेल-बिल्व-नारिङ्ग-मातुलिङ्ग-बदर-आमलक-चूतफल इति फलाष्टकं क्षिपेत् । ६ पश्चिम नवकमध्यकुम्भे-मन्त्रसाधितं पञ्चगव्यं क्षिपेत् । ७ वायव्य नवकमध्यकुम्भे-शमी-उदुम्बर-अश्वत्थ-न्यग्रोध-पलाश-इति वृक्षपञ्चकपल्लव कषायं क्षिपेत् । ८ उत्तरनवकमध्य कुम्भे-शंखपुष्पी-महदेवी-शतावरी-गुडूची-बचा-बला-कुमारी-व्याघ्री-इति मूलाष्टकं क्षिपेत् । ९ ईशाननवकमध्यकुम्भे-वल्मीकादि सप्तमृत्तिकाः प्रक्षिपेत् । सर्वकलशेषु गन्धोदकं प्रक्षिप्य ॐ हिरण्यवर्णाम्-१५ इति श्रीसूक्तेन मध्यमकुम्भानभिमन्त्र्य देवतामूलमन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ।

प्रासादं त्रिसूत्र्याऽवेष्ट्य पञ्चगव्येन अन्तर्बहिरधस्तादूर्ध्वञ्च प्रासादं-ॐ आपोहिष्ठा० इति प्रोक्ष्य । वल्मीकमृदा-ॐ मूर्धानं दिवो० इति प्रासादमनुलिप्य मध्यमपूर्वादि प्रादक्षिण्यक्रमेण मध्यकलशैः क्रमेण

प्रासादं स्नपयेत् । १ मध्यनवकमध्य कुम्भेन - ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । येऽअन्तरिक्षे ये दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥१३-६॥ २ पूर्वनवकमध्यकुम्भेन ॐ विष्णो रराटमसि विष्णो श्नप्त्रेस्थो विष्णो स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवेत्त्वा ॥५-२१॥ ३ आग्नेयनवकमध्यकुम्भेन-ॐ सोम राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे । आदित्यं विष्णु सूर्यं ब्रह्माणञ्च बृहस्पति स्वाहा ॥९-२६॥ ४ दक्षिणनवकमध्यकुम्भेन-ॐ विश्वतश्चक्षु॰ देव एकः ॥ ५ निर्ऋतिनवकमध्य कुम्भेन-ॐ याः फलिनी॰ हसः ॥ ६ पश्चिमनवकमध्यकुम्भेन-ॐ पयः पृथिव्यां॰ मह्यम् ॥ ७ वायव्यनवकमध्यकुम्भेन - यज्ञा यज्ञावो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे । प्रप्रवयममृतञ्जातवेदसम्प्रियम्मित्रन्नशं सिषम् ॥२७-४२॥ ८ उत्तरनवकमध्यकुम्भेन-ॐ हं स शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता व्वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥१०-२४॥ ९ ईशाननवकमध्यकुम्भेन-ॐ समुद्रायत्त्वा व्वाताय स्वाहा सरिरायत्त्वा व्वाताय स्वाहा । अनाधृष्यायं त्वा व्वाताय स्वाहाऽप्रतिधृष्याय त्वा व्वाताय स्वाहा । अवस्यवेत्त्वा व्वाताय स्वाहाऽशिमिदाय त्वा व्वाताय स्वाहा ॥३८-७॥

ततो मध्यमपूर्वादिनवकेषु 'पारस्करगृह्यस्नानसूत्रकण्डिकायां' इदमापो हविष्मतीर्देवीराप इति-द्वाभ्यामपोदेवा द्रुपदादिव शन्नोदेवी अपाछरसम् । इत्युक्तत्वाद् अवशिष्टाष्टभिः पूर्वादीशानान्तकलशैः प्रतिकोष्ठं क्रमेण स्नपनेऽष्टदेवता अष्टौमन्त्राः पुनः पुनः पठनीयाः ।

१ ॐ इदमाप प्रवहतावद्यञ्च मलञ्च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम् । आपो मा तस्मादेनं स पवमानश्च मुञ्चतु ॥६-१७॥ २ हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्मा २ ऽ आविवासति । हविष्मान्देवोऽअध्वरो हविष्माँ २ ऽ अस्तु सूर्य्यः ॥६-२३॥ ३ देवीरापोऽअपान्नपाद्यो वऽऊर्म्मिर्हविष्यऽइन्द्रियावान्मदिन्तमः । तन्देवेभ्यो देवत्रादत्त शुक्रपेभ्यो येषाम्भागस्थ स्वाहा ॥६-२७॥ ४ कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽउन्नयामि । समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥६-२८॥ ५ अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्ज्जस्वती राजस्वश्चितानाः । याभिर्म्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन्याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥१०-१॥ ६ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतम्पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥२०-२०॥ ७ शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥३६-१२॥ ८ अपा रसमुद्वयस सूर्ये सन्त समाहितम् । अपा रसस्य यो रसस्तम्वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोसीन्द्रायत्त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्म्येषते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥९-३॥

एवं प्रतिकोष्ठमष्टमन्त्रावृत्त्या द्वासप्ततिकलशैः सशिखरं प्रासादं स्नपयेत् । एकाशीतिकुम्भाभाव एकेन गन्धोदकपूरितेन महता कलशेन-ॐ दैव्यायकर्म्मणे शुन्धध्वम्-इति मन्त्रेण सशिखरं प्रासादं स्नपयेत् । प्रासादं शुद्धजलेन संस्नाप्य सूत्रेणावेष्ट्य प्रासादं देवसूक्तेन मन्त्रेण वा देवरूपं भावयित्वा पताकादिना शोभयित्वा ॐ प्रासादपुरुषाय नमः - इति गन्धादिना सम्पूज्य तस्याधस्ताद् देवं संचिन्त्य-

ॐ ह्रीं सर्वदेवमयाचिन्त्य सर्वरत्नोज्ज्वलाकृते । यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावदत्र स्थिरो भव ॥ (इदं विष्णु० नमः शम्भवाय० अम्बे अम्बिके०) ततः प्रासादाग्रे चतस्रो गा दुग्ध्वा तासां क्षीरेण चरुं श्रपयित्वा देवाय निवेद्य तेन पायसेन द्वादश ब्राह्मणान् भोजयेत् । प्रधानदेवतामन्त्रेण प्रासादमधिवासयेत् । ततोऽक्षतैः प्रासादे प्रासादतत्त्वान्यावाहयेत्-सर्वत्र आदौ प्रणवः अन्ते नमः शब्दः - १ ॐ पृथिव्यै नमः २ श्रीकण्ठाय० ३ अद्भ्यो० ४ जलेशाय० ५ तेजसे० ६ त्विषां निधये० ७ वायवे० ८ मातरिश्वने० ९ आकाशाय० १० सूक्ष्माय० ११ रूपतन्मात्रात्मने० १२ भानुमते० १३ रसतन्मात्रात्मने० १४ जलदाय० १५ गन्धतन्मात्रात्मने० १६ गन्धाय० १७ स्पर्शतन्मात्रात्मने० १८ बलवत्तराय० १९ शब्दतन्मात्रात्मने० २० सूक्ष्मनादाय० २१ वाक् तत्त्वाय० २२ दुन्दुभये० २३ पाणितत्त्वाय० २४ समानाय० २५ पादतत्त्वाय० २६ चक्राय० २७ पायुतत्त्वाय० २८ कर्णभुजे० २९ उपस्थतत्त्वाय० ३० घनानन्दाय० ३१ श्रोत्रतत्त्वाय० ३२ व्योमाधाराय० ३३ त्वक्तत्त्वाय० ३४ सर्वगाय० ३५ चक्षुस्तत्त्वाय० ३६ प्रकाशाय० ३७ रसतत्त्वाय० ३८ महावक्त्राय० ३९ घ्राणतत्त्वाय० ४० विलुण्टकाय० ४१ मनस्तत्त्वाय० ४२ संकल्पाय० ४३ बुद्धितत्त्वाय० ४४ बुद्धये० ४५ अहंकारतत्त्वाय० ४६ अहंकृतये० ४७ चित्ततत्त्वाय० ४८ मनसे० ४९ प्रकृतितत्त्वाय० ५० पितामहाय० ५१ पुरुषतत्त्वाय० ५२ विष्णवे० ५३ सदाशिवतत्त्वाय० ५४ अजेशाय० ५५ कालतत्त्वाय० ५६ क्रतुध्वजाय० ५७ विद्यातत्त्वाय० ५८ विष्णवे (वैष्णवेकलशे ५९ चक्राद्यायुधेभ्यो नमः - शैवे - शूलाद्यायुधेभ्यो नमः - गणपतौ - अङ्कुशाद्यायुधेभ्यो नमः - सूर्ये - शङ्खचक्राद्यायुधेभ्यो नमः, देव्याम्-गदाखड्गाद्यायुधेभ्यो नमः) ६० सत्त्वाय० ६१ रजसे० ६२ तमसे० ६३ वह्निमण्डलाय० ६४ सूर्यमण्डलाय० ६५ सोममण्डलाय० इति ६६ प्रासादतत्त्वानि प्रासादे विन्यस्य सम्पूज्य पुरुषसूक्तेन प्रासादं पुरुषरूपेण स्तुवीत । (प्रासादतत्त्वहोमकाले समिद्यवतिलाज्याहुतिभिः प्रतिद्रव्यमष्टाष्टसंख्यया नाममन्त्रैर्जुहुयात् ।)

प्रासादप्रार्थना ।

प्रासादाद् बहिर्निर्गत्य प्रासादाभिमुखो भूत्वा प्रार्थयेत् -

१ पादौ पादशिलास्तस्य जङ्घा पादोर्ध्वमुच्यते । गर्भश्चैवोदरं ज्ञेयं कटिश्च कटिमेखला ॥१॥

२ स्तम्भाश्च बाहवो ज्ञेया घण्टा जिह्वा प्रकीर्तिता । दीपः प्राणोऽस्य विज्ञेयो अपानो जलनिर्गमः ॥२॥

३ ब्रह्मस्थानं यदेतच्च तन्नाभिः परिकीर्तितः । हृत्पद्मं पिण्डिका ज्ञेया प्रतिमा पुरुषः स्मृतः ॥३॥

४ तस्य पादस्त्वहंकारो ज्योतिस्तच्चक्षुरुच्यते । तदूर्ध्वं प्रकृतिस्तस्य प्रतिमाऽऽत्मा स्मृतो बुधैः ॥४॥

५ नलकुम्भादधोद्वारं तस्य प्रजननं स्मृतम् । शुकनासा भवेन्नासा गवाक्षः कर्ण उच्यते ॥५॥

६ कपोतपाली स्कन्धोऽस्य ग्रीवा चामल सारिका । कलशस्तु शिरो ज्ञेयं मज्जा क्षिप्तरसादिकम् ॥६॥

७ मेदश्चैव सुधां विद्यात् प्रलेपो मांस उच्यते । अस्थीनि च शिलास्तस्य स्नायुः कीलादिकः स्मृतः ॥७॥

८ चक्षूंषि शिखराणि स्युर्ध्वजाः केशाः प्रकीर्तिताः । एवं पुरुषरूपं तं ध्यात्वा च मनसा सुधीः ॥८॥

९ प्रासादं पूजयेत् पश्चाद् गन्धपुष्प ध्वजादिभिः । सूत्रेण वेष्टयेद् देवं वासांसि परिकल्पयेत् ॥९॥

१० प्रासादमेवमभ्यर्च्य वाहनं चाग्रमण्डपे - इति ध्यात्वा नमस्कुर्यात् ।

जलमादाय-अनेन प्रासादस्नपनपूर्वकं प्रासादाधिवासनकर्मणा सपरिवारः स्थाप्यदेवः प्रीयताम् ॥

६४ पिण्डिकाधिवासनम् ।

द्वितीयेऽह्नि प्रासादस्नपनान्तरं प्रतिष्ठादिने प्रातर्वा प्रतिष्ठातः पूर्वं पिण्डिकाधिवासनं कार्यम् । आचमनम् । प्राणायामः । जलमादाय-आरब्धप्रासादाचल प्रतिष्ठाङ्ग भूतं पिण्डिकायां (पिण्डिकासु) सूर्याचन्द्रमसौ यावद् देवकलासान्निध्यहेतवे पिण्डिकास्थापन मधिवासनञ्च करिष्ये । प्रासादे स्थाप्य प्रतिमासंख्यानुरोधेन पूर्वस्थापिततत्तत्पिण्डिकागर्तसमीपे ब्राह्मणानवस्थाप्य - पिण्डिकागर्तान् मधुघृताभ्यामभ्यज्य शुद्धवारिणा प्रक्षाल्य पूर्वस्नपनावशिष्ट कलशवारिणा पिण्डिकामन्त्रैः (श्रीश्चते० ह्रीश्चते० गौरीर्मिमाय०) इत्यादिभिः संस्नाप्य गन्धादिभि रभ्यर्च्य वस्त्रैराच्छाद्य तत्र तत्र गर्तेषु पिण्डिकामन्त्रान् न्यसेत् ॐ यं थं भं फट्लक्ष्म्यै (गौर्यै) हृदयाय नमः । यं थं भं फट् (लक्ष्म्यै) (गौर्यै) शिरसे स्वाहा । ॐ यं थं भं फट् लक्ष्म्यै (गौर्यै) शिखायै वषट् । ॐ यं थं भं फट लक्ष्म्यै (गौर्यै) कवचाय हुम् । ॐ यं थं भं फट् लक्ष्म्यै (गौर्यै) अस्त्राय फट् इति पिण्डिकायां पञ्चाङ्गानि विन्यस्य मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालान् प्रागाद्यष्टदिक्षु विन्यसेदक्षतैः ।

पूर्वे-पृथिवी मूर्तये नमः । २ पृथिवी मूर्त्यधिपतये शर्वाय० ३ इन्द्राय० ४ आग्नेय्याम्-अग्निमूर्तये० ५ अग्निमूर्त्यधिपतये पशुपतये० ६ अग्नये० । दक्षिणे ७ यजमानमूर्त्तये० ८ यजमानमूर्त्यधिपतये उग्राय० ९ यमाय० १० नैर्ऋत्याम्-अर्कमूर्त्तये० ११ अर्कमूर्त्त्यधिपतये रुद्राय० १२ निर्ऋतये० १३ पश्चिमे-जलमूर्त्तये० १४ जलमूर्त्यधिपतये भवाय० १५ वरुणाय० । १६ वायव्याम्-वायुमूर्त्तये० १७ वायुमूर्त्त्यधिपतये ईशानाय० १८ वायवे० । १९ उत्तरे-सोममूर्त्तये० २० सोममूर्त्यधिपतये महादेवाय० २१ सोमाय० । २२ ऐशान्याम्-आकाशमूर्त्तये० २३ आकाशमूर्त्त्यधिपतये भीमाय० २४ ईशानाय नमः - इति पिण्डिकान्यासं विधाय आभ्यां मन्त्राभ्यां पिण्डिकामधिवासयेत्-ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रः परब्रह्मणे सर्वाधाराय नमः । ह्रीं श्रीं ह्रीं दिव्यतेजोधारिण्यै सुभगायै नमः । इति पिण्डिकाधिवासनम् ।

पिण्डिकास्थापनम् ।

पिण्डिकास्थापनदेशे पञ्चरत्नोपरि सौवर्णं कूर्मं द्वारसम्मुखं निधाय तदुपरि पञ्च रत्नानि विन्यस्य

तदुपरि कूर्मशिला ब्रह्मशिला पिण्डिकात्मिकां त्रिवप्रां सिंहासनापरपर्यायां शिलां निदध्यात् । प्रथमो वप्रः कूर्मशिलाख्यो मध्यमो ब्रह्मशिलाख्य उपरि तृतीयवप्रः पिण्डिकाख्य इति शिलानिर्णयः । एवं त्रिवप्रां शिलां पिण्डिकाख्यां स्वस्थाने स्थापयित्वा शिलामध्यदेशं स्पृष्ट्वा प्रार्थयेत-ॐ नमो व्यापिनि स्थिरे अचले ध्रुवे ॐ श्रीं लं स्वाहा-त्वमेव परमा शक्तिस्त्वमेवासनधारिका । शिवाज्ञया त्वया देवि स्थातव्यमिह सर्वदा ॥ ॐ तत्त्वाध्वने नमः । ॐ मन्त्राध्वने नमः ॐ कालाध्वने नमः-इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा-ॐ ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिम्न्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् । घृतेनं द्यावापृथिवी पूर्व्येथामिन्द्रस्य च्छदिरसि विश्वजनस्यच्छाया ॥५-२८॥ (ध्रुवा द्यौः० ध्रुवं ते राजा० ध्रुवं धरुणं० ऋ०) इति मन्त्रं पठित्वा १ ॐ आत्मतत्त्वाय नमः २ ॐ आत्मतत्त्वाधिपतये क्रियाशक्त्यै नमः । ३ शिवतत्त्वाय नमः । ४ ॐ शिवतत्त्वाधिपतये इच्छाशक्त्यै नमः । ५ ॐ वियातत्त्वाय नमः । ६ ॐ वियातत्त्वाधिपतये आधारशक्त्यै नमः । ७ ॐ मूर्त्तिमूर्त्तिपतिलोकपालेभ्यो नमः - इत्यावाह्य - ॐ श्रीश्चते० ह्रीश्चते लक्ष्मीश्च (कृ० यजु०) (गौरीर्मिमाय० ऋ०) इति सम्पूज्य प्रार्थयेत्-सर्वदेवमयी शक्ति स्त्रैलोक्याह्लादकारिणी । त्वां प्रतिष्ठापयाम्यत्र मन्दिरे विश्वपूजिते ॥ यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावदेषा वसुन्धरा । तावत्त्वमनया शक्त्या मन्दिरेऽस्मिन् स्थिरा भव ॥ पुत्रानायुष्मतो लक्ष्मीमचलामजरामृते । अभयं सर्वभूतेभ्यः कर्तुर्नित्यं हि देहि भो ॥ विजयं भूपतेः सर्वलोकानां सुखमेव च । सुभिक्षं क्षेममारोग्यं कुरु देवि नमोऽस्तु ते ॥ इति सम्प्रार्थ्य पिण्डिकायां वर्णन्यासं कुर्यात्-श्वभ्रे-ॐ इति प्रणवम् । तद्बाह्ये-अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः-तद्बाह्ये-कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं-इति व्यञ्जनानि विन्यस्य ततः प्रागाद्यष्टदिक्षु-इन्द्राय० अग्नये० यमाय० निर्ऋतये० वरुणाय० वायवे० सोमाय० ईशानाय० इति लोकपालान् विन्यस्याष्टदिक्षु वज्र-मौक्तिक) वैडूर्य-शङ्ख-स्फटिक-पुष्पराग-इन्द्रनील-महानील शकलानि, गोधूमयवाक्षततिलान्, गर्भमध्ये हिरण्यरौप्यादि धातुजातम्, देवस्य वाहनं गरुडादि गर्तमध्ये निक्षिप्य मनः शिल हरितालाञ्जनकासीस सौराष्ट्रीगोरोचनागैरिकपारदान्, सुवर्णरौप्य ताम्र आयसत्रपुसीस कांस्यारकूट तीक्ष्ण लोहानि, श्वेतरक्तचन्दन-अगरु-अर्जुन-उशीर वैष्णवी सहदेवी लक्ष्मणेत्योषध्यष्टकं बीजाभावे यवान्, रत्नाभावे वज्रम्, धात्वभावे हरितालम्, ताम्राद्यभावे सुवर्णं, ओषध्यभावे सहदेवीं न्यसेत् । मधुपायसेन गर्तं विलिप्य शुक्लवस्त्रेणाच्छाद्य 'सुदर्शनाय हुं फट्' इति रक्षां विधाय (पञ्चकुण्डेषु मूलमन्त्रेण पलाशसमित्तिलाज्यमष्टाविंशति संख्यया हुत्वा)-ॐ मनोजूति० (तदस्तु मित्रा० गृहावै प्रतिष्ठा-ऋग्वेद इति पठित्वा प्रासादमभिषिच्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा आचम्य प्रासादं पञ्चगव्येनाभ्युक्ष्य दर्भपिञ्जूलैः सम्मार्ज्य-गुग्गुलादिरसैर्गतान् पूरयेत् ।

जलमादाय-अनेन पिण्डिकाधिवासन कर्मणा सपरिवारः स्थाप्यदेवः प्रीयताम् । ततो मण्डपं गच्छेत् । अयं विधिर्द्वितीयेऽहनि प्रासादाधिवासनानन्तरं प्रतिष्ठा दिने प्रतिमानां प्रासाद प्रवेशनात् पूर्वं वा कार्यः । इति पिण्डिकाधिवासनम् ।

६५ तत्त्वन्यासाः, शय्याधिवासः, निद्राबाहनञ्च ।

शान्तिकपौष्टिकादिहोमकाल एव यजमानमन्यं प्रतिनिधिं वा देवसमीपे उपवेश्य । पूर्वं मण्डपे शय्याविरचनमुक्तम्, तदनन्तरं यजमानः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वोपविश्य जलमादाय-आसु प्रतिमासु सूर्याचन्द्रमसौ यावत् सकलतत्त्वदेवकलादिव्यतेजोनिष्पत्तये शय्याधिवासं तत्त्वन्यासाँश्च करिष्ये । शय्यासुप्तानां प्रतिमानां परितः शैवे-पूर्वादिक्रमेण-१ भवाय० २ शर्वाय० ३ ईशानाय० ४ पशुपतये० ५ रुद्राय० ६ उग्राय० ७ भीमाय० ८ महते० इत्यावाह्य पूजयेत् । वैष्णवे तु - १ विष्णवे० २ श्रीधराय० ३ मधुसूदनाय० ४ हृषीकेशाय० ५ त्रिविक्रमाय० ६ पद्मनाभाय० ७ वामनाय० ८ दामोदराय० इत्यष्ट देवता आवाह्य पूजयेत् । बलिद्वयं दद्यात्-बलिं सम्पूज्य-ॐ प्राच्यै दिशे० दिक्पालेभ्यो नमः बलिं समर्पयामि । द्वितीयं बलिं-ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० ॐ नमः पूर्वादि दिग्वासि दिक्पति भूताधिपति गणपति रुद्रमातृ क्षेत्रपालेभ्यः - अमुं बलिं निवेदयामि-इति जलं मुक्त्वा आचामेत् । (प्रतिमानां तानि तान्यङ्गानि स्पृष्ट्वा न्यासाः कार्या इति प्रथमः कल्पः किन्तु प्रतिमानामाच्छादितत्वाद् बहुप्रतिमासत्त्वे च सर्वासामेककालावच्छेदेन स्पर्शासम्भवादक्षतै न्यासाः कार्या इति याज्ञिकसम्प्रदायः) हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा-सर्वत्र आदौ प्रणवः अन्ते नमः पदम् ।

१ प्रणवन्यासः - १ ॐ अकाराय नमः - शिरसि । २ उकाराय० पादयोः । ३ मकाराय० ललाटे ।

२ व्याहृतिन्यासः - १ भूर्नमः पादयोः । २ भुवर्नमः - हृदये । ३ स्वर्नमः - ललाटे ।

३ मातृकान्यासः - १ अकाराय० तालुनि । २ आकाराय० मुखे । ३ इकाराय० दक्षिणनेत्रे ४ ईकाराय० वामनेत्रे । ५ उकाराय० दक्षिणकर्णे । ६ ऊकाराय० वामकर्णे । ७ ऋकाराय० दक्षिणगण्डे । ८ ॠकाराय० वामगण्डे । ९ ऌकाराय० दक्षिणनासायाम् । १० ॡकाराय० वामनासायाम् । ११ एकाराय० ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ । १२ ऐकाराय० अधोदन्तपङ्क्तौ । १३ ओकाराय० ऊर्ध्वोष्ठे । १४ औकाराय० अधरोष्ठे । १५ अंकाराय० ललाटे । १६ अःकाराय० जिह्वायाम् । १७ यकाराय० त्वचि । १८ रकाराय० चक्षुषोः । १९ लकाराय० नासिकयोः । २० वकाराय० दन्तेषु । २१ शकाराय० श्रोत्रयोः । २२ षकाराय० उदरे । २३ सकाराय० कट्योः । २४ हकाराय० हृदये । २५ ळकाराय० नाभौ । २६ क्षकाराय० लिङ्गे । २७ पकाराय- दक्षिणबाहुमूले । २८ फकाराय० दक्षकूर्परे । २९ बकाराय० दक्षमणिबन्धे । ३० भकाराय० दक्षाङ्गुलिमूले । ३१ मकाराय० दक्षहस्ताङ्गुल्यग्रे । ३२ तकाराय० वामबाहुमूले । ३३ थकाराय० वामकूर्परे । ३४ दकाराय० वाममणिबन्धे । ३५ धकाराय० वामहस्ताङ्गुलिमूले । ३६ नकाराय० वामहस्ताङ्गुल्यग्रे । ३७ टकाराय० दक्षिणपादमूले । ३८ ठकाराय० दक्षिणजानुनि । ३९ डकाराय० दक्षपादगुल्फे । ४० ढकाराय० दक्षिणपादाङ्गुलिमूले । ४१ णकाराय० दक्षिमपादाङ्गुल्यग्रे । ४२ चकाराय० वामपादमूले । ४३ छकाराय० वामजानुनि । ४४ जकाराय० वामगुल्फे । ४५

ङ्काराय० वामपादाङ्गुलिमूले । ४६ अकाराय० वामपादाङ्गुल्यग्रे । ४७ ककाराय० दक्षकरतले । ४८ खकाराय० वामकरतले । ४९ गकाराय० दक्षकरपृष्ठे । ५० घकाराय० वामकरपृष्ठे । ५१ ङकाराय० हस्तपादसर्वाङ्गुलिषु ।

४ ग्रहनक्षत्रन्यासः - १ रविचन्द्राभ्यां० नेत्रयोः । २ भौमाय० हृदये । ३ बुधाय० स्कन्धयोः । ४ बृहस्पतये० जिह्वायाम् । ५ शुक्राय० लिङ्गे । ६ शनैश्चराय० ललाटे । ६ राहवे० पादयोः । ८ केतवे० केशेषु । ९ रोहिणीभ्यो० हृदये । १० मृगशिरसे० शिरसि । ११ आर्द्रायै० केशेषु । १२ पुनर्वसुभ्यां० ललाटे । १३ पुष्याय० मुखे । १४ आश्लेषाभ्यो० नासिकायाम् । १५ मघाभ्यो० दन्तेषु । १६ पूर्वाफाल्गुनीभ्यो० दक्षिणश्रोत्रे । १७ उत्तराफाल्गुनीभ्यो० वामश्रोत्रे । १८ हस्ताय० हस्तयोः । १९ चित्रायै० दक्षिणभुजे । २० स्वात्यै० वामभुजे । २१ विशाखाभ्यां० हृदये । २२ अनुराधाभ्यो० स्तनयोः । २३ ज्येष्ठायै० दक्षिणकुक्षौ । २४ मूलाय० वामकुक्षौ । २५ पूर्वाषाढाभ्यो० कटिपार्श्वयोः । २६ उत्तराषाढाभ्यो० लिङ्गे । २७ श्रवण धनिष्ठाभ्यो० वृषणयोः । २८ शतभिषाभ्यो० नेत्रयोः । २९ पूर्वा भाद्रपदाभ्यो० दक्षिणोरौ । ३० उत्तराभाद्रपदाभ्यो० वामोरौ । ३१ रेवतीभ्यो० दक्षिणजङ्घायाम् । ३२ अश्विनीभ्यां० वामजङ्घायाम् । ३३ भरणीभ्यो० दक्षिणपादे । ३४ कृत्तिकाभ्यो० वामपादे । ३५ ध्रुवाय० नाभौ । ३६ सप्तर्षिभ्यो० कण्ठे । ३७ मातृमण्डलाय० कट्योः । ३८ विष्णुपदेभ्यो० पादयोः । ३९ नागवीथ्यै० । ४० अजवीथ्यै० कण्ठदेशे । ४१ ताराभ्यो० रोमकूपेषु । ४२ अगस्त्याय० वक्षसि ।

५ कालन्यासः - १ चैत्राय० शिरसि । २ वैशाखाय०मुखे । ३ ज्येष्ठाय० हृदये० । ४ आषाढाय० दक्षिणस्तने । ५ श्रावणाय० वामस्तने । ६ भाद्रपदाय० उदरे । ७ आश्विनाय० कट्योः । ८ कार्तिकाय० दक्षिणोरौ । ९ मार्गशीर्षाय० वामोरौ० । १० पौषाय० दक्षिणजङ्घायाम् । ११ माघाय० वामजङ्घायाम् । १२ फाल्गुनाय० पादयोः । १३ सम्वत्सराय० दक्षिणस्कन्धे । १४ परिवत्सराय० दक्षिणकोष्ठे । १५ इद्वत्सराय० वामप्रकोष्ठे । १६ अनुवत्सराय० वामस्कन्धे । १७ पर्वभ्यो० सन्धिषु । १८ ऋतुभ्यो० लिङ्गे । १९ अहोरात्रेभ्यो० अस्थिषु । २० क्षणाय० । २१ लवाय० । २२ काष्ठायै० रोमसु । २३ कृतयुगाय० मुखे । २४ त्रेतायुगाय० हृदये । २५ द्वापराय० नितम्बे । २६ कलियुगाय० पादयोः । २७ चतुर्दशमन्वन्तरेभ्यो० बाह्वोः । २८ पराय० । २९ परार्धाय० जङ्घयोः । ३० महाकल्पाय० शरीरे । ३१ उदगयनाय० । ३२ दक्षिणायनाय० पादयोः । ३३ विषुवद्भ्यो० सर्वाङ्गुलिषु ।

६ वर्णन्यासः - १ ॐ ब्राह्मणाय० मुखे । २ क्षत्रियाय- बाह्वोः । ३ वैश्याय० ऊर्वोः । ४ शूद्राय० पादयोः । ५ सङ्करजेभ्यो० पादाग्रे । ६ अनुलोमजेभ्यो० सर्वाङ्गुलिषु । ७ गोभ्यो० मुखे । ८ अजाभ्यो० । ९ आविकाभ्यो० हस्तयोः । १० ग्राम्यपशुभ्यो० । ११ आरण्यपशुभ्यो० ऊर्वोः ।

७ तोयन्यासः - १ ॐ मेघेभ्यो० केशेषु । २ अभ्रेभ्यो० रोमसु । ३ नदीभ्यो० सर्वगात्रेषु । ४ समुद्रेभ्यो० कुक्ष्योः ।

८ विद्यान्यासः - १ ॐ ऋग्वेदाय० शिरसि । २ यजुर्वेदाय० दक्षिणभुजे । ३ सामवेदाय० वामभुजे । ४ सर्वोपनिषद्भ्यो० हृदये । ५ इतिहासपुराणेभ्यो० जङ्घयो० । ६ अथर्वाङ्गिरसेभ्यो० नाभौ । ७ कल्पसूत्रेभ्यो० पादयोः । ८ व्याकरणेभ्यो० मुखे । ९ तर्केभ्यो० कण्ठे । १० मीमांसायै० । ११ निरुक्ताय० हृदये । १२ छन्दः शास्त्रेभ्यो० श्रोत्रयोः । १६ आयुर्वेदाय० दक्षिणभुजे । १७ धनुर्वेदाय० वामभुजे । १८ योगशास्त्रेभ्यो० हृदये । १९ नीतिशास्त्रेभ्यो० पादयोः । २० वश्यतन्त्राय० ओष्ठयोः ।

९ विराजन्यासः - १ दिवे० मूर्ध्नि । २ सूर्यलोकाय० । ३ चन्द्रलोकाय० नेत्रयोः । ४ वायुलोकाय० नासिकायाम् । ५ समुद्रेभ्यो० गुदे । ६ पृथिव्यै० पादयोः ।

१० मूर्तिदेवतान्यासः - १ ॐ हिरण्यगर्भाय० शिरसि । २ कृष्णाय० केशेषु । ३ रुद्राय० ललाटे । ४ यमाय० भ्रुवोः । ५ अश्विभ्यां० कर्णयोः । ६ वैश्वानराय० मुखे । ७ मरुद्भ्यो० घ्राणे । ८ वसुभ्यो० कण्ठे । ९ रुद्रेभ्यो० दन्तेषु । १० आदित्येभ्यो० मुखे । ११ सरस्वत्यै० जिह्वायाम् । १२ इन्द्राय० दक्षिणभुजे । १३ बलये० वामभुजे । १४ प्रह्लादाय० दक्षिणस्तने । १५ विश्वकर्मणे० वामस्तने । १६ नारदाय० दक्षिणकुक्षौ । १७ अनन्तादिभ्यो० वामकुक्षौ० । १८ वरुणाय० हस्तयोः । १९ मित्राय० पादयोः । २० विश्वेभ्यो देवेभ्यो० ऊर्वोः । २१ पितृभ्यो० जान्वोः । २२ यक्षेभ्यो० जङ्घयोः । २३ राक्षसेभ्यो० गुल्फयोः । २४ पिशाचेभ्यो० पादयोः । २५ असुरेभ्यो० पादाङ्गुलिषु । २६ विद्याधरेभ्यो० पार्ष्ण्योः । २७ ग्रहेभ्यो० पादतलयोः । २८ गुह्यकेभ्यो- गुह्ये । २९ पूतनादिभ्यो० नखाग्रेषु । ३० गन्धर्वेभ्यो० ओष्ठयोः । ३१ कार्तिकेयाय० दक्षिणपार्श्वे । ३२ गणेशाय० वामपार्श्वे । ३३ मत्स्याय० मूर्ध्नि । ३४ कूर्माय० पादयोः । ३५ नृसिंहाय० ललाटे । ३६ वराहाय० जङ्घयोः । ३७ वामनाय० मुखे । ३८ परशुरामाय० हृदये । ३९ रामाय० बाहुषु । ४० कृष्णाय० नाभ्याम् । ४१ बुद्धाय० बुद्धौ । ४२ कल्कये० जानुनोः । ४३ केशवाय० शिरसि । ४४ नारायणाय० मुखे । ४५ माधवाय० ग्रीवायाम् । ४६ गोविन्दाय० बाह्वोः । ४७ विष्णवे० हृदये । ४८ मधुसूदनाय० पृष्ठे । ४९ त्रिविक्रमाय० कट्योः । ५० वामनाय० जठरे । ५१ श्रीधराय० । ५२ हृषीकेशाय० जङ्घयोः । ५३ पद्मनाभाय० गुल्फयोः । ५४ दामोदराय० पादयोः ।

११ क्रतुन्यासः - १ अश्वमेधाय नमः - मूर्ध्नि । २ नरमेधाय० ललाटे । ३ राजसूयाय० मुखे । ४ गोसवाय० कण्ठे । ५ द्वादशाहाय० हृदि । ६ अहीनेभ्यो० नाभौ । ७ सर्वजिद्भ्यो० दक्षिणकट्याम् । ८ सर्वमेधाय० वामकट्याम् । ९ अग्निष्टोमाय० लिङ्गे । १० अतिरात्राय०

वृषणयो० । ११ आप्तोर्यामाय० ऊर्वोः । १२ षोडशिने० जान्वोः । १३ उक्थ्याय० दक्षिणजङ्घायाम् । १४ वाजपेयाय० वामजङ्घायाम् । १५ अत्यग्निष्टोमाय० दक्षिणबाहौ । १६ चातुर्मास्याय० वामबाहौ । १७ सौत्रामणये० हस्तेषु । १८ पशुविष्टिभ्यो० अङ्गुलीषु । १९ दर्शपूर्णमासाभ्यां० नेत्रयोः । २० सर्वेष्टिभ्यो० रोमकूपेषु । २१ स्वाहाकाराय० २२ वषट्काराय० स्तनयोः । २३ पञ्चमहायज्ञेभ्यो० पादाङ्गुलीषु । २४ आहवनीयाय० मुखे । २५ दक्षिणाग्नये० हृदये । २६ गार्हपत्याय० नाभौ । २७ वेद्यै० उदरे । २८ प्रवर्ग्याय० भूषणेषु । २९ सवनेभ्यो० पादयोः । ३० इध्मभ्यो० बाहुषु । ३१ दर्भेभ्यो० केशेषु ।

१२ गुणन्यासः - १ धर्माय- मूर्ध्नि । २ ज्ञानाय० हृदि । ३ वैराग्याय० गुह्ये । ४ ऐश्वर्याय० पादयोः ।

१३ आयुधन्यासः - वैष्णवे -१ खड्गाय० शिरसि । २ शार्ङ्गाय० मस्तके । ३ मुसलाय० दक्षिणभुजे । ४ हलाय० वामभुजे । ५ चक्राय० नाभिजठरपृष्ठेषु । ६ अङ्कुशाय० लिङ्गवृषणयोः । ७ गदायै० जङ्घयोर्जानुनोश्च । ८ पद्माय० गुल्फयोः पादयोश्च ।

शैवे आयुधन्यासः - १ वज्राय० शिरसि । २ शक्तये० मस्तके । ३ दण्डाय० दक्षिणभुजे । ४ खड्गाय० वामभुजे । ५ पाशाय० नाभिजठरपृष्ठेषु । ६ अङ्कुशाय० लिङ्गवृषणयोः । ७ गदायै० जान्वोः । ८ त्रिशूलाय० जङ्घयोः । ९ चक्राय० गुल्फयोः । १० पद्माय० पादयोः । ८ तत्तद्देवतासु विशिष्टान्यायुधानि विन्यस्येत् ।

१४ शक्तिन्यासः - १ लक्ष्म्यै० ललाटे । २ सरस्वत्यै० मुखे । ३ रत्यै० गुह्ये । ४ प्रीत्यै० कण्ठे । ५ कीर्त्यै० दिक्षु । ६ शान्त्यै० हृदि । ७ तुष्ट्यै० जठरे । ८ पुष्ट्यै० सर्वाङ्गेषु ।

१५ मन्त्रन्यासः - १ ॐ अग्निमीळे० ऋग्वेदं पादयोः । २ इषेत्वोर्ज्जेत्वा० यजुर्वेदं गुल्फयोः । ३ अग्न आयाहि० सामवेदं जङ्घयोः । ४ शन्नोदेवी० अथर्ववेदं जानुनोः । ५ एकाचमे० ऊर्वोः । ६ स्वस्तिनऽइन्द्रो० जठरे । ७ दीर्घायुस्त० हृदये । ८ विश्वतश्चक्षु० कण्ठे । ९ त्रातारमिन्द्र० वक्त्रे । १० त्र्यम्बकं० स्तनयोर्नेत्रयोश्च । ११ मूर्धानं दिवो० मूर्ध्नि ।

(विष्णोर्मन्त्रन्यासः - १ ॐ हृदयाय० हृदये । २ शिरसे स्वाहा-शिरसि । ३ शिखायैवषट्-शिखायाम् । ४ कवचाय हुम्-कवचे । ५ नेत्रत्रयाय वौषट्-नेत्रत्रये । ६ अस्त्रायफट्-करयोः । ७ ॐ नमः - हृदये । ८ नं० शिरसि । ९ मों० मुखे । १० भगवते० शिखायाम् । ११ वासुदेवाय० कवचे । १२ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय० अस्त्रे । १३ श्रीवत्साय० दक्षिणवामस्तनयोः । १४ कौस्तुभाय० उरसि । १५ वनमालायै० कण्ठे । १६ ॐ नमः पादयोः । १७ नं० जानुनोः । १८ मों० गुह्ये । १९ भं० नाभौ । २० गं० हृदये । २१ वं० कण्ठे । २२ तें० नासिकयोः । २३ वां० नेत्रयोः । २४ सुं० भाले । २५ दें० मूर्ध्नि । २६ वां० दक्षिणपार्श्वे । २७ यं वामपार्श्वे ।

एवं रामे षडङ्गानि विन्यस्य ॐ नमो भगवते रामभद्राय - इति प्रत्यक्षरं न्यासः ।

शिवस्य - षडङ्गानि विन्यस्य ॐ नमो भगवते रुद्राय० दशाक्षरन्यासः ।

देव्यां - षडङ्गानि विन्यस्य - ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे० इति नवार्णन्यासः ।

लक्ष्म्यां - १ श्रीं ह्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै नमः । २ श्रीं ह्रीं ऐं लक्ष्मी कमलधारिणी हंसः स्वाहा अम्बे-अम्बिके० । ३ ऐं चामुण्डायै विद्महे वरप्रदायै धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् । श्रीश्चते० गणेशस्य - १ ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा । २ ॐ गं गणपतये नमः । ३ ॐ एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ ॐ गणानान्त्वा० । भैरवस्य - ॐ ह्रीं बटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं ॐ । ॐ नम उग्राय च भीमाय च । सरस्वत्याः - वदवद वाग्वादिनि स्वाहा (पावकानः०) । बालायाः - ऐं क्लीं सौः वद वद वाग्वादिनि स्वाहा । दत्तात्रेयस्य - ॐ द्रां दत्तात्रेयाय नमः । अन्यदेवतानां मन्त्रा देवतामन्त्रप्रकरणादवगन्तव्याः ।)

नारायणमूर्त्तौ द्वादशाक्षर मन्त्रन्यासः ।

१ ॐ केशवाय- शिरसि । २ ॐ नं नारायणाय० मुखे । ३ ॐ मों माधवाय० ग्रीवायाम् । ४ भं गोविन्दाय० कण्ठे । ५ गं विष्णवे० पृष्ठे । ६ वं मधुसूदनाय० कुक्षौ । ७ तें त्रिविक्रमाय० कटौ । ८ वां वामनाय० जङ्घयोः । ९ सुं श्रीधराय० वामगुल्फे । १० दें हृषीकेशाय० दक्षिणगुल्फे । ११ वां पद्मनाभाय० वामपादे । १२ यं दामोदराय० दक्षिणपादे ।

अष्टाङ्गमन्त्रन्यासः ।

१ हुं रुद्राय० हृदये । २ विष्णवे० शिरसि । ३ ब्रह्मणे० शिखायाम् । ४ ध्रुवाय० कवचे । ५ चक्रिणे० नेत्रत्रये । ६ अस्त्राय० अस्त्रे । ७ नमः शम्भवाय० गायत्र्यै० दक्षिणनेत्रे । ८ विजयाय० सावित्र्यै० वामनेत्रे । ९ चक्राय० शूलाय० पिङ्गलाक्षाय० दिक्षु ।

पुरुषसूक्तन्यासः सर्वसाधारणः, विष्णोश्च ।

१ सहस्रशीर्षा० पादयोः । २ पुरुष एवेद ० जङ्घयोः । ३ एतावानस्य० जान्वोः । ४ त्रिपादूर्ध्व० ऊर्वोः । ५ ततो विराड्० वृषणयोः । ६ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः० कट्योः । ७ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽऋचः० नाभौ । ८ तस्मादश्वा० हृदये । ९ तं यज्ञं० स्तनयोः । १० यत्पुरुषं० बाह्वोः । ११ ब्राह्मणोऽस्य० मुखे । १२ चन्द्रमा मनसो० चक्षुषोः । १३ नाभ्या आसी० कर्णयोः । १४ यत्पुरुषेण० भ्रुवोः । १५ सप्तास्या० भाले । १६ यज्ञेन यज्ञं० शिरसि ।

उत्तरनारायणन्यासः सर्वसाधारणः विष्णोश्च । १ अद्भ्यः सम्भृतः० हृदये । २ वेदाहमेतं० शिरसि । ३ प्रजापतिश्चरति० शिखायाम् । ४ यो देवेभ्य० कवचे । ५ रुचं ब्राह्मं० नेत्रयोः । ६ श्रीश्चते० अस्त्रे ।

(अयं पुरुषसूक्तन्यासः सहस्रशीर्षमूर्धनेत्रपादादिरूपाङ्ग व्यापृतपरमात्मद्योतकः, पुरुषसूक्तस्य सर्वदेवसाधारणत्वात् साधारण इति प्रतिष्ठेन्दावन्यत्र च प्रतिपादितम् । स्त्रीरूपदेवतासु प्रकृतेः प्राधान्यात् तत्र तत्र श्रीसूक्तन्यासः विशेषेण तु लक्ष्म्याः । एवमन्यदेवतासु तत्तद्देवतासूक्तानि अथर्वशीर्षाणि लिङ्गमन्त्रान् मूलमन्त्रान् वा पठेत् । यथा शिवस्य नमस्ते० रौद्राध्यायः षोडशर्चो वा । गणेशस्य-ब्रह्मणस्पतिसूक्तं गणपत्यथर्वशीर्षं वा । देव्याः श्रीसूक्तम्, अहं रुद्रेभिरिति देवीसूक्तं देव्यथर्वशीर्षं वा । हनुमतो वीरभद्रावतारत्वाद्रौद्रसूक्तम्-सूर्यस्य विभ्राडिति सौरसूक्तं सूर्याथर्व शीर्षं वा - इत्यादि स्वयमूहनीयम् ।)

सूर्यस्य गायत्रीन्यासः ।

१ तकाराय० पादाङ्गुष्ठयोः । २ त्सकाराय० गुल्फयोः । ३ विकाराय० जङ्घयोः । ४ तुर्काराय० जानुनोः । ५ वकाराय० ऊर्वोः । ६ रेकाराय० गुह्ये । ७ ण्काराय० वृषणयोः । ८ यकाराय० कट्योः । ९ भर्काराय० नाभौ । १० गोकाराय० जठरे । ११ देकाराय० स्तनयोः । १२ वकाराय० हृदये । १३ स्यकाराय० कण्ठे । १४ धीकाराय० वदने । १५ मकाराय० तालुनि । १६ हिकाराय० नासाग्रे । १७ धिकाराय० चक्षुषोः । १८ योकाराय० भ्रूमध्ये । १९ योकाराय० ललाटे । २० नः काराय० पूर्वशिरसि । २१ प्रकाराय० दक्षिणशिरसि । २२ चोकाराय० पश्चिमशिरसि । २३ दकाराय० उत्तरशिरसि । २२४ यात्काराय० सर्वत्र । २५ तत्सवितुर्० हृदये । २६ वरेण्यंशिरसि । २७ भर्गोदेवस्य - शिखायाम् । २८ धीमहि - कवचे । २९ धियो योनः - नेत्रत्रये । ३० प्रचोदयात् - अस्त्रे ।

देवीमूर्त्तौ निवृत्त्यादिकलान्यासः ।

१ ॐ अं निवृत्त्यै० नमः । २ आं प्रतिष्ठायै० । ३ इं विद्यायै० । ४ ईं शान्त्यै० ५ उं धुन्धिकायै० । ६ ऊं दीपिकायै० । ७ ऋं रेचिकायै० । ८ ॠं मोचिकायै० । ९ ऌं परायै० । १० ॡं सूक्ष्मायै० । ११ एं सूक्ष्मामृतायै० । १२ ऐं ज्ञानामृतायै । १३ ओं साविञ्यै० १४ औं व्यापिन्यै० । १५ अं सुरूपायै० । १६ अः अनन्तायै० । १७ कं सृष्ट्यै० । १८ खं ऋद्ध्यै० । १९ गं स्मृत्यै० । २० घं मेधायै० । २१ ङं कान्त्यै० । २२ चं लक्ष्म्यै० । २३ छं धृत्यै० । २४ जं स्थिरायै० । २५ झं स्थित्यै० । २६ ञं सिद्ध्यै० । २७ टं जरायै० । २८ ठं पालिन्यै० । २९ डं शान्त्यै० । ३० ढं ऐश्वर्यै० । ३१ णं रत्यै० । ३२ तं कामिन्यै० । ३३ थं रदायै० । ३४ दं ह्लादिन्यै० । ३५ धं प्रीत्यै० । ३६ नं दीर्घायै० । ३७ पं तीक्ष्णायै० । ३८ फं सुप्त्यै० । ३९ बं अभयायै । ४० भं निद्रायै० । ४१ मं

मात्रे । ४२ यं शुद्धायै० । ४३ रं क्रोधिन्यै० । ४४ लं कृपायै० । ४५ वं उल्कायै० । ४६ शं मृत्यवे० । ४७ षं पीतायै० । ४८ सं श्वेतायै० । ४९ हं अरुणायै० । ५० ळं असितायै० । ५१ क्षं सर्वसिद्धिगौर्यै नमः ।

शैवे सद्योजातादिपञ्च ब्रह्मकलादिन्यासः ।

१ ॐ ईशानाय० अङ्गुष्ठयोः । २ तत्पुरुषाय० तर्जन्योः । ३ अघोरेभ्यो० मध्यमयोः । ४ वामदेवाय० अनामिकयोः । ५ सद्योजाताय० कनिष्ठयोः । ६ सद्योजाताय० हृदयाय नमः । ७ वामदेवाय० शिरसे स्वाहा । ८ अघोरेभ्यो० शिखायै वषट् । ९ तत्पुरुषाय० कवचाय हुम् । १० ईशानाय० अस्त्राय फट् । ११ हृदयाय नमः । १२ शिरसे स्वाहा । १३ शिखायै वषट् । १४ कवचाय हुम् । १५ अस्त्राय फट् । १६ कवचेनावगुण्ठयेत् । १७ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् । ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् - लिङ्गमुद्रया मूर्ध्नि । १८ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् - तर्जन्यङ्गुष्ठ योगेन । १९ हृदये० अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः - मध्यमाङ्गुष्ठयोगेन । २० गुह्ये वामदेवाय नमोज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः - अनामिकाङ्गुष्ठयोगेन । २१ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः - कनिष्ठिकाङ्गुष्ठयोगेनपादयोः ।

कलान्यासः ।

१ ईशान्यै० । २ अभयदायै० ३ इष्टदायै० । ४ मरीच्यै० । ५ ज्वालिन्यै० । ६ शान्त्यै० । ७ विद्यायै० । ८ प्रतिष्ठायै० । ९ धृत्यै० । १० तमसे० । ११ जरायै० । १२ सत्त्वायै० । १३ निद्रायै० । १४ व्याध्यै० । १५ मृत्यवे० । १६ क्षुधायै० । १७ तृषायै० । १८ रजसे० । १९ रक्षायै० । २० रत्यै० । २१ पालिन्यै० । २२ कामायै० । २३ संजीवन्यै० । २४ धात्र्यै० । २५ बुध्द्यै० । २६ छायायै० । २७ क्रियायै० । २८ भ्रामण्यै० । २९ शोषिण्यै० । ३० ज्वरायै० । ३१ सिद्ध्यै० । ३२ ऋद्ध्यै० । ३३ दित्यै० । ३४ लक्ष्म्यै० । ३५ मेधायै० । ३६ स्वधायै० । ३८ प्रभायै० । एवं शिवप्रतिष्ठायां विशिष्टा न्यासाः कार्याः ।

यन्त्रन्यासः ।

(केवलयन्त्रप्रतिष्ठायां प्रतिमानामधो वा तत्तद्देवतायन्त्रनिधाने - ताम्रादियन्त्रं - आपोहिष्ठा - इति तृचेन वा पावमानीभिर्वा प्रक्षाल्य पञ्चामृतेन पञ्चगव्येन च पृथक् पृथक् मन्त्रैः संशोध्य स्नपनविधौ

प्रतिमया साकं यन्त्रमपि मन्त्रैः संस्नाप्य शय्याधिवासे तत्तद्देवतायन्त्रे तत्तद्देवताना-मावरणन्यासान् कृत्वा प्रतिष्ठाकाले केवलयन्त्रस्य यन्त्रसहितप्रतिमाया वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्-इति विशेषः ।)

षोडशो जीवन्यासः सर्वदेवसाधारणः ।

(अयं जीवन्यासो देवस्थापनानन्तरं कार्य इत्येकं मतम् । जीवन्यासस्य योगप्रक्रियासाध्यात्वादन्येषां तदसम्भवात् प्राणप्रतिष्ठयैव निर्वाह इति द्वितीय मतम् । वस्तुतस्तु जीवन्यासे शरीरप्राणगततत्त्वानां विन्यासात् प्राणप्रतिष्ठापदं लोके शास्त्रे च प्रतिष्ठात्वेन जीवन्यासस्य षोडशन्यासान्तर्गतत्त्वेन सर्वसाधारणत्वाज्जीवन्यासं कुर्यादिति समीचीनं भाति ।)

१ ॐ प्रणवात्मने० । २ मं जीवात्मने० । ३ भं प्राणात्मने० । ४ बुं बुद्ध्यात्मने० । फं अहंकारात्मने० । ६ पं मन आत्मने० । ७ नं शब्दतन्मात्रात्मने० । ८ धं स्पर्शतन्मात्रात्मने० । ९ दं रूपतन्मात्रात्मने० । १० थं रसतन्मात्रात्मने० । ११ तं गन्धतन्मात्रात्मने० । १२ णं श्रोत्रात्मने० । १३ ढं त्वगात्मने० । १४ डं चक्षुरात्मने० । १५ ठं जिह्वात्मने० । १६ टं घ्राणात्मने० । १७ ञं वागात्मने० । १८ झं पाण्यात्मने० । १९ जं पदात्मने० । २० छं पाय्वात्मने० । २१ चं उपस्थात्मने० । २२ ङं पृथिव्यात्मने० । २३ घं अबात्मने० । २४ गं तेज आत्मने० । २५ खं प्राणात्मने० । २६ कं आकाशात्मने० । २७ षं सूर्यात्मने० । २८ सं सोमात्मने० । २९ ळं वह्न्यात्मने० ।

(ततः अर्चाबीजं स्वामिमतं मूर्तौ संयोजयेत् । अथवा तत्तद्देवताया वैदिकमन्त्रं, आद्याक्षरं सानुस्वारं चतुर्थ्यन्तं नमः सहितं 'रामात्मने नमः' इत्यादिकं पठेत् ।) ३० सर्वात्मने० । ३१ अनुग्रहात्मने० । ३२ सर्वभूतात्मने० । ३३ सर्वसंहारात्मने० । ३४ कोपात्मने० । ३५ आत्मतत्त्वाय० । ३६ आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे० । ३७ विद्यातत्त्वाय० । ३८ विद्यातत्त्वाधिपतये० विष्णवे० । ३९ शिवतत्त्वाय० । ४० शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय० । इति जीवन्यासः । 'सकलतत्त्वसहितां साङ्गां सपरिवाराममुकदेवताम् अस्यां प्रतिमायां न्यसामि' इत्यक्षतान् निक्षिप्य सर्वतत्त्वात्मिकां तां तां देवतां प्रतिमायां स्थितां भावयेत् ।

एकदिनसाध्ये सद्यः प्रतिष्ठाकर्मणि एतावन्न्यासविधिकरणाशक्तौ इमानि तत्त्वानि विन्यसेत् । १ ॐ पुरुषात्मने नमः । २ प्राणात्मने० । ३ प्रकृतितत्त्वात्मने० । ४ अहंकारतत्त्वाय० । ५ मनस्तत्त्वाय० । ६ प्रकृतितत्त्वाय० । ७ बुद्धितत्त्वाय० । ८ हृदयाय नमः । ९ शब्दतत्त्वाय० । १० स्पर्शतत्त्वाय० । ११ रूपतत्त्वाय० । १२ रसतत्त्वाय० । १३ गन्धतत्त्वाय० । १४ श्रोत्रतत्त्वाय० । १५ त्वक्तत्त्वाय० । १६ चक्षुस्तत्त्वाय० । १७ जिह्वातत्त्वाय० । १८ घ्राणतत्त्वाय० । १९ वाक्तत्त्वाय० । २० पाणितत्त्वाय० । २१ पादतत्त्वाय० । २२ उपस्थतत्त्वाय० । २३ पृथिवीतत्त्वाय० । २४ अप्तत्त्वाय० । २५ तेजस्तत्त्वाय० । २६ वायुतत्त्वाय० । २७ आकाशतत्त्वाय० । २८ सत्त्वाय० । २९ रजसे० । ३० तमसे० । ३१ देहतत्त्वाय० । ३२ सर्वतत्त्वसहितां सपरिवारां अमुकदेवतां प्रतिमायां न्यसामि । इति न्यासाः ।

निद्रावाहनम् ।

देवशिरोदेशे निहिते निद्राकलशे निद्रामावाहयेत् - ॐ परमेष्ठिनं नमस्कृत्य निद्रामावाहयाम्यहम् । मोहिनीं सर्व भूतानां मनोविभ्रम कारिणीम् ॥१॥ विरूपाक्षे शिवेशान्ते आगच्छत्वं तु मोहनि । वासुदेवहिते कृष्णे कृष्णाम्बरविभूषिते ॥२॥ आगच्छ सहसाऽजस्रं सुप्तसंसारमोहिनि । सुषुप्तं संहरेर्देवि कुमार्य्यैकान्तमानसे ॥३॥ श्रमविश्वासवाह्यम्बु आगच्छ भुवनेश्वरि । तमः सत्त्वरजोयुक्ते आगच्छ वरदायिनि ॥४॥ मनो बुद्धिमहङ्कारं संहरेस्त्वं सरस्वति । शब्दं स्पर्शं च रूपञ्च रसं गन्धञ्च पञ्चमम् ॥५॥ आगच्छ गृह्ण संक्षिप्त मोहपाशनिबन्धनि ॥ भवस्योत्पत्तिहेतुस्त्वं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥६॥ भुवः कल्पान्तसन्ध्यायां वससे त्वं चराचरे । भोगिशय्याप्रसुप्तस्य वासुदेवस्य शासने ॥७॥ त्वं प्रतिष्ठाऽसि वै देवि मुनियोगिसमुत्थिते । पितृदेवमनुष्याणां सयक्षोरगर क्षसाम् ॥८॥ पशुपक्षिमृगाणां च योगमायाविवर्धिनि । वससे सर्वसत्त्वेषु मातेव हितकारिणी ॥९॥ एहि सावित्रिमूर्त्तिस्त्वं चक्षुर्भ्यां स्थानगोचरे । विश नासापुटे देवि कण्ठे चोत्कण्ठिता विश ॥१०॥ प्रतिभावय मां सर्वं मातृवद् देवि सुन्दरि । इदमर्घं मया दत्तं पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥११॥ ॐ उप प्प्रागांत्परमैंय्यत्त्सधस्त्थमर्व्वां ॥२॥ ऽ अच्छा पितरम्मातरञ्च । अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्म्याऽअथाशास्ते दाशुषे व्वार्य्याणि ॥२९-२४॥ ॐ भू० सपरिवारायै निद्रायै नमः निद्रामावाह यामि स्थापयामि ॥ ॐ सपरिवारायै निद्रायै नमः इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य । पुरतो बलित्रयं निधाय बलिद्रव्याय नमः - इति सम्पूज्य-जलमादाय - १ ॐ प्राच्यै दिशे० इन्द्रादिभ्यो० बलिं सम० । २ ॐ समख्ये देव्या० मातृभ्यो० बलिं सम० । ३ ॐ नहिस्पश० क्षेत्रपालाय० बलिं सम० । आत्मम्य 'मण्डलशय्ययोरन्तरे न गन्तव्यम् । सुखशायी भव' इति प्रैषद्वयं दत्त्वा-जलमादाय-आसु प्रतिमासु सूर्याचन्द्रमसौ यावद् दिव्यदेव कलातेजोऽभिवृध्दिपूर्वकं देवतासान्निध्यहेतवे कृतेन अनेन शय्याधान्य (फल पुष्पौषधी) अधिवासन पूर्वकं तत्त्वन्यास कर्मणा सपरिवारः स्थाप्यदेवः प्रीयताम् । (सप्त-पञ्च-त्रि-एकरात्र-याममात्र-गोदोहनकालान्यतमपक्षेण यथासमयमधि वासनम् । एकरात्राधिकदिनाधिवासपक्षस्वीकारे प्रतिदिनं स्थापितदेवतापूजनपूर्वकं प्रत्यहं शान्तिपौष्टिक होम-मूर्त्तिमूर्त्यधिपति लोकपाल होम- स्थाप्य देवता होम विभिन्न-कुण्ड होम-व्याहृतिहोम-तत्त्वन्यासहोम-तत्त्वन्यासा अवश्यं कार्याः)

इति शय्याधिवासः तत्त्वन्यासाश्च ।

एवं त्रिदिनसाध्ये द्वितीयदिनसाध्यं द्विदिनसाध्ये प्रथमदिनसाध्यं कर्म सम्पन्नम् । स्नपनानन्तरं प्रासादस्नपनाधिवासने पिण्डिकाधिवासनं शान्तिकादि होमाः शय्याधिवासतत्त्वन्यासश्च ब्राह्मणविभागेन एककालावच्छेदेन कार्याः ।

स्थापितदेवतानां सायन्तनपूजन नीराजनादि तिलकाशीर्वादादि कुर्यात् । द्वितीयेऽहनि प्रतिष्ठाङ्गत्वेन स्वयं प्रतिनिधिद्वारा च जलयात्रा-निक्षेपान्त वास्तुपूजन-स्नपन-प्रासादस्नपनाधिवासनपिण्डिकाधिवासन-

विहितहवन-शय्याधान्याधिवास-तत्त्वन्यासहोम-तत्त्वन्यास निद्रावाहनान्तं कर्म कृतं तेन सपरिवारः स्थाप्यदेवः प्रीयताम् ॥

इति द्वितीयदिनकृत्यम् ।

६६ प्राणप्रतिष्ठादिनकृत्यम् ।

(इष्टलग्नशुद्धिसमयात्पूर्वं यथा प्रतिमादीनां स्थिरीकरणं सुचारुरीत्या सम्पद्येत, तथा घण्टाद्वयात् घण्टात्रयाद्वा पूर्वं प्रतिष्ठादिनकार्यं समारभेत । अनेकमूर्त्तिसत्त्वे मूर्तीनां बृहत्त्वेन स्वल्पेन कालेन संस्थापनासम्भवे द्वितीयदिनरात्रौ तादृशीर्मूर्त्तीः देवमन्त्राभिमन्त्रितेन सर्वतीर्थमयेन जलेन 'ॐ नृसिंहाय हुं फट्' इति संप्रोक्ष्य देवं प्रबोध्यार्घ्यं दत्त्वा देवतासूक्तेन मन्त्रेण वा स्तुत्त्वा उत्तरार्धं दत्त्वा शिल्पिने तत्तन्निर्दिष्टस्थाने स्थापयितुं दद्यात् । दृष्ट्यादिकं निर्दिष्टस्थाने शिल्पी साधयेत् । दृढं स्थापयेच्च । शिल्पशास्त्रे लिङ्गं सर्वव्यापकब्रह्ममयं मत्त्वा तस्य प्रासादे शिखरे वा मूर्त्यवतारणक्षमं छिद्रं संरक्ष्याकाशमार्गेणावतारणं निर्दिष्टम् । किन्तु सर्वासामपि देवतानां व्यापक ब्रह्ममयत्वेन तथा ऽ धोऽवतारणे प्रतिमाभङ्गादिसम्भवः । पुनश्च सर्वासु पद्धतिषु द्वारसम्मुखं कृत्वाऽर्घं मधुपर्कं च दत्त्वा प्रवेशयेद् । इत्युक्तं तदेव सुकरं शास्त्रसम्मतञ्च प्रतिभाति ।)

यजमानः कृतनित्यक्रियः प्रतिष्ठादिनकृत्यमारभेत । तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । शान्तिपाठादि । नमस्काराः । जलमादाय - मम सकुटुम्बस्य समस्तग्रामजनभक्तजनदेशजलकल्याणाय चन्द्रसूर्यौ यावत् प्रतिमासु देवकलासान्निध्यहेतवे प्रतिष्ठादिनसाध्यं कर्म स्वयं ब्राह्मणद्वारा च करिष्ये । तत्रादौ आसनविध्यादिस्थापितदेवतापूजनं करिष्ये । समयं विचार्य स्वल्पं विस्तरेण वा स्थापितदेवतापूजनान्तं कृत्वा । संकल्पः - प्रतिष्ठादिन विहितं मूर्त्तिमूर्त्यधिपतिलोकपालानां स्थाप्यदेवतानाञ्च होमं करिष्ये । घृतादिकं हविः संस्कृत्य-मूर्त्तिमूर्त्यधिपतिलोकपालानां, स्थाप्यदेवतानाञ्च घृतेन तिलैर्वा २८ वा ८ संख्यया प्रतिदैवतं पूर्ववद्धोमं कृत्वा-ॐ मूर्धानं० इति मन्त्रेण पूर्णाहुतिं हुत्वा ॐ विश्वतश्चक्षुः० इति मन्त्रेण देव पादादिमस्तकान्तं स्पृष्ट्वा 'कृतममुं होमं देवाय निवेदयामि' इति देवदक्षिणकर्णे होमं निवेदयेत् । जलमादाय-करिष्यमाणप्राणप्रतिष्ठाङ्ग भूतषोडशसंस्कारसिद्ध्यर्थं १२८ संख्यया समस्तव्याहृतिहोमं करिष्ये । ततः १२८ संख्यया तिलैः समस्तव्याहृतिमन्त्रेण ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा - इति होमः ।

६७ प्रासादद्दिक्षु होमः ।

नूतनः प्रासादश्चेत् प्रासादस्याष्टदिक्षु स्थण्डिलानि कृत्वा तादृशहोमयोग्यस्थलाभावे प्रासादपुरत एकमेव स्थण्डिलं कृत्वा - जलमादाय - प्रासादरक्षार्थं देवप्रबोधार्थञ्च प्रासाददिग्होमं करिष्ये । सर्वस्थण्डिलेषु पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं प्रतिष्ठाप्य ब्रह्मासनादि-पवित्रयोः प्रणीतासु निधानं इत्यन्तं

कुर्यात् । (अयमत्र विशेषः - आधाराज्यभागनवाहुति स्विष्टकृतां संस्रवः प्रोक्षण्यां, स्थण्डिलेशाने स्थापिते सकलकलशे प्रधानदेवताहोमसंस्रवः । अस्य देवशिरोऽभिषेकरूप प्रतिपत्त्यर्थत्वाद्) आज्यभागान्ते स्थापितदेवतामूलमन्त्रेण गायत्र्या वा समिद्भिः आज्येन च प्रतिस्थण्डिलं १००८, १०८, २८ वा ८ संख्यया होमं कृत्वाऽज्येन ईशानकलशे संस्रवः, ततः आज्येन नवाहुतयः, स्विष्टकृत्, प्रोक्षण्यां त्यागः । संस्रवप्राशनादिप्रणीताविमोकान्तम् । अग्निविसर्जनम् । ईशानकलशसंस्रवसंरक्षणम् ।

स्थलसङ्कोचादष्टदिक्षु होमासम्भवे प्रासादपुरतः स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य ईशाने सजलं कलशं संस्थाप्य आज्यभागान्ते देवतामूलमन्त्रेण गायत्र्या वा समिद्भिः आज्येन च ८०६४, ८६४, २२४ वा ६४ संख्यया होमं कृत्वा कलशे संस्रव प्रक्षेपः । नवाहुतयः स्विष्टकृत् । प्रोक्षण्यां संस्रवः । संस्रवप्राशनादि प्रणीताविमोकान्तम् । अग्निविसर्जनम् । ईशानकलशजल संस्रव संरक्षणम् । इति प्रासाददिग्घोमः ।

६८ देवप्रबोधनम् । प्रासादप्रवेशनञ्च ।

नूतनः प्रासादश्चेत् संपातकलशजलमेकीकृत्य, जीर्णप्रासादसंस्कारे तु कलशे जलं प्रपूर्य मूलमन्त्रेण शतमष्टवारं वाऽभिमन्त्र्य ॐ ये तीर्थानि० गङ्गासिन्धु० इति मन्त्राभ्यां सर्वतीर्थानि ध्यात्वा देवाच्छादनमपसार्य हस्ते जलमादाय तेन प्रतिदैवतं ॐ नृसिंहाय हुं फट् - इति मन्त्रेण देवशिरोऽभिषिञ्चेत् । ततः सर्षपानादाय ॐ रक्षोहणं० ४ कृणुष्वपाजः० ५ प्राच्यै दिशे स्वाहा० १ दिग्बन्धं कृत्वा शङ्खतूर्यादिनिनादेन देवं प्रबोधयेत् - पुष्पाण्यक्षतानादाय - ॐ प्रबुध्यस्व महाभाग देवदेव जगत्पते । मेघश्याम गदापाणे प्रबुद्धकमलेक्षण ॥ ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहित्व मिष्टापूर्ते स सृजेथामयञ्च । अस्मिन् त्सधस्थेऽअद्ध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥१८-६१॥ (ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०) इति मन्त्रेण देवं प्रबोधयेत् । पात्रेपञ्चरत्नानि अङ्कुरितबीजानि पुष्पफलानि मधुघृतशर्करादिदुग्धपायसखाद्यानि देवाय निवेद्य ॐ सहस्रशीर्षा० इति पुरुषसूक्तेन तत्तद्देवतासूक्तेन मन्त्रेण वा देवं स्तुवीत । ततः शायिताः प्रतिमा उत्थाप्य संशोध्य जलेन संस्नाप्य अहतवासांसि परिधाप्य गन्धपुष्पाक्षतैः सम्पूज्येत् । ततः पात्रे तोयक्षीरकुशाग्रतिलतण्डुलयवसर्षपगन्धपुष्पपूगीफलादिकं निधाय देवाय उत्तरार्घं निवेदयेत् - ॐ धामन्ते० ऊर्मिम् ।

ततः प्रतिमाः - ॐ रथे तिष्ठन्नयति व्वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथि ? । अभीशूनाम्महिमानम्पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥२९-४२॥ इति मन्त्रेण रथे याने वा निवेश्य तूर्य घोषेण मङ्गलसूक्तैः पश्चिमद्वारेण बहिर्निर्गत्य प्रासादप्रादक्षिण्येन देवं प्रतिमा वा द्वारसम्मुखमानीय काष्ठपीठे देवं संस्थाप्य - ॐ धामन्ते० इत्युत्तरार्धं दत्त्वा द्वारदेवमध्येऽन्तः पटं धृत्वा मङ्गलपद्यानि पठेयुः । ततोऽन्तःपटं निःसार्य देवमुखे-ॐ मधुव्वाता० ३ यन्मधुनो० इति मन्त्रेण मधुपर्कं दत्त्वा ॐ द्यौः शान्ति० इत्यादिमन्त्रैः देवं प्रतिमाश्च प्रासादं गर्भं गृहं वा प्रवेश्य तत्तत्स्थानसन्निधौ निवेश्य यावत् स्थिरीकरणं संरक्षेत् ।

६९ स्थापनकाले लिङ्गस्य प्रतिमाया वा चलने होमः ।

स्थाप्यमाने देवे लिङ्गे वा यां यां दिशं श्रयेत्, तत्तद्दिगीशमन्त्रेण अष्टोत्तर शतसंख्यया शमीपलाशान्यतरसमिद्भिस्तिलैर्वा होमं कुर्यात् । अयं कृताकृतः । स्थापनकाले दिगाश्रयणसम्भवात् सुदृढस्थापनानन्तरं तदशक्यत्वात् ।

(ततः शिल्पिनस्तत्तद्देवतागर्तेषु तत्तद्वस्तुजातं पूर्वं न निक्षिप्तं चेद् अधुना निक्षिप्य लेपादिना गर्तान् पूरयित्वा मध्यसूत्र समत्त्व - स्थिरत्त्व - दृष्टिसाधनादिकं सम्यक् संसाध्य वज्रलेपादिना स्थिरीकुर्यात् । अस्मिन्नवसरे प्रातः स्थापितदेवतापूजनादिकं न कृतं चेत्, तर्हि पूजनमधुना यथासमयं सम्पादयेद् ब्राह्मणांश्च पूजयेत् ।

७० विशिष्टो जीवन्यासः ।

(अयं तत्त्वन्यासप्रकरण पठिताज्जीवन्यासाद् भिन्नः केवलं योगप्रक्रियाज्ञानवता कर्तुं शक्यः, अस्मादृशां संसारिणां तु तत्पाठमात्रेण कृत्या च संतोषो भवेत्, तथापि ग्रन्थनिर्दिष्टत्वादिह विवृतः । प्राणप्रतिष्ठाविधिनाप्ययमेव हेतुः सिध्यत्यत्र न शङ्कावसरः ।)

पूर्वं तत्प्रतिमापिण्डिकासंलग्नां सुवर्णशलाकां दर्भशलाकां वा निधाय मुहूर्त्तसमये सन्निहित आगते आचार्यः समाहितमनाः श्रीपरमेश्वरं चिन्तयेत् । आत्मानं जगदीश्वरं भावयेत् । पिण्डिकां देवसंयोगमिच्छन्तीमीशित्वादि गुणयुतां ध्यायन् देवज्ञोक्ते शुभे लग्ने शलाकां निष्कास्य 'ॐ मनोजूति० तदस्तु मित्रावरुणा० (ऋ०) गृहा वै प्रतिष्ठा० वाङ्मनः० (साम०) तदस्तु मित्रा० (अथर्व०) ध्रुवा द्यौः० (ऋ० ध्रुवासि ध्रुवोऽयं० (शु० यजु०) मन्त्रान् देवमन्त्रश्च पठित्वा-प्रतितिष्ठ परमेश्वर-इत्युक्त्वा देवं प्रार्थयेत् ॥ ॐ लोकानुग्रह हेत्वर्थं स्थिरो भव सुखाय नः । सान्निध्यं हि सदा देव प्रत्यक्षं परिकल्पय ॥१॥ प्रधानपुरुषो यावद्यावच्चन्द्रदिवाकरौ । तावत्त्वमनया शक्त्या युक्तोऽत्रैव स्थिरो भव ॥२॥ इति ।

ततः पूर्वस्थापित शान्तिकलशेभ्यः किञ्चिज्जलमादाय मूलमन्त्रेणाभिषिच्य सर्वतीर्थमयं ध्यात्वा देवमभिषिच्य ॐ विश्वतश्चक्षु० इति देवस्य शिरसि दक्षिणहस्तं दत्त्वा सकलनिष्कलं ध्यात्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वां गायत्रीं देवतामन्त्रञ्च देवस्य दक्षिणे कर्णे वामे च जपेत् ॥ अतसीपुष्पसंकाशं शङ्खचक्रगदाधरम् । संस्थापयामि देवेशं देवो भूत्वा जनार्दनम्-इति विष्णोः । शिवस्य प्रार्थना ॐ त्र्यक्षश्च दशबाहुश्च चन्द्रार्ध कृतशेखरम् । वृषभस्थं गणेशञ्च स्थापयामि त्रिलोचनम् । ब्रह्मणः - ॐ ऋषिभिः संस्तुतं देवं चतुर्वक्त्रं जटाधरम् । पितामहं महाप्राज्ञं स्थापयाम्यम्बुजोद्भवम् ॥ सूर्यस्य-ॐ सहस्रकिरणं शान्तं ह्यप्सरोगणसेवितम् । पद्महस्तं महाबाहुं स्थापयामि दिवाकरम् ॥

केवलयोगप्रक्रियासाध्यो जीवन्यासः ।

नाभेरधस्ताद् आधारस्थानाद् आकुञ्चनप्रकारेण तेज आनीय नाभिचक्रं ततो हृत्पद्ममानीय हृत्पद्मात् पञ्चभूततन्मात्रैरुपेत्य पञ्चप्राणैः ऐश्वर्यधर्मज्ञानवैराग्यैः संयुतं दिवाकरसहस्राभं विद्युत्संघातसन्निभं ऊर्ध्वचक्रत्रयभेदेन स्वदेहाद् ध्यानेन वामनाड्या निःसार्य ब्रह्मरन्ध्रेण प्रतिमां प्रवेशयन् चिन्तयेत् । तत्र ललाटे किञ्चित् स्थिरं कृत्वा घटिकाद्वारमानीय तत्र स्थिरीकृत्य शीर्षण्याः सर्वत्र प्रवेशं चिन्तयेत् । तस्मात् तेजसः चक्षुरादीनि बुद्धीन्द्रियाणि वागादीनि कर्मेन्द्रियाणि मनः सहितानि यथास्थानं प्रविशन्तु-इति चिन्तयित्वा पादाङ्गुष्ठादि नासिकान्तं प्राणं निवेशयेत् । व्यानं नाभौ समानं हृदये सुषुम्णामध्यगतं ब्रह्मरन्ध्रे उदानं निवेशयेत् । हृत्पद्मदलाष्टकं तन्मध्ये कर्णिकायां व्यापिनं पुरुषं प्रणवे न्यसेत् ॥

ॐ मं जीवात्मने नम० । ॐ भं जीवोपाधये नमः । शरीरे व्यापकं न्यसेत् । ॐ बं बुद्ध्यात्मने० ॐ फं अहंकारात्मने० पं मन आत्मने० इति हृदये । नं शब्दतन्मात्रात्मने० शिरसि । धं स्पर्शतन्मात्रात्मने० वक्त्रे । दं रूपतन्मात्रात्मने० हृदये । थं रसतन्मात्रात्मने० हस्तयोः । तं गन्धतन्मात्रात्मने० पादयोः । णं श्रोत्रतन्मात्रात्मने० श्रोत्रयोः । ढं त्वङ्मात्रात्मने० त्वचि । डं चक्षुरात्मने० चक्षुषोः । ठं जिह्वात्मने० जिह्वायाम् । टं घ्राणात्मने० घ्राणे । ञं वागात्मने० वाचि । झं पाण्यात्मने० पाण्योः । जं पादात्मने० पादयोः । छं पाय्वात्मने० पायौ । चं उपस्थात्मने० उपस्थे । ङं पृथिव्यात्मने० पादयोः । घं अबात्मने० बस्तौ । गं तेज आत्मने० हृदये । खं प्राणात्मने० प्राणे । कं आकाशात्मने० शिरसि । शं पुण्डरीकात्मने० हृदये । षं सूर्यात्मने० हृत्पुण्डरीकमध्ये । सं सोमात्मने० तन्मध्ये० । हं बाह्यात्मने० तन्मध्ये । रं वह्न्यात्मने० सर्वत्र ।

ततोऽर्चाबीजं स्वाभिमतमूर्त्या स्वमन्त्रेण संयोज्य-ॐ पुरुषात्मने० इति पौरुषं भावमानीय ध्यात्वा, यं सर्वात्मने० इति सर्वसाक्षिणं भावयित्वा, गं सर्वात्मने० इति सर्वतोमुखं भावयित्वा, वं अनुग्रहात्मने० इत्यनुग्रहात्मकं भावयित्वा, सर्वभूतात्मने० इति सर्वभूतकारणम्, सर्वसंहारात्मने० इति सर्वसंहारात्मकम्, क्षं कोपात्मने० इति सर्वसंयमकारणं, भावयित्वा क्रमेण ध्यात्वा तत्त्वन्यासं कुर्यात् । (इदं पूर्वं न कृतं चेदिदानीं कार्यम् ।)

तत्त्वन्यासः ।

(अयं न्यासोऽपि पूर्वं न कृतश्चेदिदानीं कार्यः ।)

ॐ आत्मतत्त्वाय० आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे० । विद्यातत्त्वाय० विद्यातत्त्वाधिपतये विष्णवे० हृदये । शिवतत्त्वाय० शिवतत्त्वाधिपतये शिवाय० शिरसि । पृथिवीतत्त्वाय० पादयोः । अप्तत्त्वाय०

बस्तौ (गुदे) । तेजस्तत्त्वाय० हृदये । वायुतत्त्वाय० घ्राणयोः । आकाशतत्त्वाय० शिरसि । गन्धतत्त्वाय० पादयोः) । रसतत्त्वाय० बस्तौ (गुदे) । रूपतत्त्वाय० हृदये । स्पर्शतत्त्वाय० त्वचि । शब्दतत्त्वाय० शिरसि । शब्दतत्त्वाय कर्णयोः । घ्राणतत्त्वाय० घ्राणे । जिह्वातत्त्वाय० जिह्वायाम् । चक्षुस्तत्त्वाय० चक्षुषोः । त्वक्तत्त्वाय० त्वचि । श्रोत्रतत्त्वाय० श्रोत्रयोः । पायुतत्त्वाय० पायौ (गुदे) उपस्थतत्त्वाय० उपस्थे । हस्ततत्त्वात्मने० हस्तयोः । पादतत्त्वाय० पादयोः । वाक्तत्त्वाय० वाचि । मनस्तत्त्वाय० हृदि । बुद्धितत्त्वाय० बुद्धौ । ततो हृदय एव-अहंकारतत्त्वाय० सत्त्वात्मने० रज आत्मने० तम आत्मने० । पुरुषतत्त्वाय० । रागतत्त्वाय० ज्ञानतत्त्वाय० विज्ञानतत्त्वाय० नीतितत्त्वाय० तर्ककलातत्त्वाय० । कालतत्त्वाय० । मायातत्त्वाय० । ईशतत्त्वाय० । सदाशिवतत्त्वाय० । शक्तितत्त्वाय० । शिवतत्त्वाय० ।

इति तत्त्वन्यासः ।

ततो देवे पञ्चोपनिषन्मन्त्रान् न्यसेत् । तत्प्रकारस्त्वेवम् - ॐ षां पराय परमेष्ठ्यात्मने० पादयोः । यां पराय पुरुषात्मने० नाभौ । रां पराय विश्वात्मने० हृदये । लां पराय निवृत्त्यात्मने० कण्ठे । वां पराय सर्वात्मने० मूर्ध्नि । ततः प्रणवेन निरोधमुद्रां प्रदर्श्य मूलमन्त्रं पठित्वा-मन्त्रं देवेन्यसामि । ततः पुरुषसूक्तं रुद्रे रुद्रसूक्तं अन्यदेवतासु तत्तद्देवतासूक्तं लिङ्गमन्त्रं तत्तन्मन्त्रं वा पठेत् । ततः पञ्चभूतमन्त्रान् न्यसेत् - ॐ स्योना पृथिवि० घ्राणे । अप्सुमे सोमो० (ऋ०) (आपोहिष्ठा०) जिह्वायाम् । शुक्रमसि० (ऋ०क तेजोऽसि शुक्र० (यजु०) नेत्रयोः । वायोशतं० (ऋ०) (आनो नियुद्भिः० यजु०) त्वचि । नासद० (ऋ०) (घृतङ्घृतपावानः० नाभ्या आसीद०) श्रोत्रयोः ।

तत ईषत् तिर्यग् देवमुखमीक्षमाणः पुरुषसूक्तं तत्तद्देवतासूक्तं सूक्ताभावे मन्त्रं वा पठेत् । ततः सव्याहृतिकां सप्रणवां सशिरस्कां गायत्रीं पठेत् - ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् । ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् - इति । ततो-यत्ते यमं वैवस्वतं० इति द्वादशर्चं प्राणसूक्तं जपेत् । तत्र मन्त्रस्य उत्तरार्धं द्वादशमन्त्रेषु समानमेव । ऋग्वेद मं० १० सू० ५८ म० १ तः १२॥ प्राणसूक्तमृग्वेदे - १ ॐ यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ २ यत्ते दिवं यत् पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्त्त० ॥३ यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्त्त० ॥४ यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्त्त० ॥ ५ यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्त्त० ॥ ६ यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्त्त० ॥ ७ यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्त्त० ॥ ८ यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्त्त० ॥ ९ यत्ते पर्वतान् बृहतो मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्त्त० ॥ १० यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्त्त० ॥ ११ यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्त्त० ॥ १२ यत्ते भूतं च भव्यञ्च मनो जगाम दूरकम् । तत्त आवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ॐ प्राणदाऽअपानदा० प्रतिक्षत्रे प्रतितिष्ठामि० (शु० यजु०) एभिर्मन्त्रैः) प्रतिमायां देवसान्निध्यं

प्रार्थयेत् । जलमादाय-अनेन जीवन्यासरूपप्राणप्रतिष्ठाकर्मणा सूर्याचन्द्रमसी यावत् प्रतिमासु दिव्यदेवकलासान्निध्यमस्तु । अनेन जीवन्यासकर्मणा सपरिवारः प्रधानदेवः प्रीयताम् ॥

इति जीवन्यासः ।

(लोके प्राणप्रतिष्ठाशब्देन प्रामुख्येन व्यवहाराज्जीवन्यासविधेर्योगिमात्रसाध्यत्वात् सामान्यभक्तानां तदज्ञानात् पूर्वोक्तषोडशन्यासे प्राणप्रतिष्ठाविधौ च उपरिनिर्दिष्टविधेः साकल्येन समावेशा ल्लोकव्यवहारसिद्धत्वात् शास्त्रविहितत्वाच्च प्राणप्रतिष्ठाविधिसम्पादनं श्रेयस्करम् ।)

७१ प्राणप्रतिष्ठाविधिः ।

निश्चितेष्टघटीलग्नशुद्धिमुहूर्त्तात् अर्धघण्टासमयात्पूर्वं शिल्पिभिः तासु तासु प्रतिमासु लेपादिना दृष्टिसाधनसमसूत्रत्वसमत्वस्थिरत्वादिना चलनायोग्यासु सम्यक् स्थिरीकृतासु साचार्यर्त्विग् यजमानश्चतुर्वेदज्ञैर्ब्राह्मणैः सह पूजासम्भारादिकं गृहीत्वा मन्दिरं प्रविशेत् । प्रतिप्रतिमं समीपे ससम्भारमेकैकं ब्राह्मणमुपवेश्य प्राणप्रतिष्ठाविधिमारभेत । निर्दिष्टसमये प्राणप्रतिष्ठामन्त्रतत्तद्देवतासूक्तमन्त्रजपादिविधिः स्यात्तथा प्रयतनीयम् । प्रतिमापिण्डिकान्तरे सुवर्णशलाकां दर्भशलाकां वा रक्षेत् । प्राणप्रतिष्ठाकर्मणि सम्पन्ने शलाकां निष्कासयेत् ।)

यजमानः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वोपविश्य - आचमनम् । प्राणायामः । शान्तिपाठः । देवता नमस्कारादि । जलमादाय - विष्णु० तिथौ समस्तग्रामजन भक्तजनदेशजन प्रतिनिधिभूतः अमुकशर्मा यजमानोऽहम्, मम सकुटुम्बस्य अस्मिन् ग्रामे नगरे देशे च वसतां भक्तजनानां द्विपदाश्चतुष्पदाश्च कर्मविपाकजन्य दुःख दारिद्र्यदौर्भाग्यग्रहपीडा - ईति भयादि सकलारिष्ट निवृत्ति पूर्वकं सकलसुखसौभाग्य क्षेमसुभिक्ष धनधान्यैश्वर्य-पुत्रपौत्रादिवंशाभिवृद्धि-ऐहिकपारलौकिक अभ्युदयनिःश्रेयस संसिद्ध्ये धर्मार्थकाममोक्षरूपपुरुषार्थचतुष्टयप्राप्तये प्रासादप्रतिमासम्पादनकर्मणि साहाय्यकर्तॄणां समस्तभक्तानां पूर्वजानां प्रासादप्रतिमाणुसंख्याकवर्षाणि यावद् उद्धारपूर्वकं अमुकलोकप्राप्त्यर्थं सूर्याचन्द्रमसी यावत् प्रतिमासु दिव्यदेवकलातेजोऽभिवृद्ध्ये अमुकदेवताप्रीत्यर्थं अमुकामुक देवतानां अचलप्राणप्रतिष्ठां करिष्ये । जलमादाय - तत्रादौ गणेशस्मरणं करिष्ये । ॐ गणानान्त्वा० नमस्करोमि ।

पुनर्जलमादाय-अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्माविष्णुरुद्रा ऋषयः ऋग्यजुःसामानिच्छन्दांसि, क्रियामयवपुः प्राणाख्या देवता, आंबीजम्, ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकम्, प्रतिमायां (प्रतिमासु) प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः । पूर्वमात्मनि न्यासान् कुर्यात् - ॐ ब्रह्माविष्णुरुद्रेभ्य ऋषिभ्यो नमः शिरसि । ॐ ऋग्यजुः सामभ्यश्छन्दोभ्यो नमः - मुखे । ॐ क्रियामयवपुः प्राणाख्यायै देवतायै नमः - हृदये । ॐ आं बीजाय नमः गुह्ये । ॐ ह्रीं शक्तये नमः - पादयोः । ॐ क्रों कीलकाय नमः - सर्वाङ्गे । हस्तं प्रक्षाल्य - एवं देवे न्यासान् कुर्यात् । ॐ ब्रह्म० सर्वाङ्गे - इत्यन्तान् ।

तत आत्मनि ततः परं देवे षडङ्गन्यासः - १ ॐ अं कं खं गं घं ङं आं पृथिव्यप् तेजोवाय्वाकाशात्मने (अङ्गुष्ठाभ्यां नमः - हृदयाय नमः) । २ ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने (तर्जनीभ्यां नमः - शिरसे स्वाहा) । ३ ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा घ्राणात्मने (मध्यमाभ्यां नमः - शिखायै वषट्) । ४ ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने (अनामिकाभ्यां नमः - कवचाय हुम्) । ५ ॐ ओं पं फं बं भं मं औं वचनादानगमन विसर्गानन्दात्मने (कनिष्ठिकाभ्यां नमः - नेत्रत्रयाय वौषट्) । ६ ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः मनोबुद्ध्यहंकारात्मने (करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः - अस्त्राय फट्) । एवमात्मनि न्यासं कृत्वा हस्तं प्रक्षाल्य, एवमेव देवे न्यासान् कुर्यात् ॥

एवं आत्मनि देवे च षडङ्गन्यासान् कृत्वा देवस्य कपोलौ स्पृष्ट्वा वा हृदये अङ्गुष्ठे दत्त्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्-

ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हं सः सपरिवारस्य अमुक देवस्य, (सपरिवारायाः अमुक देव्याः) प्राणा इह प्राणाः । ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हं सः (सपरिवारस्य अमुकदेवस्य, सपरिवारायाः अमुकदेव्याः) जीवः इह स्थितः । ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हं सः (सपरिवारस्य अमुकदेवस्य, सपरिवारायाः अमुकदेव्याः) सर्वेन्द्रियाणि । ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हं सः सपरिवारस्य अमुकदेवस्य, (सपरिवारायाः अमुकदेव्याः) वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रत्वग् जिह्वा घ्राण वाक्पाणिपादपायूपस्थ प्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥ ॐ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च । अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन । ॐ इति प्रणवेन संरुध्य देवं सजीवं ध्यात्वा प्रतिष्ठा मन्त्रान् पठेत् -

ऋग्वेदे - ॐ तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शंयोरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् । अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥५-४७-७॥ कृष्ण यजुः - ॐगृहा वै प्रतिष्ठासूक्तं तत्प्रतिष्ठिततमया वाचा शंस्तव्यं तस्माद्यद्यपि दूर इव पशूँल्लभते गृहानेवैनानाजिगमिषति गृहा हि पशूनां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा ॥ शुक्ल-यजुर्वेदे - ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्य्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं य्यज्ञ ँ समिमन्दधातु । व्विश्वेदेवासऽइहमादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥२-१३॥ ब्राह्मणम्-मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्येति मनसा वाऽइद ँ सर्व्वमाप्तन्तन्मनसैवैतत् संदधाति बृहस्पतिर्य्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं य्यज्ञ ँ समिमन्दधात्विति यद्विवृढं तत्सन्दधाति विश्वेदेवासऽइहमादयन्तामिति सर्वं वै विश्वे देवाः सर्वेणैवैतत्सन्दधाति स यदि कामयेत ब्रूयात् प्रतिष्ठेति ॥ एष वै प्रभूर्नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव प्रभूतं भवति ॥१॥ एष वै विभूर्नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्व्वमेव व्विभूतं भवति ॥२॥ एष वै व्यष्टिर्नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव व्यष्टं भवति ॥३॥ एष वै विधृतिर्नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव विधृतं भवति ॥४॥ एष वै व्यावृत्तिर्नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव व्यावृत्तं भवति ॥५॥ एष वाऽऊर्जस्वान्नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेवोर्जस्वद् भवति ॥६॥ एष वै पयस्वान्नाम यज्ञो

यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव पयस्वद्भवति ॥७॥ एष वै ब्रह्मवर्चसी नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्तऽआब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायते ॥८॥ एष वाऽअतिव्याधी नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्तऽआराजन्योऽतिव्याधी जायते ॥९॥ एष वै दीर्घो नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्तऽआदीर्घारण्यञ्जायते ॥१०॥ एष वै क्लृप्तिर्नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव क्लृप्तं भवति ॥११॥ एष वै प्रतिष्ठा नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव प्रतिष्ठितं भवति ॥१२॥ (शत० अ० १) प्र. ३-७ (१ तः १२)

सामवेदप्रतिष्ठामन्त्रः - ॐ वाक् । मनः प्राणः प्राणोऽपानो व्यानश्चक्षुः श्रोत्रꣳशर्म वर्म भूतिः प्रतिष्ठा । एता एव स महाव्रताः सर्वा वा एता विराजो दशिनी प्रथमा विꣳशिनी द्वितीया त्रिꣳशिनी तृतीयैषा वै परमा विराड् यचत्वारिꣳशद्रात्रयः पङ्क्तिर्वै परमा विराट् परमायामेव विराजि प्रति तिष्ठन्ति ॥

अथर्ववेदप्रतिष्ठामन्त्रः - ॐ तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शंयो रस्मभ्य मिदमस्तु शस्तम् । अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥१९-११-६॥ ॐ ध्रुवाऽसि धुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् । घृतेन द्यावा पृथिवी पूर्येथा मिन्द्रस्य च्छदिरसि विश्वजनस्य च्छाया ॥५-२८॥ सुप्रतिष्ठितो भव । सुखदो भव । वरदो भव । शाश्वतो भव ॥ इति जप्त्वा देवस्य दक्षिण कर्णे तत्तन्मूलमन्त्रं गायत्रीञ्च पठित्वा पुरुषसूक्तेन तत्तद्देवतासूक्तेन वा देवं ध्यात्वा पादनाभिशिरांसि स्पृष्ट्वा - ॐ आत्वा हार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठा विचाचलिः । विशस्त्वा सर्वा व्वाञ्छन्तु मात्त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥१२-११॥ इति मन्त्रं त्रिर्जप्त्वा-जलमादाय-आसां देवतानां गर्भाधानादिषोडशसंस्कारसिद्धये (प्रति संस्कारमष्टाष्ट संख्यया समस्त व्याहृति होम पूर्वकं) प्रणवावृत्तिं करिष्ये । (पूर्वं होमो न कृतश्चेत् तिलद्रव्येण समस्तव्याहृतिभिः कुण्डे १२८ आहुती हुत्वा) ॐ इति प्रणवं षोडशवारं (ऋग्वेदिनां मते पञ्चदशवारं) उच्चरेत् ॥ ततो देवं प्रार्थयेत् ।

ॐ नमस्तेऽअस्त्वसङ्गाय सन्तोषपरमात्मने । गुणातिक्रान्तरूपाय पुरुषाय महात्मने ॥१। अव्यक्ताव्यक्त रूपाय देव सन्निहितो भव ॥१॥ भगवन् देवदेवेश त्वं माता सर्वदेहिनाम् । त्वया व्याप्तमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥२॥ त्वमिन्द्रः पावकश्चैव यमो निर्ऋतिरेव च । वरुणो मारुतः सोम ईशानः प्रभुरव्ययः ॥३॥ येन रूपेण भगवँस्त्वया व्याप्तं चराचरम् । तेन रूपेण देवेश अर्चायां संहितो भव ॥४॥ सर्वमन्त्रादिसंयुक्तं लोकानुग्रहकाम्यया । त्वमर्चायां महादेव भव सन्निधिमान् सदा ॥५॥ सूर्याचन्द्रमसौ यावत् यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत् त्वयाऽत्र देवेश स्थातव्यं स्वेच्छया प्रभो ॥६॥

देवता महापूजा ॥ ध्वजोच्छ्रयणम् ।

सम्भृतसकलसम्भारो यजमानो ब्राह्मणाश्च प्रतिदेवतसमीपमुपविश्य देवतानां महापूजनं कुर्युः ।

अभिषेककाले शान्तिकलशैः सम्पातोदककलशैश्चाभिषेकं प्रोक्षणं वा कुर्युः । वस्त्रयज्ञोपवीतादि

राजोपचारान् कृत्वा पैष्टिकादिदीपैर्नीराजनादि पूजनं सम्पाद्य - ध्वजे देवतावाहनं कुङ्कुमादिना विलिख्य-वाहनमन्त्रेण प्रधानदेवतामन्त्रेण च सम्पूज्य - ॐ प्रस्फुर प्रस्फुर हुं फट् - हृदयाय नमः । ॐ घोर घोरतर हुं फट्-शिरसे स्वाहा । ॐ तनुरूप हुं फट् शिखायै वषट् । ॐ चट चट प्रचट प्रचट हुं फट्-कवचाय हुम् । ॐ कह कह वम वम घातय घातय हुं फट्-अस्त्राय फट् इति पञ्चाङ्गानि विन्यस्य ॐ प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम घातय घातय हुं फट् अस्त्राय नमः - ॐ अच्छायस्व वनस्पतऽऊर्ध्वोमायाह्य ह हंसऽआस्य यज्ञस्योदृचं ॥४-१०॥ इति मन्त्रेण शिखरनैर्ऋत्यभागे मारुते आग्नेय कोणे वा उच्छ्रयेत् १ स्थाप्यमाने देवे शब्दोत्थाने भ्रान्ते स्फुटिते वा शान्त्यर्थ मूलमन्त्रेणअष्टोत्तरशत १०८ माज्येन तिलैर्वा होमं कुर्यात् । (विशिष्टः स्वतन्त्रः ध्वजप्रतिष्ठाप्रयोगोऽग्रे वक्ष्यते ।

ततो देवप्रार्थना-ॐ लोकानुग्रहहेत्वर्थं स्थिरो भव सुखाय नः । सान्निध्यं हि सदा देव प्रत्यहं परिकल्पय ॥१॥ मा भूत् पूजाविरामोऽस्मिन् यजमानः समृध्यताम् । सम्पालय सदा राष्ट्रं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥२॥ क्षेमेण वृद्धिमतुलामक्षय्यं सुखमश्नुताम् । भगवन् देवदेवेश धर्मकामार्थमोक्षद ॥३॥ विद्याविद्येश्वरै रुद्रगणेशैर्लोकपालकैः । देवदानवगन्धर्वैर्यक्षैश्च किन्नरैः सह ॥४॥ अस्मिन् बिम्बे महादेव सर्वदा वस वै प्रभो । पुंसामनुग्रहार्थाय पृथिवीं स्वेच्छया प्रभो ॥५॥ परावरेण भावेन स्थातव्यं सर्वदा त्वया । सर्वविघ्नहरः पुंसां सर्वदुःखहरः सदा ॥६॥ सर्वदा यजमानस्य इच्छासम्पत् करो भव । नमस्ते सर्वधर्माय सन्तोषविजितात्मने ॥७॥ ज्ञानविज्ञानतृप्ताय ब्रह्मतेजोऽभिशालिने । नमस्ते शुद्धदेहाय पुरुषाय महात्मने ॥८॥ स्थापकानाञ्च भूतानां शिल्पिनां वर्णिनां तथा । ग्रामदेशनृपाणाञ्च शान्तिर्भवतु सर्वदा ॥९॥ पूजकाराधकानाञ्च भक्तानां भक्तवत्सल । सर्वेषाञ्च जगन्नाथ इच्छाशक्तिप्रदो भव ॥१०॥ चन्द्रार्कावनिपर्यन्तं बिम्बेऽस्मिन् परमेश्वर । स्वशक्त्या सह संतिष्ठ सर्वलोका (काला) नुकम्पया ॥११॥ यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत्त्वयाऽत्र देवेश स्थातव्यं स्वेच्छया प्रभो ॥१२॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यावान् विधिरनुष्ठितः । स सर्वस्त्वत्प्रसादेन समग्रो भवतान्मम् ॥१३॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि भगवन् यन्मया कृतम् । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥१४॥ इति साष्टाङ्गपातं प्रणमेत् । ततः शिवमन्दिरं कर्तृनामयुतं कुर्यात् अमुकेश्वरः - इति, अन्यदेवतास्वसम्भवाद्यथेष्टं नाम कुर्याद्देवतानिदर्शकम् । जलमादाय-अस्मिन् प्रासादे प्रतिष्ठापितासु प्रतिमासु यावच्चन्द्रदिवाकरौ देवकलासान्निध्यहेतवे कृतेन प्राणप्रतिष्ठामहापूजनादिकर्मणा सपरिवारः अमुकदेवः प्रीयताम् ॥ इतिप्राणप्रतिष्ठामहापूजनादि ॥

७२ प्रतिष्ठाहोमः ।

यजमानो मण्डपमागत्य-आज्येन प्रतिष्ठाहोमं कुर्यात्-१ ॐ शिवायस्थिरोभव स्वाहा २ ॐ शिवाय अप्रमेयो भव स्वाहा ३ ॐ शिवाय अनादि बोधो भव स्वाहा ४ ॐ शिवाय नित्यो भव

स्वाहा । ॐ शिवाय सर्वदो भव स्वाहा । ६ ॐ शिवाय अविनाशो भव स्वाहा । ७ ॐ शिवाय अक्रमो भव स्वाहा । ९ शिवाय कृत्यो भव स्वाहा । मयूखे तु सप्तैव आहुतयः । शिवशब्दोल्लेखाच्छिवप्रतिष्ठायामावश्यकः । अन्यप्रतिष्ठासु चिकीर्षितश्चेद् ऊहेन-विष्णवे स्थिरो भव स्वाहा-इत्यादिरीत्या कार्यः ।

(अन्वेदिनामाज्यहोमः)

आचार्यादयः - स्वे स्वे कुण्डे अग्न्यादि देवता उद्दिश्य आज्येन जुहुयुः । १ अग्नये स्वाहा । २ सोमाय स्वाहा । ३ धन्वन्तरये स्वाहा । ४ कुह्वै स्वाहा । ५ अनुमत्यै स्वाहा । ६ प्रजापतये स्वाहा । ७ परमेष्ठिने स्वाहा । ८ ब्रह्मणे स्वाहा । ९ अग्नये स्वाहा । १० सोमाय स्वाहा । ११ अग्नयेऽन्नादाय स्वाहा । १२ अग्नयेऽन्नपतये स्वाहा । १३ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । १४ सर्वेभ्यो भूतेभ्यः स्वाहा । १५ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । १६ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।

७३ अघोरहोमः ।

'शतेन स्थापयेत्' इति वचनात् सर्षपैः घृताक्ततिलैर्वा ॐ अघोरेभ्यो० इति मन्त्रेणाचार्य कुण्डे १०८ अष्टोत्तरशतं जुहुयात् ।

१ स्थापित देवताहोमः प्रणवादि चतुर्थ्यन्त देवतानामान्ते स्वाहा पदं योजनीयमिति प्रतिष्ठेन्दौ मन्त्रप्रकाशवचनात् ॐ ब्रह्मणे स्वाहा० इत्यादि प्रतिपादितम् । स एकैकाज्याहुत्या वा दश दश तिलाहुतिभिराचार्यकुण्डे कार्यः । तत्र क्रमः - १ मण्डलदेवता होमः । १ शेषादिमनुष्यान्तदेवता होमः । २ योगिनी होमः । क्षेत्रपालभैरवान्यतर होमश्च । २ व्याहृति होमः ।

अयं व्याहृतिहोमो ग्रहयज्ञस्य प्रधानहोमरूपः, न तु होमकालिकप्रायश्चित्तनिवारणैकफल इति शास्त्रार्थप्रकरणे प्रतिपादितम् । तथापि वीरमित्रोदये इत्थं तत्संकल्पवाक्यम् । जलमादाय-अस्मिन् होमकर्मणि (ब्रह्माद्यन्तरागमन-प्रणीताप्रोक्षणीस्कन्दन-हविः स्थितकीट पतङ्गादिज्वलनमन्त्रवर्णविपर्यय-स्वाहाकार, समकालिक-आहुतिप्रक्षेपाभावादि होमकालिक समस्तदोष परिहारार्थं । ग्रहमखस्य प्रधानसहोमत्वेन समस्त व्याहृतिभि राज्येन तिलैर्वा अयुत १०००० संख्यया (अष्टोत्तरसहस्र १००८ संख्यया) व्याहृति होमं करिष्ये । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा-नवकुण्ड्यां प्रतिकुण्डं एको ब्राह्मणः, आचार्यकुण्डे द्वौ १० मालाः, पञ्चकुण्ड्यां प्रतिकुण्डं २ द्वौ १० मालाः, एककुण्डे १० ब्राह्मणाः १० मालाः - इत्ययुतहोमः । सहस्रहोमपक्षे एकया मालया होमः, विभागः उपरिवत् ।

(काम्याः फलसर्षपगुग्गुलुलक्ष्मीहोमाः कृताकृताः)

याज्ञिकसम्प्रदायात् प्रथमो ग्रहेभ्यः फलहोमः । फलानि सच्छिद्राणि खण्डितानि घृताक्तानि वा जुहुयात्-सूर्यः - द्राक्षा ॐ आकृष्णेन० स्वाहा । २ चन्द्रः - इक्षुः - ॐ इमन्देवा० । ३ भौमः - पूगीफलं - ॐ अग्निर्म्मूर्धा० । ४ बुधः - नारिङ्गम् - ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने० । ५ गुरुः - जम्बीरम् (गधालिम्बु) ॐ बृहस्पते० । ६ शुक्रः - बीजपूरकम् (बीजोरु) - ॐ अन्नात् परिस्रुतो० । शनिः - उनती (कमलकाकडी) ॐ शन्नोदेवी० । ८ राहुः - नारिकेलखण्डम् - ॐ कयानश्चित्र० । ९ केतुः - दाडिमम् - ॐ केतुं कृण्वन्न० इति फलहोमः । सर्षपहोमस्तान्त्रिकः सकलशत्रुविनाशार्थं सर्षपहोमं करिष्ये-घृताक्तसर्षपानादाय ॐ सजोषाऽइन्द्र सगणो मरुद्भि ३ सोमम्पिब व्वृत्रहा शूर व्विद्वान् । जहि शत्रूँ २ रपमृधो नुदस्वाथाभयङ्कृणुहि विश्वतो न ६ स्वाहा - इदमिन्द्राय न मम । (आभिचारिकत्वादुदकोपस्पर्शः) । मम सकलशान्त्यर्थं गुग्गुलुहोमं करिष्ये-घृताक्त गुग्गुलु होमः - ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० मृतात् स्वाहा इदं रुद्राय न मम (रौद्रत्वादुदकोपस्पर्शः) । लक्ष्मी होमः - मम सकुटुम्बस्य सकलदुःख दारिद्र्य दौर्भाग्य-अलक्ष्मी निवृत्तिपूर्वकं सकलसुख सौभाग्य दशविधलक्ष्मी प्राप्तये फलेन आज्येन च लक्ष्मीहोमं करिष्ये । दूर्वा दधि हरिद्रातकमलबीज बिल्व खण्डान्येकीकृत्य-१ ॐ सदसस्पतिमद्भुतं प्प्रियमिन्द्रस्य काम्म्यम् । सनिम्मेधामयासिषऽस्वाहा । २ ॐ याम्मेधान्देव गणाः पितरश्श्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा । ३ ॐ मेधाम्मे व्वरुणो ददातु मेधामग्निः ७ प्रजापति ६ । मेधामिन्द्रश्श्च व्वायुश्श्च मेधान्धाता ददातु मे स्वाहा । ४ ॐ इदम्मे ब्रह्मचक्ष- त्रश्चोभे श्रियमश्नुताम् । मयि देवा दधतु श्श्रियमुत्तमान्तस्यै ते स्वाहा । (३२-१३ तः १६) ५ ॐ श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्मनीषाणाम्प्रार्पण ६ सोमगोपा ६ । व्वसु ÷ सूनु ७ सहसोऽअप्सु राजा विभात्यग्रऽउषसामिधान ७ स्वाहा ॥१२-२२॥

ततः आज्येन श्रीसूक्तेन प्रत्यृचं होमं कुर्यात् - १ ॐ हिरण्यवर्णां० २ ताम्म० ३ अश्वपूर्वां० ४ कांसोस्मितां० ५ चन्द्रां प्रभासां० ६ आदित्यवर्णे० ७ उपैतुमां० ८ क्षुत्पिपासा० ९ गन्धद्वारां० १० मनसः काम० ११ कर्दमेन प्रजा० १२ आपः स्रजन्तु० १३ आर्द्रां पुष्करिणीम्पुष्टिं० १४ आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं० १५ ताम्मऽआवह० पुरुषानहम्-स्वाहा-इति १५ आज्याहुतीर्दत्वा- अनेन लक्ष्मीहोमकर्मणा मम सकुटुम्बस्य सुखसौभाग्य बहुविधलक्ष्मीप्राप्तिरस्तु । अनेन महालक्ष्मीः प्रीयताम् ।

इति प्रधानतन्त्रम् ।

७४ उत्तरतन्त्रम् ।

(शान्तिकपौष्टिकादिषु उत्तरतन्त्रस्यायं क्रमः - पूजा स्विष्टं नवाहुत्यो बलिः पूर्णाहुतिस्तथा । संस्रवादिविमोकान्तं होमशेषसमापनम् । श्रेयः संपादनं दानमभिषेको विसर्जनम्-इति ।)

जलमादाय-अद्य० पू० तिथौ समस्तभक्तजनग्रामजनदेशजनकल्याणाय मम च सकुटुम्बस्य श्रेयसे कृतस्य सग्रहमखसप्रासाददिनत्रय-साध्यसपरिवार-अमुकदेवताऽचलप्रतिष्ठाकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं मृडाग्नेः स्थापितदेवतानाञ्च उत्तरपूजनं करिष्ये । अग्निं ध्यायेत्-ॐ अग्ग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव व्वयुनानि व्विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं व्विधेम ॥५-३६॥ ॐ भू० मृडाग्नये नमः ध्यायामि । पञ्चोपचारैः सम्पूज्य-अनया पूजया मृडाग्निः प्रीयताम् ।

स्थापनक्रमेण स्थापितदेवतानां पूजनम् - ॐ गणानान्त्वा० सिध्दिबुद्धि सहितं श्रीमन्महागणाधिपतिं ध्यायामि । ॐ समक्ख्ये देव्या० वसोः पवि-त्रमसि० वसोर्धारासमन्वितसगणेशगौर्याद्यावाहितमातृः ध्यायामि ॥ ॐ वास्तोष्पते० मण्डदेवतासहित वास्तुपुरुषं ध्यायामि । ब्रह्मजज्ञानं० (इदं विष्णुः० त्र्यम्बकं यजामहे० अम्बे अम्बिके०) मण्डलदेवतासहितां सपरिवारां अमुकदेवतां ध्यायामि । उदुत्यञ्चातवेदसं० (शेषादिमनुष्यान्तदेवता सहिताः) मण्डलदेवतासहितां सपरिवारां अमुकदेवतां ध्यायामि । उदुत्यञ्जातवेदसं० (शेषादिमनुष्यान्तदेवता सहिताः) सूर्यादि ग्रहमण्डलदेवताः ध्यायामि । ॐ योगे योगे० महाकाल्यादिसहिताः अमुकादि योगिनीमण्डलदेवताः ध्यायामि । नहिस्पश० अजरादिक्षेत्रपालान् ध्यायामि । नमऽउग्राय च भीमाय च (यो भूतानामधिपति०) श्रीदुभैरवादि चतुःषष्टि भैरवान् ध्यायामि । ततः - ॐ स्थापितदेवतासहिताय सपरिवाराय अमुकदेवाय (स्थापितदेवतासहितायै सपरिवारायै अमुकदेवतायैः नमः - पञ्चोपचारैः सम्पूज्य नमस्कुर्यात् - ॐ व्विश्वानि देवसवितर्दु रितानि परासुव । यद्भद्रन्तन्नऽआसुव ॥ ॐ स्थापितदेवतासहिताय सपरिवाराय अमुकदेवाय नमः प्रार्थनापूर्वकं नमस्कारान् समर्पयामि ॥ अनेन पूजनेन स्थापितदेवतासहितः सपरिवारः अमुकदेवः प्रीयताम् ॥ इत्युत्तर पूजनम् ।

७५ स्विष्टकृद्धोमः नवाहुतयः ।

(पूर्वं प्रतिदिनं स्विष्टकृद्धोमः कृतश्चेत् तृतीये पूर्णाहुति दिने कृतहोमावशिष्ट द्रव्यादाहुतिद्वयपर्याप्तं तत्तद्धविः द्विवारमाज्यं च स्विष्टकृद्धोमार्थं स्रुचि प्रक्षिपेत् । अथवा पूर्वदिनद्वयकृतहोमावशिष्टं घृतप्लुतं संरक्षितं हविः, तृतीयदिनावशिष्ट आहुति द्वयपर्याप्तं हविः स्रुचि एकीकृत्य स्विष्टकृद्धोमं कुर्यात् । समिधां स्विष्टकृद्धोमो न भवति ।)

आचार्यकुम्डे यजमान आचार्यो वा ब्रह्मा चोपविशेत् । अन्येषु कुण्डेषु कुण्डाचार्याः कुण्डब्रह्माणश्च उपविशेयुः । सोपयमनकुशं सव्यहस्तं हृदये धृत्वा दक्षिणं जानु आच्य ब्रह्मणा कुशेन प्रकोष्ठे अन्वारब्धः हविःशेषपूरितां स्रुचमादाय - ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा-इदमग्नये स्विष्टकृते न मम (इति त्यागः संस्रवश्च, अस्या आहुते रुद्रदेवताकत्वाद् उदकोस्पर्शः) ततः स्रुवेण आज्येन नवाहुतीर्जुहुयात् - १ ॐ भूः स्वाहा-इदमग्नये न मम । २ ॐ भुवः स्वाहा-इदं वायवे न मम । ३ ॐ स्वः स्वाहा-इदं सूर्याय न मम । ४ ॐ त्वन्नोऽअग्ग्ने व्वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो व्वह्नितम

शोशुचानो व्विश्वा द्वेषां ७ सि प्रमुमुग्ध्यस्मत्-स्वाहा (२१-३) इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । ५ ॐ सत्वन्नोऽअग्नेवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्वनो व्वरुण ६ रराणो व्वीहि मृडीक ६ सुहवो नऽएधि-स्वाहा-२१-४- इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ।। ६ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमयाअसि । अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषज ७ स्वाहा-इदमग्नये अयसे न मम ।। ७ ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोऽअद्य सवितोत व्विष्णुर्व्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा - इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ।। ८ ॐ उदुत्तमं व्वरुण पाशमस्मदवाधमं व्विमध्यम ७ श्रथाय । अथा व्वयमादित्यव्रते त्वा नागसोऽअदितये स्याम-स्वाहा-१२-१२-इदं वरुणायादित्यायादितये च न मम ।। ९ ॐ प्रजापतये (उपांशु) स्वाहा-इदं प्रजापतये (उपांशु) न मम ।। इति नवाहुतयः । (ऋग्वेदिनां भिन्ना आहुतयः) अयाश्चाग्ने, येतेशतं० इति मन्त्रौ सौत्रौ लुप्तशाखीयौ ।

७६ बलिदानम् ।

(प्रतिकुण्डं दशदिक्षु आचार्यकुण्डस्य दशदिक्षु मण्डपस्यान्तभागे बहिर्वा भूमौ दशदिक्पाल बलीन् दद्यात् । तत्तद्देवतापीठपुरतः देवताबलीन्, मण्डपादुत्तरे चत्वरे वा छागप्रत्याम्नायरूपेण कूष्माण्डबलिं क्षेत्रपालमुद्दिश्य दद्यात् । तत्र पिष्टमयदीपसहितमाषपायसादिरूपं वासिष्ठग्रहमखोक्ततत्तद्ग्रहनैवेद्यरूप पूरिकाकंसारवटकलड्डुकादि सहितं यथादेशाचारं बलिदानं कार्यम् ।)

यजमानः सम्यगुपविश्य तत्र तत्र प्रज्वालितदीपसहितान् बलीन् निधाय-जलमादाय-कृतकर्मसाङ्गतासिद्ध्यर्थमिन्द्रादि दशदिक्पालानां स्थापितदेवतानाञ्च पूजनपूर्वकं बलिदानं करिष्ये-तत्र दिक्पालानां पृथक् पृथगेकतन्त्रेण वा यथासमयं कार्यम् । एकतन्त्रेण बलिदानम्-ॐ प्राच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहाप्रतीच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहो दीच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहोर्द्ध्वायै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहा ।।२२-२५।। इन्द्रादिदशदिक्पालान् साङ्गान् सपरिवारान् सायुधान् सशक्तिकान् एभिर्गन्धाद्युपचारैर्वोऽहं पूजयामि । जलमादाय-इन्द्रादि दश दिक्पालेभ्यः साङ्गेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्यः, इमान् आसादितान् सदीपमाषभक्तबलीन् समर्पयामि । नमस्कुर्यात्-भो इन्द्रादि दश दिक्पालाः दिशो रक्षत, बलीन् भक्षत, मम सकुटुम्बस्य अभ्युदयं कुरुत । आयुःकर्तारः क्षेमकर्तारः शान्तिकर्तारः पुष्टिकर्तारः तुष्टिकर्तारः निर्विघ्नकर्तारः कल्याणकर्तारः सुखदाः वरदाः भवत । जलमादाय-अनेन बलिदानेन इन्द्रादि दश दिक्पालाः प्रीयन्ताम् ।

स्थापितदेवता बलिदानम्-१ गणेशस्य-ॐ गणानान्त्वा० सिद्धिबुद्धिसहितं श्रीमन्महागणाधिपतिं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकं एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । २ मातृकाणाम् - ॐ समख्ये देव्या० वसोः पवित्रमसि० वसोर्धारासमन्वितसगणेशगौर्याद्यावाहितमातृः साङ्गाः सपरिवाराः सायुधाः

सशक्तिकाः, एभिर्गन्धाद्युपचारैर्वोऽहं पूजयामि । ३ मण्डपाङ्गवास्तोः-ॐ वास्तोष्पते० मण्डलदेवता सहितं वास्तुपुरुषं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकं एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । ४ प्रधानदेवतायाः - ॐ ब्रह्मजज्ञानं० (इदं विष्णु० नमः शम्भवाय० अम्बे अम्बिके०) मण्डलदेवतासहितां प्रधानदेवतां साङ्गां सपरिवारां सायुधां सशक्तिकाम्, एभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । ५ ग्रहमण्डलदेवानाम्- ॐ आकृष्णेन० (शेषादिमनुष्यान्तदेवतासहिताः) ग्रहमण्डलदेवताः साङ्गा सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः, एभिर्गन्धाद्युपचारैर्वोऽहं पूजयामि । ६ योगिनीमण्डलदेवतानाम् - ॐ योगे योगे० महाकाल्यादिसहिताः अमुकादियोगिनीः साङ्गाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः, एभिर्गन्धाद्युपचारैर्वोऽहं पूजयामि । ७ क्षेत्रपाल (भैरव) देवानाम् - ॐ नहिस्पशं० यो भूताना० अजरादि क्षेत्रपालान् (श्रीमद्भैरवादि) चतुः षष्टि भैरवान्) साङ्गान् सपरिवारान् सायुधान् सशक्तिकान्, एभिर्गन्धाद्युपचारैर्वोऽहं पूजयामि । इति संपूज्य एकतन्त्रेण बलिदानम्-जलमादाय-स्थापितदेवतासहितायै अमुकदेवतायै साङ्गायै सपरिवारायै सायुधायै सशक्तिकायै नमः - इमान् सदीपमाषभक्त बलीन् समर्पयामि । नमस्कुर्यात् - भो भोः स्थापितदेवतासहिते अमुकदेवते, इमान् सदीपमाषभक्तबलीन् गृहाण गृहाण, मम सकुटुम्बस्य अभ्युदयं कुरु कुरु । आयुः कर्त्री क्षेमकर्त्री शान्तिकर्त्री पुष्टिकर्त्री निर्विघ्नकर्त्री कल्याणकर्त्री सुखदा वरदा भव । जलमादाय-अनेन पूजनपूर्वकं बलिदानेन स्थापितदेवतासहिता सपरिवारा अमुकदेवता प्रीयताम् ॥

क्षेत्रपालबलिदानम् ।

(कलौ मांसबलिनिषेधाच्छागपशुप्रत्याम्नायभूतकूष्माण्डेक्षुदण्डालाब्वन्यतमसहितं सदीपमाषभक्तादिकं मृत्पात्रे वंशपात्रे वा निधाय मण्डपादुत्तर आचाराचत्वरे दुर्ब्राह्मणद्वारा नीत्वा खड्गहस्तो यजमानश्चतुष्पथे क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात् । अत्र कूष्माण्डबलिदानं कृताकृतम् । केवलेन सदीपमाशपक्व पायसादिनाऽपि निर्वाहः ।) मण्डपादुत्तरे बहिर्दुर्ब्राह्मणेन वा चतुष्पथे बलिं निधाय-यजमानः जलमादाय-मम सकुटुम्बस्य भूतप्रेतपिशाचशाकिनीडाकिनीवेतालब्रह्मराक्षसादिजन्यसकलाधिव्याधिनिवृत्तिपूर्वकं दीर्घायुरारोग्यप्राप्त्यर्थं चत्त्वरे क्षेत्रपालाय बलिदानं करिष्ये । अक्षतान् गृहीत्वा-ॐ नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात् पुरऽएतारमग्नेः । एमेनमवृधन्नमृताऽअमर्त्यं वैश्वानरङ्क्षैत्रजित्याय देवाः ॥३३-६०॥ ॐ भूः भूतप्रेतादिसहितं क्षेत्रपालमावाहयामि । गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य - भूतप्रेतादिसहितं क्षेत्रपालं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकमेभिर्गन्धाद्युपचारैस्त्वामहं पूजयामि । कूष्माण्डसत्त्वे खड्गेन च्छेदयित्त्वा- जलमादाय-भूतप्रेतपिशाचशाकिनीडाकिनीवेतालादि परिवृताय क्षेत्रपालाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय अमुं (कूष्माण्डसहितं सदीपमाषभक्तादि बलिं समर्पयामि । प्रार्थयेत् - ॐ नमः क्षेत्रपाल त्वं भूतप्रेतगणैः सह । आयुरारोग्यमैश्वर्य सर्वदा देहि मे प्रभो ॥ भूतप्रेतादिसहित भो भो क्षेत्रपाल इमं (कूष्माण्डसहितं) बलिं गृहाण गृहाण मम सकुटुम्बस्य अभ्युदयं कुरु कुरु । आयुः कर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता निर्विघ्नकर्ता कल्याणकर्ता सुखदो वरदो भव ॥ मा विघ्नं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः । सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः - इति नत्वा जलमादाय - अनेन

(कूष्माण्डसहितेन) बलिदानेन भूतप्रेतादिसहितः क्षेत्रपालः प्रीयताम् । ततो बलिपरितो जलं क्षिप्त्वा पश्चादनवलोकयन् ॐ हिंकाराय स्वाहा॰ इति मन्त्रं पठन् मण्डपं प्रत्यागच्छेत् । मण्डपादुत्तरे बलिदाने कृते चतुष्पथे निधानाय दुर्ब्राह्मणेन बली नीयमाने तु तत्पश्चाज्जलमासिच्य मन्त्रं पठेत्-ॐ हिङ्काराय् स्वाहा् हिङ्कृताय् स्वाहा् क्रन्दते् स्वाहा॑ वक्रन्दाय् स्वाहा् प्रोथते् स्वाहा॑ प्रप्रोथाय स्वाहा॑ गन्धाय् स्वाहा॑ घ्राताय् स्वाहा् निविष्टाय् स्वाहोपविष्टाय् स्वाहा् सन्दिताय् स्वाहा् वल्गते् स्वाहाऽसीनाय् स्वाहा् शयानाय् स्वाहा् स्वपते् स्वाहा् जाग्रते् स्वाहा् कूजते् स्वाहा् प्रबुद्धाय् स्वाहा॑ विजृम्भमाणाय् स्वाहा् विचृत्ताय् स्वाहा् स ह हानाय् स्वाहोपस्थिताय् स्वाहा् यनाय् स्वाहा् प्रायणाय् स्वाहा॑ ॥२२-७॥ हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य मण्डपं प्रविशेत् ।

७७ पूर्णाहुतिः । वसोर्धारा ।

(एतद्विषये शास्त्रार्थप्रकरणे विवेचितम् । ततोऽवलोकनीयम् ।)

आचान्तो यजमान आचार्यकुण्डस्य पश्चादुपविश्य अन्ये कुण्डाचार्याश्च स्वस्वकुण्डपश्चिमत उपविश्य अद्य- पू० तिथौ मम सकुटुम्बस्य समस्तभक्तजनग्रामजनदेशजनकल्याणाय कृतस्य संग्रहमखसप्रासादअमुकदिनसाध्य-अचलप्रतिष्ठाकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं शुक्रज्योतिरित्याद्येकोन पञ्चाशद्मरुद्गणानां प्रीतये वसोर्धारासमन्वितं पूर्णाहुतिहोमं करिष्ये । आज्यपात्रान्नूतनमाज्यमादाय अग्नौ अधिश्रित्य स्रुक्स्रुवौ प्रतप्य संमार्जनकुशैः सम्मृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य स्वदक्षिणदेशे निदध्यात् । आज्यमुद्वास्य पवित्राभ्यामुत्पूय अवेक्ष्य अपद्रव्यं निरस्य पवित्रे प्रणीतासु निदध्यात् ।

ततः स्रुवेण स्रुचि द्वादशवारं चतुर्वारं वा आज्यं प्रक्षिप्य तदुपरिकर्मापवर्गसमित्सहितं वस्त्रगन्धपुष्पसौभाग्यद्रव्याद्यलङ्कृतं नारिकेलं निधाय स्रुङ्मूलं वामहस्तेन धृत्वा वामस्तनान्तमानीय तदुपरि अधोमुखं स्रुवं नारिकेलसहितं दक्षिणहस्तेन धृत्वा यजमानस्तिष्ठेत् । एवमेव अन्येऽपि कुण्डाचार्याः कृत्वा तिष्ठेयुः । ततः पूर्णाहुतिमन्त्रान् पठेयुः -

ऋग्वेदे - ॐ समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् । घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१॥ वयं नाम प्रब्रवामा घृतस्याऽस्मिन् यज्ञे धारया मा नमोभिः । उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् ॥२॥ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽअस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥३॥ त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् । इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४॥ एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे । घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५॥ सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति

यह्वाः । घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥ अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्य ः स्मयमानासो अग्निम् । घृतस्य धाराः समिधो न सन्तता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८॥ कन्या इव वहतु मे तवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते ॥९॥ अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त । इमं यज्ञं नयत देवतानो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते ॥१०॥ धामन् ते विश्वं भुवनमधिश्रितमन्तः समुद्रे हृद्य १ न्तरायुषि । अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११॥४-५८॥१ तः ११॥

१८

कृष्णयजुर्वेदे - ॐ सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा इत्याह सप्तैवास्य सामानि प्रीणाति । पूर्णया जुहोति पूर्ण इव हि प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्यै न्यूनया जुहोति न्यूनाद्धि प्रजापतिः प्रजा असृजत
१९ २०
प्रजानाᳪसृष्ट्या अग्निर्देवेभ्यो निवायत स दिशोऽनु प्राविशज्जुह्वन्मनसा दिशो ध्यायेत् दिग्भ्य एवैनमवरुन्धे,
२१
दध्ना पुरस्ता ज्जुहोत्याज्येनोपरिष्टात् तेजश्चैवास्मा इन्द्रियं च समीची दधाति, द्वादशकपालो वैश्वानरो
२२
भवति द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरोऽग्नि वैश्वानरः साक्षादेव वैश्वानर मव रुन्धे, यत् प्रयाजानुयाजान्
२३
कुर्याद् विकस्तिः सा यज्ञस्य दर्वि होमं करोति यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै, राष्ट्रं वै वैश्वानरो विण्मरुतो वैश्वानरᳪहुत्वा
२४
मारुतान् जुहोति राष्ट्र एव विशमनुबध्ना त्युच्चै वैश्वानरस्याऽऽश्रावयत्युपाᳪशु मारुतान् जुहोति तस्माद्राष्ट्रं
२५ २६
विशमति मारुता भवन्ति मरुतो वै देवानां विशो देवविशे नैवास्मै मनुष्य विशमव रुन्धे, सप्त भवन्ति
२७
सप्तगणा वै मरुतो गणश एव विशमव रुन्धे गणेन गणमनुद्रुत्य जुहोति विशमेवास्मा अनुवर्त्मानं करोति ॥५-४-७-१८ तः २८॥ पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्ने व विक्रीणा वहा इष मूर्जᳪशतक्रतो ॥१-८-४-१॥

शुक्लयजुर्वेदे-ॐ समुद्रादूर्म्मिर्म्मधुमाँ २ उदारदुपा ४ शुना सममृतत्वमानट् । घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१७-८९॥ व्वयन्नाम प्रब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारया मा नमोभिः । उपब्रह्मा शृणवच्छस्यमान ञ्चतु ÷ शृङ्गोवमीद् गौरऽएतत् ॥१७-९०॥ चत्त्वारि शृङ्गा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽअस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ २ऽआविवेश ॥१७-९१॥ त्रिधा हितम्पणिभिर्गुह्यमानङ्गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् । इन्द्र एक ᳪ सूर्य्यऽएकञ्जजान व्वेनादेक ᳪ स्वधया निष्टतक्षुः ॥१७-९२॥ एताऽअर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे । घृतस्य धाराऽअभिचाकशीमि हिरण्ययो व्वेतसो मध्यऽआसाम् ॥१७-९३॥ सम्यक् स्रवन्ति सरितो

न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमाना ꣳ । एते अर्षन्त्यूर्म्मयो घृतस्य मृगाऽइव क्षिपणो रीषमाणा ꣳ ॥१७-९४॥ सिन्धोरिव प्राद्ध्वने शूघनासो व्वातप्रमिय ꣳ पतयन्ति यह्वा ꣳ । घृतस्य धाराऽअरुषो न व्वाजी काष्ठाभिन्दन्नूर्म्मिभिः पिन्वमान ꣳ ॥१७-९५॥ अभिप्रवन्त समनेव योषा ꣳ कल्याण्यः स्स्मयमानासोऽअग्निम् । घृतस्य धारा ꣳ समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्य्यति जातवेदा ꣳ ॥१७-९६॥ कन्न्याऽइव व्वहतु मे तवाऽउऽअञ्ज्यानाऽअभिचाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धाराऽअभितत्पवन्ते ॥१७-९७॥ अभ्यर्षत सुष्टुतिङ्गव्व्यमाजिमस्म्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त । इमं य्यज्ञन्नयत देवतानो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१७-९८॥ धामन्ते व्विश्वम्भुवन मधिश्रितमन्त ꣳ समुद्रे हृद्यन्तरायुषि । अपामनीके समिथे यऽआभृतस्तमश्याम मधुमन्तन्तऽऊर्म्मिम् ॥१७-९९॥ पुनस्त्वादित्या रुद्रा व्वसव ꣳ समि न्धताम्पुनर्ब्रह्माणो व्वसुनीथ यज्ञै ꣳ । घृतेन त्वन्तन्न्वं व्वर्द्धयस्व सत्या ꣳ सन्तु यजमानस्य कामा ꣳ ॥१२-४४॥ मूर्द्धानन्दिवोऽअरतिम्पृथिव्व्या वैश्वानरमृतऽआजातमग्निम् । कविꣳ सम्म्राजमतिथिञ्जनानामासन्ना पात्रञ्जनयन्त देवा ꣳ ॥३३-८॥ सप्त तेऽअग्ने समिधः सप्त जिह्वा ꣳ सप्तऽऋषय ꣳ सप्त धाम प्रियाणि । सप्त होत्रा ꣳ सप्तधा त्त्वा यजन्ति सप्त योनी रापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥१७-७९॥

२र २र २र ५र ३ ४र ५ २र ३ ४र ५ २र ३ ४र ५ २र
सामवेदे - ॐ हाउ । हाउ । हाउ । आज्यदोहम् । आज्यदोहम् आज्यदोहम् । मूर्द्धा
१र ३ १ २ ३ ४ ५ २र १र ५ १ र २र ३ ४ ५ २ १ ५
नन्दायि । वा ३ अर । तिम्पृथिव्याः । वैश्वानराम् । ऋतया । जातमग्निम् । कविꣳसम्रा । जा ३
१ २ ३ ४ ५ २र १ २ १ २ ३ ४ ५ २र २र २र ५र ३ ४ ५
मति । थिंजनानाम् । आसन्नः पा । त्रा ३ अन । यन्तदेवाः । हाउ । हाउ । हाउ । आज्यदोहम् ।
२र ३ ४ ५ २र ३ ४ २र २र १ २ २र ५र १ २ २र २र २ ३
आज्यदोहम् । आज्यदो ५ हाउ । वा । ए । आज्यदोहम् । ए । आज्यदोहम् । ए । आज्यदोहा
१ १ १ १ ५र ५र २र २ २ १ २ २ १ ५ २ १ २ २र १२
२ ३ ४ ५ म् ॥१॥ हाउ । हाउ । हाउ । हुम् । चिदोहम् । चिदोहम् । चिदोहम् । मूर्द्धानन्दायि ॥
२ १ २ ३ ४ ५ २र १र २ १ २ ५र ३ ४ ५ २ १ २ १
वा ३ अर । तिंपृथिव्याः वैश्वानराम् । ऋतआ । जातमग्निम् । कविꣳसम्रा । जा ३ मति ।
२ ३ ४ ५ २र १ २ १ ५ ३ ४ ५ २र २र २र ५ २ १ २
थिंजनानाम् । आसन्नः पा । त्राअन । यन्तदेवाः । हाउ । हाउ । हाउ । हुम् । चिंदोहम् ।
५ १ ५ २ १ ३ १ १ १ १ २र २र २र १ २ १ २
चिदोहम् । चिदो २ हाउ । वा ३ । इ २ ३ ४ ५ ॥२॥ हाउ । हाउ । हाउ । ज्योहम् । ज्योहम् ।
१ ५ २र १र २ १ २ ३ ४ ५ २र २र ५ १ र ५र ३ ४ ५ २ १
ज्योहम् । मूर्द्धानन्दायि । वा ३ अर । तिंपृथिव्याः । वैश्वानराम् । ऋतआ । जातमग्निम् । कविꣳ

२ १ २ ३ ४ ५ २र १ २ १ २ ३ ४ ५ २र २र २र
सम्रा । जा ३ मति । र्थिजनानाम् । आसन्नः पा । त्रा ३ अन । यन्तदेवाः । हाउ । हाउ । हाउ ।
१ २ १ २ २र २ ५ २ १
च्योहम् । च्योहम् । च्यो ३ हाउ । वा ३ । ए ३ ऋतम् ॥ आ० प्र० प्र० साम-१६-१७-१८ ॥

अथर्ववेद - ॐ अभ्यर्ऽर्चत सुष्टुतिङ्गव्यं माजिमस्मासु भद्रा द्रविणानिधत्त । इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम् ॥१॥ मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन । मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् ॥२॥ इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मात्वा निक्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः । क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥३॥ अन्वग्निरुषसामग्रं मरख्यदन्वठानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यं उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आविवेश ॥४॥ प्रत्यग्नि रुषसामग्रमरव्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः । प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावा पृथिवी आततान ॥५॥ घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे । घृतं ते देवीर्नप्त्य १ आवहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने ॥७-८२-१ तः ६॥ पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तान्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय । तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥७-८०-१॥

शु० यजु० ॐ पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत । व्वस्नेव व्विक्रीणा वहाऽइषमूर्ज्जह शतक्रतो ॥३-४९॥ अथ प्रातरहुते वा हुते वा यतरथा कामयेत सोऽस्या अनिरशितायै कुर्म्यै दर्व्यो यहन्ति पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत । व्वस्नेव विक्रीणा वहाऽइषमूर्जं ह शतक्रतो स्वाहा - इदमद्भ्यः वसुरुद्रादित्येभ्यः, अग्नये वैश्वानराय, सप्तवतेऽग्नये शतक्रतवे च नमम ॥ (इति प्रोक्षण्यां संस्रवः, त्यागोच्चारणम् ।)

वसोर्धारा ।

ततो वह्नेरुपरि स्तम्भद्वयविधृतामौदुम्बरीं सकोटरामार्द्रामृज्वीं चतुर्हस्तां बाहुमात्रां वा स्रुचं धृत्वा तदुपरि शृङ्खलावधृतेन निर्मलघृतपूरितसच्छिद्र ताम्रादि कुम्भेन पात्रान्तरेण वा स्रुच्याज्यं निक्षिपन् अविच्छिन्नया घृतधारया वसोर्धाराहोमं कुर्यात् । (आचारात् स्रुङ्मुखे पूगीफलं निदध्यात्) ऋग्वेदे-ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥१॥ अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एहवक्षति ॥२॥ अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥३॥ अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद् देवेषु गच्छति ॥४॥ अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्र श्रवस्तमः । देवो देवेभिरागमत् ॥५॥ यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेतत् सत्यमङ्गिरः ॥६॥ उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥७॥ राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥८॥ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वानः स्वस्तये ॥९॥ १-१-१ तः ९॥

ॐ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥१॥ रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयो हतम् । द्रुणा सधस्थमासदत् ॥२॥ वरिवोधातमोभव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥३॥ अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा । अभि वाजमुतश्रवः ॥४॥ त्वामच्छाचरामसि तदिदर्थं दिवे दिवे । इन्दो त्वेन आशसः ॥५॥ पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥६॥ तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश । स्वसारः पार्ये दिवि ॥७॥ तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् । त्रिधातु वारणं मधु ॥८॥ अभी३ममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् । सोममिन्द्राय पातवे ॥९॥ अस्ये दिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते । शूरो मघा च मंहते ॥१०॥९-१-१ तः १०॥

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥१६॥ इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूहळ मस्य पांसुरे ॥१७॥ त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥१८॥ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१९॥ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥२०॥ तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥२१॥१-२२-१६ तः २१॥

ॐ कद् रुद्राय प्रचेतसे मीहळुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे ॥१॥ यथानो अदितिः करत पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥२॥ यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चि केतति । यथा विश्वे सजोषसः ॥३॥ गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् । तच्छंय्योः सुम्नमीमहे ॥४॥ यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठोदेवानां वसुः ॥५॥ शंनः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥६॥ अस्मे सोम श्रियमधि निधेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥७॥ मा नः साम परिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आन इन्दो वाजे भज ॥८॥ यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य । मूर्धानाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥९॥१-४३-१ तः ९॥ सहस्रशीर्षा० १६ ॥ विष्णोर्नुक० १-१५४-१ तः ६॥

कृष्णयजुर्वेद-ॐ वसोर्धारां जुहोति वसोर्मे धाराऽसदिति वा एषा हूयते घृतस्य वा एन मेषा धाराऽमुष्मिंल्लोके पिन्वमानोपं तिष्ठत, आज्येन जुहोति तेजो वा आज्यं तेजो वसोर्धारा तेज सैवास्मै

(१)

तेजोऽवरुन्धे, ऽथो कामा वै वसोर्धाराकामाने वावरुन्धे, यं कामयेत प्राणानस्यान्नाद्यं विछिन्द्यामिति विग्राहं तस्य जुहुयात् प्राणानेवास्यान्नाद्यं विच्छिनत्ति, यं कामयेत प्राणानस्यान्नाद्यऽसंतनुयामिति सन्ततां तस्य जुहुयात् प्राणानेवास्यान्नाद्यऽसंतनोति, द्वादश द्वादशानि जुहोति द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सरेणैवास्मा अन्नमव रुन्धे, ऽन्नं च मेऽक्षुंच म इत्याहैतद्वा अन्नस्य रूपऽरूपेणैवान्नमव रुन्धे, ऽग्निश्च म आपश्च म इत्याहैषा वा अन्नस्य योनिः सयोन्येवान्नमवरुन्धे, ऽ र्धेन्द्राणि जुहोति देवता

एवावरुन्धे यत् सर्वेषामर्धमिन्द्रः प्रति तस्मादिन्द्रो देवतानां भूयिष्ठ भाक्तम इन्द्रमुत्तर माहेन्द्रियमेवास्मिन्नुपरिष्टाद् दधाति, यज्ञायुधानि जुहोति यज्ञो वै यज्ञायुधानि यज्ञमेवाव रुन्धेऽथो एतद्वै यज्ञस्य रूप९रूपेणैव यज्ञमव रुन्धे, ऽ वभृथश्च स्वगाकारश्च म इत्याह स्वगाकृत्या अग्निश्च मे घर्मश्च म इत्याहैतद्वै ब्रह्मवर्चसस्य रूप ९ रूपेणैव ब्रह्मवर्चसमवरुन्धे, ऋक् च मे साम च म इत्याहैतद्वै छन्दसा ९ रूप ९ रूपेणैव छन्दा ९ स्यवरुन्धे, गर्भाश्च मे वत्साश्च म इत्याहैतद्वै पशूना ९ रूप ९ रूपेणैव पशूनवरुन्धे कल्पान् जुहोत्य क्लृप्तस्य क्लृप्त्यै, युग्मदयुजे जुहोति मिथुनत्वायोत्तरा वती भवतोऽभिक्रान्त्या, एकाचमे तिस्रश्च म इत्याह देवछन्दसं वा एका च तिस्रश्च मनुष्य छन्दसं चतस्रश्चाष्टौ च देवछन्दसं चैव मनुष्य छन्दसं चाव रुन्ध, आत्रय स्त्रि९शतो जुहोति त्रयस्त्रि९ शद्वै देवता देवता एवाव रुन्ध आऽष्टा चत्वारि९ शतो जुहोत्यष्टाचत्वारि९ शदक्षरा जगती जागताः पशवो जगत्यैवास्मै पशूनव रुन्धे वाजश्च प्रसवश्चेति द्वादश जुहोति द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सर एव प्रति तिष्ठति ॥५-४-८॥

ॐ एका च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे सप्त च मे नव च म एकादश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे नवदश च म एकवि ९ शतिश्च मे त्रयोवि ६ शतिश्च मे पञ्चवि ९ शतिश्च मे सप्तवि ९ शतिश्च मे नववि ६ शतिश्च म एकत्रि ९ शच्च मे त्रयस्त्रि ९ शच्च मे (१) चतस्रश्च मेऽष्टौ च मे द्वादशच मे षोडश च मे वि ९ शतिश्च मे चतुर्वि ६ शतिश्च मेऽष्टावि ९ शतिश्च मे द्वात्रि ६ शच्च मे षट्त्रि ९ शच्च मे चत्वारि शच्च मे चतुश्चत्वारि ९ शच्च मेऽष्टाचत्वारि ९ शच्च मे वाजश्च प्रसवश्चापिजश्च क्रतुश्च सुवश्च मुर्धाच व्यश्नियश्चा (२) ऽऽन्त्यायनश्चान्त्यश्च भौवनश्च भुवनश्चाधिपतिश्च ॥४-७-११॥

शुक्लयजुर्वेदे-ॐ शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्ज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च । शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यह हा ६ ॥१७-८०॥ ईदृङ्चान्यादृङ्च सदृङ्च प्रतिसदृङ्च । मितश्च सम्मितश्च सभरा ६ ॥१७-८१॥ ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च । धर्ता च विधर्त्ता च विधारय ६ ॥१७-८२॥ ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च । अन्तिं मित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गण ७ ॥१७-८३॥ ईदृक्षासऽएतादृक्षासऽऊषुणं ÷ सदृक्षास ६ प्रति सदृक्षासऽएतन । मितासश्च सम्मितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञेऽअस्मिन् ॥१७-८४॥ स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च ।* क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥१७-८५॥ उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्वाँ श्चाभियुग्वा च विक्षिप ६ स्वाहा ॥३९-७॥ इन्द्रन्दैवी र्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानो भवन्यथेन्द्रन्दैवीर्विशो मरुतो नु वर्त्मानो भवन् । एवमिमं यजमानन्दैवीश्चविशो मानुषी श्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥१७-८६॥ इम९स्तनमूर्जस्वन्तन्धयापा म्प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये । उत्सञ्जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रिय ६ सदन माविशस्व ॥१७-८७॥ घृतम्मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम । अनुष्वधमावह मादयस्य स्वाहा कृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥१७-८८॥ वसो ६ पवि-त्रमसि शतधारं वसो ६ पवि-त्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसो ६ पवि-त्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्ष ७ ॥१-३॥

आग्नेयसूक्तम्-ॐ समास्त्वाग्नऽऋतवो व्वर्द्धयन्तु संव्वत्सराऽऋषयो यानि सत्या । सन्दिव्येन दीदिहि रोचनेन व्विश्वाऽआभाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥२७-१॥ सञ्चेध्यस्वाग्ने प्रचबोधयैन मुच्च तिष्ठ महते सौभगाय । मा चरिष दुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशस ÷ सन्तु मान्ये ॥२७-२॥ त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणाऽइमे शिवोऽअग्ने संव्वरणे भवान ६ । सपत्न हानो अभिमातिजिच स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥२७-३॥ इहैवाग्नेऽअधि धारया रयिम्मात्वा निक्रन् पूर्व्वचितो निकारिण ÷ । क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता व्वर्द्धतान्ते अनिष्टृत ६ ॥२७-४॥ क्षत्रेणाग्ने स्वायु ६ स ह रभस्व मित्रधेये यतस्व । सजातानाम्मद्ध्यमस्थाऽएधिरा ज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥२७-५॥ अतिनिहोऽअतिस्रिधोत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने । व्विश्वाह्यग्ने दुरिता सह स्वाथास्मभ्य ह सहवीरा ५ रयिन्दा ६ ॥२७-६॥ अनाधृष्यो जातवेदाऽअनिष्टृतो व्विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह । व्विश्वाऽआशा ६ प्रमुञ्चन्मानुषीर्भिय ३ शिवेभिरद्य परिपाहिनो व्वृधे ॥२७-७॥ बृहस्पते सवितर्बोधयैन ह स ह शितञ्चित्सन्तरा ५ स ह शिशाधि । व्वर्द्धयैनम्महते सौभगाय व्विश्व एनमनुमदन्तु देवा ३ ॥२७-८॥ अमुत्र भूयाद धयद्यमस्य बृहस्पतेऽअभि शस्तेरमुञ्च ६ । प्रत्यौहता मश्विना मृत्यु मस्म्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभि ६ ॥२७-९॥

विष्णुसूक्तम् - ॐ व्विष्णोर्नु कं व्वीर्य्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजा७सि । योऽअस्कभायदुत्तर ह सधस्थं व्विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो व्विष्णवेत्वा ॥५-१८॥ दिवो वा व्विष्णऽउत वा पृथिव्व्यामहो वा विष्णऽउरोरन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता व्वसुना पृणस्वाप्रयच्छ दक्षिणा दोत सव्व्याद् व्विष्णवेत्वा ॥५-१९॥ प्रतद्विष्णुस्तवते व्वीर्य्येण मृगोन भीम ३ कुचरो गिरिष्ठा ३ । यस्योरुषु त्रिषु व्विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि व्विश्वा ॥५-२०॥ व्विष्णो रराटमसि व्विष्णो ६ श्नप्त्रे स्थो व्विष्णो ६ स्यूरसि व्विष्णो र्ध्रुवोसि । वैष्णवमसि व्विष्णवे त्वा ॥५-२१॥ इदं व्विष्णुर्व्वि चक्रमेत्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा७सुरे स्वाहा ॥५-१५॥ त्रीणि पदा व्विचक्रमे व्विष्णुर्गोपाऽअदाभ्य ६ । अतो धर्म्माणि धारयन् ॥३४-४३॥ सहस्रशीर्षा० १६

रुद्रसूक्तम् - ॐ नमस्ते रुद्रमन्यव० इति सकलोऽध्यायः । नमस्ते० इति षोडशर्चोऽनुवाकः । मानस्तोके० नमः शम्भवाय० इमा रुद्राय० त्र्यम्बकं यजामहे० ।

इन्दुसूक्तम् - ॐ आप्यायस्व समेतुते व्विश्वत ÷ सोम व्वृष्ण्यम् । भवा व्वाजस्य सङ्गथे ॥१२-११२॥ सन्ते पया७सि समु यन्तु व्वाजा ६ सं व्वृष्ण्यान्यभिमातिषाह ÷ । आप्यायमानोऽअमृतायसोम दिवि श्रवा७स्युत्तमानिधिष्व ॥१२-११३॥ आप्यायस्व मदिन्तम सोम व्विश्वेभिर ह शुभि ÷ । भवान ६ सुप्रथस्तम ६ सखा व्वृधे ॥१२-११४॥

चमकम् - वाजश्चमे० सकलश्चमकाध्यायः २८ ॥ एका च मे० चतस्रश्च मे० त्र्यविश्च मे० षष्ठवाट् च मे० व्वाजाय स्वाहा० आयुर्यज्ञेन कल्पतां० व्वेट् स्वाहा - इति षण्मन्त्रा वा ॥

२र २र २र ३र ५र ३र २र ३र २र ५र १ १ र
महावैश्वानरसाम - ॐ हाउ । हाउ । हाउ । ओ हा । ओ हा । ओहायि । वयो होयि । वयो
१ ५र १ २ र १ ५ र १ २ र १ २ १ ५ १ २ १
होयि । वयो होयि । पयो होयि । पयो होयि । पयो होयि । चक्षुर्होयि । चक्षुर्होयि । चक्षुर्होयि ।
२ र १ २ र १ ५ र १ २ र २ ५ र १ २ र १ २र १
श्रोत्र९होयि । श्रोत्र९होयि । श्रोत्र९होयि । आयुर्होयि । आयुर्होयि । आयुर्होयि । तपोहोयि ।
२र १ २र १ २र १ २र १ २र १ ५र ५ १ २र र १ २र र १
तपोहोयि । तपोहोयि । वर्चोहोयि । वर्चोहोयि । वर्चोहोयि । तेजोहोयि । तेजोहोयि । तेजोहोयि ।
५ १ २ १ ५ १ २र १ २र १ २र १ २ १ र २
सुवर्होयि । सुवर्होयि । सुवर्होयि । ज्योतिर्होयि । ज्योतिर्होयि । ज्योतिर्होयि । प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य
१र २ १र र र र र १र २ २र र १र २१र २ १र
नूमा २३ हाः । प्रनो वचो विदथा जातवेदा २३ सायि । वैश्वानराय मतिर्नव्यसेश २३ चीः । सोम
२ र ५ १ २ ५र ५र २र ३र५र ३र५र ३र२र ३र५र
इव पवते चासरग्ना २३ या३यि । हाउ । हाउ । हाउ । ओहा । ओहा । ओहा । ओहायि ।
२र १ २र १ २र १ २र १ २र १ २र १ २ १ २ १
वयोहोयि । वयोहोयि । वयोहोयि । पयोहोयि । पयोहोयि । पयोहोयि । चक्षुर्होयि । चक्षुर्होयि ।
२ १ ५र १ २र १ २र १ ५र १ २र १ ५र १
चक्षुर्होयि । श्रोत्र९होयि । श्रोत्र९होयि । श्रोत्र९होयि । आयुर्होयि । आयुर्होयि । आयुर्होयि ।
२र १ २र १ २र १ २र १ ५र १ २र १ २र १ २र १
तपोहोयि । तपोहोयि । तपोहोयि । वर्चोहोयि । वर्चोहोयि । वर्चोहोयि । तेजोहोयि । तेजोहोयि ।
५र १ २ १ ५ १ २ १ ५र १ २र १ ५र १ ३
तेजोहोयि । सुवर्होयि । सुवर्होयि । सुवर्होयि । ज्योतिर्होयि । ज्योतिर्होयि । ज्योतिर्होयि । वा २३४
१र र २र २ १ २ १ र २ २र १ र १र २ १ २र २र ५ १ २र २ २ र ३
औहोवा । ए । अग्निः समुद्रमाक्षयत् । ए । अग्निर्मूर्द्धाभवदिवः । ए । आयुर्ज्ञा अस्मभ्य वर्चोधा देवेभ्या
११ ११ र र र ५र१ २र१ २र२ ५र १ २र १
२३४५ः ॥१॥ ओ३१म् । ओ३१म् । ओ३१म् । आयुः । आयुः । आयुः । ज्योतिः । ज्योतिः ।
२र १ ५र१र २ २र१र ५ ५र१र २ २र१र २ २ २र१र २ २ २र१र २
ज्योतिः । ज्योतो वा । ज्योतो वा । ज्योतो वा । ज्योतो वा हायि । ज्योतो वा हायि । ज्योतो वा
२ २ १५र र १र २ २र २र ५ १ १ र २र२१ २ १ २ १ २१र र २१र
हाउ । वा । इह स्वर्वैश्वानराय प्रदिशो ज्योतिर्बृहत् । इन्दुरिडासत्यं । सत्यं । सत्यं । सत्यो वा । सत्यो

र ५१र र २१र र २ ५१र र र ५११ र र २१ ५र १र
वा । सत्यो वा । सत्यो वा हायि । सत्यो वा हायि । सत्यो वा ३ हाउ २ वा । इह स्वर्वैश्वानराय

२ ५ र १र ५ १ २र ५ र र ५१र२ ५१र२ ५१र२ २१ र
प्रदिशोज्योतिर्बृहत् । कायमाणो वनातुवाम् । तुवाम् । तुवाम् । तुवोवा । तुवोवा । तुवोवा । तुवो वा

२ २ १ र २ २ १ र २ २ १ र २ २ १ र २ २१ २ १र
हायि । तुवो वा हायि । तुवो वा हायि । तुवो वा हायि । तुवो वा ३ हाउ । वा । इह स्वर्वैश्वानराय

२१२र १र १ १र२र१ २ १र २ १र २ १र २ १र २ २ १र २ २ १र
प्रदिशो ज्योतिर्बृहत् । द्यौर्भूतं पृथिवी । पृथिवी । पृथिवी । पृथिव्यो वा । पृथिव्यो वा । पृथिव्यो

र २ १र र ५ २ १र ५ र २ १र २ २ २१ २र १ र २१२र
वा । पृथिव्यो वा हायि । पृथिव्यो वा हायि । पृथिव्यो वा ३ हाउ । वा । इह स्वर्वैश्वानराय प्रदिशो

१र २ १ १ र र २१र र ५१र र २१र र २१र र ५ ५१र र
ज्योतिर्बृहत् यन्मातुरजगन्नयाः । अपाः । अपो वा । अपो वा । अपो वा । अपो वा हायि । अपो वा

५ २ १र र २ २१ २र १र २ १ २र १र २१ २ १र२ १र२ १र२
हायि । अपो वा ३ हाउ । वा । इह स्वर्वैश्वानराय प्रदिशो ज्योतिर्बृहत् । सहस्तेज आपः । आपः ।

१र २१ २र २१ २र २१ २र ५१ २र ५ ५१र र ५ २१र र
आपः । आपो वा । आपो वा । आपो वा । आपो वा हायि । आपो वा हायि । आपो वा ३

२ २ २र १र २१ २र १र २ ५ र र र ५र१
हाउ । इह स्वर्वैश्वानराय प्रदिशो ज्योतिर्बृहत् । न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनाम् । तनाम् । तनाम् । तनो

र २१ २र २१ १र २१र र २ २१र र २ २१र र २ २१ २र १र
वा । तनो वा । तनो वा । तनो वा हायि । तनो वा हायि । तनो वा ३ हाउ । वा । इह स्वर्वैश्वानराय

२१ २र १र २ १ २१र र र २ २ २र १र र २र २र र २र २र
प्रदिशो ज्योतिर्बृहत् । उषादिशो ज्योतिः । ज्योतिः । ज्योतिः । ज्योतो वा । ज्योतो वा । ज्योतो

५ २र १र र २ २र १र र २ २र २र र र २१ २र १र २१ २र
वा । ज्योतो वा हायि । ज्योति वा हायि । ज्योति वा ३ हाउ । वा । इह स्वर्वैश्वानराय प्रदिशो

१र ५ १ ५र र र ५१र र ५१र र ५१र र ५१र र
ज्योतिर्बृहत् । यद्वेरसन्निहाभूवाः । भूवाः । भूवाः । भूवो वा । भूवो वा । भूवो वा । भूवो वा

२ २१र र २ २१र र २ २१ ५१ १र ५१ २र १र ५ १
हायि । भूवो वा हायि । भूवो वा ३ हाउ । वा । इह स्वर्वैश्वानराय प्रदिशो ज्योतिर्बृहत् ।

२ २ २ २र २र २र २र १ २र १ २र १ २र १र
ओ३१म् । ओ३१म् । ओ३१म् । आयुः । आयुः । आयुः । ज्योतिः । ज्योतिः । ज्योतिः । ज्योतो

र ५र १र र ५र १र र ५ ५र १र र २ २र १र र २ २२र २र
वा । ज्योतो वा । ज्योतो वा हायि । ज्योतो वा हायि । ज्योतो वा ३ हाउ । वा । धर्मो मरुद्भिर्भुवनेषु

१ २१ २१
चक्रदत् । इट् इडा २३४५ ॥ आ० प्र० साम० ३-४ ॥ ज्येष्ठसाम पूर्णाहुती निर्दिष्टम् । बृहद्रथन्तरादिसामानि यथासमयं पठेत् ।

अथर्ववेद अग्निसूक्तम् - ॐ समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या । संदिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आभाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥ सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्च तिष्ठ महते सौभगाय । मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥ त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः । सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥ क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व । सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥४॥ अति निहो अति सृधो अत्यचित्तीरति द्विषः । विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥ २-६-१ तः ५॥

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः । सर्वास्ता अवरुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीऽच्छात् ॥१॥ निधिं निधिपा अभ्येऽनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु ये ३ न्ये । अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन् त्स्वर्गानरुक्षत् ॥२॥ अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त । नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥३॥ आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि । शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥४॥ इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप । आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥५॥ सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एनम् । मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत् सृजता पुरा मत् ॥६॥ अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया । कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रो ३ न्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥७॥ न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः समममान एति । अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥८॥ प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति । धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥९॥ समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् । यावन्तो देवा दिव्या ३ तपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥१०॥ १२-३-४१ तः ५० ॥

शु० यजु० ब्रा० ॐ सहैष यज्ञऽउवाच नग्नताया वै बिभेमीति का ते नग्नतेत्यभित एनमापरिस्तृणीयुरिति तस्मादेतमग्निमभितः परिस्तृणन्ति तृष्णाया वै बिभेमीति का ते तृप्तिरिति ब्राह्मणस्यैव तृप्तिमनुतृप्येयमिति तस्मात् सꣳस्थिते यज्ञे ब्राह्मणन्तर्पयीत वै ब्रूयाद्यज्ञमेवैतत्तर्पयति ॥१२॥ यत्कर्मणात्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्वान् स्विष्टꣳ सुहुतं करोतु स्वाहा ॥१३॥ ('अहुतादो मरुतः' इति श्रुतिवचनाद् वसोर्धाराया होमत्वेन परिगणनाभावादत्र त्यागोच्चारणम् । स्रुचोऽग्नौ प्रक्षेपः) इति वसोर्धारा ।

७८ भस्मधारण होमसंकल्प मुखमार्जन पवित्रप्रतिपत्ति पूर्णपात्रदानप्रणीताविमोकाः ॥

यजमानः - कुण्डाचार्याश्च स्वस्थाने उपविश्य - अग्नेरीशानीतो भस्म स्रुचाऽऽदाय भस्म धारयेयुः - ॐ श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञां विद्यां पुष्टिं श्रियं बलम् । तेज आयुष्यमारोग्यं देहि मे हव्य वाहन ॥ ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः - इति ललाटे - कश्यपस्य त्र्यायुषम् - इति कण्ठे । यद्देवेषु त्र्यायुषम् - इति बाह्वोः । तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् - इति हृदये । हस्तं प्रक्षाल्य ।

होमसंकल्पः - आघारादि पूर्णाहुति पर्यन्तं स्वैः स्वैः मन्त्रैः यस्यै यस्यै देवतायै यावद्यावत्संख्याकं हुतं सा सा देवता प्रीयताम् । संस्रवप्राशनम् । प्रणीतोदकेन पवित्राभ्यां मुखमार्जनम् । ग्रन्थिं विमोच्य अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः । ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम्-कृतकर्मसाङ्गतासिद्ध्यर्थं इदं पूर्णपात्रं तत्प्रत्याम्नायभूतं द्रव्यं वा तुभ्यमहं संप्रददे । यज० प्रतिगृह्यताम्-ब्रह्मा-ॐ द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु । ॐ स्वस्ति - इति ब्रह्मा ब्रूयात् ।

पश्चिमे प्रणीताविमोकः - तज्जलं यजमानशिरसि क्षिपेत् - ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् । परिस्तरणान्यग्नौ विसृजेत् ।

इति भस्मधारण होमसंकल्प संस्रवप्राशनादि प्रणीता विमोकान्तं कर्म ।

७९ प्रासादोत्सर्गः ।

यजमानः प्रासादसमीपे द्वारसमीपे वा उदङ्मुख उपविश्य साक्षत दर्भगन्धपुष्पादिसहित जलमादाय - अद्य० पू० तिथौ - इमं शिला-इष्टका-दारु पाषाण प्राकार बलभीगोपुर ध्वजशिखरसहितं अमुकदेवताकं प्रासादं समस्त भक्तजनग्रामजनदेशजन कल्याणाय प्रासाद प्रतिमादि सम्पादक यजमानानां मम च सकुटुम्बस्य समस्तपूर्वजानामुद्धारपूर्वकं अमुक लोकप्राप्त्यर्थं अमुकदेवताप्रीत्यर्थं सूर्याचन्द्रमसौ यावद् देवदिव्यकलातेजोऽभिवृद्धि पूर्वकं यथाधिकारं दर्शनपूजनार्थं समस्तभक्तेभ्यः अहं उत्सृज्ये । न मम - इति प्रासादसोपाने द्वारे वा जलमुत्सृज्य साष्टाङ्गं प्रणम्य स्वस्थानमागच्छेत् । ततः स्थापितदेवतानां नीराजनादि क्षमापनान्तं कर्म कुर्यात् ।

८० सद्यश्चतुर्थीकर्म कङ्कणमोचनम् ।

सद्यश्चतुर्थीकर्मणि चिकीर्षिते यजमानो ब्राह्मणो वा १ मधु २ हरिद्रा ३ सर्षपचन्दन यवपिष्ट ४ मनः शिलप्रियङ्गुपिष्ट इति द्रव्यचतुष्टयेन देवं विलेप्य संस्नाप्य संप्रोक्ष्य वा जलाधिवासे तदकरणे स्नपनविधौ देवदक्षिणहस्ते मन्त्राभिमन्त्रितं - यदा बध्नन्० इति मन्त्रेण बद्धमूर्णासूत्रं-ॐ मुञ्चन्तु मा

शपत्थ्यादथो व्वरुणयादुत । अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद् देव किल्बिषात् ॥१२-१०॥ इति मन्त्रेण विमुच्य देवपादयोः समर्पयेत् ॥

८१ नीराजनादि क्षमापनान्तम् । श्रेयोदानम् ।

मण्डपं समागत्य-मण्डपदेवतानां प्रासादस्थापितदेवतानाञ्चैकतन्त्रेण नीराजनं कृत्वा प्रदक्षिणां मन्त्रपुष्पाञ्जलिं विशेषार्घ प्रार्थनां नमस्कारान् क्षमापनञ्च कृत्वा श्रेयोदानमाचारप्राप्तं कुर्यात्-आचार्यः सऋत्विग् यजमानहस्ते-शिवा आपः सन्तु-इति जलम् । सौमनस्यमस्तु-इति पुष्पम् । अक्षतं चारिष्टं चास्तु-इत्यक्षतान्-दद्यात् । आचार्यो वरणगृहीतं साक्षत जलं पूगीफल मादाय-भवदनुज्ञया समस्तग्राम भक्त देश जलकल्याणाय चन्द्रसूर्यौ यावत् प्रतिमासु प्रासादे च देवकलासान्निध्यहेतवे एभिर्ब्राह्मणैः सह संकल्पित सग्रहमखसप्रासाद-अमुक दिनसाध्य सपरिवार अमुकदेवता अचलप्रतिष्ठाङ्गभूतं पूजन जपस्नपनन्यास होम प्रतिष्ठादि जन्यं यत् श्रेयः तेन श्रेयसा त्वं श्रेयस्वी भव-इत्युक्त्वा जलं यजमानहस्ते दद्यात् । यजमानः - श्रेयस्वी भवामि इति वदेत् । साक्षतपूगीफलं देवपादयोः समर्प्य प्रणमेत् ।

दानसंकल्पाः ।

यजमानः - आचार्याय गोनिष्क्रयं दद्यात्-जलमादाय-सकलजनपद श्रेयसे कृतस्य संग्रहमखसप्रासाद अमुक दिनसाध्य-सपरिवार-अमुकदेवता-अचलप्रतिष्ठा कर्मसाङ्गतासिद्धये आचार्याय सोपस्करां गां अथवा तन्निष्क्रयीभूतं द्रव्यं दास्ये । २ ब्रह्मणे वृषभदानम्-कृतकर्म साङ्गतासिद्ध्यर्थं ब्रह्मणे प्रत्यक्षं वृषभ मथवा तन्निष्क्रयी भूतं द्रव्यं दास्ये । ३ दक्षिणा संकल्पः- कृत० सिद्ध्यर्थं आचार्यादिभ्यो यथोत्साहं दक्षिणां दास्ये । ४ आचार्याय दशमहादानसंकल्पः- कर्मसाद्गुण्यहेतवे दशमहादाननिष्क्रयीभूतं द्रव्यं दास्ये । ५ मण्डपनिष्क्रयः - कृत० सिद्ध्यर्थं आचार्याय मण्डपनिष्क्रयीभूतं द्रव्यं दास्ये । ६ पीठदानसंकल्पः- इमानि पीठानि सोपस्कराणि आचार्याय वा मनसोद्दिष्टेभ्यो विप्रेभ्यो दातुमहमुत्सृज्ये । ७ घृतपात्रतिलपात्र छायापात्र चरुस्थाली संकल्पः - आचार्याय घृतपूरितं कांस्यपात्रं तिलपात्रं छायापात्रं तण्डुलपूरितां चरुस्थालीञ्च सदक्षिणां दास्ये । ८ ब्रह्मण आज्य स्थालीदानम् - कृत० सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणे घृतपूरितामाज्यस्थालीं सदक्षिणां दास्ये । ९ भूयसी दक्षिणा संकल्पः - कृत० सिद्ध्यर्थं आचार्यादिभ्य-अन्येभ्यश्च यथोत्साहं दक्षिणां दास्ये । १० मधुपर्कनिष्क्रय संकल्पः - कृत० सिद्ध्यर्थं वृतेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः आसनवस्त्रयज्ञोपवीतछत्रउपानत् कमण्डलुअक्षमालासुवर्णमुद्रिकादि प्रत्याम्नायभूतं महावस्त्रं पात्रं द्रव्यं वा दास्ये । ११ ब्राह्मणादिभोजनसंकल्पः-कृतकर्मसाङ्गतासिद्ध्यर्थं अद्य (यथा कालं वा) ब्राह्मणान् सुवासिनीः बटुकान् कुमारिकाः, सुहृदः, अतिथीन् अभ्यागतांश्च आश्रपत्रं यथोपपन्नेन मिष्टान्नभोजनेन तर्पयिष्ये ॥

मण्डपे वायव्यां स्नानपीठे पत्नीं वामतः कृत्वोपविष्टं सपरिवारं यजमानं स्थापन स्थापित

कलशेभ्यस्ताम्रपात्रे जलमादाय चतुर्वेदिन ऋत्विजः स्वशाखीया वा यथासमयं उत्तराभिषेकं अभिषेक विहितमन्त्रै दूर्वाम्रपल्लवैरुदङ्मुखास्तिष्ठन्तः कुर्युः । स्नात्वा स्नानवस्त्राण्याचार्याय दद्यात् । तदभावे वस्त्रनिष्क्रयीभूतं द्रव्यं दास्ये ॥

८२ ब्राह्मणपूजनम् । सत्कारः ।

परिहितनूतनवस्त्रो यजमानः आचान्तः - आचार्यादीन् यथा सम्भवं दक्षिणापात्रवस्त्रमुद्रिकादानादिना संपूज्य परितोषयेत् ।

आशीर्वादादि ।

सकुटुम्ब यजमानभाले तिलकं कृत्वा-आशीर्वादमन्त्रान् पठेत् । ब्राह्मणा हस्तेऽक्षतान् गृहीत्वा ऋग्वेदे-ॐ इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्व मस्मे । पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥२-२१-६॥ शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् । शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥१०-१६१-४॥ यथासमयं जटादिविकृति मन्त्रान् पठेत् ।

कृष्णयजुर्वेदे-ॐ शतमानं भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठत्यथो खलु यावतीः समा एष्यन् मन्येत तावन्मानऽस्स्यात् समृद्ध्या इमंमग्न आयुषेवर्च्चसे कृधीत्याहाऽऽ युरेवास्मिन् वर्चो दधाति विश्वे देवा जरदष्टि र्यथा सदित्याह जरदष्टिमेवैनं करोति ॥२-३-११-१०-११॥

शुक्ल यजुर्वेदे-ॐ शतमिन्नु शरदो० ॐ पुनस्त्वादित्या० ॐ तम्पत्नीभि० ॐ अथाध्वर्य्योः प्रतिगरोरात्० शतं भवति शतायुर्वै पुरुषः शतेन्द्रियऽआयुरेवेन्द्रियं वीर्य्यमात्मन् धत्ते ॥

२र १ र १ र १ २ १ १ २
सामवेदे-हाउ । ३ । यशो हाउ । ३ ॥ वर्चो हाउ । ३ । आस्मिन् हायि । २ ॥ आस्मिन् हा
१र ३र २ ३ १ २ १ २१र २ १ ४र २ ४र
३ १ उ वा २ । तये दिन्द्रावनं वसु । त्वं पुष्यसि मध्यमम् । सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि । न किष्ट्वा
१र २ र १ २ १ र १ २ १ १ २
गोषु वृण्वते । हाउ । ३ । यशो हाउ । ३ । वर्चो हाउ । ३ । आस्मिन् हायि । २ । आस्मिन् हा
१२ र र २ र १र २१२ ११ २ १र २ १ १ २र १२र
३ १ उ । वा २ । आयुर्विश्वायु विंश्वे विश्वमायुरशीमहि प्रजा न्त्वष्टरधि निधेह्यस्मे शतजीवेम शरदो
१ २ ११ ११
वयन्ते २३४५ ॥

अथर्ववेदे-आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधि निधेह्यस्मै । रायस्पोषं सवितरासुवास्मै शतजीवाति शरदस्तवायम् ॥

स्वस्त्यस्तु ते० यावद्भूमण्डलं० जीवेद्वर्षशतं० यावद्वीचीतरङ्गान्० सर्वेऽत्र० धनं धान्यं पशुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः । सर्वे जनाः सुखिनो भवन्तु । इति मन्त्रैः सर्वे ब्राह्मणा अक्षतैराशिषो दद्युः ॥

अग्निविसर्जनम् - ॐ गच्छ त्वं भगवन्नग्ने स्वस्थानं कुण्डमध्यतः । हव्यमादाय देवेभ्यः शीघ्रं देहि प्रसीद मे ॥१॥ गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थानं परमेश्वर । यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन ॥२॥ ॐ यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिङ्गच्छ स्वां योनिङ्गच्छ स्वाहा । एष ते यज्ञो यज्ञपते सह सूक्तवाकः सर्ववीरस्तज्जुषस्व स्वाहा ॥२२-८॥ भो यज्ञनारायण, स्वस्थानं गच्छ शुभे कर्मणि पुनरागमनमस्तु ॥

पीठदेवताविसर्जनम्-ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् । इष्ट कामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उपप्रयन्तु मरुतः सुदानवऽइन्द्रप्राशूर्भवा सचा ॥३४-५६॥ आवाहितदेवताः स्वस्वस्थानं गच्छत । शुभे शुभे कर्मणि पुनरागमनमस्तु ॥

कृतकर्मसाद्गुण्यार्थं प्रैषात्मकपुण्याहवाचनं करिष्ये । भो ब्राह्मणाः समस्त जनपदश्रेयसे कृतस्य सग्रहमख सप्रासाद अमुकदिन साध्यसपरिवार-अमुकदेवता अचल प्रतिष्ठा कर्मणः पुण्याहं० ३ कल्याणं० ३ ऋद्धिं० ३ स्वस्ति० ३ श्रीरस्त्विति ३ भवन्तो ब्रुवन्तु । प्रति प्रैषान् ब्राह्मणा दद्युः ।

८३ कर्मसमाप्तिः अवभृथस्नानविधिश्च ।

जलमादाय-समस्तग्रामभक्तदेशजनकल्याण सूर्याचन्द्रमसौ यावत् प्रासादे प्रतिमासु च देवकलासान्निध्यहेतवे मया (प्रतिनिधिभूतेन) एभिर्ब्राह्मणैः सह सग्रहमख सप्रासाद-अमुकदिन-साध्य-सपरिवार-अमुकदेवता-अचलप्रतिष्ठाकर्म सम्पादितं तत् कालक्रियाभक्तिश्रद्धाहीनं भवतां ब्राह्मणानां वचनात् सर्वभूतहृदयान्तर्यामिपरमेश्वरप्रसादात् सद्गुरुप्रसादाच्चतत्सर्वं परिपूर्णमस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु । ब्राह्मणाः - अस्तु परिपूर्णम् ॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् । ॐ विष्णवे नमो विष्णवे नमो विष्णवे नमः । कृतं कर्म तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ॥ कर्मान्ते आचमनं । प्राणायामः ॥ ब्राह्मणान् सुहृदः अतिथीन् अभ्यागतांश्च मिष्टान्नेन भोजयित्वा स्वयं भुक्त्वा यथासुखं विहरेत् ।

इति सप्रासाद सग्रहमख सर्वदेवताऽचलप्रतिष्ठा प्रयोगः समाप्तः ॥

अवभृथस्नानम् ।

(सोमयागस्य तृतीयसवनान्तेऽभृथेष्टिः श्रौते कर्मणि वरुणप्रघासावभृथेष्टिवद् विहिता । अवभृथेष्ट्यां विहितानां पशुयागानां पिष्टपशुयागानां वा प्राधान्यादस्य कर्मणः श्रौतमात्रविषयत्वमिति निर्विवादम् । तत्र सोमलिप्तग्रहचमसस्थालीपूतभृदादीनि पात्राणि समादाय अवभृथेष्टिकरणस्थानरूपजलाशयं प्रतिगमनम्, गमनसमये प्रारम्भेऽर्धमार्गे जलसमीपे च सामगानम् सोमलिप्तपात्राणां जलप्रक्षेपं कृत्वा वरुणप्रघासावभृथेष्टिवदवभृथेष्टिं कृत्वा सयजमाना ऋत्विजः स्नात्वा देवयजनस्थलमागत्य उदयनीयेष्टिं मित्रावरुणदेवताकं पशुयागं च यथोदितं कुर्युः अन्यच्चावभृथेष्टि विहितं कर्म सम्पादयेत् ।)

पुनश्चात्र विचारणीयम्, श्रौते कर्मणि मन्त्रमयी देवतेति सिद्धान्तेन स्थापनकलशमूर्त्यादीनाम-भावात्तत्रावभृथस्नानरूपं कर्म नितरां प्राधान्यमावहति, शान्तिकपौष्टिकादिकर्मसु तु स्थापनकलशसत्त्वात् कलशोदकानाञ्च सपरिवारस्य यजमानस्य उत्तराभिषेकरूपप्रतिपत्त्यर्थत्वाच्चात्रावभृथस्नानस्य स्वप्नेऽपि प्राप्तिः उत्तराभिषेकोत्तरं स्नानस्य विहितत्वात् ।

गत्यन्तराभावे प्रत्यक्षवचनाभावे च कदाचिदतिदेशो गृहीत सर्वत्र श्रौतातिदेशग्रहणे तु सकलं शान्तिकपौष्टिकादि कर्म व्याकुलितं भवेत् ।

तथापि लोकप्ररोचनार्थं याज्ञिकाः कुर्वन्तीति अस्माभिरवभृथस्नानप्रयोगो लिख्यते, वस्तुतस्तु शान्तिकपौष्टिकादिष्ववभृथेष्टेः संबन्धलेशोऽपि नास्तीति विद्वांसो विदाङ्कुर्वन्तु ।

अवभृथस्नानप्रयोगः ।

कुण्डाद् घटेन भस्म उद्धृत्य पूजासम्भारं पयो घृतं स्रुवं मत्स्यादीनां तोषाय चणकलाज पृथुकादिद्रव्यं कलशं चादाय ऋत्विक्सहितः सपीरः सपरिवारो यजमानो जलाशयं गच्छेत् । अर्धमार्गे क्षेत्रपालाय बलिंदद्यात् । जलसमीपे तटे सपत्नीको यजमानः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वोपविश्य आचमनम् । प्राणायामः । शान्तिपाठादि । जलमादाय-कृतकर्मसाद्गुण्यसिद्ध्यै सपरिवारोऽहं ऋत्विग्भिः सह प्रधानदेवताप्रीत्यर्थं तीर्थेऽवभृथस्नानं करिष्ये । गणेशस्मरणं पूजनं वा । प्रैषात्मकं पुण्याहवाचनम् । श्वेतवस्त्रे तण्डुलाष्टदले कलशं निधाय तत्र ॐ तत्त्वायामि० । इति वरुणमावाह्य पूर्वादिक्रमेण० १ मत्स्यै० मत्सीम्० । २ कूर्म्यै० कूर्म्मीम्० । ३ वाराह्यै० वाराहीम्० ४ मण्डूक्यै० मण्डूकीम्० ५ मकर्यै० मकरीम्० ६ ग्राहक्यै० ग्राहकीम्० ७ क्रौञ्चिक्यै० क्रौञ्चिकीम्-इत्यावाह्यमत्स्यादिसहित वरुणाय नमः - इति सम्पूजयेत् । ततो जलाशये - तत्त्वायामि० येतीर्थानि० सतीर्थं वरुणमावाह्य सम्पूज्य मत्स्यादि तृप्त्यर्थं भक्ष्यरूपेण चणकादिद्रव्यं पुरुषसूक्तेन जले पयः पञ्चामृतं वा सिञ्चेत् ।

जलाशये दर्भचतुष्टयेनवेदीं प्रकल्प्य घृतेन द्वाविंशत्याज्याहुतीर्दद्यात् १ आपो अस्मा० पूत एभि-

स्वाहा-इदं मातृभ्यो नमम् । २ आपोहिष्ठा० इदमद्भ्यो० ३ योवः शिवतमो० इदं अद्भ्यो० । ४ तस्माऽअरङ्ग० इदमद्भ्यो० । ५ इमम्मे वरुण० इदं वरुणाय० । ६ तत्त्वायामि० इदं वरुणाय० । ७ त्वन्नो अग्ने व्वरुणस्य० इदमग्नीवरुणाभ्यां० । ८ सत्वन्नो अग्ने० इदं अग्नीवरुणाभ्यां० । ९ उदुत्तमं वरुण० इदं वरुणायादित्यायादितये च० । १० अग्नये स्वाहा इदमग्नये० । ११ ॐ सोमाय० इदं सोमाय० । १२ सवित्रे स्वाहा इदं सवित्रे० । १३ सरस्वत्यै० इदं सरस्वत्यै० । १४ पूष्णे० इदं पूष्णे० । १५ बृहस्पतये० बृहस्पतये० । १६ इन्द्राय० इदमिन्द्राय० । १७ घोषाय० घोषाय० । १८ श्लोकाय० इदं श्लोकाय० । १९ अंशाय० इदमंशाय० । २० भगाय० इदं भगाय० । २१ अर्यम्णे० इदं अर्यम्णे० । २२ स्रुवेण चतुर्वारं स्रुचि आज्यं प्रक्षिप्य-ॐ अग्नेरनीकमप आविवेशापान्नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्य्यम् । दमे दमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रतिते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा ॥८-२४॥ इदमग्नये० ।

ततो जलमध्ये - ॐ वरुणाय नमः - इति बलिं दद्यात् । यन्त्रं देवताप्रतिमां वा सम्पूज्य जले निमज्जेत् - ॐ अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनो यासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देवरिषस्पाहि देवानां समिदसि ॥८-२७॥ इति जले निमज्ज्य प्रधानकलशादर्धं जलं क्षिप्त्वा पुनस्तीर्थजलेन कलशं प्रपूर्य कुण्डादानीतभस्म जले क्षिपेत्-ॐ आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत् स्योने कृणुध्व ꣳ सुरभा उ लोके । तस्मै नमन्ता जनय ꣳ सुपत्नीर्मातेव पुत्रम्बिभृताप्स्वेनत् ॥१२-३५॥ प्रक्षिप्तं भस्म आदाय तेन सर्वाङ्गमनुलिम्पेत् । ततः सर्वे स्नात्वाऽहतवासांसि परिधाय आत्मनः कुशैर्मार्जयेयुः । सूर्यं नत्वा सम्पूज्य ॐ ये तीर्त्थानि० तीर्थं प्रार्थ्य बहिरागत्य देवताविसर्जनं कृत्वा यन्त्रं देवतां वा भस्मघटं चादाय गीतवाद्यघोष पुरः सरं मण्डपमागत्य पूर्वद्वारेण प्रविश्य यन्त्रं वा कलशञ्च स्वस्थाने स्थापयित्वा घटावशिष्टं भस्म कुण्डे पुनः प्रक्षिपेत् ।

जलमादाय-अनेन समाचारप्राप्तेन आतिदेशिकेन अवभृथस्नानविधिना परमेश्वरः प्रीयताम् । इत्यवभृथस्नानप्रयोगः ।

८४ दिनद्वयसाध्यः पुनः प्रतिष्ठाप्रयोगः ।

(जीर्णप्रासादस्य संस्कारे क्रियमाणे प्रासादस्थितानामखण्डितानां मूर्त्तीनां चालनं कृत्वा सम्पन्ने प्रासादसंस्कारे चालितमूर्त्तीनां पुनः प्रतिष्ठाकर्म दिनद्वयेन सम्पादयितुं शक्यते । अथवा प्रासादस्य जीर्णभग्नादि दोषराहित्ये खण्डितजीर्णादिदोषदुष्टानां प्रतिमानां जीर्णोद्धारविधिना पूर्वं शुभदिने विसर्जनं कृत्वा नूतनप्रतिमानां प्रतिष्ठाऽपि दिनद्वयेन सम्पादनीया । तत्रायं विशेषः । जीर्णप्रासादसंस्कारे कृते चालितमूर्त्तीनां कुटीरहोमः जलाधिवासः, प्रासाद वास्तु प्रासादस्नपन प्रासाददिग्होमाना मनावश्यकत्वम् । प्रासादे दोषरहिते खण्डितभग्नात्यन्तजीर्णमूर्त्तीनामुद्धारे प्रासादवास्तुशान्तिं प्रासादस्नपनाधिवासन-दिग्होमानामभावः, अन्यत् सर्वं नूतनप्रतिष्ठावत् यामगोदाहनान्यतरकालं यावत् कुटीरहोम जलाधिवासौ कृत्वा सर्वं नूतन प्रतिष्ठावत् संक्षेपेण कार्यमिति विवेकः) चालनजीर्णोद्धारप्रयोगौ चाग्रे वक्ष्येते ।

प्रतिनिधि भूतो यजमानः पञ्चनवैकादशपञ्चदशान्यतम प्राजापत्यं पक्षमाश्रित्य द्रव्यरूपं प्रायश्चित्तं कुर्यात् । ततस्तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । शान्तिपाठादि । सं० प्रासादसंस्काराय चालितमूर्त्तीनां सग्रहमखं दिनद्वयसाध्यं पुनः प्रतिष्ठाकर्मकरिष्ये । आसनविधिः । दिग्रक्षणम् । कलशार्चनं । दीपपूजनम् । गणपतिपूजनम् । पुण्याहवाचनम् मातृकापूजनम् । वैश्वदेव संकल्पः । वसोर्धारापूजनम् । आयुष्यमन्त्रजपः, नान्दीश्राद्धं, ऋत्विग्वरणम् । दिग्रक्षणम् । पञ्चगव्यकरणम् । भूमिपूजनं । कुण्डदेवतापूजनम् । अग्निस्थापनम् । ब्रह्मादिमण्डलदेवतास्थापनम् । प्रधानदेवतास्थापनम् । ग्रहस्थापनम् । योगिनीनां क्षेत्रपालभैरवान्यतरेषां स्थापनपूजने कृताकृते । कुशकण्डिकां, ग्रहहोमान्तं कृत्वा । स्नपनविधिः । शान्तिकपौष्टिक मूर्त्तिमूर्त्यधिपतिलोकपाल स्थाप्यदेवताहोमव्याहृतिहोम तत्त्वन्यासहोमाः २८ वा ८ संख्यया कार्याः । प्रासादप्रोक्षणम् । पञ्चगव्येन शुद्धिः । तत्त्वन्यासहोमः खड्गात् छुरिकाया वा (पृ० २९१) तः प्रासादतत्त्वानां पिण्डिकातत्त्वानां (पृ० २९२) च पुनः प्रासादे पिण्डिकायाञ्चन्यासः । शय्याधिवासः । (पृ० २०१) तः तत्त्वन्यासाः, पूर्वगृहीतजलेन पुनः प्रतिन्यासः । सायम्पूजादि ।

द्वितीयेऽह्नि प्रतिष्ठा दिने स्थापितदेवता पूजनं मध्याह्नात् पूर्वं प्रतिमूर्त्ति मूर्तिपति लोकपाल स्थाप्यदेवतानां ८ संख्यया होमः । देवजागरणं । मण्डपात् प्रासादे नयनम् । अर्घदानम् । स्वस्वस्थाने स्थापनम् । पुनः प्रतिष्ठाविधिः । ॐ पुनर्म्मन॒ ÷ पुनरायुर्म्म॒ऽआग॑न् पुन॑ ÷ प्रा॒ण ३ पुन॑रा॒त्मा म॒ आग॑न् पुन॒श्चक्षु॒॑÷पुन॑ ÷ श्रोत्र॑म्म॒ऽआग॑न् । वै॒श्वा॒न॒रो अद॑ब्धस्तनू॒पा अ॒ग्निर्न॑ ÷ पातु दु॒रि॒ताद॑ व॒द्यात् ॥४-१५॥ सपरिवारं सर्वतत्त्वसहिताममुकदेवतां पुनःप्रतिष्ठापयामि इति तत्त्वकलशावशिष्टं सर्वं जलं देवशिरसि सिञ्चेत् । प्रतिष्ठामन्त्राः ध्रुव सूक्तम् । संस्काराः । प्रार्थना । महापूजादि ।

मण्डपमागत्य-अघोर होमः २८ संख्यया । स्थापितदेवता होमः । व्याहृतिहोमः । उत्तरपूजनादिसमाप्त्यन्तम् । स्नपने प्रथमादिसप्तमान्यतमपक्षेण स्नपनम् ।

८५ खण्डितादिदोषदुष्टप्रतिमाविसर्जने कृते दोषरहिते प्रासादे नूतनप्रतिमाप्रतिष्ठाक्रमः ।

आरम्भादिग्रह होमान्तं कृत्वा । कुटीरहोमे देवमन्त्रेण षट्पञ्चाशदाहुतयः । १ परंमृत्यो० २ अघोरेभ्यो० ३ त्र्यम्बकं० ४ यद्ग्रामे० अनेन मन्त्रचतुष्टयेन प्रत्येकं अष्टाष्ट संख्यया होमः । प्राणदा इति मन्त्रेण देवता घृतेनाभ्यज्य जलधारां कृत्वा मृदा पञ्चगव्येन पञ्चामृतेन देवं संशोध्य नेत्रे मधुसर्पिर्भ्यामापूर्य ॐ कृणुष्वपाजः० ५ द्रविणोदा० एभिर्मन्त्रै रभिमन्त्रितमूर्णासूत्रं देवदक्षिण हस्ते ॐ यदा बध्नन्० इति बद्ध्वा जलपात्र्यां वरुणतीर्थं सरः सागर मत्स्यादिमातृकासहितं वरुणमावाह्य-प्रतिमा जलेऽधिवासयेद् गोदोहनमात्रम् । ततः स्नपनविधिः । मूर्तिमूर्त्यधिपति लोकपाला वाहनम् ।

शय्याधिवासः । तत्त्वन्यास होमः । तत्त्वन्यासाः शान्तिकपौष्टिक होम-मूर्तिमूर्त्यधिपति लोकपाल होमस्थाप्यदेवताहोमव्याहृतिहोमाः । प्रासादप्रोक्षणम् । पिण्डिकाधिवासनम् । सायम्पूजनान्तम् ।

द्वितीयेऽहनि स्थापितदेवतापूजनम् । मूर्तिमूर्त्यधिपति लोकपालस्थाप्य देवताहोमः अष्टाष्ट संख्यया । देवमन्त्रतीर्थाभिमन्त्रित जलेन देवसेचनम् । प्रबोधनम् । अर्घदानम् । प्रासादनयनम् । मङ्गलपद्यादि । देवतानां स्थिरीकरणम् । मध्याह्नात् पूर्वं मुहूर्ते प्राणप्रतिष्ठाविधिः । प्रतिष्ठामन्त्राः । तत्तद्देवतासूक्तेन स्तुतिः । संस्काराः । प्रार्थना । महापूजादि ।

अघोरहोमः । स्थापित देवता होमः । उत्तरपूजनादि समाप्त्यन्तं नूतनप्रतिष्ठा विधिवत् सर्वं कार्यम् । अत्रापि स्नपनविधौ प्रथमादिसप्तमान्यतमपक्षेण स्नपनं कार्यम् । इति संक्षेपेण दिनद्वयसाध्ये प्रतिष्ठाप्रयोगे प्रयोग क्रमः सूचितः समयमर्यादामनुरुध्य ।

८६ एकदिनसाध्यप्रतिष्ठाप्रयोगः ।

(स्वल्पग्रामादिषु यजमानस्य द्रव्यसाधनशक्त्यभावे एकस्मिंल्लघुतमे प्रासादे भक्ता अचलप्रतिष्ठाकर्म एकेनैव दिनेन सम्पादयितुमिच्छन्ति । तत्र द्रव्यकार्पण्यं मूलं कारणम् । यावदुक्तशास्त्रानुरोधिप्रतिष्ठाङ्गभूत कर्मणामेकेन दिनेन सम्पादयितुमशक्यत्वात् तत्कर्मविधिद्रव्य होमादि संकोचः शिरसि समापतति । 'गुणविशेषे फलविशेषः' इति कात्यायन श्रौतसूत्रनिर्देशात् कर्मसंकोचात्फलसंकोचः स्वाभाविकः । पुनश्च पूर्वाह्णो वै देवाना'मिति श्रुतिवचनं मध्याह्नाद् द्विवादनात्पूर्वं वा देवकर्मरूपं प्राणप्रतिष्ठाकर्म सम्पादनीयमेव । तथाऽसंभवे केचिद्यजमानायाज्ञिकाश्च यथाकथञ्चिन् निर्वर्तयितुमीहन्ते, तेषां संतोषाय एकदिनसाध्यः प्रतिष्ठाप्रयोगक्रमो निर्दिश्यते ।)

प्रतिनिधिरूपो यजमान पञ्चदशैकादशान्यतरगोनिष्क्रय प्रायश्चित्तं द्रव्येण कुर्यात् । उदकोपस्पर्शः । तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । शान्तिपाठदेवतानमस्कारादि । प्रधानसङ्कल्पः - समस्तपूर्वजोद्धाराय चन्द्रसूर्यौ यावत् प्रतिमायां देवकलासान्निध्यहेतवे सग्रहमखां (सप्रसादां) अमुकदेवताऽचलप्रतिष्ठां सद्योऽधिवासपक्षेण करिष्ये । तदङ्गभूतानि कर्माणि यथाक्रमं करिष्ये । आसनविध्यादिदीपपूजनान्तम् । गणपतिपूजनम् । पुण्याहवाचनम् । मातृकापूजनम् । नान्दीश्राद्धम् । ऋत्विग्वरणम् । दिग्रक्षणम् । पञ्चगव्यकरणम् । भूम्यादिपूजनम् । अग्निस्थापनम् । मण्डले नाममन्त्रैर्देवतावाहनं कलशोपरि प्रतिमायां प्रधानपूजनम् । ग्रहस्थापनम् । प्रासादे चतुःषष्टिपदवास्तुमण्डले नाममन्त्रैर्बल्यन्तं वास्तुपूजनम् । कुशकण्डिका । आघाराज्यभागान्तेऽग्निपूजनम् । वराहुतिः । त्यागसङ्कल्पः । अष्टचतुर्द्वि संख्याभिर्ग्रहदेवताहोमः । स्थण्डिलान्तरेऽग्नौ देवमन्त्रेणाष्टाष्टसंख्यया कुटीरहोमः । देवं घृतेन 'प्राणदा०' इति अभ्यज्य जलधारां कृत्वा मृदा पञ्चामृतेन पञ्चगव्येन संशोध्य संस्नाप्य ३ अघोरेभ्यो० दीर्घायुस्त० मन्त्राभ्यामूर्णासूत्रमभिमन्त्र्य

ॐ यदा बध्नन्० इति दक्षिणहस्ते कङ्कणं बद्ध्वा गोदोहनमात्रकालं यावज्जलेऽधिवासयेत् देवं प्रबोध्य वेद्यां स्थापनम् ॥ पूर्वोक्त प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थस्नपनप्रकारान्यतमं पक्षं स्वीकृत्य १-४ ८-१६ एतदन्यतमपक्षेण कलशानासाद्य स्नपनविधिं तदङ्गभूतश्चान्यत् कर्म संक्षेपेण कुर्यात् । ततो मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालान् स्थण्डिलात् कुण्डाद्वा ईशाने कलशे आवाह्य देवं मण्डपं प्रवेश्य शय्यायां धान्येऽधिवास्य । होमान् कुर्यात् । शान्तिकपौष्टिकहोमः अष्टाष्टसंख्यया मूर्तिमूर्त्यधिपति लोकपालानाम्, अष्टाष्टसंख्यया स्थाप्यदेवस्य २८ अष्टाविंशतिसंख्यया, व्याहृतिहोमः २८ संख्यया । तत्त्वन्यासहोमः २८ वा ८ संख्यया । 'दैव्यायकर्मणे शुन्धध्वम्' इत्येकेन कलशेन प्रासादं संस्नाप्य गन्धादिना संपूज्य ॐ सहस्रशीर्षा० ह्रुलम्-इति प्रासादपुरुषं ध्यायेत् । पिण्डिकान्यासान् कृत्वा ॐ श्रीश्चते० इति पिण्डिकामधिवास्य पूजयेत् । तत्त्वन्यासे ॐ पुरुषात्मने नमः इत्यादि ३२ द्वात्रिंशन्न्यासात् कृत्वा कलशे निद्रामावाहयेत् । गोदोहनकालं यावद् विलम्ब्य देवं प्रबोध्य देवमन्त्रेण स्तुत्वा ॐ धामन्ते० इत्यर्घं दत्त्वा मण्डपादुत्थाप्य प्रासादप्रादक्षिण्येन द्वारसम्मुखं संस्थाप्य मङ्गलपद्यं प्रपठ्य गर्भगृहं प्रवेश्य पिण्डिकागर्ते रत्न-धातु-धान्य-औषधी मनः शीलहिरण्यादि निक्षिप्य निर्दिष्टस्थाने दृष्टिः पतेत् तथा शिल्पिद्वारा स्थिरीकुर्यात् ।

निश्चितमुहूर्ते प्राणप्रतिष्ठाविधिं सम्पाद्य संस्कारान् प्रणवेन विभाव्य देवसूक्तेन मन्त्रेण वा स्तुत्वा प्रार्थयित्वा महापूजां कृत्वा प्रार्थयेत् । मण्डपे अघोरमन्त्रेण अष्टा हुतयः । स्थापितदेवताहोमः । उत्तरपूजनादि प्रणीताविमोकान्तम् । प्रासादोत्सर्गः । कङ्कणमोचनम् । नीराजनादि क्षमापनान्तम् । दानसङ्कल्पाः । ब्राह्मणपूजनं सत्कारश्च । तिलकाशीर्वादादि । अग्नि मण्डपस्थापितदेवताविसर्जनम् । कर्मसमाप्तिः । आचमनं प्राणायामः ।

इति एकदिनसाध्यः संक्षिप्ततमः प्रतिष्ठाप्रयोगः ।

८७ वापीकूपतडागोत्सर्गप्रयोगः ।

(वापीकूपतडागानां प्राच्यां प्रतीच्यां पूर्वे उत्तरे ऐशान्यां वा यथोक्तलक्षणं मण्डपं वा कृत्वा पञ्चकुण्डी मध्यवेदी पीठानि कार्याणि । अथवा मध्यवेदी पश्चिमे उत्तरे ईशाने वा समेखलं कुण्डं कुर्यात् । छायामण्डपे मध्ये कुण्डं प्राच्यां प्रधानवेदी चतुस्त्रिंशदंगुलायतविस्तृता हस्तोच्चा आग्नेय्यां गणपतिमातृकापीठं योगिनीपीठं ऐशान्यां क्षेत्रपाल पीठं ग्रहपीठम्, नैर्ऋत्यां वास्तुपीठम् । दिनद्वयसाध्य एकदिनसाध्यो वाऽयं प्रयोगः कार्यः । अत्रापि योगिनीक्षेत्रपालस्थापनं कृताकृतम् ।)

कर्ता प्रायश्चित्तं कृत्वा तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । शान्तिपाठदेवतानमस्कारादि सङ्कल्पः - समस्त पूर्वजानामुद्धारपूर्वकं ब्रह्मलोकनिवासहेतवे समस्तजीवानां तृप्तये सग्रहमख दिनद्वयसाध्यं, वापी (कूपतडाग प्रतिष्ठापनोत्सर्गाख्यं कर्म करिष्ये ।

(यथोक्तमण्डपकुण्डादिसत्त्वे मण्डपाद् बहिः गणेशपूजन पुण्याहवाचनमातृकापूजन नान्दीश्राद्धऋत्विग्वरणमधुपर्कार्चनवर्धिनीपूजन कर्माणि कृत्वा मण्डपं प्रविशेत् । छायामण्डपे तु मधुपर्कान्तं मण्डप एव, नात्र वर्धिनीपूजनमण्डपप्रवेशौ ।)

मण्डपे नैर्ऋत्यां पीठे द्वादशरेखाभिरेकविंशत्युत्तरशतपदात्मकं वास्तुमण्डलम् । शङ्कुरोपणम् । त्रिसूत्रवेष्टनम् । बलिदानम् । ततः पश्चिमादिप्रागन्त द्वादशरेखासूदक्संस्थं १ शान्त्यै० २ यशोवत्यै० ३ कान्त्यै० ४ विशालायै० ५ प्राणवाहिन्यै० ६ सत्यायै० ७ सुमत्यै० ८ नन्दायै० ९ सुभद्रायै० १० सुरथायै० ११ स्थिरायै० १२ विरजायै० इति रेखादेवताः पूजयेत् । दक्षिणादुदगन्तासु द्वादश रेखासु प्राक्संस्थं - १ हिरण्यायै० २ सुप्रभायै० ३ लक्ष्म्यै० ४ विभूत्यै० ५ विमलायै० ६ प्रियायै० ७ जयायै० ८ कालायै० ९ विशोकायै० १० इन्द्राण्यै० ११ विभवायै० १२ शिवायै० इत्यावाह्य पूजयेत् । ततो ब्रह्मादिवास्तुमण्डलदेवताः मध्ये कलशोपरि वास्तोष्पतिं चावाह्य पूजयेत् । तत एकतन्त्रेण बलिदानम् । इति बल्यन्तं वास्तुपूजनम् ।

अग्न्यायतनात् पश्चिमत उपविश्य - दिग्रक्षणं पञ्चगव्यकरणं भूम्यादिपूजनं कुण्डदेवतापूजनमग्निस्थापनं मध्यवेद्यां वारुणमण्डलदेवतास्थापनं प्रधानं वरुणञ्चावाह्य पूजयेत् ।

ततो वापीकूपतडागानामुत्तरे प्रधानवेदिकोपर्युत्तरभागे वा गर्तं कृत्वा यजमानप्रमाणमष्टास्रं कदंब-विकङ्कत-पलाश-बिल्व-न्यग्रोध-खदिर-काश्मर्य-उदुम्बर-मधूक-अर्जुन-प्लक्ष-बिभीतक-शाल्मलि-सार काष्ठान्यतमकाष्ठसम्भवं यूपं आपोहिष्ठा-३ अद्भिरभ्युक्ष्य ॐ ऊर्ध्व ऊषुण० इति मन्त्रेण गर्ते यूपं स्थिरीकृत्य सम्पूज्य वासोयुग्मेन संवेष्ट्य ॐ ऊर्ध्व ऊषुणं ऊतये तिष्ठा देवा न सविता । ऊर्ध्वो व्वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥११-४२॥ इति मन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ।

प्रधानवेद्यां वारुणं मण्डलं विरच्य यथोक्तप्रकारेण देवतावाहनपूजने कृत्वा कलशे मण्डूकादिदेवता आवाह्य ॐ तत्त्वायामि० इति प्रधानं सौवर्णं वरुणमावाहयेत् । तत्र सौवर्णं कूर्मं, ताम्रमयं मकरं, राजतौ मत्स्यदुन्दुभौ, कुलीरमण्डूकौ ताम्रमयौ, जलूकाशिशुमारौ आयसौ, हंसादिशुक्ल जलचरान् राजतान्, चक्रवाकादीन् सौवर्णान्, कृष्णान् सीसमयान् पद्मानि मरकतपद्मरागादि निर्मितानि रौप्यं नागाष्टकमन्यज्जलचरजातं सर्वान् वा सौवर्णराजतान्यतरान् वंशपात्रे प्रक्षाल्य निधाय संपूज्य ताम्रपात्र्यां वेद्युपरि स्थापयेत् । तत्पार्श्वे फलोशीरघृतदुग्धसहदेवी काकजङ्घापञ्चरत्नगन्धोदक पङ्कजार्घ्योदकपञ्चगव्यकुशयुतं तीर्थोदककुम्भं स्थापयेत् । वापीकूपतडागानां प्रतिष्ठापने वापीकूपतडागानां मध्यवेद्यां वा चतुर्षु कोणेषु धान्यपुञ्जेषु तीर्थोदकरत्नगन्धमाल्यपञ्चपल्लवोपेतान् सवस्त्रान् चतुरः कलशान् स्थापयेत् ।

ततो ग्रहस्थापनं पूजनञ्च । योगिनीक्षेत्रपालपूजनं कृताकृतम् । आधाराज्यभागान्तेऽग्निपूजनम् ।

त्यागसङ्कल्पः । ग्रहहोमः । होमकाले चतुर्वेदिनो द्वारपालाः शाखार्थप्रकरणोक्तानि स्वस्ववेदसूक्तानि पठेयुः ।

प्रधानहोमः - आज्येन - १ ॐ त्वन्नो अग्ने व्वरुणस्य० स्मत्स्वाहा-इदं वरुणाय० । २ सत्वन्नो अग्ने० एधि-स्वाहा-इदं वरुणाय० । ३ इमम्मे० चकेस्वाहा-इदं वरुणाय० । ४ तत्त्वायामि० । प्रमोषीः - स्वाहा-इदं वरुणाय० । ५ ये ते शतं० स्वर्काः - स्वाहा-इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यः मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च० । ६ अयाश्चाग्ने० भेषजꣳस्वाहा-इदमग्नये अयसे० । ७ उदुत्तमं० स्याम-स्वाहा-इदं वरुणायादित्यायादितये च नमम । ८ उरु ꣳ हि राजा व्वरुणश्चकार सूर्य्याय पन्थामन्वेतवाऽउ । अपदे पादा प्रति धातवे करुतापवक्ता हृदया विधश्चित् । नमो व्वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः स्वाहा-इदं वरुणाय० ९ वरुणस्यो० सीदस्वाहा-इदं वरुणाय० । १० अग्नेरनीकमप आविवेशापां नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्य्यम् । दमे दमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रतिते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा ८-२४ । इदमग्नयेऽनीकवते० । इति दशाज्याहुतीर्हुत्वा । यवमयचरुहोमः - अभिघार्य स्रुवेणादाय - १ ॐ अग्नये स्वाहा-इदमग्नये० । २ ॐ सोमाय स्वाहा-इदं सोमाय० । ३ ॐ वरुणाय स्वाहा-इदं वरुणाय० । ४ ॐ यज्ञाय स्वाहा इदं यज्ञाय० ५ ॐ भीमाय स्वाहा-इदं भीमाय० । ६ ॐ उग्राय स्वाहा-इदमुग्राय० । ७ ॐ शतक्रतवे स्वाहा-इदं शतक्रतवे० । ८ ॐ व्युष्ट्यै स्वाहा-इदं व्युष्ट्यै० । ९ स्वर्गाय स्वाहा-इदं स्वर्गाय० ।

ततो वारुणीभिः ऋग्भिः शम्युदुम्बरान्यतरसमिद्भिः दधिमधुघृताक्ताभिः पञ्चकुण्ड्यां प्रतिकुण्डं ब्राह्मणत्रयमुपविश्य - १ ॐ इमम्मे वरुण० २ तत्त्वायामि० ३ त्वंनो अग्ने० ४ सत्वन्नो अग्ने० ५ उदुत्तमं० इति पञ्चभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं द्वाविंशत्यावृत्त्या जुहुयात्-इति ११०० आहुतयः स्युः, विंशत्यावृत्त्या सहस्राहुतयः स्युः । एककुण्डसत्वे दश ब्राह्मणा उपविश्य प्रतिमन्त्रं विंशत्यावृत्त्या सहस्राहुतीः जुहुयुः ।

ततो वारुणमण्डलदेवतानां क्रमेण आज्येन लाजैश्च नाममन्त्रैरेकैकाहुतिः । अथवा तिलैर्दशदशाहुतीर्जुहुयात् । ततो वास्तुमण्डलदेवतानामेकैकाज्याहुतिं वा दशदशतिलाहुतीर्जुहुयात् । तिलैः ॐ अघोरेभ्यो० इति मन्त्रेण १०८ शान्तिहोमः । ततः उत्तरपूजनादि प्रणीता विमोकान्तं कुर्यात् । रात्रावधिवासनम् । रात्रौ जागरणादि कृत्वा प्रभाते द्वितीयेऽह्नि वक्ष्यमाणं कर्म कुर्यात् ।

सद्यः पक्षे तु शुभे लग्ने शुक्लवस्त्रं धृत्वा धृतोष्णीषः सोपस्करां जलपात्रीमादाय नदीतीर्थजलपूर्णं कलशं गृहीत्वा सयजमानो वेदमङ्गलघोषैर्जलाशयं गत्वा जलाशयमारामं देवतायतनं तडागं कूपं वा त्रिवृता सूत्रेण वाससा वा वेष्टयेत् । वापीकूपतडागसमीपे ध्वजमारोप्य ॐ तत्त्वायामि० इति वरुणमावाह्य सम्पूज्य प्रार्थयेत् । ॐ नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो ह्यपांपते । सान्निध्यं कुरु देवेश समुद्रे यद्वदत्र वै ॥ मित्रमित्रोऽसि भूतानां धनदो धनकाङ्क्षिणाम् । वैद्यो रोगाभिभूतानां शरणं शरणार्थिनाम्-इति ।

ततो जलाशये कूपे तडागे वाप्यां वा नाभिमात्रजले स्थित्वा पुरुषप्रमाणे जले ततोऽधिके वा जवे जलपात्रीस्थितान् कूर्ममकरादीन् जले प्रवाहयेत् । ततो जले पूर्वादिक्रमेण नागानक्षतैरावाहयेत् - १ ॐ अनन्ताय नमः २ महापद्माय नमः ३ तक्षकाय नमः ४ कुलिकाय नमः ५ शेषाय नमः ६ वासुकये नमः ७ पद्माय नमः ८ कर्कोटकाय नमः । अनन्तादीन् गन्धपुष्पैः संपूज्य पञ्चब्राह्मणैर्दध्युदकादिकलशं नदीतीर्थकलशजलञ्च ॐ आपोहिष्ठा० ३ मन्त्रत्रयेण जले क्षिपेत् ।

यष्टिरोपणम् - ततः खादिरशालवंशादिजां दोषरहितां यष्टिं संस्नाप्य गन्धाक्षतपुष्पमालासौभाग्यद्रव्यैः सम्पूज्य 'मनोजूतिरिति प्रतिष्ठाप्य मङ्गलघोषपुरःसरं वाप्यास्तडागस्य मध्ये स्थिरां रोपयेत् - ॐ सिद्धस्तम्भो जटापविश्वाप्सु स्थिताय हुं फट् अनन्ताय नागाधिपतये नमः - इति मन्त्रेण । ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० इति तामभिमन्त्र्य 'हुं फट्' इत्यभ्युक्ष्य पूजयेत् ।

ततो यजमानस्तडागस्य पुष्करिण्या वा दक्षिणत उदङ्मुखः कनकालङ्कृतसितवस्त्रवेष्टितां गां संपूज्य पुच्छमादायोत्तरति । छन्दोगः - सेतूँस्तर० इत्यादि साम गायति । तत उत्तीर्य सामगाय तां गां दत्त्वा सपरिवारो वारुणमन्त्रैर्जलेऽवगाह्य स्नायात् । वापीकूपयोर्गोरुत्तरणं नास्ति ।

ततस्तीरे प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा यजमानो जलाशयोत्सर्गं कुर्यात्-जलमादाय-अद्य० पू० तिथौ मम सकुटुम्बस्य सकलकामनापुरुषार्थादिसिद्ध्यै समस्तपितॄणामुद्धारपूर्वकं ब्रह्मलोकनिवाससिद्ध्यै समस्तजीवानां स्नानपानावगाहनार्थं अक्षय्यतृप्तिहेतवे सूर्याचन्द्रमसौ-यावद् इमां वापीं (पुष्करिणीं, इमं तडागं, इमं कूपं) सर्वभूतेभ्यः अहमुत्सृज्ये नमम-इति सङ्कल्पजलं जलाशये क्षिपेद् । मत्स्यादिजलमातृः संपूज्य मण्डपमागच्छेत् । ततो यथाशक्ति दक्षिणादानम् । दिनचतुष्टयमनिवारितमन्नदानम् । ब्राह्मणभोजनम् । तिलकाशीर्वादः । अग्निस्थापितदेवताविसर्जनम् कर्मब्रह्मार्पणम् । आचमनम् । प्राणायामः ।

इति वापीपुष्करिणीतडागकूपारामप्रतिष्ठाविधिः ।

८८ समाध्युत्सर्गः ।

(त्रिदण्डिनस्त्रैवर्णिकस्य द्विजस्य सन्यासिनो देहत्यागे तं देहं भूम्यादौ गर्ते पूरयित्वा प्रतापरुद्रीय तोरोपद्धत्तयुक्तविधिना नारायणबलिसमाराधनादि प्रयोगाद्यन्ते उक्ते काले तस्मिन् स्थले भक्तैः, पादुका, लिङ्गतुलसीवृन्दावन, एडकाद्यायतनान्यतमं प्रतिश्रयापर्यायं समाधिस्थानं क्रियते । प्रतिष्ठाहेमाद्री-येषां तडागादि शुभः प्रपाश्च आरामकूपाः प्रतिमाश्रयाश्च । अन्नप्रदानं मधुरा च वाणी तेषामयं वै परतश्च लोकः - इति वाक्ये प्रतिश्रयशब्देन संन्यासिनां महात्मनां समाधिस्थानं निर्दिष्टम् ।)

तत्र चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीचतुर्दशीभिन्नतिथौ कृष्णपक्षे दशम्याः प्राग् गुरुशुक्रास्तादि वर्जयित्वा उत्तरायणे शुभमासे दक्षिणायने पौषाषाढभाद्रपदादि वर्जयेत् । तत्र समाधिस्थाने शिवलिङ्गमेकादश्यां दशम्यां द्वादश्यां

वा विष्णोः गुरुपादुकाद्वयस्य पाषाणमयस्य उत्सर्गविधिं कुर्यात्। अयं प्रयोगः संन्यासिनः, नैष्ठिकब्रह्मचारिणां योगिनां महागुरूणाञ्च देहोत्सर्गमुद्दिस्य भूमिखाते जलनिक्षेपे दाहे वाऽपि देहत्यागभूमावन्यत्र वा समाधिस्थानं निर्माय सर्वव्यापकपुरुषरूपपरमात्मानमुद्दिश्य भवतीति विवेकः) ।

यजमानः - मम दश पूर्वान् दशापरान् माञ्च एकविंशतिपुरुषानुद्धर्तुं समस्तपूर्वजानां षष्टिसहस्रवर्षपर्यन्तं ब्रह्मलोके निवाससिद्ध्यर्थं श्री परमेश्वरप्रीत्यर्थं पाषाणादिवद्धगुरुपादुकाशिव-विष्ण्वन्यतम विहितस्थानस्य सग्रहमखसमुत्सर्गाख्यं कर्म करिष्ये । गणपतिपूजनम् । पुण्याहवाचनम् । मातृकापूजनम् नान्दीश्राद्धम् । ऋत्विग्वरणम् । दिग्रक्षणम् । पञ्चगव्यकरणम् । भूमिपूजनम् । वास्तुपीठे उपर्युक्त जलाशयोत्सर्गवत् एकविंशत्युत्तरशत १२१ पदात्मके द्वादशरेखात्मके वास्तुमण्डले मण्डलदेवतापूर्वकं कलशे वास्तुध्रुवमूर्त्योरावाहनं प्रतिष्ठां पूजनमेकतन्त्रेण पायसबलिदानञ्च कुर्यात् ।

ततः कुण्डे स्थण्डिले वा पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वा बलवर्धननामानं वह्निं संस्थाप्य पूजयेत् । ततो यूपप्रतिष्ठा-अष्टास्रः यजमानमानः त्र्यरत्निमितो वा खादिरादिमयो यूपः कार्यः । प्रधानवेदीतः पूर्वे मण्डपपक्षे मण्डपाद्बहिः पूर्वे यूपार्थमवटं जानुमात्रं खात्वा तत्र प्रागग्रान् दर्भानास्तीर्य अद्भिरभ्युक्ष्य सलक्षणं यूपं तैलहरिद्राभ्यामभ्यज्य ॐ ये तीर्थानि० ॐ आपोहिष्ठा० ३ इतिमन्त्रैः संस्नाप्य गौरसर्षपगोरोचन गुग्गुलु दुर्वानिम्बपत्रगर्भां पोटलिकां ॐ यदाबध्नन्निति मन्त्रेण बद्ध्वा ॐ युवासुवासा० इति वस्त्रेण वेष्टयेत् । ततो गर्ते हरिद्राकुङ्कुमदध्योदनाक्षतचन्दनदूर्वालाजांश्च प्रक्षिप्य ॐ ध्रुवासि० इति मन्त्रेण गर्ते स्थिरीकृत्य प्रतिष्ठाप्य कुङ्कुमादिना संपूज्य गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यदक्षिणादि दत्त्वा ॐ ऊर्ध्व ऊ षुणं ऊतये तिष्ठा देवो न सविता । ऊर्ध्वो व्वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥११-४२॥ इत्यभिमन्त्र्य नमस्कुर्यात् ।

वास्तुवेदेरुत्तरतः प्रधानवेद्यां वारुणमण्डलं सर्वतोभद्रं वा विरच्य वारुणमण्डले सूर्यादिदेवताः सर्वतोभद्रे ब्रह्मादिदेवता वाऽवाह्य पूजयेत् । एकतन्त्रेण मण्डलदेवतानां पायसबलिदानम् । मण्डलमध्ये कलशं संस्थाप्य पीठदेवता आवाह्य सुवर्णमूर्त्तिचतुष्टये - १ ॐ ब्रह्मजज्ञानं० ब्रह्मणे० ब्रह्माणं० २ इदं विष्णु० विष्णवे० विष्णुं० ३ श्रीश्चते० श्रियै० श्रियं० ४ आकृष्णेन० सूर्याय० सूर्यं० ततोऽष्टदिक्षु इन्द्रघष्टदिक्पालान् दश वा ॐ त्रातारमिन्द्र० इत्यादि मन्त्रैरावाह्य-ॐ भू० दिक्पालसहित ब्रह्मादि देवेभ्यो नमः इति पूजयेत् । प्रधानपीठादुत्तरे ग्रहवेद्यां ग्रहमण्डलदेवता ईशान्यां कलशे च वरुणं पूजयेत् ।

ततः संपातोदककलशं संस्थाप्य समाधिसमीपं गत्वा क्रमध्वमग्निना इत्यनुवाकेन पादुकयोः शिवलिङ्गे विष्णौ वा जलधारां पातयेत् -

ॐ क्रमध्वमग्निना नाकमुख्य ह हस्तेषु बिभ्रतः । दिवस्पृष्ठस्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥१७-६५॥ प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि व्विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह । व्विश्वा आशा दीद्यानो व्विभाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥१७-६६॥ पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् । दिवो नाकस्य

पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥१७-६७॥ स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आद्याᳪरोहन्ति रोदसी । यज्ञं ये विश्वतोधार सुविद्वाᳪसो वितेनिरे ॥१७-६८॥ अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् । इयक्षमाणा भृगुभि ÷ सजोषा ६ स्वर्यन्तु यजमाना ६ स्वस्ति ॥१७-६९॥ नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेक ६ समीची । द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदा ॥१७-७०॥ अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतं ते प्राणा ३ सहस्रं व्याना ३ । त्व ६ साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥१७-७१॥ सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्या ३ सीद । भासाऽन्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृ ६ ह ॥१७-७२॥ आजुह्वान ÷ सुप्रतीक ६ पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥१७-७३॥ ताᳪसवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाऽहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् । यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीना ᳪ सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥१७-७४॥ विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे । यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्रत्वे हवीᳪषि जुहुरे समिद्धे ॥१७-७५॥ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वा ᳪ शश्वन्तऽ उपयन्ति वाजा ६ ॥१७-७६॥ अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमै ६ क्रतुं न भद्र ६ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामात ओहै ६ ॥१७-७७॥ चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवाऽइहागमन् वीतिहोत्रा ऋतावृध ÷ । पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहाऽदाभ्य ६ हवि ३ ॥१७-७८॥ सप्तते अग्ने समिध ÷ सप्त जिह्वा ३ सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि । सप्त होत्रा ६ सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥१७-७९॥ एभिर्मन्त्रैर्जलैरभिषिच्य । तत ॐ अग्निर्मूर्धा० इति द्वादशवारं मृज्जलाभ्यां संशोध्य । ॐ यज्ञायज्ञावो० इति कषायैः । ॐ प्रसद्य भस्मना० इति भस्मना । ॐ इदं विष्णु० इति हरिद्रयोद्वर्त्य । ॐ घृतं घृतपावानः० इति घृतेनाभ्यज्य । ॐ या ओषधीः० इति सर्वौषधीभिः । ॐ यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति । सुकृता तच्छमितार ÷ कृण्वन्तूत मेध ६ शृतपाकं पचन्तु ॥२५-३३॥ इति गन्धोदकेन । ॐ तत्सवितु० इति गोमूत्रेण । ॐ गन्धद्वारां० इति गोमयेन । ॐ आप्यायस्व० इति क्षीरेण । ॐ दधिक्राव्ण० इति दध्ना । ॐ तेजोऽसि० इति आज्येन । ॐ देवस्य त्वा० इति उद्वर्तनेनोद्वर्त्य । उष्णोदकेन प्रक्षाल्य । गन्धादिपूजां कृत्वा । प्रतिश्रयसमन्ततोऽष्टदिक्षु अष्टकलशेषु वरुणमावाह्य सम्पूज्य - ॐ आपोहिष्ठा० ३ अष्टकलशैरभिषिच्य मूलमन्त्रेण सम्पूज्य अष्टदीपान् प्रज्वाल्य मूलमन्त्रेण स्तुवीत । ततो होमं कुर्यात् ।

आज्यभागान्ते अग्निपूजनम् । वराहुतिः । त्यागसंकल्पः । समिच्चरुतिलाज्यैर्नवग्रहानष्टाष्टसंख्यया अधिदेवता प्रत्यधिदेवताश्चतुश्चतुः संख्यया, गणेशादीन् सप्त द्विसंख्यया, इन्द्रादि दिक्पालानेकैकसंख्यया होमं कुर्यात् । औदुम्बर समिच्चरु तिलाज्याहुतिभिः ॐ वास्तोष्पते० इति मन्त्रेण २८ आहुतयः प्रतिद्रव्यम् । ध्रुवासि० इति ८ संख्यया । प्रधानहोमः १ पालाशसमित् २ पायस ३ तिल ४ आज्याहुतिभिः १ ब्रह्मजज्ञानं० विवः स्वाहा । २ इदं विष्णु० सुरे स्वाहा । ३ श्रीश्चते० इषाण स्वाहा । ४ ॐ आकृष्णेन० पश्यन् स्वाहा-प्रतिमन्त्रं १०८-२८ वा ८ संख्यया । इन्द्रादि दिक्पालान् एकैकयाज्या-

हुत्या । पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमेकैकाज्याहुतिः । यद्देवा० यदि दिवा० यदिजाग्रद्० कूष्माण्डमन्त्रैः प्रतिमन्त्रमेकैकाज्याहुतिः । वास्तुदेवता एकैकयाज्याहुत्या । वारुणमण्डलदेवताः सर्वतोभद्रदेवता वा एकैकयाज्याहुत्या, दशदशतिलाहुतिभिर्वा । समस्तव्याहृतिभिः घृताक्ततिलैः १०८ आहुतयः । ३ आचारात् सर्षपगुग्गुलुलक्ष्मीहोमाः । अग्नेः स्थापितदेवतानाञ्च उत्तरपूजनम् । स्विष्टहोमः । बलिदानम् । प्रधानदेवताबलिदाने विशेषः । चरुतिलचूर्णसर्पिः सक्तु करम्भान् एकत्र मिश्रीकृत्य प्रधानदेवतापरितः प्रदक्षिणक्रमेण द्वादशबलीन् निधाय ॐ बलिद्रव्याय नमः । इति संपूज्य - १ ॐ ब्रह्मणे नमः बलिं समर्पयामि । २ विष्णवे० बलिं० । ३ श्रियै० बलिं । ४ सूर्याय० बलिं० । ५ इन्द्राय० बलिं० । ६ अग्नये० बलिं० । ७ यमाय० बलिं० । ८ निर्ऋतये० बलिं० । ९ वरुणाय० बलिं० । १० वायवे० बलिं० । ११ सोमाय० बलिं० । १२ ईशानाय० बलिं० । भो ब्रह्मादिदेवा० कुरुत । आयुः कर्तारः० वरदा भवत । अनेन बलि दानेन ब्रह्मादि देवाः प्रीयन्ताम् । ग्रहबलिदानम् । क्षेत्रपालबलिदानम् । पूर्णाहुतिः । वसोर्धारा । भस्म धारणम् । होमसङ्कल्पः । संस्रवप्राशनम् । पवित्राभ्यां मुखमार्जनम् । अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः । ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम् । पश्चिमे प्रणीताविमोकः ।

ततः समाधिसमीपं गत्वा ॐ सहस्रशीर्षा० इति पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा । सम्पातकलशोदकमष्टकलशोदकञ्च एकस्मिन् पात्रे कृत्वा तेनोदकेन ॐ आपोहिष्ठा० ३ हिरण्यगर्भः० ४ पुनन्तुमा० ९ समुद्राय त्वा व्वाताय स्वाहा-१ इदमापः प्रवहता ८ इति मन्त्रैः संस्राप्य गुरुपादुकां शिवलिङ्गं विष्णुं वा स्थाने स्थिरी कृत्य प्राणप्रतिष्ठापूर्वकं षोडशोपचारैः संपूज्य - ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इति मूलमन्त्रेण - पूजनम् । तत्र नैवेद्ये पुरुषाहारपर्याप्तं बह्वाज्यं शर्करोपेतं पायसं वा निवेदयेत् । ततो हिरण्यगर्भ इत्यष्टमन्त्रैः प्रार्थयेत् -

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् । सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२५-१०॥ २ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२५-११॥ ३ यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रः रसया सहाहुः । यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥२५-१२॥ ४ य आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा व्विधेम् ॥२५-१३॥ ५ येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तभितं येन नाकः । यऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥३२-६॥ यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने । यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥ आपो ह यद् बृहतीर्यश्चिदापः ॥३२-७॥ ७ आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् । ततो देवानाꣳसमवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा व्विधेम् ॥२७-२५॥ यश्चिदापो महिमा पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्ती र्यज्ञम् । यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥२७-२६॥

मूलमन्त्रेण षडङ्गन्यासं कृत्वा उदङ्मुख उपविश्य उत्सर्गसङ्कल्पं कुर्यात्-कुश यवजलान्यादाय अद्य पू० तिथौ मम सकुटुम्बस्य सकलकामनासिद्ध्यर्थं जन्मजन्मान्तरार्जिताविद्यामूल-अज्ञाननिवृत्तिपूर्वकं ज्ञानोदयसिद्धये (अमुकस्य यतेः गुरोः, महात्मनः) भगवच्चरण सायुज्यसिद्धये समस्तपूर्वजानामुद्धारपूर्वकं ब्रह्मलोकनिवासहेतवे इदं गुरुपादुका (शिवलिङ्ग विष्णु शालिग्राम सहितं समाधिस्थानं भक्तजनानां प्रदक्षिणार्थं पूजार्थं यावदाचन्द्रतारकं (प्रासादश्चेत्-सप्रासादं) सर्वेभ्यो भक्तेभ्यः भूतेभ्यश्च अहमुत्सृज्ये- इति सङ्कल्पजलं समाधिस्थाने गुरुपादुकयोः समर्प्य - नत्वा प्रार्थयेत् - स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात्त्वमिहागतः । स्वारूढंस्त्वामदृष्ट्वा तु बालवद्भक्तिवत्सल ॥ धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं स्थिरो भव सुखाय नः । सान्निध्यं हि सदा देव स्वार्चायां परिकल्पय ॥ यावच्चन्द्रावनीसूर्यास्तिष्ठन्त्यप्रतिघातिनः । तावत्त्वयात्र देवेश स्थातव्यं सर्वदा प्रभो ॥ येन रूपेण भगवँस्त्वया व्याप्तं चराचरम् । तेन रूपेण देवेश स्वार्चायां सन्निधो भव ॥ त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुरातनं नारायणं विश्वसृजं यजामहे । त्वमेव यज्ञो विहितो विधेयस्त्वमात्मनात्मन् प्रतिगृह्ण हव्यम् ॥ इति स्तुत्वा साष्टाङ्गं प्रणमेत् ।

श्रेयोदानम् । दानसंकल्पाः । सर्वं कलशोदकेन सपरिवारस्य यजमानस्याभिषेकः । शुद्धोदकेन स्नात्वा शुक्लमाल्याम्बरधरः आचान्तः गोनिष्क्रयं वृषभ निष्क्रयं दक्षिणाभूयसी मण्डपदशमहादाननिष्क्र- यतिलपात्राज्यपात्रछायापात्रपीठदान ब्राह्मणभोजनादि कुर्यात् । अग्निस्थापितदेवताविसर्जनम् । तिलकाशीर्वादादि । कर्मब्रह्मार्पणम् । कर्मसमाप्तिः । आचमनम् । प्राणायामः ।

८९ चतुर्थीकर्म । प्रतिष्ठात्रिविक्रमोक्तम् ।

प्रतिष्ठादिनाच्चतुर्थे द्वितीये वा दिवसे कुर्यात् । साचार्यर्त्विग्यजमानः महास्नानसंभार वस्त्रालंकरणादिकमादाय पश्चिमद्वारेण मण्डपं प्रविश्य-तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । शान्तिपाठादि । संकल्पः - स्थापितदेवतानामर्चाशुद्ध्यर्थं देवकलाऽभिवृद्धये चतुर्थी कर्म करिष्ये । गणेशस्मरणम् । दिग्रक्षणम् । पञ्चगव्यकरणम् । भूमिपूजनम् । पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं कुण्डे स्थण्डिले वाऽग्निस्थापनम् । चरुक्षपणम् । आघाराज्यभागान्ते चरुणा १ सद्योजातं २ अघोरेभ्यो० ३ वामदेवाय० ४ तत्पुरुषाय० ५ ईशानः० इति पञ्चब्रह्ममन्त्रैः १००८ वा १०८ संख्यया वा जुहुयात् । आज्येन तिलैर्वा देवपत्नीमन्त्रेण शतसंख्यया हुत्वा स्विष्टकृन्नवाहुति पूर्णाहुती जुहुयात् । ततः प्रणीता विमोकान्तम् । इति शिवस्य चतुर्थी कर्म ।

शिवभिन्नदेवतासत्त्वे चरुणा तत्तद्देवमन्त्रैः तत्तत्पत्नीमन्त्रैश्च १००८ वा १०८ संख्यया जुहुयात् । देवीप्रतिमायां प्रतिष्ठापितायां तु देवीनां निजमन्त्रेणैव होम इति विशेषः । प्रणीताविमोकान्तं कृत्वाशान्तिकलशोदकेन प्रतिमां ॐ आपोहिष्ठा० ३ मन्त्रैः सिक्त्वा निर्माल्यमपनीय देवं ध्यात्वा संपूज्य प्रासादस्नपनोक्तान् एकाशीति घटान् संसाध्य प्रासादस्नपनोक्तमन्त्रैर्देवं संस्नाप्य पूजानीराजनादिकं कुर्यात् । कर्मसमाप्तिः ।

मात्स्ये तु १००८, ५०१, २५१, १०८, ६४, ३२, १६, ८, ४, एभ्यो यथासम्भवं पक्षमाश्रित्य, देवायार्घ्यं दत्वा-१ पञ्चगव्य २ क्षीर ३ दधि ४ घृत ५ मधु ६ शर्करा ७ पुष्प ८ ओषधी ९ धान्य १० शीतोदक ११ सहस्रधारकलशैः संस्राप्य मात्स्योक्तान्यतमपक्षेण देवं स्नपयेत् । सहस्रकलशस्नपने तु स्वतन्त्रः प्रयोग आग्नेयोक्तः । स्नपनान्ते मन्त्रैर्देवपूजनम् । कर्मसमाप्तिः ।

सद्यश्चतुर्थीकर्मकरणपक्षे प्रणीताविमोकान्तं कृत्वा प्रासादोत्सर्गं विधाय १ मधु २ हरिद्रा सर्षपपिष्ट चन्दनयवपिष्ट ३ मनः शिलप्रियङ्गुपिष्ट ४ इति द्रव्यचतुष्टयेन देवं विलेप्य संस्राप्य संप्रोक्ष्य वा जलाधिवासे तदभावे स्नपनविधौ देवदक्षिणाहस्ते मन्त्राभिमन्त्रितं 'यदाबध्नन्०' इति मन्त्रेण बद्धमूर्णासूत्रं ॐ मुञ्चन्तु मा शपत्थ्यादथो व्वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद् देव किल्बिषाद् ॥ इति मन्त्रेण विमुच्य देवपादयोः समर्पयेत् ॥

१० शैवे चण्डप्रतिष्ठा । त्रिविक्रमोक्ता ।

तत्र चण्डस्वरूपम् । रुद्राग्नेः प्रभवं चण्डं कज्जलाभं भयानकम् । शूलचन्द्रधरं रौद्रं चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम् ॥ मुखोद्गीर्ण महाज्वालं रक्तद्वादशलोचनम् । जटामुकुटखण्डेन्दुमण्डितं पाणि कङ्कणम् । व्यालयज्ञोपवीतं च साक्षसूत्रकमण्डलुम् । श्वेतपद्मासनासीनं रक्तद्वादशलोचनम् । जटामुकुटखण्डेश्च भक्तिप्रह्वार्तिनाशनम् ॥ इति ध्याननिर्दिष्टलक्षणां चण्डप्रतिमां विरचय्य प्रतिष्ठादिने चतुर्थीकर्मणि द्विवसान्तरे वा स्थापयेत् । चण्डमूर्तिस्थानं लिङ्गपिण्डिकायाः प्रणाल्यग्रे प्रणालीतो बहिरुत्तर ईशानभागे व गर्भगृहे, प्रासादभित्तितो बाह्य उत्तर ऐशाने वा चण्जस्थानं प्रकल्प्य तत्रोक्तलक्षणां चण्डमूर्तिं पीठे स्थापयेत् ।

इदं चण्डस्थापनं यत्र चण्डोऽधिकृतस्तत्रैव कार्यं नान्यत्र । तदुक्तम्-बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि । प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्-इति वचनेन शैवे चण्डस्थापनस्य विहितत्वात् । बाणलिङ्ग पञ्चधातुनिर्मित सिध्दस्थापितस्वयम्भूलिङ्गपार्वतीशिवादि प्रतिमासु चण्डस्थापनं न भवति ।

शिवप्रतिष्ठया सह चण्डप्रतिष्ठाचिकीर्षायां चण्डमूर्तेर्जलाधिवास स्नपनन्यासादि विधिः तेनैव: विधिना सम्पादयेत् । प्रतिष्ठानन्तरं चण्डप्रतिष्ठाकरणे तु चण्डमूर्तिं पञ्चगव्येन पञ्चामृतेन शुद्धोदकेन च संशोध्य-मूर्तौ चण्डसुपर्युक्तमन्त्रैर्ध्यात्वा अक्षतैर्न्यासान् कुर्यात्-आवाहनम्-ॐ चण्डासनाय नमः । ॐ चण्डमूर्त्तये नमः । ॐ धुनि चण्डेश्वराय हुं फट् स्वाहा-इत्यावाह्य-प्रतिमां स्पृष्ट्वा-ॐ चण्डहृदयाय हुं फट् नमः । ॐ चण्डशिरसे हुं फट् नमः । ॐ चण्डशिखायै हुं फट् नमः । ॐ चण्डकवचाय हुं फट् नमः । ॐ चण्डनेत्रत्रयाय हुं फट् नमः । ॐ चण्डास्त्राय हुं फट् नमः । ॐ चं सद्योजाताय हुं फट् नमः । ॐ चिं वामदेवाय हुं फट् नमः । ॐ चुं अघोराय हुं फट् नमः । ॐ चैं तत्पुरुषाय हुं फट् नमः । ॐ चौं ईशानाय हुं फट् नमः - इति न्यासान् कृत्वा-ॐ रुद्राग्नेः प्रभवं० भक्तिप्रह्वार्तिनाशनम्

- ॐ नमः शङ्कवे च पशुपतये च० नमस्ताराय । इति मन्त्रैर्ध्यात्वा ॐ चण्डेश्वराय नमः - इति षोडशोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत्-ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्न्यूनमधिकं कृतम् । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु सुप्रीतो भव सर्वदा ॥ सर्वमेव क्रियाकाण्डं मया चण्ड तवाज्ञया । न्यूनाधिकं कृतं मोहात् परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ यावत्तिष्ठति लोकेस्मिन् देवेदेवो महेश्वरः । तावत् कालं त्वया देव स्थातव्यं शिवसन्निधौ ॥ लेह्य चोष्यान्नपानादि ताम्बूलस्रग्विलेपनम् । निर्माल्यं भोजनं तुभ्यं प्रदत्तं तु शिवाज्ञया-इति प्रणमेत् ।

ततो दिक्पालबलिं भूतबलिं च दद्यात् - ॐ इन्द्रादि दिक्पालेभ्यो नमः ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः - इति बलिद्वयं दत्त्वा । ततः प्रार्थयेत् - यावत्कालं महादेवो लिङ्गमाश्रित्य तिष्ठति । तावत्कालं तु रक्षार्थं पूजयँस्तिष्ठ सर्वदा ॥ इति ।

ततो यजमानं सकुटुम्बं कृतस्वस्तिके पीठे उपवेश्य अभिषिञ्चेदभिषेक मन्त्रैः । जलाशयं गत्वा स्नात्वा पुनरागत्य आचार्यादीन् संपूज्य दक्षिणादिभिस्तोषयेत् । आशीर्वादादि कर्मसमाप्तिः । शिवनिर्माल्यं चण्डस्योपरि समीपे वा स्थापयेदिति विशेषः ।

इति शैवे त्रिविक्रमोक्ता चण्डप्रतिष्ठा ।

९१ ध्वजदण्डप्रतिष्ठा त्रिविक्रमोक्ता ।

ध्वजो नाम वस्त्रपट्टः । दण्डः पुन सुवर्णरजत ताम्र पञ्चलोह वंश-अञ्जन-मधूक-शिंशपा खादिरवृक्षोद्भवस्त्र्यङ्गुलसार्धचतुष्टयान्यतराङ्गुलविस्तरः कार्यः । दण्डदैर्घ्यप्रमाणं चतुर्दश-द्वादश-दशनवाष्टहस्तान्यतममितं कार्यम् । तदुपरि मकरी (पाटली) सार्धहस्त-हस्तमितदीर्घा तदर्धविस्तरा षडङ्गुलोन्नता समन्तात् क्षुद्रघण्टिकालम्बिता, मध्ये चोपरि भागे कलशेन संयुता धातुमयी काष्ठमयी वा सुदृढा कार्या । दण्डोऽन्तरा धातुमयकङ्कणसुबद्धः कार्यः । दैर्घ्यपञ्चमांशेन पाषाणमयाधारद्वयान्तर्गत आवश्यकः ।

दण्डस्थानं शिखरादधो भागे अमलसारकात् परितः प्रासाददिगनुरोधेन नैर्ऋते वायव्य ऐशानकोणे कार्यम् । यक्षरक्षः पिशाचासुरादीनां निवारणार्थं प्रासाददिगभिप्रायेण नैर्ऋतभागे ध्वजदण्ड निवेशनं प्रशस्ततमम् । तथैव च प्रायः सर्वप्रासादेषु दरीदृश्यते ।

वस्त्रमय ध्वजमानं - प्रासादद्विगुणतदर्धसमांशदैर्घ्ययुतो .द्विहस्तविस्तरो वर्णक्रमेण श्वेत रक्तपीतकृष्णवर्णः पञ्चवर्णो वा त्रिकोणत्रयपञ्चान्यतराकारः शिखरावलम्बी शिखरान्तेष्टनो दृढपट्टमण्डितः कार्यः । अयं ध्वजस्तत्तत्प्रधानदेवतावाहनेन सुवर्ण-रजत-ताम्रान्यतम धातु निर्मितेन सूक्ष्मेण पञ्चवर्णै र्वा निर्मितेन वाहनेन युक्तः कार्यः । एतादृशध्वजलम्बनार्थं ध्वजदण्डे मध्यभागे (Hook) नागदन्तत्रयं धातुना कार्यम् । जिनमन्दिरेषु सप्तहस्तदीर्घा एकहस्त विस्तृता लम्बचतुरस्रा पताकैव निवेश्यते ।

ध्वजदण्डस्थापनकालः । देवताप्रतिष्ठासमकालं ध्वजस्थापने तु सर्वोऽपि विधिः प्रधानपरिवारदेवताविधिना सार्क सम्पादनीयः । केवलं तेषु तेषु होमस्थलेषु ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्य्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः स्वाहाः इति मन्त्रेण यथोक्तो होमः कार्यः देवताप्राणप्रतिष्ठानन्तरं वक्ष्यमाण विधिना न्यासादिकं रत्नादिन्यासं च कृत्वा संपूज्य ॐ उच्छ्रयस्व व्वनस्पत ऊर्ध्वो मा पा ह्य ꣳ हस आस्य यज्ञस्योद्दचः - इति मन्त्रेण गर्तद्वयान्तरितं समुच्छ्रयेत् ।

ध्वजे वाहनानि मध्ये वर्णे श्चित्रितव्यानि -१ विष्णुः - गरुडः २ शिवः - वृषभः ३ ब्रह्मा हंसः ४ वरुणः क्रौञ्चः ५ इन्द्रः - हस्ती ६ यमः - महिषः ७ अग्निः - मेषः ८ कामः - मकरः ९ सूर्यः - अश्वः १० दुर्गा - सिंहः ११ गौरी-गोधा १२ गणेशः - मूषकः १३ कुवेरः - नरः १४ वायुः - मृगः १५ सरस्वती - हंसः १६ स्कन्दः - मयूरः १७ बाला - मयूरः कुकुटो वा । १८ महालक्ष्मीः - कमलम् । एवं तत्तद्देवतानां वाहनानि चित्रयेत् ।

प्रतिमाप्रतिष्ठानन्तरं तद्दिने महास्नानानन्तरं तद्दिने प्रासादकलशप्रतिष्ठानन्तरं तद्दिने, ततोऽप्यनन्तरं संवत्सरे षण्मासे यथाकालं वा ध्वजारोपः सुमुहूर्ते कार्यः । प्रतिष्ठामहास्नानकलशप्रतिष्ठा भिन्नदिनेषु कालान्तरे होमादिकः सर्वोऽपि विधिर्दिनद्वयेन एकेन वा दिनेन सम्पादनीयः ।

ध्वजप्रतिष्ठाविधिः ।

सप्रासाददेवताप्रतिष्ठानन्तरं कालान्तरे सुमुहूर्ते दिनद्वयसाध्य एकदिनसाध्यो वा ध्वजदण्डप्रतिष्ठा प्रयोगः कार्यः । सपत्नीको यजमानः संक्षिप्तं प्रायश्चित्तं कुर्यात् । ततस्तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । शान्तिपाठादि । सङ्कल्पः - मम सकुटुम्बस्य समस्त ग्रामजनभक्तजनदेशजनश्रेयसे च अस्मिन् देशे क्षेमसुभिक्ष धनधान्यैश्वर्यवंशाभिवृद्धि अभ्युदयनिःश्रेयसंसिद्ध्यै समस्तपूर्वजानां प्रासादप्रतिमाणुध्वजतन्तुसंख्याकवर्षाणि यावद् ब्रह्मलोकनिवासहेतवे अमुकदेवताप्रीत्यर्थं अमुकदेवताप्रासादे (सग्रहमखां) (दिनद्वयसाध्यां) ध्वजदण्डप्रतिष्ठामहं करिष्ये । तदङ्गत्वेन गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनं मातृकापूजनं वैश्वदेव सङ्कल्पं वसोर्धारां आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं ऋत्विग्वरणं (वर्धिनीपूजनं मण्डपप्रवेशं) दिग्रक्षणं पञ्चगव्यकरणं भूमिपूजनं अग्निस्थापनं सर्वतोभद्रमण्डलस्थापनं प्रधानदेवतास्थापनं ग्रहस्थापनं विहितं हवनं प्रतिष्ठाङ्गभूतं चान्यत्कर्म करिष्ये । आसनविध्यादि ग्रहहोमान्तं कृत्वा स्नपनविधिं कुर्यात् ।

ध्वजस्नपनविधिः ।

वेदिकाद्वयं दक्षिणवेदिका उत्तरवेदिका च । वेदिकाद्वयं पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य ॐ स्तीर्ण्णं बर्हि० इति कुशानास्तीर्य देवमूलमन्त्रेण गायत्र्या वा ध्वजं दण्डं च दक्षिणवेदिकायां ॐ भद्रं कर्णेभिः- इति स्थापयेत् । तत्र दक्षिणवेदिकासन्निधौ चतुरः समुद्रसंज्ञकान् कलशान् स्थापयेत् । उत्तरवेदिकायाः पश्चाद्

प्रासादस्नपनवत् नव नवकानि कलशानामासादयेत् । तत्र नव नव मध्यकलशेषु (पृ. २८९) प्रासादस्नपनोक्तानि द्रव्याणि निक्षिपेत् । वरुणावाहनान्तं कलशेषु कृत्वा हिरण्यवर्णा॰ १५ मन्त्रैरभिमन्त्र्य ततः समुद्रसंज्ञकैश्चतुर्भिः कलशैः ॐ समुद्रज्येष्ठाः ४ (१ इमम्मे॰ २ तत्त्वायामि॰ ३ ॐ त्वन्नो अग्ने॰ ४ ॐ सत्वन्नो अग्ने॰) इति मन्त्रैः ध्वजं दण्डं च स्नपयेत् । ततो नेत्रोन्मीलनं वर्जयित्वा उत्तरवेदिकायां ध्वजं दण्डं च स्वस्तिनः॰ भद्रं कर्णेभिः स्तीर्ण्णं बर्हिः॰ देवतामूलमन्त्रान् पठित्वा स्थापयेत् ।

ततः प्रासादस्नपनविधिनिर्दिष्टैः मन्त्रैर्मध्यमपूर्वादि क्रमेण ध्वजं दण्डञ्च स्नपयेत् । १ मध्यनवक मध्यमकलशेन - १ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो॰ २ पूर्व॰ विष्णोरराटमसि॰ ३ आग्नेय॰ सोम ह राजानमव॰ ४ दक्षिण॰ विश्वतश्चक्षु॰ ५ निर्ऋति॰ याः फलिनीर्या॰ ६ पश्चिम॰ पयः पृथिव्यां ७ वायव्य॰ यज्ञायज्ञावो॰ ८ उत्तर॰ हहसः शुचिषद्॰ ९ ईशान॰ समुद्रायत्वा व्वाताय॰ ततोऽवशिष्टाष्टाष्टकलशैर्मध्यमपूर्वादिनवकेभ्यः पूर्वादिप्रादक्षिण्येनाब्दैवत्यैः मन्त्रैः स्नपयेत् १ इदमापः॰ २ हविष्मतीरिमा॰ ३ देवीरापो॰ ४ कार्षिरसि॰ ५ अपो देवा॰ ६ द्रुपदादिव॰ ७ शन्नोदेवी॰ ८ अपाꣳरस॰ इति मन्त्रावृत्तिभिः स्नपयेत् । एकदिनसाध्यप्रतिष्ठाकर्मणि एकाशीतिकलशस्नपनासंभवे-एकं महान्तं कलशमादाय-ॐ दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम्-देवमन्त्रेण देवसूक्तेन वा ध्वजदण्डौ स्नपयेत् । ततो गन्धाद्यैः संपूज्य शय्यायां निधाय (पृ॰ ३०३ तः ३१०) षोडशतत्त्वन्यासान् यजमानः कुर्यात् । एतावदशक्तौ ॐ पुरुषात्मानं न्यसामि॰ ३२ तत्त्वानि विन्यस्य स्तम्भे ॐ आत्मतत्त्वाय नमः । ध्वजे-विद्यातत्त्वाय नमः । वाहने-शिवतत्त्वाय नमः-इति विन्यसेत् । शैवे-ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि॰ ५ मन्त्रै॰ - वैष्णवे-विष्णुसूक्तेन पुरुषसूक्तेन वा देव्यां-हिरण्यवर्णा-१५-गणेशे-अथर्वशीर्षम्-अन्यदेवतासु तत्तद्देवतामन्त्रं सूक्तं तान्त्रिकं मन्त्रं वा पठित्वा तां तां देवतां सपरिवारां आवाह्य संपूज्य अधिवासयेत् । कुमुदादिभ्यो नमः - इति बलिदानम् । निद्रावाहनम् ।

होमः - कुण्डसमीपमागत्य - १ पलाश २ उदुम्बर ३ अश्वत्थ ४ शमी ५ अपामार्गसमिद् ६ दधि ७ क्षीर ८ घृत ९ तिलैर्नवद्रव्यैः केवलेन आज्येन केवलैस्तिलैर्वा - १ मूर्तिमूर्तिपतिलोकपालेभ्यस्तत्तन्मन्त्रेण प्रत्येकं १०८-२८-८ अन्यतमसंख्यया जुहुयात् । ततः प्रधानदेवतामन्त्रेण केतुं कृण्वन्निति मन्त्रेण च नवद्रव्यैराज्येन तिलैर्वा १०८ संख्यया जुहुयात् । ततो घृताक्ततिलैः १०८ समस्तव्याहृतिभिर्होमं कुर्यात् । रात्रौ वेदघोषगीतादिना जागरणं कुर्यात् ।

द्वितीयेऽह्नि तद्दिने वा प्रातः स्थापितदेवतापूजनं कृत्वा ध्वजदण्डनिवेशनगर्ते सप्तधातून धान्यानि गन्धकपारदमनः शिल हरिताल सुवर्णमाक्षिकादीनि रत्नानि च ॐ अं आं॰ इं ळं क्षं - इति वर्णान् इन्द्रादीनावाह्य च पूजयेत् । शंखतूर्यादिघोषेण ध्वजं दण्डञ्च उत्थाप्य प्रासादनिकटमानीय-दण्डे हृदयादिषडङ्गानि, ध्वजे इन्द्रादीन् लोकपालान् वज्राद्यायुधानि विन्यसेत् । ततो ध्वजमालभ्य - ॐ प्रस्फुर प्रस्फुर हुं फट् हृदयाय नमः । २ घोर घोरतर हुं फट् शिरसे नमः । ३ तनुरूप हुं फट् शिखायै नमः । ४ चट चट प्रचट प्रचट हुं फट् कवचाय नमः । ५ कह कह बम बम घातय घातय हुं फट् अस्त्राय नमः - इति न्यासं कृत्वा ॐ परमेश्वराय पराय ब्रह्मशिरसे नमः ॐ सर्वयोगाधिकृताय निद्राधिपतये

नमः ॐ विद्याधिपतये नमः - इति गन्धपुष्पादिपञ्चोपचारैर्दण्डं ध्वजं च संपूज्य तत्र शैवे अघोरं वैष्णवे सौदर्शनं मन्त्रं पठित्वा अन्यदेवतासु तत्तमन्त्रं पठित्वा ध्वजं दण्डे संयोज्य ध्वजस्थाने स्थापयेत् । ॐ उच्छ्रयस्व० केतुं कृण्वन्न० मनोजूति० ध्रुवासि० एष वै० इति प्रतिष्ठामन्त्रान् पठेत् । ततः प्रार्थना-शैवे-सूर्यकोटि-सहस्राभं प्रलयाम्बुदनिःस्वनम् । प्रदीप्ताशनिसम्पातं प्रकाशमुखमध्वरम् । त्र्यक्षं तडिल्लताजिह्वं प्रदीप्तश्मश्रुमूर्धजम् । सर्पोपवीतं शूलासिशक्तिमुद्गरधारिणम् । चतुर्भुजं चतुर्वक्त्रं स्फुरच्चन्द्रार्ध शेखरम् । देवदानवदैत्यानां दर्पितानां विमर्दकम् । इति देवतान्तरे तां तां देवतां स्तुवीत ।

ध्वजस्तुतिः-यावन्तस्तन्तवस्तस्य ध्वजस्य वरवर्णिनि । तावद् वर्षसहस्राणि कर्ता स्वर्गे महीयते ॥ यावत्पदानि कुरुते ध्वजे प्राणी प्रदक्षिणाम् । तावद् वर्षसहस्राणि कर्तुं भोगभुजिः फलम् ॥ यथा विधूयते पोते रजः प्रासादमस्तके । तथा कर्ता त्यजेत् पापं सप्तजन्मार्जितं क्षणात् ॥ यत्रैतत् क्रियते राष्ट्रे ध्वजयष्टिनिवेशनम् । नाकालमृत्युस्तत्रास्ति नालक्ष्मीः पापकृत्स्वपि ॥ नोपसर्गभयं तत्र नापि रागो न वैशसम् । वैपरीत्यं फले नैव नराणामपि भूयसाम् ॥ स्वकालवर्षी पर्जन्यः सुभिक्षं विजयी नृपः । शान्तानि सर्वभूतानि पयस्विन्यः पयोभृतः ॥ कृतघ्नो ब्रह्महा गोघ्नः कृत्वा ध्वजनिवेशनम् । प्राप्नोति पापनिर्मोक्षं कर्तुर्मुक्तं कुलद्वयम् ॥ प्रतिमालिङ्गवेदीनां यावन्तः परमाणवः । तावद् वर्षसहस्राणि कर्तुं मोक्षो भवेद् ध्रुवम् । कृते महाध्वजारोहे तत्रापि चलिताश्च ये । शिल्पिनो नायका भृत्या भृतिभाजोऽपि तारयेत् । येषां मृतानां चर्माणि यान्ति योगं शिवालये । वृक्षाणामपि दारूणि तेऽपि रुद्रा न संशयः ॥ यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत्त्वयाऽत्र देवेशस्थातव्यं स्वेच्छया विभो ॥ इति प्रार्थयेत ।

ततः स्थापितदेवताहोमः । व्याहृतिहोमः । उत्तरपूजनस्विष्टकृन्नवाहुतिबलिपूर्णाहुतिवसोर्धारा भस्मधारणाहुतिसंकल्प संस्रवप्राशनादि प्रणीताविमोकान्तम् । नीराजनादि । उत्तराभिषेकं दक्षिणाशीर्वादादि कर्मसमाप्तिः । प्रतिष्ठासहकरणपक्षे विशिष्टन्यासपूजनोच्छ्रयणप्रार्थनादिकं विशेषः । इति ध्वजदण्डप्रतिष्ठा ।

९२ स्थानात् स्थानान्तरे मूर्तिनयनप्रकारस्त्रिविक्रमोक्तः ।

शौनकः-अथातः संप्रवक्ष्यामि मूर्तीनां हरणं शुभम् । विधानस्थापितानाञ्च ग्रामाद् ग्रामान्तरं प्रति ॥१॥
विधानस्थापिता मूर्तिः पूजाहीना प्रदृश्यते । प्रासादरहिता या च आतपे विजने तथा ॥२॥
उपघातैरुपहता श्वभिः काकैस्तथाऽन्त्यजैः । चिरकालं स्थिता सैवं पुनः प्रासादकृत्नरः ॥३॥
ग्रामस्वामी तथा चाऽन्यो न कश्चिचेत् तथा पुनः । म्लेच्छोपद्रव संयुक्ते स्थाने चातीव दूषिते ॥४॥
एवं विधां हि यां मूर्तिं नेतुं ग्रामान्तरं प्रति । इच्छेद्यः सोयमः कश्चिद् भक्तो भक्तिसमन्वितः ॥५॥
उपायं तस्य वक्ष्यामि येनानुज्ञां लभेत् पुनः । मूर्तिस्थितस्य देवस्य पिण्डिकायास्तथैव च ॥६॥
पृच्छन् ग्रामाधिपं साम्ना तद्वद्ग्रामनिवासिनः । तस्य देशस्य यो राजा तस्य चानुमते स्थितः ॥७॥
राज्ञोऽनुज्ञानुसारेण मूर्तेराहरणोद्यमम् । कुर्यात्तु भक्तिसंयुक्तस्तं देवं मनसा स्मरन् ॥८॥

चत्वारो वेदधर्मज्ञा ब्राह्मणाः सत्यवादिनः । स्वाचारनिरताः शान्ताः सात्त्विका ह्यनसूयकाः ॥९॥
तत्र गत्वा तु तैः सार्धं ज्योतिःशास्त्रोक्तवासरे । यष्टुश्चैवानुकूलेऽह्नि लग्ने चैव तथाविधे ॥१०॥
गणेशं पूजयेदादौ फलपुष्पोपहारकैः । ततोऽर्चां पञ्चगव्येन मन्त्रपूतेन शोधयेत् ॥११॥
परिचर्याविधानेन मूर्त्तिंतां पूजयेत् सुधीः । पञ्चामृतेन स्नपनं तत्र कुर्युर्द्विजोत्तमाः ॥१२॥
ततो विज्ञाप्य देवेशं भक्त्या परमया द्विजैः । नेतुकाम इमां मूर्त्तिममुकं नगरं प्रति ॥१३॥
मन्यसे यदि तत् स्थानमाज्ञां दातुं त्वमर्हसि । श्रावयेयुर्द्विजास्ते तु प्रणमेयुः पुनः पुनः ॥१४॥
अयुतार्धं जपेयुस्त इदं विष्णु र्विचक्रमे । समिध्होमं दशांशेन कुर्युस्ते विष्णुमूर्त्तिषु ॥१५॥
गणानान्त्वा गणपतेः शक्तीनांजातवेदसे । आकृष्णेन च सूर्यस्य नाम्ना वै रुद्रमूर्त्तिषु ॥१६॥
पालाश्यः समिधः शस्ताः खादिर्यस्तदलाभतः । एकभक्ताशिनस्तत्र त्रिरात्रं श्रद्धयाऽन्विताः ॥१७॥
सर्वे तद्गतचित्ताश्च स्वपेयुस्ते पृथक् क्षितौ । मूर्त्तेरीशानतो होमं कुर्युस्तमनलं ततः ॥१८॥
अजस्र मनलं कुर्युः शुचौ देशे परिश्रिते । द्वितीयेऽह्नि ततो होमः कार्य आज्येन वै ततः ॥१९॥
चतुर्णां मध्य एकोऽपि मूर्त्तिंतां यदि पश्यति । शुक्लाम्बरधरां स्वप्ने शुक्लपुष्पैरलङ्कृताम् ॥२०॥
श्वेतचन्दनसंयुक्तां कन्यकां वा तथाविधाम् । ब्राह्मणं फलहस्तं वा पुष्पहस्तमथापि वा ॥२१॥
राजानं कुञ्जरारूढमश्वारूढमथापि वा । श्वेताङ्गं वृषभं वापि तां दिशं प्रति संगतम् ॥२२॥
स्वप्नमेवं विधं प्रोक्तं यष्टा वा परिपश्यति । दत्तानुज्ञा तु देवेन मूर्त्तिस्थेन न संशयः ॥२३॥
दत्तानुज्ञोऽपरेद्युस्तं देवं यष्टा प्रपूजयेत् । तोषयेत्सर्वभावेन नैवेद्येन विशेषतः ॥२४॥
ब्राह्मणान् दक्षिणाभिश्च मिष्टान्नेन च शक्तितः । पुष्पाञ्जलिपुटो भूत्वा भक्त्या विज्ञापयेत्तु तम् ॥२५॥
लोकानुग्रहहेत्वर्थं याहि तत्र सुरेश्वर । देशस्यास्य सुभिक्षाय नृपस्य विजयाय च ॥२६॥
ततस्तां गायकैर्विप्रैर्भक्त्या भक्तिसमन्वितः । वाससाच्छादितां मूर्तिं शिबिकायां निवेशयेत् ॥२७॥
पृष्ठतः पिण्डिकां तां तु रथेन शकटेन वा । ग्रामान्तं प्रति नेतव्या काष्ठोपायेन केनचित् ॥२८॥
देवस्य गमनं ग्रामे श्रावयेद्भक्तिभावितैः । नरैर्महोत्सवः कार्यः पताकाभिश्च तोरणैः ॥२९॥
विप्राणां मन्त्रघोषैश्च वादित्राणां च निः स्वनैः । गायकैर्नर्त्तकैः सार्धं ज्योतिःशास्त्रोक्तवासरे ॥३०॥
ग्रामस्य नृपतेश्चैव यदा चन्द्रबलं भवेत् । औदुम्बर्यां पिण्डिकायां शुचौ देशे निधापयेत् ॥३१॥
परिश्रिते विशेषेण पूजा कार्या प्रयत्नतः । ततोऽचिरेण कालेन कार्यं स्थापनमुत्तमम् ॥३२॥
सर्वं प्रातिष्ठिकं कर्म कुर्यान्न्यासविवर्जितम् । अर्चाशुद्धिस्तु तत्रोक्ता क्रमप्राप्ता शुभा हि सा ॥३३॥
पूजोपायस्ततः कार्यः प्रासादे स्थापिता यदि । एवमुक्तप्रकारेण ग्रामाद् ग्रामान्तरे पुनः ॥३४॥
स्थापयित्वेदृशीं मूर्त्तिमात्मानं तारयेन्नरः । दश पूर्वान् परांश्चैव पितृतो मातृतस्तथा ॥३५॥
न लभ्यते यदाऽनुज्ञा मूर्त्तेस्तस्या यदीदृशी । अन्यत्र स्थापनार्थं तां मूर्तिं प्राज्ञो न योजयेत् ॥३६॥
इच्छया हरणार्थं तां म्लेच्छानां तु भये सति । हरेद् ग्रामान्तरे मूर्तिं भयान्ते पुनराहरेत् ॥३७॥
प्रतिमोद्वासनप्राप्तौ प्रकारं तूक्तवान् मुनिः ॥३८॥

इति श्री रघुसूरिसूनुत्रिविक्रमविरचितायां प्रतिष्ठापद्धतौ बौधायनोक्तो मूर्त्तेर्ग्रामान्तरनयनप्रकारविधिः ॥

९३ ग्रामान्तरनयनप्रयोगः ।

प्रतिष्ठापितायाः प्रतिमायाः प्रासादभङ्गे विजने श्वभिः काकैः म्लेच्छान्त्यजादिभिः विण्मूत्रादि संसर्गेण पूजाविरामेण म्लेच्छयवनाद्याक्रमणेन मूर्त्तिप्रासादादिनाशसंभावनया विद्युदुल्कापातादि कारणैर्ग्रामाद् ग्रामान्तरं नीत्वा नूतने प्रासादे मन्दिरे वा स्थापयेत् । चालनविधिग्रामान्तरनयनविध्योरयं विशेषः । प्रासादपिण्डिकादिजीर्णोद्धारे नूतने वा प्रासादे चिकीर्षिते प्रासादपिण्डिकाऽखण्डितप्रतिमानां चालनं विधाय प्रासादे सम्पन्ने तत्राखण्डितपिण्डिकाप्रतिमादीनां विधिना पुनः प्रतिष्ठा भवति । ग्रामान्तरनयनं तु पूजाराहित्यश्वकाकम्लेच्छान्त्यज संस्पर्शविण्मूत्रादि संसर्गम्लेच्छयवनाद्याक्रमणभयादिषु यथा कथञ्चिद् भूमौ आतपे स्थितायाः प्रतिमाया भवति ।

अथ प्रयोगः - ग्रामजनग्रामनगरमण्डलदेशाधिपतीनामन्यतमस्याज्ञया सुमुहूर्ते ग्रामान्तरनयनविधि-मारभेत । तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्र धारणम् । शान्तिपाठादि । यजमानः - समस्तग्रामजनभक्तजनदेशजनकल्याणाय ग्रामजनाधिपत्यादीनामाज्ञया भूमौ आतपविजनपूजाविच्छेदश्वकाक म्लेच्छान्त्यजादि संस्पर्श विण्मूत्रादि संसर्ग विद्युदुल्का शनिजलपूराद्युपघातम्लेच्छयवनादि परधर्मानुयाय्याक्रमण प्रासादप्रतिमानाशभङ्गभिया श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं प्रतिमापिण्डिकादीनां ग्रामान्तरनयनविधिं दिनत्रयसाध्यं करिष्ये । तदङ्गत्वेन गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनं ब्राह्मणवरणं अर्चाशुद्धिं विहितमन्त्रजपं तद्दशांशेन हवनादि कर्म करिष्ये । आसनविध्यादि पुण्याहवाचनान्तं कृत्वा । चतुर्णां वेदधर्मज्ञानां विप्राणां वरणं पूजनञ्च । ततः पञ्चगव्यं मन्त्रैः संपाद्य प्रतिमादिकं ॐ आपोहिष्ठा - ३ मन्त्रैः प्रोक्षेत् । महता गन्धोदक पूरितेन मन्त्रसंसाधितकलशेन । ॐ दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम्-देवमन्त्रैश्च अर्चाशुद्धिं सम्पाद्य देवं पञ्चामृतेन संस्नाप्य षोडशोपचारैः सम्पूजयेत् । ततो देवं प्रार्थयेयुर्द्विजाः - नेतुकाम इमां मूर्त्तिममुकं नगरं प्रति । मन्यसे यदि तत्स्थानमाज्ञां दातुं त्वमर्हसि । इति प्रार्थ्य द्विजास्तत्तद्देवतामन्त्रस्य पञ्चसहस्रसंख्यया जपं कुर्युः । सायं पूजादिकं कृत्वा विरमेत् ।

द्वितीयेऽहनि दिग्रक्षणं पञ्चगव्यकरणं भूमिपूजनं पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं कुण्डे स्थण्डिले वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्य-आज्यभागान्ते पलाशखदिरान्यतरसमिधा पञ्चशतसंख्यया तत्तद्देवतामन्त्रेण जुहुयात् । त्रिरात्रमेकरात्रं वा ब्राह्मणा एकभुक्ताशिनो देवतां स्मरन्तः पृथक् पृथक् कटादिषु शयीरन् । तत्र स्वप्ने यजमानो ब्राह्मणा वा शुक्लाम्बरधरां देवमूर्तिं, श्वेतचन्दनयुक्तां कन्याम्, पुष्पफलान्यतरहस्तं ब्राह्मणं, गजाश्वान्यतरारूढं राजानम् देवदिशं प्रति गच्छन्तं श्वेतवृषभम्, एभ्य एकतमं पश्यति, तदा देवेनानुज्ञा ग्रामान्तरनयनाय दत्ता-इति मन्तव्यम् ।

ततस्तृतीयेऽहनि उत्तरपूजनादि प्रणीताविमोकान्तं कर्म संपाद्य ब्राह्मणपूजनदक्षिणादानाभिषेक ब्राह्मणादिभोजनाशीर्वादादिकर्मसमाप्तिर्विधेया । म्लेच्छाद्याक्रमणभये तु एकेनैव दिनेन द्वाभ्यां वा दिनाभ्यामिदं कर्म सम्पादनीयम् ।

ततो देवं प्रार्थयेत्-भक्तानुग्रहहेत्वर्थं याहि तत्र सुरेश्वर। देशस्यास्य सुभिक्षाय नृपस्य विजयाय च-इति गन्धपुष्पमाला वस्त्रालङ्करणाद्यैः संपूज्य शिबिकायां देवं पिण्डिकादिकं च शकटे वाहने वा संस्थाप्य वेदघोषगीतनृत्यवाद्यादिपुरःसरं पूर्वनिश्चितं ग्रामं नीत्वा तद्ग्रामस्थजनैः संपूजितं नीराजितं च देवं सुरक्षिते स्थाने स्थापयेत्। निष्पन्ने नूतने प्रासादे मन्दिरे वा सिंहासने निर्दिष्टस्थले स्थापयेत्। अस्मिन् विधौ तत्त्वन्यासं परित्यज्य प्रतिष्ठाविहितं समग्रं कर्म कुर्यात् देवाऽनुज्ञाऽभावेऽपि म्लेच्छयवनाद्याक्रमणप्रतिमाभङ्गभये समुपस्थिते स्थानान्तरनयने न कश्चिद्दोषः।

इति प्रतिमापिण्डिकादीनां ग्रामान्तरनयनविधिः प्रतिष्ठात्रिविक्रम्यां बौधायनोक्तः।

१४ जीर्णोद्धारविधिः।

(वैखानसे समूर्तार्चाधिकरणेऽन्यग्रन्थेषु च प्रतिमानां शिरोललाट कर्णाक्षिनासिका चिबुक ग्रीवाबाहुवक्षः कटिपादजानूर्वादीना मुत्तमाङ्गानां कर्णाक्षिनासिका हस्तपादाङ्गुल्यादीनां मध्यमाङ्गानां जीर्णतायां भङ्गे वा जीर्णोद्धारो निर्दिष्टः। केशान्तहस्तपादाङ्गुलिनखाग्रायुधाग्रादीनां हीनाङ्गानां जीर्णत्वे भङ्गे वा लेपादिना संधानं सन्धानान्तरं प्रोक्षणविधिश्च प्रोक्तः। कुत्रचिद् भङ्गाभावेऽपि सशर्करपाषाणादि निर्मितानामतिजीर्णानां प्रतिमानां जीर्णोद्धारो निगदितः। अयं जीर्णोद्धारः स्वयंभू महापुरुषस्थापितानादिसिद्धलिङ्गप्रतिमानां न भवति। ईदृग्लिङ्गप्रतिमानां स्वस्थानाचलने स्थिरी कृत्य महाभिषेकं कुर्यादिति त्रिविक्रमः।)

तत्र जीर्णादिदोषदुष्टानां देवपिण्डिकावाहनप्रासादध्वजदण्डकलशादीनां जीर्णोद्धारं कुर्वाणो दशगुणं फलं लभते।

जीर्णोद्धारप्रयोगः।

अयं जीर्णोद्धारः सुतिथिवारनक्षत्रयोगकरणचन्द्राद्यनुकूले मुहूर्त्ते कार्यः। सपत्नीको यजमानः प्राङ्मुख उपविश्य। तिलककरणम्। शिखाबन्धनम्। आचमनम्। प्राणायाम। पवित्र धारणम्। शान्तिपाठादि। संकल्पः - अद्य पू० तिथौ सकलजनपदश्रेयसे जीर्णायाः खण्डितायाः) अमुकदेवता प्रतिमायाः सपरिवारायाः) (पिण्डिकायाः, ध्वजस्य, शिखरस्य) (सग्रहमखं) जीर्णोद्धारं करिष्ये। तदङ्गभूतं गणपतिपूजनं पुण्याहवाचन (मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं) च करिष्ये। आसनविध्यादि ब्राह्मण वरणान्तं कृत्वा। ॐ अघोरेभ्यो० इति मन्त्रं १०८ अष्टोत्तरशतं जपेत्। दिग्रक्षणम्। पञ्चगव्यकरणम्। भूमिपूजनम्। अग्नि स्थापनम्-वरदनामानमग्निं बलवर्धननामान वा संस्थाप्य पूजयेत्। ततः सर्वतो भद्रमण्डले ब्रह्मादिदेवतानां स्थापनं पूजनञ्च। मध्ये कलशं संस्थाप्य मूर्त्तौ प्रधानदेवमावाह्य पूजयेत्। (ग्रहमण्डल देवतास्थापन पूजने) ब्रह्मोपवेशनाद्याज्य भागान्तम्। अग्निपूजनम्। वराहुतिः। त्यागसंकल्पः। (ग्रहहोमः)।

प्रधानहोमः - घृताक्त सर्षपैः ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽअस्तु रुद्ररूपेभ्यः स्वाहा० इति मन्त्रेण १००८ अष्टोत्तर सहस्राहुतीर्जुहुयात् । ततः प्रधानहोमः - १ क्षीर २ आज्य ३ मधु ४ दूर्वा ५ औदुम्बरसमित् ६ पायस-इति षड्द्रव्यैः केवलेनाज्येन तिलैर्वा जीर्णदेवमन्त्रेण १००८ वा १०८ संख्यया होमं कुर्यात् । ततः सर्वशान्त्यर्थं तिलैः ॐ अघोरेभ्यो० स्वाहा-इति १०८ होमः । ब्रह्मादिमण्डलदेवता होमः । व्याहृति होमः । उत्तरपूजनम् । स्विष्टकृद् । नवाहुतयः । बलिदानम् । पूर्णाहुतिः । वसोर्धारा भस्मधारणम् । आहुति संकल्पः । संस्रवप्राशनादि प्रणीता विमोकान्तम् ।

ततो जीर्णदेवं प्रार्थयेत् । ॐ जीर्णभग्नमिदं चैव सर्वदोषावहं नृणाम् । अस्योद्धारे कृते शान्तिः शास्त्रेऽस्मिन् कथिता त्वया ॥ ॥ जीर्णोद्धारविधानञ्च नृपराष्ट्र सुखावहम् । अधितिष्ठाथ मां देव प्रोद्धरामि तवाज्ञया ॥२॥ ॐ इति प्रणवेन देवं संपूज्य जलमादाय-ॐ लिङ्ग (बिम्ब) रूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम् । यायात् समाहितं स्थानं सन्त्यज्यैव शिवाज्ञया ॥३॥ अत्र स्थाने च या विद्या सर्वविद्येश्वरैर्युता । शिवेन सह संतिष्ठ-इति देवशिरसि जलं क्षिपेत् । अर्घदानम्-ॐ धामन्ते० इत्युत्तरार्घं दत्वा-सर्पपानादाय ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते० इति मन्त्रेण देवं विसर्जयेत् । यजमानदक्षिणहस्ते-हेममयं सूत्रमयं वा कङ्कणं बध्नीयात्-ॐ अघोरेभ्यो० । हैमं लौहं वा खनित्रमादाय-ॐ व्यापकेश्वराय अस्त्राय फट्-इति मन्त्रेण अभिमन्त्र्य अप्रादक्षिण्य क्रमेण ईशानादितः खनित्वा पृथग्भूतं शिवादिकं हेमपाशयुक्तया रज्ज्वा ॐ व्यापकेश्वर शिखायै वषट्-इति मन्त्रेण बद्ध्वा आचार्य ऋत्विग्भिः सहोध्धरेत् । निर्माल्यं चण्डाय ईशान्यां वा प्रक्षिप्य प्रतिमां ॐ रथे तिष्ठन्० इति रथमारोप्य ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः - इति महाजले अगाधनद्यादिषु प्रक्षिपेत् । दारुजां घृतदिग्धां अघोरमन्त्रेण ग्रामाद् बहिरुत्तरतो दहेत् ।

मण्डपमागत्य देवं प्रार्थयेत्-ॐ भगवन् भूत भव्येश लोकनाथ जगत्पते । जीर्णलिङ्ग (बिम्ब) समुद्धारः कृतस्तवाज्ञया मया ॥१॥ अग्निना दारुजं दग्धं क्षिप्तं शैलादिकं जले । प्रायश्चित्ताय देवेश अघोरास्त्रेण तर्पितम् ॥२॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यथोक्तं न कृतं यदि । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥३॥ गोविप्रशिल्पिभूतानामाचार्यस्य च यज्वनः । शान्तिर्भवतु देवेश अच्छिद्रं जायतामिदम् ॥४॥ इति प्रार्थ्य । आचार्यादिभ्यो दक्षिणादानम् । अभिषेकः । अग्निदेवताविसर्जनम् । आर्शीवादः । कर्मसमाप्तिः । अनेन जीर्णोध्धारकर्मणा ग्रामदेशनृपशिल्पिमनुष्यादीनां सकलोपद्रवशमनमस्तु ॥ अनेन जीर्णोध्धारकर्मणा भगवान् परमेश्वरः प्रीयताम् ।

(अत्र विशेषः - यदा प्रतिष्ठया साकं जीर्णोध्धारः क्रियते, तदा प्रधानसङ्कल्पे तादृश मूहं कृत्वाऽऽचार्यवरणान्ते मण्डपाद् बहिः सङ्कल्पं कृत्वा गणेशं स्मृत्वादिग्रक्षण पञ्चगव्यकरणभूमि-पूजनाग्निस्थापन सर्वतोभद्रमण्डलदेवता प्रधानदेवता स्थापन पूजनादि समाप्तिं यावद् उपर्युक्तविधिना जीर्णोध्धारकर्म स्वयं ब्राह्मणद्वारा वा सम्पादयेत् । नात्र ग्रहस्थापनग्रहहोमौ ।

॥ इति प्रतिष्ठावासुदेवयुक्तो निर्णयसिन्ध्वनुसारी जीर्णोद्धारविधिः ॥

९५ चालनविधिः ।

जीर्णादि दोष दुष्टानां पिण्डिका प्रतिमाध्वजादीनां जीर्णोद्धारविधिना विसर्जनं कार्यम् । अखण्डितानां दोषरहितानां प्रतिमादीनां तु प्रासादगर्भगृहादि संस्कारे क्रियमाणे नूतनप्रासादे प्रतिष्ठापयितुं चालनविधिः कर्तव्यः । पिण्डिकायाः प्रतिमायाश्च गुरुत्वाच्चालनासम्भवे केवलं प्रासाद संस्कारे चिकीर्षिते न चालनविधिः, किन्त्वर्चाशुद्धिं कुर्यात् । जीर्णोद्धार शब्देन संस्कारो विसर्जनश्चेति पदार्थद्वयमभिप्रेतम् । जीर्णप्रासादसंस्कारे चिकीर्षिते प्रासादतत्त्वैः प्रतितत्त्वं दशदशतिलाहुतीः केवलामेकैकामाज्याहुतिं वा दत्त्वा प्रासादतत्त्वानां खड्गेन्यासं कृत्वा निष्पन्ने प्रासादे खड्गाद् तत्त्वानि । प्रासादाधिवासनवेलायां प्रतिन्यस्येत् । पिण्डिकाचालने पिण्डिका पञ्चाङ्गानि मूर्तिमूर्तिपति लोकपालान् आत्मतत्त्वादिषट्तत्त्वानि प्रतितत्त्वं दशदशतिलाहुतीः केवलामेकैकामाज्याहुतिं वा हुत्वा खड्गे तत्त्वानांन्यासः प्रतिमायास्तु चालने अकारादिसर्वतत्त्वानां प्रतितत्त्वं दशदशतिलाहुतीरेकैकामाज्याहुतिं वा हुत्वा, एतावदशक्तौ ॐ पराय विष्ण्वात्मने शिवात्मने-शक्त्यात्मने० इत्यादि स्वाहा इति मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतं हुत्वा देवं स्पृष्ट्वा जलपात्र्यामकारादितत्त्वान्यवधारयेत् । खड्गं पात्रञ्च चालित देवनिकटे स्थापयेत् । प्रासादाधिवासने प्रासादतत्त्वानि खड्गात् प्रासादे प्रतिन्यस्येत् । स्थापिते देवे तत्त्वन्यास जलात् तत्त्वानि देवे प्रतिन्यस्येत् अथवा पात्रजलं शिरसि देवमन्त्रेण निषिञ्चेत् ।

'शतेन स्थापयेद् देवं सहस्रेण विचालयेत्' इति वचनबलेन चालनविधावपि अघोरमन्त्रेण सर्षपैः सहस्रहोमः देवताहोमश्चावश्यकः । प्रासादतत्त्वानां पिण्डिकातत्त्वानां प्रतिमादेवतातत्त्वानाञ्च दशदशतिलाहुतिपूर्वकं केवलाज्याहुतिपूर्वकं वा खड्गे पात्रस्थजलेचावतारणं प्रतिष्ठानन्तरं खड्गात् पात्री जलाच्च तत्र तत्र प्रतिनिधानमावश्यकं बोध्यम् ।

प्रासादपिण्डिकाप्रतिमाचालनप्रयोगः ।

सपत्नीको यजमानः प्राङ्मुख उपविश्य । तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । पवित्रधारणम् । शान्तिपाठादि । सङ्कल्पः - अद्य पू० तिथौ सकलजनपदकल्याणाय जीर्णोद्धारोक्तफल-प्राप्तये नूतनं प्रासादं निर्माय तत्र पुनः प्रतिष्ठां कर्तुं प्रासादतत्त्वानां (अखण्डितपिण्डिकायाः, अखण्डितप्रतिमायाः) श्री परमेश्वरप्रीत्यर्थं (सग्रहमखं) चालनविधिमहं करिष्ये । तदङ्गभूतं आसनविध्यादि-पूर्वकं गणपतिपूजनं स्वस्तिपुण्याहवाचनं (मातृकापूजनं वसोर्धारा पूजनमायुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं) ऋत्विग्वरणं दिग्रक्षणं पञ्चगव्यकरणं भूमिपूजनमग्निस्थापनं सर्वतोभद्रमण्डलदेवतास्थापनं प्रधानदेवता-वास्तुस्थापनं (ग्रहस्थापनं) विहितं हवनतत्त्वोद्धारचालनादि कर्म च करिष्ये । आसनविध्यादिनान्दी-श्राद्धान्तम् । ऋत्विग्वरणम् । दिग्रक्षणम् । पञ्चगव्यकरणम् । भूमिपूजनम् । बलवर्धननामाग्निस्थापनम् । सर्वतो भद्रमण्डलदेवता - स्थापनम् । कलशे प्रधानदेवतावास्तुपुरुषस्थापनम् । (ग्रहस्थापनम्) ।

ब्रह्मोपवेशनाद्याज्यभागान्तम् । अग्निपूजनम् । वराहुतिः । त्यागसङ्कल्पः । (ग्रहहोमः) । ततस्तिलैः सर्षपैर्वा ॐ अघोरेभ्यो० स्वाहा- इति १००८ संख्यया जुहुयात् । ततः १ क्षीर २ आज्य ३ दधि ४ दूर्वा ५ औदुम्बरसमित् ६ पायस - इति षड्भिर्द्रव्यैः केवलैस्तिलैर्वा (प्रासादे-ॐ सहस्रशीर्षा० गुलं स्वाहा, पिण्डिकायां-गौरीर्मिमाय० (आयङ्गौः० स्वः स्वाहा, अम्बे अम्बिके० श्रीश्चते० प्रतिमायां तत्तद्देवमन्त्रेण) १००८ वा १०८ संख्यया जुहुयात् । प्रासादजीर्णोद्धारेपृथिव्यादितत्त्वैर्दशदशतिलाहुतयः केवलाज्याहुतिर्वा । पिण्डिकाचालने - यं थं मं फट् लक्ष्म्यै (गौर्यै) हृदयाय० शिरसे० शिखायै० कवचाय० अस्त्राय० (५) मूर्तिमूर्त्तिपतिलोकपालानां (२४) आत्मतत्त्वादि षट्तत्त्वानां दशदशतिलाहुतीः केवलाज्याहुतिं वा जुहुयात् । प्रतिमादिचालने-आकाशादिसर्वतत्त्वानां दशदशतिलाहुतीः केवलामाज्याहुतिं वा जुहुयात् । एतावदशक्तौ ॐ पराय शिवात्मने (विष्ण्वात्मने-शक्त्यात्मने-गणेशात्मने-) स्वाहा- इति तिलैः १०८ संख्यया जुहुयात् । वास्तोः सर्वतोभद्रमण्डलदेवतानामेकैकाज्याहुतिः दशदश वा तिलाहुतयः । व्याहृतिहोमः । उत्तरपूजनादिप्रणीताविमोकान्तं कुर्यात् ।

ततः प्रासादगर्भगृहे पिण्डिकासमीपे भूमौ खड्गं छुरिकां वा निधाय अक्षतैर्भूमिं स्पृष्ट्वा प्रतितत्त्वं खड्गे छुरिकायां अक्षतनिक्षेपेण प्रासादतत्त्वोद्धारं कुर्यात्-

१ ॐ पृथिवीतत्त्वं खड्गेन्यसामि । २ श्रीकण्ठं० ३ अपः० ४ जलेशं० ५ तेज० ६ त्विषांनिधिं० ७ वायुं० ८ मातरिश्वानं० ९ आकाशं० १० सूक्ष्मं० ११ रूपतन्मात्रात्मानं० १२ भानुमन्तं० १३ रसतन्मात्रात्मानं० १४ जलदं० १५ गन्धतन्मात्रात्मानं० १७ स्पर्शतन्मात्रात्मानं० १८ बलवत्तरं० १९ शब्दतन्मात्रात्मानं० २० सूक्ष्मनादं० २१ वाक्तत्त्वं० २२ दुन्दुभिं० २३ पाणितत्त्वं० २४ समानं० २५ पादतत्त्वं० २६ चक्रं० २७ पायुतत्त्वं० २८ कर्णभुजं० २९ उपस्थतत्त्वं० ३० घनानन्दं० ३१ रसतत्त्वं० ३८ महावक्त्रं० ३९ प्राणतत्त्वं० ४० विलुण्टकं० ४१ मनस्तत्त्वं० ४२ संकल्पं० ४३ बुद्धितत्त्वं० ४४ बुद्धिं० ४५ अहंकारतत्त्वं० ४६ अहंकृतिं० ४७ चित्ततत्त्वं० ४८ मन० ४९ प्रकृतितत्त्वं० ५० पितामहं० ५१ पुरुषतत्त्वं० ५२ विष्णुं० ५३ सदाशिवतत्त्वं० ५४ अजेशं० ५५ कालतत्त्वं० ५६ क्रतुध्वजं० ५७ वियातत्त्वं० ५८ विष्णुं० (वैष्णवे-५९ कलशस्थचक्राद्यायुधानि शैवे-शूलाद्यायुधानि० गणपतौ० अङ्कुशाद्यायुधानि० सूर्ये-शङ्खचक्राद्यायुधानि० देव्याम्-गदाखड्गाद्यायुधानि०) ६० सत्त्वं० ६१ रजः० ६२ तमः० ६३ वह्निमण्डलं० ६४ सूर्यमण्डलं० ६५ सोममण्डलं खड्गे न्यसामि-इति तत्त्वोद्धारं कृत्वा संपूज्य चिह्नितं कृत्वा पुनः प्रतिष्ठां यावत् खड्गं देवनिकटे स्थापयेत्-प्रासादप्रतिष्ठायां जातायां पुनरेतानि तत्त्वानि-प्रासादे पुनर्न्यसामि-इत्युक्त्वा खड्गात् अक्षतैः प्रासादे न्यसेत् । इति प्रासादचालनम् ।

पिण्डिकाचालनविधिः - पिण्डिकासमीपे खड्गं छुरिकां वा 'पिण्डिका' इति चिह्नितां निधाय अक्षतैः पिण्डिकां स्पृष्ट्वा ततत्त्वं खड्गे छुरिकायां वा न्यसेत्-ॐ यं थं भं फट्लक्ष्म्यै (गौर्यै) हृदयाय नमः हृदयं छुरिकायां न्यसामि । २ यं० शिरसेनमः शिरः० । ३ यं० शिखायै नमः शिखां० । ४ यं०

कवचाय नमः कवचं० । ५ यं० अस्त्राय नमः अस्त्रं० । ६ पृथिवी मूर्ति० ७ शिवं० ८ इन्द्रं० ९ अग्निमूर्त्तिं० १० पशुपतिं० ११ अग्निं० १२ यजमानमूर्त्तिं० १३ उग्रं० १४ यमं० १५ अर्कमूर्तिं० १६ रुद्रं० १७ निर्ऋतिं० १८ जलमूर्त्तिं० १९ भवं० २० वरुणं० २१ वायुमूर्तिं० २२ ईशानं० २३ वायुं० २४ सोममूर्त्तिं० २५ महादेवं० २६ सोमं० २७ आकाशमूर्तिं० २८ भीमं० २९ ईशानं० ३० आत्मतत्त्वं० ३१ क्रियाशक्तिं० ३२ शिवतत्त्वं० ३३ इच्छाशक्तिं० ३४ विद्यातत्त्वं० ३५ आधारशक्तिं० सर्वतत्त्वसहितां पिण्डिकां ॐ श्रीश्चते० (गौरीर्मिमाय० अम्बे अम्बिके० आयङ्गौः०) इतिमन्त्रं पठन् छुरिकायां न्यसामि । एवं पिण्डिकातत्त्वानां चालनं कृत्वा छुरिकां देवसमीपे पुनः प्रतिष्ठां यावत् सुरक्षेत् । पुनः प्रतिष्ठाकाले- १ यं थं भं तः ३५ आधारशक्त्यन्तानि पुनः पिण्डिकायां न्यसामि-इति वदन् छुरिकामक्षतैः स्पृष्ट्वा पिण्डिकायामक्षतान् क्षिपेत् । इति पिण्डिकाचालनम् । पद्मनाभादिषु ॐ नमो व्यापिनि स्थिरे अचले ध्रुवे श्रीं लं स्वाहा- इति पिण्डिकामन्त्र उक्तः ।

प्रतिमातत्त्वचालनम्-यावतीनां प्रतिमानां चालनं चिकीर्षितं तावन्ति जलपात्राणि तत्तत्प्रतिमानामभिश्चिह्नितानि तत्तद्देवतासमीपे निधाय तावतो ब्राह्मणानुपवेश्य तत्तत्तत्त्वं स्मरन् जलपूरितात् पात्रान्तराज्जलमादाय प्रतिमां स्पृष्ट्वा चिह्नितपात्रे जलं क्षिपेत्-सर्वत्र न्यासतत्त्वचालने 'जले न्यसामि' इति वदेत् ।

१ अकारं०	१७ एकारं०	३३ पकारं०	४९ छकारम्०
२ उकारं०	१८ ऐकारं०	३४ फकारं०	५० जकारम्०
३ मकारं०	१९ ओकारं०	३५ बकारं०	५१ झकारम्०
४ भूः०	२० औकारं०	३६ भकारं०	५२ ञकारम्०
५ भुवः०	२१ अंकारं०	३७ मकारं	५३ ककारम्०
६ स्वः०	२२ अःकारं०	३८ तकारं०	५४ खकारम्०
७ अकारं०	२३ यकारं०	३९ थकारं०	५५ गकारम्०
८ आकारं०	२४ रकारं०	४० दकारं०	५६ घकारम्०
९ इकारं०	२५ लकारं०	४१ धकारं०	५७ ङकारम्०
१० ईकारं०	२६ वकारं०	४२ नकारं०	५८ रविचन्द्रौ०
११ उकारं०	२७ शकारं०	४३ टकारं०	५९ भौमं०
१२ ऊकारं०	२८ षकारं०	४४ ठकारं०	६० बुधं०
१३ ऋकारं०	२९ सकारं०	४५ डकारं	६१ बृहस्पतिं०
१४ ॠकारं०	३० हकारं०	४६ ढकारं	६२ शुक्रं०
१५ ऌकारं०	३१ ळकारं०	४७ णकारं०	६३ शनैश्चरम्०
१६ ॡकारं०	३२ क्षकारं०	४८ चकारं०	६४ राहुं०

६५ केतुं०
६६ रोहिणीः०
६७ मृगशिरः०
६८ आर्द्रां०
६९ पुनर्वसू०
७० पुष्यं०
७१ आश्लेषाः०
७२ मघाः०
७३ पूर्वाफाल्गुनीः०
७४ उत्तराफाल्गुनीः०
७५ हस्तं०
७६ चित्रां०
७७ स्वातीं०
७८ विशाखे०
७९ अनुराधान्०
८० ज्येष्ठाः०
८१ मूलं०
८२ पूर्वाषाढाः०
८३ उत्तराषाढाः०
८४ श्रवणधनिष्ठाः०
८५ शततारकाः०
८६ पूर्वाभाद्रपदाः०
८७ उत्तराभाद्रपदाः०
८८ रेवतीं०
८९ अश्विन्यौ०
९० भरणीः
९१ कृत्तिकाः
९२ ध्रुवं०
९३ सप्तर्षीन्०
९४ मातृमण्डलं
९५ विष्णुपदानि०
९६ नागवीथिं०
९७ अजवीथिं०
९८ ताराः०
९९ अगस्त्यं०
१०० चैत्रं०
१०१ वैशाखं०
१०२ ज्येष्ठं०
१०३ आषाढं०
१०४ श्रावणं०
१०५ भाद्रपदं०
१०६ आश्विनं०
१०७ कार्त्तिकं०
१०८ मार्गशीर्षं०
१०९ पौषं०
११० माघं०
१११ फाल्गुनं०
११२ संवत्सरं०
११३ परिवत्सरं०
११४ इद्वत्सरं०
११५ अनुवत्सरं०
११६ पर्वाणि०
११७ ऋतून्०
११८ अहोरात्रान्०
११९ क्षणं०
१२० लवं०
१२१ काष्ठां०
१२२ कृतयुगं०
१२३ त्रेतायुगं०
१२४ द्वापरयुगं०
१२५ कलियुगं०
१२६ चतुर्दशमन्वन्तराणि
१२७ परं०
१२८ परार्धं०
१२९ महाकल्पं०
१३० उदगयनं०
१३१ दक्षिणायनं०
१३२ विषुवन्तं०
१३३ ब्राह्मणं०
१३४ क्षत्रियं०
१३५ वैश्यं०
१३६ शूद्रं०
१३७ सङ्करजान्०
१३८ अनुलोमजान्०
१३९ गाः०
१४० अजाः०
१४१ अविकाः०
१४२ ग्राम्यपशून्०
१४३ आरण्यपशून्०
१४४ मेघान्०
१४५ अभ्राणि०
१४६ नदीः०
१४७ समुद्रान्०
१४८ ऋग्वेदं०
१४९ यजुर्वेदं०
१५० सामवेदं०
१५१ सर्वोपनिषदः०
१५२ इतिहासपुराणानि०
१५३ अथर्वाङ्गिरसानि०
१५४ कल्पसूत्राणि०
१५५ व्याकरणानि०
१५६ तर्कान्०
१५७ मीमांसाम्०
१५८ निरुक्तं०
१५९ छन्दःशास्त्राणि०
१६० ज्योतिःशास्त्राणि
१६१ गीताशास्त्राणि०
१६२ भूतशास्त्राणि०
१६३ आयुर्वेदं०
१६४ धनुर्वेदं०
१६५ योगशास्त्राणि०
१६६ नीतिशास्त्राणि०
१६७ वश्यतन्त्रं०
१६८ दिवं०
१६९ सूर्यलोकं०
१७० चन्द्रलोकं०
१७१ वायुलोकं०
१७२ समुद्रान्०
१७३ पृथिवीं०
१७४ हिरण्यगर्भं०
१७५ कृष्णं
१७६ रुद्रं०
१७७ यमं०
१७८ अश्विनौ०
१७९ वैश्वानरं०
१८० मरुतः०
१८१ वसून्०
१८२ रुद्रान्०
१८३ आदित्यान्०
१८४ सरस्वतीं०
१८५ इन्द्रं०
१८६ बलिं०
१८७ प्रह्लादं
१८८ विश्वकर्माणं०

१८९ नारदं०
१९० अनन्तादीन्०
१९१ वरुणं०
१९२ मित्रं०
१९३ विश्वान्देवान्०
१९४ पितॄन्०
१९५ यक्षान्०
१९६ राक्षसान्०
१९७ पिशाचान्०
१९८ असुरान्०
१९९ विद्याधरान्०
२०० ग्रहान्०
२०१ गुह्यकान्०
२०२ पूतनादीः०
२०३ गन्धर्वान्०
२०४ कार्तिकेयं०
२०५ गणेशं०
२०६ मत्स्यं०
२०७ कूर्मं०
२०८ वराहं०
२०९ नृसिंहं०
२१० वामनं०
२११ परशुरामं०
२१२ रामं०
२१३ कृष्णं०
२१४ बुद्धं०
२१५ कल्किं०
२१६ केशवं०
२१७ नारायणं०
२१८ माधवं०
२१९ गोविन्दं०
२२० विष्णुं०
२२१ मधुसूदनं०
२२२ त्रिविक्रमं०
२२३ वामनं
२२४ श्रीधरं०
२२५ हृषीकेशं०
२२६ पद्मनाभं०
२२७ दामोदरं
२२८ अश्वमेधं०
२२९ नरमेधं०
२३० राजसूयं०
२३१ गोसवं०
२३२ द्वादशाहं०
२३३ अहीनान्
२३४ सर्वजितः०
२३५ सर्वमेधं०
२३६ अग्निष्टोमं०
२३७ अतिरात्रं०
२३८ आप्तोर्यामं०
२३९ षोडशिनं०
२४० उक्थ्यं०
२४१ वाजपेयं०
२४२ अत्यग्निष्टोमं०
२४३ चातुर्मास्यं०
२४४ सौत्रामणिं०
२४५ पविष्टीः
२४६ दर्शपूर्णमासौ०
२४७ सर्वेष्टीः०
२४८ स्वाहाकारं०
२४९ वषट्कारं०
२५० पञ्चमहायज्ञान्०
२५१ आहवनीयं०
२५२ दक्षिणाग्निं०
२५३ गार्हपत्यं०
२५४ वेदीं०
२५६ सवनानि०
२५७ इध्मान्०
२५८ दर्भान्०
२५९ धर्मं०
२६० ज्ञानं०
२६१ वैराग्यं०
२६२ ऐश्वर्यं० वैष्णवे
२६३ खड्गं०
२६४ शार्ङ्गं०
२६५ मुसलं०
२६६ हलं०
२६७ चक्रं०
२६८ शङ्खं०
२६९ गदां०
२७० पद्मं०
शैवे
वज्रं०
शक्तिं०
दण्डं०
खड्गं०
पाशं०
अङ्कुशं०
त्रिशूलं०
ध्वजं०
चक्रं०
पद्मं०
अन्यदेवतासु
तत्तदायुधानि
२७१ लक्ष्मीं०
२७२ सरस्वतीं०
२७३ रतिं०
२७४ प्रीतिं०
२७५ कीर्तिं०
२७६ शान्तिं०
२७७ तुष्टिं०
२७८ पुष्टिं०
२७९ अग्निमीळे०
२८० इषेत्वोर्जेत्वा०
२८१ अग्नआयाहि०
२८२ शन्नोदेवी०
२८३ एकाचमे०
२८४ स्वस्तिन इन्द्रो०
२८५ दीर्घायुस्त्व०
२८६ विश्वतश्चक्षु०
२८७ त्रातारमिन्द्र०
२८८ त्र्यम्बकंयजामहे०
२८९ मूर्धानं दिवो०
विष्णोः
२९० हृदयं०
२९१ शिरः०
२९२ शिखां०
२९३ कवचं०
२९४ नेत्रत्रयं०
२९५ अस्त्रं०
२९६ नकारं०
२९७ मोकारं०
२९८ भगवतेकारं०
२९९ वासुदेवायकारं०

३०० नमो भगवते०	३०५ मोकारं०	३१० वाकारं०	रुद्रस्य
३०१ श्रीवत्सं०	३०६ भकारं०	३११ सुकारं०	१ हृदयं० ४ कवचं०
३०२ कौस्तुभं०	३०७ गकारं०	३१२ देकारं०	२ शिरः० ५ नेत्रत्रयं०
३०३ वनमालां०	३०८ वकारं०	३१३ वाकारं०	३ शिखां०६ अस्त्रं०
३०४ नकारं०	३०९ तेकारं०	३१४ यकारं०	

नकारं०	क्लीं०	सर्वसाधारणः विष्णोश्च	यज्ञेन यज्ञं०
मोकारं०	चामुण्डायै०	सहस्रशीर्षा,	अद्भ्यःसम्भृतः०
भगवते०	विच्चे०	पुरुष एवेद०	वेदाहमेतं०
रुद्राय०	ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै	एतावानस्य०	प्रजापतिश्चरति०
नकारं०	विच्चे०	त्रिपादूर्ध्व०	यो देवेभ्यः
मोकारं०	रामस्य	ततो विराड०	रुचं ब्राह्मं०
भकारं०	ॐ नमो भगवते राम	तस्माद्यज्ञात्०	श्रीश्चते०
गकारं०	भद्राय इति प्रत्यक्षरम्	तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः	रुद्रस्य
वकारं	दत्तात्रेयाय नमः	तस्मादश्वा०	ॐ नमस्ते रुद्र० १६
तेकारं०	ॐ द्रां ह्रीं क्लीं	तंयज्ञं बर्हिषिप्रौक्षं०	देव्याः
रुकारं०	दत्तात्रेयाय नमः०	यत्पुरुषं०	ॐ हिरण्य वर्णा० १५
द्राकारं०	गणेशस्य	ब्राह्मणोऽस्य०	
यकारं०	ॐ एकदन्ताय०	चन्द्रमा०	
देव्याः०	अन्य देवतासु तत्तन्मन्त्रा	नाभ्या आसीद०	
ऐं०	क्षराणां गायत्र्या)	यत्पुरुषेण०	
ह्रीं०	सूक्तस्य वा न्यासः ।	सप्तास्या०	

एतावन्न्यासतत्त्वानां चालनासंभवे-१ ॐ पुरुषात्मानं० २ प्राणात्मानं० ३ प्रकृतितत्त्वात्मानं० ४ अहंकारतत्त्वं० ५ मनस्तत्त्वं० ६ प्रकृतितत्त्वं० ७ बुद्धितत्त्वं० ८ हृदयं० ९ शब्दतत्त्वं० १० स्पर्शतत्त्वं० ११ रूपतत्त्वं० १२ रसतत्त्वं० १३ गन्धतत्त्वं० १४ श्रोत्रतत्त्वं० १५ त्वक्तत्त्वं० १६ चक्षुस्तत्त्वं० १७ जिह्वातत्त्वं० १८ घ्राणतत्त्वं० १९ वाक्तत्त्वं० २० पाणितत्त्वं० २१ पादतत्त्वं० २२ उपस्थतत्त्वं० २३ पृथिवीतत्त्वं० २४ अप्तत्त्वं० २५ तेजस्तत्त्वं० २६ वायुतत्त्वं० २७ आकाशतत्त्वं० २८ सत्त्वं० २९ रजः० ३० तमः० ३१ देहतत्त्वं० समस्तेन्द्रियसंयुक्तं सूक्ष्मदेहान्वितं मूलसंज्ञकं जीवं न्यसामि-इत्युक्त्वा पात्रे जलं क्षिपेत् । प्रतिमायां स्वस्थाने पुनः प्रतिष्ठितायांन्यासावसरे वा तस्माज्जलपात्राजलमादाय ॐ पात्रस्थमकरं देवे पुनर्न्यसामि-इत्येवं क्रमेण सर्वतत्त्वानि देवे जलं क्षिपन् न्यसेत् । शेषजलं देवशिरसि पादयोर्वा निषिञ्चेत् । ततो महापूजां कुर्यात् ।

हस्ते फलगन्धपुष्पाक्षतादियुतमर्घं गृहीत्वा - ॐ त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं गेहं निर्मापयत्यसौ । वासं कुरु सुरश्रेष्ठ तावत्त्वं चाल्पके गृहे ॥१॥ वस क्लेशं सहित्वैव मूर्त्तिं वा तव पूर्ववत् । यावत् कारयते भक्तः कुरु तस्य च वाञ्छितम् ॥२॥ इति देवायार्घं दत्त्वा प्रणमेत् ।

ततः शिल्पिनं कुद्दालकादिशस्त्रेषु च ॐ विश्वकर्मन् हविषा व्वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवद्ध्यम् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्व्वीरयमुग्रो व्विहव्व्यो यथासत् ॥ विश्वकर्मणे नमः - इति गन्धादिभिः संपूज्य शस्त्रेण पिण्डिकां प्रतिमाञ्च खनित्वा देवमुद्धृत्य रथादौ निवेश्य मङ्गलवाद्यघोषेण पूर्वकल्पितं मन्दिरं नीत्वा यथास्थानावस्थितपीठादौ देवं स्थापयित्वा तत्त्वन्यासजलपात्रं देवशिरसि देवसमीपे वा स्थापयेत् । खड्गं छुरिकासमीपे स्थापयेत् । पुनः प्रतिष्ठां यावत् प्रत्यहं त्रिसन्ध्यं पूजयेत् ।

दक्षिणादानम् । अभिषेकः अग्निदेवताविसर्जनम् । आशीर्वादः । कर्मसमाप्तिः । अनेन चालनविधिना भगवान् परमेश्वरः प्रीयताम् ।

इति प्रासादपिण्डिकाप्रतिमाचालनविधिः ।

९६ प्रतिष्ठासार दीपिकोक्तः कलशारोपण (शिखरप्रतिष्ठा) विधिः ।

(अयं विधिः शिखरभङ्गे सति शिखरान्तरारोपणे कार्यः । नूतनप्रासादे सप्रासादप्रतिष्ठाविधौ तु 'सशिखरं प्रासादं स्नपयेद्' इति वचनबलात् प्रतिष्ठाविधिना साकं शिखरस्य जलाधिवासं कुटीरहोमं स्नपनविधिं च कृत्वा संपूज्य प्रासादे कलशं शिखरं समारोप्य लेपादिना सुस्थिरं कृत्वा सम्पूज्य प्रासादस्नपनं कुर्यात् । होमकाले प्रासादप्रधानदेवतामन्त्रेण० आजिघ्रकलशं० इति मन्त्रेण वा होमं कुर्यात्, प्रासादाधिवासनञ्च । कलशप्रतिष्ठाविधेः प्रधानतन्त्रेण सह समवायाच्च पृथक् शिखरप्रतिष्ठाया आवश्यकत्वमिति बोध्यम् ।)

सुमुहूर्त्ते कृतस्नानसन्ध्यादिनित्यक्रियः सपत्नीकः कर्ता वस्त्राच्छादितपीठे प्राङ्मुख उपविश्य । तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । शान्तिपाठादि । सङ्कल्पः- समस्तपितॄणां प्रासादप्रतिमाणुसंख्याकवर्षाणि यावद् ब्रह्मलोकनिवासहेतवे मम सकुटुम्बस्य सकलकामनासिद्धये अमुकदेवताप्रासादोपरि नूतनकलशारोपणाख्यं कर्म करिष्ये । गणेशपूजनादि पञ्चगव्यकरणान्तं कृत्वा स्थण्डिलात् पुरतः हस्तमात्रां वेदीं प्रकल्प्य वेदीकोणेषु चतुरः कलशान् पञ्चरत्नफलाद्युपेतान् संस्थापयेत् ।

ततो वेद्याः पश्चाल्लौकिकांश्चतुरः कलशान् संस्थाप्य तत्पुरत उष्णोदककलशं संस्थाप्य तत्पुरतः १ गन्धोदक २ पल्लवोदक ३ सर्वौषधी ४ अक्षतोदकसहिताश्चत्वारः कलशाः स्थापनीयाः । एवं त्रयोदश कलशान् स्थापयेत् ।

आचार्यः सऋत्विग् पुरतः शिखरकलशं निधाय ॐ हिरण्यवर्णां ० १५ श्रीसूक्तेन लौकिकैश्चतुर्भिः कलशैः स्नपयेत् । दिक्पालबलिदानम् ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० इति सुगन्धतैलेन अभ्यज्य गन्धाद्यैः सम्पूज्य ॐ युवासुवासाः० इति त्रिसूत्र्याऽवेष्ट्य रथमारोप्य सतूर्यघोषं मण्डपमानीय भद्रपीठे शिखरकलशं स्थापयेत् ।

ततः शिखरकलशं ॐ घृतवती भुवनाना० इति मन्त्रेण घृतेनाभ्यज्य ॐ द्रुपदादिव० इति मन्त्रेण यवमसूर हरिद्रापिष्टेनोद्वर्त्य ॐ शुद्धवालः सर्व० इत्युष्णोदकेन प्रक्षाल्य १ ॐ मूर्धानं दिवो० इति गन्धोदकेन २ ॐ हिरण्यगर्भः० इति पल्लवोदकेन ३ ॐ या ओषधी० इति सर्वौषधीकलशेन ४ ॐ ह ह सः शुचिषद्० इत्यक्षतोदककलशेन स्नपयेत् । अथ वेदीकोणस्थैराग्नेयादि क्रमेण १ ॐ मानस्तोके० २ ॐ विष्णोरराट० ३ सोम ह राजानमवसे० ४ विश्वतश्चक्षुः० इति क्रमेण संस्नाप्य ॐ समुद्रज्येष्ठाः० ४ (ऋग्वेद) १ इमम्मे० २ तत्त्वायामि० ३ त्वन्नो अग्ने० ४ सत्वन्नो अग्ने० इति मन्त्रैः शुद्धोदकेन शिखरं प्रक्षाल्य शिखरे प्रधानदेवं (ॐ नमः शम्भवाय० इदं विष्णु० अम्बे अम्बिके) इत्यादि तत्तद्देवमन्त्रेण देवमावाह्य गन्धाद्यैः सम्पूज्य वस्त्रैराच्छाद्य देवमन्त्रेण स्तुत्वा मण्डपमानीय वेद्युपरि शय्यायां गन्धाद्यैः सम्पूज्य ॐ विश्वतश्चक्षु० इति मन्त्रेणाभिमन्त्र्याधिवासयेत् ।

स्थण्डिले बलवर्धननामानमग्निं पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं संस्थाप्य संपूज्य दक्षिणतो ब्रह्मासनमित्याद्याधाराज्यभागान्तं कृत्वा - प्रधानदेवं १ घृत २ दधि ३ क्षीर ४ मधु - इति द्रव्यचतुष्टयेन घृतादिमिलितद्रव्य चतुष्टयेन वा प्रधानमन्त्रेण १०८ वा २८ संख्यया जुहुयात् । पुनः १ पलाश २ उदुम्बर ३ अश्वत्थ ४ शमी ५ अपामार्ग समित् ६ चरु ७ तिल - इति सप्तभिर्द्रव्यैः प्रत्येकं केवलेन आज्येन तिलैर्वा प्रधानमन्त्रेण १०८ वा २८ संख्यया जुहुयात् । सम्पातं कलशे प्रक्षिप्य कलशं संस्नाप्य ॐ विश्वतश्चक्षुः० इति शिखरं मूलाद्यग्रान्तं स्पृशेत् ।

उत्तरपूजन स्विष्टकृदादि प्रणीताविमोकान्तं कृत्वा-यजमानः स्थापितकलशसमीपमागत्य पुरुषसूक्तेन तत्तद्देवतासूक्तेन मन्त्रेण वा कलशमभिमन्त्र्य सम्पूज्य प्रासादं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य कलशस्थापनगर्ते पूर्वादि क्रमेण वज्रमौक्तिकवैडूर्य शंखस्फटिक पुष्पराग इन्द्रनीलमहानील रत्नानि तदभावे सुवर्णं रजतं द्रव्यं वा प्रक्षिप्य तूर्यघोषेण प्रासादशिखरभागे कलशमारोप्य सुदृढं कृत्वा देवमन्त्रेण ॐ आजिघ्रकलशं० मनोजूति० इत्यादिमन्त्रैः प्रतिष्ठां कृत्वा वस्त्रेणाच्छाद्य ॐ फट्-इति मन्त्रेणाभिमन्त्र्य शूलं चक्रं देवायुधं वा न्यसेत् । शिल्पिना सुस्थिरीकृते नारिकेलफलोदकेनाभिषिच्य गन्धपुष्प मालादिभिः सम्पूज्य शुक्लवस्त्राण्यन्योन्यबध्धानि कलशाग्रे ईशान्यां भूमौ लम्बयेत् । दक्षिणासङ्कल्पादि । अभिषेकः । ब्राह्मणपूजनम् । देवताग्निविसर्जनम् । आशीर्वादः । कर्म समाप्तिः । ब्राह्मणभोजनम् ।

॥ इति शिखरकलशप्रतिष्ठाप्रयोगः ॥

१७ प्रोक्षणविधिः ।

(शूद्ररजस्वलापतितचौर चाण्डालान्त्यजश्वकाक गर्दभरक्त पूयादि दूषितायां प्रतिमायां, बुद्धि पूर्वं पूजाविच्छेदे च प्रोक्षणविधिः पुनः प्रतिष्ठा च कार्या । अयं विधिः स्वस्थानस्थितायां प्रतिमायामेव कार्यः । तत्र एकदिन पूजाविच्छेदे द्विगुणं पूजनम् । दिनद्वये पूजाविच्छेदे महापूजा त्रिरात्रादूर्ध्वं मासं यावत् पूजाविच्छेदे प्रोक्षणविधिः, मासादूर्ध्वं पूजाविच्छेदे प्रोक्षणविधिः पुनः प्रतिष्ठा च कार्या । एवमेव निषिध्धस्पर्शादावपि प्रोक्षणविधिः । वस्तुतस्तु प्रोक्षणविधौ देवता विसर्जनप्रोक्षणतत्त्वन्यासपुनः प्रतिष्ठाविधीनां समावेशात् । निषिद्धस्पर्शपूजाविच्छेदजन्य प्रायश्चित्तद्वयमेकेनैव विधिना सिध्यतीति बोध्यम् । स्थिरप्रतिमायाः स्वस्थानस्थिताया एव चलमूर्तेस्तु स्थानान्तरे निधायापि शुद्धौ न कश्चिद् दोषः) अयं मलमासगुरुशुक्रास्त बाल्यवार्धक्यादावपि कार्यः) ।

संप्रोक्षणप्रयोगः ।

तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । शान्तिपाठः । संकल्पः अस्याः प्रतिमायाः (आसां प्रतिमानां) निषिद्ध स्पर्श पूजाविच्छेदादिजन्य सकल प्रायश्चित्तनिवृत्ति पूर्वकं दिव्य देवकला तेजोऽभिवृध्धये प्रोक्षणविधिमहं करिष्ये । आसन विध्यादि । गणेश पूजनम् । स्वस्तिपुण्याहवाचनम् । हस्ते अक्षतान् गृहीत्वा ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते० इति प्रतिमास्थितं देवं विसर्जयेत् । ततो मृत्तिकामादाय-ॐ इदं विष्णु० त्रीणिपदा० विष्णोः कर्माणि० तद्विष्णोः० तद्विप्रासो० इति पञ्चवारं मृदा देवं संशोध्य (अन्यदेवतासु तत्तन्मन्त्रैः ॐ आपोहिष्ठा० ३ इति जलेन प्रक्षाल्य मन्त्रैः पञ्चगव्यं संसाध्य ॐ आपो अस्मा० इति देवं पञ्चगव्येन संशोध्य कुशान् आदाय-तत्त्वन्यासलिपिन्यास मंत्रपूर्वकं स्वस्थानस्थिते देवे चलितमूर्तौ वा पुनः प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा महापूजननीराजनादि कुर्यात् 1) कर्मसमाप्तिः ।

प्रतिमाशिवलिङ्गप्रासादशिखरध्वजादिभङ्गे शान्तिः ।

(शान्तिकमलाकरमनुरुध्य धर्मसिन्धौ प्रतिमाशिवलिङ्गप्रासादकलशादिभङ्गे स्वामिनो मरणं भवेदित्युक्तम् । पुनश्चात्र शान्तिर्निर्दिष्टा । अत्रेदं विचार्यते-प्रतिमाशिवलिङ्ग प्रासादादीनां भूकम्प वज्रपात महावातादिना भङ्गेन शान्तिकरणेऽपि भग्नानां तेषां जीर्णोद्धारो नूतन प्रतिमा शिवलिङ्गशिखरध्वजादीनां पुनः प्रतिष्ठा तु समापतत्येव । भङ्गजनितदुर्निमित्तोपशमनार्थं तत्र शान्तिर्निर्दिष्टा जीर्णोद्धारविषये नूतनप्रतिमाप्रतिष्ठा विषये च मौनमेव समालम्बितम् । जीर्णखण्डितभग्नदग्धादि दोषे 'शतेन स्थापयेद् देवं सहस्रेण विचालयेत्' इत्यघोरमन्त्रेण सर्षपहोमे कृतेऽघोरमन्त्रस्य नितरामावश्यकत्वादियं शान्तिः कृताकृता । 'गुणविशेषे फलविशेषः' इति भगवता

कात्यायनेन निर्देशात् कृतायां शान्तौ न कश्चिद् दोषः । तथापि जीर्णोद्धारपूर्वकं नूतनप्रतिष्ठा कार्यैवेति स्वयं सिद्धम् । प्रासादभङ्गे संस्कारादिना प्रासादसंस्करणसंभवे तु प्रासादस्य चालनविधिः पुनः प्रतिष्ठा च करणीयैवेति शम् ।)

९८ प्रतिमाशिवलिङ्गप्रासादकलशादिभङ्गे शान्तिः ।

सपत्नीको यजमानः प्राङ्मुख उपविशेत् । तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः । शान्तिपाठादि । सङ्कल्पः - मम सकुटुम्बस्य सकलग्रामजनभक्तजनदेशजनानाञ्च प्रतिमाशिवलिङ्गप्रासादकलशाद्यन्यतमभङ्गजनितसकलदुर्निमित्तोपशमनपूर्वकं सकलक्षेमसिद्ध्यै प्रतिमादिभङ्गशान्तिं करिष्ये । गणपतिपूजनम् । पुण्याहवाचनम् । आचार्यादिवरणम् । दिग्रक्षणम् । पञ्चगव्यकरणम् । भूमिपूजनम् । अग्निस्थापनम् । दक्षिणतो ब्रह्मासनाद्याघाराज्यभागान्तं कृत्वा । वरदनामाग्निं सम्पूज्य । बराहुतिः । त्यागसङ्कल्पः - १ ततः प्रधानहोमः - चरुणा ॐ यमायत्वा० पित्रे स्वाहा - १०८ संख्यया जुहुयात् । २ दधिमधुघृताक्ताश्वत्थसमिद्भिः ॐ इमा रुद्राय० नातुरं स्वाहा - १०८ संख्यया होमः । ३ ततः १ माष २ मुद्ग ३ तिल ४ घृत ५ मधु इति पञ्चद्रव्यैः प्रत्येकं ॐ ह्रीं स्वाहा - इति मन्त्रेण १००८ वा १०८ संख्यया जुहुयात् । उत्तरपूजनादि प्रणीता विमोकान्तम् । ततः १ भूमिः २ गौः ३ वृषभः ४ सुवर्णं ५ धान्यम् इति पञ्चदानानि सदक्षिणानि तन्निष्क्रयं वा दद्यात् । यजमानः पञ्चगव्येन ॐ यद्देवा० यदिदिवा० यदि जाग्रत्० द्यौः शान्तिः० यतो यतः० सर्वेषां वाऽएष० मन्त्रैः स्नात्वा शुद्धोदकेन स्नात्वा नूतनवस्त्राणि परिधायकृसरेण पायसेन च ॐ ईशानः० ईशानाय बलिं ददामि । दक्षिणाविप्राशीर्वादाद्याग्निविसर्जनं कर्मसमाप्तिश्च । एवं शान्तौ कृतायामपि भग्नप्रतिमादिजीर्णोद्धारो नूतनप्रतिमादिप्रतिष्ठा च सुमुहूर्ते कार्यैव ।

इति प्रतिमाशिवलिङ्गप्रासादकलशादिभङ्गशान्तिप्रयोगः ।

९९ अरण्यग्न्युत्पादनविधिः ।

(यद्यप्यरण्यग्न्युत्पादनं श्रौते स्मार्ते चाग्निहोत्रकर्मणि नितान्तमावश्यकम्, तथापि शान्तिकपौष्टिकादिषु कर्मसु श्रुतिस्मृतितन्त्रपुराणागमादिभिररणिजन्याग्नेरुत्तमत्वेन परिगणनादरणिभ्या-मग्न्युत्पादनविधिर्लिख्यते । शमीगर्भाश्वत्थवृक्षस्य पूर्वगा उदग्ग ऊर्ध्वगा वा या शाखा तस्याः काष्ठाद् उत्तमाना एकहस्तदीर्घाऽष्टादशाङ्गुलदीर्घा वा अष्टाङ्गुलविस्तृता, चतुरङ्गुलोच्चा शुष्का, अधरारणिः, उत्तरारणि, खादिरः प्रमन्थः, चात्रम् (रज्जुः) ओविली, मृगाजिनमित्यादीनि साधनानि सम्पाद्याग्नि मन्थनं कार्यमिति ।)

अरणिभ्यामग्न्युत्पादनप्रयोगः ।

आचम्य । प्राणानायम्य । शान्तिपाठः । अद्य पू० तिथौ क्रियमाणेऽस्मिन् अमुकयागाख्ये कर्मणि होमकर्मसम्पादनहेतवे कुण्डे वह्निप्रतिष्ठापनाय अरण्यग्न्युत्पादनं करिष्ये । दिग्रक्षणम् । गणेशस्मरणम् । पञ्चवाक्यैः पुण्याहवाचनम् । जलमादाय - अरण्याः पवमान ऋषिः श्रीवह्निर्देवता वर्षसहस्रावच्छिन्नमहदैश्वर्य सम्पादनपूर्वकं प्रतिगृहं दिव्यदेहप्राप्तिरूपफलसिद्ध्यै अरणिकाष्ठाद् अग्न्युत्पादने विनियोगः । ततः कुण्डे सुवर्णखण्डं द्रव्यं वा निक्षिप्य कुण्डं वस्त्रेणाच्छाद्य अरणिप्रदान कुर्यात् । प्राग्ग्रीवमुत्तरलोभ कृष्णाजिनं कम्बलोपरि दर्भान् समास्तीर्य आसाद्य, पार्श्वे समित्शकलद्वयं निधाय तस्योपरि उदगग्रामरणिं निधाय ध्यायेत् । सर्वदेवमयीं देवीमरणीरूपधारिणीम् । ध्यायामि शमीगर्भस्थां यज्ञकार्यप्रवर्तिनीम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः इष्टापूर्तसाधनभूताभ्यां अग्नियोनिरूपाभ्यां अग्न्युत्पादनहेतुभूताभ्यां ऊर्वशीपुरूरवसोः रूपधारिणीभ्यां अधरोत्तरारणिभ्यां नमः । इति ध्यायेत् । तत आवाहनम् । ॐ अग्निर्मन्थो जयः केतुः अरणी गणकारिका । जया जयन्ती तकारी न्यग्देवी वैजयन्तिका ॥१॥ मन्थः श्रीपर्णं एतानि नामान्युक्तानि वै नव । आवाहयामि यज्ञार्थं वरदा भव सर्वदा ॥२॥ ॐ अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ० इष्टापूर्तसाधनभूताभ्यां अग्नियोनिरूपाभ्यां ऊर्वशीपुरूरवोभ्यां अधरोत्तरारणिभ्यां नमः इति षोडशोपचारैः पूजयेत् ।

यज० क्रियमाणकर्मणि होमसम्पादनहेतवे अग्न्युत्पादनार्थमाचार्याद् अरणिपरिग्रहं करिष्ये । आचार्यं वस्त्रादिभिः सम्पूज्य । आचार्यः - अग्निसाधनभूते योनिरूपे इमे अरणी, युवाभ्यां प्रतिगृह्येताम् । इयमधरारणिः पत्न्यै, उत्तरारणिः यजमानाय, प्रतिगृह्यताम् । प्रतिगृह्णामि । ततो ब्रह्माअयं प्रमन्थः, इदं चात्रम्, इयमोविली-इति दद्यात् । ततो दम्पती मथ्नीताम् । शुष्कगोमयचूर्णकार्पासनारिकेलपिच्छकादि निक्षिपेत् । ब्राह्मणाः अरण्यादिकं धारयेयुः । यजमानासामर्थ्ये ब्राह्मणा मथित्वाऽग्निमुत्पादयेयुः । मन्थने-ॐ भवतन्नः समनसौ० समास्त्वा-९ अग्निसूक्तं मन्थनकाले जपेयुः । तत उत्पन्नमग्निं वेणुनलिकादिद्वारा प्रज्वाल्य पात्रान्तरे कृत्वा प्रज्वालयेत् । ततो विधिना कुण्डेऽग्निं प्रणयेत् ।

आचार्यादीनां पूजनम् । वस्त्रकम्बलदक्षिणादिदानम् । अनेन अग्न्युत्पादन कर्मणा वैश्वानरः प्रीयताम् ।

इत्यरण्यग्न्युत्पादनविधिः ।

प्रतिष्ठामौक्तिके प्रयोग० ५ प्रकरणे परिशिष्टम् ।

१०० काश्यपसंहितोक्तो दारिद्र्यहरो धनप्रदो भागवतसंहितापाठक्रमः ।

यजमानशुभप्रदं दिनाष्टकं दिनसप्तकं वा ज्योतिर्विन्निर्दिष्टं निर्णीय पूर्वं नान्दीश्राद्धान्तं कर्म सम्पाद्य पारायणकर्तृब्राह्मणवरणं कृत्वा सर्वतोभद्रमण्डले देवतावाहनमष्टदले वा ताम्रादिकलशं संस्थाप्य पूर्णपात्रे मण्डूकादिदेवताः संस्थाप्य लक्ष्मीनारायणप्रतिमयोः प्राणप्रतिष्ठां पूजनञ्च कृत्वा, श्रीमद्भागवतसंस्थित-भगवच्छ्रीकृष्णचन्द्रपरमात्मने नमः-इति पञ्चोपचारैः पूजनं कृत्वा वाचकब्राह्मणं सम्पूजयेत् । ततो ब्राह्मणः - आचमनम् । प्राणायामः । शान्तिपाठः । देवतानमस्कारादि । सङ्कल्पः - यजमानस्य सपरिवारस्य जन्मजन्मार्जितकर्मविपाकजन्यसमस्तदुःखदारिद्र्यादि निवृत्तिपूर्वकं दशविधलक्ष्मीसुखसौभाग्य पूर्वजोद्धार वंशाभिवृद्धि सकलकामनासिद्धये सच्चिदानन्दघन पूर्णावतार भगवच्छ्रीकृष्णचन्द्रचरणसरोरुहानुग्रह प्राप्तये अद्यदिनमारभ्य सप्ताहपर्यन्तं काश्यपसंहितोक्तक्रमेण श्रीमद्भागवतसंहितापारायणमहं करिष्ये । स्थापितदेवतापूजनम् । पुस्तकपूजनम् । द्वादशाक्षरमन्त्रेण - ॐ नमो भगवते वासुदेवाय-अष्टाक्षरमन्त्रेण ॐ नमो नारायणाय-क्लां, क्लीं, क्लूं, क्लैं, क्लौं, क्लः - एभिर्बीजैर्वा अङ्गुष्ठादिहृदयादिषडङ्ग न्यासान् कृत्वा देवं ध्यात्वा संहितापारायणमारभेत । आदावन्ते वा माहात्म्यपाठः । यजमानेन प्रतिदिनमारम्भे समाप्तौ च पूजनं कार्यम् ।

पाठक्रमः - १ प्रथमदिने-प्रथमस्कन्धे १ अध्यायाच्च चतुर्थस्कन्धे स्कं० ४ अ० ९ नवमाध्यायान्तम् ।
अध्यायाः ७१

२ द्वितीयदिने - स्कं० ४ अ० १० तः पञ्चम स्कंध ५ अ० १३ पर्यन्तम् । अ० ३५
३ तृतीयेदिने - स्कं० ५ अध्याय १४ तः स्कं० ८ अ० ३ पर्यन्तम् । अ० ५४
४ चतुर्थदिने - स्कं० ८ अ० ४ तः स्कं० १० अ० ३४ पर्यन्तम् । अ० ७५
५ पञ्चमदिने - स्कं० १० अ० ३५ तः स्कं १० अ० ७३ पर्यन्तम् । अ० ३९
६ षष्ठदिने - स्कं० १० अ० ७४ तः स्कं० १० अ० ९० पर्यन्तम् । अ० १७
७ सप्तमदिने - स्कं० ११ अ० १ तः स्कं० १२ अ० १३ पर्यन्तम् । अ० ४४
अ० ३३५

अवतारपूजा - नृसिंहावतारः । स्कं० ७ अ० ८ श्लो० १६
वामनावतारः । स्कं० ८ अ० १८ श्लो० ६
रामावतारः । स्कं० ९ अ० १० श्लो० २
कृष्णावतारः । स्कं० १० अ० ३ श्लो० ८

संहितापारायणान्ते पूजनम् । दानादि । श्रेयोदानम् । समाप्तिः । विसर्जनम् ॥

(दिवङ्गतस्योद्धाराय प्रथमे वर्षे मासिकनिवृत्तेः प्राङ् मातृकापूजननान्दीश्राद्धलोपः, यथायथं पञ्चाशदध्यायपारायणं प्रतिदिनं कुर्यादिति विशेषः ॥

१०१ श्रीमद् भागवतदशमस्कन्धहोमविधिः ॥

श्रीमद् भागवतसंहितापारायणकथाश्रवणयोः सम्पूर्णफललाभाय पद्मपुराणोक्त श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये दशमस्कन्धहोमो निर्दिष्टः । 'विरक्तश्चेद् भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि । गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्तव्यः कर्मशान्तये ॥अ० ६ श्लो० ५९॥ प्रतिश्लोकञ्च जुहुयाद् विधिना दशमस्य च । पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥श्लो० ६०॥ अथवा हवनं कुर्याद गायत्र्या सुसमाहितः । तन्मयत्वात् पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥श्लो० ६१॥ इमानि वचनानि दशमस्कन्धहोमवचने मूलभूतानि ।

श्रीमद् भागवतसंहिता पारायण कथाश्रवणानन्तरं दशमस्कन्ध होमो दिनद्वयेन दिनत्रयेण वा साध्यः । अध्यायान् विभज्य विभज्यैकेन दिनेन दशमस्कन्ध होमं कुर्वाणाः संहितासातत्य भङ्गदोषेण होमफलं नैव प्राप्नुवन्ति । तत्र गणेशस्थापनम् । पुण्याहवाचनम् । मध्ये कुण्डपुरतः पीठे श्वेतवस्त्रे पञ्चवर्णतण्डुलैः सर्वतोभद्रमण्डले, मण्डलदेवताः, कलशोपरि पीठदेवताः यन्त्रदेवताः, लक्ष्मीनारायणस्थापनम्, उत्तरे श्वेतवस्त्रे तण्डुलैर्ग्रहस्थापनम् । एकहस्तं कुण्डम् । मधु घृततिलादियुतः पायसः प्रधानं हविः । पञ्च ब्राह्मणाः ।

प्रयोगः ॥

सपत्नीको यजमानः - तिलककरणम् । शिखाबन्धनम् । आचमनम् । प्राणायामः पवित्र धारणम् । शान्तिपाठः । देवतानमस्कारादि । प्रधान संकल्पः - अद्य० अहं ममाः भगवदनु ग्रहप्राप्त्यर्थं मम वंशे अनिर्दिष्टसापेक्षपूर्वजानामुध्दारपूर्वकं गोलोकनिवासहेतवे ब्राह्मणद्वारा सम्पादितस्य श्रीमद् भागवत संहिता पारायण सप्ताह कथा श्रवण जपादिकर्मणः सम्पूर्णफलावाप्तये दशमस्कन्धे प्रतिश्लोकं घृतमधुतिलादिपायसद्रव्येण दिनत्रय (द्वय) साध्यं (सग्रहमखं) दशमस्कन्ध हवनविधिं करिष्ये ।

प्रयोगक्रमः । दिग्रक्षणम् । कलशार्चनम् । दीपपूजनम् । गणपतिपूजनम् । पुण्याहवाचनम् । ब्राह्मणवरणम् । दिग्रक्षणम् । पञ्चगव्यकरणम् । भूमिपूजनम् । कुण्डदेवतापूजनम् । पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं नारायणनामाग्निस्थापनम् । सर्वतोभद्र पीठदेवता यन्त्रदेवता प्रधान लक्ष्मीनारायण देवतास्थापनं पूजनञ्च (ग्रहस्थापनम्) । दक्षिणतो ब्रह्मासनाद्याज्यभागान्तम् । अग्निब्रह्मपूजनम् । वराहुतिः । त्यागसंकल्पः । (ग्रहहोमः)

प्रधानहोमे विशेषः सघृततिलादिपायसहोमः । मन्त्रमहार्णवे - ब्रह्मस्तुतिं समुच्चार्य पूर्वोर्ध्वहवनं

चरेत् । वेदस्तुतिं समुच्चार्योत्तरार्द्धहवनं चरेत् ॥ इति वचनात् दशमस्कन्धपूर्वार्ध्धे होमारम्भे दशमस्कन्ध पूर्वार्ध्धे १४ अध्यायात्मिकां ब्रह्मस्तुतिं पठेत् । उत्तरार्ध हवनारम्भे पुनः - ८७ अध्यायात्मिकां वेदस्तुतिं पठेत् । तत्र 'उवाच' स्थलेषु प्रतिश्लोकान्ते च स्वाहा (नमः) पदं संयोज्य हौमः । प्रत्यध्यायान्ते श्रीमद्भागवतीयवंशीधरकृतबालबोधिनी टीकानिर्देशानुरोधेन अष्टौ आज्याहुतीर्जुहुयात् । १ ॐ विष्णवे स्वाहा । २ नारायणाय स्वाहा । ३ ब्रह्मणे स्वाहा । ४ शिवाय स्वाहा । ५ वासुदेवाय स्वाहा । ६ प्रद्युम्नाय स्वाहा । ७ अनिरुध्याय स्वाहा । ८ संकर्षणाय स्वाहा । अन्ते जयशब्दमुच्चरेत् । एवं प्रधानहोमं समापयेत् । प्रतिदिनं प्रातः सायं स्थापित देवतापूजनादि । प्रधानहोमान्ते मण्डलपीठमन्त्रदेवता-नामैकैकाज्याहुतिः । उत्तरपूजनादि समाप्त्यन्तं कर्म सम्पादयेत् ।

१०२ श्रीमद्भागवते भगवत्कृता ब्राह्मणस्तुतिः ।

(स्कं ३ अ-१६ श्लो ६ तः ११)

यस्यामृतामलयशःश्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ।
सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥६॥

यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणु सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ।
न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान् वहन्ति ॥७॥

नाहं तथाद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद् घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेन ।
यद् ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥८॥

येषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोगमायाविभूतिरमलाङ्घ्रिरजः किरीटैः ।
विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणाम्भः सद्यः पुनाति सहचन्द्रललाम लोकान् ॥९॥

ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुध्या ।
द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान् गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥१०॥

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्त स्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।
वाण्याऽनुरागकलयाऽऽत्मजवद् गृणन्ति सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥११॥ इति ॥

१०३ कालसर्पयोगशान्तिः ।

आश्लेषादिने कृष्णचतुर्दश्यमावास्ययोः पञ्चम्यां शुभे दिने वा-अमुकस्य मे (पुत्रस्य वा) पूर्वजन्मनि कृतेन सर्पवधदोषेण इह जन्मनि अनपत्यता-दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यादि सकल दोष परिहारार्थं जन्मकुण्डल्यां राहुकेत्वन्तरालस्थितसकल ग्रहस्थितिजन्य स्थान बलित्व शुभदृष्टि निरीक्षितत्वादि समस्त सुखाभाव निवृत्तिपूर्वकं दीर्घायुरारोग्यैश्वर्य वंशाभिवृद्धि सुखसौभाग्य प्राप्तये श्रीशेषराजप्रीत्यर्थं सग्रहमखां

कालसर्पयोगजनन शान्तिं करिष्ये । आसनविध्यादि गणपति पूजनाद्यग्नि स्थापनान्तम् । सर्वतोभद्रमण्डले देवता आवाह्य वा तण्डुलाष्टदले कलशं संस्थाप्य पूर्वादितोऽष्ट दलेषु क्रमेण १ तक्षक २ वासुकि ३ कर्कोटक ४ अनन्त ५ शङ्खपाल ६ महापद्म ७ नील ८ कम्बल-नागान् आवाह्य पूर्णपात्रे सौवर्णराजत ताम्रमयान्यतमनागत्रये शेषराजं ॐ नमोस्तु सर्पेभ्यो ये केच- इत्यावाह्य ॐ भू० तक्षकादि सहित शेषराजाय नमः इति पूजयेत् । ततो ग्रहस्थापनादिग्रहहोमान्तं कुर्यात् ।

हवनीयद्रव्याणि-१ तिलाः २ यवाः ३ पायसः ४ गुग्गुलुः ५ चन्दनचूर्णम् ६ पञ्चधूपः ७ अगरु ८ अत्तरम् ९ प्रवालशाखाखण्डानि १० लज्जिका (लाजवन्ती) बीजानि ११ गुञ्जा बीजानि १२ शिवलिङ्गी बीजानि १३ तुलसीबीजानि १४ पुष्करमूलम् १५ आज्यम् एतत् सर्वमेकीकृत्य प्रधानहोमः । निम्ननिर्दिष्टमन्त्रेभ्यः एकतमेन मन्त्रेण १००८ वा १०८ संख्यया शेषराजमुद्दिश्य जुहुयात् ।

१ ॐ तत्पुरुषाय विद्महे कद्रुवंशाय धीमहि । तन्नः सर्पः प्रचोदयात् ॥

२ ॐ भुजङ्गमाय विद्महे चक्षुः श्रोत्राय धीमहि । तन्न सर्पः प्रचोदयात् ॥

३ ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये केच पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥१३-६॥

४ ॐ या इषवो यातुधानानां देवा वनस्पतीं रनु । ये वा वटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥१३-७॥

५ ॐ ये वाऽमी रोचने दिवो ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु । येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥१३-८॥

६ विप्रवर्गं श्वेतवर्णं सहस्रफणसंयुतम् । सम्पूजयाम्यहं देवं शेषं वै विश्वरूपिणम् ॥

शेषाय नमः । अनेनैव द्रव्येण तक्षकाद्यष्ट नागेभ्यः प्रत्येकं १०८ वा ८ आहुतीर्जुहुयात् । (मण्डलदेवता होमः) । व्याहृतिहोमः । उत्तरपूजनादि प्रणीता विमोकान्तम् । दानसंकल्पाः । अभिषेकः । एकं नागमाचार्याय, द्वितीयं शिवालये । तृतीयमगाधजले निक्षिपेत् । कर्मसमाप्तिः । सर्पवधजन्य सकलदोष निवारणाय मैत्रायणीय गृह्यपरिशिष्टे पाषाणमय नागप्रतिष्ठा अन्यत्र च सर्पबलिर्विहितः । इति कालसर्पयोगजननशान्तिः ।

१०४ संकलितः सूत्रोक्त एकब्राह्मणसाध्यो वास्तुयागः ।

तिलककरणादि नमस्कारान्तम् । संकल्पः मम सकुटुम्बस्य सकलकामना सिद्धये भूमिगत शल्य जीवहिंसावेधादि दोष परिहारार्थं वास्तुस्थिरता चिरकालिक निवासहेतवे श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं वास्तुयागं करिष्ये । तदङ्गभूतानि कर्माणि यथाक्रमं करिष्ये । आसनविधिदिग्रक्षण कलशपूजन दीपपूजनान्तम् । गणपति पूजनादि-ऋत्विग्वरणान्तम् । शालाकर्म पृष्ठ-२७४ पं० १२ तः २५५ पर्यन्तम् । दिग्रक्षणम् । पञ्चगव्यकरणम् । भूमिपूजनम् । बलवर्धननामाग्निस्थापनम् । शङ्कुरोपणम्-बलिदानम् रेखाकरणम् - (पृष्ठ-२६१-२६२) । ब्रह्मादिदेवावाहनम् - वास्तुपुरुष ध्रुवपूजनं बलिदानान्तम् (पृ-२७४ पं-७ तः पृ-२७५ पं-७ पर्यन्तम् ।

केवलनवग्रह पूजनम् । कुशकण्डिका । उदपात्र स्थापनम् - प्रोक्षण्युत्पवनान्ते गृहप्रवेशः ।

उपयमनान्० प्रणीतासु निधानम् । दक्षिणं जान्वाच्य-आदौ ॐ इहरतिरित्यादि षडाहुतयः - (पृ-२७९ पं-१४ तः पर्यन्तम्) उदपात्रे संस्रवः आघाराबाज्यभागौ प्रोक्षण्यां संस्रवः । स्थालीपाकेन षडाहुतयः ॐ अग्निमिन्द्रं० पृ-२७५ पं-२० तः पृ-२७६ पं-२१ पर्यन्तम् । वराहुतिः । त्यागसंकल्पः । १ आज्येन नवग्रहानुद्दिश्य एकैकाहुतिः । २ आज्येन-ॐ वास्तोष्पते० १०८ वा २८ । ३ आज्येन-ॐ ध्रुवासि० २८ वा ८ । ३ ॐ अघोरेभ्यो० २८ वा ८ तिलैः । ४ पञ्चबिल्वहोमः ॐ वास्तोष्पते० ४ ॐ ध्रुवासि० १ । ५ आज्येन ब्रह्मादि देवताना मेकैकाहुतिः । व्याहृतिहोमः २८ वा ८ । लक्ष्मीहोमः । उत्तरपूजनम् । स्विष्टकृत् । नवाहुतयः । बलिदानम् । पूर्णाहुतिः । वसोर्धारा । भस्मधारणम् । होमसंकल्पः । संस्रवप्राशनादि प्रणीता विमोकान्तम् । सार्वभौतिकबलिः । नीराजनादि क्षमापनान्तम् । वास्तुनिक्षेपः । भित्यलङ्करणम् दिगुपस्थानम् गृहप्रवेशः - पृ-२७८ पं-२१ तः २७ पर्यन्तम् । ज्योतिर्विन्निर्दिष्टे समये वर्धिनीपूजनं गृहप्रवेशश्च पृ-२१६ तः २१८ । गृहालङ्करणम् । रक्षोघ्नपावमान ॐ कृणुष्वपाजः० ५ पुनन्तुमा पितरः० ९ सूक्तैः पयोधारा-सूत्रवेष्टनञ्च । संकल्पाः-दानादि-आशीर्वादः अग्निदेवता विसर्जनम् समाप्तिः ॥

१०५ गणेशादिपञ्चायतनदेवतायागा एकयजमानकर्तृकाः ।

(अत्र पञ्चायतन यागेषु देवीभागवते नवम-९ स्कं-अ-३६ श्लो.९ तः ६३ पर्यन्तं पञ्चदेवतायागानां सर्वोपद्रवशामकत्वं सर्वकामनासाधकत्वं तत्तद्देवता सायुज्यमुक्तिप्रदत्वञ्चोपवर्णितम् । अयमेव यागः सौभाग्य कल्पद्रुमे परिशिष्ट प्रमेयपरिच्छेदे विस्तरेण प्रपञ्चितः । एतेषां यागानां दिङ्मात्रमिह प्रदर्श्यते ।)

पञ्चदेवतासु कामप्येकां स्वेष्टां देवतां प्रधानत्वेन मत्त्वाऽन्या देवतास्तत्सहायभूताः योजनीयाः । तत्रैकयजमानसत्त्वेऽपि तत्तद्देवतानां यन्त्रमन्त्रमण्डलपरिवारहविर्द्रव्यादीनां भिन्नत्वाद् भेदः स्पष्ट एव । तेन चत्वारोऽन्ये प्रतिनिधयो वरणीयाः । तथाऽपि पञ्चदेवतानां नित्यपूजायां समानत्वेन शास्त्रेषु प्रतिपादितत्वात् प्रधानतन्त्रभेदेऽपि पूर्वोत्तरतन्त्रयोः समानता स्वतः सिध्या । तत्र सहस्रअयुत-लक्ष-प्रयुतान्यतमसंख्या होमे स्वीकर्तव्या । एवं हविष्ष्वपि भेदः । प्रतिदेवतं सहस्राहुतिषु षोडशहस्तमण्डपश्चैकहस्तं कुण्डम् । अयुतहोमे द्विहस्तं कुण्डम् विंशतिहस्तो मण्डपः । लक्षहोमे चतुर्हस्तं कुण्डम्, चतुर्विंशतिहस्तो मण्डपः । प्रयुत (दशलक्ष) होमे ३२ वा ३६ हस्तो मण्डपः, षड्हस्तमितं कुण्डम् ।

दिनसंख्या-सहस्रहोमे दिनत्रयम् । अयुतहोमे दिनपञ्चकम् । लक्षहोमे दिन सप्तकं दिन नवकं वा । दशलक्षहोमे दिननवकमेकादशदिनानि वा ।

गणेशस्य हविर्द्रव्यं मोदकाः अथर्वशीर्षोक्त सर्वद्रव्य संयोजनम्, तत्तत् कामनादायकं विशिष्टं द्रव्यं वा । विष्णोराज्यं घृताक्तपायसो वा । शिवस्य घृताक्ताः श्वेत कृष्ण धूसरतिलाः । देव्या लक्ष्म्या

आज्यपायसबिल्वफल पद्मबिल्वसमिद्भ्यः केनचिदेकेन होमः । सूर्यस्यार्कसमिधः, आज्यं तिला वा ।

सूक्तानि गणेशस्य अथर्वशीर्षम् । विष्णोः षोडशर्चं पुरुषसूक्तम् । रुद्रस्य-नमस्ते० सद्भिष्ट्वा हवामहे-१६ ऋचः । देव्याः पञ्चदशर्चं श्रीसूक्तम् । सूर्यस्य-विभ्राड्० पश्यन्-१७ मन्त्राः सौरसूक्तम् । स्वल्पसमयसाध्ये कर्मणि-एतासां देवतानां गायत्र्या होमः ।

वेदीकुण्डव्यवस्था-मण्डपे मध्यवेद्यां प्रधानवेदी, तत्कोणलग्नाश्चतस्रो वेद्यः, सर्वा हस्तमिता, द्वादशाङ्गुलोच्चाः । गणेशप्राधान्ये मध्ये गणेशः ईशान्यां विष्णुः, आग्नेय्यां शिवः, नैर्ऋत्यां सूर्यः, वायव्यां देवी । विष्णुप्राधान्ये मध्ये विष्णुः, ईशानादि कोणेषु क्रमेण शिवगणेशसूर्यदेव्यः । शिवप्राधान्ये मध्ये शिवः, ईशानादिकोणेषु क्रमेण विष्णुसूर्यगणेशदेव्यः । सूर्यप्राधान्ये मध्ये सूर्यः ईशानादिकोणेषु शिवगणेश विष्णु देव्यः । देवीप्राधान्ये मध्ये देवी, ईशानादि कोणेषु विष्णुशिवगणेशसूर्याः ।

कुण्डव्यवस्था-गणेशप्राधान्ये ईशान्यां कोष्ठे चतुरस्रम्, पूर्वकोष्ठे चतुरस्रं वैष्णवम्, दक्षिणकोष्ठे शैवं पद्मम्, पश्चिमकोष्ठे सूर्यस्य वृत्तं, उत्तरकोष्ठे देव्या योनिकुण्डम् । विष्णुप्राधान्ये ईशाने चतुरस्रं, पूर्वकोष्ठे पद्मम्, दक्षिणकोष्ठे चतुरस्रम्, पश्चिमकोष्ठे वृत्तम्, उत्तरकोष्ठे योनिकुण्डम् । शिवप्राधान्ये ऐशान्यां पद्मम्, पूर्वकोष्ठे चतुरस्रम्, दक्षिणकोष्ठे वृत्तम्, पश्चिमकोष्ठे चतुरस्रम्, उत्तरकोष्ठे योनिकुण्डम्, । सूर्यप्राधान्ये ईशाने वृत्तम्, पूर्वकोष्ठे पद्मम्, दक्षिणकोष्ठे चतुरस्रम्, पश्चिमकोष्ठे योनिकुण्डम् । सूर्यप्राधान्ये ईशाने वृत्तम्, पूर्वकोष्ठे पद्मम्, दक्षिणकोष्ठे चतुरस्रम्, पश्चिमकोष्ठे चतुरस्रम्, उत्तरकोष्ठे योनिकुण्डम् । देवीप्राधान्ये ईशानकोष्ठे योनि कुण्डम्, पूर्वकोष्ठे चतुरस्रम्, दक्षिणकोष्ठे पद्मम्, पश्चिमकोष्ठे चतुरस्रम्, उत्तरकोष्ठे वृत्तम्-इति कुण्डव्यवस्था । अत्र पूर्वदक्षिण कुण्डयोरुदीची प्राची, पश्चिमोत्तरेशान कुण्डानां शुद्धा प्राची ग्राह्या । मण्डपे आग्नेये दक्षिणतो गणपतिपीठम्, उत्तरतो योगिनीपीठम्, नैर्ऋत्यां वास्तुपीठम् । वायव्यां दक्षिणतो भैरवक्षेत्रपालान्यतरपीठम्, उत्तरतः स्नानपीठम् । ईशान्यां ग्रहपीठम् । सर्वाणि हस्तमात्राणि द्वादशाङ्गुलोच्चानि, स्नानपीठं चतुर्विंशदङ्गुलं द्वादशाङ्गुलोच्चं च ।

मण्डलपीठयन्त्रदेवताव्यवस्था ।

गणेशविष्णु देवीनां सर्वतोभद्रमण्डलम् । शिवस्य एकचतुरष्ट लिङ्गतोभद्रान्यतमम् । सूर्यस्य सर्वतोभद्रं वा वृत्तमण्डलञ्च । यन्त्राणि गणेशस्य-बिन्दुत्रिकोणषट्कोण वृत्ताष्टदल भूपुरात्मकम् । विष्णोः बिन्दु-त्रिकोण-षट्कोण अष्ट-दश-द्वादश-चतुर्दश-षोडशदलानि भूपुरत्रयञ्च । शिवस्य बिन्दु-अष्ट-षोडश-चतुर्विंशति-द्वात्रिंशत्-चत्वारिंशद्दलानि भूपुरसहितानि । देव्या बिन्दुत्रिकोण षट्कोण वृत्ताष्टदल भूपुरात्मकम् । सूर्यस्य बिन्दुवृत्ताष्टदल भूपुरात्मकं यन्त्रम् ।

गणेश विष्णुरुद्रयन्त्राणां पीठशक्तयो देवताश्च प्र-६ पृ-१४-१६-१७ द्रष्टव्याः । सूर्यस्य । बिन्दुवृत्ताष्टदलद्वादशदलात्मकं यन्त्रम्, मध्ये सूर्यः, अष्टदलाग्रेषु ॐ ह्रीं-इति, दलेषु- आदित्य-भास्कर

भानु-रवि-सूर्य-दिवाकर-मार्तण्ड-तपनाः । दलेष्वेव-दीप्ता-सूक्ष्मा-जया-भद्रा-विभूति-विमला-अमोघा-विद्युताः, मध्ये-सर्वतोमुखी श्रीः । द्वादशदलेषु मित्र सूर्यधातृ-वरूण-माधव-हरि-रवि-रुद्र-भर्ग-स्वर्णरेतस्-अर्यमन्-भास्करान् १२ मासाधिपान् विन्यसेत् । लक्ष्म्या यन्त्रम्-बिन्दु-षट्कोणाष्टदल भूपुरत्रयात्मकम्-तत्र देवताः-विशिष्ट पीठशक्तयः - विभूति-उन्नति-संनति-कीर्ति-सन्तानी-वृद्धि-उत्कर्षिणी-ऋध्यः, यन्त्रदेवताः-मध्ये श्रीः षट्कोणेषु आग्नेय-ऐशान नैर्ऋत वायव्य पुरः पार्श्वेषु हृदयादिषडङ्गानि, पूर्वादिदिक्षु-वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्धाः, पुन पूर्वादिदिक्षु-दमनक-सन्तानरु-गुग्गुलु कुरण्टकेयाः, दक्षिणे शंखनिधिः, वामे पद्मनिधिः, अष्टदलेषु-हिरण्या-चन्द्रा-रजतस्रजा-पद्मवर्णा-पद्मस्था-आर्द्रा-पद्मा-तर्पयन्ती, पूर्वादिदिक्षु-तृप्ति-ज्वलन्ती-स्वर्णप्राकारा हिरण्यस्रजाः, भूपुरत्रये दशदिक्पालान् आयुधानि इति यन्त्रदेवताः । दुर्गा विषये तु प्र-६ पृ-१५ द्वितीय प्रकार देवताः । न्यासविषये-गणेशस्य गां गीं गूं गैं गौं गः इति अथवा ॐ गं गणपतये नमः - इति करादि हृदयादिषडङ्गन्यासाः । शिवस्य-लघुषडङ्गन्यासा-मनोजूति० अबोध्यग्नि० मूर्धानं० मर्माणि ते० विश्वतश्चक्षु० मानस्तोके० । अथवा ॐ नमो भगवत रुद्राय-इति करादिहृदयादिषङ्गन्यासौ, दशाक्षरन्यासो वा । विष्णोः पुरुषसूक्तन्यासः, द्वादशाक्षर ॐ नमो भगवते वासुदेवाय० इति करादिहृदयादिषडङ्गन्यासौ, द्वादशाक्षरन्यासो वा । लक्ष्म्याः - १ मूर्धनि हिरण्यवर्णां० ० नेत्रयो-तां आवह० ३ कर्णयोः- अश्वपूर्वां० ४ नासिकयोः-कांसोस्मितां० ५ मुखे-चन्द्रां प्रभासां० ६ ग्रीवायाम्-आदित्यवर्णे० ७ स्कन्धयोः - उपैतु मां० ८ बाह्वोः - क्षुत्पिपासां० ९ हृदये-गन्धद्वारां० १० नाभौ मनसः काम० ११ गुह्ये-कर्दमेन० १२ गुदेआपः स्रजन्तु० १३ जान्वोः-आर्द्रां पुष्करिणीं० । १४ जङ्घयोः - आर्द्रांयः करिणीं० १५ पादयोः- तां म आवह । सूर्यस्य न्यासाः - ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः - इति करादि हृदयादिषडङ्गन्यासाः ।

प्रयोगक्रमः- मण्डपाद्बहिः - गणपतिपूजनम्, मातृकापूजनम्, वैश्वदेव संकल्पः-वसोर्धाराऽऽयुष्यमन्त्र जप नान्दीश्राद्ध वरणमधुपर्क पुण्याहवाचन वर्धिनीपूजन मण्डप प्रवेश दिग्रक्षण पञ्चगव्य प्रोक्षण मण्डपाङ्ग गणपति वास्तुपूजनान्तं एकमन्त्रेण । भूमिपूजनं कुण्डदेवता पूजनपञ्चभूसंस्काराग्नि स्थापन प्रधानस्थापन ग्रहयोगिनी क्षेत्रपालस्थापन कुशकण्डिकाघाराज्य भागान्तं सर्वत्र समानम् ।

सर्वत्र बलवर्धन नामाग्निः । ईशानकुण्डे ग्रहहोमः । मण्डल पीठयन्त्र प्रधानदेवतानां स्वस्वकुण्डे होमः । योगिनी क्षेत्रपालव्याहृतिहोमा ईशानकुण्डे । तत्तद्द्रव्यैः सूक्तान्तपक्षेण तत्तत्कुण्डेषु होमः । उत्तरतन्त्रादि समाप्त्यन्तं सर्वकुण्डेषु पृथक्

इति पञ्चायतन देवतायागाः ।

इतिश्री वटपत्तनवासि श्रीगुरुद्विजकुलभूषणशुक्ल गौरीशङ्करात्मज पण्डित लक्ष्मीशङ्करशुक्ल विरचिते प्रतिष्ठामौक्तिके पञ्चमं विविध देवताप्रतिष्ठाप्रयोग प्रकरणं समाप्तम् ।

६ प्रतिष्ठामौक्तिके षष्ठं स्थापनहोमोपयोगिविधदेवताप्रकरणम् ।

१ वास्तुमण्डलदेवताः ।

आवाहने आदौ प्रणवःनाम्तोऽन्तेनमः पदम् । होमे आदौ प्रणवः नाम्नोऽन्ते स्वाहापदम् ।

१ ब्रह्मणे०
२ अर्यम्णे०
३ विवस्वते०
४ मित्राय०
५ पृथ्वीधराय०
६ सावित्राय०
७ सवित्रे०
८ विबुधाधिपाय०
९ जयाय०
१० राजयक्ष्मणे०
११ रुद्राय०
१२ अद्भ्यो०
१३ आपवत्साय०
१४ शिखिने०
१५ पर्जन्याय०
१६ जयन्ताय०
१७ कुलिशायुधाय
१८ सूर्याय०
१९ सत्याय०
२० भृशाय०
२१ आकाशाय०
२२ वायवे०
२३ पूष्णे०
२४ वितथाय०
२५ गृहक्षताय०
२६ यमाय०
२७ गन्धर्वाय०
२८ भृङ्गराजाय०
२९ मृगाय०
३० पितृभ्यः०
३१ दौवारिकाय०
३२ सुग्रीवाय०
३३ पुष्पदन्ताय०
३४ वरुणाय०
३५ असुराय०
३६ शोषाय०
३७ पापाय०
३८ रोगाय०
३९ अहये०
४० मुख्याय०
४१ भल्लाटाय०
४२ सोमाय०
४३ सर्पाय०
४४ अदित्यै०
४५ दित्यै०
४६ चरक्यै०
४७ विदार्यै०
४८ पूतनायै०
४९ पापराक्षस्यै०
५० स्कन्दाय०
५१ अर्यम्णे०
५२ जृम्भकाय०
५३ यमाय०
५४ इन्द्राय०
५५ अग्नये०
५६ पिलिपित्साय०
५७ निर्ऋतये०
५८ वरुणाय०
५९ वायवे०
६० सोमाय०
६१ ईशानाय०
६२ ब्रह्मणे०
६३ अनन्ताय०
६४ हेतुकाय०
६५ त्रिपुरान्तकाय०
६६ अग्निवेतालाय०
६७ अग्निजिह्वाय०
६८ महाकालाय०
६९ करालाय०
७० एकपदे०
७१ भीमरूपाय०
७२ अद्भ्यः०
७३ क्षितिरूपाय०
७४ वास्तुपुरुषाय०

२ ग्रहमण्डलेशेषादि मनुष्यान्तदेवताहोमः

१ शेषाय०
२ वासुकये०
३ तक्षकाय०
४ कर्कोटकाय०
५ पद्माय०
६ महापद्माय०
७ शङ्खपालाय०
८ कम्बलाय०
९ कुलिशाय०
१० अश्विन्यादि सप्तनक्षत्रेभ्यः०
११ विष्कुम्भादिसप्तयोगेभ्यः०
१२ बवबालवकरणाभ्यां०
१३ सप्तद्वीपेभ्यः०
१४ ऋग्वेदाय०
१५ पुष्यादिसप्तनक्षत्रेभ्य०
१६ धृत्यादिसप्तयोगेभ्य०
१७ कौलवतैतिलकरणाभ्यां०
१८ सप्तसागरेभ्यः०
१९ यजुर्वेदाय०
२० स्वात्यादिसप्तनक्षत्रेभ्यः
२१ वज्रादिसप्तयोगेभ्यः०
२२ गरवणिजकरणाभ्यां०
२३ सप्तपातालेभ्यः०
२४ सामवेदाय०
२५ अभिजिदादिसप्तनक्षत्रेभ्यः०
२६ साध्यादिषड् योगेभ्यः०
२७ विष्टिकरणाय०
२८ भूरादिसप्तलोकेभ्यः०
२९ अथर्ववेदाय०
३० ध्रुवाय०
३१ सप्तर्षिभ्यः०
३२ गङ्गादिनदीभ्यः०
३३ सप्तकुलाचलेभ्यः०
३४ अष्टवसुभ्यः०
३५ एकादशरुद्रेभ्यः०
३६ द्वादशादित्येभ्यः०
३७ मरुद्भ्यः०
३८ षोडशमातृभ्यः०
३९ षड्ऋतुभ्यः०
४० द्वादशमासेभ्यः-
४० उत्तरायणदक्षिणायनाभ्यां०
४२ पञ्चदशतिथिभ्यः०
४३ षष्टिसंवत्सरेभ्यः०
४४ सुपर्णेभ्यः०

४५ नागेभ्यः०	५० विद्याधरेभ्य०	लक्षहोमेलोकपालावाहनात्-	जनार्दनान् स्थापयेत्० ।
४६ सर्पेभ्यः०	५१ अप्सरोभ्यः०	पूर्व ॐ सुपर्णोऽसि० ॐ	प्रधानदशांशेन होमः० ।
४७ यक्षेभ्यः०	५२ राक्षसेभ्यः०	गरुत्मतेनमः प्रधानदशांशेन	समिदाज्यचरुतिलैः ।
४८ गन्धर्वेभ्यः०	५३ भूतेभ्यः०	सामिदाज्य चरुतिहोमः ।	
४९ सिद्धेभ्यः०	५४ मनुष्येभ्यः०	कोटिहोमे ब्रह्मविष्णुमहेश्वर	

३ सर्वतोभद्रमण्डलदेवतास्थापनम् ।

(सर्वतोभद्रमण्डलदेवतानां समग्रामन्त्राः पृ-२३ तः २३८ पृष्ठे द्रष्टव्याः)

१ मध्येकर्णिकायां०	ॐ ब्रह्मजज्ञानं०	ॐ भू० ब्रह्मणेनमः ब्रह्माणम्० आवाहयामि स्थापयामि ।
२ उत्तरे वाप्याम्०	ॐ वय ह सोम०	ॐ भू० सोमाय० सोमम्०
३ ईशान्यां खण्डेन्दौ०	ॐ तमीशानं०	ॐ भू० ईशानाय० ईशानम्०
४ पूर्ववाप्याम्०	ॐ त्रातारमिन्द्र०	ॐ भू० इन्द्राय० इन्द्रम्०
५ आग्नेय्यां खण्डेन्दौ०	ॐ त्वन्नोअग्ने०	ॐ भू० अग्नये० अग्निम्०
६ दक्षिणे वाप्याम्०	ॐ यमायत्वाङ्गिर०	ॐ भू० यमाय० यमम्०
७ नैर्ऋत्यां खण्डेन्दौ०	ॐ असुन्वन्त०	ॐ भू० निर्ऋतये० निर्ऋतिम्०
८ पश्चिमे वाप्याम्०	ॐ तत्त्वायामि०	ॐ भू० वरुणाय० वरुणम्०
९ वायव्यांखण्डेन्दौ०	ॐ आनो नियुद्भिः०	ॐ भू० वायवे० वायुम्०
१० वायुसोममध्येभद्रे०	ॐ सुगावो देवाः०	ॐ भू० अष्टवसुभ्यो० अष्टवसून्०
११ सोमेशानमध्ये भद्रे०	ॐ रुद्राः स ह सृज्य०	ॐ भू० एकादशरुद्रेभ्यो० एकादशरुद्रान्०
१२ ईशानपूर्वमध्येभद्रे०	ॐ यज्ञो देवानां०	ॐ भू० द्वादशादित्येभ्यो० द्वादशादित्यान्०
१३ पूर्वाग्निमध्येभद्रे०	ॐ यावाङ्कशा०	ॐ भू० अश्विभ्यां० अश्विनौ०
१४ अग्निदक्षिणमध्येभद्रे०	ॐ ओमासश्च०	ॐ भू० सपैतृकेभ्यो विश्वेभ्योदेवेभ्यो०
१५ दक्षिणनिर्ऋतिमध्येभद्रे०	ॐ अभित्यंदेव ह:०	ॐ भू० सप्तयक्षेभ्यो० सप्तयक्षान्०
१६ निर्ऋतिवरुणमध्येभद्रे०	ॐ नमोस्तुसर्पेभ्यो०	ॐ भू० सर्पेभ्यो० सर्पान्०
१७ वरुणवायुमध्येभद्रे०	ॐ ऋताषाडृतधा०	ॐ भू० गन्धर्वाप्सरोभ्यो० गन्धर्वाप्सरसः०
१८ उत्तरे वाप्याम्०	ॐ यदक्रन्दः	ॐ भू० स्कन्दाय० स्कन्दम्०
१९ उत्तरे तदुत्तरतः	ॐ आशुःशिशानो०	ॐ भू० नन्दीश्वराय० नन्दीश्वरम्०
२० उत्तरे तदुत्तरतः	ॐ कार्षिरसि०	ॐ भू० शूलमहाकालाभ्यां० शूलमहाकालौ०
२१ ब्रह्मेशानमध्येवल्लीषु	ॐ अदितिर्द्यौ०	ॐ भू० दक्षादिसप्तकेभ्यो० दक्षादिसप्तकानि०

२२ पूर्वे वाप्याम्	ॐ अम्बेअम्बिके०	ॐ भू० दुर्गायै० दुर्गाम्०
२३ पूर्वे तदुत्तरतः	ॐ इदंविष्णु०	ॐ भू० विष्णवे० विष्णुम्०
२४ ब्रह्माग्निमध्येवल्लीषु	ॐ पितृभ्यःस्वधा०	ॐ भू० स्वधायै० स्वधाम्०
२५ दक्षिणे वाप्याम्	ॐ परंमृत्यो०	ॐ भू० मृत्युरोगाभ्यां० मृत्युरोगौ०
२६ ब्रह्मनैर्ऋत्यमध्येवल्लीषु	ॐ गणानान्त्वा०	ॐ भू० गणपतये० गणपतिम्०
२७ पश्चिमेवाप्याम्	ॐ आपो अस्मान्०	ॐ भू० अद्भ्यो० अपः०
२८ ब्रह्मवायुमध्येवल्लीषु	ॐ मरुतो यस्य०	ॐ भू० मरुद्भ्यो० मरुतः०
२९ कर्णिकाधः	ॐ स्योनापृथिवि०	ॐ भू० पृथिव्यै० पृथिवीम्०
३० कर्णिकाधः	ॐ पञ्चनद्यः०	ॐ भू० गङ्गादिनदीभ्यो० गङ्गादिनदीः०
३१ कर्णिकाधः	ॐ इमम्मेव्वरुण०	ॐ भू० सप्तसागरेभ्यो० सप्तसागरान्०
३२ कर्णिकायाम्	ॐ प्रपर्वतस्य०	ॐ भू० मेरवे० मेरुम्०
३३ प्रथमपरिधावुत्तरे	ॐ गणानान्त्वा०	ॐ भू० गदायै० गदाम्०
३४ प्रथमईशाने	ॐ त्रिंशद्धाम०	ॐ भू० त्रिशूलाय० त्रिशूलम्०
३५ प्रथमपूर्वे	ॐ महाँइन्द्रोवज्रहस्तः०	ॐ भू० वज्राय० वज्रम्०
३६ प्रथमआग्नेये	ॐ वसुश्चमे०	ॐ भू० शक्तये० शक्तिम्०
३७ प्रथमदक्षिणे	ॐ इडएह्यदित०	ॐ भू० दण्डाय दण्डम्०
३८ प्रथमनैर्ऋत्याम्	ॐ खड्गोवैश्वदेवः०	ॐ भू० खड्गाय० खड्गम्०
३९ प्रथमपश्चिमे	ॐ उदुत्तमंवरुण	ॐ भू० पाशाय० पाशम्०
४० प्रथमवायव्ये	ॐ आ द शुश्चमे०	ॐ भू० अङ्कुशाय० अङ्कुशम्०
४१ द्वितीयपरिधावुत्तरे	ॐ आयङ्गौः०	ॐ भू० गौतमाय० गौतमम्०
४२ द्वितीयईशाने	ॐ अयन्दक्षिणा०	ॐ भू० भरद्वाजाय० भरद्वाजम्०
४३ द्वितीयपूर्वे	ॐ इदमुत्तरात्०	ॐ भू० विश्वामित्राय० विश्वामित्रम्०
४४ द्वितीयआग्नेये	ॐ त्र्यायुषं०	ॐ भू० कश्यपाय० कश्यपम्०
४५ द्वितीयदक्षिणे	ॐ अयं पश्चाद्०	ॐ भू० जमदग्नये० जमदग्निम्०
४६ द्वितीयनैर्ऋत्याम्	ॐ अयम्पुरो०	ॐ भू० वसिष्ठाय० वसिष्ठम्०
४७ द्वितीयपश्चिमे	ॐ अत्र पितरो०	ॐ भू० अत्रये० अत्रिम्०
४८ द्वितीयवायव्याम्	ॐ तम्पत्नीभि०	ॐ भू० अरुन्धत्यै० अरुन्धतीम्०
४९ तृतीयपरिधौपूर्वे	ॐ अदित्यैरास्ना०	ॐ ऐन्द्र्यै० ऐन्द्रीम्०
५० तृतीयआग्नेये	ॐ अम्बे अम्बिके०	ॐ कौमार्यै० कौमारीम्०
५१ तृतीयदक्षिणे	ॐ इन्द्रायाहितूतु०	ॐ ब्राह्म्यै० ब्राह्मीम्०
५२ तृतीयनैर्ऋत्ये०	ॐ आयङ्गौः०	ॐ वाराह्यै० वाराहीम्०

५३ तृतीयपश्चिमे०	ॐ अम्बे अम्बिके०	ॐ भू० चामुण्डायै० चामुण्डाम्०
५४ तृतीयवायव्याम्	ॐ आप्यायस्व०	ॐ भू० वैष्णव्यै० वैष्णवीम्०
५५ तृतीयउत्तरे	ॐ याते रुद्रशिवा०	ॐ भू० कौबेर्यै० कौबेरीम्०
५६ तृतीयईशान्याम्	ॐ समख्ये देव्या०	ॐ भू० वैनायक्यै० वैनायकीम्०

ॐ मनोजूति० ब्रह्मादिसर्वतोभद्रमण्डल देवताः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवत, ॐ भू० ब्रह्मादिसर्वतोभद्रमण्डलदेवताभ्यो नमः इति षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजनम् । पूजनान्ते प्रत्येकमेक तन्त्रेण वा पायसबलिदानम् ।

परशुरामकल्पसूत्रभाष्ये प्रणवादिचतुर्थ्यन्तदेवतानामान्ते नमः शब्दयोजनेन नाममन्त्रत्वं प्रतिपादितम् । पुनश्च होमे स्वाहान्तिमाः प्रोक्ताः पूजायाञ्च नमोऽन्तकाः । इति वचनेन विषयभेदेन पूजायां ॐ ब्रह्मणेनमः इति, होमे च ॐ ब्रह्मणे स्वाहा इति स्पष्टमुपपादितम् । शास्त्रार्थ प्रकरणे मन्त्रप्रकाशवचनेन एतत् सुदृढं व्यवस्थापितम् ॥ तेन ॐ ब्रह्मणे स्वाहा इति क्रमेण स्थापितदेवता होमकाले प्रतिदैवतमेकैकामाज्याहुतिं दश दश वा घृताक्ततिलाहुतीर्जुहुयात् ।

४ एकचतुरष्टलिङ्गतोभद्रेषु देवताः ।

सर्वतोभद्रनिर्दिष्ट ५६ षट्पञ्चाशद्देवतावाहनानन्तरं त्रिषु लिङ्गतोभद्र मण्डलेषु सामान्या देवताः ।

पूर्वादिक्रमेणाष्ट भैरवानावाहयेत् ।

१ पूर्वे-	ॐ असिताङ्गभैरवाय०
२ आग्नेये-	ॐ रुरुभैरवाय०
३ दक्षिणे-	ॐ चण्डभैरवाय०
४ नैर्ऋत्ये-	ॐ क्रोधभैरवाय०
५ पश्चिमे-	ॐ उन्मत्तभैरवाय०
६ वायव्ये-	ॐ कपालभैरवाय०
७ उत्तरे-	ॐ भीषणभैरवाय०
८ ईशाने-	ॐ संहारभैरवाय०
९ पू०	ॐ अनन्ताय०
१० आ-	ॐ वासुकये०
११ द-	ॐ तक्षकाय०
१२ नै-	ॐ कुलिशाय०
१३ प-	ॐ कर्कोटकाय०
१४ वा-	ॐ शङ्खपालाय०
१५ उ-	ॐ कम्बलाय०
१६ ई-	ॐ अश्वतराय०
१७ ई-अ-मध्ये	ॐ शूलिने०
१८ ई-अ-मध्ये	ॐ चन्द्रमौलये०
१९ अ-नै-मध्ये	ॐ वृषध्वजाय०
२० अ-नै-मध्ये	ॐ त्रिलोचनाय०
२१ नै-वा-मध्ये	ॐ शक्तिधराय०
२२ नै-वा-मध्ये	ॐ महेश्वराय०
२३ वा-ई-मध्ये	ॐ शूलपाणये०
२४ वा-ई-मध्ये	ॐ महादेवाय०
२५ परिधौ-	ॐ महादेवाय०
२६ परिधिसमन्तात्-	ॐ चतुःपुरीभ्यः०
२७ आग्नेये शृङ्खलायां-	ॐ ऋग्वेदाय०

२८ नै-शृङ्खलायां- ॐ यजुर्वेदाय॰
२९ वा-शृ- ॐ सामवेदाय॰
३० ई-शृ- ॐ अथर्ववेदाय॰
३१ पूर्वेवाप्याम्- ॐ भवान्यै॰
३२ पूर्वेवाप्याम्- ॐ शर्वाण्यै॰
३३ दक्षिणेवाप्याम्- ॐ पाशुपत्यै॰
३४ दक्षिणेवाप्याम्- ॐ ईशान्यै॰
३५ पश्चिमेवाप्याम्- ॐ उग्रायै॰
३६ पश्चिमेवाप्याम्- ॐ रुद्राण्यै॰
३७ उत्तरेवाप्याम्- ॐ भीमायै॰
३८ उत्तरेवाप्याम्- ॐ महत्यै॰

एताः सामान्या देवताः-

एकलिङ्गतोभद्रे मध्ये-लिङ्गे

१ ॐ ईशानः सर्व॰ तमीशानं॰ ॐ महादेवाय ईशानाय॰

चतुर्लिङ्गतोभद्रे-

१ पश्चिमलिङ्गे-ॐ सद्योजातं॰ सद्योजाताय॰ सद्योजातं॰ २ उत्तरलिङ्गे॰ ॐ वाममय॰ वामदेवाय॰ ॐ। ३ दक्षिणलिङ्गे- ॐ अघोरेभ्यो॰ यातेरुद्र॰ ॐ अघोराय॰ ४ पूर्वलिङ्गे-ॐ तत्पुरुषाय॰ हंसःशुचिषद्॰ ॐ तत्पुरुषाय॰ । ॥ मध्ये-ईशानःसर्व॰ तमीशानं॰ ॐ महादेवायईशानाय॰ अष्टलिङ्गेषु-पूर्वलिङ्गयोः उत्तरलिङ्गे- १ भवाय॰ । दक्षिणलिङ्गे-२ शर्वाय॰ दक्षिणलिङ्गयोः पूर्वलिङ्गे-३ ईशानाय॰ पश्चिमलिङ्गे - ४ पशुपतये॰ । पश्चिमलिङ्गयोः दक्षिणलिङ्गे- ५ रुद्राय॰ । उत्तरलिङ्गे- ६ उग्राय॰ । उत्तरलिङ्गयोः पश्चिमलिङ्गे- ७ भीमाय॰ । पूर्वलिङ्गे-८ महते॰ ॥

द्वादशलिङ्गेषु-ईशानादिप्रादक्षिण्येन॰

१ वीरभद्राय॰ २ शम्भवे॰ ३ अजैकपदे॰ । दक्षिणलिङ्गेषु ४ अहिर्बुध्न्याय॰ ५ पिनाकिने॰ । ६ शूलपाणये॰ । पश्चिमलिङ्गेषु ७ भुवनाधीश्वराय॰ ८ कपालिने॰ ९ दिक्पतये॰ । उत्तरलिङ्गेषु॰ १० रुद्राय॰ ११ शिवाय॰ १२ महेश्वराय॰ इति विशिष्टा देवताः स्थापयेत् । अयं क्रमः शुक्लयजुःशाखीयकर्मकाण्डप्रदीपस्थः ।

५ महारुद्रपद्धत्युक्ता द्वादशलिङ्गतोभद्रमण्डलदेवताः ।

आदौ मध्यस्थितसर्वतोभद्रमण्डले ब्रह्मादिविनायक्यन्ताः ५६ षट्पञ्चाशद्देवता आवाहयेत् । पृ. २-३

१ ब्रह्मणे॰ ततः ५६ वैनायक्यै॰

५७ ईशानादिप्रथमपूर्वलिङ्गे- ॐ शिवाय॰
५८ पू-द्वि-लिङ्गे- ॐ तत्पुरुषाय॰
५९ पू-तृ-लिङ्गे ॐ पशुपतये॰
६० प्र-द-लिङ्गे ॐ उग्राय॰
६१ द-द्वि-लिङ्गे ॐ अघोराय॰
६२ द-तृ-लिङ्गे ॐ रुद्राय
६३ प-प्र-लिङ्गे ॐ भवाय॰
६४ प-द्वि-लिङ्गे ॐ सद्योजाताय॰
६५ प-तृ-लिङ्गे ॐ सर्वजाताय॰
६६ उ-प्र-लिङ्गे ॐ महालिङ्गाय॰
६७ उ-द्वि-लिङ्गे ॐ वामदेवाय॰
६८ उ-तृ-लिङ्गे ॐ भीमाय॰
६९ पू-प्र-वाप्यां- ॐ असिताङ्गभैरवाय॰
७० पू-द्वि-वाप्यां- ॐ रुरुभैरवाय॰
७१ पू-तृ-वाप्यां- ॐ चण्डभैरवाय॰

७२	पू-च-वाप्यां-	ॐ क्रोधभैरवाय०	१०३	आग्नेयवल्लीषु-	ॐ माल्यवते०
७३	द-प्र-वाप्यां-	ॐ उन्मत्तभैरवाय०	१०४	आग्नेयवल्लीषु-	ॐ पारिजाताय०
७४	द-द्वि-वाप्यां-	ॐ कपालिभैरवाय०	१०५	आग्नेयवल्लीषु-	ॐ दिक्पतये०
७५	द-तृ-वाप्यां-	ॐ भीषणभैरवाय०	१०६	आग्नेयवल्लीषु-	ॐ महादेवाय०
७६	द-च-वाप्यां-	ॐ संहारभैरवाय०	१०७	आग्नेयवल्लीषु-	ॐ विष्णवे०
७७	प-प्र-वाप्यां-	ॐ भवान्यै०	१०८	नैर्ऋत्यवल्लीषु-	ॐ माल्यवते०
७८	प-द्वि-वाप्यां-	ॐ शर्वाण्यै०	१०९	नैर्ऋत्यवल्लीषु-	ॐ महारुद्राय०
७९	प-तृ-वाप्यां-	ॐ ईशान्यै०	११०	नै-वल्लीषु	ॐ कालाग्निरुद्राय०
८०	प-च-वाप्यां-	ॐ पशुपत्यै०	१११	नै-वल्लीषु	ॐ द्वादशादित्येभ्यो०
८१	उ. प्र-वाप्यां-	ॐ रुद्राण्यै०	११२	नै-वल्लीषु	ॐ महेश्वराय०
८२	उ. द्वि-वाप्यां-	ॐ उग्रायै०	११३	नै-वल्लीषु	ॐ मृत्युरोगाभ्यां०
८३	उत्तरतृतीयवाप्यां -	ॐ भीमायै०	११४	नै-वल्लीषु	ॐ वैनायक्यै०
८४	उ. च- उत्तरतृतीयवाप्यां-	ॐ महत्यै०	११५	वायव्यवल्लीषु	ॐ शाकुन्तलेयाय०
८५	ई-पू-मध्येभद्रे-	ॐ शूलिने०	११६	वायव्यवल्लीषु	ॐ भरताय०
८६	पू-अ-मध्येभद्रे-	ॐ चन्द्रमौलये०	११७	वायव्यवल्लीषु	ॐ नलाय०
८७	अ-द-मध्येभद्रे-	ॐ चन्द्रमसे०	११८	वायव्यवल्लीषु	ॐ रामाय०
८८	द-नि-मध्येभद्रे-	ॐ वृषभध्वजाय०	११९	वायव्यवल्लीषु	ॐ सार्वभौमाय०
८९	नि-प-मध्येभद्रे-	ॐ त्रिलोचनाय०	१२०	वायव्यवल्लीषु	ॐ नैषधाय०
९०	प-वा-मध्येभद्रे-	ॐ शक्तिधराय०	१२१	वायव्यवल्लीषु	ॐ विन्ध्याचलाय०
९१	वा-उ-मध्येभद्रे-	ॐ महेश्वराय०	१२२	ईशानशृङ्खलासु-	ॐ हेमकूटाय०
९२	उ-ई-मध्येभद्रे-	ॐ शूलधारिणे०	१२३	ईशानशृङ्खलासु-	ॐ गन्धमादनाय०
९३	ईशानवल्लीषु-	ॐ अनन्ताय०	१२४	ईशानशृङ्खलासु-	ॐ कुलाचलाय०
९४	ईशानवल्लीषु-	ॐ तक्षकाय०	१२५	ईशानशृङ्खलासु-	ॐ हिमाचलाय०
९५	ईशानवल्लीषु-	ॐ कुलिशाय०	१२६	ईशानशृङ्खलासु-	ॐ पृथिव्यै०
९६	ईशानवल्लीषु-	ॐ कर्कोटकाय०	१२७	ईशानशृङ्खलासु-	ॐ अनन्ताय०
९७	ईशानवल्लीषु-	ॐ शङ्खपालाय०	१२८	ईशानशृङ्खलासु-	ॐ कमलासनाय०
९८	ईशानवल्लीषु-	ॐ कम्बलाय०	१२९	ईशानखण्डेन्दौ-	ॐ अश्विभ्यां०
९९	ईशानवल्लीषु-	ॐ अश्वतराय०	१३०	आग्नेयखण्डेन्दौ-	ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः०
१००	ईशानवल्लीषु-	ॐ पृथिव्यै०	१३१	नैर्ऋत्यखण्डेन्दौ-	ॐ पितृभ्यः०
१०१	आग्नेयवल्लीषु-	ॐ भूम्यै०	१३२	वायव्यखण्डेन्दौ-	ॐ नागेभ्यः०
१०२	आग्नेयवल्लीषु-	ॐ हैहयाय०	१३३	सत्वपरिधौपूर्वे-	ॐ इन्द्राय०

१३४ सत्वपरिधीपूर्वे आ- ॐ अग्नये०
१३५ सत्वपरिधीपूर्वे द- ॐ यमाय०
१३६ सत्वपरिधीपूर्वे नै- ॐ निर्ऋतये०
१३७ सत्वपरिधीपूर्वे पं- ॐ वरुणाय०
१३८ सत्वपरिधीपूर्वे वा० ॐ वायवे०
१३९ सत्वपरिधीपूर्वे उ० ॐ सोमाय०
१४० सत्वपरिधीपूर्वे ई० ॐ ईशानाय०
१४१ रजःपरिधी पू० ॐ वज्राय०
१४२ रजःपरिधी आ० ॐ शक्तये०
१४३ रजःपरिधी-द० ॐ दण्डाय-
१४४ रजःपरिधी-द० ॐ खड्गाय०
१४५ रजःपरिधी-प० ॐ पाशाय०
१४६ रजःपरिधी-वा० ॐ अङ्कुशाय०
१४७ रजःपरिधी-उ० ॐ गदायै०
१४८ रजःपरिधी-ई० ॐ त्रिशूलाय०
१४९ तमःपरिधी-पू० ॐ कश्यपाय०
१५० तमःपरिधी-आ० ॐ अत्रये०
१५१ तमःपरिधी-द० ॐ भरद्वाजाय०
१५२ तमःपरिधी-नै० ॐ विश्वामित्राय०
१५३ तमःपरिधी-प० ॐ गौतमाय०
१५४ तमःपरिधी-वा० ॐ जमदग्नये०
१५५ तमःपरिधी-उ० ॐ वसिष्ठाय०
१५६ तमःपरिधी-ई० ॐ भृगवे०

ॐमनोजूति० ब्रह्मादिसर्वतोभद्र-मण्डलसहित शिवादिद्वादशलिङ्गतोभद्र-मण्डलदेवताभ्यो नमः इति पूजयेत् । प्रत्येकमेकतन्त्रेण वा पायसबलिदानम् । होमकाले - ॐ ब्रह्मणे स्वाहा - इत्यादिक्रमेण एकैकाज्याहुतिः वा दशदश घृताक्ततिलाहुतयो देयाः ।

६ वारुणमण्डलदेवताः ।

१ पूर्वे आरायां-आकृष्णेन० ॐ सूर्याय०
२ आ- आरायां-इमन्देवा० ॐ चन्द्राय०
३ द- आरायां अग्निर्मूर्धा० ॐ भौमाय०
४ नै- आरायां उद्बुध्यस्वाग्ने० ॐ बुधाय०
५ प- आरायां बृहस्पतेअति० ॐ गुरवे०
६ वा- आरायां अन्नात्परि० ॐ शुक्राय०
७ उ- आरायां शन्नोदेवी० ॐ शनैश्चराय०
८ ई- आरायां कयानश्चित्र० ॐ राहवे०
९ ई- आरायां केतुं कृण्वन्० ॐ केतवे०
१० पू-सूर्याग्रे० त्रातारमिन्द्र० ॐ इन्द्राय०
११ आ-चन्द्राग्र-त्वन्नोअग्ने० ॐ अग्नये०
१२ द-भौमाग्रे-यमायत्वा० ॐ यमाय०
१३ नै-बुधाग्रे- असुन्वन्त० ॐ निर्ऋतये०
१४ प-गुर्वग्रे- तत्त्वायामि० ॐ वरुणाय०
१५ वा-शुक्राग्रे० आनोनियुद्भिः० ॐ वरुणाय०
१६ उ-शन्यग्रे० वय ह सोम० ॐ सोमाय०
१७ ई-राहुकेत्वग्रे० तमीशानं० ॐ ईशानाय०
१८ वायुसोमान्तराले० आरायां० सुगात्रोदेवाः०
१९ सोमेशानान्तराले०रुद्राः, स ह सृज्य० ॐ एकादश रुद्रेभ्यः०
२० ई-इ-मध्ये आरायां-यज्ञोदेवानां० ॐ द्वादशादित्येभ्यो०
२१ इ-अ-मध्ये आरायांयात्राकशा० ॐ अश्विभ्यां०
२२ अ-य-मध्ये आरायां-ओमासश्च० ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो०
२३ तत्रैव- आरायां-उदीरता० ॐ पितृभ्यः
२४ य-नि-मध्ये आरायांअभित्यंदेव ह ॐ सप्तयक्षेभ्यो०

२५ नि-वा-मध्ये-आरायां-अन्तश्चरति० ॐ भूतनागेभ्यो०
२६ व-वा-मध्ये ऋताषाडृत० ॐ गन्धर्वाप्सरोभ्यः
२७ उत्तरदले- यदक्रन्दः० ॐ स्कन्दाय०
२८ ईशानदले-अदितिर्द्यौ० ॐ दक्षादिसप्तकेभ्यः
२९ पूर्वदले- अम्बेअम्बिके० ॐ दुर्गायै०
३० तत्रैव- इदं विष्णु० ॐ विष्णवे०
३१ अग्निदले- पितृभ्यःस्वधा० ॐ स्वधायै०
३२ दक्षिणदले- परंमृत्यो० ॐ मृत्युरोगाभ्यां०
३३ नैर्ऋत्यदले-गणानान्त्वा० ॐ गणपतये०
३४ पश्चिमदले- शन्नोदेवी० ॐ अद्भ्यः०
३५ वायव्यदले-मरुतोयस्य० ॐ मरुद्भ्यः०
३६ तत्रैव- स्योनापृथिवि० ॐ पृथिव्यै०
३७ उत्तरकेसरमूले-ब्रह्मजज्ञानं० ॐ ब्रह्मणे०
३८ ईशानकेसरमूले-विष्णोरराट० ॐ विष्णवे०
३९ पूर्वकेसरमूले-मानस्तोके० ॐ रुद्राय०
४० अग्निकेसरमूले-श्रीश्चते० ॐ लक्ष्म्यै०
४१ दक्षिणकेसरमूले-अम्बे अम्बिके० ॐ अम्बिकायै०
४२ निर्ऋतिकेसरमूले-तत्सवितु० ॐ सावित्र्यै०
४३ पश्चिमकेसरमूले-पञ्चनद्यः ॐ गङ्गादिनदीभ्यः
४४ वायुकेसरमूले-इमम्मे० ॐ सप्तसागरेभ्यः
४५ ब्रह्मपादमूले-भूतायत्वा० ॐ भूतग्रामाय०
४६ कर्णिकोपरि-प्रपर्वतस्य० ॐ मेरवे०
४७ उत्तरे ॐ गदायै०
४८ ईशाने ॐ त्रिशूलाय०
४९ पूर्वे- ॐ वज्राय०
५० आग्नेये- ॐ शक्तये०
५१ दक्षिणे- ॐ दण्डाय०
५२ नैर्ऋत्ये ॐ खड्गाय०
५३ पश्चिमे- ॐ पाशाय०
५४ वायव्ये ॐ अङ्कुशाय०
५५ उत्तरे- ॐ गौतमाय०
५६ ईशाने- ॐ भरद्वाजाय०
५७ पूर्वे- ॐ विश्वामित्राय०
५८ आग्नेये ॐ कश्यपाय०
५९ दक्षिणे- ॐ जमदग्नये०
६० नैर्ऋत्यां- ॐ वसिष्ठाय०
६१ पश्चिमे- ॐ अत्रये०
६२ वायव्यां० ॐ अरुन्धत्यै०
६३ पूर्वे- ॐ ऐन्द्र्यै०
६४ आग्नेये- ॐ कौमार्यै०
६५ दक्षिणे- ॐ ब्राह्म्यै०
६६ नैर्ऋत्यां- ॐ वाराह्यै०
६७ पश्चिमे- ॐ चामुण्डायै०
६८ वायव्ये- ॐ वैष्णव्यै०
६९ उत्तरे- ॐ कौबेर्यै०
७० ईशाने- ॐ वैनायक्यै०

मनोजूति० सूर्यादिवारुणमण्डलदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवत । ॐ सूर्यादिवारुण-मण्डल देवताभ्योनमः इतिपूजयेत् । पृथगेकतन्त्रेण वा बलिदानम् । होमकाले-ॐ सूर्याय स्वाहा इति क्रमेण एकैकामाज्या-हुतिं दशदशवा तिलाहुतीर्जुहुयात् । इति वारुणमण्डलदेवताः ।

७ योगिनीमण्डलदेवताः

सर्वपक्षेषु आदौ १ ऐं महाकाल्यै नमः २ ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः ३ क्लीं महासरस्वत्यै नमः-इति त्रयम् । अन्ते च मण्डलाद्बहिः १ इन्द्राण्यै० २ दुर्गायै० ३ जयायै० ४ विजयायै० ५ अजितायै० ६ विश्व मङ्गलायै० ७ भद्ररूपिण्यै० ८ भुवनेश्वर्यै० ९ राजराजेश्वर्यै० इतिनव पूजयेद् होमश्च ।

१ प्रथमः पक्षः
विश्वदुर्गादि

१ विश्वदुर्गायै०
२ ज्योतिन्यै०
३ मालाधर्यै०
४ महामायायै०
५ मायावत्यै०
६ शुभायै०
७ यशस्विन्यै०
८ त्रिनेत्रायै०
९ लोलजिह्वायै०
१० शङ्खिन्यै०
११ यमघण्टायै०
१२ कालिकायै०
१३ चर्चिकायै०
१४ यक्षिण्यै०
१५ सरस्वत्यै०
१६ चण्डिकायै०
१७ चित्रघण्टायै०
१८ सुगन्धायै०
१९ कामाक्ष्यै०
२० भद्रकाल्यै०
२१ परायै०
२२ कान्ताक्ष्यै०
२३ कोटराक्ष्यै०
२४ नीलाङ्गायै०
२५ सर्वमङ्गलायै०
२६ ललितायै०
२७ त्वरितायै०
२८ भुवनेश्वर्यै०
२९ खड्गपाण्यै०
३० शूलिन्यै०
३१ दण्डिकायै०
३२ अम्बिकायै०
३३ शूलेश्वर्यै०
३४ बाणवत्यै०
३५ धनुर्धरायै०
३६ महोल्लासायै०
३७ विशालाक्ष्यै०
३८ त्रिपुरायै०
३९ भगमालिन्यै०
४० दीर्घकेश्यै०
४१ घोरघोणायै०
४२ वाराह्यै०
४३ महोदर्यै०
४४ कामेश्वर्यै०
४५ गुह्येश्वर्यै०
४६ भूतनाथायै०
४७ महारवायै०
४८ ज्योतिष्मत्यै०
४९ कृत्तिवासायै०
५० मुण्डिन्यै०
५१ शववाहिन्यै०
५२ शिवाङ्गायै०
५३ लिङ्गहस्तायै०
५४ भगवक्त्रायै०
५५ गगनायै०
५६ मेघवाहनायै०
५७ मेघघोषायै०
५८ नारसिंह्यै०
५९ कालिन्यै०
६० श्रीधर्यै०
६१ तेजस्यै०
६२ श्यामायै०
६३ मातङ्ग्यै०
६४ नरवाहनायै०

इन्द्राण्यादिनत्र ।

२ द्वितीयः पक्षः
गजाननादि
काशीखण्डोक्तः ।

१ गजाननायै०
२ सिंहमुख्यै०
३ गृध्रास्यायै०
४ काकतुण्डिकायै०
५ उष्ट्रग्रीवायै०
६ हयग्रीवायै०
७ वाराह्यै०
८ शरभाननायै०
९ उलूकिकायै०
१० शिवारावायै०
११ मयूर्यै०
१२ विकटाननायै०
१३ अष्टवक्त्रायै०
१४ कोटराक्ष्यै०
१५ कुब्जायै०
१६ विकटलोचनायै०
१७ शुष्कोदर्यै०
१८ ललज्जिह्वायै०
१९ श्वदंष्ट्रायै०
२० वानराननायै०
२१ ऋक्षाक्ष्यै०
२२ केकराक्ष्यै०
२३ बृहत्तुण्डायै०
२४ सुराप्रियायै०
२५ कपालहस्तायै०
२६ रक्ताक्ष्यै०
२७ शुक्यै०
२८ श्येन्यै०
२९ कपोतिकायै०
३० पाशहस्तायै०
३१ दण्डहस्तायै०
३२ प्रचण्डायै०
३३ चण्डविक्रमायै०
३४ शिशुघ्न्यै०
३५ पापहन्त्र्यै०
३६ काल्यै०
३७ रुधिरपायिन्यै०
३८ वसाधयायै०
३९ गर्भभक्षायै०
४० शवहस्तायै०
४१ आन्त्रमालिन्यै०
४२ स्थूलकेश्यै०
४३ बृहत्कुक्ष्यै०
४४ सर्पास्यायै०
४५ प्रेतवाहनायै०
४६ दन्दशूकायै०
४७ क्रौञ्च्यै०
४८ मृगशीर्षायै०
४९ वृषाननायै०
५० व्यात्तास्यायै०
५१ धूमनिश्वासायै०
५२ व्योमैकचरणोर्ध्वदृशे
५३ तापिन्यै०
५४ शोषिणीदृष्ट्यै०

५५ कोटर्यै०
५६ स्थूलकेश्यै०
५७ विद्युत्प्रभायै०
५८ बलाकास्यायै०
५९ मार्जार्यै०
६० कटपूतनायै०
६१ अट्टाट्टहासायै०
६२ कामाक्ष्यै०
६३ मृगाक्ष्यै०
६४ मृगवाहनायै०

इन्द्राण्यादि नव ।

३ शान्तिसाराद्युक्ताः जयादियोगिन्यः

१ जयायै०
२ विजयायै०
३ जयन्त्यै०
४ अपराजितायै०
५ दिव्ययोगिन्यै०
६ महायोगिन्यै०
७ सिद्धयोगिन्यै०
८ गणेश्वर्यै०
९ प्रेताश्यै०
१० डाकिन्यै०
११ काल्यै०
१२ कालरात्र्यै०
१३ टङ्काक्ष्यै०
१४ रौद्रवैताल्यै०
१५ हुङ्कार्यै०
१६ ऊर्ध्वकेशिन्यै०
१७ विरूपाक्ष्यै०
१८ शुष्काङ्ग्यै०
१९ नरभोजनायै०
२० फट्कार्यै०
२१ वीरभद्रायै०
२२ धूम्राक्ष्यै०
२३ कलहप्रियायै०
२४ राक्षस्यै०
२५ घोररक्ताक्ष्यै०
२६ विश्वरूपायै०
२७ भयङ्कर्यै०
२८ चण्डमार्यै०
२९ चण्ड्यै०
३० वाराह्यै०
३१ मुण्डधारिण्यै०
३२ भैरव्यै०
३३ ऊर्ध्वाक्ष्यै०
३४ दुर्मुख्यै०
३५ प्रेतवाहिन्यै०
३६ स्वप्याङ्ग्यै०
३७ लम्बोष्ठ्यै०
३८ मालिन्यै०
३९ मत्तयोगिन्यै०
४० काल्यै०
४१ रक्तायै०
४२ कङ्काल्यै०
४३ भुवनेश्वर्यै०
४४ त्रोटक्यै०
४५ महामार्यै०
४६ यमदूत्यै०
४७ करालिन्यै०
४८ केशिन्यै०
४९ मेदिन्यै०
५० रोमजङ्घायै०
५१ प्रवाहिन्यै०
५२ बिडाल्यै०
५३ कार्मुकालाक्ष्यै०
५४ जयायै०
५५ अधोमुख्यै०
५६ मुण्डाग्रधारिण्यै०
५७ व्याघ्र्यै०
५८ काङ्क्षिण्यै०
५९ प्रेतभक्षिण्यै०
६० धूर्जट्यै०
६१ विकटायै०
६२ घोरायै०
६३ कपालिन्यै०
६४ विषलङ्घिन्यै०

इन्द्राण्याद्याः नव ।

४ आग्नेयोक्ताः

१ अक्षोभ्यायै०
२ रूक्षकर्ण्यै०
३ राक्षस्यै०
४ कृपणायै०
५ क्षयायै०
६ पिङ्गाक्ष्यै०
७ अक्षयायै०
८ क्षेमायै०
९ इलान्यै०
१० लाल्यायै०
११ लोलालकायै०
१२ बलाकेश्यै०
१३ लालसायै०
१४ विमलायै०
१५ हुताशायै०
१६ विशालाक्ष्यै०
१७ हुङ्कारायै०
१८ वडवामुख्यै०
१९ महाक्रूरायै०
२० क्रोधनायै०
२१ भयङ्कर्यै०
२२ महाननायै०
२३ सर्वज्ञायै०
२४ तरलायै०
२५ तारायै०
२६ ऋग्वेदायै०
२७ हयाननायै०
२८ साराख्यायै०
२९ रुद्रासंग्राह्यै०
३० शम्बरायै०
३१ तालजङ्घायै०
३२ रक्ताक्ष्यै०
३३ सुप्रसिद्धायै०
३४ विद्युज्जिह्वायै०
३५ करङ्किण्यै०
३६ मेघनादायै०
३७ प्रचण्डायै०
३८ उग्रायै०
३९ कालकर्ण्यै०
४० वरप्रदायै०
४१ चन्द्रायै०
४२ चन्द्रावल्यै०
४३ प्रपञ्चायै०
४४ प्रलयान्तिकायै०
४५ शिशुवक्त्रायै०

४६ पिशाच्यै०
४७ पिशिताशायै०
४८ लोलुपायै०
४९ धमन्यै०
५० तापन्यै०
५१ रागिण्यै०
५२ विकृताननायै०
५३ वायुवेगायै०
५४ बृहत्कुक्ष्यै०
५५ विकृतायै०
५६ विश्वरूपायै०
५७ यमजिह्वायै०
५८ जयन्त्यै०
५९ दुर्जयायै०
६० जयन्तिकायै०
६१ विडाल्यै०
६२ रेवत्यै०
६३ पूतनायै०
६४ विजयान्तिकायै०
इन्द्राण्याद्याः नव ।
५ रुद्रयामलोक्ताः ।
१ दिव्ययोगिन्यै०
२ महायोगिन्यै०
३ सिद्धयोगिन्यै०
४ गणेश्वर्यै०
५ प्रेताक्ष्यै०
६ डाकिन्यै०
७ काल्यै०
८ कालरात्र्यै०
९ हुङ्कार्यै०
१० निशाचर्यै०
११ सिद्धवैताल्यै०
१२ ह्रीङ्कार्यै०
१३ भूतडामर्यै०
१४ ऊर्ध्वकेश्यै०
१५ विशालाक्ष्यै०
१६ शुष्काङ्ग्यै०
१७ नरभोजिन्यै०
१८ फेत्कार्यै०
१९ वीरभद्रायै०
२० धूम्राक्ष्यै०
२१ कलहप्रियायै०
२२ राक्षस्यै०
२३ घोररक्ताक्ष्यै०
२४ रक्ताक्ष्यै०
२५ विरूपायै०
२६ श्रियै०
२७ भयङ्कर्यै०
२८ वीरायै०
२९ कौमारिकायै०
३० वाराह्यै०
३१ मुण्डधारिण्यै०
३२ भैरव्यै०
३३ चक्रिण्यै०
३४ क्रोधिन्यै०
३५ दुर्मुखायै०
३६ प्रेतवासिन्यै०
३७ कंसक्यै०
३८ ऐन्द्र्यै०
३९ प्रलम्बोष्ठ्यै०
४० मालिन्यै०
४१ मन्त्रयोगिन्यै०
४२ कालाग्निरूपायै०
४३ मोहिन्यै०
४४ रक्त्यै०
४५ धुत्कार्यै०
४६ भुवनेश्वर्यै०
४७ कुण्डल्यै०
४८ बालकौमार्यै०
४९ यमदूत्यै०
५० कपालिन्यै०
५१ विशालायै०
५२ कालिकायै०
५३ व्याघ्र्यै०
५४ रक्षिण्यै०
५५ प्रेतभक्षिण्यै०
५६ दुर्जयायै०
५७ विकटायै०
५८ घोरायै०
५९ कपाल्यै०
६० विषलिङ्ग्यै०
६१ मस्तिपायै०
६२ चन्द्रहन्त्र्यै०
६३ आकाश्यै०
६४ गिरिनायकायै०
इन्द्राण्याद्याः नव ।
६ प्रतिष्ठातिलकोक्ताः ।
१ अघोरायै०
२ घोररूपायै०
३ चण्डायै०
४ चण्डप्रभायै०
५ विद्युन्मालायै०
६ सुपर्णाक्ष्यै०
७ भीमायै०
८ भीमपराक्रमायै०
९ रेवत्यै०
१० यक्षिण्यै०
११ दुर्गायै०
१२ कर्ममोट्यै०
१३ चण्डिकायै०
१४ बिडाल्यै०
१५ विजयायै०
१६ क्रोधिन्यै०
१७ अक्रोधिन्यै०
१८ महासुरायै०
१९ भद्रकाल्यै०
२० रक्ताक्ष्यै०
२१ चाक्षुष्यै०
२२ पद्मचाक्षुष्यै०
२३ आनन्दायै०
२४ शुभदायै०
२५ नन्दायै०
२६ अमृतायै०
२७ अमृतमालिन्यै०
२८ यशोवत्यै०
२९ लक्ष्म्यै०
३० मेधायै०
३१ कान्तायै०
३२ कलायै०
३३ शुभायै०
३४ बुद्ध्यै०
३५ मायायै०
३६ आह्लादिन्यै०
३७ व्यापिन्यै०

३८ व्योममात्रे०
३९ धनायै०
४० धर्धरायै०
४१ रौद्रायै०
४२ कामकाल्यै०
४३ नन्दिन्यै०
४४ कद्रूयै०
४५ ज्येष्ठायै०
४६ परायै०
४७ शान्तायै०
४८ भूमात्रे०
४९ मनोनायकायै०
५० प्रतिष्ठायै०
५१ मेधनादायै०
५२ चक्रचारायै०
५३ शुचिक्रियायै०
५४ भारत्यै०
५५ वीरघ्न्यै०
५६ सौम्यायै०
५७ विज्ञातायै०
५८ ज्ञानदायिन्यै०
५९ चण्डाक्ष्यै०
६० वामनायै०
६१ दीर्घायै०
६२ सर्वगायै०
६३ सर्वतोमुख्यै०
६४ कृमिकीटपतङ्गादि सर्ववासिन्यै नमः इन्द्राण्याद्याः नव ।

८ क्षेत्रपालदेवताः

१ अजराय०
२ व्यापकाय०
३ इन्द्रचौराय०
४ इन्द्रमूर्तये०
५ उक्षाय०
६ कूष्माण्डाय०
७ वरुणाय०
८ बटुकाय०
९ विमुक्ताय०
१० लिप्तकायाय०
११ लीलालोकाय०
१२ एकदंष्ट्राय०
१३ ऐरावताय०
१४ ओषधिघ्नाय०
१५ बन्धनाय०
१६ दिव्यकाय०
१७ कम्बलाय०
१८ भीषणाय०
२० घण्टाय०
२१ व्यालाय०
२२ अणवे०
२३ चन्द्रवारुणाय०
२४ घटाटोपाय०
२५ जटालाय०
२६ क्रतवे०
२७ घण्टेश्वराय०
२८ विटङ्काय०
२९ मणिमानाय०
३० गणबन्धवे०
३१ डामराय०
३२ ढुण्ढिकर्णाय०
३३ स्थविराय०
३४ दन्तुराय०
३५ धनदाय०
३६ नागकर्णाय०
३७ महाबलाय०
३८ फेत्काराय०
३९ चीकराय०
४० सिंहाय०
४१ मृगाय०
४२ यक्षाय०
४३ मेघवाहनाय०
४४ तीक्ष्णोष्ठाय०
४५ अनलाय०
४६ शुक्रतुण्डाय०
४७ सुधालापाय०
४८ बर्बरकाय०
४९ पवनाय०
५० पावनाय०

कलशे मूर्तौ समष्टि रूपेण ॐ नालिकेरूपशा० ॐ अजरायेक पञ्चाशत् क्षेत्रपालेभ्यो नमः इति पूजयेत्-यं यं यं० प्रार्थना । बलिदानम् । होमकाले ॐ अजराय स्वाहा-इत्यादिक मेण एकैकाज्याहुतिः घृताक्त दशदशतिलाहुतयो वा ।

९ शुक्लयजुर्वेदोक्ता ४९ मरुतः (क्षेत्रपालाः)

अ-१७ मं-८१ तः ८५
अ-३९ मं-७
१ शुक्रज्योतिषे०
२ चित्रज्योतिषे०
३ सत्यज्योतिषे०
४ ज्योतिष्मते०
५ शुक्राय०
६ ऋतपे०
७ अत्यंहसे०
८ ईदृशे०
९ अन्यादृशे०
१० सदृशे०
११ प्रतिसदृशे०
१२ मिताय०
१३ संमिताय०
१४ सभराय०

१५ ऋताय०
१६ सत्याय०
१७ ध्रुवाय०
१८ धरुणाय०
१९ धर्त्रे०
२० विधर्त्रे०
२१ विधारयाय०
२२ ऋतजिते०
२३ सत्यजिते०
२४ सेनजिते०
२५ सुषेणाय०

२६ अन्तिमित्राय०
२७ दूरेअमित्राय०
२८ गणाय०
२९ ईदृक्षेभ्यः०
३० एतादृक्षेभ्य०
३१ ऊषुणाय०
३२ सदृक्षेभ्यः०
३३ प्रतिसदृक्षेभ्य०
३४ मितेभ्यः०
३५ सम्मितेभ्य०
३६ स्वतवते०

३७ प्रघासिने०
३८ सान्तपनाय०
३९ गृहमेधिने०
४० क्रीडिने०
४१ शाकिने०
४२ उज्जेषिणे०
४३ उग्राय०
४४ भीमाय०
४५ ध्वान्ताय०
४६ धुनये०
४७ सासहुषे०

४८ अभियुग्वने०
४९ विक्षिपाय०

ॐ भू० शुक्रज्योति रित्याद्येकोन पञ्चाशन् मरुद्भ्यो नमः इतिषोडशो पचारैः पूजयेत् ॐ इन्द्रन्दैवी र्विशो० मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ अ-१७ मं-८६ इति मन्त्रेण पूजनम् ॥ बलिदानम् । होमकाले एकैकाज्याहुतिः, दश दश घृताक्ततिलाहुतयो वा ।

१० हेमाद्रौ व्रतखण्डे चैत्र शुक्लसप्तम्यां मरुत्सप्तमी व्रते एतान्येव नामानि कुचचिन्नामभेदेन निर्दिष्टानि विष्णुधर्मपुराणात् ।

१ एकज्योतिषे०
२ द्विज्योतिषे०
३ त्रिज्योतिषे०
४ चतुर्ज्योतिषे०
५ पञ्चज्योतिषे०
६ षड्ज्योतिषे०
७ सप्तज्योतिषे०
८ ईदृशे०
९ सदृशे०
१० अन्यादृशे०
११ प्रतिसदृशे०
१२ मिताय०
१३ संमिताय०

१४ अमिताय०
१५ ऋतजिते०
१६ सत्यजिते०
१७ सुषेणाय०
१८ सेनजिते०
१९ श्रुतमित्राय०
२० अनुमित्राय०
२१ पुरुजिते०
२२ ऋताय०
२३ ऋतवादाय०
२४ विदग्धाय०
२५ अरणाय०
२६ ध्रुवाय०

२७ सत्याय०
२८ धात्रे०
२९ ईदृक्षाय०
३० सदृक्षाय०
३१ एतादृशे०
३२ अमिताशनाय०
३३ क्रीडिताय०
३४ सप्तवृक्षाय०
३५ सभराय०
३६ धर्त्रे०
३७ दुर्याय०
३८ धनिने०

३९ भीमाय०
४० अनियुक्ताय०
४१ क्षयाय०
४२ सहाय०
४३ धृतये०
४४ दीप्तये०
४५ अनाधृष्याय०
४६ वासाय०
४७ कामाय०
४८ जयाय०
४९ विराजे०

बलिदानहोमादिपूर्ववत् ।

११ हेमाद्रौमूर्त्ति- प्रकरणे विश्वकर्म्म-शास्त्रे ४९ मरुतः ।

१ खसेनाय०
२ स्पर्शनाय०
३ वायवे०
४ मातरिश्वने०
५ सदागतये०
६ महाबलाय०
७ बलवर्धनाय०
८ पृषदश्वकाय०
९ गन्धवहाय०
१० गन्धवाहकाय०
११ अनिलाय०
१२ आशुगाय०
१३ सुमुखाय०
१४ कर्कराय०
१५ समीरणाय०
१६ समीरकाय०
१७ अनुत्तमाय०
१८ मारुताय०
१९ नागयोनिजाय०
२० जगत्प्राणाय०
२१ पावनाय०
२२ वाताय०
२३ प्रभञ्जनाय०
२४ यवाय०
२५ नभस्वते०
२६ अतिबलाय०
२७ तरस्विने०
२८ द्रावणाय०
२९ देवयक्षकाय०
३० मात्रजाहकाय०
३१ अधराय०
३२ ऊर्ध्वदृशे०
३३ मतिरोधनाय०
३४ पाणिकाय०
३५ साधकाय०
३६ विश्वपूरकाय०
३७ जगदाश्रयाय०
३८ विश्वातिरिक्तकाय०
३९ कजागराय०
४० विश्वोदराय०
४१ अग्रगाय०
४२ तीव्रकाय०
४३ सुवहाय०
४४ बीजवर्धनाय०
४५ भद्रजवाय०
४६ पुष्करोद्भवाय०
४७ अब्जिनीपतये०
४८ व्यक्तमूर्तिमते०
४९ विश्वगाय०

सर्वेविविधायुधा धूम्रवर्णा मृगारूढा अतुर्बाहवः शबलांशुका मरुतः । बलिदानहोमादिउपरिवत्

१२ चतुःषष्टिभैरवाः

१ श्रीमद्भैरवाय०
२ शम्भुभैरवाय०
३ नीलकण्ठभैरवाय०
४ विशालभैरवाय०
५ मार्तण्डभैरवाय०
६ मनुप्रभभैरवाय०
७ स्वच्छन्दभैरवाय०
८ असिताङ्गभैरवाय०
९ खेचरभैरवाय०
१० संहारभैरवाय०
११ विरूपभैरवाय०
१२ विरूपाक्षभैरवाय०
१३ नानारूपधरभैरवाय०
१४ वराहभैरवाय०
१५ रुरुभैरवाय०
१६ कुन्दवर्णभैरवाय०
१७ सुगात्रभैरवाय०
१८ उन्मत्तभैरवाय०
१९ मेघनादभैरवाय०
२० मनोजवभैरवाय०
२१ क्षेत्रपालभैरवाय०
२२ विषापहारभै०
२३ निर्भयभै०
२४ विगीतभै०
२५ प्रेतभैरवाय०
२६ लोकपालभै०
२७ गदाधरभै०
२८ वज्रहस्तभै०
२९ महाकालभै०
३० प्रचण्डभै०
३१ अजेयभैरवाय०
३२ अन्तकभैरवाय०
३३ भ्रामकभैरवाय०
३४ संहारभैरवाय०
३५ कुलपालभैरवाय०
३६ चण्डपालभै०
३७ प्रजापालभै०
३८ रक्ताङ्गभै०
३९ वेगावीक्षणभै०
४० अरूपभै०
४१ धरापालभै०
४२ कुण्डलभै०
४३ मन्त्रनाथभै०
४४ रुद्रपितामहभै०
४५ विष्णुभै०
४६ बटुकनाथभै०
४७ भूतनाथभै०
४८ वेतालभै०
४९ त्रिनेत्रभैरवाय०
५० त्रिपुरान्तकभै०
५१ वरदभैरवाय०
५२ पर्वतवासभै०

५३ शशिशकल०
५४ सर्वभूतहृदयभै०
५५ घोरसायकभै०
५६ भयङ्करभैरवाय०
५७ भुक्तिमुक्तिप्रदभै०
५८ कालाग्निभै०
५९ महारुद्रभै०
६० भयानकभै०
६१ दक्षिणमुखभै०
६२ भीषणभैरवाय०
६३ क्रोधभैरवाय०
६४ सुखसम्पत्तिदायक
ॐ यो भूताना० श्रीमत् भैरवादिचतुः षष्टिभैरवेभ्यो नमः -
होमः ॐ श्रीमद् भैरवाय स्वाहा-इत्यादि क्रमेण । एकैकाज्याहुतिः, दश दशतिलाहुतयो वा ।

१३ देवीयागे विशिष्टा पीठपूजा । न होमः ।

१ पीठाय०
२ पूर्णपीठाय०
३ कामपीठाय०
४ उड्डियाणपीठाय०
५ मातृपीठाय०
६ जालन्धरपीठाय०
७ कोल्हापुरोपपीठाय
८ पूर्णगिरिपीठाय०
९ सौहारोपपीठाय०
१०कोल्हागिरिपीठाय०
११ कामरूपपीठाय०
नमस्कारः । दक्षिणे
१ गुरवे०
२ परमगुरवे०
३ परमेष्ठि गुरवे०
४ गुरूपङ्क्त्यै०
५ मातृभ्यो०
६ उपमन्युनारद-सनक व्यासादिभ्यो०
७ वामे गणपतये०
८ दुर्गायै०
९ सरस्वत्यै०
१० क्षेत्रपालाय०
११ सर्वसामान्याः
इतिपूजयेत् । बलिदानम पीठशक्तयः । आवाहनम्

सर्वसामान्या
मण्डूकादिपीठ देवता

१ मण्डूकाय०
२ आधारशक्त्यै०
३ मूलप्रकृत्यै०
४ कालाग्निरुद्राय०
५ कूर्माय०
६ अनन्ताय०
७ वराहाय०
८ पृथिव्यै०
९ अमृतार्णवाय०
१० रत्नद्वीपाय०
११ हेमगिरये०
१२ नन्दनोद्यानाय०
१३ कल्पवृक्षाय०
१४ मणिभूतलाय०
१५ स्वर्णविदिकायै०
१६ स्वर्णवेदिकायै०
१७ रत्नसिंहासनाय०
१८ धर्माय०
१९ ज्ञानाय०
२० वैराग्याय०
२१ ऐश्वर्याय०
२२ अधर्माय०
२३ अज्ञानाय०
२४ अवैराग्याय०
२५ अनैश्वर्याय०
२६ सत्त्वाय०
२७ रजसे०
२८ तमसे०
२९ दशकलात्मने०
वह्निमण्डलाय०
३० द्वादशकलात्मने०
सूर्यमण्डलाय०
३१ षोडशकलात्मने०
चन्द्रमण्डलाय०
३२ मायातत्त्वाय०
३३ विद्यातत्त्वाय०
३४ कलातत्त्वाय०
३५ शिवतत्त्वाय०
३६ ब्रह्मणे०
३७ विष्णवे०
३८ शिवाय०
३९ आत्मने०
४० अन्तरात्मने०
४१ परमात्मने०
४२ ज्ञानात्मने०
४३ जीवात्मने०
४४ आनन्दकन्दाय०
४५ संविननालाय०
४६ पद्माय०
४७ महापद्माय०
४८ रत्नेभ्यो०
४९ प्रकृतिमयपत्रेभ्यो०
५०विकारमयकेसरेभ्यो०
५१ पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यकर्णिकायै०
५२ सर्वशक्तिकमलासनाय
(एतासां होमे आदौ प्रणवः) अन्ते च स्वाहाशब्दः । ग्रन्थान्तरेषु नामभेदः सङ्ख्याऽ-भेदश्चदृश्यते)

१४ गणेशपीठशक्तयः ।

१ तीव्रायै०
२ ज्वालिन्यै०
३ नन्दायै०
४ भोगदायै०
५ कामरूपिण्यै०
६ उग्रायै०
७ तेजोवत्यै०
८ सत्यायै०
९ विघ्ननाशिन्यै०

महागणपतियंत्रम्
यन्त्रदेवताः

(१) बिन्दुः त्रिकोणम्, षट्कोणम् अष्टदलम्, भूपुरश्च देवस्य पश्चात् प्रागपवर्गरेखा दक्षिण संस्थं पूजयेत् आदौ सर्वत्र ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं-इतिबीज त्रयं योजनीयम् ।

३ विनायक सिद्धाचार्याय
३ विरूपाक्ष ॥
३ विश्व ॥
३ ब्रह्मण्य ॥
३ निधीश ॥
३ गणाधिराज ॥
३ वरप्रद ॥
३ विजय ॥
३ दुर्जय ॥
३ जय ॥
३ दुःखारि ॥
३ सुखावह ॥
सर्वभूतात्म ॥
३ परमात्म ॥
३ महानन्द ॥
३ फालचन्द्र ॥
३ सद्योजात ॥
३ बुद्ध ॥
३ शूर ॥
३ दिव्यौघेभ्यः
३ सिद्धौघेभ्यः
३ मानवौघेभ्यः
३ त्रिकोणप्रथमावरणे
३ श्रीश्रीपतिभ्यां०
३ गिरिजागिरिशाभ्यां०
३ रति रतिपतिभ्यां०
३ महीमहीपतिभ्यां०

त्र्यस्रषडस्रयोःप्रागादिदिक्षु

(२) षडस्रदेवाग्रकोण-मारभ्य प्रादक्षिण्येन दक्षवामपार्श्व योश्चक्रमेण

३ ऋद्ध्यामोदाभ्यां०
३ समृद्धिप्रमोदाभ्यां०
३ कान्तिसुमुखाभ्यां०
३ मदनावतीदुर्मुखाभ्यां०
३ मदद्रवा विघ्नाभ्यां०
३ द्राविणीविघ्नकर्तृभ्यां०
३वसुन्धराशङ्खनिधिभ्यां०
३ वसुमतीपद्मनिधिभ्यां०

(३) षडस्रसन्धिचक्रे

३ गां हृदयाय०
३ गीं शिरसे०
३ गूं शिखायै०
३ गैं कवचाय०
३ गौं नेत्रत्रयाय०
३ गः अस्त्राय०
१ अणिमायै०
२ महिमायै०
३ गरिमायै०
४ लघिमायै०
५ प्राप्त्यै०
६ प्राकाम्यायै०
७ ईशितायै० वशितायै०

(४) अष्टदले पश्चिमादि दिक्षु वायव्यादिविदिक्षु च क्रमेण ।

३ आं ब्राह्म्यै०
३ ईं माहेश्वर्यै
३ ऊं कौमार्यै०
३ ॠं वैष्णव्यै०
३ लृं वाराह्यै०
३ ऐं माहेन्द्र्यै०
३ औं चामुण्डायै०
३ अः महालक्ष्म्यै०

(५) ३ लांइन्द्राय०
३ रां अग्नये०
३ ह्रां यमाय०
३ क्षां निर्ऋतये०
३ वां वरुणाय०
३ यां वायवे०
३ सां सोमाय०
३ हां ईशानाय०

इति महागणपति यन्त्रदेवताः

१५-१ दुर्गायन्त्रम् बिन्दुः त्रिकोणम् षट्कोणम् वृत्तम् अष्टदलम् वृत्तम् चतुर्विंशतिदलम् भूपुरत्रयश्च । देवीपीठशक्तयः ।

१ प्रथमवरणम्

१ नन्दायै०
२ भगवत्यै०
३ रक्तदन्तिकायै०
४ शाकम्भर्यै०
५ दुर्गायै०
६ भीमायै०
७ कालिकायै०
८ भ्रामर्यै०
९ शिवदूत्यै०

यन्त्रदेवताः प्रथमावरणम्
ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे

महाकाल्यै नमः
२ ऐं० महालक्ष्म्यै०
३ ऐं० महासरस्वत्यै०
४ गुरवे०
५ परमगुरवे०
६ परात्परगुरवे०
७ परमेष्ठिगुरवे०
८ ऐं० हृदयाय०
९ ह्रीं शिरसे०
१० क्लीं शिखायै०
११ चामुण्डायैकवचाय०
१२ विच्चे नेत्रत्रयाय०
१३ ऐं० विच्चे अस्त्राय०

२ द्वितीरवरणम्

१४ स्वरयासह विधात्रे०
१५ उमयासह शिवाय०
१६ श्रियासहविष्णवे०
१७ हुं सिंहाय०
१८ हुं महिषाय०

३ षट्कोणे

१९ ऐं नन्दजायै०
२० ह्रीं रक्तदन्तिकायै०
२१ क्लीं शाकम्भर्यै०
२२ दुं दुर्गायै०
२३ हुं भीमायै०
२४ ह्रीं भ्रामर्यै०

४ अष्टपत्रे

२५ ऐं ब्राह्म्यै०
२६ ह्रीं माहेश्वर्यै०
२७ क्लीं कौमार्यै०
२८ ह्रीं वैष्णव्यै०
२९ हुं वाराह्यै०
३० क्षीं नारसिंह्यै०
३१ लं ऐन्द्र्यै०
३२ स्फ्रें चामुण्डायै०

५ चतुर्विंशतिदलेषु०

३३ विष्णुमायायै०
३४ चेतनायै०
३५ बुद्ध्यै०
३६ निद्रायै०
३७ क्षुधायै०
३८ छायायै०
३९ शक्त्यै०
४० तृष्णायै०
४१ क्षान्त्यै०
४२ जात्यै०
४३ लज्जायै०
४४ शान्त्यै०
४५ श्रद्धायै०
४६ कान्त्यै०
४७ लक्ष्म्यै०
४८ धृत्यै०
४९ वृत्त्यै०
५० श्रुत्यै०
५१ स्मृत्यै०
५२ दयायै०
५३ तुष्ट्यै०
५४ पुष्ट्यै०
५५ मातृभ्यो०
५६ भ्रान्त्यै०

६ भूपुरान्तः कोणेषु

५७ गणपतये०
५८ क्षेत्रपालाय०
५९ वटुकाय०
६० योगिन्यै०

७ पूर्वादिदिक्षु

६१ इन्द्राय०
६२ अग्नये०
६३ यमाय०
६४ निर्ऋतये०
६५ वरुणाय०
६६ वायवे०
६७ सोमाय०
६८ ईशानाय०
६९ ब्रह्मणे०
७० अनन्ताय०

८ अष्टमावरणम्

७१ वज्राय०
७२ शक्तये०
७३ दण्डाय०
७४ खड्गाय०
७५ पाशाय०
७६ अङ्कुशाय०
७७ गदायै०
७८ त्रिशूलाय०
७९ पद्माय०
८० चक्राय०

९ नवमावरणम्

८१ कादम्बर्यै०
८२ उल्कायै०
८३ कराल्यै०
८४ रक्ताक्ष्यै०
८५ श्वेताक्ष्यै०
८६ हरिताक्ष्यै०
८७ यक्षिण्यै०
८८ काल्यै०
८९ सुरज्येष्ठायै०
९० सर्पराज्यै०
इति दुर्गावरण देवताः ।

१५-२ द्वितीयःप्रकारः । बिन्दुः, त्रिकोणम्, षट्कोणम्, वृत्तम्, अष्टदलम्, भूपुरत्रयम्

१ आवरणम् ।

१ ह्रीं महालक्ष्म्यै०
२ ऐं महाकाल्यै०
३ क्लीं महासरस्वत्यै०
४ महिषाय०
५ सिंहाय०
६ गणपतये०
७ कालाय०
८ मृत्यवे०

२ आवरणम् ।

९ ब्रह्मणे०
१० सरस्वत्यै०

११ रुद्राय०
१२ गौर्यै०
१३ विष्णवे०
१४ श्रियै०
१५ ऐं हृदयाय०
१६ ह्रीं शिरसे०
१७ क्लीं शिखायै०
१८ चामुण्डायै कवचाय०
१९ विच्चे नेत्रत्रयाय०
२० ऐं० विच्चे अस्त्राय०
२१ गुरुभ्यो०
२२ परमगुरुभ्यो०
२३ परमेष्ठिगुरुभ्यो०
२४ हरये०
२५ रुद्राय०
२६ गणेशाय०

(३) आवरणम् ।

२७ नन्दजायै०
२८ रक्तदन्तिकायै०
२९ शाकम्भर्यै०
३० दुर्गायै०
३१ भीमायै०
३२ भ्रामर्यै०
३३ इन्द्राण्यै०
३४ नारसिंही०
३५ चामुण्डायै०

(४) आवरणम् ।

३६ असिताङ्गभैरवाय०
३७ रुरुभैरवाय०
३८ चण्डभैरवाय०
३९ क्रोधभैरवाय०
४० उन्मत्तभैरवाय०
४१ कपालिभैरवाय०
४२ भीषणभैरवाय०
४३ संहारभैरवाय०
४४ इन्द्राय०
४५ अग्नये०
४६ यमाय०
४७ निर्ऋतये०
४८ वरुणाय०
४९ वायवे०
५० सोमाय०
५१ ईशानाय०
५२ ब्रह्मणे०
५३ अनन्ताय०

(५) आवरणम् ।

५४ वज्राय०
५५ शक्तये०
५६ दण्डाय०
५७ खड्गाय०
५८ पाशाय०
५९ अङ्कुशाय०
६० गदायै०
६१ त्रिशूलाय०
६२ पद्माय०
६३ चक्राय०

१६ रुद्रयन्त्रम् रुद्रपीठशक्तयः बिन्दुः अष्टदलम् षोडशदलम्, चतुर्विंशतिदलमब्दा-त्रिंशद्दलम्, चत्वारिंशद्दलम्, भूपुरत्रयश्च ।

१ वामायै०
२ ज्येष्ठायै०
३ रौद्रै ४ काल्यै०
५ कलविकरण्यै०
६ बलविकरण्यै०
९ मनोन्मन्यै०
१० बलप्रमथिन्यै०
११ सर्वभूतदमन्यै०
१२ मनोन्मन्यै०

१ प्रथमावरणम् ।

१ ॐ नमोभगवतेरुद्राय
२ सद्योजाताय०
३ वामदेवाय०
४ अघोराय०
५ तत्पुरुषाय०
६ ईशानाय०
७ नन्दिने०
८ महाकालाय०
९ नन्दिने०
१० वृषभाय०
११ भृङ्गिरिटये०
१२ स्कन्दाय०
१३ उमायै०
१४ चण्डेश्वराय०

२ द्वितीयावरणम् ।

१५ अनन्ताय०
१६ सूक्ष्माय०
१७ शिवाय०
१८ एकपदे०
१९ एकरुद्राय०
२० त्रिमूर्त्तये०
२१ श्रीकण्ठाय०
२२ वामदेवाय०
२३ ज्येष्ठाय०
२४ श्रेष्ठाय०
२५ रुद्राय०
२६ कालाय०
२७ कलविकरणाय०
२८ बलाय०
२९ बलविकरणाय०
३० बलप्रमथनाय०

३ तृतीयावरणम् ।

३१ अणिमायै०
३२ महिमायै०
३३ गरिमायै०
३४ लघिमायै०
३५ प्राप्त्यै०
३६ प्राकाम्यायै०

३७ ईशितायै०
३८ वशितायै०
३९ ब्राह्म्यै०
४० माहेश्वर्यै०
४१ कौमार्यै०
४२ वैष्णव्यै०
४३ वाराह्यै०
४४ ऐन्द्र्यै०
४५ चामुण्डायै०
४६ चण्डिकायै०
४७ असिताङ्गभैरवाय०
४८ रुरुभैरवाय०
४९ चण्डभैरवाय०
५० क्रोधभैरवाय०
५१ उन्मत्तभैरवाय०
५२ कालभैरवाय०
५३ भीषणभैरवाय०
५४ संहारभैरवाय०

४ चतुर्थावरणम्

५५ भवाय०
५६ शर्वाय०
५७ ईशानाय०
५८ पशुपतये०
५९ रुद्राय०
६० उग्राय०
६१ महते०
६२ अनन्ताय०
६३ वासुकये०
६४ तक्षकाय०
६५ कुलीरकाय०
६६ कर्कोटकाय०
६७ शङ्खपालाय०
६८ कम्बलाय०
६९ अश्वतराय०
७० वैन्याय०
७१ पृथवे०
७२ हैहयाय०
७३ अर्जुनाय०
७४ शाकुन्तलेयाय०
७५ भरताय०
७६ नलाय०
७७ रामाय०
७८ हिमवते०
७९ निषधाय०
८० विन्ध्याय०
८१ माल्यवते०
८२ पारियात्राय०
८३ मलयाय०
८४ हेमकूटाय०
८५ गन्धमादनाय०

५ पञ्चमावरणम् ।

८६ इन्द्राय०
८७ अग्नये०
८८ यमाय०
८९ निर्ऋतये०
९० वरुणाय०
९१ वायवे०
९२ सोमाय०
९३ ईशानाय०
९४ शच्यै०
९५ स्वाहायै०
९६ वाराह्यै०
९७ खड्गिन्यै०
९८ वारुण्यै०
९९ वायव्यै०
१०० कौबेर्यै०
१०१ ईशान्यै०
१०२ वज्राय०
१०३ शक्तये०
१०४ दण्डाय०
१०५ खड्गाय०
१०६ पाशाय०
१०७ अङ्कुशाय०
१०८ गदायै०
१०९ त्रिशूलाय०
११० ऐरावताय०
१११ मेषाय०
११२ महिषाय०
११३ प्रेताय०
११४ मकराय०
११५ मृगाय०
११६ नराय०
११७ वृषभाय०
११८ ऐरावताय०
११९ पुण्डरीकाय०
१२० वामनाय०
१२१ कुमुदाय०
१२२ अञ्जनाय०
१२३ पुष्पदन्ताय०
१२४ सार्वभौमाय०
१२५ सुप्रतीकाय०

६ समस्तावरणम् ।

१२६ इन्द्राय०
१२७ अग्नये०
१२८ यमाय०
१२९ निर्ऋतये०
१३० वरुणाय०
१३१ वायवे०
१३२ सोमाय०
१३३ ईशानाय०
१३४ विरूपाक्षाय०
१३५ विश्वरूपाय०
१३६ पशुपतये०
१३७ ऊर्ध्वलिङ्गाय०
१३८ शेषाय०
१३९ तक्षकाय०
१४० अनन्ताय०
१४१ वासुकये०
१४२ शङ्खपालाय०
१४३ महापद्माय०
१४४ कम्बलाय०
१४५ कर्कोटकाय०
१ उमादेव्यै०
२ शङ्करप्रियायै०
३ पार्वत्यै०
४ गौर्यै०
५ कालिन्द्यै०
६ कोटर्यै०
७ विश्वधारिण्यै०
८ ह्रां नमः
९ ह्रीं नमः
१० गङ्गायै०
११ गङ्गादेव्यैभक्त्यै०
१ अघोराय०

२ पशुपतये०
३ शर्वाय०
४ विरूपाक्षाय०
५ विश्वरूपिणे०
६ त्र्यम्बकाय०
७ कपर्दिने०
८ भैरवाय०
९ शूलपाणये०
१० ईशानाय०
११ महेशाय०
इति रुद्रावरणदेवताः ।

१७ विष्ण्वावरणदेवताः। विष्णुशक्तयः विमलायै० उत्कर्षिण्यै० ज्ञानायै० क्रियायै० योगायै० प्रह्व्यै० सत्यायै० ईशानायै० अनुग्रहायै० यन्त्रम् बिन्दुः त्रिकोणम् षट्कोणम्, अष्टदलम् दशदलम्, द्वादशदलम्, चतुर्दशदलम्, षोडशदलम् भूपुरत्रयम् च ।

१ बिन्दौ लक्ष्मीनारायणाभ्यां
२ त्रिकोणेसङ्कर्षणाय
३ प्रद्युम्नाय०
४ अनिरुद्धाय० ।
षट्कोणेषु
५ विष्वक्सेनाय०
६ सनकाय०
७ सनन्दनाय०
८ सनातनाय०
९ सनत्कुमाराय०
१० शुकाय०। अष्टदलेषु
११ अवनीतलाय०
१२ जलाय०
१३ वायवे०
१४ वह्नये०
१५ चन्द्राय०
१६ सूर्याय०
१७ गगनाय०
१८ यजनार्हाय०
दशदलेषु०
१९ मत्स्याय०
२० कूर्माय०
२१ वराहाय०
२२ नृसिंहाय०
२३ वामनाय०
२४ परशुरामाय०
२५ रामाय०
२६ श्रीकृष्णाय०
२७ बुद्धाय०
२८ कल्कये०
द्वादशदलेषु
२९ प्रणवमूर्त्तये०
३० नन्दनन्दनाय०
३१ मङ्गलमूर्त्तये०
३२ भगवते०
३३ गर्भवासनिवारकाय०
३४ वरेण्याय०
३५ तेजोमूर्त्तये०
३६ त्रिभुवनपतये०
३७ सुसर्वाङ्गाय०
३८ वेदाध्यक्षयाय०
३९ वागीशाय०
४० यमादिपालकाय०
चतुर्दशदलेषु
४१ नारदाय०
४२ कुमारमूर्त्तये०
४३ देवर्षिभ्यः०
४४ नारायणाय०
४५ कपिलमुनये०
४६ दत्तात्रेयाय०
४७ यज्ञमूर्त्तये०
४८ ऋषभदेवाय०
४९ पृथुराजाय०
५० धन्वन्तरये०
५१ मोहिनीरूपाय०
५२ द्वैपायनाय०
५३ मुनिमूर्तये०
५४ मनुमूर्तये०
षोडशदलेषु
५५ विश्वामित्राय०
५६ जमदग्नये०
५७ भरद्वाजाय०
५८ गौतमाय०
५९ अत्रये०
६० वसिष्ठाय०
६१ कश्यपाय०
६२ अंगिरसे०
६३ अगस्त्याय०
६४ पुलहाय०
६५ पुलस्त्याय०
६६ उद्दालकाय०
६७ दालभ्याय०
६८ जैमिनये०
६९ कात्यायनाय०
७० वैशम्पायनाय०
७१ ब्राह्म्यै०
७२ माहेश्वर्यै०
७३ कौमार्यै०
७४ वैष्णव्यै०
७५ वाराही०
७६ ऐन्द्री०
७७ चामुण्डायै०
७८ महालक्ष्म्यै०

७९ अणिमायै०
८० महिमायै०
८१ लघिमायै०
८२ गरिमायै०
८३ प्राप्त्यै०
८४ प्राकाम्यायै०
८५ वशितायै०
८६ सर्वकामायै०
८७ इन्द्राय०
८८ अग्नये०
८९ यमाय०
९० निर्ऋतये०
९१ वरुणाय०
९२ वायवे०
९३ सोमाय०
९४ ईशानाय०
९५ ब्रह्मणे०
९६ अनन्ताय०
९७ वज्राय०
९८ शक्तये०
९९ दण्डाय०
१०० खड्गाय०
१०१ पाशाय०
१०२ अङ्कुशाय०
१०३ गदायै०
१०४ त्रिशूलाय०
१०५ पद्माय०
१०६ चक्राय०
१०७ ऋग्वेदाय०
१०८ यजुर्वेदाय०
१०९ सामवेदाय०
११० अथर्ववेदाय०
१११ गङ्गायै०
११२ यमुनायै०
११३ नन्दाय०
११४ सुनन्दाय०
११५ चण्डाय०
११६ प्रचण्डाय०
११७ बलाय०
११८ प्रबलाय०
११९ भद्राय०
१२० सुभद्राय०
इति विष्ण्वावरण देवताः।

१८-१ रामयन्त्रम् रामावरण देवताः । बिन्दु षट्कोणम् वृत्तत्रयं अष्टपत्रम् द्वादशदलम् षोडशदलम् द्वात्रिंशद्दलम् भूपुरत्रयम् ।

१ आवरणम्
१ ॐ भूः सीतारामचन्द्राय०
२ ॐ भुवः सीतारामचन्द्राय०
३ ॐ स्वः सीतारामचन्द्राय०
४ ॐ भूर्भुवः स्वः सीताराम०
५ सीतायै०
६ लक्ष्मणाय०
७ भरताय०
८ शत्रुघ्नाय०
९ सुग्रीवाय०
१० बिभीषणाय०
११ हनुमते०
१२ हृदयाय०
१३ शिरसे०
१४ शिखायै०
१५ कवचाय०
१६ नेत्रत्रयाय०
१७ अस्त्राय०

२ आवरणम् ।
१८ आत्मने०
१९ परमात्मने०
२० विद्यायै०
२१ ज्ञानात्मने०
२२ शान्त्यै०

३ आवरणम् ।
२३ वासुदेवाय०
२४ श्रियै०
२५ संकर्षणाय०
२६ शान्त्यै०
२७ प्रद्युम्नाय०
२८ रत्यै०
२९ अनिरुद्धाय०
३० प्रीत्यै०

४ आवरणम्
३१ हनुमते०
३२ सुग्रीवाय०
३३ भरताय०
३४ बिभीषणाय०
३५ लक्ष्मणाय०
३६ अङ्गदाय०
३७ शत्रुघ्नाय०
३८ जाम्बवते०

५ आवरणम् ।
३९ सृष्ट्यै०
४० जयन्ताय०
४१ विजयाय०
४२ सौराष्ट्राय०
४३ राष्ट्रवर्धनाय०
४४ अकोपाय०
४५ धर्मपालाय०
४६ सुमन्ताय०

६ आवरणम् ।
४७ वसिष्ठाय०
४८ वामदेवाय०
४९ जाबालये०
५० गौतमाय०
५१ भरद्वाजाय०
५२ कौशिकाय०
५३ वाल्मीकये०
५४ नारदाय०

५५ सनकाय०
५६ सनन्दनाय०
५७ सनातनाय०
५८ सनत्कुमाराय०
७ आवरणम् ।
५९ नीलाय०
६० बलाय०
६१ सुबलाय०
६२ सुषेणाय०
६३ विन्दाय०
६४ परमाय०
६५ कुविदाय०
६६ नन्दनाय०
६७ गवाक्षाय०
६८ किरीटाय०
६९ कुण्डलाभ्यां०
७० श्रीवत्साय०
७१ कौस्तुभाय०
७२ शङ्खाय०
७३ चक्राय०
७४ गदायै०
७५ पद्माय०
८ आवरणम् ।
७६ ध्रुवाय०
७७ धराय०
७८ सोमाय०
७९ आपाय०
८० अनिलाय०
८१ अनलाय०
८२ प्रत्यूषाय०
८३ प्रभासाय०
८४ वीरभद्राय०
८५ शम्भवे०
८६ गिरिशाय०
८७ अजैकपदे०
८८ अहिर्बुध्न्याय०
८९ पिनाकिने०
९० भुवनाधीशाय०
९१ कपालिने०
९२ दिक्पतये०
९३ स्थाणवे०
९४ भर्गाय०
९५ वरुणाय०
९६ सूर्याय०
९७ वेदाङ्गाय०
९८ भानवे०
९९ चन्द्राय०
१०० रवये०
१०१ गभस्तिमते०
१०२ यमाय०
१०३ हिरण्यरेतसे०
१०४ दिवाकराय०
१०५ मित्राय०
१०६ विष्णवे०
१०७ धात्रे०
९ आवरणम् ।
१०८ इन्द्राय०
१०९ अग्नये०
११० यमाय०
१११ निर्ऋतये०
११२ वरुणाय०
११३ वायवे०
११४ सोमाय०
११५ ईशानाय०
११६ ब्रह्मणे०
११७ अनन्ताय०
१० आवरणम् ।
११८ वज्राय०
११९ शक्तये०
१२० दण्डाय०
१२१ खड्गाय०
१२२ पाशाय०
१२३ अङ्कुशाय०
१२४ गदायै०
१२५ त्रिशूलाय०
१२६ अम्बुजाय०
१२७ चक्राय०
१२८ मेषाय०
१२९ वृषभाय०
१३० मिथुनाय०
१३१ कर्काय०
१३२ सिंहाय०
१३३ कन्यायै०
१३४ तुलायै०
१३५ वृश्चिकाय०
१३६ धनुषे०
१३७ मकराय०
१३८ कुम्भाय०
१३९ मीनाय०
१४० अनन्ताय०
१४१ वासुकये०
१४२ तक्षकाय०
१४३ कर्कोटकाय०
१४४ पद्माय०
१४५ महापद्माय०
१४६ शंखाय०
१४७ कुलिकाय०

१८-२ रामद्वितीययन्त्रम् षट्कोणम्, वृत्तम् अष्टदलम्, भूपुरत्रयम्

१ आवरणम् ।
१ मध्ये-रां रामचन्द्राय०
२ वामे-सीतायै०
३ अग्रे शार्ङ्गाय०
४ दक्षपार्श्वेशरेभ्यो०
२ आवरणम् ।
५ रां हृदयाय०
६ रीं शिरसे०
७ रूं शिखायै०
८ रैं कवचाय०
९ रौं नेत्रत्रयाय०
१० रः अस्त्राय०
३ पूर्वादितः
११ हनुमते०
१२ सुग्रीवाय०
१३ भरताय०
१४ बिभीषणाय०
१५ लक्ष्मणाय०
१६ अङ्गदाय०

१७ शत्रुघ्नाय० २४ अकोपाय० ३१ वरुणाय० ३९ दण्डाय०
१८ जाम्बवते० २५ धर्मपालाय० ३२ वायवे० ४० खड्गाय०
४ दलाग्रेषु २६ सुमन्त्राय० ३३ सोमाय० ४१ पाशाय०
१९ सुषेणे० ५ आवरणम् । ३४ ईशानाय० ४२ अङ्कुशाय०
२० जयन्ताय० २७ इन्द्राय० ३५ ब्रह्मणे० ४३ गदायै०
२१ विजयाय० २८ अग्नये० ३६ अनन्ताय० ४४ त्रिशूलाय०
२२ सुराष्ट्राय० २९ यमाय० ३७ वज्राय० ४५ पद्माय०
२३ राष्ट्रवर्धनाय० ३० निर्ऋतये० ३८ शक्तये० ४६ चक्राय०

१८-२ बृहज्ज्योतिषार्णवे रामभद्रमण्डलेविशिष्टा देवता: ।

१ अष्टदलमध्ये० सूर्याय०
२ पूर्वे-सोमाय०
३ आ-भौमाय०
४ द-बुधाय०
५ नै-गुरवे०
६ प-शुक्राय०
७ वा-शनये०
८ उ-राहवे०
९ ई-केतवे०
१० परिधीभूतपङ्क्तौ सुषेणाय०
११ लिङ्गेषु-रुद्राय०
१२ वापीषु-बलाय०
१३ भद्रेषु-सुग्रीवाय०
१४ तिर्यग्भद्रेषुगवयाय०
१५ सर्वासुशृङ्खलासु-नीलाय०
१६ सर्वासुमुद्रान्तिकशृङ्खलासु० सुषेणाय०
१७ वल्लीषु-जाम्बवते०
१८ खण्डेन्दुषु मैन्दाय०
१९ परिधिषु-द्विविदाय०
२० मुद्रासुजानकीशरामाय
२१ मुद्रापश्चिमेपीत-परिधौ लक्ष्मणाय०
२२ मुद्रोत्तरपरिधौ-भरताय०
२३ मुद्रादक्षिणे-शत्रुघ्नाय०
२४ मुद्रापूर्वे-वायुपुत्राय०
२५ श्वेतपरिधौ-भागीरथ्यै०
२६ रक्तपरिधौ-सरस्वत्यै०
२७ कृष्णपरिधौ-यमुनायै०
इतिरामभद्रमण्जलदेवता: ।

१९ गायत्रीयन्त्रम् । बिन्दु:,त्रिकोणम्, षट्कोणम् अष्टदलम्, भूपुरत्रयम् । गायत्रीशक्तय: ।

१ रां दीप्तायै०
२ रींसूक्ष्मायै०
३ रूंजयायै०
४ रैं भद्रायै०
५ रैं विभूत्यै०
६ रों विमलायै०
७ रौंअमोघायै०
८ रंविद्युतायै०
९ रः सर्वतोमुख्यैश्रियै०
१ आवरणम् ।
१ गायत्र्यै०
२ गायत्र्यै०
३ सावित्र्यै०
४ सरस्वत्यै०
५ ब्रह्मणे०
६ विष्णवे०
७ रुद्राय०
२ आवरणम् ।
८ गायत्र्यै०
९ सावित्र्यै०
१० सरस्वत्यै०
११ ब्रह्मणे०
१२ विष्णवे०
१३ रुद्राय०
३ आवरणम्
१४ आदित्याय०
१५ भास्कराय०

१६ भानवे०
१७ रवये०
१८ उषायै०
१९ प्रज्ञायै०
२० प्रभायै०
२१ सन्ध्यायै०
२२ हृदयाय०
२३ शिरसे०
२४ शिखायै०
२५ कवचाय०
२६ नेत्रत्रयाय०
२७ अस्त्राय०
२८ अस्त्राय०
२९ अस्त्राय०

४ आवरणम्

३० अस्त्राय०
३१ प्रह्लादिन्यै०
३२ प्रभायै०
३३ नित्यायै०
३४ विश्वम्भरायै०
३५ विशालायै०
३६ प्रभावत्यै०
३७ जयायै०
३८ शान्त्यै०

५ आवरणम् ।

३९ कान्त्यै०
४० दुर्गायै०
४१ सरस्वत्यै०
४२ विश्वरूपायै०
४३ विशालायै०
४४ ईशायै०
४५ विमलायै०

६ आवरणम् ।

४७ तमोपहारिण्यै०
४८ सूक्ष्मायै०
४९ विश्वयोन्यै०
५० जयायै०
५१ पद्मालयायै०
५२ परायै०
५३ शोभायै०
५४ पद्मरूपायै०

७ आवरणम् ।

५५ ब्राह्म्यै०
५६ माहेश्वर्यै०
५७ कौमार्यै०
५८ वैष्णव्यै०
५९ वाराह्यै०
६० इन्द्राण्यै०
६१ चामुण्डायै०
६२ अरुणायै०

८ आवरणम् ।

६३ सूर्याय०
६४ चन्द्राय०
६५ भौमाय०
६६ बुधाय०
६७ बृहस्पतये०
६८ शुक्राय०
६९ शनैश्चराय०
७० राहवे०
७१ केतवे०

९ आवरणम् ।

७२ इन्द्राय०
७३ अग्नये०
७४ यमाय०
७५ निर्ऋतये०
७६ वरुणाय०
७७ वायवे०
७८ सोमाय०
७९ ईशानाय०
८० ब्रह्मणे०
८१ अनन्ताय०

१० आवरणम् ।

८२ वज्राय०
८३ शक्तये०
८४ दण्डाय०
८५ खड्गाय०
८६ पाशाय०
८७ अङ्कुशाय०
८८ गदायै०
८९ त्रिशूलायै०
९० पद्माय०
९१ चक्राय०

२१ दत्तात्रेययन्त्रदेवताः । यन्त्रम्-बिन्दुः त्रिकोणम् षट्कोण्, अष्टपत्रम् विंशतिपत्रम् द्वात्रिंशद्-दलम् भूपुरत्रयम् । दत्तात्रेयपीठशक्तयः

१ विमलायै०
२ उत्कर्षिण्यै०
३ ज्ञानायै०
४ क्रियायै०
५ योगायै०
६ प्राह्व्यै०
७ सत्यायै०
८ ईशानायै०
९ अनुग्रहायै०

१ आवरणम्

१ प्रणवात्मने०
२ ब्रह्मणे०
३ विष्णवे०
४ रुद्राय०

२ आवरणम् ।

५ गौतमाय०
६ कणादाय०
७ कपिलाय०
८ पतञ्जलये०
९ जैमिनये०
१० व्यासाय०

३ आवरणम् ।

११ अणिमायै०
१२ महिमायै०
१३ लघिमायै०
१४ गरिमायै०
१५ प्रह्व्यै०
१६ प्राकाम्यायै०

१७ वशितायै०
१८ सर्वकामनायै०

४ आवरणम् ।

१९ वेदधर्मणे०
२० दीपकाय०
२१ प्रह्लादाय०
२२ पिङ्गलाय०
२३ अर्जुनाय०
२४ साङ्कृतये०
२५ परशुरामाय०
२६ विष्णुदत्ताय०
२७ दलादनाय०
२८ यदवे०
२९ आयवे०
३० अलर्काय०

(५) आवरणम् ।

३१ योगिराजाय०
३२ अत्रिवरदाय०
३३ दत्तात्रेयाय०
३४ कालाग्निशमनाय०
३५ योगिजनवल्लभाय०
३६ लीलाविश्वम्भराय०
३७ सिद्धराजाय०
३८ ज्ञानसागराय०
३९ विश्वम्भरावधूताय०
४० मायामुक्तावधूताय०
४१ मायायुक्तावधूताय०
४२ आदिगुरवे०
४३ शिवरूपाय०
४४ देवदेवाय०
४५ दिगम्बराय०
४६ कृष्णश्याम-कमलनयनाय०

६ आवरणम् ।

४७ नारायणाय०
४८ विधये०
४९ अत्रये०
५० कर्दमाय०
५१ नारदाय०
५२ शाण्डिल्याय०
५३ जमदग्नये०
५४ वसिष्ठाय०
५५ गर्गाय०
५६ शक्तये०
५७ पराशराय०
५८ ऋभवे०
५९ व्यासाय०
६० पतञ्जलये०
६१ शुकाय०
६२ जाबालये०
६३ पैलाय०
६४ वैशम्पायनाय०
६५ जैमिनये०
६६ सुमन्तवे०

७ आवरणम् ।

६७ आदिनाथाय०
६८ मत्स्येन्द्रनाथाय०
६९ शावरनाथाय०
७० आनन्दभैरवनाथाय०
७१ चौरंगीनाथाय०
७२ मीननाथाय०
७३ गोरक्षनाथाय०
७४ विरूपाक्षनाथाय०
७५ बिलेशयनाथाय०
७६ मन्थाननाथाय०
७७ भैरवनाथाय०
७८ सिद्धिनाथाय०
७९ बुद्धनाथाय०
८० कन्थडिनाथाय०
८१ कोरण्टकनाथाय०
८२ सुरानन्दनाथाय०
८३ सिद्धिपादनाथाय०
८४ चर्पटिनाथाय०
८५ कानेरिनाथाय०
८६ पूज्यपादनाथाय०
८७ नित्यनाथाय०
८८ निरञ्जननाथाय०
८९ कपालिनाथाय०
९० बिन्दुनाथाय०
९१ काकचण्डीश्वरनाथाय०
९२ अल्लामनाथाय०
९३ प्रभुदेवनाथाय०
९४ घोडाचोळी-नाथाय०
९५ टिण्टिणी-नाथाय०
९६ भानुकिनाथाय०
९७ नारदेवनाथाय०
९८ खण्डकापालिक-नाथाय०
९९ इन्द्राय०
१०० अग्नये०
१०१ यमाय०
१०२ निर्ऋतये०
१०३ वरुणाय०
१०४ वायवे०
१०५ सोमाय०
१०६ ईशानाय०
१०७ ब्रह्मणे०
१०८ अनन्ताय०
१०९ गणपतये०
११० दुर्गायै०
१११ वटुकाय०
११२ क्षेत्रपालाय०

अन्यासां बह्वीनां देवतानां यन्त्रावरणादिकं तन्त्रागमपुराणादिभ्योऽवगन्तव्यम् ।

६ इति स्थापनहोमोपयोगिविविधदेवताप्रकरणं समाप्तम् ।

७ प्रतिष्ठामौक्तिके नीराजनादिप्रकरणम् ।

१ गणपतिनीराजनम् ।

जयमङ्गलमूर्ते (प्रभु) जयमङ्गलमूर्ते । गिरिजासुत सिद्धीश्वर (२) विघ्ननिकरदारिन् ॥ जय०
शुण्डादण्डविराजित करधृतमोदक हे (२) शूर्पसमश्रुतिभासित (२) पाशाङ्कुशधारिन् ॥१॥ जय०
रक्ततनो रक्ताम्बर, संवृतगुरुमूर्ते (२) लम्बोदर गजवदना (२) चन्द्राञ्चितमौले ॥२॥ जय०
मूषककेतुविभूषित, भक्तवराभयदा (२) नेत्रत्रयरुचिरोचित, (२) बुद्धिपते गणपा ॥३॥ जय०
रक्तसुमस्रक्चन्दन, चर्चितचारुतनो (२) भक्तजनेष्टविधातः (२) जगदानन्दकरा ॥४॥ जय०
गजमुख वदने वाचं, सुरसाममलधियम् (२) देहि विधेहि मनो मे (२) त्वच्चरणे निरतम् ॥५॥ जय०
व्रातपते-गणनायक, पूज्यतमादिम हे (२) वितर मनोरथसिद्धिम् (३) विघ्नशतं दह्रे ॥६॥ जय०
लक्ष्मीसुखशतधामन्, विघ्नतमोहारिन् (२) शङ्करसुत शमय त्वं शमलं सिद्धिपते ॥७॥ जय०

२ देवीनीराजन् ।

जयमातर्गिरिजे (मा जय मातर्गिरिजे, भवत्रामाङ्कविलासिनि (२) सच्चित्सुखदात्रि ॥१॥ जय०
खड्गाद्यायुधशोभित, दशभुजराजितनो (२) मधुकैटभसंहारिणि (२) विधिसंस्तुतचरणे ॥२॥ जय०
अखिलजगद्विद्योतक, नयनत्रयशोभे, (२) कलिमलमलिनमनांसि (२) शोधय शिवजाये ॥३॥ जय०
अष्टादशभुजमाले, मालायस्रधरे (२) मायामहिषविमर्दिनि (२) पाटलदेहरुचे ॥४॥ जय०
भवसागरसन्तारिणि, नानारूपमयि (२) हरिपदसेविनिकमले (२) पालयविश्वमिदम् ॥५॥ जय०
भूतहृदयसञ्चारिणि, ज्ञानामृतवर्षे (२) सात्त्विकभावसमाश्रित (२) सत्त्वमनोनिलये ॥६॥ जय०
घण्टाद्यायुधधारिणि, अष्टभुजे जननि (२) अज्ञानार्णवमग्नं (२) उद्धर दीनजनम् ॥७॥ जय०
लक्ष्मीराजितनुत्रय, लसिते त्रिगुणाद्ये (२) शङ्करमानसमोहिनि (२) दुर्गेदुर्गहरे ॥८॥ जय०

३ देवीनीराजनम् ।

जय जगदम्ब शिवे (मा) जय जगदम्ब शिवे, जगति जनानां चेतसि (२) विहरसि चित्कलिते ॥१॥ जय०
मनुजो मानवसुलभं, दोषशतंतन्वन् (२) कामादिकरिपुनाले (२) मज्जति मूढधिया ॥२॥ जय०
मोहमहार्णवमग्नो, वाञ्छति दीनमनाः (२) तरणोपायं चिन्वन् (२) चरणं ते श्रयते ॥३॥ जय०
जगदुत्पत्तिस्थितिलय, मूले सुरवन्द्ये (२) मुनिजनचेतोनिष्ठे (२) स्वान्ते तिष्ठ चिरम् ॥४॥ जय०
भ्राम्यति मुखरा वाणी, गुणगिरिमारूढा (२) करयुगलंसेवायां (२) चरणौ तीर्थचरी ॥५॥ जय०
चित्तं चिन्तनकर्मणि, ध्येयविभेदवशं (२) किंकर्तव्यविमूढं (२) लीनं त्वच्चरणे ॥६॥ जय०
शास्त्रविचारविहीनं, सत्सङ्गतिरहितम् (२) कुपथाश्रयभ्रष्टं मे (२) धर जीवनमीशे ॥७॥ जय०
विषयविलासैर्जुष्टं, कामशतैर्गूढम् (२) पापार्णवमग्नं मां (२) उद्धर करुणाब्धे ॥८॥ जय०
लक्ष्मीशङ्कररचितं, नीराजनममलम्, (२) भावभृतं चरणे ते (२) रमते सुखसिन्धौ ॥९॥ जय०

४ शिवनीराजनम् ।

वन्दे त्र्यम्बकमीशं, भूतपतिंगिरिशम् (२) प्रमथादिकगणसंस्तुत (२) चरणं गिरिजेशम् ॥१॥ हरहर०
जगदुत्पत्तिस्थितिलय, हेतुमनादिमजं (२) गौरीगणपतिषण्मुख (२) परिवृतमष्टतनुम् ॥२॥ हरहर०
हिमगिरिगौरमुमेशं, तेजोराशिमयम् (२) नित्यसमाधिस्थितमति (२) मचलं मोदमयम् ॥३॥ हरहर०
राजसभावसमेधित, विश्वमिदंविचलत् (२) सात्त्विकभावविवर्तं (२) रक्षसि साम्ब विभो ॥४॥ हरहर०
पापशतावृतभूतल, मेतद् हंसि रुषा (२) नेत्रभवानलकीलैः (२) त्र्यम्बकनाथ विभो० ॥५॥ हरहर०
सद्योजातं ब्राह्मं, त्रैष्णवबामसुरम् (२) कालमयाग्निमघोरं (२) सौरं तत्पुरुषम् ॥६॥ हरहर०
सर्वव्यापकसच्चिन्, मोदमयंसकलम् (२) परमेश्वरमीशानं (२) नित्यमहंवन्दे ॥७॥ हरहर०
पञ्चास्यं पञ्चात्मक, देवमयं सदनं (२) सकलर्ष्यीडितरूपम् (२) एकमनेकमिदम् ॥८॥ हरहर०
सनकादिकसिद्धोद्धर, ताण्डवनटराजम्, (२) व्याकृतिसूत्रनिदानं (२) गणसेवितचरणम् ॥९॥ हरहर०
भवशिवरुद्रपदैस्त्वं सृतिभृतिमृतिकारिन् (२) शङ्कर एधि सदाशिव (२) जनमङ्गलकारिन् ॥१०॥ हर हर०
धर्मरतानामेधय, सुमतिं सत्कृत्ये (२) पापरतान् सृतिभ्रष्टान् (२) आनय धर्मपथम् ॥११॥ हरहर०
विकलःसकलं शिवमह, मीशमजं वन्दे (२) चरणनिवेशितमौलि (२) र्मनसा यामि वशम् ॥१२॥ हरहर०
गौरीशङ्करचरणे, लक्ष्मीशो विनतः (२) ब्रह्ममयो भवपारं, (२) वाञ्छति शिवपदवीम् ॥१३॥ हरहर०

५ विष्णु (गोपाल) नीराजनम् ।

जयदेव जयदेव, वन्दे गोपालं, प्रभुमीशं भूपालम्(२)कुङ्कुमभासितभालं(२)नीलाम्बुदभासम् ॥१॥ जयदेव०
यमुनातीरविहारिण, मीषत् स्मितवदनम् (२) मन्दानिलसम्पूरित (२) कलरववेणुधमम् ॥२॥ जयदेव०
गोपीजनहृदयेशं, संश्रितपापहरम् (२) भवभयभञ्जनमीशं (२) गोकुलचित्तहरम् ॥३॥ जयदेव०
सुररिपुनाशकममलं, कमलासनजनकम् (२) मुनिजनमानसकन्दर (२) तेजोमयभासम् ॥४॥ जयदेव०
अणुमपि विभुरूपं त्वां, मायाजालहरम् (२) त्रिभुवनसुन्दरदेहं (२) सकलागमगेहम् ॥५॥ जयदेव०
फुल्लेन्दीवरनयनं, कुण्डलकर्णरुचम् (२) श्रीवत्साञ्चितवक्षस (२) मिन्दुशताभासम् ॥६॥ जयदेव०
अङ्गदमणिमयवलया, वेष्टितमणिबन्धम् (२) मुक्ताहारसरोरुह, मालामणिधारम् ॥७॥ जयदेव०
काञ्चीगोपितपीताम्बर, वृतकटिशोभम् (२) नूपुरभासुरचरणं (२) जनिमृतिभयहारम् ॥८॥ जयदेव०
कालियपन्नगशमनं, मुष्ट्यादिकदमनम् (२) सुरसङ्घानत मस्तक (२) चर्चितचारुपदम् ॥९॥ जयदेव०
नारदवीणारणना, कलिताखिलचरितम् (२) श्रीमद्भागवतार्णव (२) मन्थनकल्पतरुम् ॥१०॥ जयदेव०
मायाजलनिधिमग्नं, धनमदसंमूढम् (२) ममतापाशायत्तं (२) दुःखशतावासम् ॥११॥ जयदेव०
कामादिकरिपुषट्का रूढं मूढधियम् (२) भगवन् त्वं मामुद्धर, (२) देहि करालम्बम् ॥१२॥ जयदेव०
लक्ष्मीशङ्कररचितं, स्तवनं भावभृतम् (२) नीराजनमिदममलं (२) चेतःशुद्धिकरम् ॥१३॥ जयदेव०

६ रामनीराजनम् ।

वन्दे रघुकुलदीपम्,भवभयबन्धहरम्(२)निखिल जगत्परिपालक(२)मीशं रघुनाथम् ॥१॥ वन्दे रघुनाथम्
दितिजकुलार्त्तिनिपीडित विश्वंपरिपातुम्(२)दशरथसदने जातं(२)सूरशताभासम् ॥२॥ वन्दे रघुनाथम्
रूपचतुष्टयधारिण, मवतीर्णं विष्णुम् (२) पूर्णगुणं मर्यादा, (२) पुरुषोत्तमरूपम् ॥३॥ वन्दे रघुनाथम्
निखिलागमसंवेद्यं, कौशिकवरशिष्यम् (२) खरदूषणसंहारं (२) भार्गवमदहरणम् ॥४॥ वन्दे रघुनाथम्
सीतालक्ष्मणराधित, पञ्चवटीविहरम् (२) शबरीबदरीरसिकं (२) शल्योद्धारकरम् ॥५॥ वन्दे रघुनाथम्
सीताहरणाकुपित, कृतहनुमत्सख्यम् (२) जटायुलब्धोदन्तं (२) कालानलरूपम् ॥६॥ वन्दे रघुनाथम्
कृतजलनिधिसंपारं, कपिशतसाहाय्यम्(२)शरवर्षाहितनिखिला(२)सुरकृतसंबाधम् ॥७॥ वन्दे रघुनाथम्
दशमुखहननामोचित, भुवनत्रयभीतिम् (२) साकेतप्रियवासं (२) जनहृदयाह्लादम् ॥८॥ वन्दे रघुनाथम्
जनजल्पं दूरयितुं, सीतात्यागपरम् (२) त्यक्तसुखेषणमीशं (२) परमानन्दमयम् ॥९॥ वन्दे रघुनाथम्
कुशलवरोपितभारं, मानवहृत्कुहरे (२) नित्यनिरन्तरवासं (२) सीतारामसहम् ॥१०॥ वन्दे रघुनाथम्
लक्ष्मीपतिपदकमले, भजते यो मनुजो(२)गौरीपतिकरुणार्द्रो(२)घत्तेऽभीष्टततिम् ॥११॥ वन्दे रघुनाथम्

७ वास्तुपुरुषनीराजनम् ।

जय वास्तोभगवन्, (प्रभु) जय वास्तो भगवन्, सकलमनोरथदायिन्, गृहपति सुखकारिन् ॥१॥ जय०
स्वयमसुरःसुरसंश्रित, वपुषा विव्यननो २ निर्जरमहसाराजित २ भद्रशततन्वन् ॥२॥ जय वास्तो०
वापीकूपसुरालयहर्म्यसदनवासिन् २ चन्द्रदिवाकरसत्त्वं २ यावत् पाहि विभो ॥३॥ जय वास्तो०
भूमिगतानायव्यय, वेधादिकदोषान् २ भस्मीकुरु तूर्णं त्व शल्यभवारिष्टम् ॥४॥ जय वास्तो०
नानाजन्तुविहिंसन, जात पापचयम् २ बलिपूजनयजनैस्त्वं २ नाशय तुष्टमनाः ॥५॥ जय वास्तो०
ईशशिरा हृदयाञ्जलि, रसुरदिगङ्घ्रियुगः २ वह्निसमीरणकूर्पर २ जानुयुगलधारी ॥६॥ जय वास्तो०
सकलसुराश्रयशोभी, न्युब्जतनू रुचिरः २ विधिहरिहररूपी त्वं २ सततं वसगेहे ॥७॥ जय वास्तो०
धर्मे रतिमतिविमलाम् लक्ष्मीमनपगमाम् २ ऋद्धिं यक्षपतीष्टां २ दानविभवजुष्टाम् ॥८॥ जय वास्तो०
पुत्राद्यन्वयवृद्धिं, धान्यभरितकोशम् २ चरणनिरतयजमाने २ धेहि चिरं भगवन् ॥९॥ जय वास्तो०

८ गङ्गानीराजनम् ।

जय भागीरथि गङ्गे, जुह्नुसुते शिवदे २ भवभयनाशिनि मातः २ पावय विश्वमिदम् ॥१॥ जय गङ्गेमातः०
हिमगिरिकूटविलासिनि, चन्द्रोज्ज्वलवारे २ भारतभूतलजननि, २ नाशय पापचयम् ॥२॥ जय गङ्गेमातः०
नारायणपदजाते, हरमूर्धभ्रमणे २ कैलासाङ्कविलासे २ मामव भावमयम् ॥३॥ जय गङ्गेमातः०
कपिल मुनिक्रोधानल, दग्धानुसगरसुतान् २ षष्टिसहस्रमितांस्त्वं २ कृपयासमुदधरः ॥४॥ जय गङ्गेमातः०
भूपभगीरथतपसा, तुष्टे भरतभुवम् २ पालय कोमलहृदये २ हर संसार भयम् ॥५॥ जय गङ्गेमातः०
गङ्गानामस्मरणैः स्पर्शैरवलोकैः २ भक्त्याखानैर्मुक्तिं प्रापय भक्तजनान् ॥६॥ जय गङ्गेमातः०
त्वत्कृपयेयं भूमिः, पुण्या पूतजलैः २ सर्वदुग्धा परिपूर्णा २ विश्वेश्वरकृपया ॥७॥ जय गङ्गेमातः०

९ गुरूजीराजनम् ।

भवबन्धनसे जकडे, बिछडे भवरणमें (२) राह दिखाओ भगवन् (२) तेरे शरणआयें ॥१॥
जयजय गुरुदेव०

सुतधन माया जाया, पाश घिरें मनको २ सन्मति देकर भगवन् २ मोहको दूर करो ॥२॥
सब ही हैं पर मुझको, राह नही दिखता २ एकलताका अनुभव ३ चंचल कर देता ॥३॥
आत्मा एक अरूप, नव नवरूप धरें २ कैसे मै पहचानूँ २ पैर धरूं तेरे ॥४॥
जल स्थल नभ बादलमें, अनुपम तेरा रूप २ अनुभव करता छोडूं २ भवबंधन सारे ॥५॥
तेरे शरणमें आया, ज्ञानकी ज्योत जलें २ पाप भगे मन जागे २ सबको मुक्त करो ॥६॥
जयजय गुरुदेव० ॥

इति श्री गुर्जर मण्डलान्तर्वर्तिवटपत्तननगरवासि श्रीगुरुद्विजकुलभूषण वैयाकरण भूषण शुक्ल गौरीशङ्करात्मज व्याकरणाचार्य - साहित्योत्तमकाव्यतीर्थेत्यादिपदवीविभूषित महाराजसयाजिराव विश्वविद्यालय संस्कृतमहाविद्यालयीय निवृत्तवेद-कर्मकाण्ड-व्याकरण साहित्याद्यिप्राध्यापक पण्डित लक्ष्मीशङ्करशुक्लविरचितं प्रतिष्ठामौक्तिकं सम्पूर्णम् ।